इस्लामी जिहाद

बलपूर्वक धर्मांतरण, साम्राज्यवाद और दासप्रथा की विरासत

एम.ए. खान

Felibri.com

अंतरताना (इंटरनेट) की गतिशील प्रकृति के कारण, इस पुस्तक में दिया गया कोई भी वेब एडरेस अथवा लिंक परिवर्तित, नष्ट अथवा अमान्य दिख सकता है।

यू.एस.ए. में एफएलआईबीआरआई डॉट कॉम द्वारा प्रकाशित

कुरआन के गुण-दोष आधारित सूक्ष्म अन्वेषण के आधार पर लेखक ने अत्यंत गहनता से दर्शाया है कि इस्लाम अपने जिहाद अथवा पवित्र जंग के सिद्धांत में स्पष्ट रूप से बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कराने, अ-मुस्लिमों (गैर मुसलमानों) को गुलाम (दास) बनाने तथा पूरे विश्व में साम्राज्यवादी इस्लामी शासन स्थापित करने का आह्वान करता है। इसके बाद रसूल की सुन्नतों व मूल आत्मवृत्तों के गहन अध्ययन के आधार पर लेखक उजागर करते हैं कि किस प्रकार रसूल मुहम्मद द्वारा इस्लामी अल्लाह के शाश्वत संबंध वाले इन आदेशों को पूर्णतः लागू किया गया हैः रसूल मुहम्मद बलपूर्वक धर्मांतरण, दासप्रथा जैसी कुप्रथा को चलाने में संलग्न रहा और अरब में प्रथम साम्राज्यवादी इस्लामी राज्य की स्थापना की। सुस्पष्ट ऐतिहासिक अभिलेखों व साक्ष्यों के माध्यम से इस पुस्तक में आगे बताया गया है कि किस प्रकार आज तक के इतिहास में मुसलमानों ने संसार के विभिन्न भागों में इस्लामी जिहाद के इन प्रतिमान प्रतिदर्शों (मॉडल) का विस्तार किया। यह लेखक भविष्यवाणी कर रहा है कि आने वाले दशकों में इस्लामी जिहाद और तीव्र होगा तथा मानव जाति, विशेषकर काफिरों व पश्चिमी जगत पर इसका गंभीर परिणाम होगा। मैं मानता हूं कि यह पुस्तक उभर रही उन चुनौतियों की व्यापक समझ प्रदान करेगा, जो चरमपंथियों द्वारा उत्पन्न की गयी हैं और जिनका सामना मुस्लिम व अ-मुस्लिम (गैर-मुसलमान) जगत दोनों कर रहे हैं।

-इब्न वराक, पुस्तक 'मैं मुसलमान क्यों नहीं हूं' (व्हाई आई एम नॉट ए मुस्लिम) के लेखक

यह पुस्तक अति महत्वपूर्ण है और सबको अवश्य पढ़नी चाहिए। सुरुचिपूर्ण ढंग से लिखी गयी यह पुस्तक जिहाद की हिंसक साम्राज्यवादी प्रकृति पर प्रकाश डालती है। जिहाद इस्लाम का वह प्रमुख सिद्धांत है, जिसका अनुपालन व लक्ष्यप्राप्ति अ-मुस्लिमों (गैर-मुसलमानों) के साथ ही मुसलमानों के भी मानवाधिकारों का हनन करके ही की जा सकती है, यह पुस्तक इस्लाम पर लिखी गयी सर्वोत्तम पुस्तकों में से एक है।

-नोनी दरवेश, पुस्तक 'अब वे मुझे काफिर कहते हैं' (नाऊ दे कॉल मी इन्फिडल) के लेखक

मैंने यह पुस्तक पढ़ी और इसे सम्मोहित करने वाला पाया। ''इस्लामी जिहाद'' एक व्यापक संदर्भ है, जिसमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य व वर्तमान समय में इस्लाम व उसके रसूल के विषय में अनेक विस्तृत तथ्य समाहित हैं। जो जिहाद व आतंक के पीछे के उत्प्रेरक बल को समझना चाहते हैं, उन सबको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

-सामी अल रबा, पुस्तक ''ढंका-छिपा अत्याचार'' (वेल्ड एट्रोसिटीज) के लेखक

मैं 'इस्लामी जिहाद' नामक इस पुस्तक को उत्कृष्ट कृति कहूंगा और यह भी कहूंगा कि यह पुस्तक मानवता के प्रति बड़ा योगदान है। जब मैंने यह पुस्तक पढ़ना प्रारंभ किया, तो मानों सम्मोहित हो गया और इसे अंत तक पढ़े बिना छोड़ नहीं सका। मैं इसे इस्लाम के विरुद्ध एक शक्तिशाली अस्त्र कहूंगा।

-शम्सुज्जोहा मनीक, इस्लाम के विद्वान व लेखक

''इस्लामी जिहाद'' का परिमाण अति विशाल व गहरा है और इसका आयाम बड़ा है। अधिकांश ऐतिहासिक सामग्रियां व्यापक रूप से छिपायी गयी हैं। इन छिपायी गयी ऐतिहासिक साम्रगियों को सामने लाने की आवश्यकता है। इस्लामी जिहाद ने दासप्रथा फैलाने में बड़ी भूमिका निभायी है। यह पुस्तक मानवता के लिये वरदान है।

-बिल वार्नर, इस्लाम के विद्वान व लेखक, राजनीतिक इस्लाम अध्ययन केंद्र के निदेशक

''इस्लामी जिहाद'' नामक यह पुस्तक इतने अदभुत ढंग से लेखबद्ध की गयी है कि इस्लाम को उजागर करने की सटीकता के कारण इसकी आलोचना की संभावना नगण्य हो गयी है। अतः इस पुस्तक को मात्र पाठन-मनोरंजन के लिये अपने हाथ में न लें, अपितु इस्लाम का वर्तमान समझने एवं इसके भविष्य का अनुमान लगाने हेतु इस्लाम के अतीत की वास्तविक प्रकृति पर स्वयं को शिक्षित करने के लिये इसे गहरायी व गंभीरता से पढ़ें।

-स्लैंट राइट ब्लाग

इस पुस्तक ने अपने आरंभ से ही मुझे इसमें डुबो दिया। मैंने भारत में इस्लाम पर अध्यायों को समझा... । इस्लाम के इतिहास और ऐतिहासिक दृष्टि से इसके अनुयायियों को लेकर तर्क के सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए समग्रता व औचित्यपूर्ण ढंग से विमर्श किया गया है। यह पुस्तक सबको अवश्य पढ़नी चाहिए। संसार में आज जो हो रहा है, उसको देखते हुए यह पुस्तक और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

-गॉडेस 101 (in amzon.co.uk)

इस पुस्तक में जब आप पराजित और दास बनाये गये लोगों की दुर्दशा व नरसंहार के विषय में पढ़ रहे होंगे, तो संभव है कि अत्यंत व्यथित हो जाएं। इस पुस्तक में बहुत से तथ्य दिये गये हैं। जिहादियों की मानसिकता और अल्लाह के नाम पर लड़ी गयी रक्तरंजित जंगों को गहनता से समझने के लिये पाठकों को इन तथ्यों पर गहरायी से चिंतन करना चाहिए। श्रीमान खान ने सोचने को बाध्य करने वाली एक ऐसी पुस्तक लिखी है, जो अत्यंत विस्तृत है और गंभीर पादटिप्पणियों, संदर्भग्रंथों व सूचियों द्वारा प्रतिपुष्ट की गयी है। यह ऐसी पुस्तक है, जिसे प्रत्येक उस व्यक्ति को संदर्भ के रूप में रखना चाहिए, जिसकी इस्लामी जिहाद के खूनी इतिहास और इससे उपजे सभी परिणामों को समझने में रुचि है।

-स्टीवन बी. सिम्पसन, लेखक

खान की यह कृति सोने की खान से निकली हुई मूल्यवान धातु है। खान की इस पुस्तक से आपको न केवल इस्ल्ामी इतिहास का सिद्धहस्त ज्ञान मिलेगा, अपितु इस्लामी धर्मशास्त्र के विषय में भी ज्ञानवर्द्धन होगा। इस कारण से यह पुस्तक उन लोगों के लिये खतरा है, जो जिहाद की वास्तविकता को छिपाकर हमारी आंखों पर पट्टी बांध देते हैं। खान का उद्देश्य ही आंख खोलना है। वो इस कार्य में अत्यंत सफल हुए हैं... खान मुहम्मद के जीवन को इस्लामी सिद्धांत व इतिहास के सूक्ष्म-अन्वेषी रूप में उजागर करते हैं और यह काम उन्होंने अद्भुत व उत्कृष्ट ढंग से किया है। मैं नहीं बोलूंगा कि आप यह पुस्तक पढ़ें या नहीं। यह पुस्तक पढ़िए और स्वयं जानिए।

-सी.सी. च्रप्पा (ऑन अमेजन डॉट कॉम)

यह पुस्तक ''इस्लामी जिहाद'' अनुसंधानपरक व विद्वतापूर्ण ढंग से लिखी गयी है। अपनी शैली, सुस्पष्ट अंतदृष्टि, विश्लेषण की गहराई और इस तथ्य में इसकी श्रेष्ठता है कि यह कुरआन सहित इस्लाम के ही स्रोतों से निकाले गये तथ्यों के आधार पर लिखी गयी है। यह पुस्तक इस्लाम की शिक्षाओं एवं जिहाद की इसकी स्वीकृति के गहन परीक्षण व सुदृढ़ तर्कों को भी प्रस्तुत करती है। यह जिहाद की वास्तविकता को उजागर करती ही है, साथ ही जिहाद नामक बुराई के आगे आत्मसमर्पण करके ज़िम्मी (धिम्मी) बन जाने की भयावहता पर भी प्रकाश डालती है।

-मुमिन सालिह, इस्लाम के विद्वान व लेखक

''यह पुस्तक ''इस्लामी जिहादः बलपूर्वक धर्म परिवर्तन, साम्राज्यवाद व दासप्रथा की विरासत'' मानव जाति को एम.ए. खान का उपहार है। यह पुस्तक हम सबको अनिवार्य रूप से पढ़नी चाहिए, क्योंकि यह इस्लाम की वास्तविक प्रकृति का चित्रण करती है और अ-मुसलमानों (गैर-मुसलमानों) की सुरक्षा व उनके जीवन पर इस्लाम के गंभीर खतरे से अवगत कराती है। मैं ऐसा बहुमूल्य उपहार प्रदान करने के लिये इसके लेखक को धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।''

-मोहम्मद अशगर, पुस्तक मुहम्मद व उसकी कुरआन (मुहम्मद एंड हिज कुरआन) के लेखक

यह पुस्तक ''इस्लामी जिहाद'' अत्यंत विद्वतापूर्ण, प्रेरणादायी व अकाट्य तथ्यों से युक्त है। इसकी भाषा सामान्य, समझने में सरल और रुचि उत्पन्न करने वाली है। एक बार पाठक पढ़ना प्रारंभ करेगा, तो समाप्त किये बिना उठने की इच्छा नहीं होगी। इस्लाम के किसी भी गंभीर पाठक को इस पुस्तक की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इस पुस्तक को पढ़िए, तो आप समझ पाएंगे कि इस्लामी जिहादी जो कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं। उपमहाद्वीप (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश) के पाठक और विशेष रूप से मुसलमान पाठक जब मध्यपूर्व व मध्यएशिया से आये मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा उनके पूर्वजों पर किये गये अत्याचार को जानेंगे, तो हिल जाएंगे। अनेक आक्रमणों व अनवरत् हमलों का यह झंकझोर देने वाला विवरण उत्सुकतापूर्वक अपनी जड़ों को ढूंढ़ने पर बाध्य कर देगा। मुस्लिम दुनिया के किसी कोने के पाठक और यहां तक कि यूरोप और अमरीका के पाठक भी यह समझ पाने योग्य होंगे कि किस प्रकार उनके पूर्वजों पर इस्लाम का भयानक दुष्प्रभाव पड़ा। यह पुस्तक आज के राजनीतिज्ञों को अवश्य ही पढ़ना चाहिए, चाहे वह नेता मुसलमान हो अथवा गैर-मुसलमान, जिससे कि निरंतर बढ़ रहे इस्लामी चरमपंथ के खतरे की ओर से उनकी उदासीनता दूर हो सके।

-अबुल कासेम, इस्लाम के विद्वान व लेखक

''एम.ए. खान की यह पुस्तक ''इस्लामी जिहादः बलपूर्वक धर्म परिवर्तन, साम्राज्यवाद व दासप्रथा की विरासत'' जिहाद के इतिहास विषय पर गुण-दोष आधारित अनुसंधान पर तैयार की गयी अनुपम कृति है और जो भी इस विषय में रुचि रखते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।''

-जेफरी किंग, (शीघ्र ही आने वाली) पुस्तक फ्री स्पीच के लेखक

प्राक्कथन

मेरा जन्म व लालन-पालन एक रुढ़िवादी मुस्लिम समाज में हुआ। भारत में स्नातक उपाधि लेने के पश्चात मैं आगे की शिक्षा के लिये पश्चिम की ओर चला गया। रुढ़िवादी मुस्लिम पृष्ठभूमि के बाद भी मैं उदारवादी सोच के साथ बड़ा हुआ। मेरे विद्यालयी व विश्वद्यालयी दिनों में मेरे निकट मित्र हिंदू व सिख रहे। मैं उनके साथ अधिक सहज अनुभव करता था, क्योंकि वे न के बराबर धार्मिक झिझक रखने वाले एवं अधिक उदार, सरल स्वभाव व विनम्र थे। विश्वविद्यालयी शिक्षा पूरी करने तक मैं मजहबी रीतियों व कर्मकांडों को पूर्णतः छोड़ चुका था: ये मजहबी रीतियों मुझे अपनी नहीं ओर नहीं खींच पाती थीं।

जब अमरीका में 9/11 का हमला (आक्रमण) हुआ, तो उदार समाज में रहते हुए मैं एक दशक से अधिक समय व्यतीत कर चुका था। मुझे सचेतन रूप से यह विश्वास हो गया था कि मजहबी रीतियां यथाः नमाज, रोजा व हज आदि सब अर्थहीन हैं। मुझे लगता था कि जिन व्यर्थ की मजहबी रीतियों से किसी का भी भला नहीं होता है, मैंने उनका अंधानुकरण नहीं किया। उसकी अपेक्षा मैंने परिश्रम व बुद्धिमत्ता पूर्ण ढंग से कार्य किया है, इसलिये मुझे पुरस्कृत किया जाना चाहिए। मेरे परम् मित्र गैर-मुसलमान थे, अपने मुसलमान साथियों को क्षुब्ध करते हुए मैं हराम (वर्जित) भोजन करता था, (आधुनिकता में) मदिरा पान करता था। :

यदि सच कहूं, तो इस प्रकार का उदार व्यक्ति बन जाने के बाद भी मैं उन मुसलमानों से भिन्न नहीं था, जिन्हें लगता था कि 9/11 का हमला उचित था। यद्यपि मुझे लगता था कि इस हमले का शिकार बने जो लोग मारे गये हैं, वो अकारण ही मरे। पूरे विश्व में मुस्लिम समाज अमरीका को इस्लाम के घोर शत्रु के रूप में प्रस्तुत करता है, विशेष रूप से इजराइल-फिलिस्तीन संघर्ष में अमरीका के पक्ष को लेकर। उस समय मैं भी यही सोचता कि अमरीका का अंधा समर्थन पाकर इजराइल को फिलिस्तीन के मुसलमानों पर भयानक अत्याचार कर रहा है, उनके लिये घोर कष्ट उत्पन्न कर रहा है। निस्संदेह मुसलमानों में 9/11 के हमलों को उचित ठहराने का गहरा भाव था। मुसलमानों के इस भाव से सुपरपॉवर अमरीका को रक्तपात करने का एक और बहाना मिल गया। मैं भी भले ही तनिक ही मुसलमान था, किंतु मैं भी उन्हीं मुसलमानों के जैसे सोचता था।

यह विचित्र प्रतीत हो सकता है कि मैं अब भी इस्लाम में विश्वास करता था। मैं सोचता था कि आतंकवादी, जो इस्लाम के नाम पर सब कर रहे हैं, दिग्भ्रमित हैं। 9/11 के बाद मैंने धीरे-धीरे इस्लाम के बारे में पढ़ना प्रारंभ किया: कुरआन, सुन्नत और रसूल मुहम्मद के आत्मवृत्तों को पढ़ा। मैंने अपने जीवन के 35 वर्षों में ये सब नहीं पढ़ा था। मैं घोर आश्चर्य में पड़ गया। जीवनभर मुझे बताया गया कि रसूल मुहम्मद का जीवन आदर्श था: उसका जीवन अत्यंत करुणामयी व न्यायप्रियता का था, यह भी बताया गया था कि इस्लाम सबसे शांतिपूर्ण धर्म है और मैं इन सब बातों पर विश्वास भी करता था। किंतु कुरआन पढ़ा, तो ऐसा लगा कि यह तो अ-मुस्लिमों (गैर-मुसलमानों) का धर्म परिवर्तन कराने अथवा उन्हें अपने अधीन भयानक अपमानजनक स्थिति में ज़िम्मी बनाकर रखने के लिये उनके विरुद्ध खुली जंग का घोषणापत्र है। अपने पैगम्बरी के व्यवसाय और विशेषकर अपने अंतिम दस वर्षों की अवधि में रसूल मुहम्मद भले ही कुछ भी रहा हो, किंतु वह शांतिप्रिय, दयावान् एवं न्याय के साथ खड़ा रहने वाला व्यक्ति तो नहीं ही था।

मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी। मैंने इस्लामी धर्मशास्त्र और रसूल मुहम्मद से लेकर आधुनिक समय तक के इस्लामी इतिहास पर वर्षों तक गहन अनुसंधान किया, तो इसमें बलपूर्वक धर्मांतरण, बर्बर साम्राज्यवाद एवं भयभीत कर देने वाली दासप्रथा की

स्तब्धकारी घटनाएं निकलकर सामने आयीं। यह बहुत बड़ी मानव त्रासदी की दुखद गाथा है। ऐसी त्रासदी, जो इस्लाम के मूलभूत तत्व इस्लामी पवित्र जंग अर्थात जिहाद के नाम पर लायी गई। त्रासदी की यही गाथा इस पुस्तक का विषय है।

एम.ए. खान

आभार ज्ञापन

प्रथमतः मुझे इस कार्य को करने में अपनी पत्नी के प्रोत्साहन एवं धीरज भरे त्याग के लिये आभार प्रकट करना चाहिए, उनके सहयोग के अभाव में यह पुस्तक साकार रूप नहीं ले पाती।

यह कार्य मनुष्यों एवं अलौकिक विद्वानों व लेखकों के कार्यों के आधार पर सम्पन्न किया गया है और इस पुस्तक का अधिकांश श्रेय उन्हीं को जाना चाहिए। कुरआन के लेखक अल्लाह, अल-बुखारी, अबू मुस्लिम एवं अबू दाऊद, रसूल की सुन्नत के संकलनकर्ताओं, इब्न इस्हाक व अल-तबरी, रसूल का आत्मवृत्त लिखने वाले लेखकों, मुहम्मद फरिश्ता, इब्न बतूता, एचएम इलियट व जे. डाऊसन, जवाहरलाल नेहरू, केएस लाल, गिल्स मिल्टन, बर्नार्ड लेविस, वीएस नायपाल, जीडी खोसला, पीके हित्ती, एम. उमरुद्दीन, एंड्रयू बॉस्टम, आरएम ऐटन, बहारिस्तान-ए-शाही व अलबरूनी लिखित भारत आदि पुस्तकों का नामोल्लेख समीचीन होगा।

मैं अपने उन मित्रों अबुल कासिम, मोहम्मद अशगर, सईद कामरान मिर्जा, शेर खान, मुमिन सालिह, सी. ली, वार्नर मैंकेंजी व बहुत से अन्य मित्रों का भी कम ऋृणी नहीं हूं, जिन्होंने इस काम को करने में मुझे अपार प्रोत्साहन दिया। इनमें से बहुतों ने मुझे मूल्यवान सूचना व सुझाव दिये हैं। सी. ली ने अपने पुस्तकों के विशाल संग्रह को मुझसे साझा किया, जिससे मुझे अनुसंधान में बड़ी सहायता मिली। इसके लिये ली के प्रति विशेष रूप से धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

इस पुस्तक में दिये गये विषय वैश्विक रुचि के हैं, परंतु इसमें प्रस्तुत ऐतिहासिक आंकड़े अधिकांशतः भारत से लिये गये हैं और इसके पीछे मुख्यतः दो कारण हैंः पहला यह कि समकालीन विद्वानों द्वारा किये गये कार्यों के रूप में भारत पर ऐतिहासिक सूचनाओं का बड़ा भाग उपलब्ध है, दूसरा कारण यह है कि पुस्तक का आयतन बहुत अधिक न हो।

हो सकता है कि इस पुस्तक में कुछ भाषाई त्रुटियां रह गयी हों, पर मैं आशा करता हूं कि पाठकों को इससे यथान्यून असुविधा होगी।

एम.ए. खान

15 अक्टूबर 2008

अनुक्रमाणिका

अध्याय एक

जिहादः विवाद

'...व्यक्ति को वर्ष में कम से कम एक बार जिहाद में अवश्य जाना चाहिए... यदि वे अपनी गढ़ियों में हों, तो उन पर गुलेल से हमला करना चाहिए, भले ही उनमें स्त्रियां और बच्चे भी क्यों न हों। उन लोगों को आग में जीवित जला देना चाहिए अथवा उन्हें डुबोकर मार डालना चाहिए।'

-इमाम अल-गज़ाली, मुहम्मद के बाद इस्लाम का दूसरा सबसे बड़ा विद्वान

'समस्त विश्व को इस्लामी बनाने के (मुस्लिम) मिशन और समझा-बुझाकर अथवा बलपूर्वक प्रत्येक व्यक्ति का इस्लाम में धर्मांतरण कराने के (अनिवार्य कर्तव्य) के कारण मुस्लिम समुदाय में जिहाद एक अनिवार्य मजहबी कर्तव्य है।'

-इब्न खलदुन, द मुक़द्दिमाह, न्यूयार्क, पृष्ठ 473

अमरीका में 9/11 के दुखद हमले ने विश्व को बहुत परिवर्तित कर दिया है। इससे ऐसा परिवर्तन आया है, जिसका परिणाम लंबे समय में दिखेगा। अलकायदा व उसी की मानसिकता के अन्य मुस्लिम समूहों द्वारा ''जिहाद'' या ''पवित्र जंग'' के नाम पर काफिरों के विरुद्ध विश्वव्यापी अंधाधुंध हिंसा ने इस्लामी दुनिया और अ-इस्लामी (गैर-इस्लामी) संसार दोनों की सुरक्षा व स्थायित्व को संकट में डाल दिया है। वैश्विक स्तर पर मुसलमानों की बड़ी आबादी में शुद्धतावादी अर्थात मुहम्मद के समय के इस्लाम को पुनः स्थापित करने की मंशा का उभार भी बढ़ रहा है। ये दोनों प्रवृत्तियां पश्चिम व अन्य स्थानों के धर्मनिरपेक्ष-लोकतांत्रिक राष्ट्रों के समक्ष अभूतपूर्व खतरा उत्पन्न कर रही हैं। हिंसक जिहादी समूह, जिनका लक्ष्य इस्लामी शरिया विधि द्वारा शासित विशुद्ध इस्लाम (1400 वर्ष पूर्व के इस्लाम) को विश्व स्तर पर स्थापित करने का लक्ष्य है, अंधाधुंध हिंसा, हत्या व विनाश के माध्यम से आधुनिकतावादी, धर्मनिरपेक्ष-लोकतांत्रिक व प्रगतिशील विश्व-व्यवस्था को पूर्णतः नष्ट कर देना चाहते हैं। शुद्धतावादी इस्लाम के अहिंसक समर्थक मुसलमान भी इसी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। मुसलमानों में इस तथाकथित अहिंसक शुद्धतावादी इस्लाम का बड़ा आकर्षण है, यद्यपि ये अहिंसक मुसलमान हिंसा से लक्ष्य प्राप्त करने की अपेक्षा शरिया कानून को वैधता देने एवं पश्चिमी समाज की परंपराओं व सामाजिक आचरण को मिटा देने जैसे भिन्न साधनों से इस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। ये मुसलमान पश्चिमी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विपरीत लिंगों का एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप से मिलना, समलैंगिकता आदि को इस्लाम को आहत करने वाला मानते हैं।

वर्ष 2006 के एक पोल में पाया गया था कि 40 प्रतिशत ब्रिटिश मुसलमान शरिया कानून का शासन चाहते थे, जबकि उनमें से 60 प्रतिशत चाहते थे कि मुसलमानों के विषयों व प्रकरणों की मध्यस्थता के लिये शरिया न्यायालय बनाए जाएं। कुछ

समय पूर्व सोशल कोहेसन इन द यूके के केंद्र द्वारा किये गये अध्ययन में पाया गया कि ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों के 4 प्रतिशत मुसलमान विद्यार्थी इस्लाम को ''बढ़ावा देने एवं संरक्षित रखने'' के लिये हत्या का समर्थन करते हैं; उनमें से 32 प्रतिशत मुसलमान विद्यार्थियों को लगता है कि इस्लाम की रक्षा में की गयी हत्या उचित है। उनमें से 40 प्रतिशत विद्यार्थी ब्रिटेन में मुसलमानों के लिये शरिया विधियों (कानूनों) को लाने का समर्थन करते हैं एवं 37 प्रतिशत इसका विरोध करते हैं। उनमें से 33 प्रतिशत मुसलमान विद्यार्थी खलीफा का विश्वव्यापी शासन लाने का समर्थन करते हैं, जबकि केवल 25 प्रतिशत ही इस विचार का विरोध करते हैं। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि मुसलमानों में चरमपंथ बढ़ रहा है और युवा मुसलमान अपने अभिभावकों की पीढ़ी की तुलना में अधिक धर्मांध हैं।[1] यद्यपि ब्रिटेन की जनसंख्या में मुसलमान अभी लगभग 3.5 प्रतिशत ही हैं, किंतु वहां मुस्लिम समुदाय में अनधिकृत रूप से शरिया कानून अनेक रूपों में प्रचलित है।

इन परिस्थितियों में कैंटरबरी के आर्कबिशप रोवन विलियम्स ने फरवरी 2008 में कहा था कि यूनाइटेड किंगडम (यूके) में शरिया विधि का समावेशन अपरिहार्य हो गया है, अर्थात इसे टाला नहीं जा सकता है और उन्होंने सरकार से शरिया को विधिक रूप से लाने पर विचार करने को कहा था।[2] ब्रिटेन की सरकार मुसलमानों की अनवरत् मांग पर बाध्य हो गयी है कि वह ब्रिटेन में मुसलमानों के तलाक, वित्तीय विवाद और यहां तक कि घरेलू हिंसा विवादों के प्रकरण के लिये शरिया न्यायालय की विधिक स्थापना और शरिया कानून को क्रियान्वित करे। डेली मेल ने लिखा 'शरिया न्यायालय ने दावा किया है कि उसने पिछली गर्मियों से अब तक 100 प्रकरणों पर सुनवाई की है, जिसमें से 6 प्रकरण घरेलू हिंसा के हैं। जबकि ब्रिटेन में घरेलू हिंसा व्यवहार विषयक प्रकरण (सिविल वाद) नहीं होते हैं, अपितु यह आपराधिक प्रकरणों के अंतर्गत आते हैं। शरिया न्यायालय चलाने वालों ने कहा कि भविष्य में वे 'छोटे-मोटे' आपराधिक प्रकरणों की भी सुनवाई करने की आशा करते हैं।'[3] यह ब्रिटेन में शरिया विधि की स्थापना का एक चरण है।

इस्लामी ''जिहाद'' अथवा ''पवित्र जंग'' का अर्थ अल्लाह के सरोकार के लिये जंग करना होता है; अल्लाह का वह सरोकार, जिसे उसने इस्लामी सिद्धांतों में कुरआन की आयतों की लंबी सूची के माध्यम से डाला है, जैसे कि आयत 2:190।[4]

---

[1] गार्धम डी, मुस्लिम स्टूडेंट बैक किलिंग इन द नेम ऑफ इस्लाम, टेलीग्राफ (यूके), 27 जुलाई 2008

[2] शरिया लॉ इन यूके इस 'अनअवायडेबल', बीबीसी न्यूज, 7 फरवरी 2008

[3] मैथ्यू हिक्ले, इस्लामिक शरिया कोर्ट्स इन ब्रिटेन आर नाउ 'लीगली बाइंडिंग', 15 सितम्बर 2008

[4] कुरआन 2.190: अल्लाह के उद्देश्य से उनसे जंग करो, जो तुमसे लड़ें, किंतु सीमाएं मत लांघो; क्योंकि अल्लाह को अवज्ञाकारी प्रिय नहीं हैं। (अनुवाद युसुफ अली)

अल्लाह द्वारा कुरआन में जिहाद के संबंध में 200 से अधिक आयतें दी गयी हैं। आज के हिंसक जिहाद के प्रसिद्ध नायक ओसामा बिन लादेन ने काफिरों के विरुद्ध अपने जिहादी अभियानों को निम्नलिखित मजहबी रूप में परिभाषित किया है:[5]

> जहां तक मुसलमानों और काफिरों के बीच संबंध की बात है, तो इस बारे में महान अल्लाह के शब्द ये हैं: 'हम तुम्हें (काफिरों अर्थात गैरमुसलमानों को) अपनाने से अस्वीकार करते हैं। जब तक कि तुम केवल अल्लाह को ही न मानने लगो, हमारे मध्य शत्रुता व घृणा बनी ही रहेगी।' इसलिये शत्रुता है, और यह शत्रुता हृदय में बैठे भयानक विद्वेष का साक्षी है। और यह भयानक शत्रुता तभी रुकेगी, जब यदि काफिर इस्लाम के प्रभुत्व के समक्ष आत्मसमर्पण कर दें, अथवा यदि उसका रक्त बहाया जाना वर्जित किया गया हो, अथवा यदि उस समय में मुसलमान दुर्बल अथवा असमर्थ हों। किंतु यदि हृदय से (काफिरों के प्रति) घृणा का लोप हो जाता है, तो यह बड़ा कुफ्र है! सर्वसामर्थ्यवान अल्लाह द्वारा अपने रसूल को कहे गये ये शब्द सच्चे संबंध के बारे में अंतिम अभिवचन का वर्णन है: 'हे रसूल! काफिरों व मुनाफिकों से जंग करो और उनके प्रति कठोर व निष्ठुर रहो। उनका ठिकाना जहन्नुम (नर्क) है, उनकी नियति बहुत बुरी है!' इस प्रकार काफिरों और मुसलमानों के बीच संबंध का मूलतत्व व आधार ऐसा है। काफिरों के विरुद्ध मुसलमानों की जंग, शत्रुता व घृणामूलक व्यवहार हमारे मजहब का आधार है। और हम इसे उनके प्रति न्याय व दयालुता मानते हैं।

अन्य लोग काफिरों (गैर-मुसलमानों) के प्रति मुस्लिमों के इस एकदिशीय व अनियंत्रित शत्रुता को जिहाद के मजहबी आधार के रूप में मानने पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। अनेक उदारवादी मुसलमान और इस्लाम के विद्वान तर्क देते हैं कि अलकायदा व उसकी मानसिकता के अन्य इस्लामी समूहों के अंधाधुंध हिंसक कार्यों को जिहाद नहीं कहा जाना चाहिए। उनका दावा है कि जिहाद का अर्थ शांतिपूर्ण आध्यात्मिक संघर्ष है और यह हिंसा से पूर्णतः दूर है। राष्ट्रपति बुश के जैसे ही वे भी तर्क देते हैं कि इस्लाम शांति का धर्म है और इसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं है। व्यापक रूप से यह दावा भी किया जाता है कि इस्लामी इतिहास का हॉलमार्क उस सहिष्णुता, शांति व समानता का हॉलमार्क है, जो ईसाई धर्म अपने मुस्लिम (स्पेन में) व अ-ईसाई प्रजा (यथा: यूरोप व अमरीका में मूर्तिपूजक व यहूदी) को दे पाने में विफल रहा।

ब्रूसेल्स के ईस्ट वेस्ट इंस्टीट्यूट द्वारा आयोजित आतंकवाद प्रतिरोधी सम्मेलन (फरवरी 19-21, 2008) में वक्ताओं ने बारंबार तर्क दिया कि शब्दावली ''जिहाद'' को अलकायदा की हिंसा से नहीं जोड़ना चाहिए, क्योंकि अधिकांश मुसलमानों के लिये जिहाद का मूल अर्थ आध्यात्मिक उत्थान है, और वे नहीं चाहते कि इस अर्थ का कहीं भी अपहरण कर लिया जाए।' ईराकी विद्वान शेख मोहम्मद अली ने सम्मेलन में कहा कि 'जिहाद भीतर से सभी बुराइयों को दूर करने के लिये स्वयं के भीतर का संघर्ष है... और इस्लाम में कोई जिहादी आतंक नहीं है।'' पाकिस्तान के संयुक्त चीफ आफ स्टॉफ के पूर्व अध्यक्ष जनरल एहसान उल हक़ ने निर्धनता उन्मूलन, शिक्षा या जीवन के सकारात्मक पक्षों को प्रोत्साहन देने के लिये संघर्ष पर बल देते हुए कहा कि जिहादियों को

[5] रेमंड इब्राहीम, द टू फेसेज ऑफ अलकायदा, आवधिक समीक्षा, 21 सितम्बर 2007

आतंकवादी कहना या तो ''इस्लाम की समझ का अभाव'' है अथवा दुर्भाग्य से यह ''जिहाद शब्द के आशयपूर्वक दुरुपयोग'' को प्रतिबिंबित करता है।[6]

अलकायदा द्वारा जिहाद के नाम पर 9/11 का हमला किये जाने के बाद से ही मुस्लिम व अनेकों अ-मुस्लिम विद्वान व शिक्षाविद् जिहाद के इस अहिंसक विचार के बचाव में सामने आ गये। डेनियल पाइप्स ने जिहाद के अर्थ को सकारात्मक सिद्ध करने के लिये कई उदाहरण उद्धृत किये हैं, जिसका सारांश नीचे दिया गया है।[7]

हार्वर्ड इस्लामी सोसाइटी के अध्यक्ष ज़ायेद यासीन ने विश्वविद्यालय के सत्रारंभ समारोह 2002 में 'मेरा अमरीकन जिहाद' शीर्षक से भाषण देते हुए कहाः ''जिस सच्चे व शुद्धतम रूप में जिहाद करने की इच्छा सभी मुसलमानों के मन में होती है, उसका सच्चा व शुद्धतम रूप यही है कि हम सही मार्ग पर चलने का संकल्प लें और हमारे हित प्रभावित हों, तब भी हम न्याय करें। यह व्यक्तिगत नैतिक व्यवहार के लिये अपने भीतर का संघर्ष है...।'' हार्वर्ड के संकायाध्यक्ष मिशेल शिनागेल, जिन्हें संभवतः इस्लामी धर्मशास्त्र का कोई ज्ञान नहीं था, ने यासीन द्वारा दी गयी जिहाद की परिभाषा की पुष्टि करते हुए इसे ''अपने भीतर और समाज के भीतर न्याय व सामंजस्य'' को प्रोत्साहन देने के लिये व्यक्ति के भीतर का संघर्ष बताया। हार्वर्ड इस्लामी सोसाइटी के परामर्शदाता प्रोफेसर डेविड मिट्टन ने सच्चे जिहाद को ''ईश्वर के मार्ग के अनुपालन एवं समाज में अच्छाई करने के लिये अपने भीतर की मूल प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त की दिशा में मुस्लिमों के सतत् संघर्ष'' के रूप में परिभाषित किया। अमरीकी शिक्षा जगत में अनेकों विद्वान जिहाद के इसी विचार का प्रचार कर रहे हैं। विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जो एल्डर जिहाद को एक ऐसे ''धार्मिक संघर्ष के रूप में देखते हैं, जो अंतर्मन, धर्म के व्यक्तिगत संघर्ष'' को प्रतिबिंबित करता है। वेलेजली कॉलेज के प्रोफेसर रॉक्सैन यूबेन के लिये ''जिहाद का अर्थ लोभ-लालच से बचना और श्रेष्ठ व्यक्ति बनना है।'' जबकि जॉर्जिया सदर्न यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर जॉन पार्सल्स जिहाद को ''भूख व अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने के संघर्ष'' के रूप में देखते हैं। आर्मस्ट्रांग अटलांटिक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर नेड रीनाल्डुकी के अनुसार जिहाद का लक्ष्य हैः ''भीतर से अच्छा मुसलमान होना। बाहर से न्यायप्रिय समाज का निर्माण करना।''

न्यूयार्क विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फरीद इसेक के लिये जिहाद का अर्थ ''रंगभेद का विरोध करना और महिलाओं के अधिकारों के लिये काम करना है।'' ड्यूक विश्वविद्यालय में इस्लामी अध्ययन के प्रमुख प्रोफेसर ब्रूस लॉरेंस के अनुसार जिहाद ''अच्छा विद्यार्थी होना, अच्छा सहकर्मी होना, अच्छा व्यापारिक साझेदार होने के समान होता है। सबसे बढ़कर जिहाद अपने क्रोध को वश में करने का नाम है।'' उनके अनुसार अ-मुस्लिमों को भी जिहाद के अच्छे गुणों को ग्रहण करना चाहिए; उदाहरण के लिये संयुक्त राज्य अमरीका इस अन्याय भरे विश्व में सभी के लिये न्याय को प्रोत्साहित करने के लिये अपनी विदेश नीति की समीक्षा करके जिहाद के इस गुण को ग्रहण कर सकता है। जिहाद के इस अहिंसक व कुछ-अच्छा-करें के विचार के विपरीत अलकायदा व

---

[6] व्हाट इस जिहाद? लैंग्वेज स्टिल हिंडर्स टेरर फाइट, रायटर्स, 20 फरवरी, 2008

[7] पाइप्स डी (2003) मिलिटैंट इस्लाम रीचेज अमेरिका, डब्ल्यूडब्ल्यू नॉर्टन, न्यूयार्क, पृ 258-68

बड़ी संख्या में धर्मांध इस्लामी समूह विजयोन्माद में दावा करते हैं कि काफिरों और विशेष रूप से पश्चिमी देशों और पश्चिम की ओर झुकाव रखने वाले अथवा पश्चिम को सहयोग करने वाले मुस्लिम व्यक्तियों, समूहों व सरकारों के विरुद्ध उनकी हिंसात्मक कार्रवाई जिहाद है। वे प्रायः कुरआन की आयतों और रसूल मुहम्मद के जीवन के उदाहरणों का संदर्भ देकर इस दावे को न्यायोचित ठहराते हैं। स्पष्ट है कि जिहाद के इस चरमपंथी उपदेश के बारे में बड़ी असहमति व नकार है। यह चाहे जिहाद को लेकर भ्रांति हो या कुछ और, पर इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि हिंसक इस्लामी समूह अपनी इस मान्यता के साथ कि वे अल्लाह के उद्देश्य से लड़ रहे हैं, आने वाले वर्षों में मानव जीवन व समाज की अपार क्षति व विनाश करते हुए निर्दोष पुरुषों, महिलाओं व बच्चों के विरुद्ध हिंसा व आतंकवाद करते रखेंगे। इस पर कोई विवाद नहीं है कि मुसलमान अब विश्व के सभी राष्ट्रों में उल्लेखनीय व स्थापित समूह हैं।

उच्च जन्मदर के कारण जनसंख्या विस्फोट से जूझ रहे मुस्लिम देशों से पश्चिम की ओर मुसलमानों की भीड़ के प्रवेश एवं वहां के मूल निवासियों की घटती जनसंख्या को देखते हुए वर्तमान जनसांख्यिकीय रूझान संकेत देते हैं कि इस सदी के मध्य तक अनेक पश्चिम देशों में मुसलमान प्रमुख धार्मिक समूह बन जाएंगे। यदि मुसलमानों में प्रबल हिंसक धर्मांधता का ज्वार ऐसे ही बना रहा, तो वह दिन बहुत दूर नहीं है कि जब सहिष्णु व सभ्य विश्व की स्थिरता खतरे में पड़ जाएगी। संसार के आधुनिकतावादी, धर्मनिरपेक्ष-लोकतांत्रिक व प्रगतिशील भविष्य की स्थिरता सुरक्षित रखने के लिये राष्ट्रों को एक होकर एवं सैन्य व वैचारिक दोनों साधनों का प्रयोग करते हुए इन धर्मांध इस्लामी समूहों की विचारधारा व गतिविधियों से निपटना चाहिए।

जिस प्रकार हिंसक इस्लामियों ने संसार में चारों ओर विध्वंस मचा रखा है और वे सर्वाधिक विध्वंस इस्लामी देशों में ही कर रहे हैं, तो मुस्लिमों व अ-मुस्लिमों दोनों के लिये इन विनाशकारी इस्लामियों से निपटने के लिये प्रभावी प्रति-उपाय तैयार करने हेतु जिहाद का जिहाद को लेकर ''वास्तविक अर्थ'' और जिहादियों के मुख्य उद्देश्य को समझना महत्वपूर्ण है। यह समझे बिना कि जिहाद वास्तव में क्या है, मुसलमानों में जिहाद के नाम पर हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति की रोकथाम के लिये प्रशासन व लोगों द्वारा प्रभावशाली उपाय ढूंढ़ पाना असंभव होगा।

यह पुस्तक इस विषय में बताने का छोटा सा प्रयास है कि जिहाद क्या है। यह पुस्तक रसूल मुहम्मद के जीवन को पढ़ेगी, क्योंकि मुसलमानों की पवित्र पुस्तक कुरआन में जो आयतें दी गयी हैं, वो उसे ही इस्लामी ईश्वर (अल्लाह) से उतरोत्तर प्राप्त हुईं। इस पुस्तक में परीक्षण किया जाएगा कि कब और किन परिस्थितियों में अल्लाह ने इस्लामी सिद्धांतों में जिहाद को सम्मिलित किया। यह कुरआन, जिहाद के प्रामाणिक पैगम्बरी (सुन्नती) सिद्धांत एवं रसूल मुहम्मद के मूल आत्मवृत्तों के आधार पर बतायेगी कि इस्लाम के रसूल ने जब अपने जीवन अंतिम तेईस वर्षों (610-632 ईसवी) में इस्लामी मजहब की स्थापना की थी, तो कैसे उसने जिहाद के सिद्धांत को क्रियान्वित किया था। इस प्रकार यह जिहाद के मजहबी आधार व सुन्नती प्रतिदर्श (मॉडल) को समझने के पश्चात यह परीक्षण करेगी कि किस प्रकार मुसलमानों द्वारा इस्लामी प्रभुत्व काल में जिहाद का यह प्रोटोटाइपिकल मॉडल अविरत और निरंतर बनाये रखा गया।

इससे पूर्व यह ध्यान देना महत्वपूर्ण कि इस्लाम के जन्म के समय अल्लाह के जिहाद संबंधी सिद्धांत को चलन में लाने में रसूल मुहम्मद ने जिहादी कार्रवाइयों के तीन बड़े मॉडल स्थापित किये थे।

1. इस्लाम के प्रसार के लिये हिंसा का प्रयोग
2. इस्लामी साम्राज्यवाद
3. इस्लामी दासप्रथा

इस पुस्तक के भिन्न-भिन्न अध्यायों में जिहाद की इन तीन परंपराओं पर विचार किया जाएगा।

अध्याय दो

इस्लाम की आधारभूत मान्यताएं

सारांश रूप में नीचे दी गयीं इस्लाम की आधारभूत मान्यताओं पर दृष्टिपात करने से इस पुस्तक की विषय-वस्तु समझने में सहायता मिलेगी। मुसलमान मानते हैं कि इस्लाम अब्राहमिक धारा का अंतिम एकेश्वरवादी धर्म है। जैसा कि मुसलमानों द्वारा दावा किया जाता है, इस्लामी ईश्वर अल्लाह वही ईश्वर है, जो यहूदियों और ईसाइयों का है और जिसने आदम और हव्वा को बनाने के बाद मानव जाति तक अपना पथ-प्रदर्शन पहुंचाने के लिये 1,24,000 संदेशवाहक (पैगम्बर) भेजे थे। पैगम्बरों के अनुक्रम में आदम पहला पैगम्बर था और मुहम्मद अंतिम। मुहम्मद अंतिम पैगम्बर था और सभी पैगम्बरों में सर्वश्रेष्ठ था। वह सर्वकालिक रूप से मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ व पूर्ण था। यह अंतिम व सर्वश्रेष्ठ पैगम्बर अल्लाह के पूर्णीकृत, अंतिम ईश्वरीय संदेश कुरआन को भी लेकर आया तथा अल्लाह द्वारा अंतिम बनाये गये मजहब इस्लाम की स्थापना की। अल्लाह द्वारा इससे पूर्व भेजे गये संदेश व धर्म (जैसे कि यहूदी व ईसाई धर्मग्रंथ व धर्म) इस अंतिम मजहब इस्लाम के आगे अपूर्ण व निम्नकोटि के हैं। अल्लाह ने स्वयं कुरआन में बल देकर कहा है कि उसने अन्य सभी धर्मों को समाप्त करने और उनके स्थान पर नये मजहब की स्थापना के लिये इस्लाम मजहब भेजा है: 'उस (अल्लाह) ने अपने संदेश और (एकमात्र) सत्य धर्म के साथ अपना पैगम्बर (मुहम्मद) भेजा, जिससे कि वह अन्य सभी धर्मों पर इस्लाम का बोलबाला कर सके [कुरआन 48:28]।'[8]

इस्लाम कहता है कि समय बीतने के साथ यहूदी धर्मग्रंथ यहूदियों द्वारा विकृत अथवा परिवर्तित कर दिये गये थे [कुरआन 2:59], इसलिये इन धर्मग्रंथों को निरस्त किया जाता है और इन्हें त्याग दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस्लाम में ईसाई धर्मग्रंथों को नीचा तो बताया गया है, किंतु इसका मूल्यांकन तनिक अच्छा किया गया है, यह अभी भी मान्य है। कुरआन कहती है कि ईसाइयों ने अपने मूल ग्रंथ के कुछ अंश को विस्मृत कर दिया है [कुरआन 5:14] और यह भी कहती है कि ईसाइयों ने अपने मूल ग्रंथों की शिक्षाओं को ठीक से नहीं समझा है और गलत ढंग से ईसामसीह को ईश्वर का बेटा मान लिया है [कुरआन 5:72; 112:2; 19:34-35; 4:171]। कुरआन यह भी कहती है कि ईसाई समुदाय के लोग गलत ढंग से ईसामसीह को तीन ईश्वरों अथवा त्रिदेवों में से एक बताते हैं [कुरआन 5:73; 4:171]। यद्यपि ईसाई अपने धर्म का पालन गलत ढंग से करते हैं, किंतु अल्लाह ने ईसाइयत को एकसाथ निरस्त नहीं किया, अपितु अल्लाह को आशा है कि ईसाई धर्म अंततः इस्लाम द्वारा पीछे छोड़ दिया जाएगा [कुरआन 48:28]। विचित्र बात है कि यहूदियों ने तौरात (ओल्ड टेस्टामेंट) को किस प्रकार दूषित किया है अथवा ईसाइयों ने अपने मूल ग्रंथ

---

[8] प्रसंगों में कुरआनी संदर्भ कोष्ठक में दिये गये हैं। कुरआन 48:28 का अर्थ है 48वें अध्याय की 28वीं आयत। भाषाई स्पष्टता के लिये कुरआन के तीन सर्वाधिक स्वीकार्य अनुवाद, जो दक्षिणी कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय (http://www.usc.edu/dept/MSA/quran/) द्वारा किये गये हैं, लिये गये हैं।

के अंशों को कैसे विस्मृत कर दिया है या वे बाइबिल (न्यू टेस्टामेंट) को गलत ढंग से कैसे समझ रहे हैं, इसकी जानकारी देकर उन तत्वों व भागों की त्रुटियां दूर करवाने के लिये किसी को न भेजकर अल्लाह ने रसूल मुहम्मद को शीर्ष पर बिठाकर एक नितांत भिन्न मजहब ही धरती पर उतार दिया।

इस्लाम दो आधारभूत तत्वों पर आधारित है: पहला, अल्लाह की वाणी, जो कि कुरआन में है, और दूसरा रसूल की परंपराएं, जिसे हदीस या सुन्नत भी कहा जाता है। अल्लाह के अपने शब्दों में मानव जाति के लिये संदेश अल्लाह की वाणी है और यह अरबी कुरआन में अपरिवर्तित रूप से समाहित है। 610 से 632 के बीच मुहम्मद द्वारा उपदेश देने और इस्लामी शिक्षा के प्रसार के व्यवसाय के समय अल्लाह ने टुकड़े-टुकड़े में अपने दूत फरिश्ता जिबराइल के माध्यम से अपने संदेश भेजे। मुहम्मद संभवतः अनपढ़ था। जब भी जिबराइल अल्लाह की आयतों को लेकर आता, तो वह आयतें बोल-बोलकर मुहम्मद को तब तक सुनाता, जब तक कि वह उन आयतों को शब्दशः रट न लेता। मुहम्मद फिर उस आयत को अपने पढ़े-लिखे अनुयायियों से लिखवाता था, जिससे कि अल्लाह के शब्द मूल रूप में बने रहें। वह वो आयतें अपने प्रिय अनुयायियों को रटवाता था। मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात वो आयतें संकलित की गयीं, जिसे कुरआन के रूप में जाना जाता है। इसलिये कुरआन की सामग्री इस्लामी ईश्वर अल्लाह के अक्षरश: वो शब्द हैं, जो इस संसार में मानव जीवन को ऐसा मार्ग दिखाने के लिये भेजे गये हैं, जिस मार्ग पर अल्लाह मानव को ले जाना चाहता है। ऐसा मार्ग, जिस पर चलकर मोमिन मृत्यु के बाद अल्लाह के जन्नत को प्राप्त करने और वहां कभी न समाप्त होने वाला माल-पुरस्कार प्राप्त करने योग्य बनेंगे।

दूसरा तत्व जो वास्तव में इस्लामी पंथ का दूसरा आधा पक्ष है, वह रसूल मुहम्मद के कथन, कार्य, कार्रवाइयां अर्थात रसूली परंपराएं हैं, जिन्हें एकसाथ सुन्नत या हदीस कहा जाता है। चूंकि अल्लाह ने जो इतने सारे पैगम्बर भेजे थे, उनमें मुहम्मद मुसलमानों और वास्तव में सभी मनुष्यों के लिये सर्वोत्तम एवं धरती पर आने वाले मानव जीवन में सबसे उच्च पूर्णता वाला था, इसलिये यह निश्चित कर दिया गया कि जन्नत में अल्लाह का पुरस्कार प्राप्त करना है, तो पूर्ण मानव रसूल के पदचिह्नों पर चलकर इस्लामी जीवन ही जीना पड़ेगा। इस्लामी मान्यताओं के अनुसार जो मुसलमान अपना जीवन ठीक वैसे ही ही जीता है जैसा रसूल मुहम्मद जीता था, तो वह कभी नर्क (जहन्नुम) का स्वाद नहीं चखेगा और सीधे जन्नत में प्रवेश करेगा। परंतु सच यह भी है कि किसी मुसलमान के लिये मुहम्मद के जीवन का पूर्ण अनुकरण करना लगभग असंभव है। अतः अधिकांश मुसलमान कुछ समय तक इस्लामी जहन्नुम के भयानक आग में भूने जाएंगे। जहन्नुम में उनके रहने की अवधि उनके द्वारा जीवन में किये गये कार्यों के परिमाण पर निर्भर करेगा। केवल मुसलमानों का एक समूह ऐसा है, जो जहन्नुम की आग में भूने जाने से बचकर सीधे जन्नत में प्रवेश करेगा और वह समूह उन मुसलमानों का है, जो अल्लाह के मार्ग में लड़ते हुए शहीद के रूप में मारा जाएगा अर्थात जो जिहाद या पवित्र जंग में भाग लेगा कुरआन [9:111]। (अध्याय तीन में और देखें)। इसलिये, मुहम्मद ने अपने जीवन काल में जिन जंगों की अगुवाई की थी अथवा उसने जिन जंगों को लड़ने का आदेश दिया था, उनमें मारे गये सैकड़ों मुसलमान, उसके बाद की सदियों में जिहाद लड़ते हुए मारे गये मुसलमान और वर्तमान में जिहाद करते हुए मारे जा रहे मुसलमान अथवा भविष्य में जिहाद करते हुए मारे जाने वाले मुसलमान सीधे इस्लामी जन्नत में प्रवेश करेंगे। जिन मुसलमानों की सामान्य अथवा प्राकृतिक मृत्यु होती है, उन्हें संसार के अंत अर्थात कयामत के उस दिन तक की प्रतीक्षा करनी होगी, जब अल्लाह निर्णय सुनायेगा कि जन्नत में प्रवेश करने से पूर्व उन्हें कितने दिन जहन्नुम में बिताना पड़ेगा।

इसलिये, मुसलमानों में रसूल मुहम्मद के जीवन, उसकी कार्रवाइयों, कार्यों व कथनों का अक्षरशः अनुकरण करने की सार्वभौमिक इच्छा होती है। मुसलमानों के जीवन का एक और वांछनीय पक्ष यह होता है कि वो काफिरों के विरुद्ध जिहाद करके और विशेष रूप से अ-मुस्लिम (गैर-मुस्लिम) के नियंत्रण वाले भूभाग को छीनकर इस्लाम को विस्तार देने के लिये इस्लामी पवित्र जंग में लड़कर शहीद होने की इच्छा पालता है। मदीना में मुसलमानों के आरंभिक समुदाय ने रसूल मुहम्मद के मार्गदर्शन में जिहाद अर्थात जंग में लड़ने एवं उन जंगों से प्राप्त अल्लाह-स्वीकृत लूट का माल प्राप्त करने के व्यवसाय में अपने को पूर्णतः समर्पित किया था (देखें अध्याय तीन)।

अपने पैगम्बरी व्यवसाय के तेईस वर्षों में मुहम्मद कथित अल्लाह के निकट सम्पर्क में था। कथित अल्लाह उसे सभी परिस्थितियों में, चाहे जंग की कठिनाइयां हों अथवा बंदियों के साथ व्यवहार हो, पारिवारिक विवाद हों या कुछ और, उसके जीवन के लगभग प्रत्येक चरण में उसको मार्गदर्शन देता था। वह रसूल की कार्रवाइयों व कार्यों पर सतत् दृष्टि रखता था। जब कभी मुहम्मद गलती करता, तो अल्लाह वहां उसे टोकने, ठीक करने अथवा मागदर्शन देने के लिये खड़ा रहता। अतः पैगम्बरी व्यवसाय के समय मुहम्मद द्वारा कही गयी प्रत्येक बात या उसके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य पर अल्लाह द्वारा प्रेरित अथवा ईश्वरीय प्रकृति का ठप्पा लगा दिया जाता है।

तद्नुसार, प्रसिद्ध विद्वान व सही मुस्लिम (रसूली परंपरा अर्थात हदीस के संग्रह) का अनुवादक अब्दुल हामिद सिद्दीकी प्रमुखता से कहता है कि सुन्नत ईश्वरीय स्रोत से आया हैः '...कुरआन की शिक्षाएं और सुन्नत का स्रोत कोई मानव नहीं है, अपितु वो सब अल्लाह द्वारा प्रेरित हैं और इस कारण सभी भौतिक या सांसारिक विचारों से परे हैं...।'[9]

अतः रसूल की सुन्नत इस्लामी पंथ का ऐसा अ-ग्रंथीय व अर्द्ध-ईश्वरीय घटक है, जिसका पालन मुसलमान को सूक्ष्मता से करना होता है। मुसलमानों के लिये रसूल मुहम्मद के जीवन का अनुकरण करना सैद्धांतिक फल भर नहीं है, अपितु अल्लाह ने बारंबार मुसलमानों को कुरआन के निर्देशों का अनुपालन करने के साथ ही रसूल का अनुसरण करने का भी आदेश दिया है। कुरआन बारंबार कहती हैः अल्लाह की आज्ञा (जो कि कुरआन है) और उसके रसूल (जो कि सुन्नत है) का पालन करो [कुरआन 3:32; 4:13, 59, 69; 5:92; 8:1,20,46; 9:71; 24:47, 51-52, 54, 56; 33:33; 47:33; 49:14; 58:13; 64:12]। इस प्रकार कुरआन के आदेश व बोध एवं सुन्नत दोनों लगभग समान रूप से इस्लामी पंथ के महत्वपूर्ण आधे-आधे भाग का निर्माण करते हैं। तथापि, इस्लाम के कुछ आधुनिक पक्षकार या तो अल्लाह के बारंबार चेताने वाले संदेश की अवज्ञा करते हुए अथवा अज्ञानतावश सुन्नत को इस्लाम से पृथक करना चाहते हैं, क्योंकि उसके कुछ अवयव आधुनिक विवेक में अस्वीकार्य हैं। वे कुरआन को इस्लाम का एकमात्र आधार बनाना चाहते हैं। यद्यपि मुहम्मद की मृत्यु के लगभग 200 वर्ष पश्चात उच्च इस्लामी विद्वानों द्वारा संकलित की गयी सुन्नत कुरआन के संदेशों से अधिकाधिक मेल खाती है और सदियों से इस्लाम के डॉक्टरों (उलेमाओं) द्वारा

---

[9] सही मुस्लिम बाइ इमाम मुस्लिम, सिद्दीकी एएच द्वारा अनूदित, किताब भवन, नई दिल्ली, 2004 संस्करण, अंक 1, पृष्ठ. 210-11, टिप्पणी 508

स्वीकार की जाती है। शरिया अथवा इस्लामी पवित्र कानून इस्लाम का एक और अविभाज्य अंग है। शरिया कानून कोई पृथक अवयव नहीं हैं, वो कुरआन व सुन्नत से ही निकले हुए हैं।

यद्यपि मुहम्मद ने अल्लाह की आयतों को टुकड़ों-टुकड़ों में लिखवाया था और अपने अनेक अनुयायियों को रटवाया था, परंतु वह उन आयतों को पुस्तक के रूप में संकलित नहीं कर सका था। आज जिस कुरआन को हम जानते हैं, वह तीसरे खलीफा उस्मान के शासन (644-656 ईसवी) में संकलित की गयी थी। ऐसे ही अल्लाह बारंबार मुसलमानों से रसूल का अनुसरण करने को भले ही कहता है, परंतु मुहम्मद ने अपनी कार्रवाइयों व कार्यों का विवरण देने वाली आत्मकथा लिखने पर ध्यान नहीं दिया (अथवा दूसरों से नहीं लिखवाया) जिससे कि मुसलमान कयामत के दिन तक उसका अनुसरण कर सकें। स्पष्ट है कि इस्लामी ईश्वर मुहम्मद को स्मरण कराना भूल गया कि वह उसकी आयतों को एक पुस्तक (कुरआन) के रूप में एकत्रित करे अथवा अपनी आत्मकथा (जिसे सुन्नत कहते हैं) लिख डाले। अर्थात अल्लाह मुहम्मद को यह बताना भूल गया कि इस्लामी पंथ के जिन दो घटकों कुरआन व सुन्नत का पालन मुसलमानों को कठोरता से करना है, उन्हें लिख डाले। मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात कुछ बुद्धिमान मुसलमानों ने अल्लाह और उसके रसूल की इस कमी को ताड़ लिया। उनको लगा कि इस्लामी पंथ को अपरिवर्तनीय एवं मूल स्वरूप में रखने के लिये अल्लाह की आयतों और सुन्नत का व्यवस्थित संगठन आवश्यक होगा। क्योंकि जिस प्रकार अल्लाह के पहले के ग्रंथों गॉस्पेल और तोरात में अशुद्धि आयी थी, वैसी इसमें न हो। इसके लिये उन्होंने मुहम्मद की मृत्यु के लगभग दो दशक पश्चात कुरआन को संग्रहीत किया।

प्रखर इस्लामी विद्वानों की दो शाखाओं ने इस्लाम को सही पथ पर रखने के लिये पृथक-पृथक दो विशाल परियोजनाओं पर कार्य प्रारंभ किया। पहली परियोजना सुन्नत एकत्र करने की थी। उसके अंतर्गत लगभग 750 ईसवी में मुस्लिम विद्वान इब्न इस्हाक ने रसूल के पहले आत्मवृत्त संकलन कार्य आरंभ किया। तत्पश्चात् अनेक प्रख्यात मुस्लिम विद्वान व शोधकर्ता मुहम्मद के जीवन पर कष्टसाध्य व कुशल शोध करने के लिये इस क्षेत्र में उतरे। उन्होंने हेज़ाज से सीरिया तक बहुत से लोगों का साक्षात्कार करते हुए समूचे अरब, फारस, मिस्र (इजिप्ट) तक छान मारा और रसूल के हजारों कथनों, कार्यों व कार्रवाइयों का विवरण एकत्र किया। ये हदीस के छह उत्कृष्ट संकलनकर्ता थे और इनके संकलन को प्रामाणिक माना गयाः

1. अल-बुखारी (810-870) ने 7275 प्रामाणिक हदीसों का संग्रह किया, जिसे सही बुखारी कहा गया।
2. मुस्लिम बिन अल-हज़्ज़ाज, बुखारी के शिष्य (821-875) ने 9200 प्रामाणिक हदीस संग्रह किये, जिसे सही मुस्लिम कहा गया।
3. अबू दाऊद (817-888) ने 4800 प्रामाणिक हदीस संग्रहीत किये, जिसे सुन्नत अबू दाऊद कहा गया।
4. अल-तिरमिजी (मृत्यु 892)।
5. इब्न माजाह (मृत्यु 886)।
6. ईमाम नसाई (बी. 215 हिजरी)।

सुन्नत के संकलन के चरण में मेधा-सम्पन्न इस्लामी विद्वानों की एक और शाखा इस क्षेत्र में आयी। उसने इस्लामी समाज के लिये सुपरिभाषित कानूनों के गठन के लिये कुरआनी आयतों और रसूली सुन्नत की सही व्याख्या पर ध्यान केंद्रित किया। इस क्षेत्र

को इस्लामी न्यायशास्त्र (फिक़्ह) के रूप में जाना जाता है। इस क्षेत्र की चार प्रमुख शाखाएं हैं, जिन्हें लब्धप्रतिष्ठित मुस्लिम विद्वानों द्वारा आरंभ किया गया है। ये हैं:

1. हनफी शाखा, इमाम अबू हनीफा (699-767) द्वारा स्थापित, व्यापक रूप से दक्षिण एशिया, मध्य एशिया, तुर्की, बाल्कान, चीन और इजिप्ट के मुसलमानों में प्रचलित।
2. मलिकी शाखा, इमाम मलिक बिन अनस (715-795) द्वारा स्थापित, व्यापक रूप से उत्तरी व पश्चिमी अफ्रीका व अनेक अरब राज्यों के मुसलमानों में प्रचलित।
3. शाफी शाखा, इमाम अल-शाफी (717-795) द्वारा स्थापित, व्यापक रूप से दक्षिणपूर्व एशिया, इजिप्ट, सोमालिया, इरीट्रिया व यमन के मुसलमानों में प्रचलित।
4. हंबाली शाखा, इमाम अहमद इब्न हंबाल (780-855) द्वारा स्थापित, सऊदी अरब व अन्य अरब देशों में प्रचलित।

प्रसिद्ध इतिहासकार इब्न खलदुन के अनुसार, फिक़्ह इस्लाम में आवश्यक (वाजिब), वर्जित (हराम), अनुशंसित (मंदूब), अस्वीकार्य (मकरुख) अथवा केवल अनुमन्य (मुबाह) से संबधित कानूनों के पालन से बंधे हुए लोगों के कार्य-व्यवहार का ज्ञान है।[10] इस्लामी न्यायशास्त्र की चार शाखाओं के संस्थापकों व अनुयायियों ने इस्लामी विधि व बोध के सारसंग्रह की रचना के लिये तीन सदियों से अधिक समय तक व्यापक शोध किया। इस्लामी विधियों व बोध को सामूहिक रूप से इस्लामी पवित्र विधियों अथवा शरिया के रूप में जाना जाता है। कुछ अपवादों को छोड़कर, इस्लामी विधियों की इन शाखाओं में कुछ छोटे-मोटे विवरणों को लेकर ही मत-भिन्नता है, परंतु वास्तविकता यह भी है कि वो मत-भिन्नताएं तत्वतः बहुत कम हैं।

इस्लामी ईश्वर अल्लाह ने इस्लाम को समस्त मानवजाति के जीवन के सम्पूर्ण व अंतिम संहिता के रूप में प्रस्तुत किया था [कुरआन 5:3]। दूसरे शब्दों में कहें, तो इस्लाम अल्लाह द्वारा प्रकट इच्छा के अनुक्रम में मानवजाति के जीवन जीने की विस्तृत नियमावली है। इसलिये, इस्लाम के पास मानव जीवन की प्रत्येक संभावित घटना, स्थिति और कार्य के लिये समाधान अथवा मार्गदर्शिका है। मनुष्य द्वारा जीवन की प्रत्येक स्थिति में अनुपालन के लिये अल्लाह का कानून, प्रोटोकॉल व बोध शरिया के अंतर्गत आता है। शरिया में जीवन की प्रत्येक स्थिति, चाहे भोजन हो, अथवा शौच, स्नान, यौन-संबंध, इबादत, जंग या अन्य कोई परिस्थिति, सब आता है। शरिया में मुसलमान के जीवन का प्रत्येक पक्ष आता हैः आध्यात्मिक, सामाजिक, वित्तीय व राजनीतिक। इस्लाम में आध्यात्मिक (धार्मिक) व सांसारिक पक्षों के मध्य पृथक्करण नहीं है। इस्लाम मानवजाति की सांसारिक समस्याओं का आल-इन-वन समाधान है। इसलिये, तुर्की के विद्वान डॉ. सेदात लैसिनर इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस्लाम केवल एक मजहब नहीं है, अपितु 'यह एक राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रणाली का नाम भी है।'[11] अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एम. उमरुद्दीन इस्लाम और राजनीति के बीच अविभाज्य संबंध देखते हैं। वह कहते हैं कि 'इस्लाम अपने सामान्य शाब्दिक भाव में

---

[10] लेवी आर (1957) द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ इस्लाम, कैम्ब्रिज यूनीसर्विटी प्रेस, यूके, पृष्ठ. 150

[11] लैसिनर एस, द सिविलाइजेशनल डिफरेंसेज ऐज ए कंडीशन फॉर तुर्किश फुल-मेंबरशिप टू द ईयू; तुर्किश वीकली, 9 फरवरी 2005

एक धर्म भर नहीं है। यह विचार पूर्णतया विदेशी है कि धर्म का सामाजिक आचरण से कोई संबंध नहीं होता है और यह केवल मनुष्य के अंतस से संबंधित होता है तथा यूं कहें कि यह विचार इस्लाम का विरोधी है।' वह कहते हैं कि इस्लाम का धर्मशास्त्र संबंधी बोध मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श करता है और 'यह एक सर्वव्यापी प्रणाली, जीवन की सम्पूर्ण संहिता है तथा मानव व्यवहारों के प्रत्येक पक्ष व गतिविधियों के प्रत्येक चरण को समाहित व प्रभावित करता है।'[12] कुल मिलाकर कुरआन और सुन्नत इस्लाम के प्राथमिक घटक हैं। शरिया विधियां इन्हीं दो प्राथमिक स्रोतों से निकली हैं। इस्लामी पंथ के पूर्ण आधार का गठन कुरआन, सुन्नत और शरिया मिलकर करते हैं। ये मुसलमानों के जीवन व उनके समाज के लिये सर्वकालिक, सर्वस्थानिक, अविभाज्य व पूर्ण मार्गदर्शिका हैं।

---

[12] उमरुद्दीन एम (2003) द इथिकल फिलॉसफी आफ अलक-ग़ज़ाली, आदम पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, न्यू देल्ही, पृष्ठ. 307

अध्याय 3

मुहम्मद का जीवन और जिहाद का जन्म

"मैं आतंक से विजेता बनाया गया हूं।'' -- रसूल मुहम्मद, बुखारी 4:52:220

"मुहम्मद (मानव) चरित्र का आदर्श मानक है।'' -- अल्लाह, कुरआन 68:4, 33:21,

अनेक मुसलमान ऐसा मानते हैं कि अल्लाह द्वारा मुहम्मद की रचना ब्रह्मांड निर्मित करने से पूर्व की गयी थी और मानव जाति को अपने अंतिम पंथ का उपदेश देने के लिये उसे सातवीं सदी में उतारना निश्चित किया था। व्यापक रूप से प्रसारित एक सुन्नत के अनुसार, जब पूछा गया कि 'सभी वस्तुओं को बनाने से पूर्व अल्लाह ने सबसे पहले क्या बनाया', तो रसूल मुहम्मद ने उत्तर दिया, 'अल्लाह ने जो सबसे पहली कृति बनायी, वह उसके प्रकाश से बना तुम्हारा रसूल था...।'[13] रसूल मुहम्मद का जीवन, जो सर्वकालिक रूप से मानव जीवन (इंसान-ए-कामिल) के सर्वाधिक संभव पूर्णता वाला है, सद्गुणों से परिपूर्ण एवं किसी भी प्रकार की मलिनता से परे है। मनुष्य के सभी अच्छे लक्षण, चाहे वह यौनिक नैतिकता का लक्षण हो अथवा दयालुता का, उसमें यथासंभव उच्च अंश में थे, जबकि बुरे लक्षण या तो उसमें थे ही नहीं और यदि थे भी, तो यथान्यून अंश में थे। वह त्रुटिहीन व पापहीन था, क्योंकि अल्लाह ने स्वयं उसे पवित्र बनाया थाः 'क्या हमने (अल्लाह) तुम्हारे (मुहम्मद) सीने को खोल नहीं दिया और तुम्हारे भीतर से बोझ (पाप) नहीं उतार दिया' [कुरआन 94:1-2]। वह अत्यंत करुणामय, सच्चा, न्यायोचित, अत्यंत दयावान, अत्यंत उदार एवं अत्यंत सत्यनिष्ठ था, जबकि उसमें क्रूरता व बर्बरता लेशमात्र भी नहीं थी। अल्लाह ने स्वयं यह कहते हुए इस बात की पुष्टि की है, 'और हमने (अल्लाह) तुम्हें (मुहम्मद) एक व्यक्ति भर बनाकर नहीं भेजा है, अपितु तुम्हें संसार के लिये दया के रूप मे भेजा है' [कुरआन 21:107]।

> रसूल मुहम्मद स्वयं यह कहते हुए अपने पास पूर्ण नैतिक चरित्र होने की डींगे हांकता था कि, ''मैं नैतिकता को पूर्ण करने के लिये भेजा गया हूं।'' महान इस्लामी विद्वान व पुनरुत्थानवादी इमाम अल-गज़ाली (मृत्यु 1111), जिसे मुहम्मद के बाद सबसे बड़ा मुस्लिम विद्वान माना जाता है, 'रसूल को जीवन के सभी पक्षों में आदर्श एवं उत्कृष्टता में सम्पूर्ण पुरुष मानता था।' रसूल के व्यक्तित्व के लक्षणों की महानता के विषय में अल-गज़ाली ने लिखाः रसूल उच्चतम नैतिक लक्षण व उदार चरित्र प्रदान करने के लिये कृतज्ञता प्रकट करते हुए अल्लाह की इबादत सदैव पूरी विनम्रता से करते थे। वह मनुष्यों में विनम्रता के सागर, महानतम, सबसे साहसी,

[13] हद्दाद जीएफ, द फर्स्ट थिंग दैट अल्लाह क्रियेटेड वाज माय नूर, लिविंग इस्लाम वेबसाइट;
http://www.livingislam.org/fiqhi/fiqha_e30.html

> सबसे न्यायप्रिय और सबसे पवित्र व्यक्ति थे... रसूल ने एक मुक्त अथवा उत्पीड़ित नागरिक के रूप में, एक शौहर के रूप में, एक मुखिया के रूप में और एक विजेता के रूप में जो उच्च मानक स्थापित किये, उनसे पूर्व अथवा पश्चात कोई मनुष्य वहां तक नहीं पहुंच सका।[14]

इस प्रकार रसूल मुहम्मद मानव जाति के प्रति अच्छाई, न्याय और दया की सबसे महान अनुकृति था। उसने अपने जीवन में जो किया, वह सर्वोत्तम था; उसने मुस्लिमों अथवा अ-मुस्लिमों से जो व्यवहार किया, वह सबसे उचित और सर्वाधिक दयालुताभरा था। इस अध्याय में रसूल मुहम्मद के जीवन की संक्षिप्त पड़ताल की जाएगी, विशेष रूप से अरब के मूर्तिपूजक, यहूदी व ईसाई आदि उन अ-मुस्लिमों के साथ उसके व्यवहार को परखा जाएगा, जिनसे उसका जीवन में आमना-सामना होता था। बार-बार यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मुसलमान निर्विवाद रूप से मानते हैं मुहम्मद ने उन अ-मुस्लिमों के साथ जो व्यवहार किया था, वह प्रत्येक पक्ष में पूर्णतः उचित, न्यायप्रद व दयालुताभरा था।

इस अध्याय में मुहम्मद द्वारा इस्लामी पंथ की स्थापना के क्रम में अल्लाह द्वारा प्रकट किये गये इस्लाम के जिहाद के सिद्धांत का निर्वचन विस्तार से किया जाएगा। इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात पाठक अल्लाह द्वारा बताये गये जिहाद का सही अर्थ समझ सकेंगे और व्यवहारिक ढंग से उस जिहाद के मॉडल को समझ सकेंगे, जिसे रसूल मुहम्मद ने अल्लाह के आदेश के सम्पूर्ण अनुपालन में स्थापित किया था।

जन्म व आरंभिक जीवन (570-610 ईसवी)

इस्लाम के रसूल का जन्म लगभग 570 ईसवी (सी. 567-72) में अरबी रेगिस्तान स्थित मक्का नगर के एक कुरैश परिवार में हुआ। कुरैश उस नगर की मुख्य जनजाति (कबीला) थी। रेगिस्तानी घाटी में मक्का एक रणनीतिक स्थान पर था, जहां से होकर दो बड़े व्यापारिक मार्ग जाते थे। इन दो व्यापारिक मार्गों में एक हिम्यार को फिलिस्तीन और सीरिया से जोड़ता था, जबकि दूसरा यमन, फारस की खाड़ी व ईराक से जुड़ता था। इस रणनीतिक स्थिति के कारण मक्का हिंद महासागर (पूर्वी अफ्रीका समेत) और भूमध्य सागर के बीच व्यापार-कारवां का बड़ा पारगमन बिंदु था। मक्का से होकर इजिप्ट, सीरियाई, रोमन, बैजेंटाइन, फारस व भारतीय केंद्रों तक बड़े परिमाण में व्यापार होता था। इस प्रकार यह व्यापार व वाणिज्य का जगमगाता केंद्र था और व्यापारिक-कारवाओं द्वारा जल व अन्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति-सामग्री एकत्र करने के लिये ठहरने का पारंपरिक स्थान था। परिणामस्वरूप, इस क्षेत्र की दोनों शक्तियां फारस व बैजेंटाइन साम्राज्य मक्का के नेताओं से गठबंधन कर इस पर नियंत्रण करना चाहती थीं।[15]

---

[14] उमरुद्दीन (2003) द एथिकल फिलॉसफी आफ अल-गज़ाली, आदम पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ. 66-67

[15] वॉकर बी (2002) फाउंडेशन आफ इस्लाम, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृष्ठ 37

मक्का में महत्वपूर्ण पद ग्रहण करने वाले पहले कुरैश व्यक्ति क़ुशैय बिन किलाब थे। लगभग 450 ईसवी में उन्होंने बैंजेंटाइन सम्राट के समर्थन वाली जनजाति के साथ मिलकर वहां शासन कर रही खुज़ा जनजाति को सत्ता से हटाया और मक्का में कुरैश नेतृत्व स्थापित किया। उन्होंने मक्का के शासन और काबा के पवित्र मंदिर के प्रशासन के लिये नियम व विधियां स्थापित कीं। कहा जाता है कि उन्होंने ईश्वर के पवित्र घर काबा के उस मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया। पूर्व के प्रशासकों ने उस मंदिर को लंबे समय से उपेक्षित रखा था। उन्होंने काबा के मंदिर को भव्य बनाया और उसमें नबेतियाइयों की देवियों अल-लात, अल-उज़्ज़ा व अल-मन्नत की पुनः प्राण प्रतिष्ठा करायी। मूर्तिपूजक अरब परंपरा में ये देवियां ईश्वर (हुबाल) की बेटियों के रूप में जानी जाती थीं।

दैनिक जीवन में मुहम्मद के माता-पिता कठिनाइयों का सामना कर रहे थे। उसके पिता अब्दुल्ला की मृत्यु के समय उसकी अम्मी अमीना छह माह की गर्भवती थी। उसके पिता अब्दुल्ला की मृत्यु के पश्चात उसकी अम्मी अमीना की कठिनाई और बढ़ गयी होगी। मक्का के सम्पन्न व्यक्तियों में अपना नवजात बच्चा दत्तक माता को देकर उसकी देखभाल कराने की परंपरा थी।[16] एक सप्ताह के मुहम्मद को हलीमा नाम की एक बद्दू (घुमंतू) महिला को देखभाल के लिये दे दिया गया, क्योंकि अमीना के पास दत्तक-माता का व्यय वहन करने के लिये बहुत धन नही था।[17] हलीमा मुहम्मद को ले गयी और उसी के आयु के अपने बेटे के साथ उसका लालन-पालन किया। हलीमा चार वर्ष के मुहम्मद को उसकी अम्मी अमीना से मिलाने लायी। चूंकि कथित रूप से मुहम्मद के आने से उसके दत्तक माता-पिता का भाग्य परिवर्तित हो गया था, इसलिये वे उसे बड़े होने तक अपने पास रखना चाहते थे। तद्नुसार हलीमा मुहम्मद को पुनः अपने साथ ले गयी। किंतु जब मुहम्मद पांच वर्ष का था, तो उसने आश्चर्यजनक रूप से उसे अमीना के पास वापस भेज दिया। ऐसी कहानी गढ़ी गयी है कि उसे अमीना को वापस करते हुए हलीमा ने मुहम्मद के साथ हुई विचित्र घटना को बताते हुए कहा, ''सफेद वस्त्रों में दो व्यक्ति मुहम्मद के पास आये और उसे नीचे फेंक दिया तथा उसके पेट को खोलकर उसमें कुछ ढूंढ़ा।''[18] बाद में अल्लाह द्वारा इस घटना का वर्णन यूं किया गया कि उसने मुहम्मद के पापों को धोकर उसे पवित्र किया था [कुरआन 94:1-2]। इस दावे को सही ठहराने के लिये मुहम्मद अपने स्कंधास्थि (कंधे की हड्डी) के ऊपर एक नये चिह्न को दिखाया करता था; वही चिह्न बाद में उसकी पैगम्बरी के सील (मुहर) के रूप में प्रचारित की गयी (सही बुखारी 4:741, तिरमिजी 1524)।

अमीना ने मुहम्मद का ध्यान रखा। इसके कुछ समय बाद वह मुहम्मद को मक्का से 210 मील उत्तर दिशा में दस-बारह दिन की यात्रा की दूरी पर स्थित मदीना ले आयी। मदीना की खज़रज़ जनजाति का संबंध मुहम्मद से था, क्योंकि उसकी परदादी उसी से संबंधित थीं। दुर्भाग्य से जब उसकी अम्मी मक्का से लौट रही थीं, तो उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय मुहम्मद मात्र छह वर्ष का था। इसके बाद अनाथ मुहम्मद का पालन-पोषण उसके बाबा अब्दुल मुत्तालिब ने किया। अब्दुल मुत्तालिब की मृत्यु के पश्चात

---

[16] मुईर डब्ल्यू (1894) द लाइफ आफ महोमेत, लंदन, पृष्ठ 129-30

[17] इब्न इस्हाक, द लाइफ ऑफ मुहम्मद, अनुवाद ए गिलाउमे, आक्सफोर्ड प्रेस, कराची, 2004 इम्प्रिंट, पृष्ठ 71

[18] इबिद, पृष्ठ 71-72

उसके चाचा अबू तालिब ने उसकी देखभाल की। किंतु तब भी उसे कठिन समय देखना पड़ा और उसने अत्यंत कम आयु में चरवाहे का काम प्रारंभ कर दिया। वह पशुओं को चराते हुए एकाकी जीवन व्यतीत करता था।

छब्बीस वर्ष की अवस्था में मुहम्मद की शादी मक्का की 40 वर्षीय धनी व्यापारी खदीजा से हुई। इसके बाद से उसका भाग्य नाटकीय ढंग से परिवर्तित हो गया तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। खदीजा ने पहले मुहम्मद को अपना व्यापार देखने के लिये नौकर रखा था। ऐसा कहा जाता है कि उस व्यापार को लाभ के साथ चलाते हुए उसने शीघ्र ही अपने स्वामी (खदीजा) को प्रभावित कर लिया। खदीजा ने अपने से पंद्रह वर्ष छोटे इस युवा, बुद्धिमान व योग्य व्यक्ति से प्रभावित होकर उसके समक्ष शादी का प्रस्ताव रखा।[19] खदीजा के एक वयोवृद्ध चचेरे भाई वारका बिन नौफल थे। नौफल धार्मिक विश्वासों में लचीले थे। एकेष्वरवाद से प्रभावित होकर उन्होंने पहले यहूदी धर्म अंगीकार किया और उसके बाद ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया।[20] एक हदीस (बुखारी 4:605) के अनुसार, 'नौफल एक धर्मांतरित ईसाई थे और अरबी में गॉस्पेल सुनाया करते थे।' वारका के निकट सम्पर्क में रहकर खदीजा भी एकेश्वरवाद और विशेष रूप से ईसाई धर्म से प्रभावित हो गयी। जबकि मुहम्मद अपनी कुरैश जनजाति के बहुदेववादी धर्म के मूर्तिपूजक अनुष्ठानों का अनुसरण किया करता था। किंतु शादी ने उसे वारका और खदीजा के निकट ला दिया और अचानक मुहम्मद ने मूर्तिपूजा छोड़ दी तथा एकेश्वरवादी यहूदी व ईसाई धर्मशास्त्रों में रुचि लेने लगा। कहा जाता है कि शादी के कुछ दिन बाद मुहम्मद ने उस वर्ष कुछ समय मक्का के निकट हीरा की पहाड़ियों के एक खोह में बिताया। यह वही खोह है, जहां उसके प्रिय बाबा रमजान के पवित्र मास में ध्यान लगाते थे। मक्का के एकेश्वरवादी पंथ (नीचे देखें) हनफी समुदाय के लोगों में इस प्रकार खोहों में जाकर ध्यान लगाने की सामान्य परंपरा थी। इस्लामी सुन्नत कहती है कि मुहम्मद ईश्वर की खोज में इस खोह में समय व्यतीत करता था। कहानी गढ़ी गयी है कि 15 वर्ष के ध्यान के पश्चात मुहम्मद को अल्लाह की ओर से एक नये मजहब इस्लाम का उपदेश देने का संदेश प्राप्त हुआ।

यह कहानी ठीक वैसी ही है, जैसे कि यहूदी परंपरा के मूसा के बारे में कहा जाता है कि वह सिनाई की पहाड़ियों के एक खोह में ध्यान लगाता था और वहीं ईश्वर (जेहोवा/याह्या) से संवाद करता था। मुहम्मद संभवतः मूसा की इस कहानी से प्रेरित था। इस्लामी साहित्य में ऐसे संदर्भ भी हैं, जो हमें बताते हैं कि मुहम्मद उस खोह में अकेले समय नहीं व्यतीत करता था, अपितु कभी-कभी वहां उसके साथ उसकी बीवी खदीजा और वारका भी जाते थे। इस्लामी साहित्य यह भी बताते हैं कि वारका के संपर्कों से मुहम्मद अपने ध्यान की अवधि के बाद के समय और अपने पैगम्बरी मिशन के आरंभिक दिनों में प्रायः यहूदी रब्बियों व ईसाई पुरोहितों से मिलता रहता था। ऐसा माना जाता है कि वह उन दिनों लोगों की दृष्टि से दूर रहकर हीरा पहाड़ी की खोह में

[19] ध्यान रहे कि विधवा खदीजा अपने व्यापार को चलाने के लिये योग्य नौकर ढूंढ़ रही थी। जब मुहम्मद अपने चाचा अबू तालिब के साथ एक व्यापारिक यात्रा पर दूसरे देश गया था, तो खदीजा के भतीजे खुज़ैमा की मुहम्मद से भेंट हुई थी। बारह वर्ष की आयु से ही अपने चाचा के व्यापारिक कारवां के साथ विभिन्न स्थानों पर जाकर मुहम्मद ने जो सीखा था, खुज़ैमा ने उस व्यापारिक प्रतिभा को ताड़ लिया था। खुज़ैमा ने बाद में मुहम्मद का परिचय खदीजा से इस उद्देश्य से कराया कि वह उसे अपना व्यापार चलाने के लिये नौकर रख ले।

[20] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 83

एकेश्वरवादी यहूदी व ईसाई धर्मशास्त्र के ग्रंथों से परिचित होता रहता था। संभवतः इसका उद्देश्य यह था कि वह मक्का के बहुदेववादी मूर्तिपूजकों के बीच इन दोनों अब्राहमिक मतों के ईश्वर के अस्तित्व का उपदेश देने के लिये स्वयं को तैयार करना चाहता था।

मक्का में पैगम्बरी मिशन (610-622)

इस पृष्ठभूमि में हीरा की पहाड़ी के खोह में 15 वर्ष तक ध्यान करने के बाद मुहम्मद ने एक दिन (40 वर्ष की अवस्था में, 610 ईसवी) में दावा किया कि उसने एक ऐसा अदृश्य स्वर सुना है, जो उसे कुछ संदेश दे रहा था।[21] उसकी बात पर विश्वास करने वाली पहली व्यक्ति उसकी बीवी खदीजा और खदीजा का चचेरा भाई वारका था। इन दोनों ने भ्रमित मुहम्मद को यह कहकर समझाया कि अल्लाह ने उसे नये मजहब का उपदेश देने के लिये फरिश्ता जिबराइल के माध्यम से संवाद स्थापित किया था। एक सुन्नत के अनुसार, वारका ने मुहम्मद से कहाः 'वह वही फरिश्ता है, जिसे अल्लाह ने पैगम्बर मूसा के पास भेजा था। जब तुम्हें ईश्वर का संदेश मिलेगा, तो उस समय यदि मैं जीवित रहा, तो दृढ़ता से तुम्हारा समर्थन करूंगा' [बुखारी 4:605]। यद्यपि वारका ने कभी इस्लाम स्वीकार नहीं किया और एक ईसाई व्यक्ति के रूप में ही उनकी मृत्यु हुई।

मुहम्मद ने अपने एकेश्वरवादी ईश्वर को अल्लाह नाम दिया- अल्लाह अरब के मूर्तिपूजकों के प्रमुख देवता का नाम था[22], और यह नाम उस क्षेत्र में सामान्य रूप से ईश्वर के लिये प्रयोग किया जाता था। अपने अल्लाह के मिशन के बारे में सार्वजनिक रूप से बताने से पूर्व प्रथम तीन वर्षों तक मुहम्मद अपने कथित ईश्वरीय संदेश को अपने निकट सहयोगियों, मित्रों व परिवार के सदस्यों को सुनाता रहा। उन संदेशों में वह दावा करता था कि स्थानीय मूर्तिपूजक परंपरा में जिस काबा को ईश्वर का गृह माना जाता है, वह उसके अल्लाह का अनन्य स्थान है। उसने दावा किया कि काबा की स्थापना यहूदी कुलपिता अब्राहम और उसके बेटे इस्माइल द्वारा की गयी थी। ये दोनों इस्लाम में उच्च प्रतिष्ठित पैगम्बर माने जाते हैं। उसने अपने नये पंथ को अब्राहम का धर्म बताया और मक्का के बहुदेववादियों से आह्वान किया कि वे मूर्तिपूजा त्यागकर उसके पंथ का पालन करें। नीचे बताया गया है कि किस प्रकार मुहम्मद ने मांग की कि मक्का के मूर्तिपूजक उसके पंथ का पालन करें और दावा किया कि काबा उसके अल्लाह का हैः

> फिर इसके पश्चात् जो अल्लाह पर मिथ्या आरोप लगायें, तो वही पापी हैं। उनसे कह दो, अल्लाह सच्चा है, अतः अब आगे से तुम एकेश्वरवादी इब्राहीम के धर्म पर चलो तथा जान लो कि वह मूर्तिपूजकों में से नहीं थे। निस्संदेह मानवजाति के लिये (अल्लाह के मार्गदर्शन का केंद्र) जो पहला बनाया गया, वह वही है, जो मक्का में है, जो शुभ तथा संसारवासियों के लिए मार्गदर्शन है। उसमें (अल्लाह के मार्गदर्शन के) स्पष्ट चिह्न हैं, (जिनमें) अब्राहम प्रार्थना के लिये खड़े हुए थे; और जो कोई उस (की सीमा) में प्रवेश कर गया, वह सुरक्षित हो गया। तथा अल्लाह के लिए लोगों पर इस स्थान की तीर्थयात्रा का कर्तव्य है, जो उस तक मार्ग पा सकता हो।

---

[21] इबिद, पृष्ठ 111

[22] मुहम्मद के अब्बा का नाम अब्दुल्लाह था, जिसका अर्थ होता है अल्लाह का सेवक

और जो अल्लाह पर विश्वास नहीं करेगा अर्थात कुफ्र करेगा, तो (उसे बता दो) देखो! अल्लाह (सभी) प्राणियों से निस्पृह (स्वतंत्र) है [कुरआन 3:94-97]।

स्वाभाविक है कि मुहम्मद के इस नाटक से मक्का के पवित्र कुरैशों में अप्रसन्नता हुई थी। उनमें से अधिकांश ने मुहम्मद के मजहब को दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने काबा का अधिकार भी उसे (मुहम्मद) नहीं सौंपा। मक्का में तीस वर्ष तक उपदेश देने के बाद भी मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या मुट्ठी भर थी और कुल मिलाकर 100-150 लोग ही उसके मजहब में साथ आये। 622 ईसवी में उसने एक कहानी गढ़ी कि कुरैशों ने उसे मक्का से भगा दिया। जून 622 ईसवी में वह मदीना चला गया। मदीना में स्वयं को सुरक्षित करने के बाद उसने अगले आठ वर्षों तक कुरैशों के धर्म व आजीविका को नष्ट करने के लिये क्रूर मिशन चलाया। 630 ईसवी में उसने मक्का जीत लिया और काबा पर अधिकार कर लिया, वहां की मूर्तियों को नष्ट कर दिया और अंततः मक्का के मूर्तिपूजकों को मृत्युतुल्य कष्ट देकर इस्लाम स्वीकार करने पर बाध्य कर दिया।

आगे बढ़ने से पूर्व, आइये पहले हम मक्का से मुहम्मद के प्रस्थान एवं कुरैशों की क्रूरता व असहिष्णुता के बारे में सुनायी जाने वाली उन कहानियों का परीक्षण करते हैं, जो मुस्लिम समाजों में प्रचलित हैं।

क्या मुहम्मद को मक्का से भगाया गया था?

मुसलमान निर्विवाद रूप से यह मानते हैं कि कुरैशों ने 622 ईसवी में मुहम्मद और उसके अनुयायियों को मक्का से भगा दिया था और उन्हें मदीना में रहने को विवश कर दिया था- यह घटना हिज़रा या हिज़रत के रूप में प्रसिद्ध है। इस कहानी के अनुसार, कुरैशों ने उनके प्रिय रसूल को मारने के लिये हत्यारे भेजे थे। फरिश्ता जिबराइल द्वारा इसकी सूचना दिये जाने के बाद मुहम्मद अपने विश्वस्त अनुयायी व मित्र अबू बक्र के साथ मक्का से भाग निकला। जब हत्यारों ने इन दोनों का पीछा किया, तो ये दोनों मक्का से लगभग एक घंटे की दूरी पर स्थित सोर पहाड़ी की एक खोह में छिप गये। जब तक पीछा करने वाले उस खोह तक पहुंचते, कबूतरों ने उसके मुहाने पर घोसला बना दिया, उसमें अंडे रख दिये और मकड़ियों ने जाला बुन दिया। यह देखकर पीछा करने वालों ने सोचा कि उस खोह में कोई नहीं गया होगा और वहां से चले गये। इसके बाद मुहम्मद और अबू बक्र वहां से रात के अंधेरे में निकले तथा 12 दिन की यात्रा करने के बाद मदीना पहुंचे। यह कहानी इस्लामी लोककथाओं व साहित्यों में मुहम्मद को बचाने वाले अल्लाह के चमत्कार के रूप में सुनायी जाती है।

भले ही कुरैशों द्वारा मुहम्मद की हत्या के प्रयास की कहानी इस्लामी साहित्य में लोकप्रिय बना हुआ है और मुसलमानों को इस कहानी पर अगाध विश्वास भी है, परंतु बहुत से ऐसे कारण हैं, जिनके आधार पर माना जा सकता है कि इस कहानी की पुष्टि के लिये विश्वसनीय प्रमाण न के बराबर हैं। पहली बात तो यह है कि मक्का में मुहम्मद जब अपना पैगम्बरी मिशन चला रहा था, तो उसकी जनजाति के समुदाय में लोगों का दूसरे देश चले जाना या जाने का प्रयास करना अपेक्षाकृत सामान्य था। चूंकि मुहम्मद अनवरत् मक्कावासियों के धर्म, परंपराओं व संस्कृति का अपमान किये जा रहा था, इसलिये 615 ईसवी आते-आते मुहम्मद के मिशन का विरोध बढ़ गया था। इससे उसके लिये अपने नये मजहब के प्रचार की गतिविधियां चलानी तनिक कठिन हो गयी। जो गिने-चुने लोग मुहम्मद के अनुयायी बने भी थे, उनके परिवार वाले उन्हें अपने पूर्वजों के धर्म में वापस लौटने के लिये समझा-बुझा रहे थे।

महानतम इस्लामी इतिहासकार अल-तबरी के अनुसार, कुरैश कुछ धर्मांतरित मुसलमानों को मूर्तिपूजा की ओर वापस लौटा ले जाने में सफल रहे थे, 'परीक्षा की ऐसी घड़ी जिसने इस्लाम के लोगों को हिला दिया था... ।'[23] इस आशंका से कि वे सब अपने मूल धर्म में वापस लौट जाएंगे, मुहम्मद ने 'उन्हें अबीसीनिया चले जाने का आदेश दिया।' इस आदेश के बाद उसके लगभग एक दर्जन अनुयायी, जिन पर अपने पूर्वजों के धर्म में आने का अधिक दबाव था, गोपनीय ढंग से अपने परिवारों को छोड़कर छोटे-छोटे समूहों में अबीसीनिया (इथोपिया) निकल गये। 616 ईसवी में, प्रवासन की दूसरी लहर चली। विभिन्न अनुमानों के अनुसार, मुहम्मद के 82-111 अनुयायी मक्का छोड़कर अबीसीनिया गये थे। ये स्व-निर्वासित अनुयायी मक्का लौट आये और इसके छह माह से तेरह वर्ष के बाद मदीना चले गये। उनमें से कुछ ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था और ईसाई धर्मावलंबी के रूप में अबीसीनिया में पूरा जीवन बिताया। ऐसा लगता है मुहम्मद द्वारा उन्हें अबीसीनिया भेजने के पीछे दो कारण थे। पहला तो यह कि वह उन्हें अपने पूर्वजों के धर्म में वापस लौटने से रोकना चाहता था और दूसरा कारण यह था कि यदि उसे कहीं और जाकर रहना पड़े, तो ऐसी स्थिति के लिये वह पहले से ही एक ठिकाना बनाकर तैयार रखना चाहता था। मुहम्मद ने ऐसा इस कारण किया होगा, क्योंकि मक्का में उसका मिशन विफल हो गया था।

मुहम्मद द्वारा कुरैशों के धर्म व परंपराओं का अपमान बढ़ता जा रहा था और उसकी अवज्ञा व ढिठाई बढ़ती जा रही थी। इससे रुष्ट होकर कुरैशों ने 617 ईसवी में मुहम्मद के समूह का सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार कर दिया। यद्यपि, दो वर्ष बाद यह बहिष्कार हटा लिया गया। बहिष्कार तो हटा लिया गया था, किंतु मुहम्मद का पैगम्बरी मिशन लगभग ठहर गया था, क्योंकि उसके लिये सार्वजनिक रूप से अपना मजहब फैलाना करना लगभग असंभव हो गया था। इन परिस्थितियों में वह 619 ईसवी में नया ठिकाना ढूंढ़ने ताइफ गया। मुहम्मद और कुरआन दोनों ने ताइफ वासियों की मुख्य देवी अल-लात का पहले ही अपमान किया था। फिर भी ताइफ के लोगों ने मुहम्मद के नये समुदाय के प्रवेश का प्रतिरोध नहीं किया।

ताइफ में उसने लोगों से कहा कि वे अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ दें और उसके पंथ में सम्मिलित हो जाएं। इससे भी महत्वपूर्ण यह था कि उसने ताइफ के लोगों को कुरैशों के प्रति शत्रुता पालने के लिये उकसाया, जबकि कुरैशों के साथ ताइफ के लोगों के अच्छे व्यापारिक संबंध थे। मुहम्मद वहां दस दिन तक ठहरा और वहां के अगुवा लोगों से मिलकर उन्हें अपने मजहबी मिशन और कुरैश-विरोधी षडयंत्र में सम्मिलित होने के लिये उन्हें भड़काता रहा। ताइफ के इस मिशन का वर्णन इब्न इस्हाक इस प्रकार करता है: 'रसूल उनके साथ बैठे और उन्हें इस्लाम में आने को आमंत्रित किया तथा उनसे अपने गृह (मक्का) के अपने विरोधियों के विरुद्ध सहायता करने को कहा।' किंतु वह अपने पैगम्बरी और कुरैश-विरोधी द्वि-धारी मिशन के लिये ताइफ से कुछ भी पाने में विफल रहा। इससे निराश मुहम्मद बहुत भयभीत हो गया कि वह मक्का लौटा, तो कुरैशों की ओर से वैर और बढ़ जाएगा। इसी भय के कारण उसने ताइफ छोड़ने से पूर्व वहां के लोगों से निवेदन किया: 'आप लोगों को जो करना था, वही किया,

---

[23] अल-तबरी (1988) द हिस्ट्री आफ अल-तबरी, अनुवाद डब्ल्यूएम वाट एंड एमवी मैकडोनाल्ड, स्टेट यूनीवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क प्रेस, अंक. 6, पृष्ठ 45

अब कृपया इस प्रकरण को गुप्त ही रखें।'[24] परंतु किसी प्रकार यह समाचार मक्का पहुंच गया। तब भी कुरैशों ने मुहम्मद पर कोई विशेष क्रोध नहीं दिखाया और जब वह मक्का लौटा, तो उसे कुरैशों की ओर से किसी प्रकार की शत्रुता का सामना नहीं करना पड़ा।

619 ईसवी में मुहम्मद का ताइफ चले जाने और अपने अनुयायियों को अबीसीनिया भेजने की इन दो घटनाओं को देखते हुए यह विश्वास करना कठिन है कि कुरैशों ने उसकी हत्या का प्रयास किया और मदीना भागने पर विवश किया। जैसा कि नीचे बताया गया है कि 620 ईसवी में ही मुहम्मद के मदीना चले जाने की उत्सुकता उसके हत्या के दावे को और अविश्वसनीय बनाती है।

मक्का में उसका मिशन थम गया था, तो मुहम्मद 620 ईसवी के वर्ष की तीर्थयात्रा के लिये मदीना से मक्का आने वाले लोगों से मिलने लगा और उन्हें अपना पंथ समझाने लगा। उनमें से छह लोग उसके पंथ इस्लाम में धर्मांतरित हो गये। मक्का में अपने मिशन की कठिनाई बताते हुए मुहम्मद ने उनके समक्ष स्वयं की मदीना जाने की इच्छा प्रकट की और उनसे पूछा कि क्या वो लोग मदीना में उसकी रक्षा करने में समर्थ हैं।[25] किंतु उन धर्मांतरितों ने मदीना की दो जनजातियों के मध्य चल रहे भयानक संघर्ष को देखते हुए उसे मदीना आने से रोक दिया और कहा कि सही समय आने तक वह मदीना आने की अपनी योजना टाल दे।

अगले वर्ष हज के समय बारह व्यक्ति, जिनमें पिछले वर्ष के वो 6 लोग भी थे, मुहम्मद से गोपनीय रूप से एक स्थान पर मिले। उन्होंने उसके दीन के प्रति निष्ठा प्रकट की। इस्लामी इतिहास में यह घटना अक़बा की प्रथम प्रतिज्ञा के नाम से जानी जाती है।[26] मुहम्मद ने नये धर्मांतरितों को अपना दीन सिखाने के लिये मक्का के अपने अनुयायी मुसाब इब्न उमैर को उनके साथ भेजा।

मदीना में मुहम्मद के मजहब के विस्तार में मुसाब का प्रयास रंग लाया। अगले वर्ष (622) मुसाब के साथ मदीना के पचहत्तर नागरिक (तिहत्तर आदमी और दो औरत) हज यात्रा के लिये मक्का गये और उन्होंने अकबा में मुहम्मद के साथ पुनः गुप्त बैठक की। उस बैठक में मुहम्मद के साथ उसका चाचा अल-अब्बास भी गया था। बैठक में अब्बास ने मुहम्मद के मदीना जाकर रहने की इच्छा की घोषणा करते हुए बोला कि वैसे तो रसूल के अपने लोग और अनुयायियों के बीच मक्का में सुरक्षित हैं, 'किंतु वह (मुहम्मद) आप लोगों की सुरक्षा में मदीना में रहने को वरीयता देते हैं...। यदि आप लोग उनकी रक्षा के लिये प्रतिबद्ध हों और इस काम में समर्थ हों, तो वचन दीजिए। पर यदि आप लोगों को अपने सामथ्र्य पर संदेह है, तो इस योजना को तुरंत छोड़ दें।' इस पर मदीना के धर्मांतरितों (मुसलमानों) ने कहा: 'आपने जो कहा, उसे हमने सुना। हे रसूल, आप अपने और अपने अल्लाह के लिये जो चाहें मांग लें। तब मुहम्मद बोला और यह कहते हुए अपनी बात समाप्त किया कि 'मैं आप लोगों से ऐसी निष्ठा चाहता हूं कि आप लोग मेरी रक्षा वैसे ही करोगे, जैसे कि आप अपनी स्त्रियों और बच्चों की करते हैं। इस पर अल-बारा (मदीना का धर्मांतरित) ने

---

[24] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 192-93

[25] मुईर, पृष्ठ 114

[26] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 198-99

अपना हाथ उठाया और बोलाः 'उस अल्लाह की कसम, जिसने आपके ऊपर सत्य भेजा है, हम आपकी रक्षा वैसे ही करेंगे, जैसे कि हम अपनी औरतों की करते हैं। हम अपनी निष्ठा प्रकट करते हैं और हम वो जंगी कौम हैं, जिसमें पिता अपने बेटे को हथियार पकड़ाता है।' इस्लाम में अंसार अर्थात सहायक कहे जाने वाले मदीना के उन धर्मांतरितों की यह प्रतिज्ञा अक़बा की द्वितीय प्रतिज्ञा कही जाती है।[27]

इस घटना से स्पष्ट पता चलता है कि उस समय (622) मक्का में मुहम्मद पर कोई खतरा नहीं था। तब भी वह 620 ईसवी में ही अपनी इच्छा से मदीना चले जाने को उत्सुक था। 622 में मदीना जाने से कुछ मास पूर्व उसने अपनी सुरक्षा के लिये मदीना के अपने धर्मांतरित मुसलमानों से प्रतिज्ञा करवायी। इसलिये यह प्रश्न उठता है कि जब वह मदीना जाने के लिये स्वयं ही इतना उतावला था, क्योंकि उसे वहां उसे अपने मजहब के प्रसार का भविष्य अच्छा दिख रहा था, तो किसी को उसे मक्का से भगाने की आवश्यकता क्या थी? इसके अतिरिक्त मई 622 में मदीना निकलने से पूर्व अप्रैल में ही उसने अपने अनुयायियों को मदीना चले जाने का आदेश दिया था और उसके आदेश पर अगले दो माह में वे छोटे-छोटे समूह में मदीना चले गये थे। मुहम्मद और उसके विश्वस्त साथी अबू बक्र व उनके परिवारों ने सबसे अंत में मक्का छोड़ा था। इन परिस्थितियों में निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार होना चाहिएः

1. मदीना जाने के उतावलेपन और मदीना जाने के बाद अपनी सुरक्षा की गारंटी मांगने के पीछे मुहम्मद का उद्देश्य क्या था?
2. उसने अपने प्रस्थान से एक मास पूर्व ही अपने अनुयायियों को मदीना क्यों भेजा?
3. जिस मक्का में उसका पैगम्बरी मिशन ठहर गया था, वहां वह अकेले क्या करने जा रहा था?

ये परिस्थितियां और साक्ष्य, जो सबसे प्रामाणिक व विश्वसनीय इस्लामी स्रोतों से पता चलते हैं, स्पष्ट रूप से बताते हैं कि मुहम्मद मदीना ने बड़े उत्साह के साथ मदीना जाने का निर्णय किया था। इसलिये, किसी को उसे मक्का से भगाने अथवा उसकी हत्या करने की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि वह तो अपनी इच्छा से ही मक्का छोड़कर जा रहा था, जिससे कुरैश पिछले तेरह वर्षों से मुहम्मद द्वारा किये जा रहे जिस अपमान, यातना और सामाजिक व पारिवारिक कलह को झेल रहे थे, उन सबका अंत अपने आप ही हो जाता। इसके अतिरिक्त मुहम्मद के मदीना चले जाने के बाद भी उसका चेला (जो बाद में उसका दामाद बना) अली अबू बक्र की बीवी और उसकी बेटी आयशा (जिसकी शादी मुहम्मद से होनी थी) कई दिनों तक मक्का में रहे और उन्हें कुरैशों की ओर से कोई बड़ी क्षति नहीं पहुंचायी गयी, न ही उनका उत्पीड़न किया गया।

इस्लामी इतिहासकार इब्न इस्हाक हमें बताता है कि कुरैशों ने समझा: 'मुहम्मद (मदीना में) अपने कबीले के बाहर के लोगों में अनुयायी पा गया है, (और) वे (कुरैश) अब सुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि उन पर अचानक हमला हो सकता है।' तब उन्होंने मुहम्मद को लोहे के सीखचों के पीछे बंद कर देने, उसे मार भगाने या उसकी हत्या करने पर विचार किया और अंतिम विकल्प

[27] इबिद, पृष्ठ 204; मुईर, पृष्ठ 129-30

अपनाने का निर्णय किया।[28] किंतु यह बात किसी भी बुद्धि या तर्क से गले के नीचे नहीं उतरती कि यदि क्रूर कुरैश (जैसा कि इस्लामी साहित्य में उन्हें बताया गया है) मुहम्मद का प्राण लेने पर उतारू थे, तो चामत्कारिक रूप से रातों-रात बचकर उसके निकल जाने के बाद उन्होंने मक्का में रह गये अली व मुहम्मद के परिवार की महिलाओं एवं अबू बक्र के परिवार की महिलाओं को प्रताड़ित क्यों नहीं किया। उन्होंने इन दोनों के परिवार वालों न तो बंदी बनाया, न उत्पीड़न किया और न ही दास बनाया, जबकि वे ऐसा करके अबू बक्र व मुहम्मद को आत्मसमर्पण के लिये विवश कर सकते थे। किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ, अपितु मुहम्मद के सफलतापूर्वक निकल जाने के बाद, तल्हा जो पहले ही मदीना चला गया था, मक्का लौटकर आया और ऐसी सहजता से अबू बक्र व मुहम्मद के परिवार के सदस्यों को ले गया कि मानों कुछ हुआ ही न हो।[29]

इन तथ्यों से इस बात पर विश्वास कर पाना लगभग असंभव हो जाता है कि कुरैशों ने मुहम्मद की हत्या का प्रयास किया था अथवा उसे मक्का से भगाया था। यहां तक कि अल्लाह ने भी मुहम्मद के मिशन की सफलता का भविष्य मदीना में देखा था और उसे वहां चले जाने का आदेश दिया था, जैसा कि मुहम्मद ने कहा हैः 'मुझे एक ऐसे नगर में चले जाने का आदेश मिला था, जो अन्य नगरों को लील (जीत) लेगा, और इस नगर को यसरिब कहते हैं तथा वही मदीना (मदीनत-उल नबी, रसूल का निवास) है' [बुखारी 3:95]। अल्लाह ने बाद में दिये एक आयत [कुरआन 2:217] में मुहम्मद व उसके समुदाय के साथ कुरैशों के व्यवहार का संक्षिप्त विवरण भी दिया है: '...अल्लाह की दृष्टि में अल्लाह के मार्ग में जाने से रोकना, अल्लाह को न मानना, उस पवित्र मस्जिद में जाने से रोकना और उस मस्जिद के सदस्यों को भगाना अत्यंत गंभीर अपराध है।' अल्लाह स्पष्ट रूप से सुझाव दे रहा है कि मक्का के लोग मुहम्मद के पंथ को स्वीकार नहीं कर रहे हैं, दूसरों (प्रायः परिवार के सदस्यों) को इस्लाम स्वीकार करने से रोक रहे हैं और मुहम्मद के समुदाय को काबा में जाने से रोक रहे हैं। किंतु अल्लाह इस बात का कोई उल्लेख नहीं कर रहा है कि कुरैशों ने मुहम्मद या किसी अन्य मुसलमान की हत्या का प्रयास किया। ''इसके सदस्यों को भगाना'' कहने के पीछे अल्लाह का मंतव्य यही रहा होगा कि चूंकि कुरैशों ने इस्लाम स्वीकार नहीं किया, तो मुहम्मद को अपनी सफलता की संभावना की दृष्टि से मदीना जाना पड़ा। मुहम्मद ने स्वयं बद्र की जंग के विवरण में इसकी पुष्टि की है। जब कुरैश पराजित हो गये, तो मुसलमान कुरैशों के शवों को अपमानजनक ढंग से सामूहिक कब्र में फेंक रहे थे। एक मनोविकृत के जैसे मुहम्मद उन मरे हुए लोगों के शवों पर चीखते हुए कह रहा था: 'हे जहन्नुम की आग में जलने वाले लोगो, तुम अपने रसूल के बुरे संबंधी थे। जब दूसरे लोग (मदीना के लोग) मुझको मान रहे थे, तो तुमने मुझे झूठा कहा; जब दूसरों ने मुझे अपनाया, तो तुमने मुझे तिरस्कृत किया; जब दूसरे मेरे पक्ष आ रहे थे, तो तुम मुझसे लड़ रहे थे।'[30] यहां भी मुहम्मद इसका कोई उल्लेख नहीं कर रहा है कि उसकी हत्या का प्रयास हुआ था। यहां जिस लड़ाई का उल्लेख है, उसका आशय उस लड़ाई से है, जो उसने (मुहम्मद) मदीना बसने के बाद (नीचे विवरण

---

[28] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 121-122

[29] मुईर पृष्ठ 165

[30] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 306

दिया गया है) स्वयं प्रारंभ किया था। इससे पूर्व, मुसलमानों और कुरैशों के बीच कोई लड़ाई अथवा जंग नहीं हुई थी और न ही मदीना के लोग ऐसी जंगों में मुहम्मद की ओर से लड़े थे।

कुरैशों द्वारा मुहम्मद की हत्या के प्रयास की यह कहानी संभवतः उसी (मुहम्मद) ने स्वयं ही इस विश्वास के साथ गढ़ी होगी कि जब वह मदीना पहुंचेगा, तो वहां के लोग यह सुनकर उससे सहानुभूति दिखाएंगे अथवा उसने यह कपोलकल्पित कहानी इसलिये गढ़ी होगी, क्योंकि वह मदीना के लोगों और विशेष रूप से अपने नये-नये धर्मांतरित मुसलमानों में कुरैशों के प्रति शत्रुता का भाव उत्पन्न करने की मंशा रखता था। आइये, यहां यह भी स्मरण करें कि इससे तीन वर्ष पूर्व इसी प्रकार से मुहम्मद ने ताइफ के लोगों में कुरैशों के प्रति शत्रुता उत्पन्न करने का विफल प्रयास किया था।

क्या मक्का के लोग क्रूर थे?

इस्लामी शिक्षा ऐसा दिखाने का प्रयास करती है कि मक्का की कुरैश जनजाति के लोग संभवतः ऐसे बर्बरतम लोग थे, जिन्होंने रसूल पर अत्यधिक क्रूरता दिखाई। एक मुसलमान ने मुझको लिखा कि '13 वर्षों तक बहुत से मुसलमान भयानक ढंग से सताये गये, प्रताड़ना से ही मर गये।'[31] ये लोग इस प्रकार के आरोप इसलिये लगाते हैं कि कुरैशों के विरुद्ध मुहम्मद के आतंकी अभियान, मक्का पर बलपूर्वक अधिकार और कुरैशों के धर्म के विनाश को उचित ठहरा सकें।

कुरआन और सुन्नत में कुरैशों को बारंबार असभ्य, क्रूर उत्पीड़क और अल्लाह के शत्रुओं के रूप में दिखाया गया है। यहां तक कि मुहम्मद जब मक्का में था, तब भी उसने उन्हें ऐसा घृणायोग्य व पापी बताया, जो ''सबसे अधिक घृणा किये जाने योग्य'' [कुरआन 56:46] बनने पर उतारू थे और ऐसे ''घृणित'' थे, जो भयानक आग के गोले एवं उबलते जल में फेंके जाएंगे'' [कुरआन 56:41-42]। यहां तक कि मुहम्मद ने मक्का के मूर्तिपूजकों की निंदा की और उन्हें यह कहकर बुरे परिणाम भुगतने की धमकी दी कि, 'हम दोषियों से ऐसे ही निपटेंगे। उस दिन (सत्य) नकारने वालों को संताप देंगे [कुरआन 77:18-19]।' उसने स्वयं को और अपने अनुयायियों को सच्चे पथ वाला बताया और जिसने उसको नकारा उसे झूठा, पापी व मिथ्या रचने वाला बताया। उसने मक्का के मूर्तिपूजकों को जहन्नुम की आग में अनंत काल तक जलने वाला बताया। कुछ आरंभिक आयतों में कहा गया है:

1. 'वह फिर वह उन लोगों में होता है, जो ईमान लाये और जिन्होंने धैर्य (सहनशीलता और संयम) एवं दया व करुणा के कार्य का विधान दिया। यही लोग (अल्लाह के) दायें हाथ वाले हैं। किंतु जिन्होंने हमारे चिह्न (आयतों) को नहीं माना... वैसे लोगों पर (सभी ओर से) आग घिरी होगी' [कुरआन 90:17-20]।

---

[31] इस्लामी साहित्यों में मृत्यु की किसी घटना का उल्लेख नहीं है; मक्का में मुहम्मद के रहने के समय इस्लाम-विरोधी हिंसा अथवा ऐसी किसी हिंसा में किसी मुसलमान के मारे जाने का कहीं प्रमाण नहीं मिलता है।

2. ''जो अल्लाह के चिह्न (आयतों) पर विश्वास नहीं लाते, अल्लाह उन्हें मार्गदर्शन नहीं देगा और वे कठोर दंड/यातना के भागी बनेंगे। जो अल्लाह के चिह्नों में विश्वास नहीं करते, वही झूठ गढ़ते हैं: वही हैं जो झूठ बोलते हैं!' [कुरआन 16:104-05]।

यद्यपि इस्लामी समाज में प्रचलित इस दावे को सत्य मानना अत्यंत कठिन है कि कुरैशों ने मुहम्मद व उसके समुदाय पर अमानवीय क्रूरता की थी। उन दिनों के असहाय बंजर रेगिस्तानी वातावरण में कठिनाई से जूझ रहे मक्का के नागरिक अत्यंत धार्मिक हुआ करते थे। उन्होंने अपने भगवान के मंदिर काबा में 360 मूर्तियां एकत्र की थीं, जिससे कि वे भगवान की कृपा प्राप्त करने के लिये उसकी पूजा कर सकें। उन्होंने काबा के मंदिर को अरब व आसपास के मूर्तिपूजकों के लिये ईश्वरभक्ति का सबसे पवित्र स्थान और तीर्थयात्रा का केंद्र बना दिया था। वे काबा को उतना ही प्रतिष्ठित बनाये हुए थे, जैसे कि आज के मुसलमानों ने बना रखा है। मुहम्मद ने न केवल आधारहीन ढंग से काबा पर अपने अल्लाह का स्थान होने का दावा किया, अपितु उसकी आयतों ने भी मूर्तिपूजकों के धर्म को झूठा बताया।

उन अपमानजनक टिप्पणियों, ढीठ दावों व मांगों के बाद भी कुरैशों ने मुहम्मद व उसके समुदाय को मक्का में 30 वर्ष तक रहने दिया। जब तक मुहम्मद की बातें प्रत्यक्ष रूप से कुरैशों के प्रति शत्रुताभरी और अपमानजनक नहीं हुईं, उसे पहले सात वर्षों में वहां अपने पंथ के प्रचार की अच्छी स्वतंत्रता मिली हुई थी। यद्यपि काबा पर मुहम्मद के दावे का विरोध अवश्य था। बाद में जब मुहम्मद की ओर से कुरैशों व उनके देवी-देवताओं का अपमान बढ़ता गया, तो उसके मिशन का विरोध प्रारंभ हुआ, किंतु तब भी कुरैशों द्वारा उस पर कोई हमला किये जाने अथवा उसे क्षति पहुंचाये जाने की किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। कुरैशों के उन कुछ दासों के उत्पीड़न की कुछ छिटपुट संदर्भ मिलते हैं, जो मुहम्मद के अपमानजनक पंथ में सम्मिलित हो गये थे। परंतु उत्पीड़न की वो घटनाएं भी उन धर्मांतरितों के प्राणों को संकट में डालने वाली नहीं थीं। अन्य घटनाओं में कुछ कुरैशों ने अपने परिवार के सदस्यों को (कभी-कभी गृह में बंद करके) मुहम्मद के समुदाय में सम्मिलित होने से रोका था।

मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा दिये गये कुछ साक्ष्य सिद्ध करते हैं कि कुरैशों ने मुहम्मद की ओर से दिख रहे प्रत्यक्ष शत्रु-भाव और आहत करने वाले अपशब्दों के बाद भी उसके प्रति उल्लेखनीय सहिष्णुता रखी थी। अल-ज़ुहरी लिखता है:

> 'मुहम्मद जो कुछ कहते थे, काफिर कुरैश उसका विरोध नहीं करते थे। जहां वे लोग बैठे होते थे, यदि वह (मुहम्मद) वहां से निकलते थे, तो वे उनकी ओर संकेत करके कहते थे: 'अब्द-अल-मुत्तालिब कबीले का यह युवा दावा करता है कि उसे अल्लाह से संदेश मिला है!' जब तक कि अल्लाह ने कुरैशों के ईश्वरों पर हमला करना नहीं प्रारंभ किया..., और जब तक अल्लाह ने यह घोषणा नहीं कर दी कि उनके पूर्वज जो कुफ्र (इस्लाम, अल्लाह व उसके रसूल को नहीं मानना) में मरे हैं, (जहन्नुम की आग में) जलेंगे, कुरैश लोग यही व्यवहार करते रहे। किंतु इसके बाद वे लोग रसूल से घृणा करने लगे और उनके प्रति शत्रुता दिखाने लगे।'[32]

[32] शर्मा एसएस (2004) खलीफाज एंड सुल्तान्स: रिलीजियस आइडियालॉजी एंड पॉलीटिकल प्रैक्सिस, रूपा एंड कंपनी, न्यू देल्ही, पृष्ठ 63; मुईर, पृष्ठ 63

यद्यपि मुहम्मद के संदेश में उनके धर्म, ईश्वरों व परंपराओं के प्रति वैर और था, किंतु तब भी जब उसने उन लोगों (कुरैशों) को इस्लाम स्वीकार करने को कहा, तो उन लोगों अपेक्षाकृत विनम्रता दिखाते हुए उस प्रस्ताव को अस्वीकार किया। एक घटना में उल्लेख है कि मुहम्मद के चाचा अबू तालिब जब कहीं जा रहे थे, तो उन्हें अपना बेटा अली मुहम्मद के साथ नमाज पढ़ता हुआ मिला। उन्होंने अली से पूछा कि वह क्या कर रहा है। इस पर रसूल ने उत्तर दिया, 'अल्लाह द्वारा मुझे जो संदेश दिया गया है, वह उसका अनुसरण कर रहा है' और रसूल ने अबू तालिब को भी उसका अनुसरण करने को कहा। इस पर उस वृद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया कि वे न तो अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ेंगे और न ही ऐसी प्रार्थना-पद्धति को अपनाएंगे, जिसमें 'अपने नितम्बों को सिर से ऊपर रखना पड़े (नमाज के समय की शारीरिक मुद्रा)।'[33]

कुरैशों के देवी-देवताओं और पूर्वजों पर मुहम्मद की मिथ्याभरी निंदा व अपशब्दों पर प्रतिक्रिया के विषय में बैहकी ने अपनी पुस्तक 'पैगम्बरी का प्रमाण' में मुहम्मद के शिष्य अमरू इब्न अल आस के साक्ष्यों से लिखा है:

> 'एक बार जब काबा में मूर्तिपूजकों के मुखिया आये, तो मैं वहां उपस्थित था। वे अल्लाह के रसूल के बारे में बात कर रहे थे और उन्होंने कहा, 'हमें कभी भी इतना कुछ सहन नहीं करना पड़ा, जितना कि इस व्यक्ति से सहन करना पड़ रहा है। यह व्यक्ति हमारे पूर्वजों को कोसता है, हमारे धर्म की निंदा करता है और हमारे लोगों को बांट रहा है और हमारे देवताओं को बुरा कहता है। इस व्यक्ति की ऐसी कष्टदायी बातों को सहन करना पड़ रहा है...।' रसूल जो कि वहीं पास में बैठे थे, ये सब सुन रहे थे और उन्होंने प्रतिक्रिया दी, 'कुरैश के लोगो! मैं निश्चित ही इसके लिये तुम लोगों को ब्याज सहित लौटाऊंगा।'[34]

कुरैश अपने पूर्वजों के धर्म पर अडिग रहे और मुहम्मद के मिशन के विरोध में थे, किंतु इस तथ्य के बाद भी उन्होंने मुहम्मद का मिशन प्रारंभ होने के छह वर्ष पश्चात तक काबा में उसके प्रवेश को नहीं रोका। यह बात शैतानी आयत [कुरआन 53:19-20] से भी स्पष्ट होती है, यह वही शैतानी आयत है, जिस पर सलमान रश्दी का उपन्यास आधारित है। अल-तबरी के इतिहास के अनुसार, ये दो शैतानी आयतें, जिनमें मुहम्मद ने मूर्तिपूजकों की देवियों अल-लात, अल-उज़्ज़ा और अल-मनात को पूजा के योग्य माना था, कथित रूप से शैतान द्वारा मुहम्मद के मुख में डाली गयी थीं, जिसे अल्लाह ने बाद में निरस्त कर दिया [कुरआन 53:21-22]।[35] यह घटना तब हुई, जब मुहम्मद 616 ईसवी में कुरैशों के वरिष्ठ जनों के साथ काबा में समझौता बैठक कर रहा था।[36] 628 ईसवी में हुदैबिया की संधि के बाद कुरैशों ने मुहम्मद व उसके अनुगामियों को 3 वर्ष तक काबा में प्रवेश और प्रतिवर्ष तीर्थयात्रा करने की पुनः अनुमति दे दी (नीचे देखें)। अब, आइए आज के संदर्भ में ऐसी ही एक काल्पनिक स्थिति पर विचार करें:

---

33 ग्लूब जेबी (ग्लूब पाशा, 1979) द लाइफ एंड टाइम्स आफ मुहम्मद, हॉडर एंड स्टाउफ्टन, लंदन, पृष्ठ 98

34 शर्मा पृष्ठ 63-64

35 अल-तबरी, अंक 6, पृष्ठ 107

36 इबिद, पृष्ठ 165-67, पृष्ठ 80

कल्पना कीजिये कि मक्का के किसी समुदाय या सऊदी अरब के किसी स्थान अथवा विश्व के किसी अन्य भाग का कोई व्यक्ति मक्का जाए और मुसलमानों की भीड़ के समक्ष घोषणा करे कि उसे सच्चे ईश्वर से संदेश मिला है; कि वह सच्चा पैगम्बर है; कि इस्लाम असत्य है; कि काबा उसके ईश्वर का पवित्र स्थान है; और कि मुसलमानों को अपने असत्य पंथ को छोड़कर उसके नये धर्म को स्वीकार करना चाहिए।

यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि उस नये पैगम्बर का क्या होगा। निश्चित रूप से वह व्यक्ति तत्काल मार दिया जाएगा। वास्तविकता तो यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी मुस्लिम देश के किसी बड़े मस्जिद में भी ऐसा दावा कर दे, तो आज यू.एन. चार्टर के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं मानव अधिकारों की गारंटी होने के बाद भी इस्लाम के उन्मादी अनुयायियों के हाथों उसकी ऐसी ही स्थिति ही कर दी जाएगी। मुसलमान अरब के उस काल को बर्बर युग बताते हैं और तत्कालीन मक्का के मूर्तिपूजकों को घृणित व दुष्ट कहते हैं, तो आइए आज के मुसलमानों में उन्मादी हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति और उन कथित दुष्ट व अभागे मूर्तिपूजकों की प्रवृत्ति की तुलना करके देखें। उन मूर्तिपूजकों ने लगभग 30 वर्ष तक मुहम्मद पर कोई शारीरिक प्रहार नहीं किया, जबकि इस अवधि में वह उनके धर्म व संस्कृति पर निरंतर हमला करता रहा, उनके सबसे पवित्र धर्मस्थान पर अपना दावा करता रहा। कुरैशों के जीवन व धर्म पर मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के प्रभाव पर सर विलियम मुईर लिखते हैं: 'उनका पवित्र धर्मस्थान, मक्का का वैभव और पूरे अरब की तीर्थयात्रा के केंद्र पर नष्ट हो जाने का खतरा मंडरा रहा था।'[37] मुहम्मद द्वारा की जा रही धृष्टता, अपमान और अत्याचार सहने के बाद भी कुरैशों ने मुहम्मद को काबा में प्रवेश की अनुमति दी थी, जबकि काबा को तो छोड़िये, मुस्लिम देशों में आज भी किसी मस्जिद के भीतर किसी गैर-मुसलमान का प्रवेश वर्जित है, यहां तक कि गैर-मुसलमान मस्जिद को देखने के लिये भी भीतर नहीं जा सकता है। इस्लाम के दो सबसे पवित्र नगरों मक्का व मदीना में इस्लाम की स्थापना से लेकर आज तक गैर-मुसलमान का प्रवेश वर्जित है।

फरवरी 2007 में फ्रांस के उन अनेक नागरिकों की हत्या कर दी गयी थी, जो मदीना के निकट निषिद्ध क्षेत्र में चले गये थे।[38] इस्लाम की असहिष्णु शिक्षाओं ने सातवीं सदी के सहिष्णु व सभ्य लोगों को इस सीमा तक उन्मादी व हत्यारा बना दिया है कि केवल अरब ही नहीं, अपितु विश्व के अन्य भागों के मुसलमान भी इस्लाम की परंपरा को इसी असहिष्णुता व धर्मांधता के साथ आगे बढ़ा रहे हैं। और विडम्बना यह है कि मुहम्मद सातवीं सदी के मक्का के उन अत्यंत सहिष्णु व सभ्य लोगों को क्रूर, दुष्ट और घृणित बताता था, तो आज के मुसलमान भी वैसा ही कर रहे हैं।

आज भी अनेक इस्लामी देशों में मुसलमान उन लोगों की हत्या कर देते हैं, जो सार्वजनिक रूप से इस्लाम छोड़ते हैं। सभी मुस्लिम देशों ने यू.एन. चार्टर के उस सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये हैं, जो व्यक्ति को इसकी गारंटी देता है कि वह जो धर्म चाहे चुने, इस तथ्य के बाद भी यह स्थिति है। परंतु सातवीं सदी के मक्का के मूर्तिपूजकों ने न तो मुहम्मद को

---

[37] मुईर, पृष्ठ 62

[38] ग्लोब एंड मेल (कनाडा), गनमेन स्ले 3 फ्रेंचमेन इन सऊदी अरेबिया, 26 फरवरी 2007

कोई क्षति पहुंचायी और न ही मक्का के उन दर्जनों उच्श्रृंखल नागरिकों को कोई हानि पहुंचायी, जिन्होंने उसके मजहब को स्वीकार कर लिया था। स्पष्ट है कि मक्का के कुरैश मूर्तिपूजकों की तुलना में आज के मुसलमान कहीं अधिक असहिष्णु, क्रूर व असभ्य हैं।

मक्कावासियों की अनुकरणीय सहिष्णुता

मुहम्मद के समय मक्का का समाज निश्चित रूप से फारस, सीरिया, इजिप्ट व भारत की तुलना में पिछड़ा और सरल था। मक्का के लोगों का समुदाय अत्यंत धार्मिक था। मुसलमानों द्वारा मक्का के उन लोगों (मूर्तिपूजकों) का चित्रण भले ही असहिष्णुता, घृणा और हिंसा से भरे मनुष्यों के रूप किया जाता हो, किंतु सच तो यह है कि उन लोगों की विशेषता विभिन्न पंथों के प्रति सहिष्णुता, सद्भाव और सबको साथ लेकर चलने वाली थी। उदाहरण के लिये, भले ही काबा का मंदिर मक्कावासियों के ईश्वर का पवित्र धाम और उनकी धार्मिक भक्ति का केंद्र था, तब भी उन्होंने इस पर केवल अपना अधिकार नहीं माना। अपितु उन्होंने सऊदी अरब के उस क्षेत्र एवं मेसोपोटामिया, फिलिस्तीन, सीरिया व दूर के अन्य क्षेत्रों के सभी धार्मिक पंथों को उस पवित्र धाम के गर्भगृह में अपने-अपने धार्मिक प्रतीक और मूर्तियां रखने की अनुमति दी थी।[39] चूंकि मक्का व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था और दूर-देशों से आने वाले व्यापारियों के ठहराव का स्थान था, तो मक्का के लोग उन विदेशी व्यापारियों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को स्थान देने की प्रवृत्ति को साथ लेकर चलते थे, जिससे कि वे जब मक्का में हों, तो अपने धार्मिक पूजापाठ कर सकें। काबा के गर्भगृह में प्रतिष्ठित विभिन्न स्थानों की प्राचीन मूर्तियों से 360 अखंड आकृतियों का घेरा बन गया था। यहां तक कि यहूदी व ईसाई धर्म का प्रतिनिधित्व करते हुए क्रमशः अब्राहम और इस्माईल के पुतले एवं नवजात ईसामसीह को गोद में ली हुई मैरी की मूर्ति भी वहां प्रतिष्ठित थी। जब मुहम्मद ने मक्का जीता, तो उसने उस गर्भगृह में प्रतिष्ठित मूर्तियों के विध्वंस का आदेश दिया। तुर्की के मुस्लिम इतिहासकार एमेल एसीन के अनुसार, मुहम्मद ने अब्राहम और इस्माइल के पुतले को नष्ट करने का आदेश दिया, किंतु अपने हाथों से ढंककर मैरी और ईसामसीह की मूर्तियों की रक्षा की।[40] ईसाई और यहूदी लोग कुरैशों को उनकी मूर्तिपूजा परंपरा के कारण निरंतर झिड़कते थे, किंतु इस तथ्य के बाद भी मूर्तिपूजक कुरैशों ने काबा के मंदिर में ईसाई और यहूदी प्रतीकों को रखा था। मुहम्मद जब मक्का में था, तो सीरिया के व्यापारी मक्का में बिना किसी प्रतिरोध के ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे।[41] अनेक कुरैशों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले ऐसे महत्वपूर्ण लोगों में वारका इब्न नौफल व उस्मान इब्न हुवैरिस भी थे, जो मक्का में सम्मानित व प्रतिष्ठित स्थान रखते थे (नीचे देखें)।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि कुरैशों के धर्म के प्रति मुहम्मद की घोर घृणा व अपमान के बाद भी मुसलमानों को काबा में प्रवेश और तीर्थयात्रा करने की अनुमति थी। यहां तक कि भारत के हिंदू, जो कि अनेक प्रकार की मूर्तियों की पूजा

---

[39] वॉकर, पृष्ठ 44

[40] इसीन ई (1963) क्रिश्चियन द ब्लेस्ड, मदीना द रैडिएंट, एलेक, लंदन, पृष्ठ 109

[41] टैघर जे (1998) क्रिश्चियन इन मुस्लिम इजिप्टः ए हिस्टॉरिकल स्टडी आफ द रिलेसंस बिटविन कॉप्ट्स एंड मुस्लिम्स फ्रॉम 640 टू 1922, अनुवाद मैकर आरएन, ओरोस वेरलैग, आल्टेनबर्ग, पृष्ठ 16

करते थे, वो भी पवित्र काबा के मंदिर में प्रवेश पाते थे। भारत के व्यापारी काबा से देवी अल-मनात की प्रस्तर की वो मूर्ति सोमनाथ लाये थे, जो काबा से लुप्त हो गयी थी। सोमनाथ में अल-मनात अत्यंत लोकप्रिय देवी हो गयीं। मुस्लिम विजेता गज़नी का सुल्तान महमूद काबा की मूर्तिपूजक परंपरा के उस अवशेष को नष्ट करने पर उतारू था और उसने उस मूर्ति को नष्ट करने के लिये 1024 में सोमनाथ पर आक्रमण किया। अपने उस पवित्र व प्रतिष्ठित मूर्ति की रक्षा करते हुए 50,000 हिंदू बलिदान हुए थे।[42]

इन तथ्यों को देखते हुए यह सिद्ध होता है कि मक्का के वो मूर्तिपूजक आज के मुसलमानों की तुलना में निश्चित ही अधिक सहिष्णु, मेल-मिलाप रखने वाले और सभ्य लोग थे। मुहम्मद द्वारा कुरैशों के धर्म, देवी-देवताओं और परंपराओं का इतना अनादर और अपमान किये जाने के बाद भी वे उसे 30 वर्षों तक सहते रहे। उन्होंने जो एकमात्र क्रूरता दिखायी थी, वह दो वर्ष तक (617-619) मुहम्मद के समुदाय का सामाजिक व आर्थिक बहिष्कार था और यह तो ऐसा दंड है, जिसे आज भी इस प्रकार के प्रकरणों से निपटने के लिये अत्यधिक सभ्य उपाय के रूप में देखा जाता है। करुणा, सहिष्णुता, सामंजस्य और अहिंसा की बात करें, तो सातवीं सदी के मक्का के निवासियों का समाज भले ही गंवार व पिछड़ी प्रकृति का था, किंतु स्पष्ट रूप से वे आज के मानकों में भी अत्यंत सभ्य दिखते हैं। कुलमिलाकर, सत्य यह है कि मुसलमानों द्वारा पिछले 1400 वर्षों से कलंकित किये जा रहे मक्का के मूर्तिपूजक वास्तव में अत्यंत सहिष्णु व सभ्य लोग थे।

मक्कावासियों के विरुद्ध मुहम्मद का आतंकी अभियान (623-630)

रसूल मुहम्मद का मदीना चले जाना उसके पैगम्बरी अभियान की सफलता के लिये वरदान बन गया। सफल परिणाम आना संभावित भी था, क्योंकि मुहम्मद के मदीना जाने से पहले ही मुसाब इब्न उमैर का अभियान वहां बड़ी संख्या में लोगों को इस्लाम में लाने में सफल रहा था। मुहम्मद मदीना पहुंचा, तो वहां उसके अनुयायी उत्सुकता से स्वागत के लिये प्रतीक्षारत थे। मदीना में मूर्तिपूजक और यहूदी समुदाय के लोग रहते थे। वहां यहूदी समुदाय धनी और अधिक प्रभावशाली था। धीरे-धीरे मदीना के अन्य नागरिक उसके अभियान में जुड़ने लगे। ऐसे लोगों में अधिकांशतः मूर्तिपूजक जनजातियों के लोग थे।

जिहाद का बीज

इब्न इस्हाक के अनुसार, मदीना आने के प्रथम वर्ष में मुहम्मद ने इस नगर की जनजातियों से एक संधि की, जो मदीना के संविधान के रूप में प्रसिद्ध है। इस संधि में जो अनुबंध (शर्तें) थे, उनसे मुहम्मद की हिंसक मंशा और विशेष रूप से कुरैशों के प्रति उसकी हिंसक मंशा दिखती है।[43] ऐसे दो अनुबंध थेः

---

[42] शर्मा एसएस (2004) कैलीफ्स एंड सुल्तान्सः रिलीजियश आइडियॉलाजी एंड पॉलीटिकल प्रैक्सिस, रूपा एंड कंपनी, न्यू देल्ही, पृष्ठ 144-45

[43] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 231-33; वॉट डब्ल्यूएम, मुहम्मद इन मदीना, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, कराची, 2004 इम्प्रिंट, पृष्ठ. 221-25

1. किसी भी मोमिन को किसी काफिर की हत्या के लिये मारा नहीं जाएगा और न ही मुसलमानों के विरुद्ध किसी काफिर का समर्थन किया जाएगा।
2. (मदीना के) बहुदेववादी न तो उसके संरक्षण में रह रहे किसी कुरैश की संपत्ति या व्यक्ति को लेंगे और न ही मुसलमानों के विरुद्ध जाएंगे।

इस संधि के ये अनुबंध स्पष्टतः बताते हैं कि मुहम्मद अपने पैतृक नगर के कुरैशों के विरुद्ध हिंसक अभियान प्रारंभ करने की मंशा से मदीना आया था और शीघ्र ही उसने हिंसक अभियान प्रारंभ कर दिये। जैसे ही वह वहां जमा, उसने अपना ध्यान कुरैशों से प्रतिशोध लेने की ओर केंद्रित कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद के अनुयायी हिंसा में लिप्त होने का विरोध कर रहे थे। ऐसे में अल्लाह मुहम्मद की सहायता के लिये आया और उसने हिंसा-भड़काने वाली आयतों की झड़ी लगाते हुए मुसलमानों से जिहाद अथवा पवित्र जंग करने को कहा, आरंभ में कुरैशों के विरुद्ध जिहाद करने को कहा और इसके बाद सभी गैर-मुसलमानों के विरुद्ध यह जंग लड़ने को कहा। मुहम्मद के अनुयायी हिंसा के लिये अनिच्छुक थे, तो अल्लाह ने एक टेलर-मेड (आवश्यकतानुसार तैयार) आयत भेजकर जिहाद अर्थात जंग को मुसलमानों का मजहबी कर्तव्य बता दिया: ''अल्लाह के मार्ग में उनसे लड़ो, जो तुमसे लड़ते हैं, किंतु सीमाएं न लांघो; क्योंकि अल्लाह को अवज्ञा करने वाले प्रिय नहीं हैं [कुरआन 2:190]।' अभी तक मुसलमानों और कुरैशों के बीच कोई संघर्ष नहीं हुआ था। चूंकि कुरैश मुहम्मद के अभियान का दृढ़ता से विरोध कर रहे थे, तो इस विरोध को ही ''जंग'' के समान मान लिया गया। इसलिये कुरैशों से जंग करना मुसलमानों के लिये अल्लाह द्वारा स्वीकृत आदेश बन गया।

मुहम्मद के जो अनुयायी अभी भी अकारण हिंसा में लिप्त होने की वैधता पर प्रश्न उठा रहे थे, उनके लिये अल्लाह ने यह कहकर हिंसा करना सरल बना दिया कि: 'और उन्हें जहां पाओ काट डालो, और उन्हें वहां से मार भगाओ जहां से उन्होंने तुम्हें हटाया है; क्योंकि फित्ना (उपद्रव) व दबाव हत्या से भी बुरा है... [कुरआन 2:191]।' चूंकि उन कुरैशों ने मुहम्मद से संघर्ष किया था और उसे निकाल बाहर किया था, तो यह हत्या जैसे जघन्य अपराध से भी बुरा अपराध था, इसलिये न्याय के लिये कुरैशों से जंग करना इसकी वैधता से बढ़कर कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो चला।

इसलिये मोमिनों में कुरैशों से जंग करने को लेकर कोई नैतिक हिचक नहीं रह गयी, क्योंकि वे कुरैशों पर हमला करके अल्लाह के उद्देश्य में केवल न्याय प्रदान कर रहे थे। अल्लाह उन पर दबाव डाल रहा है कि वे दृढ़ता से तब तक लड़ते रहें, जब तक कि न्याय और अल्लाह (इस्लाम) का प्रभुत्व न हो जाए: 'और उनसे तब तक लड़ते रहो, जब तक कि फ़ितना अथवा दबाव समाप्त न हो जाए, और सभी ओर न्याय व अल्लाह में विश्वास न हो जाए [कुरआन 2:193]।' आगे बढ़ने से पूर्व आइए देखें कि इन आयतों में फ़ित्ना (उपद्रव) और दबाव किसका प्रतीक है।

उपद्रव व दबाव

आयत 2:193 की यह शब्दावली उपद्रव या दबाव (अन्य आयतों में अत्याचार भी) को अरबी के फ़ित्ना शब्द के लिये प्रयुक्त होती है और परंपरागत रूप से इसे मूर्तिपूजा के रूप में समझा जाता है, या सटीक ढंग से कहें, तो मूर्तिपूजा की परंपरा पर कुरैशों की अडिगता, इस्लाम में आने से मना करने को फित्ना समझा जाता है। किंतु इस्लाम के आधुनिक विद्वानों ने गैर-मुसलमानों व पश्चिम के लोगों को भ्रमित करने के लिये कुरआन के अंग्रेजी अनुवाद में फ़ित्ना शब्द के लिये अस्पष्ट सी शब्दावली दी है। इन अस्पष्ट अनुवादों से प्रभावित होकर इस्लाम के अनेक विद्वान यह कहने को तत्पर रहते हैं कि इस्लाम में हिंसक जिहाद या हत्या की अनुमति कठोर शर्तों के साथ दी गयी है, जैसे कि उपद्रव, दमन या अत्याचार से लड़ने के लिये। यह तार्किक भी लगता है। कौन सा ऐसा व्यक्ति होगा भला, जो दमन या अत्याचार से लड़ने के शांतिप्रिय उद्देश्यों की सराहना नहीं करेगा?

किंतु कुरआन की भाषा में उपद्रव, दमन या अत्याचार का वास्तविक अर्थ क्या है, यह समझने के लिये इन पारिभाषिक शब्दावलियों का समग्र विश्लेषण किये जाने की आवश्यकता है। अरबी भाषा में फ़ित्ना (अल-फसाद भी) का अर्थ होता है किसी समूह में असंतोष या मतभेद, कानून व व्यवस्था का उल्लंघन, या अवज्ञा, सत्ता प्रतिष्ठान के विरुद्ध कोई क्रांति या युद्ध, अथवा इसी प्रकार की कोई घटना। उल्लेखनीय है कि कुरैश समुदाय मक्का के प्रशासन के शीर्ष पर था और असंतुष्टों में मुहम्मद का समुदाय था, तो फ़ित्ना कुरैशों नहीं किया होगा, अपितु मुहम्मद ही फ़ित्ना कर रहा होगा।

तब रसूल और इस्लामी अल्लाह ने कुरैशों को फ़ित्ना करने का दोषी कैसे बता दिया? ऐसा संभवतः इसलिये हुआ होगा, क्योंकि आयत 2:193 (8:39 भी) के अनुसार, कुरआन को संसार के सर्वोच्च रचयिता अल्लाह द्वारा विधि व न्याय की ऐसी सर्वोच्च पुस्तक के रूप में प्रकट किया गया, जिसका प्रभुत्व सभी धर्मों को स्वीकार करना ही होगा। इस प्रकार मुहम्मद और अल्लाह के निर्णय के अनुसार कुरआन अर्थात अल्लाह के संदेश को अस्वीकार करना अथवा इसका विरोध करना फ़ित्ना होगा और मुहम्मद के पंथ को लेकर कुरैश यही कर रहे थे। और अल्लाह आयत 2:217 में फ़ित्ना को ठीक ऐसे ही परिभाषित करता है: ''...अल्लाह की दृष्टि में अल्लाह के पथ में जाने से रोकना, अल्लाह को नकारना, उसकी पवित्र मस्जिद में जाने से रोकना और मस्जिद के सदस्यों को भगाना गंभीर अपराध है।' फ़ित्ना और दबाव हत्या से भी बुरा है।'' इस प्रकार यदि किसी ने इस्लामी मजहब को स्वीकार करने से मना कर दिया, तो यह फ़ित्ना, दबाव और अत्याचार माना जाता है, जो कि अल्लाह व उसके रसूल की दृष्टि में हत्या से भी जघन्य अपराध माना गया है।

अल्लाह ने मुसलमानों को सभी गैर-मुस्लिम धर्मों को मिटा देने का पुनः आदेश दियाः 'और उनसे तब तक लड़ते रहो, जब तक कि फित्ना या दबाव समाप्त न हो जाए, और सबमें व सभी स्थानों पर न्याय और अल्लाह में विश्वास व्याप्त हो जाए; किंतु यदि वे हार मान लें, वस्तुतः अल्लाह सब देख रहा है कि वे क्या कर रहे हैं [कुरआन 8:39]।' ऐसा प्रतीत होता है कि ये आयतें भी मुहम्मद के कुछ अनुयायियों को प्रेरित करने के लिये पर्याप्त नहीं थीं। उन्होंने कुरैशों या किसी और से जंग करने में संलिप्त होने से मना कर दिया, क्योंकि वे हिंसा को अच्छा नहीं मानते थे। इसके पश्चात अल्लाह नयी आयतों के साथ आया और सभी मुसलमानों के लिये जंग करना अनिवार्य बना दिया, चाहे जंग करना उन्हें अच्छा लगे या नहीं: 'तुम्हारे लिये जंग करना निश्चित किया गया है और तुम्हें यह अच्छा नहीं लगता। किंतु हो सकता है कि जो बात तुम्हें अच्छी न लगती हो, वही तुम्हारे लिये अच्छी हो, और जो तुम्हें अच्छा लगता हो, वह तुम्हारे लिये बुरा हो। किंतु अल्लाह जानता है, और तुम नहीं' [कुरआन 2:216]।

लगता है कि आरंभ में मुहम्मद के अनुयायियों ने जंग में सम्मिलित होने का विरोध करते हुए यह तर्क दिया था कि अल्लाह ने इसकी अनुमति नहीं दी है। किंतु जब सातवें आसमान से वह अनुमति आ गयी, तो अब भी कुछ अहिंसक, कोमल-हृदय अनुयायी हिंसा में लिप्त होने को लेकर असमंजस में थे और वे रक्तपात एवं संभावित मृत्यु से भयभीत हो रहे थे। अल्लाह ने यह कहते हुए मुहम्मद के उन सशंकित अनुयायियों की भर्त्सना की: और जो ईमान लाये, उन लोगों ने कहा कि क्यों नहीं उतारी गयी कोई सूरा (जंग के संबंध में), तो जब एक निर्णायक सूरा उतार दी गयी और जंग का उल्लेख कर दिया गया, तो तुमने देखा कि जिनके मन में व्याधि (दुविधा) है वे तुम्हारी ओर ऐसे देख रहे हैं, मानों मृत्यु के समय अचेत पड़े हों। लानत है उन पर।! [कुरआन 47:20]।

मुहम्मद के लगभग सभी आरंभिक अनुयायी समाज के निम्न वर्ग से संबंध रखने वाले उपद्रवी थे। किंतु जब निर्दोषों के प्राण लेने वाला जिहाद आरंभ हुआ, तो चूंकि वे एक ऐसे समाज से आते थे, जो अहिंसक व शांतिप्रिय था, इसलिये वे इसमें भाग लेने में नैतिक रूप से हिचक रहे रहे थे। अल्लाह ने इस क्रूर काम का उत्तरदायित्व अपने पर लेकर मुहम्मद के अनुयायियों के इस अपराध-बोध को हटा दियाः 'तो ये तुम नहीं हो, जिसने उन्हें काट डाला, अपितु यह अल्लाह है जिसने उन्हें मारा है, और जब तुमने उनको (शत्रु) कष्ट दिया तो तुमने नहीं दिया, अपितु वह अल्लाह था जिसने उन्हें कष्ट दिया, और जिससे कि वह अपनी ओर से मोमिनों को अच्छा उपहार दे; निश्चित रूप से अल्लाह सुन रहा है, सब जान रहा है' [कुरआन 8:17]।

यह भी प्रतीत होता है कि मुहम्मद के कुछ मक्का के अनुयायी कुरैशों से जंग नहीं करना चाहते थे, उनके प्रति शत्रुता नहीं पालना चाहते थे। क्योंकि कुरैश उनके अपने पारिवारिक सदस्य, संबंधी और उनकी ही जनजाति के लोग थे। ऐसे अनुयायियों को विश्वास में लेने के लिये अल्लाह ने एक और आयत भेजकर उन्हें अपने सगे-संबंधियों से नाता तोड़ लेने को प्रेरित किया। उदाहरण के लिये, अल्लाह ने आयत भेजकर कहाः 'हे ईमान लाने वालो! वास्तव में, तुम्हारी बीवियों और बच्चों में से ही तुम्हारे शत्रु हैं; अतः, उनसे सावधान रहो...' [कुरआन 64:14]।

अल्लाह मुसलमानों को मुसलमानों से अपनी पूरी सामर्थ्य व संसाधन जिहाद के लिये देने को कहता है और वचन देता है कि वह उन्हें इसे पूरा लौटाएगा: 'जितना हो सके, तुम उनके लिए हथियारबंद ताकत और घोड़े तैयार रखो, जिससे अल्लाह के शत्रुओं व अपने शत्रुओं और उनके आसपास के लोगों को आतंकित कर सको। जिनको तुम नहीं जानते, उन्हें अल्लाह ही जानता

है। अल्लाह के मार्ग में तुम जो भी व्यय (खर्च) करोगे, तुम्हें पूरा वापस मिलेगा और तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा' [कुरआन 8:60]। ऐसा ज्ञात होता है कि मुहम्मद के कुछ अनुयायी जिहाद में इसलिये साथ नहीं देना चाहते थे, क्योंकि वे अपनी जितनी संपत्ति व संसाधन व्यय करते, केवल उतना ही वापस मिलता। इसलिये अल्लाह ने अन्य पुरस्कारों के साथ ही जिहाद में व्यय की गयी धन-संपत्ति कई गुना अधिक करके वापस करने का वादा किया: 'और क्या कारण है कि तुम व्यय नहीं करते अल्लाह के मार्ग में? ...कौन है वह, जो अल्लाह को अच्छा उधार दे? क्योंकि (अल्लाह) उसके इस उधार की वापसी कई गुना बढ़ाकर करेगा, और (इसके अतिरिक्त) एक बड़ा पुरस्कार भी देगा' [कुरआन 57:10-11]। अभी भी मुहम्मद के अनुयायियों में कुछ ऐसे थे, जो अल्लाह के जिहादी जंग में अपने धन को नहीं लगाना चाहते थे, तो अल्लाह ने उनकी भर्त्सना इस प्रकार कीः 'सुनो! तुम्ही लोग हो, जिन्हें बुलाया जा रहा है कि अल्लाह के मार्ग में व्यय करो: पर तुममें से कुछ इसमें कृपणता (कंजूसी) करने लगते हैं और ऐसा करने वाले किसी से नहीं, अपनी आत्मा से ही कृपणता करते हैं...' [कुरआन 47:38]।

अल्लाह की आरंभिक प्रेरणा व स्वीकृति ही मुसलमानों को जिहाद अथवा पवित्र जंग जैसा हिंसक हमला करने और विशेष रूप से मक्का के कुरैशों के विरुद्ध हिंसक जिहाद करने के लिये उकसाने वाली है। हिंसा के लिये अल्लाह से अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) मिलते ही मुहम्मद ने फरवरी 623 ईसवी में पहला जिहादी हमला (गज़वा) का आदेश दिया। यह आदेश उसने मदीना पहुंचने के मात्र आठ मास के भीतर दिया था। मुहम्मद ने सबसे पहला जिहादी हमला वहां निकट स्थित मार्ग से निकल रहे कुरैश व्यापारिक-कारवां पर करवाया। इस जिहादी हमले के दो उद्देश्य थे: एक तो इस कारवां को लूटना और दूसरा कुरैशों को प्रताड़ित करना। किंतु यह हमला विफल रहा। कुछ मास (महीनों) में ऐसे ही दो और हमले के आदेश दिये गये, किंतु वो भी विफल रहे। मदीना आने के लगभग 12 मास पश्चात मुहम्मद ने जिहादी हमलों का नेतृत्व स्वयं करना प्रारंभ कर दिया, किंतु उसके सारे प्रयास व्यर्थ गये। अगले कुछ मास में उसने तीन और हमलों का नेतृत्व किया, किंतु विफल रहा।[44]

नखला का हमला

जनवरी 624 में रसूल ने अब्दुल्ला इब्न जाहश के नेतृत्व में आठ हमलावरों का एक दल मक्का के एक कारवां पर हमला करने के लिये नखला भेजा। नखला मदीना से नौ दिन की यात्रा की दूरी पर था और मक्का से इसकी दूरी मात्र दो दिन की यात्रा की थी। इस दल को भेजते समय रसूल ने अब्दुल्ला के हाथ में एक पत्र देते हुए निर्देश दिया कि दो दिन की यात्रा करने के बाद ही उस पत्र को खोले। निर्धारित समय पर अब्दुल्ला ने जब वह पत्र खोला, तो उसमें लिखा था: 'जब तुम मेरा यह पत्र पढ़ो, तो तब तक आगे बढ़ते रहो, जब तक कि मक्का व अल-ताइफ के बीच नखला न पहुंच जाओ। वहां घात लगाकर कुरैश (कारवां) की प्रतीक्षा करो.... ।'[45] अब्दुल्ला व उसका गिरोह इस आज्ञा का पालन करते हुए नखला पहुंच गया।

---

[44] मुईर, पृष्ठ 225-228

[45] इब्न इस्हाक, पृष्ठ. 287; मुईर पृष्ठ 208-209

यह उरमा (काबा की छोटी तीर्थयात्रा) का समय था। निकट आ रहे कारवां को उनकी मंशा का आभास न हो सके, इसके लिये गिरोह के एक सदस्य ने सिर मुंड़वा लिया, जिससे ऐसा लगे कि वे लोग तीर्थयात्रा करके आ रहे हैं, इसलिये शत्रु नहीं हो सकते हैं। जैसे ही कारवां उनकी पहुंच में आया, वे उस पर टूट पड़े: कारवां का एक सेवक मारा गया; दो को बंदी बना लिया गया, जबकि एक व्यक्ति भागने में सफल रहा। हमलावरों का ये दल मालदार कारवां और दो बंदियों के साथ मदीना पहुंचा।

यह रजब का महीना था; जो अरबी परंपरा में वर्ष के उन चार पवित्र मास में आता था, जिसमें लड़ाई-झगड़ा या रक्तपात करना निषिद्ध था। सदियों पुरानी इस पवित्र परंपरा के उल्लंघन से मदीना के नागरिकों और यहां तक कि मुहम्मद के कुछ अनुयायियों में बड़ा असंतोष व रोष उत्पन्न हो गया। इससे मुहम्मद विचित्र स्थिति में फंस गया। उसने पहले तो हमलावर दल के लोगों पर ही दोषारोपण करते हुए स्वयं को इस घटना से पृथक करने का प्रयास किया। किंतु जब उसने देखा कि इससे अब्दुल्ला इब्न जाहश व उसके साथी हमलावरों का मन खिन्न हो गया (जिससे संभावना थी कि भविष्य में हमला करने को कहने पर वो लोग पीछे हट जाएंगे), तो अल्लाह तुरंत बचाव में आया और भले ही वह रक्तपात पवित्र मास में हुआ था, पर उसने उसको न्यायोचित ठहराने के लिये निम्नलिखित आयत उतार दी:

> वे निषिद्ध माह में जंग के बारे में पूछते हैं। उनसे कह दोः 'वे पूछते हैं कि पवित्र मास में जंग करना कैसा है? उनसे कह दोः उसमें जंग करना गंभीर (अपराध) है; परन्तु अल्लाह की दृष्टि में अल्लाह के पथ पर जाने से रोकना, अल्लाह को मानने से अस्वीकार करना, मस्जिदे ह़राम (पवित्र मस्जिद) में जाने से रोकना और मस्जिद के सदस्यों को वहां से निकालना उससे भी गंभीर अपराध है।' फ़ित्ना (इस्लाम से विचलित करना) हत्या से भी बुरा है। और वे तो तुमसे लड़ते ही रहेंगे, जब तक कि, यदि उनके वश में हो, तुम्हें तुम्हारे मजहब (इस्लाम) से फेर न दें... [कुरआन 2:217]।

जिन मुसलमानों ने इस घटना पर अप्रसन्नता व्यक्त की थी और संभवतः मुहम्मद के पंथ को छोड़ सकते थे, उनको चेतावनी देते हुए यह आयत समाप्त हुई कि '...और तुममें से जो व्यक्ति अपने मजहब (इस्लाम) से दूर होगा, फिर कुफ्र पर ही उसकी मौत होगी, ऐसे लोगों का किया-कराया, इस संसार तथा परलोक दोनों में व्यर्थ हो जाएगा तथा ये ही लोग जहन्नुम की आग में जलेंगे और अनंत काल तक उसी आग में पड़े रहेंगे' [कुरआन 2:217]। इस आदेश से किसी भी समय, कहीं भी और किसी भी कारण से कुरैशों या किसी भी कथित शत्रु पर हमला करना और उनकी हत्या करना ईश्वरीय रूप से न्यायोचित हो गया। रसूल ने अब्दुल्ला को अमीर-उल-मुमीनीन की उपाधि देकर सम्मानित किया।

इस पर विचार किये जाने की आवश्यकता है कि लूटपाट के इस सफल हमले से पूर्व मुहम्मद का समुदाय घोर आर्थिक अभावों का सामना कर रहा था। इसलिये, मुहम्मद के समुदाय व पंथ में रक्तपात वाले इस हमले का विशेष महत्व था, क्योंकि इससे उन्हें अपने अभावों को दूर करने के लिये बहुत (लूट का माल) मिला।

अल्लाह ने मुसलमानों के लिये लूट का माल यह कहते हुए वैध बना दिया: 'तो उस माले ग़नीमत (लूट का माल) का भोग करो, वह ह़लाल (उचित) स्वच्छ है तथा अल्लाह के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करो' [कुरआन 8:69]। अल्लाह ने जंग में लूटे गये माल के वितरण को लेकर एक और आयत 8:1 उतारी और उसके अनुसार, रसूल ने लूट के माल का पांचवां अंश अपने लिये रख लिया और जो शेष बचा उसे हमलावरों में बांट दिया गया। और अधिक धन प्राप्त करने के लिये उन दोनों बंदियों को फिरौती

लेकर छोड़ दिया गया।[46] इससे मुहम्मद और उसके समुदाय में लूटपाट की गतिविधियों का प्रारंभ हो गया और गैर-मुस्लिम कारवां व समुदाय को लूटना उनकी आजीविका का बड़ा स्रोत बन गया।

बद्र की जंग

मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के लिये अगला हमला, जो वास्तव में सबसे प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण है, इसके दो मास पश्चात मार्च 624 ईसवी में हुआ। मुहम्मद ने कुरैशों के एक धनी कारवां पर हमला करने और उसे लूटने की योजना बनायी। इब्न इस्हाक ने लिखा है, 'जब रसूल ने सुना कि मक्का के नेता अबू सुफ्यान सीरिया से वापस लौट रहे हैं, तो उन्होंने मुसलमानों को बुलाया और बोले, 'यह वो कुरैश कारवां है, जिसमें उनकी संपत्ति है। जाओ और उस पर हमला करो, संभवतः अल्लाह इस कारवां को शिकार के रूप में हमें देगा।' लोग उसके आह्वान पर जुटे। कुछ लोग उत्साहपूर्वक जुटे, जबकि कुछ लोग की इच्छा नहीं थी पर आये[47], क्योंकि उन्होंने कल्पना नहीं की थी कि रसूल जंग शुरू करेंगे।'[48] मुहम्मद के हमले की योजना की सूचना अबू सुफ्यान तक पहुंची, तो उन्होंने बचाव-दल मंगवाने के लिये एक दूत को मक्का भेजा। इस बीच, सुफ्यान मुहम्मद के गिरोह से बचते हुए लालसागर तट के किनारे-किनारे दूसरे मार्ग से चले और सुरक्षित मक्का पहुंचने के लिये कारवां की गति बढ़ा दी।

परंतु कारवां को बचाने और मुहम्मद के लुटेरे गिरोह को पाठ पढ़ाने के लिये एक बचाव-दल पहले ही मक्का से निकल चुका था। मुहम्मद ने जल से परिपूर्ण मरु-हरित क्षेत्र में बद्र नामक स्थान के निकट कारवां पर हमला करने की योजना बनायी थी। इस स्थान पर पहुंचकर उसने पहले जल के कुओं को बालुओं से पाट दिया और केवल उस एक कुएं को छोड़ा, जो उसके शिविर के निकट था, जिससे कि उसके गिरोह के लोगों को जलापूर्ति होती रहे। वह इस बात से अनभिज्ञ था कि अबू सुफ्यान कारवां लेकर सुरक्षित निकल गये हैं। जब उसने मक्का की सेना के पदचाप का कोलाहल अपनी ओर आते हुए सुना, तो उसे लगा कि वह कारवां ही है।

कई दिनों तक तपते बालू के रेगिस्तान में कष्टसाध्य यात्रा के पश्चात रमजान के सत्रवें दिन जब मक्का की सेना बद्र में पहुंची, तो उसके सैनिक थक चुके थे और भयानक प्यास से व्याकुल हो गये थे। किंतु उनको जल प्राप्त करने से रोकने के लिये मुहम्मद द्वारा सभी कुओं को नष्ट कर दिया गया था। मक्का की सेना की ओर लगभग 700 (कुछ कहते हैं 1000) योद्धा थे, जबकि मुहम्मद के गिरोह में लगभग 350 हमलावर थे। अगले दिन जब मक्का की सेना और मुहम्मद के गिरोह में रक्तरंजित संघर्ष हुआ, तो प्यास से व्याकुल मक्का के सैनिक तीव्रता से धराशायी होने लगे और अपनी बड़ी क्षति कराकर उन्हें पीछे हटना पड़ा, जबकि मुहम्मद

---

[46] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 286-88

[47] यह स्पष्ट होता है कि इस समय भी, अल्लाह द्वारा जिहाद या पवित्र जंग की अनुमति दिये जाने के एक वर्ष से अधिक समय पश्चात मुहम्मद के बहुत से अनुयायी हिंसा में लिप्त होने को अनिच्छुक थे।

[48] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 289

के गिरोह के केवल 15 हमलावर मारे गये। मुहम्मद के आदेश पर युद्धभूमि में बंदी बनाये गये मक्का के कुछ सैनिकों को क्रूरता से काट डाला गया।[49]

बद्र की बड़ी जीत से दुस्साहित रसूल ने शीघ्र ही मदीना के बनू कैनुका की यहूदी जनजाति पर हमला कर दिया और उन्हें मार-काट कर वहां से भगा दिया (नीचे वर्णन है)।

उहुद का विनाशकारी संघर्ष

बद्र की अविश्वसनीय जीत से मुहम्मद और उसके समुदाय में यह आत्मविश्वास भर गया कि जंग में विरोधियों पर जीत में अल्लाह उनकी सहायता कर रहा है। अल्लाह ने इस बात की पुष्टि के लिये एक टेलर-मेड (आवश्यकतानुसार) आयत भेजकर बताया कि वह, वास्तव में, जंग में फरिश्ते भेजकर उनकी सहायता करता है, जिससे 20 अडिग मुसलमान लड़ाके 200 विरोधियों पर भारी पड़ जाते हैं [कुरआन 8:66]। मुहम्मद ने शीघ्र ही मक्का के कारवाओं पर तीन और हमले कर उनका माल लूट लिया। इससे कुरैशों की आजीविका का साधन वाणिज्य लगभग रुक गया और वे अत्यंत क्रुद्ध हो गये, तो उन्होंने मुहम्मद व उसके गिरोह के हमलों का आक्रामक प्रत्युत्तर देने का निर्णय किया। 23 मार्च 625 को अबू सुफ्यान के नेतृत्व में मक्का के लगभग 3000 योद्धा मदीना के निकट उहुद नामक स्थान पर मुहम्मद के नेतृत्व वाले गिरोह के 700 मुसलमानों से भिड़ गये। संख्या के आधार पर दुर्बल मुसलमान गिरोह तुरंत ही दुबक गया और मुसलमानों की बड़ी क्षति हुई। इस युद्ध में मुहम्मद को भी एक पत्थर आकर लगा, जिससे उसके दांत टूट गये और वह अचेत होकर गिर पड़ा। इस युद्ध में मुसलमानों के 74 जिहादी मारे गये, जबकि मक्का की सेना के केवल 9 लोगों ने प्राण गंवाये।

चूंकि इस विनाशकारी युद्ध से पूर्व मुहम्मद ने वचन दिया था कि फरिश्तों की सहायता से 20 मुसलमान भी 200 शत्रुओं को मार-गिरायेंगे, किंतु उहुद के इस युद्ध में इतनी बड़ी संख्या में मुसलमान मारे गये कि उसके अनुयायियों समेत गिरोह के अन्य सदस्यों में मुहम्मद के पैगम्बरी के दावे पर संदेह व्याप्त हो गया और एक प्रकार से उनमें मुहम्मद के प्रति वैर-भाव पनप गया। उसके विरोधी, विशेष रूप से यहूदी और असंतुष्ट मुनाफ़िक अब्दुल्ला इब्न उबै (नीचे देखें कि वह क्यों असंतुष्ट था) ने भी इस घटना का उपयोग मुहम्मद को तुच्छ दर्शाने एवं उसके पैगम्बर होने के दावे पर संदेह फैलाने के लिये किया। हर बार के जैसे, इस बार भी अल्लाह मुहम्मद के बचाव में आया और उसकी पैगम्बरी के प्रति वैर व संदेह को काटते हुए आयतों की लंबी श्रृंखला उतार दी [कुरआन 3:120-200]।

विरोधियों को पराजित करने में फरिश्तों की सहायता के उसके आश्वासन पर अविश्वास प्रकट करते हुए परिवाद (शिकायत) करने वालों का मुंह बंद करने के लिये अल्लाह ने इसका दोष मुहम्मद के अनुयायियों पर ही मढ़ दिया और उनमें दृढ़ता व धैर्य का अभाव बताते हुए आयत उतारी: 'स्मरण करो, जब तुम (रसूल) मोमिनों से कह रहे थेः 'क्या तुम्हारे लिये इतना ही पर्याप्त

---

[49] इबिद, पृष्ठ 289-314; वॉकर, पृष्ठ 119-20

नहीं है कि अल्लाह तुम्हें (विशेष रूप से) उतारे गये तीन हज़ार फ़रिश्तों से सहायता दे?' हां, यदि तुम अडिग रहोगे और आज्ञाकारी रहोगे, तो भले ही वे (शत्रु) तुम्हारे सामने तूफान के जैसे और पूरे उत्साह (उत्तेजना) के साथ आ जाएं, तुम्हारा स्वामी तुम्हें (तीन नहीं, पांच हज़ार चिन्ह लगे फ़रिश्तों की सहायता भेजेगा, जिससे कि तुम उन पर भयानक हमला कर दो' [कुरआन 3:224-25]।

अल्लाह ने कहा कि इससे पूर्व बद्र की जंग में जब मुसलमानों को हार का भय सता रहा था, तो उसने वास्तव में उनकी सहायता की थी; और उस सहायता के लिये उन्हें उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए: 'स्मरण करो, तुम्हारे (मुसलमानों में) दो जत्थे (बद्र में) कायरता में पड़ गये थे; किंतु अल्लाह उनका रक्षक था, और मोमिन को (सदा) अल्लाह में विश्वास बनाये रखना चाहिए। बद्र में जब तुम तुच्छ व छोटी फौज वाले थे, तो अल्लाह ने तुम्हारी सहायता की थी; अल्लाह से डरो; इस प्रकार उसके उसके प्रति कृतज्ञता दिखाओ' [कुरआन 3:122-23]।

अल्लाह ने मुसलमान लड़ाकों पर यह भी आरोप लगाया कि उन्होंने मुहम्मद के आदेश पर ध्यान नहीं दिया और उसने उहुद में उनकी पराजय का का यही कारण बताया: '(और स्मरण करो) जब तुम (पहाड़ी पर) चढ़े (भागे) जा रहे थे और तुम किसी की ओर मुड़कर नहीं देख रहे थे, जबकि रसूल (लड़ने के लिये) तुम्हें, पीछे से, पुकार रहे थे। इसलिये उसने (अल्लाह ने) तुम्हें दुख के बदले दुख दे दिया, जिससे (वह तुमको पाठ पढ़ा सके) कि जो तुमसे खो गया अथवा जो विपत्ति तुम पर आ पड़ी है, उस पर संताप न करो' [कुरआन 3:153]।

आगे अल्लाह ने मुहम्मद से पूर्व आये अपने पैगम्बरों व उनके अनुयायियों का उदाहरण देते हुए बताया कि किस प्रकार उन लोगों ने हतोत्साहित हुए बिना उसके उद्देश्य से लिये निरंतर संघर्ष किया। अल्लाह ने मुहम्मद के अनुयायियों को भी उनके जैसा करने को कहा: 'कितने ही रसूल लड़े (अल्लाह के मार्ग में), और उनके साथ मिलकर बहुत-से अल्लाह वाले (लड़े)? अल्लाह के मार्ग में लड़ते हुए उन पर विपदा भी आयी, तो भी वे हतोत्साहित नहीं हुए, और न ही उनकी (इच्छा) मंद हुई, न ही वे दबे। और अल्लाह को वो ही प्रिय हैं, जो दृढ़ व धैर्यवान होते हैं' [कुरआन 3:146]।

उहुद में जो मारे गये थे, उनके विषय में अल्लाह ने आयत उतार कर उनके संबंधियों व साथियों को सांत्वना दी कि वे वास्तव में मरे नहीं हैं, अपितु तन्मयावस्था में चले गये हैं; और वे जन्नत पहुंच गये हैं, जहां वे आनंद का भोग कर रहे हैंः 'जो अल्लाह के मार्ग में मृत्यु को प्राप्त हुए, उन्हें मरा हुआ न समझो। नहीं, वे जीवित हैं, अपने स्वामी के पास आजीविका पा रहे हैं; वे अल्लाह द्वारा प्रदान किये गये पारितोषिक का आनंद-भोग कर रहे हैं: और जो उनसे मिले नहीं, जो (उनके परम आनंद में) साथ होने से अभी तक पीछे रह गये हैं कि उनका (शहादत) वैभव इस तथ्य में है कि उन्हें कोई भय नहीं होगा; न ही उनको कभी कोई दुख-विषाद होगा' [कुरआन 3:168-70]।

इसी बीच उहुद की जंग के पांच मास पश्चात अगस्त 625 में मुहम्मद ने मदीना के बनू नज़ीर की यहूदी जनजाति पर हमला किया और उन्हें पुनः मारकाट कर वहां से निर्वासित कर दिया। किंतु कुरैशों के विरुद्ध उहुद के विनाशकारी जंग से सीख लेते हुए मुहम्मद ने कुछ समय के लिये मक्का के कारवां पर हमला करना बंद कर दिया। उहुद में अपने विजय अभियान के पश्चात कुरैशों ने आगे ध्यान नहीं दिया। चूंकि मुहम्मद ने उनके कारवां पर हमला करना बंद कर दिया था, तो संभवत: उन्होंने सोचा कि उसे सीख

मिल गयी है और अब वो आगे कोई खतरा उत्पन्न नहीं करेगा। इस बीच, मुहम्मद ने अपना समय ताकत एकत्र करने में लगाया और धर्मांतरित मुसलमानों की संख्या व भौतिक संसाधन (निर्वासित की गयी बनू क़ैनुका और बनू नज़ीर जनजाति से लूटा गया धन) जुटाया। लगभग एक वर्ष के विराम के पश्चात, उसने 626 ईसवी में पुनः मक्का के कारवां पर हमले करने प्रारंभ कर दिये। मालदार कारवां पर निरंतर हो रहे सफल हमलों में मुसलमान लूट की धन-संपत्ति, ऊंट व दास पाकर धनी होने लगे। अब मुहम्मद ने अपने लुटेरे गिरोह को सबल व सुदृढ़ बनाने के लिये आसपास के गैर-मुसलमान जनजातियों को भी हमले में सम्मिलित होने के लिये बुलाया। कुछ गैर-मुसलमान जनजातियां उसके लूटपाट की कार्रवाइयों में भाग लेने गिरोह में आ गयीं, उन्होंने ऐसा संभवतः दो कारणों से किया: लूट का धन प्राप्त करने के लोभ और मुहम्मद के हमलों से अपनी सुरक्षा के लिये। इस समय तक, मुहम्मद ने मदीना की दो सबल जनजातियों पर हमला कर उन्हें निर्वासित कर दिया था, जिससे स्पष्ट भान होता है कि जो गैर-मुसलमान जनजातियां मुहम्मद के गिरोह में सम्मिलित हो गयी थीं, यदि वे उसकी बात न माने होते, तो उन पर मुहम्मद के हमले का खतरा था।

खंदक की जंग

मक्का के कारवांओं पर कुछ समय पूर्व हुए हमले से स्पष्ट संदेश गया कि कुरैशों पर मुहम्मद का खतरा अभी टला नहीं है। इसलिये अबू सुफ्यान ने मुहम्मद के खतरे को नष्ट करने के लिये 627 ईसवी में एक और प्रत्युत्तर-आक्रमण की तैयारी की। उन्होंने आस-पड़ोस की जनजातियों से साथ देने का आह्वान किया और मुहम्मद के हमले को झेल चुके बनू गताफन, बनू सुलैम व बनू असद सहित अनेक जनजातियों ने उनका साथ देने का निर्णय किया। अबू सुफ्यान के नेतृत्व में 10000 योद्धाओं (कुछ कहते हैं 7000) की महासंघ सेना एकत्र हुई। उस समय मुहम्मद की क्षमता अधिक से अधिक 3000 लड़ाकों को जुटा पाने की थी। तब उसके समुदाय के लिये स्थिति अत्यंत गंभीर दिख रही थी।

सौभाग्य से मुहम्मद को एक धर्मांतरित फारस का प्रसिद्ध सलमान मिल गया था, जिसने मुहम्मद को मदीना के अपने निवास के चारों ओर खंदक खोदने का सुझाव दिया। फारस में शत्रु के आक्रमण से बचाव के लिये ऐसा करना सामान्य रणनीति थी, किंतु अरब में इसका प्रचलन नहीं था। मुहम्मद को यह सुझाव तुरंत समझ में आ गया और उसने अपने समुदाय की परिधि के चारों ओर खंदक खोदने का आदेश दिया। मुसलमान बस्ती के चारों ओर खंदक खोदकर घरों की बाहरी भित्तियां (दीवारें) पत्थरों से सुरक्षित कर दी गयीं। कुरैशों ने नगर की घेराबंदी कर दी। किंतु वे मुसलमानों की इस युक्ति से अनभिज्ञ थे, इसलिये वे खंदक को पार कर पाने में विफल रहे। लंबी घेराबंदी के पश्चात 21 दिन (कुछ कहते हैं लगभग एक मास) निकल गये, तो मक्का की सेना पीछे हट गयी। इस घेराबंदी में अधिक संघर्ष नहीं हुआ। मुहम्मद की ओर से केवल 5 जिहादी मारे गये, जबकि मक्का की ओर के तीन सैनिकों को प्राण गंवाने पड़े। इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व यहूदी धर्म से ईसाई धर्म में दीक्षित हुए जिस सलमान के सुझाव ने उस दिन मुसलमानों को बचा लिया था, उसके अच्छे ज्ञान के लिये मुहम्मद ने उसकी और उसके समुदाय की भली-भांति प्रशंसा की।[50]

---

[50] इबिद पृष्ठ. 122-22; इब्न इस्हाक, पृष्ठ 456-61; मुईर, पृष्ठ 306-14

ज्यों ही कुरैशों ने घेराबंदी हटा ली, मुहम्मद ने मदीना में अंतिम शेष यहूदी जनजाति बने क़ुरैजा पर कुरैशों की सहायता का आरोप लगाते हुए हमला कर दिया। जब यहूदियों ने आत्मसमर्पण कर दिया, तो उसने यहूदियों के पुरुषों को काट डाला और उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक पकड़कर दास बना लिया (नीचे वर्णित है)।

मक्का की जीत और काबा पर बलपूर्वक अधिकार

628 ईसवी तक मुहम्मद ने या तो मदीना की सभी सबल यहूदी जनजातियों को मारकर निर्वासित कर दिया अथवा उन सबको मार-काट के नष्ट कर दिया तथा आसपास के क्षेत्रों की बहुत सी जनजातियों को धमकी देकर या हमले करके अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया। वह अब मक्का के अपने पैतृक नगर एवं उसमें स्थित काबा पर बलपूर्वक अधिकार करने में पर्याप्त समर्थ हो चुका था। वह अपना पैगम्बरी मिशन प्रारंभ करने के आरंभिक दिनों से ही काबा पर अपना दावा ठोंक रहा था। इसके अतिरिक्त वह काबा ही था, वर्षों से जिसकी ओर मुंह करके मदीना में उसके समुदाय के लोग नमाज पढ़ते आ रहे थे। इस प्रकार काबा उसके मजहबी मिशन का सबसे पवित्र प्रतीक और बलपूर्वक अधिकार करने का सबसे बड़ा कारण चुका था। काबा का बड़ा आर्थिक महत्व भी था (जैसा कि आज यह सऊदी अरब के लिये है), क्योंकि अरब के लोगों के लिये उमरा और हज नामक तीर्थयात्रा के केंद्र के रूप में यह लुभावना राजस्व-निर्माण उद्यम था। इसके अतिरिक्त अल्लाह ने कुरैशों से जंग करने और उन्हें पराजित करने के लिये कुरआन में अत्यधिक प्रयास व स्थान दिया था। इसलिये मक्का अपने अधीन लाना मुहम्मद के पैगम्बरी व्यवसाय का मुख्य मिशन था।

हुदैबिया की संधि: खंदक की जंग के एक वर्ष पश्चात और मक्का से मदीना स्थानांतरित होने के छह वर्ष के पश्चात, मार्च 628 ईसवी में मुहम्मद ने अपने पैतृक नगर की ओर बढ़ने का साहस किया। उसने आसपास की जनजातियों को उसके अभियान में सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया, किंतु उन जनजातियों ने उसके इस खतरनाक अभियान के आमंत्रण को नकार दिया। छोटी तीर्थयात्रा उमरा के समय मुहम्मद 1300 से 1525 हथियारबंद मुसलमानों की अगुवाई करते हुए मक्का की ओर बढ़ा। कुरैशों को मुहम्मद के आने की सूचना मिली, उन्हें पुनः वो सब भयानक रक्तपात, अपमान और अत्याचार स्मरण हो उठे, जो मुहम्मद ने उनके साथ किया था। इसलिये उन्होंने अब आगे से कभी मुहम्मद को मक्का नगर में प्रवेश की अनुमति न देने का प्रण किया। जब मुहम्मद को कुरैशों के प्रण का पता चला, तो वह ठहर गया और हुदैबिया नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाल दिया। उसने मक्का के लोगों को संदेश भिजवाया कि वह केवल शांतिपूर्वक तीर्थयात्रा करने आया है और इसके बाद मदीना वापस लौट जाएगा।

मुहम्मद तीर्थयात्रा पर जाने पर अड़ा हुआ था, जबकि कुरैश दृढ़ता से इसके विरोध में थे। मुहम्मद की फौजी ताकत और क्रूरता व रक्तपात करने की क्षमता को देखते हुए कुरैशों ने रक्तपात की संभावना वाले संघर्ष को टालने के लिये उसके साथ समझौता करने का निर्णय किया। समझौता-वार्ता की अवधि में गहन सौदेबाजी हुई, जिसके फलस्वरूप मुहम्मद का दामाद और इस्लाम का तीसरा खलीफा उस्मान समझौते के लिये मक्का वालों के शिविर की ओर गया। उस्मान के लौटकर आने में विलंब हो रहा था, तो मुसलमान खेमे में एक प्रवाद (अफवाह) फैल गया कि वह मारा गया। मुहम्मद ने तुरंत एक बबूल के पेड़ के नीचे अपने हथियारबंद साथियों को एकत्र किया और एक-एक कर उन्हें संकल्प दिलाया कि वे ''मृत्यु तक उस्मान के साथ'' रहेंगे। इस्लामी इतिहास में यह प्रसिद्ध शपथ 'वृक्ष का संकल्प' के रूप में जानी जाती है। मुहम्मद ने अपने शिविर में मुसलमानों में इतना मजहबी उन्माद भड़काया

कि वे सभी तुरंत शत्रु पर झपट कर आत्महत्या करने की मनःस्थिति में आ चुके थे। तभी उस्मान शिविर में वापस लौटा और भयानक रक्तपात टल गया। समझौते में निश्चित शर्तों को लेकर उस्मान आया और समझौते पर हस्ताक्षर हुए। यही समझौता प्रसिद्ध हुदैबिया की संधि था।

इस संधि में प्रावधान किया गया कि दस वर्षों तक दोनों पक्ष शत्रुता पर विराम लगाएंगे। इसमें यह भी कहा गया कि मुहम्मद का दल काबा की यात्रा किये बिना मदीना लौट जाएगा, पर अगले वर्ष से तीन वर्षों तक उन्हें वहां वार्षिक तीर्थयात्रा करने की अनुमति होगी।[51]

यहां, कुरैशों की ओर से बड़े विरोध को देखते हुए मुहम्मद ने ढोंग किया कि वह तीर्थयात्रा के लिये आया था, न कि जंग के लिये। परंतु उसकी वास्तविक मंशा मक्का पर अधिकार करने की थी, जैसा कि इब्न इस्हाक लिखा है: 'चूंकि रसूल ने जो लक्ष्य रखा था, उसके अनुसार रसूल के साथी निस्संदेह मक्का पर बलपूर्वक अधिकार करने के लिये निकले थे और जब उन्होंने देखा कि रसूल ने स्वयं इस काम का बीड़ा उठाया था, परंतु शांति-संधि हो गयी और उन्हें पीछे हटना पड़ रहा है, तो वे लगभग मृत्यु तुल्य अवसाद में जाने लगे।'[52] सशस्त्र संघर्ष में कुरैशों से भिड़ने की अपेक्षा कायरतापूर्वक संधि पर हस्ताक्षर करने से रक्त के प्यासे उमर सहित कुछ मुसलमानों में क्रोध पनप गया। इस पर मुहम्मद ने उन्हें आश्वासन दिया कि उसने अल्लाह के निर्देश पर यह संधि की है और इससे अंततः उसके गिरोह को लाभ होगा। इस घटना के बाद अल्लाह को मुहम्मद के गिरोह को मनाने के लिये कुरआन का पूरा सूरा/अध्याय 48 (सूरा अल-फतह या विजय) उतारने का कष्ट उठाकर यह समझाना पड़ा कि वास्तव में वर्तमान परिस्थिति में यह संधि अधिक उचित है और विजय के समान है तथा निर्णायक विजय शीघ्र होगी।

मुहम्मद द्वारा संधि का उल्लंघनः बहुत कम समय में ही मुहम्मद के गिरोह ने इस संधि का उल्लंघन किया। मक्का के एक धर्मांतरित अबू बशीर ने संधि का उल्लंघन करते हुए एक कुरैश की हत्या कर दी। उसने लगभग सत्तर मुसलमान लुटेरों वाला गिरोह बनाया और मुहम्मद की मूक सहमति से मक्का के कारवां पर हमले करने लगा। हमले में वह कारवां के किसी भी व्यक्ति को जीवित नहीं छोड़ता था। अबू बशीर की कार्रवाइयों पर इब्न इस्हाक ने लिखा है: 'तब अबू बशीर निकल पड़ा और ज़ूअल मरवा के क्षेत्र में मार्ग पर समुद्र तट के किनारे रुकने तक चलता रहा... यह वह मार्ग था जिससे कुरैश सीरिया जाने के अभ्यस्त थे... लगभग 70 लुटेरे उसके साथ हो लिये थे और उन लुटेरों ने अचानक कुरैशों पर हमला बोल दिया, जिसे पकड़ पाये उसे मार डाला और आसपास से निकलने वाले प्रत्येक कारवां के लोगों को टुकड़ों-टुकड़ों में काट डाला।'

निरीह कुरैशों ने सबकुछ संधि पर छोड़ दिया। यद्यपि अभी भी उन्होंने मुहम्मद को ''संबंधी होने की दुहाई देते हुए' भीख मांगी कि वह उन कारवां पर हमला करने से अपने जिहादी लुटेरों को रोके। इस निवेदन पर मुहम्मद ने अपने हमलावरों को मदीना वापस बुला लिया। कुछ धर्मांतरित औरतें, जो अपने परिवार द्वारा रोककर रखी गयी थीं, मदीना में मुहम्मद के समुदाय में सम्मिलित

---

[51] मुईर, पृष्ठ 353-59; इब्न इस्हाक, पृष्ठ 500-05

[52] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 505

होने के लिये मक्का से भाग निकलने में सफल हो गयीं। संधि के अनुसार इन औरतों को वापस किया जाना था। जब मक्कावासी उन औरतों को लेने आये, तो मुहम्मद ने संधि का पूर्ण उल्लंघन करते हुए इन औरतों को वापस करने से मना कर दिया।[53]

मुहम्मद ने संधि तोड़ दी और मक्का पर हमला कर दिया: हुदैबिया की संधि पर हस्ताक्षर करने के दो वर्ष की अवधि में मुहम्मद कुरैशों को उखाड़ फेंकने में पर्याप्त ताकतवर हो चुका था। इसलिये उसने इस दस वर्ष की संधि को तोड़ दिया और मक्का पर हमले का आदेश दिया। वह कुरैशों पर अचानक हमला करना चाहता था। जब तैयारियां चल रही थीं, तो वह अल्लाह से प्रार्थना करता रहा: ''हे अल्लाह, कुरैशों का अंधा व बहरा बना दो, जिससे कि हम अचानक उनकी भूमि पर जाकर हमला कर सकें।''[54] जनवरी 630 में वह 10000 की मजबूत सेना की अगुवाई करते हुए मक्का की ओर बढ़ चला।

छिपते-छिपाते मुसलमान फौज रात्रि में मक्का के निकट पहुंच गयी और अल-ज़हरान नामक स्थान पर पड़ाव डाला। रात के अंधेरे में प्रत्येक जिहादी ने पृथक-पृथक आग जलायी, जिससे कुरैशों में यह भ्रम उत्पन्न किया जा सके कि वहां एक अत्यंत विशाल फौज एकत्र है। मुहम्मद की फौज का अनुमान लगाते हुए उसके चाचा अल-अब्बास ने कहा, ''आह! कुरैशों, मुहम्मद मक्का में बलपूर्वक प्रवेश कर गया, तो कुरैश जाति का सदा के लिये अंत हो जाएगा, अतः इससे पहले कि वह यहां पहुंचे, तो तुम लोग उसके पास जाकर अपनी रक्षा की गुहार लगाओ।''[55] आगे बढ़ने से पूर्व, आइए इस विवाद का परीक्षण करें कि वास्तव में किसने संधि का उल्लंघन किया था।

वास्तव में किसने तोड़ी थी हुदैबिया की संधि?

वैसे तो मुसलमान डेनियल पाइप्स से घृणा करते हैं, क्योंकि वे इस्लाम पर वस्तुनिष्ठ विचार प्रकट करते थे, किंतु पाइप्स ने दावा किया कि इस संधि को मुहम्मद ने नहीं तोड़ा था, अपितु तकनीकी रूप से कुरैशों ने ऐसा किया था। वह लिखते हैं, 'तकनीकी रूप से मुहम्मद इस संधि को तोड़ने के अपने निर्णय में सही था, क्योंकि कुरैशों अथवा उनके सहयोगियों ने इस संधि की शर्तों का उल्लंघन किया था।'[56] उस प्रचलित इस्लामी मत से उनका विचार मिलता है कि वो मक्का के ही लोग थे, जिन्होंने संधि का उल्लंघन किया था।[57] कुरैशों द्वारा संधि का कथित उल्लंघन का संबंध तीसरे पक्ष की दो जनजातियों के मध्य चल रही अनबन थी: ये जनजातियां बनू बक्र और बनू खुज़ा थीं। बनू बक्र कुरैशों की सहयोगी थी, जबकि बनू ख़ुज़ा मुहम्मद के साथ थी।

---

[53] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 507-09; मुईर, पृष्ठ 364-65

[54] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 544

[55] इबिद, पृष्ठ 547

[56] पाइप्स डी (2002) मिलीटैंट इस्लाम कम्स टू अमेरिका, डब्ल्यूडब्ल्यू नॉर्टन एंड कंपनी, न्यूयार्क, पृष्ठ 185

[57] द टेकिंग आफ मक्का, मिनिस्ट्री आफ हज (सऊदी अरब), http://www.hajinformation.com/main/b2109.htm

अल-तबरी के अनुसार, मुहम्मद के परिदृश्य में आने से पूर्व व्यापारिक यात्रा पर जा रहे बनू बक्र जनजाति के व्यापारी मलिक बिन अब्द पर बनू ख़ुज़ा के कुछ लोगों ने हमला किया। प्रत्युत्तर में बनू बक्र के लोगों ने बनू ख़ुज़ा के एक व्यक्ति को मार डाला। दूसरी बार हमला करके बनू ख़ुज़ा के लोगों ने बनू बक्र जनजाति के प्रमुख व्यक्तियों में सम्मिलित सलमा, कुलसुम व जुऐब नामक तीन भाइयों को मार डाला। इसकी प्रतिक्रिया में बनू बक्र के लोगों ने बनू ख़ुज़ा के एक व्यक्ति मुनाब्बिह की हत्या कर दी, जिसमें कुछ कुरैशों ने कथित रूप से रात के अंधेरे में बनी बक्र की सहायता की थी।[58] इस समय बनू ख़ुज़ा मुहम्मद का मावला (सहयोगी) बन चुका था। इस प्रकार पाइप्स के जैसे विद्वानों के अनुसार, कुरैशों ने हुदैबिया की संधि का उल्लंघन किया था और मुहम्मद मक्का पर हमला करने में विधिक रूप से सही था।

यहां सबसे पहले जिस बात की उपेक्षा की गयी है, वह यह है कि खुज़ा जनजाति ही बनू बक्र के साथ अनबन को उकसाने वाला था। खुज़ा जनजाति ने बनू बक्र पर दो बार हमला किया और उनके चार व्यक्तियों को मार डाला। दूसरे हमले से पूर्व बनू बक्र ने बनू खुज़ा पर केवल एक बार आक्रमण किया था, जिसमें खुज़ा का एक व्यक्ति मारा गया था। बाद में पुनः हमला करने के पश्चात भी खुज़ा ने बनू बक्र के चार व्यक्तियों की हत्या कर दी थी, जबकि बनू बक्र के लोगों ने अपने विराधियों के केवल दो व्यक्तियों की हत्या की थी। मुहम्मद की सहयोगी जनजाति ख़ुजा के लोगों ने बनू बक्र के चार अतिरिक्त लोगों की हत्या की थी।

अगली जिस बात की यहां उपेक्षा की गयी, वह यह है कि पहली बात तो यह थी कि मुहम्मद को मक्का पर बलपूर्वक अधिकार करने अथवा काबा की मूर्तियों वाले मंदिर में प्रवेश करने का प्रयास करने अधिकार नहीं था, क्योंकि इसी के कारण हुदैबिया की संधि हुई थी। पाइप्स इस तथ्य को भी पूर्णतः विस्मृत कर रहे हैं कि मुहम्मद ने अवसर पाते ही कुरैश जनजाति के सदस्यों की हत्या और उनके व्यापारिक-कारवां को लूटकर सबसे पहले और बार-बार संधि की शर्तों का उल्लंघन किया था। यह बात भी सोचने वाली है कि जब बनू खुज़ा के सदस्यों की हत्या बनू बक्र के लोगों ने की थी, तो मुहम्मद ने इसके उत्तरदायी बनू बक्र पर हमला न करके कुरैशों पर क्यों किया? सबसे अच्छा होता कि बनू खुज़ा कुरैशों के स्थान मक्का पर हमला करता और मुहम्मद उनके सहयोग में खड़ा हो जाता। पर सच तो यही है कि मुहम्मद का मक्का पर बलपूर्वक अधिकार करने के पीछे कोई तर्क या यथोचित कारण नहीं दिखता।

आइए, मक्का पर रसूल मुहम्मद के हमले पर वापस आएं। रसूल के ससुरों में से एक कुरैश नेता अबू सुफ्यान मुसलमानों की खतरनाक मंशा भांपकर रात के अंधेरे में ही चुपचाप मुहम्मद से मिलने निकल पड़े, जिससे कि वे मुहम्मद को मक्का पर हमला न करने के लिये मना सकें। मार्ग में अबू सुफ्यान को मुहम्मद का चचेरा भाई अल-अब्बास मिला, जिसने उन्हें सुरक्षा का आशवासन दिया और मुहम्मद से मिलाने ले गया। उमर अल-खत्ताब (जो बाद में दूसरा खलीफा बना) उनसे टकरा गया और अबू सुफ्यान को

[58] अल-तबैर, अंक. 6, पृष्ठ 160-62

देखते ही चीख उठा: ''अबू सुफ्यान, अल्लाह का शत्रु! अल्लाह का धन्यवाद कि उसने बिना किसी समझौते या बातचीत के ही उसे लाकर सामने पटक दिया।'' तब उसने अपनी तलवार लहराते हुए बोला: ''मुझे इसका सिर धड़ से उतारने दो।''[59]

अल-अब्बास ने सुफ्यान को सुरक्षा का वचन देने के आधार पर उमर को मनाया कि वह इतना कठोर कदम न उठाये। मुहम्मद ने अल-अब्बास से कहा कि वह अबू सुफ्यान को अगले दिन प्रातःकाल ले आये। अगले दिन जब अबू सुफ्यान लाए गये, तो रसूल ने कहा: ''क्या यही समय नहीं है कि तुम समझ जाओ कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है?'' अबू सुफ्यान ने कभी नहीं माना कि मुहम्मद एक पैगम्बर है, इसलिये जब वह हिचकने लगे, तो क्रुद्ध मुहम्मद चीख पड़ा, ''तुम पर कोप हो, अबू सुफ्यान! क्या इसी समय तुम्हें नहीं मान लेना चाहिए कि मैं अल्लाह का रसूल हूं?'' इस पर अबू सुफ्यान बोले, ''मुझे अभी भी तुम्हारे रसूल होने पर संदेह है।'' अबू सुफ्यान के प्राण संकट में देखकर अल-अब्बास तुरंत बीच में पड़ा और बलपूर्वक उससे बोला, ''इससे पहले कि तुम्हारा सिर कट जाए, आत्मसमर्पण कर दो और स्वीकार कर लो कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है तथा मुहम्मद अल्लाह का रसूल है।'' अबू सुफ्यान के पास उसकी बात मानने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा। अल-अब्बास ने तब मुहम्मद से निवेदन किया कि वह अबू सुफ्यान के लोगों के लिये कुछ करे। इस पर मुहम्मद बोला, ''जो भी अबू सुफ्यान के गृह में प्रवेश कर जाएगा, वह सुरक्षित रहेगा और जो अपने द्वार के किवाड़ बंद कर लेगा, वह सुरक्षित होगा तथा वह जो मस्जिद (काबा) में प्रवेश कर जाएगा, वह सुरक्षित रहेगा।''[60]

मक्का वापस आकर अबू सुफ्यान ने अपने लोगों को बताया कि उनके नगर में मुहम्मद के प्रवेश का विरोध करना व्यर्थ है और उनसे बोला कि हारने वाली यह लड़ाई न लड़ो। अपितु अबू सुफ्यान ने 'अस्लीम तस्लाम' भी कहा अर्थात यदि तुम लोग बचना चाहते, हो तो मुसलमान बन जाओ। जो लोग अपने मूर्तिपूजक धर्म को बचाये रखना चाहते थे, उन्हें उन्होंने सुझाव दिया कि वे गृह के भीतर रहें अथवा उनके गृह में आकर शरण ले लें। अगले दिन प्रातः मुहम्मद की फौज मदीना की ओर बढ़ी। मक्कावासियों का एक हठी समूह, जिसने खालिद इब्न वलीद की फौज के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था, ने थोड़ा-बहुत प्रतिरोध किया। खालिद की पहुंच में जो भी आया, उसे उसने काट डाला तथा जो लोग अपने प्राण बचाने के लिये पहाड़ी पर भागे थे उन्हें दौड़ा लिया।

मक्का पर बलपूर्वक अधिकार करने के पश्चात मुहम्मद ने चीखते हुए काबा की सभी मूर्तियों को नष्ट करने का आदेश देते हुए कहा कि: सत्य (अब) पहुंच चुका है, और झूठ का नाश हो चुका है: क्योंकि झूठ (की प्रकृति) होती ही ऐसी है कि उसका अंत निश्चित है।'[61] बाद में अल्लाह ने मुहम्मद की इस उक्ति को अपनी एक आयत आयत के रूप में कॉपी कर लिया और कुरआन में जोड़ दिया [कुरआन 17:81]। मुहम्मद काबा के मध्य में खड़ा हुआ और उसने एक छड़ी से एक-एक कर उन मूर्तियों की ओर

---

[59] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 547

[60] इबिद, पृष्ठ 547-48

[61] इबिद, पृष्ठ 552

संकेत किया और धार्मिक मक्कावासियों द्वारा जिन मूर्तियों की पूजा पूरे मनोयोग से सदियों से की जा रही थी, वे टुकड़े-टुकड़े कर दी गयीं। मुहम्मद ने स्वयं काठ की उस पेंडुकी (कबूतर) को नष्ट किया, जो कि कुरैशों के देवता थे।

मक्का पर बलात् अधिकार और काबा की लूटपाट से धन (माल) प्राप्त करने के पश्चात मुहम्मद ने खालिद बिन वलीद को मक्का से दो दिन की यात्रा पर स्थित नखला में अल-उज़्ज़ा की मूर्ति-मंदिर के विध्वंस के लिये भेजा।[62] मुहम्मद के अम्र नामक अनुयायी ने हुज़ैल जनजाति द्वारा पूजित सुवा नामक मूर्ति-चित्र को तोड़ा; कोजैद में पूजी जाने वाली प्रसिद्ध देवी अल-मनात के मंदिर को मदीना के मुसलमानों के उस गिरोह ने नष्ट कर दिया, जिसके सदस्य पहले कभी इस देवी के भक्त हुआ करते थे।[63] जिस दिन मुहम्मद ने मक्का पर अधिकार किया, अधिकांश मूर्तिपूजकों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। आगे बढ़ने से पूर्व आइए, मक्का पर बलपूर्वक अधिकार करने के अवसर पर मुहम्मद द्वारा कुरैशों के साथ किये गये उदार व्यवहार के कुछ लोकप्रिय दावे का परीक्षण करें।

मक्कावासियों को मुहम्मद का क्षमादान

रसूल मुहम्मद की मक्का पर जीत के संबंध में मुसलमान पारंपरिक रूप से बहुत से दावे करते हैं।

1. प्रथमतः, यह कि मुसलमान फौज ने नगर में शांति से बिना किसी प्रतिरोध के प्रवेश किया था और कुरैशों द्वारा उनका स्वागत किया गया था।
2. द्वितीयतः, यह कि कुरैशों ने बिना किसी दबाव के बड़ी संख्या में अपनी इच्छा से इस्लाम स्वीकार किया।
3. तृतीयतः, यह कि मुहम्मद ने कुरैशों के प्राण न लेकर उनके प्रति आदर्श क्षमादान दिखाया।

मुहम्मद का मक्का में शांतिपूर्ण प्रवेशः हुदैबिया की 10 वर्षीय संधि करने के मात्र दो वर्ष पश्चात ही इस संधि को तोड़कर मुहम्मद ने मक्का पर हमला किया, किंतु इस तथ्य के बाद भी मुसलमानों को लगता है कि मक्का पर जीत शांतिपूर्ण कार्रवाई थी। निस्संदेह, मुहम्मद और उसके अनुयायियों ने अनवरत उन दो वर्षों में उस संधि का उल्लंघन किया था। जहां तक मक्का में बिना प्रतिरोध मुहम्मद के प्रवेश के दावे का संबंध है, तो यह समझना कठिन नहीं है कि यदि उस मक्कावासियों ने अपने नगर की रक्षा करने का प्रयास किया होता, तो क्या हुआ होता। नगर पर हमला करने से पूर्व मुहम्मद ने अबू सुफ्यान पर क्या दबाव डाला था? वह दबाव था: या तो इस्लाम स्वीकार करो अथवा तुम्हारा सिर धड़ से पृथक कर दिया जाएगा, यही था ना? और जब मक्का के कुछ हठी लोगों ने मूर्खता में खालिद बिन वलीद की फौज का विरोध किया, तो वे लोग उसकी फौज के तलवार के शिकार बन गये। मुसलमानों को बिना प्रतिरोध इस कारण प्रवेश नहीं मिला कि वे शांतिप्रिय व अच्छे लोग थे, अपितु इसलिये मिला कि वे दुर्बल मक्कावासियों को रौंद डालने में पर्याप्त खतरनाक व समर्थ थे। मदीना की अभागी यहूदी जनजाति की नियति मक्कावासियों में मन-मस्तिष्क में कौंध

---

[62] इबिद, पृष्ठ 558

[63] मुईर, पृष्ठ 412

रही थी और विशेष रूप से यहूदी जनजाति बनू क़ुरैज़ा के लोगों को मुहम्मद द्वारा जिस प्रकार बर्बर ढंग से तलवारों से काट डाला गया था, वह भयानक अत्याचार व मारकाट का दृश्य उनकी आंखों के सामने नाच रहा था।

मक्का के लोगों का स्वेच्छा से इस्लाम स्वीकार करना: जिस दिन मुहम्मद ने मक्का पर बलपूर्वक अधिकार किया, उस दिन यदि कुरैशों ने बड़ी संख्या में इस्लाम स्वीकार कर लिया, तो एक प्रश्न स्वभाविक रूप से उठता है: दो वर्ष पूर्व जब मुहम्मद मदीना के अभियान पर आया था, तो उस समय उन लोगों ने इस्लाम स्वीकार क्यों नहीं किया था? उस समय मक्का के लोग अपने रक्त की अंतिम बूंद तक मुहम्मद का मक्का में प्रवेश रोकने के लिये तत्पर क्यों थे? मक्का के लोगों द्वारा इस्लाम व मुहम्मद के विरोध का ही परिणाम था कि मुहम्मद हुदैबिया की संधि पर हस्ताक्षर करने पर बाध्य हुआ। इसके अतिरिक्त हुदैबिया की संधि होने के दो वर्षों में मुहम्मद ने ऐसा कोई भी शांतिप्रिय व प्रिय कार्य नहीं किया, जो कि मुहम्मद के मक्का पर विजय के दिन बड़ी संख्या में कुरैशों को इस्लाम स्वीकार करने के लिये प्रेरित करता। अपितु मुहम्मद ने अवसर मिलते ही सबसे पहले उस संधि का उल्लंघन किया और उसके अनुयायियों ने अनवरत् कुरैशों के कारवां व उसमें सम्मिलित लोगों पर हमला करके उन पर भयानक अत्याचार किये। मुहम्मद ने इस संधि के समाप्त होने के आठ वर्ष पूर्व ही इसे तोड़ भी दिया। मुहम्मद ने यहूदियों के सुदृढ़ क्षेत्रों खैबर, बनू सुलैम, बनू लीस, बनू मुर्रह, ज़ात अल्लह, मुताह और बनू नेद्ज आदि अन्य गैर-मुस्लिम जनजातियों पर अकारण ही हिंसक हमले का आदेश दिया।[64] अंततः अपने यहां के नागरिकों को अबू सुफ्यान को भी अस्लीम तस्लाम अर्थात यदि तुम सुरक्षित रहना चाहते हो, तो मुसलमान बन जाओ... का संदेश देना पड़ा। अपनी सुरक्षा के लिये मक्कावासियों के पास केवल दो विकल्प थे: पहला इस्लाम स्वीकार कर लें; और दूसरा उस मस्जिद (काबा) अथवा अबू सुफ्यान के गृह में आश्रय लें। इन घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम की शांतिप्रिय प्रकृति अथवा मुहम्मद का शांतिपूर्ण व प्रेममय व्यवहार या प्रेरणादायी कार्य जैसा कुछ नहीं था कि कुरैश उस दिन बड़ी संख्या में इस्लाम स्वीकार करने के लिये तैयार हो गये।

मुहम्मद का क्षमादान: मुसलमानों द्वारा आत्मसमर्पण करने वाले कुरैशों को प्राणदान देने की घटना को रसूल मुहम्मद की अनुकरणीय उदारता व क्षमादान के रूप में दिखाया जाता है। मुसलमान पारंपरिक रूप से इसे मुहम्मद की शत्रुओं पर अनुकरणीय करुणा के प्रमाण के रूप में उद्धृत करते हैं। मुसलमान ऐसा दर्शाते हैं कि इतिहास में कभी भी किसी नेता ने अपने परास्त शत्रु के प्रति ऐसा अद्भुत क्षमादान व सहिष्णुता नहीं दिखायी है। किंतु मुहम्मद हो या थोड़ी-बहुत भी समझ रखने वाला अन्य कोई व्यक्ति हो, वह ऐसे लोगों की हत्या कैसे कर सकता है, जो पहले ही अपने नगर को हथियाने का विरोध न करने पर सहमत हो चुके हों और जिनके नेता (अबू सुफ्यान) ने पहले ही मुहम्मद के मजहब व पैगम्बरी को स्वीकार कर लिया हो? मुहम्मद ने अबू सुफ्यान को वचन भी दिया था कि यदि उन्होंने मक्का पर उसके कब्जे के अभियान का विरोध नहीं किया, तो वह उन्हें हानि नहीं पहुंचायेगा।

---

[64] इबिद, पृष्ठ 392-93

यह स्पष्ट पता चलता है कि जब मुहम्मद आरंभ में अपने मजहब का उपदेश मक्का में दे रहा था, तो कुरैशों ने कभी भी उस पर कोई क्रूरता नहीं दिखायी थी। मुहम्मद तीस वर्षों तक कुरैशों के धर्म व परंपराओं का अपमान करता रहा, किंतु इसके बाद भी उन्होंने कभी उससे व्यवहार करने में सभ्यता की सीमा नहीं लांघी। यद्यपि मुहम्मद ही था, जिसने मक्का के कारवां पर लूटपाट करने के लिये उग्रता से हमले किये और इसी कारण उनके बीच में रक्तपात वाले अनेक संघर्ष हुए। मुहम्मद द्वारा अनवरत् रूप से मक्का के कारवां पर हमले और लूटपाट करने तथा उनके व्यापार को नष्ट करने से कुरैशों को भारी आर्थिक हानि व कठिनाई का सामना करना पड़ा था। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि वो कुरैश लोग मुहम्मद समेत उन सभी मुसलमानों के पिता, माता, भाई, बहन व संबंधी थे, जो मक्का से मदीना गये थे। क्या संसार का कोई क्रूरतम मनुष्य भी अपने ऐसे निकट संबंधियों पर तलवार चलायेगा, जो पहले ही उस क्रूरतम मनुष्य के इतने अकारण अत्याचार सह चुके हों?

आज के समय में भी मुसलमानों को यही लगता है कि मुहम्मद ने कुरैशों पर बहुत बर्बरता नहीं दिखायी थी। कुरैशों ने मुहम्मद के प्रति प्रत्यक्ष रूप से सभ्य व सहिष्णु व्यवहार किया था, किंतु तब भी सभी मुसलमान सोचते हैं कि कुरैशों का अपराध ऐसा अक्षम्य था कि रसूल को मक्का पर अपनी जीत के दिन ही उन सबको एकसाथ काट डालना चाहिए था।

वैसे मुहम्मद द्वारा मक्का को हथियाए जाने की घटना रक्तहीन नहीं थी। खालिद इब्न वलीद ने बर्बरतापूर्वक उन लोगों की हत्या कर दी थी, जिन्होंने उसका थोड़ा-बहुत भी प्रतिरोध किया था। मुहम्मद ने भी उन दस या बारह मक्कावासियों की हत्या का आदेश दिया था, जिन्होंने पहले इस्लाम छोड़ दिया था अथवा उसकी व उसके पंथ की आलोचना या उपहास किया था। प्रभावशाली परिवारों से संबंध रखने वाले कुछ निर्वासित लोगों के परिवारों ने प्रयास किया, तो उन्हें जीवनदान मिल गया। परंतु अंततः चार कुरैशों की हत्या कर दी गयी। मक्का की जीत के पश्चात मुहम्मद के आदेश पर जिन कुरैशों की हत्या की गयी, उनमें ऐसी दो गायिका बालिकाएं थीं, जिन्होंने मुहम्मद पर व्यंग्य-गीत रचे थे।[65] मुहम्मद ने मक्का के लोगों अर्थात कुरैश जनजाति के लोगों पर जो अत्याचार, रक्तपात किया था और जो अपमान, कष्ट, रक्तपात व कठिनाइयां दी थीं, उसकी तुलना में कुरैश लोगों ने मुहम्मद के साथ जिस प्रकार अपेक्षाकृत मानवीय व्यवहार किया था, उसको देखते हुए कोई भी विवेकपूर्ण न्याय मक्का के नागरिकों को मृत्युदंड नहीं ही देता, विशेष रूप से तब जबकि कुरैशों ने अपनी भूमि पर मुहम्मद के शासन को बिना शर्त स्वीकार कर लिया था। मुहम्मद की मक्का पर विजय के बाद आगे भी बर्बर प्रकार की क्रूरता की जाती रही। काबा के विध्वंस के पश्चात मुहम्मद ने खालिद बिन वलीद को आसपास की जनजातियों को अधीन बनाने के लिये भेजा। खालिद जज़ीमा जनजाति के पास पहुंचा और उनको अपने शस्त्र डाल देने का आदेश दिया। इब्न इस्हाक लिखता है: 'ज्यों ही उन्होंने अपने शस्त्र नीचे रख दिये, खालिद ने पीठ से उनके हाथ बांध दिये और उन्हें तलवार की नोंक पर रखा, उनमें से कइयों की हत्या कर दी।'[66] इस जनजाति ने पहले ही मुहम्मद के समक्ष समर्पण का प्रस्ताव दिया था। इस आधार पर खालिद के गिरोह के कुछ मदीना नागरिकों व कुछ प्रवासियों ने ज़ज़ीमा के शेष बचे लोगों का जीवन बचाने के लिये हस्तक्षेप किया। इसके अतिरिक्त ज़ज़ीमा के लोगों ने मुहम्मद या उसके समुदाय के लिये कभी कोई

---

[65] इबिद, पृष्ठ 410-11, वाकर, पृष्ठ 319

[66] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 561

समस्या नहीं उत्पन्न की थी। इसलिये ज़ज़ीमा के लोगों पर की गयी यह क्रूरता बर्बरता से कम नहीं थी। मक्का पर विजय के बाद मुहम्मद ने जिस हृदयहीनता से कुरैशों के देवी-देवताओं की मूर्तियों का विध्वंस किया था, जिस प्रकार उसने अपने आलोचकों की हत्या की थी, जिस प्रकार खालिद ने मक्का के उन नागरिकों की बर्बर हत्या की थी जिन्होंने तनिक भी विरोध किया था, जिस प्रकार खालिद ने निर्ममता से ज़ज़ीमा जनजाति के लोगों को काट डाला था, उसको देखते हुए मुहम्मद का कार्य-व्यवहार क्रूर अत्याचार का परिचायक है, न कि यह किसी क्षमाशीलता, करुणा व उदारता का लक्षण है।

रसूल ने हिंसक या धमकी भरी चालबाजी का प्रयोग करे हुए अरब की अन्य सभी मूर्तिपूजक जनजातियों को अधीन बना लिया था। इस घटना को इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया जाएगा, जिससे कि विमर्श को छोटा रखा जा सके। यद्यपि कुरैशों के साथ उसका संघर्ष, जो दयायुक्त तो नहीं ही था, मूर्तिपूजक लोगों के साथ उसके व्यवहार की ऐसी आदर्श रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जो प्रत्येक काल में विश्व के सभी मूर्तिपूजकों पर लागू होगा।

मुहम्मद का यहूदियों के साथ व्यवहार

मुहम्मद के मिशन पर यहूदी प्रभाव

यह पहले ही बताया जा चुका है कि रसूल मुहम्मद यहूदियों व ईसाईयों के एकेश्वरवादी मान्यता से अत्यंत प्रभावित था। संभवतः इसी से वह एकेश्वरवादी कल्पना के ईश्वर की घोषणा करते हुए मक्का के मूर्तिपूजकों में एकेश्वरवादी पंथ का उपदेश देने का पैगम्बरी मिशन प्रारंभ करने को प्रेरित हुआ। मुहम्मद ने यहूदियों एवं उनके पंथ व परंपराओं के बारे में पहली बार तब जाना, जब वह 12 वर्ष की आयु में अपने चाचा अबू तालिब के साथ एक व्यापारिक यात्रा पर सीरिया गया था।[67] मक्का में भी अब्दैस बेन सैलोम नामक एक विद्वान यहूदी रब्बी से उसकी जान-पहचान थी। कहा जाता है कि सैलोम ने मुहम्मद को यहूदी धर्मग्रंथों को पढ़कर सुनाया था और यहूदी परंपराओं से मुहम्मद को परिचित कराया था। इब्न इस्हाक द्वारा लिखित मुहम्मद के आत्मवृत्त से पता चलता है कि वह मक्का में बाइबिल संबंधी टीकाओं के अध्ययन केंद्र बेथ हा-मिदराश में जाया करता था। मुस्लिम टीकाकार अल-बैदवी कहता है, जैसा कि तौरात में अंकित है, कुछ यहूदी मुहम्मद को प्राचीन इतिहास पढ़कर सुनाया करते थे।

यह भी बताया गया है कि मुहम्मद यहूदी उपासनागृह सिनगॉग भी गया था। माना जाता है कि कुरआन और यहूदी धर्मग्रंथों के मध्य सहमति की पुष्टि वाले कुरआन के आयत 46:10 में जिस गवाह का उल्लेख है, वह यह रब्बी ही था। इस आयत को डालने का उद्देश्य यहूदियों को मुहम्मद के नये पंथ को स्वीकार करने के लिये प्रेरित करना था।[68]

---

[67] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 79-81; मुईर, पृष्ठ 21

[68] वाकर, पृष्ठ 180-81

622 ईसवी में जब मुहम्मद मदीना गया, तो वहां अधिकांशत: यहूदी और बहुदेववादी जनजातियां रहती थीं। वहां बहुदेववादी कम धनी थी, जबकि यहूदी प्रगतिशील, समृद्ध और प्रभावशाली समुदाय था। इसकी पुष्टि करते हुए प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान अबुल अला मौदूदी (मृत्यु 1979) लिखता है, 'आर्थिक रूप से वे (यहूदी) अरबियों से अत्यधिक सबल थे। चूंकि वे अधिक सभ्य और सांस्कृतिक रूप से उन्नत देशों फिलिस्तीन व सीरिया से यहां बसने आये थे, तो उनके पास ऐसी कलाएं थीं जिससे अरबी अनजान थे; वे वाह्य संसार से व्यापारिक संबंध भी रखते थे।'[69] यहूदियों ने बिना किसी प्रतिरोध के मुहम्मद को अपने नगर में दो कारणों से बसने दिया होगा। पहला यह कि मुहम्मद मूर्तिपूजा को नष्ट करने के लिये निरीह बहुदेववादियों में एकेश्वरवादी पंथ का प्रचार कर रहा था। मूर्तिपूजा समाप्त हो जाए, यह यहूदियों के मन की बात थी। दूसरे इस समय मुहम्मद का पंथ यहूदी पंथ के अनुकूल एवं यहूदी पंथ की ओर प्रवृत्त दिखता था, क्योंकि कुरआन में यहूदियों व उनके धर्मग्रंथों को अत्यंत सम्मानजनक बताया गया था। मदीना में आरंभ के समय मुहम्मद यहूदियों व उनके धर्म की प्रशंसा करता रहा। उसने उनके साथ मधुर संबंध रखा और यहूदियों की अनेक परंपराओं जैसे कि रमजान, खतना, प्रार्थना करते समय येरूशलम की ओर मुख रखना आदि को ग्रहण किया (नीचे देखिए)।

यहूदियों को इस्लाम की ओर लाने का मुहम्मद का प्रयास

जब रसूल मुहम्मद ने मदीना में सक्रियता से इस्लाम का प्रचार आरंभ किया, तो बड़ी संख्या में बहुदेववादियों ने उसका पंथ स्वीकार किया। किंतु वह धनी यहूदी समुदाय पर अपना विशेष प्रभाव नहीं डाल सका। अप्रभावित यहूदियों को इस्लाम में लाने के प्रयास में अल्लाह ने विशेष रूप से निर्मित आयतों को उतारना प्रारंभ किया। उदाहरण के लिये, अल्लाह की ओर से आयतों की ऐसी श्रृंखला आयी, जिसका संबंध जेनीसिस की यहूदी कथा [कुरआन 2:30-38], यहूदी मूसा और इजराइल के बच्चों की कथाओं [फनतंद 2:240-61] से था। तब अल्लाह ने यहूदियों व ईसाइयों (एकेश्वरवादी सैबियन धर्मावलंबियों को भी) कहा कि उसकी कृपा प्राप्त करने के लिये वे अपने धर्मग्रंथों के साथ-साथ कुरआन में भी विश्वास करें: 'वो जो विश्वास करते हैं (कुरआन में), और वो जो यहूदी (धर्मग्रंथ), ईसाई व सैबियन मत का पालन करते हैं, वो सभी जो अल्लाह और उसके कयामत के दिन पर विश्वास करते हैं और सही काम करते हैं, अपने स्वामी से पारितोषिक प्राप्त करेंगे; उनमें कोई भय नहीं होगा, न ही उन पर कभी कोई दुख आयेगा' [कुरआन 2:62, और 22:17 भी देखें]।

अल्लाह ने यहूदियों (और ईसाइयों को) संबोधित करते हुए मुहम्मद को उसका रसूल स्वीकार कराने के लिये सीधा प्रयास किया: 'हे ग्रंथों के अनुयायियों (यहूदियों और ईसाइयों)! तुम्हारे पास रसूलों के आने का क्रम बंद होने के बाद हमारा पैगम्बर (मुहम्मद) तुम्हें समझाने आया है, जिससे कि तुम यह न कह सको कि: हमारे पास कोई शुभ सूचना देने वाला और सावधान करने

---

[69] मदूदी एए (1993) हिस्टॉरिकल बैकग्राउंड टू सूरा अल-हश्र; इन टुवार्ड्स अंडरस्टैंडिंग द कुरआन, (अनुवाद अंसारी जेडआई), मरकज़ी मकतबा इस्लामी पब्लिशर्स, न्यू देल्ही

वाला नहीं आया, तो तुम्हारे पास शुभ सूचना सुनाने तथा सावधान करने वाला आ गया है तथा अल्लाह जो चाहे कर सकता है [कुरआन 5:19]।' किंतु यहूदियों को मुहम्मद के पंथ की ओर लाने का इस इस्लामी ईश्वर का सारा प्रयास सर्वथा विफल हो गया।

इस्लाम में यहूदी सिद्धांत का बोध

मुहम्मद पर यहूदी धर्म का प्रभाव इस तथ्य से भी ज्ञात होता है कि उसने कुरआन में कुरैशों की मूर्तिपूजा की तुलना में यहूदी धर्म को अधिक प्रतिष्ठित रखा। यहूदी कुलपिता अब्राहम (इब्राहीम) व उसके बेटे इस्माइल, यहूदी परम्परा के पैगम्बर मूसा व किंग डेविड (दाऊद) और सोलोमन (सुलैमान) इत्यादि को इस्लाम के पैगम्बरों में उच्च प्रतिष्ठित स्थान मिला है। वास्तव में मुहम्मद ने अपने से अधिक सम्मान मूसा को दिया [बुखारी 4:610, 620]।

मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के आरंभिक चरण में इस्लामी आयतें और मुहम्मद के व्यक्तिगत हाव-भाव भी यहूदी धर्म की ओर भली-भांति झुके हुए थे। ऐसा लिखा गया है कि उसने कहा, 'जो किसी यहूदी या ईसाई को गलत समझेगा, कयामत के दिन उस यहूदी या ईसाई की ओर से मैं उस व्यक्ति पर अभियोग लगाऊंगा।'

इन धर्मों के प्रति उसके हाव-भाव ऐसे प्रतीत होते हैं कि वह मूर्तिपूजक अरबों के बीच एक ऐसे एकेश्वरवादी धर्म का प्रचार करना चाहता था, जो यहूदी धर्म और ईसाई धर्म दोनों का मिलाजुला रूप हो। कुरआन की आरंभिक आयतें यहूदियों को सुप्रतिष्ठित लोगों के रूप में मान्यता देती हैं: 'और निश्चित ही हमने इजराइल के बच्चों (यहूदियों) को वह पुस्तक (तौरात), वह बुद्धिमत्ता और वह आगम दिया, तथा हमने उन्हें अच्छी वस्तुएं दीं, और हमने उन्हें सभी जातियों में उत्तम बनाया [कुरआन 45:16]।' यहूदी धर्मग्रंथों के बारे में कुरआन कहती है कि उसमें अल्लाह का ''मार्गदर्शन व प्रकाश'' [कुरआन 5:44] है और वो ग्रंथ सच्चे लोगों के लिये अल्लाह की कृपा व मार्गदर्शन थे [कुरआन 6:153-54]। कुरआन कई स्थानों पर फिलिस्तीन (येरूशलम) को ''पुण्य भूमि'' के रूप में मान्यता देती है। आरंभ में मुहम्मद ने अपने नये पंथ के केंद्र के रूप में येरूशलम को देखा था। वह येरूशलम ही था, जहां से वह कथित रूप से जन्नत गया था। उसने येरूशलम को मदीना जाने के बाद मुसलमानों के नमाज की दिशा के रूप में ग्रहण किया था।

मुहम्मद ने दान देने की यहूदी परंपरा की भी नकल की थी और उसने इसका अरबी नाम ज़कात दिया तथा इसे इस्लाम के पांच स्तंभों में एक बनाया। यहूदी परंपरा का अनुसरण करते हुए उसने सुअर का मांस खाना वर्जित किया, नहाने-धोने व शौच एवं शुद्ध होने की विशेष रीति दी, शनिवार को ''सब्त मानने की परंपरा'' स्थापित की (बाद में इसे शुक्रवार को कर दिया गया)। यहूदी परंपराओं का अनुसरण करते हुए उसने अशुरा का उपवास इस्लाम के पांच स्तम्भों में से एक बनाया, अशुरा के उपवास को बाद रमजान के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। उसने यहूदी परंपरा का पालन करते हुए मुसलमानों के लिये खतना परंपरा प्रारंभ की

[अबू दाऊद 41:5251][70], और दावा किया कि जब उसका जन्म हुआ, तो उसका खतना पहले से किया हुआ था। आरंभ में वह स्वयं को नबी कहता था। नबी पैगम्बरों के लिये प्रयोग किया जाने वाला यहूदी शब्द है।

मुहम्मद की यहूदियों से कड़वाहट

यहूदियों ने अल्लाह व रसूल मुहम्मद के इस्लाम स्वीकार के आह्वान को अनदेखा कर दिया। कुरआन में यहूदी धर्मग्रंथ व परंपराओं के बारे में बहुत सी अशुद्धियां व मिलावट थी। उदाहरण के लिये, कुरआन 7:157 दावा करता है कि मुहम्मद कथित रूप से अब्राहम के बेटे इस्माइल का वंशज है और वही मसीहा है, जिसके बारे में तौरात में पहले ही बता दिया गया था। जबकि कुरआन में इससे पहले दी गयी आयतें इस आयत के विपरीत थीं और उन आयतों में स्पष्ट कहा गया था कि पैगम्बरी केवल इजराइल के बच्चों [कुरआन 45:16] और उनमें भी विशेष रूप से इसाक व जैकब के परिवार में ही प्रदान की गयी थी [कुरआन 29:17]। मुहम्मद एक अरबी था, न कि इजराइली और उसका वंश भी इसाक व जैकब के वंश से भिन्न था। यहूदी रब्बियों ने कुरआन के इस स्पष्ट विरोधाभास को इंगित करते हुए मुहम्मद के पैगम्बरी के दावे को पूर्णतः अस्वीकार कर दिया।

इसके अतिरिक्त इस्माइल अब्राहम का अवैध संतान था, जो एक अ-यहूदी जाति की इजिप्ट की एक रखैल हगार से उसके संबंध से जन्मा था। इसलिये वह ईश्वर के नियमपत्र से बाहर था। बाइबिल ने भी उसका वर्णन ''असभ्य व हिंसक'' के रूप किया है [जेन 16:12]। इस प्रकार ईश्वर इस्माइल के वंशजों को पैगम्बरी नहीं दे सकता था। यहूदियों ने मुहम्मद के इस दावे को भी अस्वीकार कर दिया कि कुरआन ईश्वर का संदेश है, क्योंकि यह किसी पवित्र भाषा हिब्रू या सीरियाई भाशा में नहीं आया था, अपितु कवियों और पियक्कड़ों की भाषा अरबी में आया था। यहूदियों ने मुहम्मद द्वारा बतायी गयी तौरात की घटनाओं में बहुत सी अशुद्धियों पर ध्यान दिलाया और उसे यहूदी धर्मग्रंथों से अनभिज्ञ बताया, जबकि मुहम्मद की आयतें यहूदी धर्मग्रंथों की पुष्टि के दावे करती थीं। उदाहरण के लिये, उसने गलत ढंग से यहूदियों पर आरोप लगाते हुए कहा कि एज़्रा (उज़ैर) ईश्वर का बेटा था [कुरआन 9:30], जिसे यहूदियों ने सिरे से नकार दिया। कुल मिलाकर, यहूदियों ने मुहम्मद के पैगम्बरी के दावे को यह सिद्ध करके नकार दिया कि उसकी कथित आयतें विकृत, भ्रामक और बहुत बार तो अबोधगम्य (न समझ में आने वाली) हैं।

मुहम्मद के मदीना आने का एक वर्ष भी नहीं बीता होगा कि बद्र की जंग से कुछ समय पूर्व 623 ईसवी में यह कटु वाद-विवाद और मनमुटाव चरम पर आ गया। यहूदियों (और ईसाइयों को) इस्लाम के जाल में फंसाने में विफल होने पर उत्तेजित व क्रुद्ध अल्लाह ने अब उन्हें और मनाने का प्रयास बंद करने कहा तथा बोला: 'और जब तक तुम यहूदियों व ईसाइयों का धर्म नहीं मानोगे, वे तुमसे सहमत (प्रसन्न) नहीं होंगे। उनसे कह दो: सीधी डगर वही है, जो अल्लाह ने बतायी है और तुम्हारे पास ज्ञान आ गया है, उसके पश्चात भी यदि तुमने वही किया जो वो चाहते हैं, तो अल्लाह (की पकड़) से तुम्हारा कोई रक्षक नहीं होगा, कोई सहायक नहीं होगा [कुरआन 2:120]।'

---

[70] सही बुखारी, सही मुस्लिम और सुनन अबू दाऊद नामक प्रामाणिक स्रोतों से हदीस (या सुन्नत) के संदर्भ वाक्यों के भीतर कोष्ठक में हैं।

इसके बाद यहूदियों के प्रति अल्लाह का स्वर और मुहम्मद का हाव-भाव दोनों परिवर्तित होने लगा। यहूदी कुलपिता अब्राहम अब ''मुसलमान'' और मुहम्मद के अपने मिशन पूर्व वाहक बन चुका था: अब्राहम न तो यहूदी था और न ही ईसाई; बस वह अपने ईमान में सच्चा था, अल्लाह का आज्ञाकारी था (अर्थात इस्लाम को मानने वाला था) [कुरआन 3:67]। पैगम्बरी की वंशावली के संबंध में विरोधाभास का उत्तर देने और पैगम्बरी पर मुहम्मद के दावे को वैधता देने के लिये अल्लाह ने अब आयतों की श्रृंखला उतारी, जिससे कि अब्राहम-इस्माइल की संतति क्रम को लेकर एक पूर्णतः नयी वंशावली रची जा सके। अपने धर्म का ठेका इजराइल के बच्चों से छीनने और एक अरबी मुहम्मद को देने के लिये अल्लाह ने उस अब्राहम व इस्माइल के साथ अपना एक नयी कहानी रची, जिसने कथित रूप से अल्लाह के पवित्र गृह काबा की स्थापना की थी। मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन को इजराइल के स्थान पर अरब केंद्रित बनाने के लिये अल्लाह ने अब दावा किया कि उसने अपने मजहब का केंद्र बनाने के लिये काबा के चारों ओर अपनी कृपा भेजी है [कुरआन 2:126-30]। आयतों के इन नये समुच्चयों (3:67, 2:126-30) के माध्यम से अल्लाह ने अब्राहमिक धर्म का पूर्णतः नया परिप्रेक्ष्य रचा, जो अरब केंद्रित था, न कि इजराइल केंद्रित और इसमें यह भी था कि इसको मानने वाले अब्राहम-इस्माइल की वंशावली को मानेंगे, न कि इसाक या जैकब वाली बात। दूसरे शब्दों में इस्लाम मूलतः वह धर्म था, जिसे अल्लाह ने अब्राहम (और इस्माइल) के माध्यम से स्थापित करने की योजना बनायी थी और अरबी पैगम्बर मुहम्मद अल्लाह के मूल आशय निहित उसी मजहब को इसके विशुद्ध रूप में पुनः वैसा ही बनाने के लिये आया।

जिस यहूदी तौरात को अल्लाह ने आरंभ में अपने ''मार्गदर्शन व प्रकाश'' [कुरआन 5:44], से समाहित एक ईश्वरीय पुस्तक एवं सही पथ पर चलने वालों के लिये कृपा व मार्गदर्शन [कुरआन 6:153-54] के रूप में मान्यता दी थी, वह अब यहूदियों द्वारा विकृत किया हुआ बताया जाने लगा [कुरआन 2:79]। वो यहूदी, जिन्हें अल्लाह द्वारा 'सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ' [कुरआन 45:15] होने की मान्यता दी गयी थी, अब 'मोमिनों (मुसलमानों) के प्रति सबसे अधिक शत्रुता दिखाने वाले बताये जाने लगे [कुरआन 5:82]।' मुहम्मद अब स्वयं को नबी के स्थान पर रसूल (पैगम्बर) कहने लगा। अपने मजहब के नये केंद्र का अविष्कार करने के बाद अल्लाह ने अब नमाज की दिशा येरूशलम से मक्का की ओर करने के लिये आयतें भेजीं [कुरआन 2:144]। मुहम्मद ने सब्त का दिन शनिवार से परिवर्तित कर इसे शुक्रवार को कर दिया और इसका नाम (जुमा) कर दिया तथा यहूदी परंपराओं में होने वाले अशुरा के उपवास को मक्का के हनीफों की परंपरा के अनुसार एक मास लंबे रमजान में परिवर्तित कर दिया। मदीना पहुंचने के बाद मुहम्मद ने जिन यहूदी प्रथाओं, परंपराओं व प्रार्थना-पद्धति को अभी तक ग्रहण किया था, उन सबको या तो परिवर्तित कर दिया अथवा उनमें संशोधन कर दिया। यहूदियों ने अब उस पर अस्थिर-चित्त होने का आरोप लगाया। उन्होंने मुहम्मद का उपहास भी उड़ाया कि वह परिवर्तित हो गया और मूर्तियों वाले काबा के मंदिर में रखी मूर्तिपूजकों की श्रद्धा काले पत्थर के टुकड़े की ओर मुंह करके प्रार्थना करने लगा है।

यहूदियों पर मुहम्मद की हिंसा

मदीना में मुहम्मद के आयतों की नीर-क्षीर विवेकी आलोचना करने के साथ ही यहूदियों में उसके मजहबी मिशन से चिढ़ बढ़ने लगी। यहूदियों के तार्किक प्रश्नों का उसके पास उत्तर न के बराबर होता था। 624 के आरंभिक समय में बद्र में कुरैशों पर अचंभित करने वाली विजय तथा व्यापारिक कारवांओं पर लूटमार करने वाले हमलों से मिले धन व बढ़ती ताकत से उत्साहित

मुहम्मद ने अब अपनी तलवार का मुंह अपने धर्म पर अडिग एवं अपने अकाट्य तर्कों से असहजता उत्पन्न करने वाले यहूदियों की ओर कर दिया। उसकी बद्र की विजय कुछ ही समय पहले हुई थी और उसने यहूदियों के व्यापार-केंद्र पर ही उनको बुलाकर अनिष्टकारी चेतावनी देते हुए बोला: ''हे यहूदियों, संभल जाओ, कहीं ऐसा न हो कि अल्लाह तुम पर भी वैसा ही कोप भेजे, जैसा कि (बद्र में) कुरैशों पर भेजा था। मुसलमान बन जाओ। तुम जानते हो कि मैं एक रसूल हूं, जिसे अल्लाह ने भेजा है...।''[71] यहूदियों को मुहम्मद के इस अनिष्टकारी धमकी को अनसुना करने का बड़ा दंड भुगतना पड़ा।

बनू क़ैनुक़ा पर हमला: इस चेतावनी के बाद एक दिन अप्रैल 624 में बनू क़ैनुक़ा के एक युवा ने कथित रूप से हाट में एक मुसलमान औरत को छेड़ दिया। वहां उपस्थित एक मुसलमान ने उस युवा को मार डाला। प्रतिशोध में यहूदियों द्वारा उस मुसलमान की हत्या कर दी गयी।[72] इस झगड़े को बहाना बनाकर मुहम्मद ने मदीना के सबसे धनी समुदाय बनू क़ैनुक़ा के पूरे समुदाय को घेर लिया। 15 दिन की घेराबंदी के बाद यहूदियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। मुहम्मद ने आदेश दिया कि आत्मसमर्पण किये हुए यहूदी पुरुषों की सामूहिक हत्या करने के लिये उन्हें बांध दिया जाए। इसी समय खज़रज कबीले का मुखिया अब्दुल्लाह इब्न उबै सामने आये और दृढ़तापूर्वक बीचबचाव करने लगे। अब्दुल्लाह इब्न उबै ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, किंतु मुहम्मद के मिशन पर उनकी निष्ठा संदिग्ध थी। उन्होंने मुहम्मद से कहा, ''अल्लाह के वास्ते, क्या आप एक ही दिन इन 700 व्यक्तियों को काट डालेंगे??'' अब्दुल्लाह मुहम्मद के सामने गिड़गिड़ाये, ''हे मुहम्मद, मेरे लोगों पर दया करिये।'' ध्यान रहे कि बनू क़ैनुक़ा अब्दुल्लाह उबै की जनजाति की सहयोगी थी।

जब मुहम्मद ने उनकी गुहार को अनसुना कर दिया, तो अब्दुल्लाह ने उसका गिरेबां पकड़ लिया और चीखने लगे, ''अल्लाह का वास्ता, जब तक तुम मेरे लोगों से उदारतापूर्वक व्यवहार नहीं करोगे, मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा।" वो चेतावनी भरे स्वर में बोले, ''मैं एक पुरुष हूं, परिस्थितियां उलट सकती हैं!"[73]

अब्दुल्लाह एक प्रभावशाली नेता थे, इस कारण मुहम्मद ने बंदी बनाये गये जजीमा जनजाति के लोगों के हत्या की गति मंद कर दी। अब उसने जजीमा के लोगों को मदीना छोड़कर सीरिया चले जाने को कहा। उन्हें मदीना छोड़ने के लिये तीन दिन का समय दिया तथा उन्हें अपने व्यापार के उपकरणों व वस्तुओं को ले जाने से रोक दिया। जैसे ही यहूदी मदीना छोड़कर गये, मुहम्मद ने उनके गृहों के वस्तुओं और उनकी संपत्ति को हड़प लिया। उसने इस धन-संपत्ति को अपने अनुयायियों में यह कहकर बांट दिया कि यह अल्लाह के मार्ग में जिहाद के माध्यम से मिला पवित्र लूट का माल है।

---

[71] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 363

[72] मुईर, पृष्ठ 241

[73] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 545-46; वाकर, पृष्ठ 184

इसी समय उसने उन व्यक्तियों की हत्या का आदेश दिया, जिन्होंने उसके पंथ और कार्यों की आलोचना की थी। उसके शिकार में 120 वर्ष के वयोवृद्ध कवि अबू अफाक भी थे, जिन्होंने मुहम्मद की हिंसक कार्रवाइयों की आलोचना करते हुए पद रचे थे। एक और शिकार पांच बच्चों की मां व कवयित्री अस्मा बिंते मारवान थीं, जिन्होंने मुहम्मद द्वारा अबू अफाक की हत्या और उसकी अन्य हिंसक गतिविधियों की निंदा करने वाली कविताएं लिखी थीं। मुहम्मद का तीसरा शिकार यहूदी कवि काब बिन अशरफ थे, जिन्होंने बद्र में मुहम्मद की बर्बरता की निंदा करते हुए पद रचे थे और कुरैशों को अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिये प्रेरित किया था।[74]

इब्न इस्हाक के अनुसार, मुहम्मद ने उस समय यह कहते हुए यहूदियों के नरसंहार की सामान्य सहमति दे दी थी कि ''जो भी यहूदी तुम्हारे हाथ आये, उसकी हत्या कर दो।'' इसके पश्चात सुनैन नामक एक यहूदी व्यापारी नया-नया मुसलमान बने एक यहूदी मुहैय्यिश के सामने पड़ गया। मुहैय्यिश उस अभागे व्यापारी सुनैन पर टूट पड़ा और उसे मार डाला। मुहैय्यिश के परिवार से उस यहूदी सुनैन से सामाजिक व व्यापारिक संबंध थे और मुहैय्यिश उस व्यापारी से लाभ अर्जित करता था। उसके बड़े भाई हुवैय्यिश ने एक मूल्यवान व्यक्ति की हत्या करने पर यह कहते हुए उसका विरोध किया कि, ''तुम ईश्वर के शत्रु हो। तुमने उसे ही मार डाला, जिसके धन से तुम्हारे तन पर चर्बी चढ़ी है।'' छोटे भाई मुहैय्यिश ने अशिष्टता से उत्तर दिया, ''जिसने मुझे उसकी हत्या का आदेश दिया है, यदि वह मुझे तुम्हारी हत्या का भी आदेश देता, तो मैं तुम्हारा भी सिर काट लेता।'' इब्न इस्हाक लिखता है कि मुहम्मद के पंथ ने उसमें जो बर्बर स्वभाव व प्रतिबद्धता डाली थी, उससे प्रभावित होकर हुवैय्यिश चीख पड़ा, ''ईश्वर की सौगंध, जो मजहब तुम्हें ऐसा बना सकता है, वह अद्भुत है!'' और वह भी मुसलमान धर्म बन गया।[75]

बनू नज़ीर पर हमला: मदीना के यहूदियों पर मुहम्मद का अगला अत्याचार अगस्त 625 ईसवी में हुआ। उहुद की विनाशकारी जंग के कुछ मास पश्चात मुहम्मद अपने साथियों अबू बक्र, उमर और अली के साथ बनू नज़ीर के नेता के निवास पर एक विवाद के समाधान के लिये गया। विवाद यह था कि मुहम्मद के एक अनुयायी ने बनू नज़ीर जनजाति की सहयोगी जनजाति के एक व्यक्ति की हत्या कर दी थी। समझौता-वार्ता के बीच में ही मुहम्मद (अपने साथियों से यह कहते हुए कि जब तक मैं न आऊं, यहां से मत हिलना) अचानक उठ खड़ा हुआ और मदीना वापस लौट आया।'[76] उसके साथियों ने लंबे समय तक प्रतीक्षा की, पर मुहम्मद लौटकर नहीं आया, तो वे भी चले गये। इब्न इस्हाक के अनुसार, मुहम्मद ने इसके बाद बनू नज़ीर पर आरोप मढ़ दिया कि वे घर की छत से पत्थर फेंककर उसकी हत्या का षडयंत्र रच रहे थे (रोचक बात यह है कि उसके जो साथी वहां इतने लंबे समय तक उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, उनमें से किसी ने भी छत पर किसी को नहीं देखा था।)

---

[74] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 675-76, 367

[75] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 369

[76] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 437

उसके बाद उसने यहूदी समुदाय पर विद्रोह का आरोप लगाया और आदेश दिया कि उन्हें मृत्युतुल्य कष्ट देकर मदीना से भगा दिया जाए। कुछ टीकाकार यह भी उद्धृत करते हैं कि उहुद की विनाशकारी जंग से पूर्व मक्का के अबू सुफ्यान के साथ बनू नज़ीर जनजाति का वाणिज्यिक लेन-देन होने के कारण मुहम्मद उनसे शत्रुता पाल बैठा था। यद्यपि कुरआन इसका कारण निम्नलिखित बताती है: 'अल्लाह ने उनके लिये देश निकाला का आदेश दे दिया था... क्योंकि उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल का विरोध किया था: और यदि कोई भी अल्लाह का विरोध करेगा, तो निश्चित ही अल्लाह उसे कड़ी यातना देने वाला है [कुरआन 59:3-4]।' दूसरे शब्दों में कहें, तो बनू नज़ीर जनजाति द्वारा इस्लाम न स्वीकार करना ही उन पर मुहम्मद के हमले का कारण था।

कुरआन में बारंबार ढोंगी के रूप में निंदित अब्दुल्लाह इब्न उबै ने पुनः मुहम्मद के इस आरोप की निंदा करते हुए बनू नज़ीर पर विद्रोह की बात को आधारहीन बताया और यहां तक कि उन्होंने बनू नज़ीर की ओर से लड़ने की धमकी भी दी। अल्लाह कुरआन में इस घटना का वर्णन यूं करता है: 'ढोंगी लोग बनू नज़ीर वालों से कहते हैं... 'यदि तुम्हें यहां से निकाला गया, तो हम भी तुम्हारे साथ बाहर आएंगे तथा हम तुम्हारे बारे में किसी की बात नहीं सुनेंगे; और यदि तुम पर (जंग में) हमला होता है, तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे।' पर अल्लाह साक्षी है कि वे वास्तव में झूठे हैं [कुरआन 59:11]।'

अब्दुल्लाह के समर्थन से उत्साहित यहूदियों ने जब मदीना नहीं छोड़ा, तो मुहम्मद ने उन पर हमला कर दिया और उनकी गढ़ी छीन ली। इब्न इस्हाक लिखता है: शीघ्र ही वे आत्मसमर्पण कर दें, इसके लिये 'रसूल ने आदेश दिया कि उनके खजूर के वृक्षों को काटकर गिरा दिया जाए और जला डाला जाए। इस पर उन्होंने (बनू नज़ीर) ने मुहम्मद को पुकारा और बोले, 'मुहम्मद तुमने तो निर्दयी विनाश को वर्जित किया है और जो भी ऐसे अपराध का दोषी होता है तुमने उस पर अभियोग लगाया है। तब तुम हमारे खजूर के वृक्षों को क्यों काट कर गिरा रहे हो, जला रहे हो?''[77] उन्होंने बहुत देर बाद इस शर्त पर आत्मसमर्पण किया कि उन्हें मक्का छोड़कर जाने का अवसर दिया जाएगा। मुहम्मद ने उनकी संपत्ति, घर व व्यापारिक वस्तुओं के साथ ही उनकी तलवारों, ढालों कवचों और शिरस्त्राण (लोहे के टोपों) पर कब्जा कर लिया। उसने ये सब अपने अनुयायियों में बांट दिया।

बनू क़ुरैज़ा का नरसंहार: यहूदियों के विरुद्ध मुहम्मद का सबसे भयानक क्रूरता का कृत्य अप्रैल 625 में खंदक की उस जंग के ठीक बाद सामने आया, जिसमें मक्कावासियों ने मदीना की घेराबंदी की थी। इस्लामी साहित्य बताते हैं कि उस घेराबंदी के समय कुरैशों ने सहायता के लिये बनू क़ुरैज़ा से सम्पर्क किया था और कथित रूप से बनू क़ुरैज़ा के लोग उनकी सहायता के लिये सहमत हो गये थे। किंतु वास्तविकता यह थी कि इस पूरे संघर्ष में बनू क़ुरैज़ा जनजाति तटस्थ रही थी। वास्तविकता यह थी कि जिस खंदक से मुहम्मद का समुदाय बचा था, उसे खोदने के लिये बनू क़ुरैज़ा ने अपनी कुदालें व उपकरण मुहम्मद को दिये थे। जब कुरैश वापस लौट गये, तो मुहम्मद ने बनू क़ुरैज़ा पर गुप्तचरी करने और संधि तोड़ने का आरोप लगाया, जबकि मुहम्मद और बनू क़ुरैज़ा के बीच संभवतः कोई संधि थी ही नहीं।[78] अल्लाह कुरआन में इस आरोप की पुष्टि निम्न रूप से करता है: 'और अल्लाह ने तौरात के उन लोगों

---

[77] इबिद

[78] वाट डब्ल्यूएम 1961 इस्लाम एंड द इंटीग्रेशन ऑफ सोसाइटी, राउतलेज एंड कैगन पॉल; लंदन, पृष्ठ. 19। वास्तव में कोई संधि थी ही नहीं। मुसलमानों द्वारा जिस मदीना के संविधान को संधि के रूप में प्रचारित किया जाता है, उस पर किसी यहूदी जनजाति ने हस्ताक्षर किये ही

अर्थात बनू क़ुरैज़ा के यहूदियों को उनकी गढ़ियों से गिरा दिया, जिन्होंने उन (कुरैशों) का साथ दिया, तथा उनके मन में भय भर दिया... [कुरआन 33:26]।' यह समझ पाना कठिन है कि अपनी गढ़ियों में बैठे हुए बनू क़ुरैज़ा के लोग कुरैश योद्धाओं की सहायता कैसे कर रहे होंगे, जैसा कि अल्लाह दावा कर रहा है। तो भी अल्लाह और मुहम्मद के लिये यह उन पर हमला करने एवं लगभग एक मास तक तब तक उनकी घेराबंदी किये रखने का पर्याप्त कारण था, जब तक कि वे आत्मसमर्पण न कर दें।

अब्दुल्लाह इब्न उबै ने पुनः बनू क़ुरैज़ा पर मुहम्मद के हमले की निंदा की। किंतु वह अपनी मृत्यु से बहुत दूर नहीं थे और उनकी ताकत भी घट गयी थी, क्योंकि उनके अधिकांश अनुयायी मुहम्मद के पक्ष में जा मिले थे। अब मुहम्मद सरलता से उनकी उपेक्षा कर सकता था। जैसे दो वर्ष पूर्व बनू नज़ीर के लोग निर्वासित हुए थे, वैसे ही आत्मसमर्पण कर चुके बनू क़ुरैज़ा जनजाति के लोगों ने भी मदीना छोड़कर जाने का प्रस्ताव दिया, किंतु मुहम्मद ने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और उनकी जनजाति के सभी पुरुषों की हत्या करने का निर्णय किया। इन पुरुषों की संख्या यही कोई 800-900 रही होगी। हत्या किये जाने वाले पुरुषों की वयस्कता का निर्धारण उनके गुप्तांगों पर केश उगने से किया गया।[79] स्त्रियों और बच्चों को दास के रूप में बंदी बना लिया गया तथा पहले के जैसे ही उनके भी भवनों व संपत्तियों का अधिहरण (जब्त) कर लिया गया और मुसलमानों में बांट दिया गया। इस्लामी ईश्वर ने यह आयत उतारते हुए इन बर्बर अत्याचारों को सुस्पष्ट स्वीकृति दीः '...कुछ को तुमने काट डाला और कुछ को तुमने बंदी बना लिया। और उसने अल्लाह ने तुम लोगों को उनकी भूमि, उनके भवन और उनकी संपत्ति का स्वामी बना दिया और तुम्हें ऐसी भूमि का स्वामी बना दिया, जो तुमने देखा-सोचा तक न होगा। अल्लाह सदा सबकुछ करने में समर्थ है [कुरआन 33:26-27]।'

मुहम्मद के निर्णय के अनुपालन में हाट-स्थान में एक गड्ढ़ा खोदा गया; और मुहम्मद की उपस्थिति में उन 800-900 बंदियों के हाथ पीछे बांधकर उस गड्ढ़े के किनारे पंक्तिबद्ध करके खड़ा कर दिया गया तथा उनके क्षत-विक्षत शवों को उसमें डालने से पूर्व सिर काटकर उनकी हत्या की गयी। मुहम्मद ने स्वयं दो यहूदी नेताओं के सिर धड़ से काटकर गिराया। यहूदियों की हत्या का यह क्रम पूरे दिन चलता रहा और रात में अंधेरा होने पर मशाल जलाकर हत्या का काम निरंतर रहा। इस वीभत्स नरसंहार के बारे में जानकर उस कैरेन आम्स्ट्रांग को भी वितृष्णा हो गयी थी, जो इस्लाम के बारे में पश्चिम की गलत धारणाओं को सही करने के अपने अहर्निश अभियान के कारण मुसलमानों में अत्यंत लोकप्रिय हैं। उन्हें मुहम्मद द्वारा किये गये इस नरसंहार की घटना को जानकर

नहीं थे। मोंटगोमरी वाट, इस्लाम पर जिनकी पुस्तकें पाकिस्तान में व्यापक रूप से प्रकात होती हैं, के अनुसार, उस पत्रक पर हस्ताक्षर करने वाले नौ पक्ष थे और उनमें सब के सब मुसलमान और अरब की वो मूर्तिपूजक जनजातियां थीं, जो मुहम्मद के मदीना आने के बाद बड़ी संख्या में इस्लाम में धर्मांतरित होकर निश्चित ही मुसलमान बन गये थे।

[79] अबू दाऊद 38:4390: अतिय्याह अल-कुराज़ी ने बताया: ''मैं बंदी बनाये गये बनी क़ुरैज़ा के उन लोगों में से एक था। वे मुहम्मद के साथी ने हमारा परीक्षण किया, और जिनके गुप्तांगों पर केश उग आये थे उनकी हत्या कर दी गयी और जिनके केश नहीं उगे थे उनकी हत्या नहीं की गयी...।''

इतनी घृणा हो गयी थी कि उन्होंने इसकी तुलना यहूदियों पर नाज़ियों द्वारा किये गये अत्याचार से की थी।[80] यह क्रूर नरसंहार निश्चित रूप से यहूदियों का पहला सर्वनाश कहा जा सकता है।

एक यहूदी महिला, जिसके पति का गला रेत दिया गया था, ने अपने पति के हत्यारे की दास बनने की अपेक्षा अपने लिये भी वही नियति मांगी। उसकी इच्छा पूरी की गयी और उसने स्मितापूर्वक (मुस्कराते हुए) मृत्यु को गले लगाया। उस नरसंहार को अपनी आंखों से देखने वाली मुहम्मद की युवा बीवी आयशा बाद में प्रायः कहा करती थी कि मृत्यु का वरण करते समय भी उस नायिका के मुख पर जो स्मित (मुस्कुराहट) थी, उसका दृश्य लंबे समय तक उसका पीछा करता रहा। इब्न इस्हाक के अनुसार, 'आयशा कहा करती थी, 'वह महिला यह जानती थी कि उसकी हत्या कर दी जाएगी, पर एक पल के लिये भी उसके मुख से हंसी दूर नहीं हुई और मुझे उसका यह भाव कभी नहीं भूल सकता।''[81]

अल-जाबिर नामक एक और वृद्ध यहूदी व्यक्ति थे, जिन्होंने पहले कभी कुछ मुसलमानों के प्राण बचाये थे, उन्हें क्षमा कर दिया गया। किंतु उन्होंने यह कहते हुए इसे ठुकरा दिया कि अब जब उसके सभी प्रिय जन मार दिये गये हैं, तो उनकी जीने की कोई इच्छा नहीं है। इब्न इस्हाक ने उनके कथन को इस प्रकार अंकित किया हैः ''कोई वृद्ध व्यक्ति परिवार और बच्चों के बिना जीवन लेकर क्या करेगा।'' मुहम्मद चीखा: ''हां, तुम भी उन्हीं के पास जाओगे-जहन्नुम की आग में'' और उस वृद्ध की हत्या का आदेश दिया।[82]

मुहम्मद ने माले गनीमत अर्थात लूट के पवित्र माल के रूप में हथियाई गयी बनू क़ुरैज़ा की सारी संपत्ति में से पांचवां भाग अपने लिये रख लिया और शेष संपत्ति को अनुयायियों में बांट दिया। बंदी बनायी गयी स्त्रियों और बच्चों को भी उसी प्रकार बांट दिया गया। बंदी बनायी गयी स्त्रियों में से युवा व आकर्षक महिलाओं को लौंडी (सेक्स-स्लेव) बनाकर रख लिया गया; स्वयं मुहम्मद ने रेहाना नामक एक सुंदर औरत को अपनी रखैल बनाने के लिये ले लिया। पुरुषों की हत्या करने के बाद उसी रात वह उस महिला को अपने बिछौने पर उठा ले गया। कुछ स्त्रियों को दूसरे देशों में ले जाकर बेच दिया गया, जिससे कि उससे मिले धन से आगामी जंगों में प्रयोग किये जाने के लिये हथियार व घोड़े क्रय किये जा सकें। इस बारे में इब्न इस्हाक लिखता है: 'तब रसूल ने साब ज़ैद अल-अंसारी को बनू क़ुरैज़ा की बंदी बनायी गयी कुछ स्त्रियों के साथ नज्द भेजा, जहां उसने उन स्त्रियों को हथियारों व घोड़े के बदले बेच दिया।'[83]

---

[80] आर्म्सस्ट्रांग के 1991 मुहम्मदः अ वेस्टर्न अटेम्प्ट टू अंडरस्टैंड इस्लाम, गोलांज, लंदन, पृष्ठ 207

[81] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 465; वाकर, पृष्ठ 185-86

[82] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 466

[83] इबिद, पृष्ठ 465

खैबर के यहूदियों पर हमला: बनू कुरैजा का नरसंहार करने के साथ ही मदीना से यहूदियों का सफाया हो गया। अब मुहम्मद का ध्यान खैबर के यहूदी समुदाय के लोगों पर था। खैबर का यह यहूदी समुदाय अरब प्रायद्वीप का एक और प्रभुत्वशाली यहूदी गढ़ था। खैबर सीरिया के मार्ग पर मदीना से 70 मील दूर स्थित था। वह विशेष रूप से निर्वासित बनू नज़ीर जनजाति के यहूदियों से चिढ़ा हुआ था, क्योंकि मदीना से भगाये जाने के बाद वे वहां बस गये थे। इसके नेता अबू रफी मक्का व उसके सहयोगियों की उस सेना में थे, जिसने खंदक के युद्ध के समय मदीना की घेराबंदी की थी। इसलिये उसे अबू रफी और उनके समुदाय से प्रतिशोध लेना था।

इसके शीघ्र बाद 627 मुहम्मद ने अली के नेतृत्व में फौज को जंगी अभियान पर खैबर भेजा, परंतु उंटों और पशुओं को पकड़ने के अतिरिक्त इस अभियान का और कोई परिणाम नहीं निकला। तब मुहम्मद ने अबू रफी की हत्या के लिये एक गिरोह भेजा। मित्र होने का बहाना करके हत्यारे अबू रफी के निवास में प्रवेश कर गये और उन्हें निपटा दिया। जब सफल हत्यारे मदीना लौटकर आये, तो रसूल चीखा: ''क्या तुम सफल रहे!!'' और उन्होंने उत्तर दिया, ''हे रसूल! हां।'[84]' ऐसा ही एक और हत्यारा मिशन खैबर के नेता उसीर (यूसीर) की हत्या करने के लिये भेजा गया। किंतु इस बार यहूदी सचेत थे, जिससे मुहम्मद का यह मिशन विफल हो गया।

इसके बाद जनवरी 628 में मुहम्मद ने खैबर के नेता से समझौता करने के लिये तीस मुसलमानों का एक प्रतिनिधिमंडल भेजा। वहां पहुंचकर उस प्रतिनिधिमंडल ने उसीर को आश्वासन दिया कि 'मुहम्मद उसे खैबर का शासक बना देगा और उसे विशेष प्रतिष्ठा देगा। उन्होंने उसीर को सुरक्षा का वचन दिया।' इस आश्वासन पर उसीर के नेतृत्व में खैबर के तीस सदस्यों का प्रतिनिधिमंडल मदीना की ओर चला। प्रत्येक यहूदी व्यक्ति ऊंट पर एक-एक मुसलमान के पीछे सवार हुआ। खैबर से कुछ दूर आगे चलकर मुसलमान इन यहूदियों पर टूट पड़े और इनको मार डाला। केवल एक यहूदी किसी प्रकार बचकर भाग पाया। जब यहूदियों की इस बर्बर हत्या का समाचार मुहम्मद तक पहुंचा, तो उसने यह कहते हुए अल्लाह को धन्यवाद दिया, ''वस्तुतः अल्लाह ने ही कुपथ पर चल रहे इन लोगों को लाकर सामने पटक दिया।''[85]

इसके बाद मई 628 ईसवी में रसूल अपनी अगुवाई में 1600 जिहादियों की मजबूत फौज लेकर खैबर पर हमला करने निकला। वो चोरी-छिपे रात में खैबर पहुंच गया। इब्न इस्हाक के अनुसार, जब खैबर के काम करने वाले लोग प्रातः अपनी कुदाल और टोकरी लेकर बाहर आये, तो उन्होंने रसूल और उसकी फौज को देखा। तो 'वे चीख पड़े, 'मुहम्मद अपनी फौज के साथ' और उल्टे पांव भाग गये। रसूल ने कहा, 'अल्लाहू अकबर! खैबर मिट गया।''[86]

---

[84] मुईर, पृष्ठ 348

[85] इबिद, पृष्ठ 349

[86] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 511; बुखारी 2:68 भी देखें

यहां जब रक्तपिपासु युद्ध प्रारंभ हुआ, तो लंबे संघर्ष के बाद मुसलमानों को विजय मिली। इसमें यहूदियों की ओर अपने समुदाय को बचाने के लिये संघर्ष कर रहे 93 यहूदियों ने प्राणों का बलिदान दिया, जबकि मुहम्मद की ओर के 19 जिहादी मारे गये। अबू रफी की हत्या के बाद उनका पोता किनाना बनू नज़ीर जनजाति का नेता बना। एक विश्वासघाती यहूदी ने मुहम्मद को सूचना दी कि किनाना अपनी निधि (खजाना) एक गुप्त स्थान पर छिपाये हुए है। उस निधि का पता करने के लिये मुहम्मद ने किनाना को मृत्युतुल्य प्रताड़ना दी, उसके सीने पर जलती आग रख दिया। पर वह निधि नहीं मिल सकी, तो किनाना की हत्या कर दी गयी।

खैबर की विजय के बाद, 'उनके योद्धाओं (प्राण-प्रण से लड़ रहे यहूदियों) की हत्या कर दी गयी; उनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बना लिया गया [बुखारी 2:14:68]।[87] इब्न इस्हाक ने लिखा है, 'खैबर की स्त्रियों को मुसलमानों में बांट दिया गया।' बंदी बनायी गयी स्त्रियों में तीन बहुमूल्य महिलाएं किनाना की सत्रह वर्षीय पत्नी साफिया और किनाना की पत्नी की दो कुंवारी चचेरी बहनें भी थीं। सुन्नत से ज्ञात होता है कि आरंभ में साफिया मुहम्मद के जिहादी साथी दिह्या बिन खलीफा-अल कलबी के अंश (हिस्से) में आयी थी। जब किसी ने उसकी अप्रतिम सुंदरता के विषय में मुहम्मद को बताया और बोला कि वह केवल रसूल के भोग के योग्य है, तो मुहम्मद में उसे पाने की इच्छा पनप गयी, जैसा कि मुस्लिम 8:3329 [बुखारी 5:512 में भी] दिया गया है: 'अनस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो), ने बतायाः साफिया (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) जंग में लूटे गये माल के रूप में पहले दाहिया के हिस्से में आयी और उन्होंने अल्लाह के रसूल (अल्लाह उन्हें शांति प्रदान करे) की उपस्थिति में उसकी सुंदरता का बखान किया और बोलेः हमने जंग की उन बंदियों में उसके जैसा कोई और नहीं देखा।' यह सुनकर मुहम्मद ने आदेश दिया कि दिह्या और साफिया को उसके सामने लाया जाए। जब रसूल ने साफिया को देखा, तो उसने दिह्या से कहा, ''बंदी स्त्रियों में से कोई और ले लो।' रसूल ने उसे मुक्त कर दिया और उससे शादी कर ली [अबू दाऊद 19:2992]।' इब्न इस्हाक ने लिखा है, 'रसूल ने आदेश दिया कि साफिया उनके पीछे लायी जाए और उन्होंने अपना चोंगा उसके ऊपर फेंक दिया, जिससे कि मुसलमान जान जाएं कि उन्होंने उसे अपने लिये चुन लिया है।'[88] दिह्या को शांत करने के लिये उसे साफिया की दो युवा चचेरी बहनों को दिया गया।

मुहम्मद ने इस जंग में मिले लूट के माल को अपने जिहादियों में बांट दिया। वह आत्मसमर्पण किये हुए यहूदियों को निर्वासित करना चाहता था [बुखारी 3:53]। किंतु जैसा कि एक हदीस [अबू दाऊद 19:3008] में लिखा है कि मुसलमानों के पास इतने आदमी नहीं थे कि उनकी आहरण (जब्त) की गयी भूमि को जोत सकें: '... उनके (मुसलमानों) के पास उन जब्त की गयी भूमि पर काम करने के लिये पर्याप्त लोग नहीं थे।' इसलिये मुहम्मद ने उन यहूदियों को दो शर्तों पर वहां रहने और उस भूमि को अपने पास रखने की अनुमति दी: पहला, ''हम तुम्हें इस शर्त पर यहां रहने देंगे कि जब तक हमारी इच्छा होगी, तभी तक तुम

---

[87] इबिद, पृष्ठ 515

[88] इबिद

यहां रहोगे'' [बुखारी 3:53] और दूसरी शर्त यह है कि तुम इस भूमि पर जितनी उपज (फल और सब्जियां) उत्पन्न करोगे, उसका आधा भाग कर के रूप में मुसलमानों को दे दोगे [बुखारी 3:521-24]।

खैबर की घटना के बाद, फदक के भयभीत यहूदी जनजाति ने भी तुरंत मुहम्मद के पास का प्रस्ताव भिजवाया कि यदि उन्हें भी अपनी भूमि पर होने वाली उपज का आधा भाग देने के बदले अपनी भूमि पर रहने दिया जाए, तो वे भी आत्मसमर्पण करने को तैयार हैं। बाद में अरब की अन्य सबल यहूदी जनजाति-कैमुस, वसीह, सोलैलिम और वादी अल-कुरा आदि को भी या तो बलपूर्वक अधीन कर लिया गया अथवा उन्हें मारकाट कर भगा दिया गया। अपनी मृत्यु से पूर्व मुहम्मद ने अपने साथियों को अरब की भूमि से सभी यहूदियों व ईसाइयों को नष्ट करने का आदेश दिया। इब्न इस्हाक के अनुसार, रसूल जब मरणासन्न स्थिति में थे, तो निर्देश दिया 'कि इन दोनों धर्मों को अरब प्रायद्वीप में रहने की अनुमति न दी जाए।'[89] परिणामस्वरूप दूसरे खलीफा उमर ने 638 ईसवी में खैबर के यहूदियों को भगा दिया; और उसके शासन के अंत (644 ईसवी) तक अरब प्रायद्वीप में एक भी यहूदी और ईसाई न बचा [बुखारी 3:531, अबू दाऊद 19:3001]।[90]

ईसाइयों के साथ मुहम्मद का व्यवहार

प्रोफेसर एडवर्ड सेड बताते हैं कि मध्ययुग की अधिकांश अवधि और पुनर्जागरण के आरंभिक वर्षों में ईसाई यूरोप में इस्लाम को 'धर्म त्याग, ईशनिंदा और अंधकार का शैतानी मजहब माना जाता था।'[91]

पाइप्स ने लिखा है, 'ईसाइयों ने लंबे समय तक इस्लाम को अपने ही धर्म से निकले एक विधर्मी आंदोलन के रूप में देखा।'[92] इग्नाज़ गोल्डज़ाइहर ने दावा करते हैं कि 'मुहम्मद ने कोई नया विचार नहीं दिया था... (उसके) संदेश यहूदियों, ईसाइयों व अन्य स्रोतों के धार्मिक विचारों व नियमों के संकलित मैल थे।'[93] कुरआन स्वयं ही इस्लाम पर यहूदी व ईसाई प्रभाव से सहमति व्यक्त करती है; मूर्तिपूजक, पारसी, साबी व इस्लाम-पूर्व के अन्य धर्मों व धार्मिक प्रथाओं को भी इस्लामी पंथ में जोड़ा गया था। सैमुअल ज्वेमर ने निष्कर्ष निकाला है कि इस्लाम ''कोई अविष्कार नहीं, अपितु पुराने विचारों का एक कपटजाल है।''[94] इन दावों

---

[89] इबिद, पृष्ठ 525

[90] मुईर, पुष्ठ 381

[91] सेड ईडब्ल्यू (1997) इस्लाम एंड द वेस्ट इन कवरिंग इस्लामः हाउ द मीडिया एंड एक्पर्टस डिटरमाइन हाउ वी सी द रेस्ट आफ द वर्ल्ड, विन्टेज, लंदन, पृष्ठ 5-6

[92] पाइप्स डी (1983) इन द पथ ऑफ गॉड, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 77

[93] गोल्डज़ाइहर आई (1981) इंट्रोडक्शन टू इस्लामी थिऑलाजी एंड लॉ, अनुवाद एंड्रास एंड रूथ हामरोरी, प्रिंसटन, पृष्ठ 4-5

[94] ज़्वेमर एस (1908) इस्लामः ए चैलेंज टू फेथ, न्यूयार्क, पृष्ठ 24

के बीच कि इस्लाम की स्थापना उस समय प्रचलित धार्मिक विचारों, विशेष रूप से ईसाईयत व यहूदी धर्म के विचारों व प्रथाओं का घालमेल कर की गयी है, यहां रसूल मुहम्मद द्वारा ईसाइयों के साथ व्यवहार के विषय में व्यापक रूप से विचार किया जाएगा, जिससे पाठक इस्लाम के आधार और ईसाइयत के साथ इसके संबंध को समझ सकें। इससे पाठकों को यह समझने में सहजता होगी कि किस प्रकार ईसाइयत ने मुहम्मद के मिशन और उसके धर्मशास्त्र पर किस प्रकार विशेष रूप से प्रभाव डाला था और कैसे जैसे-जैसे इस्लाम जमता गया, उसका मजहब धीरे-धीरे परिवर्तित होता गया।

मुहम्मद के मिशन और पंथ पर ईसाई प्रभाव

आठवीं सदी के ईसाई धर्मशास्त्री जॉन ऑफ दमाकस (749 ईसवी) के अनुसार, मुहम्मद का मजहब ईसाई धर्म का भटका हुआ रूप था। उन्होंने लिखा, 'मुहम्मद ने ओल्ड व न्यू टेस्टामेंट के सम्पर्क में आने के बाद अपने नये पंथ को संगठित किया। वह इन ग्रंथों में सम्पर्क में संभवतः किसी ऐरियन पुरोहित के माध्यम से आया।' जर्मन दार्शनिक निकोलस ऑफ क्यूसा (1464 ईसवी) को कुरआन में ईसाइयत के एक मत नेस्टरियनवाद का तंतुजाल दिखता है। नेस्टरियनवाद ईसाई धर्म का वह पंथ है, जो आरंभिक ईसाई सदियों में मध्यपूर्व में अत्यंत प्रसारित था।[95]

इस्लामी साहित्य इसकी पुष्टि करते हैं कि मुहम्मद का ईसाई धर्म के साथ पहला सम्पर्क बाहिरा नामक एक विद्वान नेस्टरियन पुरोहित के माध्यम से हुआ था। वह इस पुरोहित से 12 वर्ष की अवस्था में तब मिला था, जब वह अपने चाचा अबू तालिब के साथ व्यापारिक यात्रा पर सीरिया गया था। इस यात्रा के समय ईसाई समुदाय के प्रभुत्व वाले सीरिया में ईसाई धर्म, परंपरा व धार्मिक कर्मकांडों के विषयों से मुहम्मद का परिचय पहली बार हुआ। कहावी गढ़ी गयी है कि बाहिरा धार्मिक विमर्श में मुहम्मद की रुचि से अत्यंत प्रभावित था और कथित रूप से उसमें आने वाले रसूल को देखा था, जैसा कि मुस्लिम साहित्य बताते हैं।[96] बताया गया है कि बाहिरा ने मुहम्मद को कुछ ईसाई सिद्धांत व नियम बतलाये और बाइबिल के प्रेरणादायी प्रसंगों को पढ़कर उसे सुनाया। मुहम्मद को बाहिरा से मिले बाइबिल के ज्ञान पर इब्न इस्हाक ने लिखा है: 'वहां उन्होंने एक पुस्तक से ज्ञान प्राप्त किया... वह पुस्तक जो पीढ़ियों से एक-दूसरे के पास चली आ रही थी।'[97] मुहम्मद को उस ज्ञान व शिक्षा को बाद में कुरआन में दिखाना था, जिससे कि अरब के लोग एक सच्चे ईश्वर की संकल्पना से परिचित हो सकें।

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि मुहम्मद अल्लाह से संदेश प्राप्त करने से पूर्व ही यहूदी व ईसाई धर्म के ग्रंथों में संभवत: प्रशिक्षित हो चुका था। इस्लामी साहित्य में ऐसे बहुत से संदर्भ दिये गये हैं, जो बताते हैं कि अपने पैगम्बरी मिशन को अपनाने से पूर्व मुहम्मद स्वयं ईसाई व यहूदी धर्मग्रंथों से परिचित हो चुका था और वह इन पंथों के ''एकेश्वरवाद'' की मूल

---

[95] वाकर, पृष्ठ 188

[96] अल-तबरी, अंक 6, पृष्ठ 45

[97] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 79-81

अवधारणा से प्रभावित था। ईसाई धर्म से उसका निकट सम्पर्क तब हुआ, जब 24 वर्ष की अवस्था में खदीजा से उसकी शादी हुई। खदीजा का अपने चचेरे भाई वारक़ा इब्न नौफल के माध्यम से ईसाई धर्मशास्त्रों से अच्छा संबंध था। वारक़ा ने तो गॉस्पेल के कुछ भागों का अरबी में अनुवाद भी किया था। इब्न इस्हाक ने लिखा है: 'वारक़ा ने स्वयं को ईसाई धर्म से जोड़ लिया था और जब तक वह ईसाई धर्मग्रंथों मे पारंगत न हो गया, उनका अध्ययन करता रहा।'[98] जैसा कि लिखा गया है, वह पहला व्यक्ति था, जिसने फरिश्ता जिबराइल के साथ मुहम्मद को संवाद की पुष्टि की थी और मुहम्मद को उसके पैगम्बरी मिशन को प्रारंभ करने के लिये मनाया था। खदीजा के जिस दास ज़ैद इब्न हारिस को मुहम्मद ने अपने दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया था, वह भी ईसाई था।

जब 25 वर्ष की अवस्था में मुहम्मद खदीजा का व्यापारिक कारवां लेकर सीरिया गया, तो वहां उसे एक नस्तूर या नेस्टर नामक नेस्टरियन पुरोहित मिला, जिसने कथित रूप से मुहम्मद को पैगम्बर के रूप में स्वीकार किया था।[99] इसके अतिरिक्त, मुस्लिम टीकाकार हुसैन ने बताया है कि रसूल नित्य सायंकाल तौरात व इंजील (गॉस्पेल) सुनने एक ईसाई के पास जाते थे।[100] इस्लामी साहित्य भी बताते हैं कि वारक़ा और खदीजा ने मुहम्मद को उन ईसाई पुरोहितों से मिलवाया था, जो मक्का में रहते थे। ऐसा ही निनेवाह का एक ईसाई पुरोहित अद्दास था, जो मक्का में बस गया था। खदीजा मुहम्मद को अद्दास के पास लाई और उसने लंबे वार्तालाप में मुहम्मद को यह समझाया था कि फरिश्ता जिबराइल पैगम्बरों तक ईश्वर का संदेश पहुंचाने वाला है।

बेंजामिन वाकर ने ईसाई धर्म के साथ मुहम्मद के अन्य सम्पर्कों के विषय में जानकारी दी है।[101] माना जाता है कि एक ईसाई तमीम अल-दारी के प्रभाव में आकर मुहम्मद के जहन्नुम व जन्नत संबंधी विचार बने थे। अब्दुल कैस जनजाति का एक कैस ईसाई था, जिसके निवास पर मुहम्मद प्रायः जाया करता था। व्यवसाय से तलवार बनाने वाला एक युवा यूनानी ईसाई मक्का में बस गया था। वह तौरात और ईसामसीह के उपदेशों का अच्छा ज्ञाता था। मुहम्मद नियमित उसके घर जाता था। मुहम्मद एक यूनानी ईसाई अबू तखीदा के घर भी नियमित जाता था। ईसाई तमीम जनजाति का अबू रुकय्या अपने जीवन की शुद्धता के लिये विख्यात था। ईसाई धर्म के प्रति उसके समर्पण व निःस्वार्थ भाव के कारण उसे ''लोक पुरोहित'' की उपाधि मिली थी। मुहम्मद उसके साथ भी जुड़ा था और वह बाद में मुसलमान हो गया। ऐसा माना जाता है कि मुहम्मद के समकालीन यमामा के किसी रहमान ने भी मुहम्मद को कुछ ईसाई विचार दिया। इब्न इस्हाक ने पुष्टि की है कि मुहम्मद का यमामा के किसी रहमान से संपर्क था। अन्य मुस्लिम टीकाकार रहमान को पैगम्बर के वेश में उपदेश देने वाले यमामा के एक प्रसिद्ध उपदेशक मुसैलिमा बताते हैं। मुहम्मद की

---

[98] इबिद पृष्ठ 99

[99] मुईर, पृष्ठ 21

[100] वाकर, पृष्ठ 190

[101] इबिद, पृष्ठ 190-91

मृत्यु के बाद मुसैलिमा इस्लाम का भयानक शत्रु बन गया था। मुसलमानों और मुसैलिमा के अनुयायियों के बीच अनेक रक्तरंजित संघर्ष हुए और वह मारा गया (बाद में इस पर बताया जाएगा)।

मक्का के लोगों का भी दूसरे देशों के ईसाइयों से अच्छा सम्पर्क था। उस क्षेत्र की कुछ ईसाई जनजातियों ने मक्का में वाणिज्यिक डिपो बना रखा था और वहां उनके प्रतिनिधि थे। वाकर ने लिखा है, 'ऐसी ही एक ईसाई जनजाति इज्ल थी, जो एक समझौते के अंतर्गत साहम कोरैश (कुरैश) से जुड़ी हुई थी और एक अन्य ईसाई जनजाति ग़ासन जुहरा के कुरैश कबीले से जुड़ी हुई थी तथा काबा के ही निकट उनका विशेषाधिकार प्राप्त केंद्र था।' वाकर लिखा है, इसके अतिरिक्त 'मक्का में ईसाई जनसंख्या थी, भले ही वह छोटी थी, किंतु प्रभावशाली थी। उस ईसाई जनसंख्या में अबीसीनिया, सीरिया, ईराक और फिलिस्तीन के अरबी व विदेशी और दास व मुक्त दोनों प्रकार के ईसाई थे। वे लोग वहां शिल्पकार, भवननिर्माता, व्यापारी, चिकित्सक और लेखकों के रूप में कार्यरत थे।' कुछ मुस्लिम इतिहासकारों ने भी मक्का में ईसाई कब्रिस्तान होने के विषय में लिखा है।[102]

मैनिशैन प्रभाव: मैनिशैनवाद एक्टाबा के मैनी (276 ईसवी) द्वारा स्थापित वह मत था, जिसकी रचना ईसाई, पारसी व बौद्ध विचारों को मिलाकर हुई थी और रसूल मुहम्मद के समय हीरा (मेसोपोटामिया) में यह पंथ पल्लवित हुआ था। चूंकि मक्का का हीरा के साथ व्यापार व वाणिज्य फलफूल रहा था, तो निस्संदेह मैनिशैनवाद का विचार मक्का भी पहुंचा था। मैनी ने अपने बारे में दावा किया था कि वो वही रक्षक हैं, जिसके आगमन के विषय में ईसामसीह ने बताया था; मैनी का यह भी दावा था कि पैगम्बरों के अनुक्रम में वो अंतिम पैगम्बर हैं; उन्होंने यह भी दावा किया था कि उन्हें दैवीय सृष्टिकर्ता के संदेश मिले हैं; उन्होंने यह भी दावा किया था कि ईसामसीह सूली पर नहीं लटकाये गये थे, अपितु उनके स्थान पर एक दूसरे व्यक्ति को रख दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मैनिशैनवाद के इन मूलभूत विष्वासों ने मुहम्मद को प्रभावित किया था और इन्हें इस्लाम में महत्वपूर्ण स्थान मिला।

नेस्टोरियन प्रभाव: नेस्टोरियनवाद एक और ईसाई पंथ था, जिसकी स्थापना कुस्तुंतुनिया के बिशप नेस्टोयस (451 ईसवी) ने की थी। यह ईसाई पंथ फारस में पल्लवित हो रहा था तथा मुहम्मद के समय मक्का पहुंचा। नेस्टोरियन पुरोहित के साथ मुहम्मद की बैठक का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। नेस्टोरियन विशुद्धिवादी थे तथा ईसामसीह व क्रास के चित्र प्रदर्शन के विरोधी थे। नेस्टोरियनों के इस विचार को इस्लामी सिद्धांतों में बड़ा स्थान मिला। डेनमार्क के एक समाचारपत्र में मुहम्मद के चित्र के प्रकाशन के बाद फरवरी, 2006 में मुसलमानों द्वारा किये गये व्यापक प्रदर्शन और हिंसा की उन घटनाओं में इस विचार की झलक दिखती है। इस हिंसा में अनेक लोग मारे गये थे। इस्लाम में जीवित प्राणियों और विशेषकर रसूल मुहम्मद का चित्रण करना अथवा छवि या चित्र बनाना प्रतिबंधित है।

एकांतवासी ईसाई साधुओं का प्रभाव: उस समय के ध्यानमग्न ईसाई साधुओं ने भी मुहम्मद के धर्मशास्त्र संबंधी विचारों पर गहराई से प्रभाव डाला था। इस्लामी इतिहासवृत्त और मूर्तिपूजक इतिहासवृत्त दोनों के अनुसार, ईसाई साधुओं ने इजिप्ट, एशिया माइनर (आज का तुर्की), सीरिया, फिलिस्तीन, मेसोपोटामिया और अरब के मार्गों पर आश्रमवासी समुदाय बना रखे थे। इस ईसाई समुदाय

---

[102] इबिद, पृष्ठ 180

के लोगों ने अपना जीवन अच्छे कार्यों, दान-परोपकार, निर्धनों, रोगियों व अनाथों-विशेषकर परित्यक्त बालिकाओं की सेवा कार्य में समर्पित कर दिया था। थके हुए यात्री और व्यापार-कारवां के लोग अपनी यात्रा के समय रात्रि में इन आश्रमों में विश्राम के लिये ठहरते थे। आश्रम के लोग उन लोगों का स्वागत करते थे, उन्हें आश्रय देते थे और उनकी सेवा करते थे। चूंकि मुहम्मद इन क्षेत्रों में अपनी व्यापारिक यात्रा के लिये बहुत घूमा होगा, तो निश्चित ही वह इन आश्रमों से भली-भांति परिचित रहा होगा; उसने स्वयं इन आश्रमों में आतिथ्य प्राप्त किया था। जब मुहम्मद सीरिया की अपनी पहली व्यापारिक यात्रा पर गया था, तो ईसाई साधु बाहिरा ने उसे बहुत बार भोजन कराया था।[103] इन ईसाई साधुओं ने मुहम्मद के मन-मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डाला था और मुहम्मद ने कुरआन में उनकी जीवनशैली को बहुत श्रद्धा से डालाः

1. 'अपना धन अच्छाइयों पर व्यय करोः अपने माता-पिता, परिवार, अनाथों, यात्रियों और अभावग्रस्त लोगों की सहायता के लिये।' [कुरआन 2:225]
2. 'माता-पिता, संबंधियों, अनाथों, अभावग्रस्तों, पड़ोसियों और यात्रियों के प्रति दयालु रहो।' [कुरआन 4:36]

मुहम्मद द्वारा ईसाई साधुओं से लिया गया इस्लाम का एक और बड़ा पक्ष प्रार्थना पद्धति है। वो ईसाई साधु जीवन पूर्ण पवित्रता में बिताते थे, उन्होंने अपना जीवन दिन में अनेक बार प्रार्थना में समर्पित कर रखा था। उन ईसाई साधुओं की प्रार्थना पद्धति में श्रद्धामय आसन समाहित थे: हथेलियों को जोड़कर खड़े होना, झुकना, घुटना टेकना और एड़ियों के बल बैठना। मुहम्मद ने निस्संदेह ईसाई साधुओं की इस प्रार्थना पद्धति की नकल की थी। सीजे आर्चर की पुस्तक मिस्टिक ऐलीमेंट्स इन मुहम्मद (1924) के अनुसार, वे ईसाई साधु इस विश्वास से देर रात को भी प्रार्थना-अनुष्ठान किया करते थे कि ''सोने से अच्छा है प्रार्थना करना।''[104] भोर में मुसलमानों की अजान इसी आधार पर जोड़ी गयी है। उन ईसाई साधुओं की जीवन शैली के कुछ पक्षों जैसे ईश्वर के प्रति समर्पण, उदारता व दान के कार्यों से मुहम्मद इतना प्रभावित था कि उसने इन पक्षों को कुरआन में डाला: '...उस पुस्तक के अनुयायियों (ईसाईयों) में से सच्चे लोग हैं; वे रात में अल्लाह की आयतें पढ़ते हैं और ईश्वर का बखान करते हैं... वे सही मार्ग पर चलने को कहते हैं, गलत कार्य करने से रोकते हैं और वे एक-दूसरे के साथ भलाई के कार्य में अग्रसर रहते हैं, और वे सदाचारियों में से हैं।' [कुरआन 3:113-14]

किंतु पैगम्बरी मिशन प्रारंभ करने से बहुत पहले ही मुहम्मद शादी कर चुका था और सांसारिक जीवन में संलिप्त था, इसलिये उसने वैराग्यवाद की निंदा की। उसने दावा किया कि वैराग्य अल्लाह का आदेश नहीं है, अपितु ईसाइयों द्वारा बनाया गया है [कुरआन 57:27]।

मक्का में ईसाई धर्म को लाने का उस्मान इब्न हुवैरिस का प्रयासः यहां जिस एक अन्य व्यक्ति के उल्लेख की आवश्यकता है, वह है उस्मान इब्न हुवैरिस, जो मक्का में एक प्रभावशाली नेता और मुहम्मद की पहली बीवी खदीजा का चचेरा भाई था। इब्न इस्हाक के

---

103 अल-तबरी, अंक 6, पृष्ठ 44-45; इब्न इस्हाक, पृष्ठ 80

104 वाकर, पृष्ठ 62

अनुसार, उस्मान का बहुदेववाद से मोहभंग हो गया था। काबा में मूर्तिपूजा से व्याकुल होकर 'वह बैजेंटाइन सम्राट के पास चला गया और ईसाई हो गया। उसे वहां उच्च पद दिया गया।'[105] मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के प्रारंभ के पांच वर्ष पूर्व 605 ईसवी में उस्मान मक्का लौट आया था। उस पर बैजेंटाइन साम्राज्य का हाथ था, तो उसने वहां प्रचलित बहुदेववाद में सुधार की मंशा से मक्का के शासन पर दबाव डाला। शासन कर रहे मक्कावासियों ने उसके इस प्रयास का विरोध किया, तो वह सीरिया भाग गया और वही उसकी हत्या हो गयी।[106]

उकज़ के मेले में क़िस इब्न सैदा का उपदेश: मुहम्मद मक्का के निकट उकज़ के वार्षिक मेले में उपदेश सुनने जाया करता था। उकज़ के मेले में मुहम्मद की क़िस इब्न सैदा ('क़िस' का अर्थ होता है 'पुरोहित') से भेंट हुई, जिसका यहां उल्लेख किया जाना आवश्यक है। इस्लामी सुन्नत बताती है कि मुहम्मद के मिशन के प्रारंभ से पूर्व इयाद जनजाति से संबंधित नजरान के बिशप क़िस इब्न सैदा मेले में प्रवचन देते थे।

वो मानों ''परमानंद'' में बोल रहे होते थे, तत्कालीन अरबी कविता शैली में तुकबंदी कविता (सई) गा रहे होते थे, जिसे आज पढ़कर कुरआन की आरंभिक सूराएं स्मरण हो उठती हैं। एक उपदेश में वो गा रहे थे:

> 'हे तुम, लोगों निकट आओ/ और सुनो, और डरो/लक्षण व्याख्यायित हैं/विरोध न किया जाए/सितारे जो अस्त होते हैं और उगते हैं/समुद्र जो कभी नहीं सूखता है।
>
> आकाश के ऊपर जो पड़ता है/धरती पर नीचे जो रहता है/बारिश हो जाती है/पेड़-पौधों को जीवन मिल जाता है/नर और नारी मिल जाते हैं।
>
> समय उड़ रहा है और समय उड़ गया/हे नश्वर कहो/आज वो जनजातियां कहां हैं/जिन्होंने कभी अवज्ञा की/भलाई के नियम/कहां हैं वे?
>
> वास्तव में ईश्वर ही देता है/उनको प्रकाश जो जीना चाहते हैं!'

बिशप तब मानव दोषों, ईश्वर की कृपा और आने वाले प्रलय के दिन का उपदेश देने लगे। मुहम्मद ''मंत्रमुग्ध सा'' उस उपदेश को सुन रहा था और उसमें खो गया था। उस उपदेश ने उसके तन-मन में तरंग उत्पन्न कर दिया, जैसा कि मुस्लिम विद्वान अल-जाहिज़ एक सुन्नत में लिखा है कि मुहम्मद ने स्वयं ही बताया कि 'कैसे वो उत्साहपूर्वक वह दृश्य, वह व्यक्ति, वो सुव्यक्त शब्द और प्रेरक संदेश का स्मरण किया करते थे।' बाद के वर्षों में जब इयाद जनजाति का एक प्रतिनिधिमंडल ने मक्का की यात्रा पर

---

105 इब्न इस्हाक, पृष्ठ 99

106 वाकर, पृष्ठ 66

आया, तो मुहम्मद ने उनसे क़िस के बारे में पूछा और उसे बताया गया कि उनकी मृत्यु हो गयी (613 ईसवी)। इस समाचार से दुखी मुहम्मद ने उनके बारे में सहृदयता से कहा कि वही थे, जिन्होंने उसे ''सच्चे ब्रह्मांडीय धर्म'' का उपदेश दिया था।[107]

उकज़ के मेले में यहूदी धर्मोपदेशक भी प्रवचन करते थे। दोनों धर्मों के उपदेशक मूर्तिपूजा करने के कारण अरब जनजातियों का तिरस्कार करते हुए और नर्क में उनके लिये दंड की चेतावनी देते हुए ताना मारते थे। मुहम्मद उस मेले में जाया करता था और यहूदी व ईसाई धर्मोपदेशकों के उपदेशों को सुना करता था। यहूदियों और ईसाई के मध्य पारस्परिक शत्रुता के बाद भी इन दोनों धर्मों में एक समानता यह है कि दोनों के पास एक एकात्मक ईश्वर, उतारी गयी ईश्वरीय पुस्तक और अपने-अपने पैगम्बर थे; दोनों उग्रता से मूर्तिपूजा की निंदा करते थे; और निश्चित ही दोनों अपने-अपने उपदेशों में नर्क में मिलने वाले दंड का भय दिखाते थे- इन सब ने निश्चित ही मुहम्मद के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला था।

मुहम्मद के पंथ पर अन्य मान्यताओं व आख्यानों का प्रभाव

मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के आधार को अच्छे से समझने के लिये यहां विषयांतर करते हुए उन अन्य मान्यताओं, प्रथाओं और आख्यानों को संक्षिप्त रूप से समाहित करना आवश्यक है, जिन्होंने उसके पंथ के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

हनीफियों का प्रभावः यहां हनीफ पंथ के एक ज़ैद इब्न अम्र के प्रभाव का यहां उल्लेख किया जाना चाहिए। हनीफ एक सीरियाई ईसाई शब्द है, जिसका अर्थ है मूर्तिपूजा से दूर हो चुका व्यक्ति। अरब में मुहम्मद के समय, यह शब्द सामान्य रूप में एकेश्वरवादियोंः यहूदियों, ईसाइयों, पारसियों और साबियों (सैबियन्स) के संदर्भ में प्रयोग किया जाता था। मक्का में हनीफ शब्द मुख्यतः उनके लिये प्रयोग किया जाता था, जो यहूदी और ईसाई प्रभाव में मूर्तिपूजा को छोड़ चुके थे और मूर्तिपूजा का सुधार एकेश्वरवाद में करने का प्रयास कर रहे थे। इब्न इस्हाक ने मक्का के हनीफों की मान्यता पर लिखा है:[108]

> ...उनका विचार यह था कि उनके लोगों ने उनके पिता अब्राहम के धर्म को भ्रष्ट कर दिया है और जिस पत्थर (काबा में काला पत्थर) की वो परिक्रमा करते हैं, उसका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि वह पत्थर न तो सुन सकता है, न देख सकता है और न ही सहायता कर सकता है। उन्होंने कहा, 'अपने लिये धर्म ढूंढ़ो, क्योंकि ईष्वर जानता है, तुम्हारे पास कोई धर्म नहीं है।' तो वे वहां अपने-अपने ढंग से अब्राहम के धर्म हनीफिया को खोजते हुए गये।

ज़ैद इब्न अम्र के अतिरिक्त उस्मान इब्न हुवैरिज और वारका इब्न नौफल भी हनीफ थे।

ज़ैद उमर का चाचा था, वही उमर जो मुहम्मद का साथी और इस्लाम का दूसरा खलीफा था। वह स्वयं को अब्राहम के धर्म का अनुयायी कहता था तथा अपनी जनजाति की मूर्तिपूजक परंपरा को नीचा दिखाते हुए कविताएं लिखा करता था।

---

107 इबिद, पृष्ठ 90

108 इब्न इस्हाक, पृष्ठ 99

ज़ैद नवजात बालिकाओं की हत्या और मूर्तिपूजा की निंदा करता था। प्रत्येक वर्ष रमजान के मास में वो हीरा की पहाड़ी के खोह में ध्यान लगाते हुए समय व्यतीत करता था।

595 ईसवी के आसपास, मुहम्मद (आयु 24-25) मार्ग में ज़ैद से मिला और संवाद किया। मुहम्मद ने उसको बलि चढ़ाया गया मांस दिया। ज़ैद ने उस मांस को लेने से मना कर दिया, मूर्तिपूजा करने के लिये मुहम्मद को फटकार लगायी और मूर्तिपूजकों के ईश्वर को चढ़ाया गया मांस खाने पर उसको झिड़का। मुहम्मद ने बाद में कहा था, ''उसके बाद मैंने जानबूझकर उन मूर्तियों में से किसी भी मूर्ति को न कभी छुआ और न ही मैंने कभी उनको पशु बलि दी।'' ज़ैद काबा के प्रांगण में बैठा करता था और वहीं प्रार्थना किया करता था: ''हे ईश्वर, मुझे नहीं पता कि आप क्या चाहते हैं कि आपकी पूजा कैसे की जाए। यदि मुझे पता होता, तो मैं निश्चित ही वैसे ही आपकी पूजा करता।'' लोगों ने उसका उपहास उड़ाया, तो वह सीरिया चला गया और इसके बाद वह रब्बियों व पुरोहितों से इसका ज्ञान लेने के लिये ईराक चला गया। 608 ईसवी में वापस लौटते समय वह डकैतों के हाथों मारा गया।[109]

ज़ैद के सिद्धांतों और प्रथाओं से मुहम्मद के इतनी गहराई से प्रभावित होने से प्रतीत होता है कि उसने बाद में ज़ैद के सारे सिद्धांतों को इस्लाम में डाला। वास्तव में मुहम्मद अपने अनुयायियों को आरंभ में हनीफ कहा करता था। कुरआन इसकी पुष्टि करती है कि मुहम्मद केवल अब्राहम के मूल व शुद्ध मजहब (एकेश्वरवाद) का उपदेश दे रहा था [कुरआन 21:51], ''अब्राहम बहुदेववादियों में से नहीं था'' [कुरआन 16:123]। दूसरे शब्दों में अब्राहम एक हनीफ था।[110] बाद की आयत कुरआन 3:67 में मुहम्मद ने ''मुसलमान'' शब्द जोड़ा और यह भी जोड़ा कि अब्राहम अब एक मुसलमान और एक हनीफ था (अर्थात वह बहुदेववादी नहीं था)।

अपने उपदेशों में मुहम्मद सभी गैर-मुसलमानों को तो जहन्नुम की आग में भेजता ही था और यहां तक कि उससे अपार स्नेह करने वाले चाचा अबू तालिब व अपनी अम्मी अमीना को भी जहन्नुम की आग में भेजता था, क्योंकि वो दोनों गैर-मुसलमान थे। किंतु जैद इसका अपवाद था, क्योंकि उसके गैर-मुसलमान होने के बाद मुहम्मद ने उस पर ईश्वर की दया होने की दुआ की थी। इब्न इस्हाक ने लिखा है, जब मुहम्मद से पूछा गया: ''क्या हमें ज़ैद बिन अम्र के लिये अल्लाह की क्षमा मांगनी चाहिए?' उसने उत्तर दिया, 'हां, क्योंकि उन्हें एक पूरी कौम के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में पुनर्जीवित किया जाएगा।''[111] रसूल ने आगे कहा,

---

[109] इबिद, पृष्ठ 99-103; वाकर, पृष्ठ 89

[110] दोज नॉट पॉलीथीस्ट्स इन मक्का वर काल्ड हनीफ्स

[111] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 100

''वह जन्नत जाने वाले लोगों में से एक हैं। मैंने उन्हें वहां देखा है।''[112] इससे स्पष्ट होता है कि मुहम्मद के जीवन व उसके सिद्धांतों के गठन में ज़ैद (और सामान्य रूप में हनीफ) का अत्यधिक प्रभाव था।

अन्य एकेश्वरवादी प्रभावः मुहम्मद के पंथ के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से यहूदियों और ईसाईयों का प्रबल प्रभाव था। मदीना जाने के बाद यहूदियों के साथ उसका सम्पर्क नाटकीय ढंग से बढ़ गया था। उस क्षेत्र में प्रचलित फारस के अग्नि-पूजक जोराष्ट्रियन (अर्थात पारसी धर्म) और सितारों की पूजा करने वाले साबी धर्म आदि अन्य एकेश्वरवादी पंथों ने भी मुहम्मद को प्रभावित किया था। उसने इन धर्मों के अनेक विचार व संहिताओं को इस्लाम में सम्मिलित किया। यहूदियों और ईसाइयों के साथ ही कुरआन साबी धर्म के लोगों का भी उल्लेख पुस्तक के लोग के रूप में करता है [कुरआन 5:69] तथा जोराष्ट्रियनों (मदजुस/मैगिअंस) का अनुकूल ढंग से चित्रण करता है [कुरआन 22:17]। उसने अर्थात मुहम्मद ने स्वर्ग (जन्नत) और नर्क (जहन्नुम) की जोराष्ट्रियन अवधारणा को इस्लाम में डाला। कुरआन 71:15 में उसकी सितारों की कसम स्पष्ट रूप से साबी धर्म के प्रभाव को दर्शाती है।

बहुदेववादी प्रभावः गुंजायमान धार्मिक गतिविधियों के केंद्र काबा के समीप बड़े होते हुए मुहम्मद पर धार्मिकता का प्रभाव पड़ा था। मुहम्मद जिस बहुदेववादी धर्म और परंपरा के बीच पला-बढ़ा था, उसकी छाप भी उसके नये पंथ पर पड़ी। उदाहरण के लिये, पवित्र काबा मंदिर की तीर्थयात्रा वाला हज व उमरा बहुदेववादी (मूर्तिपूजक) प्रथाएं थीं और इसे भी छोटे-मोटे परिवर्तन के साथ इस्लाम में डाला गया। हज के प्रारूप में तो मुहम्मद ने केवल इतना ही परिवर्तन किया कि जो पशु बलि पहले मूर्तिपूजकों के ईश्वर के लिये दी जाती थी, उसे अब कुर्बानी नाम देकर अदृश्य अल्लाह के लिये किया जाने लगा।

मुहम्मद के जीवन के आसपास हो रही घटनाओं का ध्यान से विश्लेषण करने पर स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वह एक ईश्वर की पूजा करने वाले प्रचलित एकेश्वरवादी समुदाय से विशेष रूप से प्रभावित था। यहूदी व ईसाई मतावलंबियों एवं उपदेशकों के साथ सम्पर्क व विमर्श ने उसके मन-मस्तिष्क को एकेश्वरवादी ईश्वर की अवधारणा के लिये अत्यधिक प्रेरित किया। उन धर्मों में ईश्वर के कठोर निर्णय एवं नर्क में भयानक दंड की अवधारणा ने अवश्य ही उसके मन में मृत्यु के पश्चात ईश्वर के प्रतिशोध का भय भर दिया होगा, जबकि कुरैशों की मूर्तिपूजक परंपराओं में ऐसी कोई अवधारणा नहीं थी। मुहम्मद के मिशन के मात्र पांच वर्ष पूर्व ही इब्न हुवैरिस ने मक्का के मूर्तिपूजकों को सुधार कर ईसाई धर्म की ओर लाने के लिये मिशन चलाया था, अतः निश्चित ही इब्न हुवैरिस के मिशन से मुहम्मद को अपना मिशन चलाने और एवं मक्का मूर्तिपूजकों के बीच अपने एकेश्वरवादी पंथ की स्थापना की प्रेरणा मिली होगी।

इस्लाम में ईसाई धर्म के विचार

मुहम्मद ईसाई धर्मशास्त्रों से अत्यंत प्रभावित था और अपना पैगम्बरी मिशन प्रारंभ करने से पूर्व वह संभवतः ईसाई धर्म में प्रशिक्षित हो चुका था। यह बात इस तथ्य से निकल कर आती है कि कुरआन में ईसाई धर्म की अनेक अवधारणाओं को चुराकर

---

[112] वाकर, पृष्ठ 90

अल्लाह के ईश्वरीय आयत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रसूल ने स्पष्ट रूप से ईसाई पुरोहितों की प्रार्थना शैली की नकल की थी। 615 ईसवी में जब मुहम्मद ने अपने कुछ अनुयायियों को अबीसीनिया में बसने के लिये भेजा, तो वहां के ईसाई राजा द्वारा वहां उनका स्वागत किया गया और उन्हें सुरक्षा दी गयी। अल-तबरी के अनुसार, उन प्रवासियों ने बाद में कहा: ''हम अबीसीनिया आये और हमें वहां श्रेष्ठ आतिथ्य के साथ रखा गया। हमें प्रताड़ित किये बिना अथवा अप्रिय शब्द सुने बिना अपने मजहब का पालन करने के लिये सुरक्षा दी गयी।''[113] निश्चित ही इस घटना ने मुहम्मद के मन-मस्तिष्क पर ईसाई धर्म के प्रति अनुकूल छाप डाली थी। जैसा कि इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस घटना के बाद से ही अल्लाह द्वारा भेजी गयी आयतों में ईसाई धर्म (यहूदी धर्म भी) का मूल्यांकन अच्छे स्वरूप में होने लगा। कुरआन की यह परिपाटी तब तक चलती रही, जब तक कि मुहम्मद मदीना नहीं चला गया।

कुरआन में अल्लाह ईसामसीह को संबोधित करते हुए कहता है: 'हे ईसा! कयामत के दिन मैं तुम्हारे अनुयायियों को उनसे श्रेष्ठ बनाऊंगा/रखूंगा, जो मजहब (इस्लाम) को अस्वीकार करते हैं [कुरआन 3:55]।' कुरआन में यह भी लिखा है कि ईसाई अहंकार से मुक्त हैं और मुसलमानों के प्रति मित्रता का भाव रखने की प्रवृत्ति वाले हैं। यहां कुरआन स्पष्ट रूप से मुसलमान प्रवासियों के प्रति अबीसीनिया के राजा के आतिथ्य को इंगित करती है। जनवरी 630 में मक्का में विजयी प्रवेश के बाद मुहम्मद ने मूर्तियों को नष्ट करने तथा भित्तियों (दीवारों) व स्तम्भों से चित्रों को मिटाने का आदेश दिया। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि अब्राहम और इस्माइल के पुतले भी नष्ट कर दिये गये, परंतु मुहम्मद ने मैरी और नवजात ईसामसीह के चित्र को अपने हाथों से ढंककर उसकी रक्षा की।

कुरआन में बाइबिल के प्रसंगों से मिलती-जुलती घटनाएं: मुहम्मद ने न केवल ईसाई धार्मिक रीतियों व विचारों को ग्रहण किया, अपितु उसने बाइबिल के अनेक प्रसंगों को लगभग हूबहू या थोड़ा हेर-फेर करके नकल कर लिया। इस प्रकार की कुछ घटनाएं नीचे सूचीबद्ध की गयी हैं:[114]

1. 'धरती के उत्तराधिकारी मेरे सत्यपथ पर चलने वाले लोग होंगे' [कुरआन 21:105], यह आयत [बाइबिल पीएस 37:29] से नकल करके हूबहू उतार दी गयी है।
2. मार्क के गॉस्पेल का एक पद में लिखा हैः 'क्योंकि धरती अपने फल को ऊपर लाती है; पहले अंकुर, फिर गुठली और इसके बाद उस गुठली का पूरा फल आता है' [मार्क 4:28]। कुरआन इसे इस प्रकार लिखती है: 'वो बीज हैं, जो अंकुर में अपनी जड़ निकालते हैं, फिर उसे मजबूत करते हैं और अपने तनों पर बढ़ते जाते हैं [कुरआन 48:29]।'

---

113 अल-तबरी, अंक 6, पृष्ठ 99

114 इबिद, पृष्ठ 93

3. ईसा मसीह ने कहा: 'किसी ऊंट का सुई के छिद्र से पार हो जाना सरल है, किंतु किसी धनी व्यक्ति का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना उतना सरल नहीं है [मैट्ट 19:24]।' कुरआन के अनुसार, 'जन्नत (स्वर्ग) का द्वार उनके लिये नहीं खोले जाएंगे, जो हमारी आयतों को झुठलाते हैं, न ही वे जन्नत में प्रवेश पाएंगे, जब तक कि ऊंट सुई के छिद्र से पार न हो जाए [कुरआन 7:40]।'
4. बाइबिल कहती है, प्रलय के दिन, 'आकाश मिलकर एक बंडल जैसे लिपट जाएंगे [ईसा 34:4]।' कुरआन कहती है, 'उस दिन हम आकाश को ऐसे गोल-गोल लपेट देंगे, मानों कि लिखे हुए कागजों का पुलिंदा हो [कुरआन 21:104]।'
5. बाइबिल कहती है, 'जहां दो या तीन व्यक्ति मेरे नाम से जुटते हैं, वहां मैं उनके बीच होता हूं [मैट्ट 18-20]।' कुरआन इसे कहती है: 'तीन व्यक्ति चुपचाप एकसाथ नहीं मिल सकते हैं, क्योंकि उनके बीच चौथा अल्लाह होता है [कुरआन 58:7]।'
6. बाइबिल कहती है, 'इतने कार्य हैं, जो ईसामसीह ने किये कि यदि उन कार्यों को लिखने बैठा जाए, तो लगता है कि सारा संसार मिला दिया जाए, तो भी उस पुस्तक के लिखने के लिये पृष्ठ कम पड़ जाएंगे [जॉन 21:25]।' कुरआन इसे ऐसे कहती है: 'यदि सागर स्याही हो जाए, तो भी मेरे स्वामी की बातें लिखने के लिये कम पड़ जाएगी [कुरआन 18:109]।'

इस्लाम में ईसाई शब्दावली: इस्लाम की अधिकांश शब्दावलियां भी ईसाई धार्मिक रीतियों से उधार ली गयी थीं। ''इस्लाम'' (''मुसलमान'' का भी) अर्थ है ''अल्लाह के प्रति समर्पण'' और इस शब्द का मूल भी सैमिटिक शब्दावली 'स्लम' में है तथा ईसाई रीति में इस शब्द का अर्थ ''ईश्वर के प्रति निष्ठा'' होता है। शब्दावली ''कुरआन'' की उत्पत्ति ईसाई अरैमैक शब्दावली करआन से हुई है, जिसका प्रयोग तत्कालीन समय में चर्च की सेवा में पवित्र पाठ करने के अर्थ में किया जाता था। शब्द सूरा की उत्पत्ति अरैमेक ईसाई शब्दावली सूत्रा से हुई है, जिसका अर्थ है किसी पुस्तक का भाग और शब्द आय अर्थात आयत या चिह्न भी ईसाई शब्दावली से लिया गया है। अन्य इस्लामी शब्दावलियां भी पहले से ही ईसाइयों द्वारा प्रयोग की जा रही थीं।

कुरआन में ईसामसीह और बाइबिल को अच्छे ढंग से स्थान दिया गया है। कुरआन कहती है कि ईश्वर ने ईसामसीह को मानवजाति के लिये दया के प्रतीक के रूप में भेजा [कुरआन 19:21]। इसमें पुष्टि की गयी है कि गॉस्पेल ('इवैंजेल' से इंजील) एक ऐसी ईश्वरीय पुस्तक है, जो ईसामसीह को प्रदान की गयी थी और जो लोग ईसामसीह का अनुसरण करते हैं, उनके हृदय को अल्लाह ने दयाभाव से परिपूर्ण कर दिया है [कुरआन 57:27]। कुरआन स्पष्ट कहती है कि ईसाइयों का गॉस्पेल मानव जाति का ऐसा मार्गदर्शन है [कुरआन 3:3], जिसमें सत्य समाहित है [कुरआन 9:111], और जो मागदर्शन व ज्ञान का प्रकाश देती है [कुरआन 5:46]। कुरआन कुंवारी मैरी (मरियम) का सम्मान अति प्रतिष्ठित नारी के रूप में करती है। कुरआन कहती है, संसार की सभी महिलाओं में सबसे ऊपर चुने जाने के बाद वह (मैरी) अल्लाह द्वारा पवित्र बनायी गयी [कुरआन 3:37] और उसकी पवित्रता अक्षुण्ण रखी गयी [कुरआन 66:12]। वह एक 'संत महिला थीं' [कुरआन 5:75]। ईश्वर ने अपनी भावना उसके गर्भ में फूंक दी थी; और इस प्रकार ईसा मसीह का जन्म ईश्वर का ऐसा रचनात्मक कार्य था, जिसे एक ऐसी निर्मल कुंवारी महिला पर सौंपा गया,

जिसने अपना कुंवारापन अक्षुण्ण रखा [कुरआन 19:21, 21:91]। कुरआन कहती है, जो गॉस्पेल को मानते हैं वो इस संसार और परलोक दोनों स्थानों पर अच्छा फल भोगेंगे [कुरआन 5:69]।

इस्लाम में कुछ नया नहीं: यह स्पष्ट है कि मुहम्मद के समय अरब में प्रचलित सभी प्रकार के धार्मिक विचारों व प्रथाओं- ईसाई, यहूदी, पारसी, हनफी, मूर्तिपूजक और लोकप्रिय आख्यानों व मिथकों को कुरआन में या तो हूबहू अथवा थोड़े-बहुत हेरफेर के साथ सम्मिलित किया गया है। वस्तुतः अल्लाह ने न तो कोई नई बात कही थी और न ही मुहम्मद कुछ नया ढूंढकर लाया था, वस्तुतः इस्लाम के गठन में कुछ भी नया नहीं था। इस्लाम के सिद्धांत, रीतियों अथवा परंपराओं में ऐसा कुछ अनोखा नहीं है, जो कि इस्लाम के जन्म के पहले से विद्यमान धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक प्रथाओं एवं लोकप्रिय मिथकों व आख्यानों में न रहा हो। अल्लाह व मुहम्मद ने पहले से विद्यमान विचारों, चिंतनों व परंपराओं को ही इस्लाम में खिचड़ी बनाकर प्रस्तुत किया। इसलिये इग्नाज़ गोल्डजाइहर और सैमुअल ज्वेमर जैसे विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि मुहम्मद ने कोई नया विचार नहीं दिया था, अपितु उस समय के विद्यमान विचारों व प्रथाओं का नया कपटजाल बुन दिया था। इससे सहमति व्यक्त करते हुए इब्न वराक लिखते हैं:

> मुहम्मद कोई मौलिक चिंतक नहीं था, उसने किसी नये नीति-सिद्धांत को नहीं गढ़ा। उसके समय में जो प्रचलित सांस्कृतिक परिवेश था, वहीं से उठा लिया था। लंबे समय से इस्लाम की संकलक प्रकृति पहचान ली गयी है अर्थात इसमें कुछ भी मूल नहीं, सब दूसरों से लिया हुआ है। यहां तक कि मुहम्मद भी जानता था कि इस्लाम कोई नया धर्म नहीं है और कुरआन में समाहित आयतों ने ही पहले से विद्यमान धर्मग्रंथों की पुष्टि की है। रसूल ने सदैव दावा किया कि वह यहूदियों, ईसाइयों व अन्य महान धर्मों के संपर्क में था।[115]

निश्चित रूप से मुहम्मद के मिशन पर ईसाई धर्म का सर्वाधिक प्रेरक प्रभाव रहा। क्योंकि मुहम्मद के मिशन का आरंभिक उद्देश्य मक्का में मूर्तिपूजा को दूर करना था और मक्का में कुछ ईसाई यह मिशन पहले से चला रहे थे। ईसाई सिद्धांतों व प्रथाओं को इस्लाम में व्यापक रूप से सम्मिलित किया गया है। इसलिये यह ऐतिहासिक ईसाई मान्यता कि इस्लाम उनके अपने पंथ का ही एक विकृत रूप है, अधिक उचित लगती है।

कुरआन में ईसाई धर्म की निंदा

मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के पहले पांच वर्ष में जब कुरआन के कुल 114 अध्यायों में से लगभग 20 अध्याय ही आये थे, तो उनमें बाइबिल या ईसाई धर्म के विषय में अति अल्प उल्लेख था। मुहम्मद द्वारा 615 ईसवी में अपने अनुयायियों को ईसाई देश अबीसीनिया भेजने के बाद से ही नयी आयतों में बाइबिल की कथाओं की पुष्टि होनी प्रारंभ हो गयी। यह परिपाटी मदीना में मुहम्मद के मिशन की आरंभिक अवधि तक चलती रही।

संभव है कि मक्का के बहुदेववादियों को अपने मजहब में लाने की कोई संभावना न देखकर मुहम्मद को लगा होगा कि यदि वह अपने नये पंथ में ईसाइयों व यहूदियों के धर्म का अनुमोदन करता है, तो ईसाई व यहूदी उसके मिशन से जुड़ जाएंगे,

---

[115] इब्न वराक (1995) व्हाई आई ऐम नॉट मुस्लिम, प्रॉमैथिअस बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 34

इसलिये उसने ईसाइयों व यहूदियों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। अबीसीनिया के जिन ईसाइयों ने मुसलमानों के प्रति अच्छा आतिथ्य दिखाया था, उनके साथ मित्रवत् संबंध रखने की सुनियोजित आवश्यकता भी थी। अबीसीनिया के साथ कुरैशों के व्यापारिक संबंध थे और उन्होंने वहां के ईसाई राजा के पास प्रतिनिधिमंडल भेजकर यह संदेश भिजवाया था कि वहां बसे हुए मुसलमानों को निकाल दिया जाए अथवा उन्हें मक्का को सौंप दिया जाए। उन्होंने राजा से परिवाद (शिकायत) किया कि मुसलमान एक विधर्मी पंथ की स्थापना कर रहे हैं। मुसलमानों पर कोई कार्रवाई करने से पूर्व राजा उनके विधर्म का प्रमाण चाहता था। जब राजा ने मुसलमानों को अपने दरबार में समन किया और उनसे उनके विधर्मी सिद्धांतों के बारे में पूछा, तो मुसलमानों के प्रवक्ता ने कुटिलता दिखाते हुए ईसाई धर्म की पुष्टि करने वाले सूरा मरियम पढ़कर सुनाया, जिसमें कुंवारी मैरी, जॉन द बैपटिस्ट और ईसामसीह के चामत्कारिक जन्म का उल्लेख था। इससे राजा प्रसन्न हो गया और उसने मुसलमान अप्रवासियों को निकालने से मना कर दिया।[116]

वर्षों तक कुरआन में ईसाई धर्म की पुष्टि करने और उन्हें मुहम्मद के पंथ में लाने का प्रयास करने के बाद भी ईसाई (यहूदी भी) उसके पंथ में न के बराबर संख्या में आये। मदीना जाने के बाद वर्षों तक ईसाइयों व यहूदियों को लाने का प्रयास चलता रहा, किंतु व्यर्थ रहा। अपितु कुरआन की आयतों में अनेक विसंगतियों को उजागर करते हुए ईसाई व यहूदी उनके पंथ (इस्लाम) पर तार्किक प्रश्न उठाने लगे। वे उनके बड़े आलोचक और खिझाने वाले बन गये। उनका व्यवहार मुसलमानों के प्रति कठोर होने लगा। अपने पंथ के गठन में ईसाई (और यहूदी) सिद्धांतों से इतना कुछ लेने के बाद भी मुहम्मद ने ईसाइयों व यहूदियों की निंदा करने में तनिक भी संकोच नहीं किया, क्योंकि वे इस्लाम स्वीकार करने को अनिच्छुक थे। वह अब ईसाइयों पर आरोप लगाने लगा कि वे लोग अपने ग्रंथों को नहीं समझ रहे हैं या भूल गये हैं [कुरआन 5:14]। त्रिदेव की भ्रांति के कारण मुहम्मद को लगता था कि ईसाई उन तीन देवों में विश्वास करते हैं और उसने उन पर हमला कियाः 'वे निश्चित ही काफिर हैं, जो कहते हैं कि अल्लाह तीनों (देवों) में तीसरा है' [कुरआन 5:73] और उनसे आह्वान किया 'इसलिये अल्लाह और उसके रसूल को मानो, और तीन (देव) न कहो [कुरआन 4:171]।'

जैसे यहूदी विचारों में ईसामसीह के ईश्वरत्व व उनके अवतार को अस्वीकार किया गया है, वैसे ही अब मुहम्मद ने अब अस्वीकार कर दिया। ईसामसीह ईश्वर का बेटा नहीं था, क्योंकि 'अल्लाह ने कोई संतान नहीं जन्मा [कुरआन 112:3]।' कुरआन [19:36] कहती है, 'यह अल्लाह (की महिमा) के उपयुक्त नहीं है कि वह कोई बेटा जने।' अल्लाह ने कहा कि बेटा उत्पन्न करना अल्लाह की महिमा के अनुकूल नहीं है [कुरआन 4:171]। इब्न इसहाक मुहम्मद की एक कहानी बताता है, जिसमें वह दो ईसाई संतों की निंदा इसलिये कर रहा था, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि ईश्वर का बेटा है। तब उन्होंने पुनः पूछाः ''उसका पिता कौन था, मुहम्मद?'' चूंकि वह स्वयं कुंवारी मां से जीसस के चामत्कारिक जन्म की पुष्टि कर चुका था, तो उसे कोई उत्तर नहीं सूझा और वह चुप्पी साध गया।[117] उसे इसका उत्तर देने के लिये समय चाहिए था और बाद उसने एक आयत गढ़ी, जिसमें कहा गया, 'अल्लाह

---

[116] वाकर, पृष्ठ 109

[117] इबिद, पृष्ठ 199

जो चाहे रच सकता है। जब वह कुछ करने का निर्णय करता है, तो जो अल्लाह रचना चाहता है, उसकी रचना कर देता है। जब वह कोई काम करने का निर्णय लेता है: तो उसके लिये कहता है कि हो जा और वह काम हो जाता है!' [कुरआन 4:47]

कुरआन ने अब उन ईसाइयों पर अल्लाह के कोप को लागू दिया, जिन्होंने कहा कि ईसामसीह ईश्वर का बेटा था [कुरआन 9:30]। मुहम्मद ने यह भी मानने से अस्वीकार कर दिया कि ईसामसीह की मृत्यु सूली पर हुई थी, जैसा कि कुरआन कहती है, 'उन लोगों ने उस (ईसामसीह) की हत्या नहीं की थी, न कि उसे सूली पर लटकाया था'; अपितु अवास्तविक सूली पर चढ़ाये जाने के समय, 'अल्लाह ने उसे अपनी ओर उठा लिया था' [कुरआन 4:157-58]। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि यह विचार मैनिशेइज्म से नकल किया गया था। यह समझा जा सकता है कि यदि यह झुठला दिया जाए कि मानव जाति के पापों के लिये सूली पर चढ़कर ईसामसीह की मृत्यु हुई, तो ईसाई धर्म अपनी अधिकांश स्वत्व महानता खो देगा।

ईसाइयों के प्रति मुहम्मद का वैर

उसके पंथ की आलोचना कर रहे ईसाइयों से मुहम्मद चिढ़ गया था और वह अब केवल ईसाई धर्म के सिद्धांतों की निंदा तक ही सीमित नहीं रहा। मुहम्मद अब उन ईसाई पुरोहितों को लोभी कहने लगा, जो अपने अनुयायियों को मुहम्मद के मिशन में सम्मिलित होने से रोक रहे थे। मुहम्मद उन पुरोहितों को कहने लगा कि वे लोगों के धन के भक्षक हैं, क्योंकि वे उस धन को अल्लाह के मिशन में व्यय नहीं कर रहे हैं। जैसा कि कुरआन कहती हैः '...वो (ईसाई) पुरोहित निर्दयतापूर्वक मानवजाति के धन का भक्षण कर रहे हैं और (लोगों को) अल्लाह के मार्ग में जाने से रोक रहे हैं। वे जो सोने और चांदी का ढेर लगाते हैं तथा अल्लाह के मार्ग में उसे व्यय नहीं करते हैं, (हे मुहम्मद) उन्हें बता दो कि उन्हें पीड़ादायी यातना मिलेगी... [कुरआन 9:34]'

अल्लाह अब ईसाइयों पर उसके सच्चे पंथ को विकृत करने का आरोप लगाते हुए उनकी निंदा करने लगा और उनसे प्रतिशोध लेने की बात कहने लगा [कुरआन 9:30]। ईसाइयों के प्रति अल्लाह का व्यवहार अब शत्रुतापूर्ण हो गया और वह यह आयत देकर उनके प्रति घृणा फैलाने लगा: 'हे मोमिनो! उनमें से किसी को अपना अभिभावक न बनाओ, जिन्होंने तुमसे पहले पुस्तक प्राप्त किया (अर्थात ईसाई, यहूदी)... यदि तुम सच्चे मोमिन हो, तो अल्लाह के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करते रहो [कुरआन 5:57]।' उसने अब ईसाइयों को सत्य का उल्लंघन करने वाला बताते हुए उन्हें जहन्नुम में जाने वाला कहा और बोला कि वे सदा जहन्नुम में पड़े रहेंगे [कुरआन 5:77, 98:6]।

यह दिखाने के लिये कि इस्लामी पंथ ईसाइयत के प्रति अत्यंत मित्रवत् है, इस्लाम के विद्वान प्रायः कुरआन के कुछ चयनित संदर्भ को ही दिखाते हैं। स्पष्ट है कि सुनियोजित ढंग से वो आयतें ईसाइयों को ईसाई धर्म छोड़कर इस्लाम स्वीकार करने और मुहम्मद को अपना रसूल स्वीकार करने के लिये लुभाने के उद्देश्य से लायी गयी थीं। किंतु जब ईसाइयों को लुभाने के अल्लाह के सारे प्रयास विफल हो गये, तो ईसाइयों के प्रति शत्रुता एवं ईसाइयों के विरुद्ध हिंसा भड़काने वाली बहुत सी आयतें आयीं, परंतु वो विद्वान ऐसी आयतों का उल्लेख कभी नहीं करेंगे। उन शत्रुतापूर्ण आयतों में से कुछ नीचे दी गयी हैंः

1. यहूदी और ईसाई मूर्तियों व मिथ्या देवों में विश्वास रखते हैं [कुरआन 4:51]।
2. 'वो (ईसाई और यहूदी) हैं, जिन्हें अल्लाह ने श्राप दिया है' [कुरआन 4:52]।

3. अल्लाह ने ईसाइयों में पारस्परिक शत्रुता व घृणा भड़का दी है [कुरआन 5:14]।
4. यहूदी और ईसाई हारने वालों में से है [कुरआन 5:53]।
5. ईसाई जहन्नुम की आग में भूने जाएंगे [कुरआन 5:72]।
6. ईसाई तीन देवों को मानकर गलत हैं। उसके लिये उन्हें पीड़ादायी यातना मिलेगी [कुरआन 5:73] ।
7. यहूदियों, ईसाइयों अथवा काफिरों को अपना अभिभावक न बनाओ [कुरआन 5:57]।
8. यहूदियों और ईसाइयों को अपना मित्र न बनाओ। यदि तुम ऐसा करते हो, तो अल्लाह तुम्हें में उन्हीं में एक मानेगा [कुरआन 5:51]।
9. ईसाई और यहूदी विकृत होते हैं। अल्लाह स्वयं उनके विरुद्ध लड़ता है [कुरआन 9:30]।
10. धनी और लोभी ईसाई पुरोहितों को पीड़ादायीय यातना मिलेगी... [कुरआन 9:34]।
11. यहूदी और ईसाई बुरे अवज्ञाकारी हैं [कुरआन 5:59]।
12. यहूदी रब्बी (धर्माचारी) और ईसाई पुरोहितों की करतूत बुराई है [कुरआन 5:63]।
13. अल्लाह ने मुहम्मद के पास जो संदेश भेजा है, उस पर ईसाइयों और यहूदियों को अवश्य ही विश्वास करना चाहिए; यदि वे ऐसा नहीं करेंगे, तो अल्लाह उन्हें लंगूर बना देगा, जैसे कि अल्लाह ने सब्त-तोड़ने वालों के साथ किया था [कुरआन 4:47]।
14. ईसाइयों और यहूदियों से जंग करो, जब तक कि 'वे तत्परता से कर (जजिया) न देने लगें और अपमानित व पराजित न कर दिये जाएं' [कुरआन 9:29]।

मुहम्मद मरते समय भी ईसाई-विरोधी शत्रुता पाले रहा

ईसाइयों के प्रति रसूल मुहम्मद की शत्रुता उस समय भी बनी रही, जब वह मृत्युशैया पर पड़ा था। रसूल भयानक अस्वस्थ हो गया और पूरी रात भयंकर पीड़ा से चीखता हुआ विलाप करता रहा। उसकी बीवी आयशा ने उसे शांत करने की आशा में वही शब्द कहे, जो वह तब कहा करता था, जब दूसरे पीड़ा में होते थे: ''हे रसूल, यदि हममें से कोई भी इस प्रकार विलाप करता, तो आप उसे निश्चित ही डांटते।'' उसने उत्तर दिया, ''हां, पर मैं दोगुने ज्वर-ताप से जल रहा हूं।''[118] अगले दिवस प्रातः उसकी पीड़ा और भयावह हो गयी और वह लगभग अचेत अवस्था में आ गया। उसकी एक और बीवी उम्मे सलमा ने उसे अबीसीनियाई विधि से निर्मित उस मिश्रण को देने का सुझाव दिया, जो उसने तब सीखा था जब वहां प्रवासी बनकर गयी थी।

इस मिश्रण के प्रभाव से सचेत (होश में आने) होने के उपरांत मुहम्मद सशंकित हो गया कि उसे क्या पिलाया गया है और उसने आदेश दिया कि उस कक्ष में उपस्थित सभी औरतें वही औषधि लें। उसके सामने ही उस औषधि को उन सभी औरतों के मुंह में डाला गया।

---

[118] इबिद, पृष्ठ 141

ईसाई अबीसीनिया के उस औषधि के प्रभाव पर हुई बातचीत अबीसीनिया तक पहुंच गयी। उसकी बीवियों में से दो उम्मे सलमा और उम्मे हबीबा उस देश में प्रवासी के रूप में रही थीं, तो वो सुंदर मारिया कैथेड्रल एवं उसकी भित्तियों (दीवारों) पर लगे अद्भुत चित्रों का बखान करने लगीं। यह सुनते ही मुहम्मद आगबबूला हो गया और चीखते हुए बोला: ''मेरे स्वामी, यहूदियों व ईसाइयों को नष्ट कर दो। उन पर अल्लाह का क्रोध भड़कने दो। पूरे अरब में इस्लाम के अतिरिक्त कोई और दीन न रहने दो।''[119] मृत्यु के समय रसूल द्वारा प्रकट इस इच्छा से उसके बाद के उत्तराधिकारियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अरब से यहूदियों व ईसाइयों को निकाल बाहर किया जाए।

ईसाई शासकों को मुहम्मद का धमकी भरा संदेश

628 ईसवी में जब मुहम्मद इतना ताकतवर नहीं था कि मक्का तक पर अधिकार कर सके, तब भी उसने अरब के दूर-स्थित यमामा, ओमान और बहरीन के राजाओं के पास दूत भेजकर कहा था कि वह पैगम्बर है और वे राजा इस्लाम स्वीकार कर लें। ओमान और बहरीन के राजाओं ने कोई उत्तर ही नहीं दिया। अरब के सबसे ताकतवर व्यक्ति यमामा के ईसाई मुखिया हौदा इब्न अली ने उल्टे यह संदेश भेज दिया कि मुहम्मद अपनी पैगम्बरी में साझा (हिंस्सा) दे। यह उत्तर पाकर मुहम्मद ने उसे बहुत कोसा। एक वर्ष बाद किसी कारणवश हौदा की मृत्यु हो गयी। रोम (कुस्तुंतुनिया) के सम्राट हरक्यूलिस, ग़स्सान के राजकुमार हैरिस सप्तम और इजिप्ट के ईसाई गर्वनर जैसे ताकतवर विदेशी ईसाई शासकों के पास भी राजनीतिक संदेश भेजकर उनसे इस्लाम स्वीकार करने को कहा गया। रोम व गस्सान में मुहम्मद के दूतों को तिरस्कार मिला और उन्हें ''विक्षिप्त व्यक्ति का दूत'' कहा गया। इजिप्ट के रोमन गवर्नर ने इस्लाम तो स्वीकार नहीं किया, किंतु उसने अपनी दो दासियों (दोनों बहन) को मुहम्मद के पास उपहार के रूप में भेजकर मित्रवत् उत्तर दिया। रसूल ने उन दासियों में से युवा व आकर्षक मारिया को अपने हरम में लौंडी (सेक्स-स्लेव) बनाकर रखैल के रूप में रख लिया।

ईसाइयों के विरुद्ध मुहम्मद का अभियान

बाद में जब मुसलमानों ने ताकत जुटा लिया, तो मुहम्मद ने उन सभी ईसाई राजाओं के विरुद्ध फौजी अभियान प्रारंभ किये, जिन्होंने उसके संदेश को ठुकरा दिया था। पर रखैल मारिया जैसा सुंदर उपहार पाकर वह इजिप्ट से संतुष्ट था, तो उसने उस पर हमला नहीं किया, यद्यपि उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने इजिप्ट पर भी हमला किया।

सितम्बर 629 में मुहम्मद ने सीरिया में ईसाइयों के सीमावर्ती क्षेत्र मुता पर हमला करने के लिये 3000 जिहादियों की बड़ी फौज भेजी। मुहम्मद ने अपने कमांडरों को आदेश दिया कि वे ईसाइयों को इस्लाम स्वीकार करने को कहें, यदि वे न मानें तो अल्लाह के नाम पर उन पर तलवार तानें। मुसलमान हमलावरों से निपटने के लिये बड़ी संख्या में ईसाई एकत्रित हुए। युद्ध हुआ

---

[119] इबिद, पृष्ठ 142; इब्न इस्हाक, पृष्ठ 523

और इसमें मुसलमानों को बड़ी क्षति हुईः दो अग्रणी मुस्लिम जनरल ज़ैद और जफर मारे गये। केवल खालिद इब्द वलीद अपनी चतुराई से प्राण बचाकर भागने में सफल हो सका।[120]

फरवरी 630 में मुहम्मद ने अम्र इब्न अल-आस की अगुवाई में जिहादियों की फौज को ओमान की ईसाई जनजाति के विरुद्ध अभियान पर भेजा और वहां के शासक को इस्लाम स्वीकार करने और जजिया देने के लिये कहा गया। उन जनजातियों में से कुछ ने इस्लाम स्वीकार कर लिया, जबकि माजुना जनजाति को विवश किया गया कि यदि वे ईसाई धर्म पर बने रहना चाहते हैं, तो अपनी आधी भूमि और आधी सम्पत्ति दें। उसी मास में एक संदेश हिम्यार के ईसाई राजकुमार के पास भेजा गया और उससे इस्लाम स्वीकार करने की मांग करते हुए अपनी धन-संपत्ति व आय का दसवां भाग, जजिया और उपहार देने को कहा गया। उन लोगों को हिम्यार भाषा के स्थान पर अरबी बोलने को कहा गया। उनसे कहा गया कि यदि वे ये सब करने से मना करते हैं तो उन्हें अल्लाह का शत्रु माना जाएगा। अपने प्राण बचाने के लिये राजकुमार ने इस्लाम स्वीकार करते हुए उत्तर भेजा।[121]

अक्टूबर 630 में मुहम्मद ने सीरिया के बैजेंटाइन सीमा पर जंग छेड़ने के लिये 30 हजार घोड़े व फौज एकत्रित किये। दो वर्ष पूर्व सम्राट हरक्युलिस और ग़स्सान के राजकुमार ने मुहम्मद के उस संदेश को ठुकरा दिया था, जिसमें उसने उनसे इस्लाम स्वीकार करने को कहा था। उसने अनेक राज्यों को राजनीतिक संदेश भेजकर उन्हें इस्लाम स्वीकार करने अथवा जजिया कर चुकाने को कहा। आयला जनजाति के ईसाई राजकुमार योहाना (जॉन) इब्न रूबा ने अपने लोगों को हमले से बचाने के लिये जजिया कर देना स्वीकार करते हुए मुहम्मद के साथ संधि कर ली।

मुहम्मद 20 दिन तक तबूक में रुका था और कुछ छोटे समुदायों को अपने अधीन लाया था। अब मुहम्मद की इच्छा थी कि वह सीरिया की भूमि पर अतिक्रमण करने के लिये आगे बढ़े और यह उसके उस अभियान का मुख्य उद्देश्य था। जब वह तैयारियां कर रहा था, तभी उस तक एक गुप्त सूचना पहुंची कि सीमा पर बहुत बड़ी यूनानी सेना मुसलमानों से निपटने के लिये एकत्र हुई है। इस सूचना ने मुहम्मद की फौज को हताश कर दिया और वह अपनी उत्कट इच्छा पूरा किये बिना ही पीछे हटने पर विवश हो गया।

उधर, जब मुहम्मद तबूक में था, तो उसने खालिद इब्न वलीद को अरब के ईसाई राजकुमार उकैदिर इब्न अब्दुल मलिक द्वारा शासित हरभरे जल से परिपूर्ण दूमा के क्षेत्रों में भेजा। उस समय उकैदिर अपने भाई के साथ आखेट (शिकार) करने निकला हुआ था, तो खालिद ने घात लगाकर हमला किया और उसके भाई की हत्या करने के बाद उकैदिर को बंदी बनाकर मदीना ले आया। उकैदिर को इस्लाम स्वीकार करने तथा जजिया कर देने के लिये संधि करने को बाध्य किया गया। मुहम्मद की मृत्यु के बाद

---

120 इब्न इस्हाक, पृष्ठ 532-40; मुईर, पृष्ठ 393-95

121 वाकर, पृष्ठ 204-05

उकैदिर ने विद्रोह कर दिया। उसकी अवज्ञा और इस्लाम छोड़ने का प्रतिशोध लेने के लिये खालिद दूमा लौट आया और राजकुमार उकैदिर को मार डाला तथा उसके समुदाय को छिन्न-भिन्न कर दिया।

ईसाई प्रतिनिधियों के साथ मुहम्मद का व्यवहार

ईसाइयों के साथ मुहम्मद के व्यवहार को उस घटना से समझा जा सकता है कि उसने 631 ईसवी में कुछ ईसाई प्रतिनिधिमंडल के साथ कैसा व्यवहार किया था। 630 में मुहम्मद के मक्का जीतने के बाद अरब की भयभीत जनजातियों के प्रतिनिधिमंडल मुसलमानों के हमले से रक्षा की गुहार लगाते हुए मक्का आने लगे। फरवरी में प्रभावशाली ईसाई जनजाति बनू हनीफा का एक शिष्टमंडल मदीना में मुहम्मद से मिलने आया। यद्यपि यह अस्पष्ट है कि उनकी क्या बातचीत हुई, किंतु रसूल ने अपने वजू से बचे जल का एक पात्र उनको दिया और बोला कि वापस लौटकर वे अपने गिरिजाघरों को नष्ट कर दें तथा उस पर यह जल छिड़क कर उसके स्थान पर मस्जिद बना दें। एक मास बाद 60 व्यक्तियों का एक शिष्टमंडल, जिनमें सोने का क्रॉस पहने हुए अधिकांशतः तग़लिब जनजाति के ईसाई थे, मुहम्मद से मिलने आये। उसने उनके साथ संधि की कि वे लोग तो ईसाई धर्म मान सकते हैं, किंतु वे अपने बच्चों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिये बपितस्मां नहीं करेंगे।[122] इसका अर्थ यह हुआ कि उनके बच्चे मुसलमानों की संपत्ति हो गये।

इसी वर्ष एक और उल्लेखनीय अवसर पर नेज्रान का एक 14 सदस्यीय ईसाई प्रतिनिधिमंडल मुहम्मद से मिलने आया। इस प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किनाना जनजाति के अब्दुल मसीह, बक्र जनजाति के बिशॅप अबू हारिस और प्रतिष्ठित दयान परिवार के एक प्रतिनिधि कर रहे थे। मुहम्मद ने उनके सामने कुरआन की आयतें पढ़ीं और विनम्रता के कारण उन लोगों ने मान लिया कि उनके पास अपने लोगों के लिये संदेश मिला गया है। किंतु जब उसने उन लोगों पर इस्लाम स्वीकार करने का दबाव डाला, तो उन्होंने मना कर दिया। दोनों पक्षों में धार्मिक विषयों पर बहुत तर्क-वितर्क हुआ, किंतु कोई सहमति नहीं बन सकी। अंततः मुहम्मद ने सुझाव दिया कि चूंकि दोनों पक्ष एक-दूसरे को कोस रहे हैं, तो दोनों के बीच एक मल्लयुद्ध हो जाए, जिससे कि जिसकी भी बात झूठी हो उस पर अल्लाह का कोप पड़े। ईसाई प्रतिनिधिमंडल ने इस प्रकार के ओछे कार्य में सम्मिलित होने से मना कर दिया।[123] अल्लाह ने कुरआन में इस कहानी को इस प्रकार बताया है: 'किंतु तुम्हारे पास ज्ञान आ जाने के बाद यदि कोई भी तुमसे इस विषय में विवाद करे, तो उनसे कहो: आओ, हम अपने बेटों और तुम्हारे बेटों तथा अपनी स्त्रियों और तुम्हारी स्त्रियों एवं अपने निकट के लोगों व तुम्हारे निकट के लोगों को बुलायें, तब सच्चे मन से इबादत करें, और झूठ बोलने वालों पर अल्लाह का कोप हो, ऐसी प्रार्थना करें [कुरआन 3:61]।'

---

[122] मुईर, पृष्ठ 458

[123] इबिद, पृष्ठ 458-60

वहां से जाने से पूर्व मुहम्मद ने उस प्रतिनिधिमंडल को आश्वस्त किया कि उन्हें अपना धर्म मानने में कोई छेड़छाड़ नहीं की जाएगी तथा उनकी भूमि व संपत्ति का आहरण (जब्त) नहीं किया जाएगा। पर कुछ ही समय बाद उसी वर्ष मुहम्मद ने नेज्रान के लोगों को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराने के लिये खालिद को भेजा। वो लोग जानते थे कि खालिद की छवि एक बर्बर सामूहिक हत्यारे की है, इसलिये उन्होंने तेजी से इस्लाम के आगे घुटने टेक दिये। यद्यपि कई अन्य स्थानों पर संघर्ष चल रहा था और इसी दबाव के कारण खालिद का ध्यान दूसरी ओर केंद्रित हो गया, इसलिये नेज्रान के अधिकांश लोग मुहम्मद की मृत्यु तक ईसाई बने रहे। बाद में खलीफा उमर ने अरब से ईसाइयों के सफाये के लिये नया अभियान प्रारंभ किया। हमलों व विनाश के नये खतरे को देखते हुए नेज्रान जनजाति के अधिकांश लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। 635 ईसवी में उमर ने बड़ी संख्या में नेज्रान के प्रमुख नागरिकों, विद्वानों और धार्मिक नेताओं को निर्वासन (उनकी भूमि से भगा दिया) में भेज दिया।[124]

632 ईसवी में रसूल एक और जंगी अभियान की तैयारी कर रहा था कि अचानक वह भयानक रुग्ण (बीमार) हो गया। मरते समय उसकी इच्छा यह थी कि उसके उत्तराधिकारी खलीफा समूचे अरब से अन्य धर्मों को नष्ट करें। मुसलमान फौजों ने सबसे पहले समस्त अरब को बलपूर्वक इस्लाम में धर्मांतरित कराने के अभियान को प्रारंभ किया। शीघ्र ही उन्होंने मध्य एशिया की ईसाई जनजातियों की ओर ध्यान केंद्रित कर दिया। मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन से पहले से ही यमामा के मुसैलिमा पैगम्बर के रूप में मुख्यतः धर्म के ईसाई संस्करण का प्रचार कर रहे थे। मुसैलिमा ने मुहम्मद को पत्र भेजकर कहा कि वह उन्हें पैगम्बर के रूप में स्वीकार करे और उन्होंने आह्वान किया कि शत्रुता भाव पाले बिना वे दोनों अपने-अपने धर्म का प्रचार अपने-अपने लोगों के बीच करें। मुसैलिमा के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए मुहम्मद ने उत्तर दिया, ''अल्लाह के रसूल मुहम्मद की ओर से झूठे मुसैलिमा को... यह धरती अल्लाह की है। अपनी रचनाओं में से जिसे वह चाहेगा, पैगम्बरी देगा और इसका परिणाम इस पवित्र के पक्ष में है।''[125]

मुसैलिमा अत्यंत लोकप्रिय थे और उनके अनुयायियों की संख्या मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या से कम नहीं थी। अबू बक्र ने मुसैलिमा के विरुद्ध एक जंगी दल भेजा, क्योंकि मुसैलिमा की बढ़ती लोकप्रियता उसके नये-नवेले इस्लाम के लिये खतरा था। यमामा के प्रथम युद्ध में मुसैलिमा के अनुयायियों द्वारा मुसलमानों को पराजित कर दिया गया। 634 ईसवी के दूसरे युद्ध में मुसलमानों की इतनी भयानक पराजय हुई कि मदीना में कोई ऐसा घर नहीं था, जहां से विलाप के स्वर न सुनाई पड़ रहे हों। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस युद्ध में कुरआन स्मरण करने वाले सर्वोत्तम लोगों सहित मुहम्मद के मुख्य साथियों में से 39 लोगों का वध हुआ। कुछ मास बाद 634 ईसवी में अबू बक्र खालिद के पास पहुंचा और मुसैलिमा को समाप्त करने के लिये उसे बड़ी फौज के साथ भेजा। ''मृत्यु का बाग'' नाम से प्रसिद्ध अक्रबा में भयानक जंग हुई। इस जंग में मुसैलिमा को मार डाला गया; उनके 10

---

124 वाकर, पृष्ठ 207

125 इब्न इस्हाक, पृष्ठ 649

हजार अनुयायियों को काट डाला गया; उनके शेष बचे अनुयायियों को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराया गया।[126] इसके बाद अरब में कोई महत्वपूर्ण ईसाई समुदाय नहीं बचा। ऐसा था उस रसूल मुहम्मद का जीवन, जिसके बारे में मुसलमान कहते हैं कि वह निर्विवाद रूप से धरती पर आने वाले सभी मनुष्यों में महानतम, सर्वाधिक करुणामय और सर्वाधिक दयावान था।

इस्लाम में मुहम्मद द्वारा प्रदत्त गैर-मुसलमानों की प्रस्थिति (दर्जा)

रसूल मुहम्मद द्वारा गैर-मुसलमानों के साथ किये गये व्यवहार के आधार पर आइए हम उस प्रस्थिति का मूल्यांकन करें, जो उसने अरब के मूर्तिपूजक, यहूदी और ईसाई आदि विभिन्न प्रकार के काफिरों को दिया था।

इस्लाम में मूर्तिपूजक

रसूल मुहम्मद ने तीस वर्षों तक मक्का के मूर्तिपूजकों के बीच इस्लाम का उपदेश देने का प्रयास किया, किंतु अधिक प्रगति करने में विफल रहा। यद्यपि मक्का के अधिकांश नागरिकों ने उसके संदेश को नकार दिया था, किंतु तब भी मक्का के नागरिकों की ओर से उसके प्रति कोई हिंसक शत्रुता नहीं दिखायी गयी। इस तथ्य के बाद भी मक्का के नागरिक मुहम्मद के प्रति हिंसक नहीं हुए कि उसके संदेश उनके धर्म, परंपराओं, पूर्वजों के प्रति घृणास्पद व अपमानजनक थे तथा उसने दावा किया था कि काबा उसके अल्लाह का है। कुरैशों ने उससे जो एकमात्र शत्रुता दिखायी थी, वह यह थी कि उन्होंने दो वर्ष के लिये उसका सामाजिक व आर्थिक बहिष्कार किया था, जो कि किसी उद्दंड व उपद्रवी व्यक्ति से निपटने का अपेक्षाकृत सभ्य ढंग था। निस्संदेह मक्का के मूर्तिपूजकों ने मुहम्मद के शत्रुता भरे आचरण, अपमानजनक स्वभाव व कार्यों पर उल्लेखनीय सहिष्णुता दिखायी थी। मक्का में अपने मिशन की सफलता की आशा न देखकर और यह देखकर कि उनकी अनुपस्थिति में भी मदीना में उसका मिशन ठीक चल रहा है, वह वहां चला गया (622)।

अल्लाह ने बाद में कहा कि मक्कावासियों द्वारा इस्लाम को अस्वीकार करना ''फित्ना (उपद्रव) व अत्याचार'' है, जो कि ''हत्या से भी बुरा'' है। इस अस्वीकार का प्रतिशोध लेने के लिये अल्लाह ने मक्का के नागरिकों पर हमले और उनकी हत्या की स्वीकृति दी [कुरआन 2:190-93]। मक्कावासियों द्वारा उसके नये मजहब को अस्वीकार करना इतना आहत करने वाला एवं अक्षम्य लगा कि उसने यह मुसलमानों का बाध्यकारी कर्तव्य बना दिया कि यदि उन्हें न भी अच्छा लगे, तो भी वे इस्लाम न स्वीकार करने वालों की हत्या करें और उनसे जंग करें [कुरआन 2:216]। अल्लाह ने (जंग के लिये वर्जित) पवित्र मासों में भी मक्का के मूर्तिपूजकों से जंग करना और उनकी हत्या करना वैध कर दिया, जैसे कि मुसलमानों ने नखला में पहले जिहादी हमले में हत्याएं की थीं [कुरआन 2:217]।

नखला में उस विवादास्पद, किंतु सफल रक्तरंजित जिहादी हमले के बाद मदीना के मुसलमानों व मक्का के मूर्तिपूजकों के बीच अनेक बड़े संघर्ष-बद्र की जंग (624), उहुद (625) और खंदक (627) हुई। इन संघर्षों का चरम 630 ईसवी में मक्का पर

[126] इबिद, पृष्ठ 209

मुहम्मद की जीत के साथ हुई। उसने मक्का की पवित्र मूर्तियों वाले मंदिर काबा पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया और उसमें स्थित सभी देव-मूर्तियों का विध्वंस कर दिया और उस मंदिर को इस्लामी ईश्वर अल्लाह के पवित्र घर में रूपांतरित कर दिया।

यद्यपि उसी दिन मक्का के अधिकांश मूर्तिपूजकों ने इस्लाम के आगे घुटने टेक दिये, पर मक्का के नेता अबू सुफ्यान के साथ हुए समझौते के आधार पर उन लोगों को मूर्तिपूजा की परंपरा मानने की छूट दी गयी, जो अपने पूर्वजों के धर्म को नहीं छोड़ना चाहते थे। परंतु यह छूट मात्र एक वर्ष तक रही। अगले हज यात्रा (631) के समय अल्लाह ने अचानक कई आयतों (9:1-5) उतारा और विशेष रूप से आयत 9:5 उतारी, जिसमें मूर्तिपूजकों को इस्लाम स्वीकार करने अथवा मृत्यु स्वीकार करने का विकल्प देते हुए मूर्तिपूजा को नष्ट करने का आदेश दिया गया: 'जब पवित्र मास बीत जाएं, मूर्तिपूजकों को जहां पाओ वहीं काट डालो, और उन्हें पकड़ कर (बंदी) बना लो, और उनकी घेराबंदी करो, और उनकी घात में रहो। किंतु यदि वे प्रायश्चित करें और नमाज स्थापित करें तथा जकात दें, तो उन्हें छोड़ दो...।'

मुहम्मद के जीवन काल में ही इस आदेश के साथ अरब में मूर्तिपूजा पूर्णतः लुप्त् हो गयी। इसीलिये इस्लाम में बहुदेववादियों, मूर्तिपूजकों, जीववादियों, काफिरों और नास्तिकों के लिये इस्लाम अथवा मृत्यु में से एक चुनने का विकल्प मानक स्वीकृति बन गयी।

इस्लाम में यहूदी

आरंभ में रसूल मुहम्मद यहूदियों को इस्लाम स्वीकारने और उसे अपना पैगम्बर स्वीकार करने को कहता रहा। जब यहूदियों ने मुहम्मद के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तो उसने उनके साथ कठोरता से निपटने का निर्णय किया। बद्र में कुरैशों पर मिली जीत से उत्साहित होकर उसने सबसे पहले मदीना के बनू क़ैनुक़ा की यहूदी जनजाति पर हमला किया। उस यहूदी जनजाति को पराजित करने के बाद वह आत्मसमर्पण कर देने वाली इस जनजाति के लोगों की हत्याएं करना चाहता था, जैसा कि अल-तबरी ने लिखा है: 'वे बेड़ी में जकड़े हुए थे और वह (मुहम्मद) उनकी हत्या करना चाहता था।'[127] किंतु इस्लामी साहित्य में ढोंगी के रूप में विख्यात अब्दुल्लाह इब्न उबै ने जब मुहम्मद को दृढ़तापूर्वक रोका कि उन यहूदियों की सामूहिक हत्या न हो, तो उसने यहूदियों के उस पूरे समुदाय को उनके पैतृक स्थान से निर्वासित कर दिया अर्थात भगा दिया।

अगले वर्ष जब मुहम्मद ने एक थोथा बहाना बनाकर मदीना की दूसरी बड़ी यहूदी जनजाति बनू नज़ीर पर हमला किया, तो अब्दुल्लाह इब्न उबै, जो कि अभी भी ताकतवर नेता थे, ने यहूदियों की ओर से लड़ने की चेतावनी दी। रसूल ने पुनः इस जनजाति को निर्वासित करने की शर्त पर समझौता किया। दो वर्ष पश्चात जब बनू क़ुरैज़ा की अंतिम जनजाति पर हमला किया गया, तो मुहम्मद ने बलहीन हो चुके अब्दुल्ला के विरोध को अनदेखा कर दिया और अपनी उस मूल योजना पर वापस आ गया, जो उसने तीन वर्ष पूर्व बनू क़ैनुक़ा के लिये बनायी थी। उसने बनू क़ुरैज़ा के सभी वयस्क पुरुषों की हत्या कर दी तथा उनकी स्त्रियों व

---

[127] अल-तबरी, अंक 7, पृष्ठ 86

बच्चों को बलपूर्वक दास बना लिया। बनू क़ुरैज़ा से हथियाई गयी धन-संपत्ति और बंदी बनायी गयी स्त्रियों व बच्चों को उसके अनुयायियों में बांट दिया गया। महिला बंदियों में से जो युवा और आकर्षक थीं, उन्हें लौंडी (सेक्स-स्लेव) बना दिया गया। अष्व (घोड़े) और हथियार जुटाने के लिये मुहम्मद ने स्वयं कुछ स्त्रियों को बाहर के देशों में बेचा।

कुल मिलाकर जब यहूदियों ने इस्लाम को ठुकराया, तो मुहम्मद ने उन पर एक-एक कर हमला किया। इन हमलों में वयस्क पुरुषों की हत्या कर दी जानी थी और उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बना लिया जाना था। रसूल मुहम्मद की पुस्तक में यहूदियों के लिये यही सर्वोच्च परमादेश था।

इस्लाम में ईसाई

मक्का और मदीना के चारों ओर ईसाइयों की कोई बड़ी उपस्थिति नहीं थी। इसलिये मुहम्मद ने ईसाइयों के साथ उस प्रकार की कटुता और निरंतर हमले की प्रवृत्ति नहीं दिखायी, जैसा कि उसने मूर्तिपूजकों व यहूदियों के साथ दिखाया। यद्यपि ईसाइयों के साथ उसके व्यवहार को उन पत्रों से समझा जा सकता है, जो उसने दूसरे देशों बहरीन, ओमान, इजिप्ट, सीरिया और बैजेंटाइन के ईसाई राजाओं या गवर्नरों को भेजे थे। यहां ऐसे दो पत्रों को दिया गया है, जिनमें से एक उसने ओमान के ईसाई राजा (628) और दूसरा तबूक (630) के अपने अभियान के समय आयला जनजाति के ईसाई राजकुमार को भेजा था। ओमान सरकार की वेबसाइट पर उन ओमान राजाओं को भेजे गये रसूल मुहम्मद के पत्र की प्रति है, जिसमें लिखा है:[128]

> अल्लाह द्वारा मुसलमानों को मक्का में प्रवेश की ताकत देने के बाद इस्लाम प्रधान सत्ता हो गयी थी और आतंक के प्रयोग से इसे फैला दिया गया था... रसूल ने तब ओमान के दो राजाओं अल जुलांदा के बेटों जैफर व अब्द सहित पड़ोसी राजाओं व शासकों से शांतिपूर्ण साधनों से सम्पर्क करना उपयुक्त पाया। इतिहास की पुस्तकें हमें बताती हैं कि मुहम्मद ने अम्र इब्न अल-आस के फौजी दल के हाथ ओमान के लोगों के लिये संदेश और अल जुलांदा के बेटों जैफर व अब्द के लिये पत्र भेजा था, जिसमें लिखा था: *'दयावान और करुणामय अल्लाह के नाम में, मुहम्मद बिन अब्दुल्ला की ओर से अल जुलांदा के बेटों जैफर व अब्द के लिये, उन पर शांति हो जो सही मार्ग चुनते हैं। इस्लाम स्वीकार करो, और तुम सुरक्षित होगे। मैं मानव जाति के लिये अल्लाह का पैगम्बर हूं, यहां उन सभी को सचेत करना है कि काफिर निंदनीय हैं। यदि तुम इस्लाम की शरण में आ जाते हो, तो तुम राजा बने रहोगे, किंतु यदि इससे बचते हो, तो तुम्हारा शासन समाप्त कर दिया जाएगा और मेरी पैगम्बरी सिद्ध करने के लिये मेरे घोड़े तुम्हारे क्षेत्र में प्रवेश कर जाएंगे।'*

यह पत्र बताता है कि 628 ईसवी में उस समय भी ईसाइयों को सुरक्षा पाने के लिये इस्लाम स्वीकार करने का विकल्प दिया गया। यदि वे इस्लाम नहीं स्वीकार करते हैं, तो उन्हें इस्लाम के क्रोध का सामना करना पड़ेगा, जिसका अर्थ होगा जंग, मृत्यु

---

[128] (http://www.mofa.gov.om/oman/discoveroman/omanhistory/OmanduringISlam) यह पत्रक अब ओमान सरकार की वेबसाइट से हटा लिया गया है। विकीपीडिया ने http://www.wikiislam.com/wiki/Quotations_on_Islam#Official_Oman_Site पर इसकी एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है।

और विनाश एवं साथ में ही उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास बना लिया जाएगा। ऐसा ही मुहम्मद ने बनू क़ुरैज़ा यहूदियों के साथ किया था। आयला (630) जनजाति के राजकुमार को भेजे अपने पत्र में रसूल ने लिखा थाः '... या तो इस्लाम स्वीकार करो अथवा जजिया कर दो... तुम लोग जकात जानते हो। यदि तुम लोग समुद्र और धरती की ओर से सुरक्षा चाहते हो, तो अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करो... पर यदि तुम लोग इसका विरोध करोगे और अल्लाह व उसके रसूल को अप्रसन्न करोगे, तो मैं तुमसे तब तक कुछ भी स्वीकार नहीं करूंगा, जब तक कि मैं तुमसे जंग न कर लूं और तुम्हारे छोटों को बंदी न बना लूं तथा तुम्हारे बड़ों की हत्या न कर दूं; क्योंकि मैं सच में अल्लाह का रसूल हूं...।'[129]

यह पत्र बताता है कि इन दो वर्षों में ईसाइयों के साथ व्यवहार का प्रावधान कुछ सीमा पर परिवर्तित हो चुका था। बनू क़ुरैज़ा के यहूदियों के नरसंहार के बाद सबसे बड़ा विकल्प यह था कि इस्लाम स्वीकार करें या मृत्यु (साथ ही उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बनाया जाना), पर अब तीसरा विकल्प यह भी था कि मुहम्मद को अपनी भूमि के स्वामी के रूप में स्वीकार करते हुए पोल टैक्स (जजिया) चुकाया जाए। बनू क़ुरैज़ा के यहूदियों के नरसंहार के डेढ़ वर्ष पश्चात अगस्त 628 में खैबर के यहूदियों को भी इसी प्रकार का विकल्प दिया गया था। खैबर के यहूदियों को पराजित करने के बाद उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास (गुलाम) बनाकर पकड़ लाया गया था। बचे हुए यहूदियों पुरुषों को इस शर्त पर छोड़ दिया गया था कि जब तक मुसलमानों की इच्छा हो, वे अपनी भूमि पर बने रह सकते हैं, किंतु उन्हें अपनी उपज का 50 प्रतिशत भाग जजिया के रूप में देना होगा। अल्लाह ने बाद में आयत 9:29 (631 ईसवी में उतारी गयी) में इस नये उदाहरण को यहूदियों व ईसाइयों के साथ व्यवहार के अंतिम प्रोटोकॉल के रूप में संहिताबद्ध कर दियाः 'जो न तो अल्लाह को मानते हैं और न ही कयामत के दिन को और न ही जिसे अल्लाह और उसके रसूल ने वर्जित (हराम) किया है, उसे हराम समझते हैं तथा न ही सत्य के मजहब (इस्लाम) को अपना धर्म बनाते हैं, (भले ही वो हों) पुस्तक के लोग (यहूदी और ईसाई), जब तक वे अधीनता स्वीकार करने की इच्छा से जजिया न दें और अपने को पराजित (अपमानित) न अनुभव करें, उनसे जंग करते रहो।'

इस्लाम में यहूदियों और ईसाइयों को पुस्तक (तौरात व इंजील) के विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के रूप में मान्यता मिली है। तब भी, यदि वे इस्लाम स्वीकार करने में विफल होते हैं, तो मुसलमानों को उनसे तब तक लड़ते रहना चाहिए, जब तक कि वे सर्वोच्च इस्लाम के आगे अपने को अपमानित व पराजित न अनुभव करने लगें। उनको पराजित करने के बाद मुसलमान उसी प्रकार उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास (गुलाम) बना सकते हैं, जिस प्रकार रसूल ने बनू क़ुरैज़ा और खैबर के यहूदियों की स्त्रियों व बच्चों के साथ किया था। यदि परास्त ईसाई और यहूदी इच्छापूर्वक इस्लाम की सर्वोच्चता व सार्वभौमिकता स्वीकार कर लें तथा अपमानजनक जजिया, भूमि कर व अन्य उपहार देने को सहमत हो जाएं, तो उन्हें उमर की संधि (अगले अध्याय में देखें) में उल्लिखित अपात्रता के साथ जीने की अनुमति दे दी जाए।

एक वर्ष पश्चात अपनी मृत्यु से पूर्व मुहम्मद का मन पुनः परिवर्तित हो गया और अब वह इस्लामी भूभाग पर यहूदियों व ईसाइयों को कोई स्थान नहीं देना चाहता है, वैसे ही जैसे कि अरब से सभी मूर्तिपूजकों का सफाया कर दिया गया था। अपनी

---

[129] मुईर, पृष्ठ 402

मृत्युशैया पर उसने जो तीन अंतिम इच्छाएं प्रकट की थीं, उसमें से एक में कहा गया था कि 'अरब प्रायद्वीप में इन दो धर्मों को नहीं दिया जाना चाहिए।' एक हदीस में इसकी पुष्टि होती है: 'उमर अल-खत्ताब द्वारा यह बताया गया है कि उसने अल्लाह के रसूल को कहते सुना: 'मैं अरब प्रायद्वीप से यहूदियों और ईसाइयों को खदेड़ दूंगा, मुसलमानों को छोड़कर किसी को नहीं रहने दूंगा'' [मुस्लिम 19:4366]।''

तद्नुसार खलीफा उमर ने अरब प्रायद्वीप से यहूदियों और ईसाइयों का सफाया कर दिया [बुखारी 3:39:53]।

इसलिये इस्लाम बहुदेववादियों (इस्लाम को न मानने वाले अ-ईसाई व अ-यहूदी लोगों, मूर्तिपूजकों, काफिरों, जीववादियों और नास्तिकों आदि) को इस्लाम में धर्मांतरित होने अथवा मृत्यु में से एक विकल्प देता है, जबकि ईसाइयों व यहूदियों को अपमानित व भयानक शोषण किये जाने योग्य अमानवीय समुदाय बना देने का प्रावधान किया गया है। यह ध्यान दिये जाने योग्य है कि मुहम्मद के समय विश्व की बड़ी जनसंख्या उन बहुदेववादियों की थी, जो भारत, चीन, दक्षिण व उत्तरी अमरीका एवं अफ्रीका में रहते थे। प्राचीन काल से ही उन्हीं बहुदेववादी लोगों और उल्लेखनीय रूप से भारत व चीन में रहने वाले लोगों ने ही मूल्यवान व रचनात्मक सभ्यता को जन्म दिया था। इस्लामी धर्मशास्त्र ने एक झटके में आदेश दे दिया कि उन बहुदेववादियों को या तो बर्बरता से इस्लाम में धर्मांतरित करा लिया जाए या हिंसक रूप से जहन्नुम में फेंक दिया जाए। विडम्बना देखिये कि इतनी उन्नत सभ्यता वाले बहुदेववादियों का बलपूर्वक धर्मांतरण कराने अथवा उन्हें जहन्नुम में फेंकने का अधिकार उस अपेक्षाकृत असभ्य व पिछड़े मुस्लिम समुदाय को दिया गया, जिनके पास उस समय तक उल्लेख करने योग्य कोई उपलब्धि नहीं थी।

मुहम्मद का जिहाद और उसका परिणाम

रसूल मुहम्मद के जिहाद अर्थात अल्लाह के उद्देश्य में उसके संघर्ष अथवा जंग में प्रत्यक्ष रूप से वो सब आते हैं, जो उसने अरब के लोगों में इस्लाम का प्रसार करने और इस्लाम के भौगोलिक क्षेत्र का विस्तार करने कार्रवाइयों व कार्य- शांतिपूर्ण, मनाने वाला अथवा सैन्य- किये थे। अपने पैगम्बरी मिशन के काल में, विशेष रूप से मदीना जाने के बाद जब इस्लाम के तत्व-राजनीति में जिहाद के सिद्धांत ने प्रवेश किया, रसूल मुहम्मद ने अरब प्रायद्वीप में अपने अनुयायियों के छोटे से समूह को बड़ी व ताकतवर सैन्य बल बना दिया था। अल्लाह के उद्देश्यों के लिये उसने जो संघर्ष किया, उसका सबसे मूल्यवान उपहार मदीना के नवजात खलीफत के रूप में एक ताकतवर इस्लामी राज्य की स्थापना के रूप में मिला। अपने पैगम्बरी व्यवसाय के युग-निर्माता चरण की अवधि में मुहम्मद ने प्रत्यक्ष रूप से जिहादी कार्रवाइयों के तीन बड़े आदर्श बनाये, जो निम्नलिखित हैं:

1. काफिरों का बलपूर्वक धर्मांतरण, विशेष रूप से बहुदेववादियों का।
2. साम्राज्यवाद: इस्लामी शासन की स्थापना के लिये बहुदेववादियों, यहूदियों और ईसाइयों की भूमि को जीतना।
3. दासप्रथा और दास-व्यापार: उदाहरण के लिये, बनू क़ुरैज़ा की स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्वक दास बनाना और रसूल मुहम्मद द्वारा उनमें से कुछ को बेचना।

रसूल मुहम्मद ने अल्लाह के ईश्वरीय आदेशों के कठोर अनुपालन में जिहाद के इन प्रतिमानों (प्रोटोटाइपकल) को स्थापित किया। मुहम्मद की मृत्यु के बाद उसके द्वारा स्थापित मदीना खलीफत को प्रमोचन मंच (लांचिंग पैड) के रूप में प्रयोग करते हुए

इस्लामी पवित्र फौजियों अर्थात जिहादियों ने इस्लाम के प्रसार और विश्व के दूर-कोनों में अपना राजनीतिक क्षेत्र बनाने के लिये अरब से बाहर निकल कर टूट पड़े। इस्लामी प्रभुत्व के काल में अल्लाह-आदेशित जिहाद के अभियानों को आगे बढ़ाने में इन मुस्लिम जिहादियों ने सतर्कतापूर्वक जिहाद प्रतिमानों के इन तीन बड़े पैगम्बरी प्रतिदर्श (मॉडल) को हूबहू उतारा।

रसूल मुहम्मद ने अपने अनुयायियों में इस्लाम के हित में लड़ने के लिये इस प्रकार निष्ठा व साहस भरा था कि उसकी मृत्यु के एक दशक के भीतर ही मुस्लिम जिहादियों ने फारस के महान साम्राज्य को रौंद डाला, जबकि विश्व के सर्वाधिक ताकतवर बैजंटाइन साम्राज्य में स्थायी अतिक्रमण किया। उसकी मृत्यु के एक सदी के भीतर इस्लाम ने बवंडर की गति से पूर्व के ट्रांसोजिआना और सिंध (भारत) तक फैलते हुए, समूचे इजिप्ट और उत्तरी अफ्रीका को जीतते हुए और यूरोप के हृदय फ्रांस तक पहुंचते हुए विश्व का सबसे बड़ा राज्य (खलीफत) बना डाला। बाद के कालखंडों में रसूल मुहम्मद द्वारा प्रारंभ की गयी जिहादी कार्रवाइयों के तीन मुख्य प्रतिमानात्मक प्रारूपों ने किस प्रकार इस्लाम के इतिहास को प्रभावित किया, उन पर हम आगामी अध्यायों में बात करेंगे।

अध्याय 4

इस्लाम का प्रसारः बलपूर्वक या शांतिपूर्ण ढंग से?

'जब पवित्र मास बीत जाएं, तो मूर्तिपूजकों को जहां पाओ, वहीं काट डालो, और उन्हें बंदी बनाओ और उन्हें घेरो और घात लगाकर उनकी प्रतीक्षा करो, तब यदि वे पश्चाताप करें और नमाज स्थापित करें तथा जकात दें (अर्थात वे मुसलमान बन जाएं), तो मार्ग उनके लिये छोड़ दो; निश्चित ही अल्लाह क्षमाशील, दया करने वाला है।'

-अल्लाह, कुरआन 9:5

'जिहाद की बाध्यता का आधार मुस्लिम आविर्भाव की सार्वभौमिकता है। अल्लाह की वाणी और अल्लाह के संदेश मानवजाति के लिये हैं; जिन्होंने इस्लाम स्वीकार किया है, उनका कर्तव्य है कि जो मुसलमान नहीं बने हैं, उनका धर्मांतरण कराने अथवा कम से कम उनको कुचल देने के लिये बिना रुके आगे बढ़ें (जिहाद करें)। यह कर्तव्य समय या स्थान की सीमा से परे है। जिहाद तब तक चलते रहना चाहिए, जब तक कि सम्पूर्ण विश्व या तो इस्लामी मजहब को स्वीकार न कर लें अथवा इस्लामी राज्य की सत्ता के अधीन न आ जाए।'

-बर्नार्ड लुईस, द पॉलीटिकल लैंग्वेज ऑफ इस्लाम, पृष्ठ 73

इस्लाम का प्रसार हिंसक था। इसके लिये पश्चाताप करने या क्षमा मांगने की प्रवृत्ति दिख रही है, जबकि हमें इसके लिये कोई पश्चाताप नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह कुरआन के आदेशों में से एक है कि तुम्हें इस्लाम के प्रसार के लिये जंग अवश्य करना चाहिए।'

-डॉ अली ईस्सा उस्मान, इस्लामी विद्वान, फिलिस्तीनी समाजशास्त्री और संयुक्त राष्ट्र रिलीफ एंड वर्क्स एजेंसी ऑन एजूकेशन के परामर्शदाता, द मुस्लिम माइंड, पृष्ठ 94

इस्लाम के प्रसार के लिये आरंभिक जंगें

इस्लाम का प्रसार हिंसा से हुआ या शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों (दावा) से, यह विषय लंबे समय से गहन विमर्श का विषय रहा है और बीते कुछ दशकों में यह विमर्श बहुत बढ़ा है। इस विषय पर इंटरनेट पर ढूंढ़ने पर इस्लाम-समर्थक लेखकों के बहुत से लेख व टीकाएं मिलती हैं, जिनमें इस्लाम के प्रसार में हिंसा के प्रयोग की बात को नकारा जाता है। यद्यपि रसूल मुहम्मद द्वारा इस्लाम की स्थापना (जैसा कि पहले बताया जा चुका है है) और उसके बाद का इतिहास (इस पुस्तक में जिस पर बात की जाएगी)

ऐसे असंख्य संघर्षों व जंगों से भरा पड़ा है, जिन्होंने करोड़ों की संख्या में मानव जीवन को लील लिया है। इस विमर्श पर आगे बढ़ने से पूर्व आइए सबसे पहले इस्लाम की स्थापना के वर्षों व दशकों के रक्तरंजित इतिहास पर दृष्टि डालते हैं।

प्रतिष्ठित इस्लामी इतिहासकारों द्वारा लिखे गये रसूल मुहम्मद के आत्मवृत्त में उसके दस वर्ष के मदीना प्रवास के समय उसके द्वारा किये गये विफल या सफल हमलों, लूटपाट के अभियानों व जंगों को सूचीबद्ध किया गया है। उनमें से सत्रह से उन्नतीस हमलों व लूटपाट के अभियानों का नेतृत्व उसने स्वयं किया था। नीचे उन बड़े अभियानों और जंगों की सूची दी गयी है, जिसका व्यक्तिगत रूप से नेतृत्व मुहम्मद ने किया था।

- 623 ईसवी- वद्दन की जंग
- 623 ईसवी- साफ्वान की जंग
- 623 ईसवी- जुल अशीर की जंग
- 624 ईसवी- नखला की जंग
- 624 ईसवी- बद्र की जंग
- 624 ईसवी- बनू सालिम की जंग
- 624 ईसवी- ईद-उल-फितर और ज़कात-उल-फितर की जंग
- 624 ईसवी- बनू क़ैनुक़ा की जंग
- 624 ईसवी- साविक़ की जंग
- 624 ईसवी- ग़तफान की जंग
- 624 ईसवी- बहरान की जंग
- 625 ईसवी- उहुद की जंग
- 625 ईसवी- हुमरा-उल-असद की जंग
- 625 ईसवी- वद्दन की जंग
- 625 ईसवी- बनू नज़ीर की जंग
- 625 ईसवी- ज़ातूर-रिक़ा की जंग
- 626 ईसवी- बद्र-उखरा की जंग
- 626 ईसवी- ज़ुमतुल-जंदल की जंग
- 626 ईसवी- बनू मुस्तलक़ निकाह की जंग
- 627 ईसवी- खंदक की जंग
- 627 ईसवी- अज़हाब की जंग
- 627 ईसवी- बनू क़ुरैज़ा की जंग
- 627 ईसवी- बनू लह्यान की जंग
- 627 ईसवी- ग़ाहिबा की जंग

- 627 ईसवी- खैबर की जंग
- 628 ईसवी- हुदैबिया का अभियान
- 630 ईसवी- मक्का की विजय
- 630 ईसवी- हुनसीन की जंग
- 630 ईसवी- तबूक की जंग

रसूल मुहम्मद की मृत्यु 632 ईसवी में हुई और उसका ससुर अबू बक्र इस्लामी राज्य का प्रथम खलीफा बना। इस्लाम के क्षेत्र के विस्तार और इस्लामी मजहब के प्रसार के उद्देश्य से आक्रामक जंगें चलती रहीं:

- 633 ईसवी- ओमान, हज्रामउत, कज़ीमा, वलाजा, उल्लीस और अंबार की जंग
- 634 ईसवी- बसरा, दमाकस और अजनादिन की जंग

खलीफा अबू बक्र की 634 ईसवी में कथित रूप से हत्या कर दी गयी। रसूल का एक और ससुर और साथी उमर अल-खत्तब दूसरा खलीफा बना। उसके निर्देशन में इस्लामी क्षेत्र के विस्तार का अभियान निरंतर रहा:

- 634 ईसवी- नमराक और सक्रीतिया की जंग
- 635 ईसवी- ब्रिज, बुवैब, दमाकस और फहल की जंग
- 636 ईसवी- यरमुक, क़दीसिया और मैदेन की जंग
- 637 ईसवी- जलुना की जंग
- 638 ईसवी- यरमुक की जंग, येरूशरलम और जज़ीराह की जीत
- 639 ईसवी- खुइज़िस्तान की जीत और इजिप्ट में आंदोलन
- 641 ईसवी- निहावंद की जंग
- 642 ईसवी- फारस में रे की जंग
- 643 ईसवी- अज़रबैजान की जीत
- 644 ईसवी- फार्स और खारन की जीत

जिस खलीफा उमर ने इस्लामी राज्य के विस्तार में केंद्रीय भूमिका निभायी थी, उसकी हत्या 644 में हो गयी। मुहम्मद का साथी और दामाद उस्मान अगला खलीफा हुआ तथा विजय की श्रृंखला आगे बढ़ती रही:

- 647 ईसवी- साइप्रस द्वीप की जीत
- 648 ईसवी- बैजेंटाइन के विरुद्ध अभियान
- 651 ईसवी- बैजेंटाइन के विरुद्ध समुद्री जंग
- 654 ईसवी- इस्लाम उत्तरी अफ्रीका में फैला

656 में खलीफा उस्मान की भी हत्या हो गयी। मुहम्मद की बेटी फातिमा का शौहर अली नया खलीफा बना। मुहम्मद की मृत्यु के दो दशक भी नहीं बीते थे कि आंतरिक कलह और संघर्ष से इस्लामी समुदाय बुरी प्रकार प्रभावित हुआ। इससे इस्लाम के भीतर ही जंगें प्रारंभ हो गयीं, जैसे कि अली और रसूल की बीवी आयशा के बीच ऊंट की जंग और अली व मुआविआ के बीच सिफिन की जंग हुई। परिणामस्वरूप काफिरों के विरुद्ध जंग थम गयी। खलीफा अली के नेतृत्व में काफिरों के विरुद्ध दो उल्लेखनीय जंगें हुईं।

- 658 ईसवी- नहरावान की जंग
- 659 ईसवी- इजिप्ट की जीत
- 661 ईसवी में एक विष-बुझे कटार से अली की हत्या कर दी गयी, जिससे न्यायनुसार मार्गदर्शित खलीफाओं अथवा खलीफत राशिदुन के युग का अंत हो गया। मुआविया की अगुवाई वाला उमय्यद वंश सत्ता में आया। इस्लामी क्षेत्र के विस्तार के लिये जीत की जंगें पूरे प्रभाव में पुनः प्रारंभ हो गयीं।
- 662 ईसवी- इजिप्ट इस्लामी शासन के अधीन आ गया
- 666 ईसवी- सिसिली पर मुसलमानों का हमला हुआ
- 677 ईसवी- कुस्तुंतुनिया की घेराबंदी हुई
- 687 ईसवी कुफा की जंग
- 691 ईसवी- देइर उल जालिक़ की जंग
- 700 ईसवी- उत्तरी अफ्रीका में फौजी अभियान
- 702 ईसवी- देइर उल जमैरा की जंग
- 711 ईसवी- जिब्राल्टर पर हमला और स्पेन की विजय
- 712 ईसवी- सिंध की जीत
- 713 ईसवी- मुल्तान की जीत
- 716 ईसवी- कुस्तुंतुनिया का हमला
- 732 ईसवी- फ्रांस में टूअर्स की जंग
- 740 ईसवी- नोबल्स की जंग
- 741 ईसवी- उत्तरी अफ्रीका में बैगदोउरा की जंग
- 744 ईसवी- अइन अल जुर्र की जंग
- 746 ईसवी- रुपार सुथा की जंग
- 748 ईसवी- रायी की जंग
- 749 ईसवी- इस्फाहन व निहावांद की जंग
- 750 ईसवी- ज़ैब की जंग
- 772 ईसवी- उत्तरी अफ्रीका में जंबी की जंग

- 777 ईसवी-स्पेन में सरागोसा की जंग

इसी अवधि में हुए अनेक छोटे व असफल अभियानों को इस सूची में नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिये, भारत की सीमाओं पर हमले 636 ईसवी में दूसरे खलीफा उमर के समय प्रारंभ हुए थे। भारत में स्थायी पांव जमाने के लिये आठ दशकों से अधिक समय तक अनेक प्रयासों के पश्चात 712 में इस्लाम को सफलता तब मिली, जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध जीता। इस लंबी सूची में हमें बाद के दशकों में विभिन्न स्थानों पर हुई बहुत सी जंगों की भी एक और लंबी सूची देनी चाहिए, जैसे कि भारत में हुई जंगें, जिन्हें 1000 ईसवी में महमूद गज़नवी द्वारा शुरू किया गया था और जब तक मुसलमान भारत में सत्ता में रहे, वो जंगें चलती रहीं। उमय्यद खलीफा मुआविया (661-80) पांच वर्षों (674-78) तक कुस्तुंतुनिया पर अधिकार करने का प्रयास करता रहा और इस कालखंड में उसने अनेक असफल, किंतु विनाशकारी हमले किये। बाद में उसने 716 में कुस्तुंतुनिया पर नियंत्रण करने के लिये पुनः अभियान प्रारंभ किया गया, जो न केवल विफल हुआ, अपितु मुसलमानों को गंभीर क्षति हुई। अगले दशकों में कुस्तुंतुनिया पर अधिकार करने के लिये और भी प्रयास किये गये। अंततः 1453 ईसवी में मुसलमानों ने ईसाई धर्म के इस प्रतिष्ठित केंद्र को छीन लिया।

अ-मुस्लिमों (अर्थात गैर-मुसलमानों) के विरुद्ध रसूल मुहम्मद, खलीफाओं और मुसलमान शासकों की आक्रामक व रक्तरंजित जंगों की लंबी सूची के बाद भी मुसलमान उन रक्तरंजित अत्याचारों को अपने ढंग से समझाते हैं और अभी भी यह भ्रम फैलाते हैं कि रसूल मुहम्मद शांतिप्रिय व्यक्ति था और कहते फिरते हैं कि पूरे विश्व में गैरमुसलमानों ने इस्लाम इसके शांति के तत्व और इस्लामी पंथ में निहित न्याय से प्रभावित होकर स्वीकार किया। इस अध्याय में मुस्लिम शासन के मध्यकालीन भारत में मुसलमानों की जनसंख्या वृद्धि के प्रसंग में इन बातों पर विस्तार से विमर्श किया जाएगा। इससे पहले यह तथ्य जान लेना चाहिए कि भारत में थोपे गये इस्लाम का संस्करण इस्लामी शरीयत (विधि) की चार बड़ी शाखाओं में सबसे उदार हनफी शाखा पर आधारित था। यह इस्लाम की एकमात्र शाखा है, जो मूर्तिपूजकों को अस्थायी रूप से ज़िम्मी (जिनको सहन किया जा रहा हो) की प्रस्थिति (दर्जा) देते हुए उन्हें जीवन का विधिक अधिकार देता है, जबकि यह उस वैधानिक कुरआनी आदेश का स्पष्ट उल्लंघन है, जिसमें मूर्तिपूजकों को मृत्युतुल्य कष्ट देकर धर्मांतरण कराने को कहा गया है [कुरआन 9:5]।

इस्लाम का प्रचारः कुरआनी आदेश और पैगम्बरी प्रतिदर्श (मॉडल)

रसूल मुहम्मद के मजहबी मिशन के मक्का काल में हथियार का प्रयोग नहीं हुआ था, हां मुहम्मद के संदेश मक्का के लोगों के धर्म, परंपराओं और पूर्वजों के प्रति अपमानजनक, निंदात्मक और आहत करने वाले अवश्य होते थे। यद्यपि उस समय मुहम्मद का समुदाय अत्यंत दुर्बल था, किंतु उसके आरंभिक समय के कथनों में भविष्य में हिंसा करने की मंशा दिखती थी। उसने स्पष्ट रूप से अपने कथन (पहले ही दिया गया है) में भविष्य में हिंसा करने की अपनी मंशा प्रकट की थी: 'हे कुरैश के लोगो! मैं तुम लोगों को निश्चित ही ब्याज सहित लौटाऊंगा।।' उसके पैगम्बरी मिशन के पहले पांच वर्षों में आयीं अनेक आयतों ने कुरैशों को धरती पर दंड मिलने की बात कहकर धमकी दी थी, जैसे कि उनके विनाश की धमकी [कुरआन 77:16-17]। उदाहरण के लिये कुरआन 77:18 ने कुरैशों को धमकी दी: '...इस प्रकार हम उन गुनाहगारों से निपटेंगे।' किंतु धरती पर मिलने वाले दंड उस समय अल्लाह

द्वारा दिये जाने थे। रसूल ने कुरैशों के प्रति शत्रुता तब भी दिखायी थी, जब वह 619 ईसवी में आश्रय ढूंढ़ने ताइफ गया था, जहां उसने ताइफ के लोगों में मक्कावासियों के प्रति शत्रुता उत्पन्न करने का प्रयास किया था।

मदीना जाने से ठीक पहले मुहम्मद ने अक़्बा की दूसरी प्रतिज्ञा में हिंसा के लिये अपनी स्पष्ट व निर्णायक मंशा प्रकट की थी। इस प्रतिज्ञा में उसने मदीना के अपने धर्मांतरित लोगों से वचन लिया कि वे अपना रक्त देकर उसकी सुरक्षा करेंगे। वचन लेने की क्या आवश्यकता थी? मक्का और मदीना जैसे अरब के नगरों में विदेशी धरती के लोग सहजता से आया करते थे और वहां व्यापार जमाते थे, यहां तक कि शांतिपूर्ण धर्म प्रचार की गतिविधियां भी चलाते थे। यदि मुहम्मद मदीना में शांति से बसने जा रहा था, तो कोई उसे क्षति नहीं पहुंचाता। जब एक वर्ष पूर्व उसने अपने अनुयायी मुसआब को मदीना भेजा था, तो वहां उसने सक्रियता से इस्लाम का प्रचार किया और बड़ी संख्या में उसे धर्मांतरित होने वाले मिले; उसे मदीनावासियों से किसी प्रकार की शत्रुता का सामना नहीं करना पड़ा। इसलिये, मुहम्मद को अपनी सुरक्षा के लिये वचन की आवश्यकता इस कारण पड़ी, क्योंकि उसने पहले ही निश्चित कर लिया था कि वह हिंसा करेगाः पहले कुरैशों के विरुद्ध हिंसा करेगा और उसके बाद पूरे विश्व में अल्लाह के अंतिम पूर्ण मजहब इस्लाम की स्थापना के पूरी मानवता के विरुद्ध हिंसा करेगा (देखें अगला अध्याय)।

उसके मदीना आने के बाद गेम का नियम वास्तव में पूर्णतः परिवर्तित हो गया। रसूल द्वारा अक़्बा की द्वितीय प्रतिज्ञा के माध्यम से काफिर संसार के विरुद्ध घोषित जंग शीघ्र ही आरंभ हो गया। अल्लाह की ओर से मुहम्मद और उसके गिरोह को कुरैशों के विरुद्ध हथियार उठाने के लिये उकसाने वाली जिहाद की आयतें शीघ्र ही आने लगीं। अब कुरैशों को दंड मुहम्मद और उसके अनुयायियों के हाथों दिया जाने लगा, न कि अल्लाह द्वारा। और जो काफिरों से लड़ते हुए मारे जाएंगे, उन्हें जन्नत में पुरस्कार मिलेगा: 'इस प्रकार (ये आदेश है): किंतु यदि ऐसी अल्लाह की इच्छा होती, तो वह निश्चित ही (स्वयं) उनसे प्रतिशोध ले सकता था; पर (वह तुम्हें लड़ने को आगे करता है), जिससे कि तुम्हारी एक-दूसरे द्वारा परीक्षा ले। किंतु वो जो अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं, वह (अल्लाह) उनके कार्यों को व्यर्थ नहीं जाने देगा' [कुरआन 47:4]।

रसूल मुहम्मद स्वयं इस बात को लेकर स्पष्ट था, जैसा कि इब्न उमर ने बताया है: अल्लाह के रसूल ने कहा: (अल्लाह द्वारा) मुझे काफिरों से तब तक जंग करने का आदेश दिया गया है, जब तक कि वे यह मान न लें कि अल्लाह के अतिरिक्त अन्य कोई पूज्य नहीं है और मुहम्मद अल्लाह का रसूल है, और पूर्णतः नमाज स्थापित करें और जकात दें, तो यदि वे ये सब करेंगे तो वे इस्लामी कानूनों के अंतर्गत अपने प्राण व संपत्ति की रक्षा कर सकेंगे तथा तब अल्लाह द्वारा उनका लेखा-जोखा किया जाएगा' [बुखारी 1:24]।

मदीना जाने के सात मास के भीतर रसूल ने कुरैश के व्यापार-कारवांओं को लूटने और उन पर हमला करने के लिये हमलावर गिरोह भेजने प्रारंभ कर दिये थे और इसके लगभग 18 मास पश्चात नखला में उसे पहली सफलता मिली। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है, 632 में मुहम्मद की मृत्यु तक मदीना में उसका शेष मिशन अ-मुस्लिमों पर हमले, लूट, जंग, सामूहिक निर्वासन, नरसंहार और बलपूर्वक दास बनाने की नीरस कहानी है।

जिस समय मुहम्मद मरा, उस समय तक मक्का और मदीना नगरों से काफिरों (अ-मुस्लिमों) को पूर्णतः नष्ट कर दिया गया था। रसूल ने पहले ही कुरआन 9:5 की सम्मति में अ-मुस्लिमों को इस्लाम स्वीकार करने अथवा मृत्यु स्वीकार करने का विकल्प देकर अरब में नवस्थापित इस्लामी राज्य से मूर्तिपूजा को नष्ट कर दिया था। अरब प्रायद्वीप के कुछ दूरस्थ भागों में कुछ अवशिष्ट (बचे-खुचे) यहूदी और ईसाई समुदाय अभी भी विद्यमान थे; उन यहूदियों व ईसाइयों को मुहम्मद की इच्छानुसार उसके उत्तराधिकारियों द्वारा मारकाट कर वहां से भगा दिया गया। यद्यपि अरब के बाहर के उन क्षेत्रों, जिन पर मुसलमानों ने जीत प्राप्त की थी, वहां यहूदियों, ईसाइयों व अ-मुस्लिमों को पराजित और शोषण किये जाने योग्य ज़िम्मी जनता के रूप रखा गया।

इसलिये कुरआन द्वारा बताये गये मार्ग के अनुसार इस्लाम के प्रसार के पैगम्बरी प्रतिदर्श में मूर्तिपूजकों को मृत्युतुल्य पीड़ा देकर उन्हें इस्लाम में धर्मांतरित करना सम्मिलित है। जैसा हमला बनू क़ैनुक़ा और बनू नज़ीर के यहूदियों पर किया गया था, वैसा ही हमला सभी यहूदियों पर किया जाना था, उन्हें उनकी भूमि से भगाया जाना था। उदाहरण के लिये ऐसी कई घटनाएं हैं। मुहम्मद ने बनू क़ुरैज़ा के यहूदियों के साथ जो किया था, उसे देखें। मुहम्मद ने बनू क़ुरैजा के यहूदियों पर हमला किया, उनके समुदाय के पुरुषों की सामूहिक हत्या की और उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास बना लिया। खैबर में यहूदियों को पराजित करने के बाद उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास के रूप में ले जाया गया। इस समुदाय के जो पुरुष बच गये थे, उन्हें इस शर्त पर अपनी भूमि पर रहने की अनुमति दी गयी कि जब तक मुसलमानों के पास उस हथियायी गयी भूमि पर कृषि करने के लिये पर्याप्त मानवसंसाधन न हो जाएं, वे अपनी भूमि पर खेती करें और उपज का आधा भाग मुसलमानों को दें।

जहां तक ईसाइयों का संबंध है, तो जब रसूल ने ईसाई राजाओं व राजकुमारों के पास संदेशवाहक दूत भेजे, तो उसने उन संदेशों में मांग की थी कि वे ईसाई राजा व राजकुमार या तो इस्लाम स्वीकार कर लें अथवा उसकी फौज के क्रोध का सामना करने को तैयार जो जाएं। एक अन्य घटना में मुहम्मद ने आदेश दिया कि ईसाई अपने बच्चों का ईसाईकरण (बापतिज्म) नहीं करें, और इस प्रकार उन्हें इस्लाम में जोड़ें। अंततः यहूदियों और ईसाइयों को भी आयत 9:29 में ज़िम्मी जनता की उसी श्रेणी में डाल दिया गया। ज़िम्मी की श्रेणी में डाल दिये जाने के बाद यहूदियों व ईसाइयों पर भी हमला किया जा सकता था, संघर्ष में उनके पुरुषों की सामूहिक हत्या की जा सकती थी, उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास बनाया जा सकता था और यदि बचे लोग ज़िम्मी होने की अपमानजनक शर्तों को स्वीकार कर लें, तो उन्हें ज़िम्मी जनता के रूप में रखा जा सकता था। (नीचे देखें उमर का समझौता)

मक्का में 30 वर्ष के अपने पैगम्बरी मिशन में मुहम्मद को मात्र 150 लोग ही ऐसे मिले, जो उसके नये मजहब को स्वीकार किये और यह अवधि कुछ-कुछ शांतिपूर्ण थी। जबकि मदीना में अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मुहम्मद अत्यंत हिंसक हो गया था और अ-मुस्लिम कारवां पर लूटपाट व हमला और अ-मुस्लिम समुदायों के विरुद्ध जंग उसके नियमित कार्यों में सम्मिलित हो गया था। इस प्रक्रिया में काफिरों को काटा गया, पैतृक भूमि से भगा दिया गया और मृत्यु-तुल्य पीड़ा देकर सामूहिक धर्मांतरण कराया गया।

मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन की मक्का की अवधि प्रत्यक्षत: पूर्णतः असफल थी। इसीलिये मदीना में मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के जिस हिंसक चरण ने उसे इस्लाम को जमाने योग्य बनाया, वही इस्लाम के प्रसार की प्रधान रीति बन गयी। यहां यह ध्यान दिया जाए कि मक्का में जब मुहम्मद दुर्बल था, तो उसने वहां अपने उपदेशों में भविष्य में हिंसा करने का संकेत दिया था।

यदि उसका समुदाय मक्का में पर्याप्त ताकतवर रहा होता, तो मक्का में ही उसकी हिंसा आरंभ हो गयी होती। अल-बुखारी हदीसों के अनुवादक मदीना के इस्लामी विश्वविद्यालय के डॉ. मुहम्मद मुहसिन खान भी इस प्रकार की संभावना से सहमति प्रकट करते हुए कहते हैं, 'प्रथमतः 'जंग' वर्जित था, फिर इसकी अनुमति दे दी गयी, और उसके बाद जंग अनिवार्य बना दिया गया।'[130] समकालीन विद्वान डॉ सोभी अस-सालेह ने इब्न अल-कुत्ब (पुस्तकों का बेटा) के रूप में विख्यात मध्यकालीन इजिप्ट विद्वान धर्मशास्त्री इमाम जलालुद्दीन अल-सुयुती (मृत्यु 1505) को उद्धृत करते हुए बताया है कि अल्लाह के यहां से जिहाद की अनुमति धीरे-धीरे क्यों आयी: 'जब तक मुसलमान ताकतवर नहीं हो गये, काफिरों से जंग करने का आदेश रोक कर रखा गया और जब तक मुसलमान दुर्बल थे, उन्हें सहन करने और धैर्य रखने का आदेश दिया गया था।''[131] डॉ सालेह एक और प्रसिद्ध मध्यकालीन धर्मशास्त्री अबी बक्र अज़-ज़रक्शी (मृत्यु 1411) के मत का उल्लेख किया है कि ''जब मुहम्मद दुर्बल थे तो सबसे उच्च और बुद्धिमान अल्लाह ने उस स्थिति में उनके पास वो संदेश भेजा, जो उस स्थिति के लिये उपयुक्त था, क्योंकि मुहम्मद और उनके अनुयायियों पर अल्लाह की दया थी। क्योंकि जब वे दुर्बल थे, तब अल्लाह ने उन्हें जंग करने का आदेश दिया होता, तो उससे समस्याएं उत्पन्न होतीं और उनके लिये अत्यंत कठिन होता, पर जब सबसे बड़े अल्लाह ने इस्लाम को विजयी बनाया, तो उसने उन्हें वह आदेश दिया, जो उस स्थिति के लिये उपयुक्त था और वह आदेश था कि पुस्तक के लोग (यहूदी और ईसाई) मुसलमान बन जाएं अथवा जजिया कर का भुगतान करें तथा यह कि काफिर (बहुदेववादी) या तो मुसलमान बन जायें अथवा मृत्यु का वरण करें।''[132]

इसलिये इस बात से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि सतर्कतापूर्वक भेजी गयी आयतों से उद्यत हिंसा ही रसूल मुहम्मद के इस्लाम के प्रसार और मदीना में नवोदित इस्लामी राज्य की स्थापना की जीवन-रेखा थी। हिंसक जिहाद इस्लाम की प्राथमिक-मूलभावना है; इसके बिना इस्लाम संभवतः सातवी सदी में ही अपनी स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हो गया होता। रसूल के निकट उत्तराधिकारियों और बाद के मुसलमान शासकों ने इस्लाम के प्रचार के इस आदर्श मॉडल को हूबहू अपनाया। इस्लामी प्रभुत्व के बाद की अवधि में उस्मानिया साम्राज्य के शासक 1683 ईसवी में दूसरी बार पवित्र रोमन साम्राज्य व यूरोप के द्वार वियना गेट तक पहुंचकर बाल्कान और पूर्वी यूरोप में विध्वंस कर रहे थे।

इस बीच भारत के काफिरों पर औरंगजेब (शासन 1658-1707) विध्वंस ला रहा था, हजारों हिंदू मंदिरों को नष्ट कर रहा था और तलवार के बल पर एवं विवश करने के अन्य उपायों को अपनाकर हिंदुओं व अ-मुस्लिमों का धर्म परिवर्तन करा रहा था (नीचे वर्णित है)।

---

[130] खान एमएम (1987) इंट्रोडक्शन, इन द ट्रांसलेशन ऑफ द मीनिंग्स ऑफ सही अली-बुखारी, किताब भवन, न्यू देल्ही, अंक. 1, पृष्ठ 26

[131] सोभी अस-सालेह (1983) माबहेस फी उलूम अल-कुरआन, दर अल-इल्म लेल-मालयीन, बेरूत, पृष्ठ 269

[132] इबिद, पृष्ठ 270

इस्लाम के प्रसार के लिये जंगों पर मुस्लिम विद्वान

जब आलोचक कहते हैं कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला, तो मुसलमान अपरिमित रक्त बहाने वाली जंगों की लंबी सूची से मुंह नहीं चुरा सकते हैं। इनमें से अनेक जंगें अरब के इस्लामी मुख्य केंद्र से हजारों मील दूर हुईं। जैसा कि मुसलमान दावा करते हैं कि इतनी बड़ी संख्या में जंग प्रकृति में रक्षात्मक थे, किंतु इस दावे पर कोई भोला-भाला ही विश्वास कर सकता है। अरब प्रायद्वीप के मुस्लिम राज्यों पर फारसियों, स्पेनियों अथवा भारतीयों द्वारा कभी आक्रमण नहीं किये गये। सितम्बर 2006 में जब पोप बेनेडिक्ट ने जर्मनी में एक व्याख्यान में बैजेंटाइन सम्राट और एक मुस्लिम विद्वान के बीच 1391 में हुए एक संवाद[133] को इंगित करते हुए इस्लाम की हिंसक प्रकृति को रेखांकित किया, तो मुस्लिम जगत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिल्ल-पों मचायी। मुसलमानों ने हिंसा और तोड़फोड़ किया, जिसमें गिरिजाघर जलाये गये और अनेक लोग मारे गये। ब्रिटेन (और सोमालिया) के मौलानाओं ने रसूल का अपमान करने का आरोप लगाकर पोप की हत्या का आदेश दिया।[134] इस प्रकार के आरोप मात्र से अनियंत्रित तोड़फोड़, हिंसा और आतंकी कार्रवाइयों में मुसलमानों का सम्मिलित होना यह सिद्ध करता है कि इस्लाम की प्रकृति हिंसक होने का आरोप सत्य है।

जहां एक ओर अधिसंख्य मुसलमान इन आरोपों के विरोध में हिंसा का आश्रय लेते हैं, वहीं दूसरी ओर इस्लामी विद्वान इस आरोप को नकारने के लिये लेखनी उठाते हैं। आज के सर्वाधिक प्रभावशाली मुस्लिम विद्वान डॉ शेख युसुफ अल-क़रादवी, जिन्हें लंदन के मेयर केन लिविंगस्टोन इस्लामी जगत में ''आधुनिकता व शांति'' का स्वर बताया है, ने निम्नलिखित शब्दों में पोप की टिप्पणी की निंदा कीः

> पोप ने इस्लाम के ग्रंथों, पवित्र कुरआन और रसूल मुहम्मद की हदीसों को पढ़े बिना ही बैजेंटाइन सम्राट और फारसी मुस्लिम विद्वान के वार्तालाप का उद्धरण देकर इस्लाम पर बोला... यह कहना कि रसूल मुहम्मद बुराई और अमानवीय कृत्य लाये अथवा यह कहना कि इस्लाम तलवार के बल पर फैलाया गया, वास्तव में या तो मिथ्या आरोप है या विशुद्ध अज्ञानता है।[135]

इस्लामी रिसर्च फाउंडेशन (मुंबई, भारत) का अध्यक्ष डॉ ज़ाकिर नाइक एक और ऐसा इस्लामी विद्वान है, जो इस्लामी दुनिया में इस्लाम के वैज्ञानिक अनुसंधान व तार्किकता का दावा करने के लिये अत्यंत सम्मानित माना जाता है। अल-क़रादवी और नाइक ने हिंसा द्वारा इस्लाम के प्रसार के आरोपों की जो व्याख्या की है, वही दोहराते हुए मुसलमान पूरे विश्व घूम-घूम कर कहते

---

133 पोप ने सम्राट मैनुअल 2 पैलिओलोगस (1391) को उद्धृत कियाः ''मुझे दिखाओ कि मुहम्मद ऐसा क्या लाया है जो नया है, और उसमें तुम केवल बुरी और अमानवीय तत्व ही पाओगे, जैसे कि जिस मजहब का उसने उपदेश दिया है उसे तलवार के बल पर फैलाने का उसका आदेश।''

134 डॉफ्टी एस एंड मैक्डरमॉट एन (2006) द पोप मस्ट डाई, सेज मुस्लिम, डेली मेल (यूके), 18 सितम्बर

135 इस्लाम ऑनलाइन, मुस्लिम इंसिस्ट ऑन पोप्स अपॉलॉजी, 15 सितम्बर, 2006; http://www.islamonline.net/English/News/2006-09/15/01.shtml

फिरते हैं कि इस्लाम के बारे में व्यापक भ्रांतियां फैलायी गयी हैं। इस्लाम के इन दोनों विद्वानों के तर्कों पर यहां विचार-विमर्श किया जाएगा। रसूल मुहम्मद और इस्लाम के खलीफाओं ने जो जंग छेड़े थे, अल-करादवी उनके पीछे चार कारण गिनाता है:

1. इस्लामी राज्य की प्रभुसत्ता की रक्षा हेतु
2. विदेशी शासकों के अत्याचार पर नियंत्रण हेतु
3. अत्याचारी शासकों के उत्पीड़न से दुर्बल राष्ट्रों को मुक्त कराने हेतु
4. अत्याचार और उत्पीड़न दूर करने हेतु

इस्लामी राज्य के प्रभुसत्ता की रक्षा

इस्लाम के आरंभिक चरण में मुस्लिम शासकों द्वारा विदेशी राज्यों के विरुद्ध की गयी जंगों के बचाव में विद्वान अल-करादवी ने लिखा है:[136]

> ...मदीना में उभर रहे मुस्लिम राज्य को न केवल अपनी प्रभुसत्ता सिद्ध करनी थी, अपितु उसे समस्त मानवजाति को दया और न्याय का संदेश एवं पालन करने के लिये एक विचारधारा प्रदान करनी थी। उस समय इस प्रकार के परिवर्तन का प्रयास करने वाले किसी भी राज्य को सामान्यत: विशाल सत्ताओं (बैजेंटाइन और फारस के साम्राज्य) से शत्रुता और आक्रमण का सामना करना पड़ता। इन सत्ताओं ने उभर रहे मुस्लिम राज्य और इसके सिद्धांतों को अपने हितों पर खतरे के रूप में देखा। उन्हें लगा कि यह दो पक्षों के बीच अपरिहार्य संघर्ष की ओर ले जाएगा। इसलिये उस समय मुसलमान ऐसी स्थिति में फंस गये थे कि उन्हें वो कदम उठाने पड़े, जिन्हें आजकल रक्षात्मक युद्ध के रूप में इंगित किया जाता है। मुसलमानों ने वो कदम इसलिये उठाये, जिससे कि वे मुस्लिम राज्य की विचारधारा और हितों से मतभेद रखने वाले पड़ोसी देशों से आने वाले संभावित खतरों से अपना भूभाग बचा सकें।

अल-क़रादवी ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि वह किस इस्लामी राज्य की प्रभुसत्ता की बात कर रहा है। मदीना में इस्लामी राज्य कहां से आया? क्या रसूल वहां एक शरणार्थी बनकर नहीं गया था? एक शरणार्थी के रूप में मदीना जाकर बसने वाले रसूल का वहां की भूमि पर क्या दावा हो सकता था? क्या बनू क़ैनुक़ा के यहूदियों ने मुसलमानों (अथवा इस्लामी राज्य) पर आक्रमण किया था कि 624 ईसवी में मुहम्मद के पास यहूदियों पर हमला करने के अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं बचा? मदीना नगर की मूर्तिपूजक जनजातियों और यहूदी जनजातियों द्वारा मुहम्मद को सम्मानपूर्वक बसाया गया और डेढ़ वर्ष भी नहीं बीता कि मुहम्मद ने इन्हीं लोगों पर हमला कर दिया।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि मुहम्मद ने बनू क़ैनुक़ा यहूदियों पर हमला केवल इस कारण किया था, क्योंकि एक नटखट यहूदी ने हाट में एक मुसलमान औरत को छेड़ दिया था। कहा जाता है कि उस व्यक्ति ने उस औरत के वस्त्र खींच दिये

---

[136] युसुफ अल-क़रादवी (2007) द टुथ अबाउट द स्प्रेड ऑफ इस्लाम, इस्लाम ऑनलाइन वेबसाइट, 06 अगस्त; http://www.islamonline.net/servlet/Satellite?pagename=IslamOnline-English-Ask_Scholar/FatwaE/FatwaE&cid=1135167134062

थे, जिससे वह असहज हो गयी थी। इस पर एक मुसलमान ने उस नटखट की हत्या कर दी थी; बदले में यहूदियों ने उस मुसलमान आदमी को मार डाला था। इस बहाने को लेकर मुहम्मद बनू क़ैनुक़ा के पूरे समुदाय पर हमला कर दिया और वो तो अब्दुल्लाह बीच में पड़ गये, अन्यथा वह उन सबको काट डालने वाला था। भले ही बनू क़ैनुक़ा पर मुहम्मद के हमले के पीछे छेड़छाड़ की वह घटना बतायी जाती है, पर इब्न इस्हाक और अल-तबरी द्वारा लिखित मुहम्मद के आत्मवृत्त आदि अन्य प्रामाणिक स्रोतों में बनू क़ैनुका पर हमले के लिये जो तर्क दिये गये हैं, वो नाममात्र के तर्क (अर्थात तर्कहीन) हैं। अल-तबरी ने अल-ज़ुहरी द्वारा दिये गये विवरण को उद्धृत करते हुए जिबराइल द्वारा मुहम्मद के पास लायी गयी एक आयत का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया था 'और यदि तुम्हें किसी समुदाय से विश्वासघात का भय हो, तो बराबरी के आधार पर उनकी संधि तोड़ दो' [क़ुरआन 8:58]। इसी के बाद मुहम्मद बोला, ''मुझे बनू क़ैनुका का भय है'' और ''अल्लाह का रसूल उन पर टूट पड़ा।''[137]

स्पष्ट है कि यदि अल-ज़ुहरी का विवरण सत्य है, तो मुहम्मद के पास उस यहूदी जनजाति पर हमला करने को कोई आधार नहीं था। और यह तो अब्दुल्लाह इब्न उबै का साहसी हस्तक्षेप था, जिसने मुहम्मद को आत्मसमर्पण किये हुए उन यहूदियों का सामूहिक नरसंहार करने से रोक लिया, अन्यथा मुहम्मद की मूल योजना तो उन यहूदियों का सामूहिक नरसंहार करने की ही थी, पर इसके स्थान पर उसे उन्हें निर्वासित करने भर से संतोष करना पड़ा। यदि छेड़छाड़ की वह घटना सही भी थी, तो भी वह नटखट युवक उस छोटी सी घटना के लिये मार दिये जाने का पात्र नहीं था। वह उपेक्षणीय घटना किसी नटखट द्वारा की गयी व्यक्तिगत भूल थी, इसलिये उसके लिये समूची जनजाति पर हमला करने का मुहम्मद का निर्णय न्याय के न्यूनतम सभ्य मानकों पर भी खरा नहीं उतरता है। यहूदी जनजाति के सामूहिक नरसंहार की उसकी योजना और अंतत: उनको निर्वासित कर देना बर्बरता से कम कुछ नहीं था।

रसूल मुहम्मद ने इसी प्रकार 625 ईसवी में बनू नज़ीर यहूदी जनजाति पर और 627 ईसवी में बनू क़ैनुक़ा पर हमला किया। पुनः प्रश्न उठते हैं: क्या बनू नज़ीर यहूदियों ने मुसलमानों या उनके राज्य पर हमला किया था कि मुहम्मद रक्षात्मक हमला करने को बाध्य हो गया? बनू नज़ीर पर मुहम्मद के हमले का कारण उसका वह अप्रमाणिक आरोप था कि वे लोग उसकी हत्या का जाल बिछा रहे थे, जबकि किसी और ने और यहां तक कि उसके अनुयायियों तक ने ऐसा कोई जाल नहीं देखा। उस आधारहीन आरोप को गढ़कर उसने उन यहूदियों पर हमला किया और उन्हें निर्वासित कर दिया। बनू क़ुरैज़ा यहूदियों ने मुसलमानों के साथ कुछ भी गलत नहीं किया था, किंतु रसूल ने उन पर संधि तोड़ने का आरोप लगाया, जबकि सच यह है कि उनके साथ कोई संधि थी ही नहीं (पहले ही उल्लेख किया जा चुका है)।

बनू क़ुरैज़ा जनजाति के लोगों की जघन्य सामूहिक हत्या वास्तव में मुहम्मद की वही मूल योजना थी, जो वह बनू क़ैनुका के यहूदियों के साथ करना चाहता था, पर अब्दुल्लाह इब्न उबै के हस्तक्षेप के कारण वह उनके साथ ऐसा नहीं कर सका था। मुहम्मद ने 625 में बनू नज़ीर यहूदियों को निर्वासित करने का विकल्प चुना, क्योंकि अब भी ताक़तवर अब्दुल्लाह उबै ने बनू नज़ीर की ओर से लड़ने की चेतावनी दे दी थी। 627 ईसवी में बनू क़ुरैज़ा पर हमला करने के समय मुहम्मद ने दुर्बल हो चुके अब्दुल्लाह

---

137 अल-तबरी, अंक 7, पृष्ठ 86

की निंदा की उपेक्षा कर दी और वर्षों से पल रही अपनी कुंठा के वशीभूत उसने उन यहूदियों पर अपनी मूल योजना को लागू कर दिया। अब्दुल्लाह उबै एक करुणावान व न्यायप्रिय व्यक्ति थे, किंतु उन्हें कुरआन, सुन्नत व अन्य इस्लामी साहित्य में सबसे बड़े ''पाखंडी'' के रूप में अपशब्द कहा गया है।

कुल मिलाकर बात यह है कि सर्वप्रथम तो मुहम्मद को कोई अधिकार नहीं था कि वह एक ऐसे भूभाग पर अपना राज्य जमाये, जहां विपत्ति के समय उसके बसने का शालीनतापूर्वक स्वागत किया गया था। पर मुहम्मद ने ऐसे सभ्य लोगों की भूमि मदीना के साथ यह किया कि उसने मदीना नगर के निर्दोष लोगों, विशेष रूप से यहूदियों, पर चरम क्रूरता के माध्यम से को सामूहिक रूप से निर्वासित करते हुए, उनका नरसंहार करते हुए और उनको बलपूर्वक दास बनाते हुए वहां अपने भ्रूणीय इस्लामी राज्य को स्थापित कर दिया।

मदीना के इस्लामी राज्य के विरुद्ध दो ताकतवर साम्राज्यों फारस और बैजेंटाइन की शत्रुता के जो संदर्भ अल क़रादवी ने दिये हैं, वे आधारहीन और मनगढ़ंत हैं। न तो कभी बैजेंटाइन साम्राज्य के शासकों और न ही फारस के शासकों ने मुस्लिम राज्य के प्रति शत्रुता दिखायी। अपितु, वह मुहम्मद ही था, जिसने विश्व के दो सर्वाधिक ताकतवर शासकों फारस के शासक और बैजेंटाइन के शासक को 628 ईसवी में आक्रामक रूप से पत्र भेजकर इस्लाम स्वीकार करने अथवा गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी। उस समय मुहम्मद का समुदाय एक दुर्बल गिरोह था और वह मक्का के छोटे से नगर पर भी नियंत्रण करने में सक्षम नहीं था। ऐसे में ठीक ही था कि विश्व के उन दोनों सर्वाधिक ताकतवर शासकों ने मुहम्मद के विरुद्ध कोई कार्रवाई किये बिना उसके धमकी भरे पत्रों को भाव नहीं दिया।

मुहम्मद की धमकी को गंभीरता से न लेना दोनों साम्राज्यों को महंगा पड़ा। दो वर्ष पश्चात मुहम्मद स्वयं 30,000 की मजबूत फौज लेकर बैजेंटाइन सीमा पर आक्रामक अभियान के लिये निकल पड़ा और सीरिया के निकट तबूक पहुंच गया। अगले दो दशकों में इस्लामी फौज ने मुहम्मद के अधूरे सपने को पूरा करते हुए फारस को रौंद डाला और और बैजेंटाइन साम्राज्य की भूमि पर भी बड़ा अतिक्रमण कर लिया और ये सब तब किया गया, जब मुसलमानों को न किसी ने उकसाया था और न ही किसी प्रकार का खतरा या शत्रुता उत्पन्न की थी। मुहम्मद ने ही यह मांग करते हुए शत्रुता उत्पन्न की थी कि बैजेंटाइन और फारसी शासक मुहम्मद के शासन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दें। किंतु विश्व के उन सर्वाधिक ताकतवर सम्राटों ने तुच्छ मुहम्मद की ओर से बढ़ रही शत्रुता की उपेक्षा कर अपने लिये संकट उत्पन्न किया।

विदेशी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति हेतु

अल-क़रादवी आगे कहता है कि मुसलमानों ने विदेशी राष्ट्रों के विरुद्ध जंग न्याय के इस उद्देश्य से किया था कि ऐसे देशों के शासकों के अत्याचार से निपटा जाए, जिन्होंने अपनी जनता को इस्लाम की पुकार सुनने से रोका था। मुसलमानों को (सर्वसामर्थ्यवान अल्लाह के आदेश से) इस्लाम को अन्य देशों के लोगों तक पहुंचाना था, पर अत्याचारी शासक अपनी जनता को इस्लाम की बातों और कुरआन की पुकार को सुनने की अनुमति नहीं देते...। उस समय उन शासकों के अत्याचार से इस्लाम के सार्वभौमिक पुकार के प्रसार में बाधा आयी। ऐसे में जब रसूल (उन पर शांति व कृपा हो) ने आसपास के देशों के शासकों को पत्र भेजकर उन्हें इस्लाम में

आने को आमंत्रित किया, तो रसूल (उन पर शांति व कृपा हो) ने उनसे कहा कि यदि वे उस पुकार को अस्वीकार करते हैं, तो वे अपनी जनता को दिग्भ्रमित करने के उत्तरदायी माने जाएंगे। उदाहरण के लिये उन्होंने (उन पर शांति व कृपा हो) बैजेंटाइन सम्राट को भेजे अपने पत्र में कहा, 'यदि तुम इस मांग को अस्वीकार करते हो, तो तुम अपने अरीसियाइन (जनता) को दिग्भ्रमित करने के दोषी माने जाओगे।' उन्होंने (उन पर शांति व कृपा हो) फारस के सम्राट को भी लिखा, 'यदि तुम इस्लाम की पुकार अनसुना करोगे, तो तुम मैगिअन (पारसियों) को दिग्भ्रमित करने के उत्तरदायी होगे' और उन्होंने अल-मुक़ावक़िस (इजिप्ट के गवर्नर) को लिखा, 'यदि तुम इस्लाम की पुकार को अस्वीकार करते हो, तो तुम कॉप्टों को दिग्भ्रमित करने के उत्तरदायी माने जाओगे।' ...इस प्रकार अन्य देशों के शासकों के विरुद्ध मुसलमान जिन जंगों में संलिप्त हुए, उनका परिणाम इन देशों के सामान्य लोगों और इस्लाम के बीच के अवरोध को हटाने वाला रहा। इस परिणाम के साथ, वे दंड के भय के बिना सर्वसामर्थ्यवान अल्लाह को मानने या न मानने के अपने विकल्प को पूरे उत्तरदायित्व के साथ चुन सकते थे।

इन तर्कों पर विमर्श करने से पूर्व पहले यह देखते हैं कि किस प्रकार अल-क़रादवी स्वयं ही विरोधाभासी है। पूर्व के प्रसंग में उसने दावा किया कि बैजेंटाइन और फारस की शत्रुता ने मुसलमानों को रक्षात्मक जंग करने के लिये बाध्य किया। यह ऐसा दावा है कि जो अपने में ही पूर्णतः निराधार है अथवा अज्ञानता से निकला है।

अगले बिंदु में उसने स्वयं यह कहकर अपने दावे के आधारहीन होने या अज्ञानता भरे होने को उजागर कर बैठा कि मुसलमानों को वो आक्रामक जंगें इसलिये छेड़नी पड़ीं, क्योंकि फारस, रोम और इजिप्ट के शासकों ने इस्लाम के संदेश को फैलाने में बाधा पहुंचायी थी; इसका सीधा तात्पर्य यह हुआ कि वो जंगें इसलिये नहीं छेड़ी गयी थीं कि मुसलमान उन दोनों ताकतवर साम्राज्यों से कोई खतरा अनुभव कर रहे थे। उसके पश्चात वह रसूल मुहम्मद द्वारा उन राष्ट्रों के शासकों को भेजे गये पूरे पत्र का उल्लेख करने के स्थान पर उसकी एक पंक्ति उद्धृत करता है। इब्न इस्हाक ने बैजेंटाइन सम्राट हरक्युलिस को भेजे गये उस पत्र के बारे में लिखा है: 'दिह्या बिन खलीफा अल-कलबी पत्र लेकर हरक्युलिस के पास गया, जिसमें लिखा था, 'यदि तुम इस्लाम स्वीकार कर लोगे तो सुरक्षित रहोगे; यदि तुम इस्लाम स्वीकार करोगे तो अल्लाह तुम्हें दोहरा पुरस्कार देगा; यदि तुम यह प्रस्ताव ठुकराते हो, तो तुम्हारी प्रजा का गुनाह तुम पर आएगा।''[138] इसी प्रकार ओमान के राजाओं को मुहम्मद के पत्र में कहा गया था: ''इस्लाम स्वीकार करो, और तुम सुरक्षित रहोगे... यदि तुम इस्लाम के अधीन आ जाते हो, तो तुम राजा बने रहोगे, किंतु यदि तुम इस्लाम के झंडे के नीचे नहीं आते हो तो तुम्हारा शासन उखाड़ फेंका जाएगा और मेरे घोड़े तुम्हारे क्षेत्र में मेरी पैगम्बरी सिद्ध करने प्रवेश कर जाएंगे।''

अल-क़रादवी ने जो बताया है, उसके विपरीत मुहम्मद द्वारा विदेशी राजाओं व सम्राटों को भेजे गये पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि मुहम्मद उनको इस्लाम स्वीकार कराने के लिये शांतिपूर्ण साधनों का प्रयोग तो नहीं ही कर रहा था। उसके पत्र का मुख्य संदेश था: इस्लाम स्वीकार करो और तुम सुरक्षित रहोगे, यदि नहीं करोगे तो मुहम्मद के घोड़ों का विनाश तुम लोगों पर टूटेगा। उन

---

[138] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 655

पत्रों में स्पष्ट रूप से उन शासकों द्वारा इस्लाम स्वीकार करने से मना करने पर उनके विरुद्ध हिंसा करने की धमकी दी गयी थी। यह आज के ईसाई मिशनरी अथवा प्राचीन काल से आज तक बुद्ध धर्म के प्रचार के शांतिपूर्ण उपदेश के नितांत उलट था।

आइए अल-क़रादवी की यह बात एक बार मान लें कि रसूल के पत्र में कहा गया था, 'यदि उन्होंने उस पुकार को ठुकराया, तो वे अपनी प्रजा को दिग्भ्रमित करने के उत्तरदायी माने जाएंगे।' किंतु प्रश्न यह है कि उन शासकों द्वारा इस्लाम के आगे घुटने टेकने की मांग करने वाले मुहम्मद के पत्र को ठुकराना अपनी प्रजा को दिग्भ्रमित करने के बराबर कैसे हो सकता है? और रसूल मुहम्मद और उसके बाद के खलीफाओं द्वारा विदेशी भूमि पर हमला करना केवल इसलिये न्यायोचित कैसे हो गया कि इस्लाम स्वीकार करने के पत्र को उन विदेशी शासकों ने ठुकरा दिया था? यदि इस्लाम के प्रसार के लिये मुहम्मद का प्रोटोकॉल प्रथम दृष्टया उन शासकों को धमकी देने और फिर उन पर हमला करने की अपेक्षा शांतिपूर्ण था, तो उसे उन देशों में अपने मिशनरियों को शांतिपूर्ण ढंग से लोगों को इस्लाम में आमंत्रित करने के लिये भेजना चाहिए था। इस्लामी साहित्य में कहीं ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि मुहम्मद और बाद के खलीफाओं ने फारस, इजिप्ट और बैजेंटाइन में इस्लाम के शांतिपूर्वक प्रचार के लिये कोई पहल की हो। दूसरे खलीफा उमर अल-खत्तब ने ईरानी शासक यज़्दगर्द तृतीय को पत्र लिखकर अपनी अधीनता स्वीकार करने अथवा विनाश का सामना करने की मांग करते हुए जो लिखा था, वो निम्न हैः

> फारस के शाह को, मैं तुम्हारा और तुम्हारे राष्ट्र का भविष्य अच्छा नहीं देख रहा हूं, मेरी शर्तों की तुम्हारी स्वीकृति और मेरे समक्ष तुम्हारी अधीनता ही तुम लोगों को बचा सकती है। एक समय वह भी था जब तुम्हारे देश का आधे संसार पर शासन था, किंतु देखो कैसे तुम्हारा सूर्य अस्त हो रहा है। सभी ओर तुम्हारी सेनाएं पराजित हुई हैं और तुम्हारा राष्ट्र लुप्त होने को अभिशप्त है। मैं तुम्हें वह पथ दिखा रहा हूं, जहां तुम स्वयं को इस अभाग से बचा सकते हो। नामतः, यह कि तुम उस एक अल्लाह, अद्वितीय ईश्वर की इबादत करो, जिसने ये सब रचा है। मैं तुम्हें यह संदेश दे रहा हूं। आदेश दिया जाता है कि तुम्हारा राष्ट्र अग्नि की मिथ्या पूजा बंद कर दे और हमारे साथ आ जाए, जिससे कि सत्य के पथ पर आ सके।
>
> संसार के रचयिता अल्लाह की इबादत करो। अल्लाह की इबादत करो और मुक्ति पथ के रूप में इस्लाम स्वीकार करो। अब अपनी बहुदेववादी पद्धतियों को समाप्त करो और मुसलमान बन जाओ, जिससे कि तुम अल्लाह-ओ-अकबर को अपने उद्धारक के रूप में ग्रहण कर सको। तुम्हारे जीवित रहने और तुम्हारे फारस के लोगों की शांति के लिये यही एकमात्र उपाय है। यदि तुम जानोगे कि तुम्हारे और तुम्हारे फारसी लोगों के लिये क्या अच्छा है, तो तुम यही करोगे। आत्मसमर्पण करना तुम्हारा एकमात्र विकल्प है।[139]

अल-क़रादवी हमें बताना चाहता है कि यदि सऊदी सुल्तान या ईरानी राष्ट्रपति की ओर अमरीकी राष्ट्रपति को पत्र भेजकर इस्लाम के सार्वभौमिक सिद्धांत के आगे घुटने टेकने की मांग जाए और अमरीकी राष्ट्रपति इस मांग को अस्वीकार कर दें, तो अमरीका मुसलमानों द्वारा जीते जाने के लिये वैध लक्ष्य हो जाएगा। वस्तुतः मसीहाई ईरानी राष्ट्रपति महमूद अहमदीनेजाद वर्ष 2006 में दो बार राष्ट्रपति बुश और अमरीकी लोगों को इस्लाम स्वीकार करने की मांग कर चुका है।

---

[139] लेटर ऑफ उमर, खलीफत ऑफ अरब्स टू शहंशाह ऑफ पर्सिया; http://www.youtube.com/watch?v=fwnKbIyx96s(accessed 10 Sept] 2008

अलक़ायदा काफिर संसार, विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका को इस्लाम के अधीन आने के लिये बार-बार कहता रहा है। इसलिये अमरीकन लोगों में इस्लाम के सार्वभौमिक संदेश के प्रसार में राष्ट्रपति बुश की बाधा के कारण अमरीका पहले ही मुसलमानों के हिंसक हमले और जीत का वैध लक्ष्य है। निश्चित ही अल-क़ायदा ने पहले ही संयुक्त राज्य पर हमला किया है और उसे इस्लाम के चरण में लाने के लिये हरेक संभव अवसरों पर निरंतर हमले कर रहा है। यदि अहमदीनेजाद के पास अमरीका को पराजित करने की क्षमता होती, तो इसकी अत्यधिक संभावना थी कि उसने इस महान शैतान पर उसी प्रकार हमला कर दिया होता, जैसे कि मुस्लिम अरब ने सातवीं सदी में फारस के अपने काफिर पूर्वजों पर किया था। अल-क़रादवी अपने तर्कों में इस प्रकार के विचार का सीधा समर्थन करता है।

अत्याचारी शासकों से दुर्बल देशों की मुक्ति

अपने तीसरे बिंदु में अल-क़रादवी कहता हैः

चूंकि इस्लाम अन्य मनुष्यों द्वारा दास बनाये जा रहे मनुष्यों को मुक्त कराने के लिये आगे बढ़ता है, तो इसके पास दुर्बल लोगों को उनके उत्पीड़क विदेशी शासन के हाथों से हो रहे अत्याचार से बचाने का मिशन भी है... इसलिये, मुसलमानों ने अल्लाह के निर्देश पर अत्याचारी विदेशी शासकों से दुर्बल मनुष्यों को मुक्त कराने का बीड़ा उठाया... इजिप्ट में बैजेंटाइन इजिप्ट की समृद्धि का उपभोग करते थे और अपनी प्रजा को इतना प्रताड़ित करते थे कि इजिप्ट के लोगों ने मुसलमानों का इजिप्ट पर जीत का स्वागत उत्साहपूर्वक किया। वास्तव में मुसलमान इजिप्ट में प्रवेश करने और मात्र 8000 फौजियों के बल पर उसे बैजेंटाइन साम्राज्य के चंगुल से मुक्त कराने में सफल रहे।

अल-क़रादवी का यह कहना कि 'इस्लाम अन्य मनुष्यों द्वारा दास बनाये जा रहे मनुष्यों को मुक्त कराने के लिये आगे बढ़ता है', सर्वाधिक हास्यास्पद है, क्योंकि कुरआन ने स्वयं खुल्लमखुल्ला दासप्रथा को स्वीकृति दी है और मुहम्मद के समय से लेकर आज तक (अध्याय 7 देखें) मुसलमान स्वतंत्र पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को गुलाम बनाने (दास बनाने) में उस्ताद रहे हैं। और पुनः एक बार, क़रादवी अपने पूर्व के दावे को ही नकारता है कि फारस और बैजेंटाइन साम्राज्य के विरुद्ध मुसलमानों की जंगें नये-नवेले मुसलमान राज्य की प्रभुसत्ता को सुरक्षित रखने के लिये रक्षात्मक जंगें थीं। यहां वह स्पष्ट रूप से इस बात से सहमत होता है कि मुसलमानों ने आक्रामक जंग छेड़ीं थीं, किंतु उनकी वो जंगें कथित रूप से प्रतिष्ठित उद्देश्य के लिये थीं: क्रूर फारस और बैजेंटाइन राज्यों द्वारा सताये गये लोगों को मुक्त कराने के लिये।

क्या रसूल मुहम्मद और बाद के मुस्लिम शासकों ने अत्याचारी शासकों व अधिपतियों से उनकी प्रजा को मुक्त कराने के लिये विदेशी भूमि जीतने का अभियान आरंभ किया था? ऐसा कोई प्रमाण नहीं है, जो इस बात की पुष्टि करती हो। इस्लामी साहित्यों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं कि इजिप्ट के लोगों या बैजेंटाइन के लोगों द्वारा अपने उत्पीड़क और अत्याचारी शासकों से स्वयं को बचाने के लिये मुहम्मद के पास कोई निवेदन भेजा गया हो। न तो ऐसा कोई साक्ष्य है, जो बताता हो कि फारस और बैजेंटाइन के लोगों ने मुहम्मद या बाद के मुस्लिम शासकों से ऐसी कोई गुहार लगायी हो कि उन्हें उनके उत्पीड़क व अत्याचारी शासकों से मुक्ति दिलायें। हां, यह अवश्य हुआ था कि जब मुहम्मद ने 628 ईसवी में इजिप्ट के गर्वनर को पत्र भेजा, तो उस पत्र में

गवर्नर को सीधी धमकी दी गयी थी कि ''इस्लाम स्वीकार करो, तो ही तुम सुरक्षित रह पाओगे।'' मुहम्मद ने कभी बैजेंटाइन अत्याचार से इजिप्ट और उसके लोगों को मुक्त करने की शांतिप्रिय इच्छा का उल्लेख नहीं किया।

हिंसा के माध्यम से इस्लाम के प्रसार के आरोपों पर अल-क़रादवी के खंडन से व्यक्ति यह अनुमान लगाता है कि मुसलमान आक्रांताओं ने लोगों के बीच इस्लाम के सार्वभौमिक संदेश के प्रसार के लिये दूसरे देशों के विरुद्ध बहुत सी जंगें छेड़ी थीं। दूसरे शब्दों में वह स्वयं स्वीकार करता है कि मुसलमानों ने इस्लाम-उसके शब्दों में इस्लाम के सार्वभौमिक संदेशों- के प्रसार के लिये ही विदेशी राष्ट्रों के विरुद्ध तलवार उठाये थे। अपने ही तर्कों में इस विद्वान शेख ने इस तथ्य को सिद्ध कर दिया कि इस्लाम वास्तव में तलवार के बल पर ही फैला- यही वो आरोप था, जिसे वह प्रारंभ में झूठा ठहरा रहा था।

अत्याचार और उत्पीड़न दूर करने हेतु

अल-क़रादवी आगे दावा करता है कि मुसलमान शासकों द्वारा छेड़ी गयी उन जंगों की मंशा फारसी और बैजेंटाइन शासकों के अत्याचार व उत्पीड़न से पीड़ित प्रजा को मुक्त कराने की थी। आइए संक्षिप्त रूप से परीक्षण करें कि मुसलमान आक्रांता उन जीते गये लोगों पर किस प्रकार का न्याय और शांति लाये, जिन्हें कथित रूप से उनके पूर्व शासकों द्वारा उत्पीड़ित किया गया था, सताया गया था।

जब मदीना के यहूदियों ने इस्लाम के सार्वभौमिक संदेश के प्रचार में बाधा उत्पन्न की, तो रसूल ने उन पर हमला कर दिया, बनू क़ैनुक़ा और बनू नज़ीर जनजाति के यहूदियों को उनकी भूमि से भगा दिया, बनू क़ुरैज़ा के पुरुषों को काट डाला गया तथा उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास बना लिया। 638 ईसवी में जब खलीफा उमर ने येरूशलम जीता, तो इतने व्यापक स्तर पर लूटमार और विनाश हुआ कि अगले वर्ष 'इस विनाश और लूटमार के बाद अकाल व प्लेग महामारी आयी, जिससे हजारों लोग मर गये।' मुसलमानों के 634 के अभियानों के समय, 'गाज़ा और कैसेरिया के बीच का पूरा क्षेत्र उजड़ चुका था; अपनी मातृभूमि की रक्षा कर रहे चार हजार लोग ईसाई, यहूदी व समेरियाई मारे गये। 635 से 642 ईसवी के बीच मेसोपोटामिया के अभियान के समय मठ उजाड़ दिये गये, मठों में रहने वाले साधुओं की हत्याएं कर दी गयीं, अरब के प्रकृतिवादियों को या तो मार दिया गया अथवा उन्हें धर्म परिवर्तन के लिये बाध्य किया गया। तलवार की नोंक पर जनता को इस्लाम में लाया गया...।'[140]

अल-बिलाज़ुरी व मुहम्मद अल-कोफ़ी द्वारा (चचनामा पुस्तक में) भारत में मुहम्मद बिन कासिम के पहले सफल हमले के बारे में अंकित है: देबल में, 'मंदिरों को तोड़ दिया गया, तीन दिनों तक सामूहिक नरसंहार चलता रहा; पकड़े गये लोगों को बंदी बना लिया गया;' नैरून में, 'मूर्तियां तोड़ दी गयीं, और उन स्थानों पर मस्जिदें बना दी गयीं, जबकि वहां के लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया था;' रावर और अस्कलंद में, 'पुरुषों को काट डाला गया और उनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर ले जाया गया;'

---

[140] इब्न वराक, पृष्ठ 219

मुल्तान में, 'शस्त्र धारण करने योग्य सभी पुरुषों की एकसाथ हत्या कर दी गयी; सभी स्त्रियों व बच्चों के साथ ही उस मंदिर के छह हजार पुजारियों को बंदी बना लिया गया।'[141]

वहां तीन दिनों तक जो चारों ओर सामूहिक नरसंहार चलता रहा था, वह अनेक इस्लामी विजयों में बारंबार प्रयोग किया जाने वाला मानक था और यह खलीफा उमर द्वारा स्थापित किया गया था। 641 ईसवी में अलेक्जेंड्रिया नगर पर अधिकार करने के साथ ही खलीफा उमर द्वारा दिये गये आदेश के अनुसार वहां की जनता तीन दिनों तक भीषण नरसंहार, मारकाट और लूटमार झेलती रही। 1453 में कुस्तुंनिया के पतन के पश्चात सुल्तान मेहेमेत ने अपने फौजियों को 'तीन दिनों तक अनियंत्रित लूटपाट करने की अनुमति दी, क्योंकि वे ऐसा करने के अधिकारी थे। वे नगर पर टूट पड़े... महिला, पुरुष और बच्चे जहां भी जो मिला, उसे अंधांधुध काट डाला। नगर की गलियों से रक्त बहता हुआ नदियों तक पहुंच गया...।'[142] जब अमीर तैमूर या तैमूर लंग ने अपने भारत के अभियान पर काफिरों के विरुद्ध जंग छेड़ने के अनिवार्य मजहबी कर्तव्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया था, तो दिसम्बर 1399 में एक ही दिन में एक लाख बंदियों को काट डाला था।[143]

अल-क़रादवी हमें बताता है कि इजिप्ट के सताये गये नागरिकों द्वारा इजिप्ट की इस्लामी जीत का स्वागत इतने उत्साह से कर रहे थे कि उस पर अधिकार (कब्जा) करने के लिये केवल 8000 फौजियों की आवश्यकता पड़ी थी। इजिप्ट के निवासियों ने शांति के इस्लामी अग्रदूतों से जो उपहार प्राप्त किये थे, यहां उसका नमूना दिया गया है। अलेक्जेंड्रिया पर कब्जा करने के बाद खलीफा उमर द्वारा की गयी भयानक मारकाट को ऊपर बताया गया है। इब्न वराक के अनुसार, जब अम्र ने इजिप्ट में प्रवेश किया और फैयुम के निकट बेहनेसा नगर पर नियंत्रण कर दिया, तो उसने वहां के निवासियों को मिटा डाला। आत्मसमर्पण किये हुए लोग हों अथवा बंदी बनाये गये, वृद्ध हों या युवा अथवा महिलाएं, किसी को नहीं छोड़ा। यही फैयुम और अबाइत के नागरिकों के साथ भी हुआ। आरंभिक इस्लामी जीतों पर इब्न वराक लिखते हैं:[144]

> निकियू में समूची जनता को तलवारों को काटा गया। अरबियों ने वहां के निवासियों को बंदी बना लिया। आर्मेनिया में यूचैता की समूची जनता का सफाया कर दिया गया। सातवीं सदी के आर्मेनियाई इतिहासवृत्तों से पता चलता है कि किस प्रकार अरबियों ने बड़ी संख्या में असैरिया की जनता को मार डाला गया और शेष जनता को इस्लाम स्वीकार करने को विवश किया गया तथा इसके बाद लेक वैन के दक्षिण-पश्चिम में स्थित दारोन के जनपदों में विध्वंस लाया गया। 642 ईसवी में अब दविन नगर के मिटने की बारी थी।

---

[141] इलियट एचएम एंड दाउसन जे, द हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई द हिस्टॉरिअंस, लो प्राइस पब्लिकेशन, न्यू देल्ही, अंक प्रथम, पृष्ठ. 469

[142] रंसीमैन एस (1990) द फाल ऑफ कांस्तैतिंपोल, 1453, कैम्ब्रिज, पृष्ठ 145; बोस्टन एजी (2005) द लीगेसी ऑफ जिहाद, प्रॉमेथिअस बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 616-18

[143] लाल केएस (1999) थिअरी एंड प्रैक्टिस ऑफ मुस्लिम स्टेट इन इंडिया, आदित्य प्रकाशन, न्यू देल्ही, पृष्ठ 18

[144] इब्न वराक, पृष्ठ 220

643 में अरबी ''सर्वनाश, विध्वंस और दासता'' लेकर आये। ऐसा था शांति और न्याय जो मुसलमान फौजी विजित क्षेत्रों के लोगों के लिये लेकर आये, जिसे मुसलमान उन क्षेत्रों के शासकों का ''अत्याचार, उत्पीड़न और अन्याय'' कहते हैं।

जीत के क्रम में मुसलमान आक्रांताओं द्वारा की गयी बर्बर क्रूरता के अतिरिक्त मुस्लिम शासन प्रतिष्ठानों ने परास्त लोगों का उत्पीड़न और शोषण भी बढ़-चढ़कर किया। उदाहरण के लिये, खलीफा उमर के समय में विजित क्षेत्रों के लोगों पर थोपा गया कर पूर्ण बोझ था। मुसलमान इतिहासकार प्रोफेसर फज़ल अहमद के अनुसार, इन करों के बोझ से कराह रहा अबू लूलू नामक एक फारसी दास एक दिन खलीफा के पास गया और बोलाः ''मेरा स्वामी अत्यधिक कर मुझसे निचोड़ता है। कृपया कर को कम कर दीजिए।''[145] उमर ने उसके आग्रह को ठुकरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर अबू लूलू ने अगले दिन खलीफा को ऐसा खंजर मारा कि वह मर गया।

नाइक भी मुसलमान शासकों द्वारा छेड़ी गयी आक्रामक जंगों की मंशा पर अल-क़रादवी से सहमत है, जैसा कि उसने लिखा हैः 'अत्याचार के विरुद्ध जंग में, कई बार, बल के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है, इस्लाम में बल का प्रयोग केवल शांति व न्याय की स्थापना के लिये ही किया जा सकता है।'[146] हम देखेंगे कि किस प्रकार भारत में न्याय व शांति के इस्लामी शासन ने एक ऐसे देश के अ-मुस्लिमों को थोड़े ही समय में मुसलमानों के द्वार पर भिखारी बना दिया था, जो कभी समृद्ध हुआ करता था। उन्हें अपने ऊपर थोपे गये भयानक करों को चुकाने के लिये अपनी पत्नियों और बच्चों को दास-हाट में बेचना पड़ता था। इनमें से सर्वाधिक असहाय व अभागे लोगों ने जंगलों में शरण लेकर पशुओं के बीच रहना स्वीकार कर लिया; ये लोग मार्गों में हो रही लूटपाट से बच गये और उनके पास अब बस बीहड़ ही थे।

इसके अतिरिक्त अल-क़रादवी के इस दावे का कोई आधार नहीं दिखता है कि विजित क्षेत्र के लोगों द्वारा अत्याचारी व उत्पीड़क शासकों से मुक्ति दिलाने के लिये मुसलमान आक्रांताओं का उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया था। जैसा कि ऊपर उल्लेख है, सामान्य जनता भी मुस्लिम आक्रांताओं के विरुद्ध शस्त्र उठा लिया करती थी। 634 में गाज़ा और कैसेरिया के बीच के क्षेत्र की ऐसी ही 4000 सामान्य जनता, जिसने हमला कर रहे मुसलमानों के विरुद्ध शस्त्र उठाये थे, सामूहिक नरसंहार का आखेट (शिकार) बनी थी। देबल में मुहम्मद बिन कासिम तीन दिनों तक स्थानीय निवासियों को काटता रहा। यह नरसंहार क्या इसलिये हुआ था कि हिंदुओं ने उदात्त हृदय से कासिम की फौज का स्वागत किया था? 1453 में कुस्तुंतुनिया में मुसलमान तीन दिनों तक स्थानीय नागरिकों की हत्याएं करते रहे और सड़कों पर रक्त की धारा बह रही थी। 1568 में अपने राजपूत राजाओं के साथ-साथ चित्तौड़ के 30,000 निवासियों ने उस अकबर महान के विरुद्ध शस्त्र उठा लिये थे, जो उदार व महान कहा जाता था। जब उन लोगों ने

---

[145] अहमद एफ, हज़रत उमर बिन खत्ताब- द सेकंड खलीफा ऑफ इस्लाम; http://path-to-peace.com/omer.html

[146] नाइक जेड (1999), वाज इस्लाम स्प्रेड बाइ द सोर्ड?, इस्लामिक वॉयस, अंक 13-08, संख्या. 152

आत्मसमर्पण किया, तो अकबर ने उनके नरसंहार का आदेश दिया।[147] तो हमला की गयी भूमि के कथित रूप से सताये गये लोगों की ओर से मुसलमान आक्रांताओं का स्वागत कुछ ऐसा था।

अधिकांशतः मुसलमान इतिहासकारों के विवरणों के अनुसार, इस्लामी आक्रांताओं को विजित क्षेत्रों के लोगों की ओर से कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। यदि उन लोगों ने मुसलमान विजेताओं का स्वागत किया होता, तो कासिम को तीन दिन तक दीबल के स्थानीय निवासियों का नरसंहार न करना पड़ता। चचनामा में अल-कोफ़ी लिखता है कि '(देबल के) काफिरों ने चारों ओर से अरबियों पर धावा बोल दिया और इतने साहस व दृढ़ता से लड़े कि इस्लाम की फौज बिखर गयी और उनकी पंक्ति टूट गयी...।'[148] भारत के मुस्लिम विजयों में न के बराबर ही ऐसा हुआ कि लोगों ने इस कारण इच्छापूर्वक इस्लाम स्वीकार कर लिया हो कि उसके संदेश मनभावन थे। कुल मिलाकर वयस्क लोग इस्लामी फौजियों की तलवार के समक्ष परास्त हो गये, जबकि उनकी स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्वक दास बना लिया गया। कुछ घटनाओं में मुसलमान आक्रांताओं ने अधिक प्रतिरोध के बिना ही भूभाग पर प्रवेश कर लिया और ऐसा इसलिये नहीं हुआ कि वहां के लोगों ने मुसलमान आक्रांताओं का उत्साहपूर्वक स्वागत किया, अपितु ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि वो लोग हार रहे युद्धों में लिप्त होकर मिटना नहीं चाहते थे।

1024 ईसवी में सोमनाथ पर सुल्तान महमूद के हमले पर इब्न असीर लिखता है, 'रक्षकों (हिंदू) के जत्थे के जत्थे सोमनाथ के मंदिर में प्रवेश किये, एक-दूसरे के गले में हाथ डालकर वे गिड़गिड़ाये (आक्रमण न करने के लिये)। तब पुनः, वे संघर्ष करने के लिये आगे बढ़े और जब तक मार नहीं दिये गये, संघर्ष करते रहे, किंतु उनमें से कुछ जीवित बच गये थे... मारे गये लोगों की संख्या पचास हजार से ऊपर थी।'[149] ये वो सामान्य लोग थे, जो अपने पवित्र मंदिर की प्रतिष्ठा बचाने का प्रयास कर रहे थे। यह मंदिर तीन बार श्रद्धालु हिंदुओं द्वारा बनवायी गयी और मुसलमान आक्रांता बार-बार इसे नष्ट करते रहे। यह निश्चित ही ऐसी घटना नहीं कही जाएगी, जिसे विजित लोगों द्वारा हमलावर फौज का उत्साहपूर्ण स्वागत समझा जाए, अपितु ये वो घटनाएं हैं, जो बताती हैं कि हमलावरों का स्वागत नहीं, अपितु कड़ा प्रतिरोध हुआ था।

भारत पर महमूद के बार-बार हमले के कारनामों पर प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान व इतिहासकार अलबरूनी के शब्द यह जानने के लिये पर्याप्त हैं कि मुसलमान विजेताओं ने विजित क्षेत्र की जनता को क्या दिया था। जब महमूद ने 1017 में मध्य एशिया के खवारिज़्म को जीता था, तो विलक्षण फारसी विद्वान अलबरूनी (937-1050) को पकड़ लिया था। महमूद उसे अपनी राजधानी गज़नी लाया और अपने दरबार में अधिकारी नियुक्त कर दिया। अपने हमलों के क्रम में महमूद अलबरूनी को अपने साथ भारत लाया। अलबरूनी ने 20 वर्षों तक पूरे भारत की यात्रा की और भारतीय पंडितों से भारतीय दर्शन, गणित, भूगोल व धर्म की शिक्षा ली। उसने भारत के मुस्लिम विजय के विषय में लिखाः 'महमूद ने देश की समृद्धि को प्रत्यक्ष रूप से नष्ट कर दिया था तथा

---

[147] स्मिथ वीए (1958) द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृष्ठ 342

[148] शर्मा, पृष्ठ 95-96

[149] इलियट एंड डाउसन, अंक द्वितीय, पृष्ठ 470-71

आश्चर्यजनक कारनामे किये, जिससे हिंदुओं की स्थिति ऐसी हो गयी, जैसे कि सभी दिशाओं में बिखरे हुए धूल के कण, हिंदू किवदंति बनकर रह गये थे। उनके बिखरे हुए अवशेष निश्चित ही सभी मुसलमानों के प्रति गहरे विरोध के प्रमाण हैं।'[150]

स्पेन में स्वागत

ऐसी घटनाएं इक्का-दुक्का ही हैं कि विजित क्षेत्र के लोगों में कुछ ने संभवतया मुसलमानों के हमलों का स्वागत किया गया हो; स्पेन में यहूदियों के ऐसे ही स्वागत को बार-बार दिखाया जाता है। यद्यपि ऐतिहासिक पत्रकों में इस दावे की पुष्टि नहीं होती है, जैसा कि स्टीफन ओ'शीआ ने लिखा है, 'बहुत से लोग अटकल लगाते हैं कि इबेरिया के यहूदियों द्वारा मुसलमानों का स्वागत मुक्तिदाताओं के रूप में किया गया था, किंतु इस बात की पुष्टि के लिये कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं हैं।'[151] वैसे स्पेन के लोगों द्वारा मुस्लिम हमलावरों के कथित स्वागत का परिणाम उन लोगों के लिये सुखद तो नहीं था। स्पेन में उस समय विसिगोथिक शासन था। विसिगोथ उत्तरी अमरीका के जर्मन मूल के लोग थे, जो सामान्यतः ऐसे बर्बर माने जाते थे, जिन्होंने पांचवीं सदी के प्रारंभ में स्पेन पर अधिकार कर लिया था। जैसा कि मुस्लिम हमलावर करते थे कि परास्त लोगों को मृत्युतुल्य कष्ट व पीड़ा देकर और दास बनाकर उन पर बलपूर्वक इस्लाम थोपते थे, इसके विपरीत विसिगोथ लोगों ने बाद में विजित भूमि के धर्म ईसाईयत को स्वीकार कर लिया था। आरंभ में विसिगोथीय शासक धार्मिक भेदभाव से परे थे और यहूदी, ईसाई अथवा मूर्तिपूजक सभी के प्रति सहिष्णु थे। किंतु बाद में जब इन शासकों का कैथोलिककरण हुआ, तो यहूदियों के प्रति उनकी असहिष्णुता बढ़ गयी। 633 ईसवी में वहां के राजाओं के चयन को मान्यता देने वाले कैथोलिक बिशपों ने घोषणा कर दी कि सभी यहूदियों को ईसाई बनना होगा। इसके बाद यहूदियों के साथ बुरा व्यवहार होने लगा।

मुसलमानों जैसे विदेशी हमलावरों की भांति ही विसिगोथीय राजाओं ने भी प्रजा का बुरी प्रकार शोषण किया था। स्पेन के मूल निवासी इबैरियन लोग मुख्यतः खेत जोतने वाले लोग थे और शासन कर रहे विसिगोथीय परिवारों के लिये अत्यल्प पारिश्रमिक पर कृषि श्रमिक का कार्य करते थे। परिणामस्वरूप जब उत्तरी अफ्रीका में खलीफा के गवर्नर मूसा इब्न नुसैर ने स्पेन पर हमला किया, तो 'विसिगोथीय शासकों से घृणा करने वाली वह जनता जो तीरों और भालों से सुसज्जित विसिगोथीय सेना का बड़ा भाग थी, (मुस्लिम हमलावरों) से नहीं लड़ती।'[152] यद्यपि स्पेन के यहूदी और किसान आरंभ में निश्चित रूप से मुसलमान हमले से अप्रसन्न नहीं थे, किंतु बाद में उनके साथ जो कुछ हुआ, वह उनके लिये कष्टकारी अनुभव रहा। मुसलमान हमलावर वहां लूटमार, डकैती, हत्या करने लगे, बलपूर्वक धर्मांतरण कराने लगे और महिलाओं व बच्चों को बलपूर्वक दास बनाने लगे। दास बनायी गयी

---

[150] सचाउ ईसी (2002) अलबरूनीज इंडिया, रूपा एंड कंपनी, न्यू देहली, पृष्ठ 5-6 (प्रथम प्रकाशन 1988)

[151] ओ'शीआ एस (2006) सी ऑफ फेथः इस्लाम एंड क्रिश्चियनिटी इन द मेडिवल मेडीटेरेनियन वर्ल्ड, वाकर एंड कंपनी, न्यूयार्क, पृष्ठ 69

[152] फ्रेगोसी पी (1998) जिहाद इन द वेस्ट, प्रॉमेथिअस बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 91

महिलाओं में 30,000 महिलाएं तो विसिगोथीय राज परिवारों की व्हाइट कुंवारी कन्याएं ही थीं।[153] एएस ट्रिटॅन के अनुसार, 'अपने कई अभियानों में से एक में मूसा ने प्रत्येक गिरिजाघर को नष्ट कर दिया और प्रत्येक घंटे को तोड़ डाला। जब उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया, तो मुसलमानों ने मारे गये लोगों, गैलीसिया भाग गये लोगों, गिरिजाघरों की सारी संपत्ति हड़प ली और साथ ही मुसलमानों ने गिरिजाघरों के रत्न-आभूषण आदि भी ले लिये।'[154] 711 में जब इस्लामी विजय प्रारंभ हुई, तो स्पेन चार दशकों से अधिक समय तक गंभीर उपद्रव व बर्बरता को झेलता रहा। जब उमय्यद वंश का राजकुमार अब्द अल-रहमान पीछा कर रहे अब्बासी हत्यारों को खदेड़ता हुआ स्पेन पहुंचा और वहां उमय्यद राजवंश (756-1071) की स्थापना की, तब जाकर वहां स्थायित्व का उजाला स्थापित हुआ।

यहूदी व ईसाई ज़िम्मी प्रजा पर भेदभावकारी इस्लामी विधि लागू करते हुए उमय्यद शासकों ने थोड़ी-बहुत सहिष्णुता के साथ राज किया, यद्यपि ऐतिहासिक रूप से इस सहिष्णुता के कारण ही रुढ़िवादी मुसलमानों और उलेमाओं ने उमय्यद शासकों को ''अल्लाह से दूर'' ठहरा दिया (कारणों के लिये, देखें अध्याय 5, श्रेणीः) मुस्लिम दुनिया किस प्रकार बौद्धिक रूप से और भौतिक रूप से पारंगत हुई?)। उमय्यद शासकों में सामान्यतः मुहम्मद के मजहब के प्रति सम्मान नहीं था और जब तक उनका कोषागार भरता रहा, उन्होंने कहीं भी किसी भी अ-मुस्लिम पर धर्मांतरण का दबाव नहीं डाला।

जिन यहूदियों ने मुस्लिम हमलावरों को कथित रूप से मुक्तिदाता के रूप में देखा था, वे शीघ्र ही वास्तविकता जान गये कि उन्होंने जो सोचा था, उसके ठीक विपरीत हो रहा है, क्योंकि मुसलमान हमलावरों ने उन पर अमानवीय व शोषण करने वाले अनेक नियम थोप दिये थे। मुसलमान शासकों ने शीघ्र ही भेदभावपूर्ण जजिया कर (पोल टैक्स), खरज (जकात, भूमि-कर) और अन्य प्रकार के कर लगा दिये, जो इस्लामी शासन में रहने वाली ज़िम्मी प्रजा को चुकाना था। गिरिजाघर और सिनगॉग (यहूदी उपासनागृह) बनाने पर प्रतिबंध लग गया। यहूदियों और ईसाइयों को सामूहिक रूप से बंधक (गुलाम) बना लिया गया और उन्हें गिराये जा रहे गिरिजाघरों से निकलने वाले स्तंभों व सामग्रियों से उन्हीं के ऊपर मस्जिद बनाने के काम में श्रमिक के रूप में लगाया गया। उमर के समझौते (नीचे देखें) के अनुसार, उन्हें शस्त्र रखने, घोड़े की सवारी करने, जूते पहनने, गिरिजाघरों का घंटा बजाने, हरा रंग का कुछ भी पहनने और मुसलमानों के हमले का प्रतिरोध करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। ईसामसीह को ईश्वर बताने और इस्लाम छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार करने का प्रयास करने को मृत्युदंड का प्रावधान वाला अपराध बना दिया गया।

1010 और 1013 के बीच कोरदोबा के निकट और स्पेन के अन्य भागों में सैकड़ों की संख्या में यहूदियों की हत्याएं की गयीं। 1066 में मुसलमानों ने सरकारी सेवाओं में अ-मुस्लिमों के होने का विरोध करते हुए प्रदर्शन चालू कर दिया, जो दंगे में परिवर्तित हो गया; ग्रेनाडा के 4000 यहूदियों के पूरे समुदाय को काट डाला गया। जब उत्तर अफ्रीका के हमलावर रुढ़िवादी अलमोराविद (1085-1147) और अलमोहाद (1133-1270) आये और उमैद राजवंश को सत्ताच्युत कर दिया, तो उसके बाद स्पेन

---

153 लाल (1999), पृष्ठ 103

154 ट्रिटन एएस (1970) द कैलीफ्स एंड दियर नॉन-मुस्लिम सब्जेक्ट्स, फ्रैंक्स कास एंड कंपनी लिमिटेड, लंदन, पृष्ठ 45

के अ-मुस्लिमों अर्थात यहूदियों, ईसाइयों और मोज़ारबों (ईसाई बंधकों में से अरबी बनाये गये लोग) की और अधिक दुर्गति प्रारंभ हो गयी। ये दोनों जिहादी रुढ़िवादी शासक जहां भी गये, वहां काफिरों के मन में आतंक फैलाया। 1143 में अलमोहाद खलीफा अल-मुमीन ने उन सभी यहूदियों और ईसाइयों को निर्वासित करने का आदेश दिया, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार करने से अस्वीकार किया था।[155] अलमोहाद खलीफा-यथा अल मुमीन (शासन 1133-63), अबू याकूब (शासन 1163-84) और अल-मंसूर (शासन 1184-99) द्वारा मृत्युतुल्य पीड़ा देकर इन यहूदियों को इस्लाम स्वीकार करवाया गया और जो मुसलमान नहीं बने, उन्हें निर्वासित कर दिया गया। 1126 में अलमोरावी शासकों द्वारा ग्रेनाडा के ईसाइयों को मोरक्को निर्वासित कर दिया गया।[156]

1148 में अलमोहाद के कोरदोबा विजय के बाद प्रसिद्ध यहूदी धर्मशास्त्री, दार्शनिक व चिकित्सक मोसेज मैमोनाइड्स (1135-1204) के परिवार सहित सभी यहूदियों को इस्लाम स्वीकार करने अथवा मृत्यु या निर्वासन में से एक चुनने को कहा गया। इन यहूदियों ने निर्वासन में जाना स्वीकार किया। चूंकि अधिकांश मुस्लिम क्षेत्रों में यहूदियों का उत्पीड़न इसी प्रकार चल रहा था, इसलिये मैमोनाइड्स परिवार मोरक्को में बस पाने में विफल रहे और तब वे अंततः फुस्तात (इजिप्ट) जाकर बसे। यहूदियों ने जो असहनीय अत्याचार सहा था, उसे मैमोनाइड्स ने अपनी कृतियों, विशेष रूप से पुस्तक द इपीस्टल टू द ज्यूज ऑफ यमन (1172) में अंकित किया है।[157] उन्होंने यमन, उत्तरी अमरीका व स्पेन में मुसलमानों के अत्याचार और यहूदियों के बलात् धर्मपरिवर्तन के बारे में लिखा है कि उन्होंने यमन, उत्तरी अमरीका व स्पेन में मुसलमानों के अत्याचार और यहूदियों के बलात् धर्मपरिवर्तन के बारे में लिखा है कि 'निरंतर चल रहा यह उत्पीड़न हममें से बहुतों को अपने धर्म से दूर कर देगा, अपने धर्म के प्रति संदेहास्पद बना देगा, अथवा अपने धर्म से पथभ्रष्ट कर देगा, क्योंकि उन्होंने हमारी दुर्बलता पहचान ली है और उन्होंने हमारे शत्रुओं की विजय और हम पर उनके प्रभुत्व को देख लिया है।' उन्होंने आगे कहा,

> 'ईश्वर ने हमें इन अरबी लोगों के बीच भंवर में डाल दिया है, इन्होंने हम पर भयानक अत्याचार किये हैं और हम पर दुखदायी व भेदभावकारी विधान थोप दिये हैं, जैसा कि हमारे ग्रंथों ने हमें पहले ही चेताया था, 'हमारे शत्रु ही हमारा निर्णय करेंगे' (ड्यूटरोनॉमी 32:31)। कभी किसी जाति ने हमें इस प्रकार अपमानित, पदच्युत, अवमूल्यित नहीं किया था, जैसा कि इन्होंने किया है...।'

यह बताते हुए कि 'उन लोगों द्वारा हम लोगों का इतना अपमान किया गया है, जो सहन शक्ति से बाहर है', मैमोनाइड्स् ने आगे कहा,

---

155 वाकर, पृष्ठ 247

156 इब्न वराक, पृष्ठ 226, 236

157 मैमोनॉइड्स एम (1952) मोसेज मैमोनॉइड्स इपिस्टल टू यमनः द अरैबिक ओरिजिनल एंड द थ्री हीब्रू संस्करण, ईडी. एएस हालकिन, अनुवाद. बी कोहेन, अमेरिकन अकादमी फॉर ज्यूइश रिसर्च, न्यूयार्क

> हम, वृद्ध और युवा दोनों, ने अपमान को सहन करना चुपचाप स्वीकार कर लिया है, जैसा कि ईसैआह ने हमें निर्देश दिया था: 'मैं कष्ट व पीड़ा देने वालों से मुंह फेर लेता हूं, और अपने गाल उनके आगे कर देता हूं, जिन्होंने बाल नोचे हैं' (50:6)। ये सब तब भी, हम इस निरंतर दुर्व्यवहार से नहीं बच पा रहे हैं, जो हमें भीतर ही भीतर मार रहा है।
>
> कितना भी हम सहें और उनके साथ शांति से रहने का प्रयास करें, पर वे कलह और द्रोह करेंगे ही, जैसा कि डेविड ने भविष्यवाणी की थी, 'मैं पूर्णतः शांति से रह रहा हूं, किंतु जब वो मुख खोलेंगे तो युद्ध की ही बात करेंगे' (प्सैल्म्स 120:7)। इसलिये यदि हम समस्या उत्पन्न करेंगे और उनसे बेतुके और असंगत ढंग से सत्ता का दावा करेंगे, तो हम निश्चित ही अपने को विनाश की ओर ले जाएंगे।

भारत में इतने सारे हिंदू बच कैसे गये?

इस्लाम हिंसा के माध्यम से फैला, इस आरोप के खंडन के लिये नाइक एक भिन्न कुचक्र रचता है। वह यह तर्क देते हुए इसका खंडन करता है कि यदि इस्लाम तलवार के बल पर फैला, तो भारत और मध्य एशिया में इतनी बड़ी संख्या में अ-मुस्लिम नहीं बचने चाहिए थे। वह लिखता है:

> कुल मिलाकर, मुसलमानों ने 1400 वर्षों से अरब पर राज किया। आज भी, 14 मिलियन अरबी ऐसे हैं, जो कोप्टिक ईसाई अर्थात पीढ़ियों से ईसाई हैं। यदि मुसलमानों ने तलवार का प्रयोग किया होता, तो वहां एक भी अरबी ऐसा नहीं होता, जो ईसाई रह पाता।
>
> मुसलमानों ने भारत पर लगभग 1000 वर्ष राज किया। यदि वे ऐसा करना चाहते तो कर देते, क्योंकि उनके पास भारत के प्रत्येक अ-मुस्लिम को इस्लाम में धर्मांतरित कराने की ताकत थी। आज भारत के 80 प्रतिशत से अधिक लोग अ-मुस्लिम हैं। ये सभी अ-मुस्लिम भारतीय आज साक्ष्य हैं कि इस्लाम तलवार द्वारा नहीं फैलाया गया।

नाइक के इस कुतर्क का उत्तर अल-क़रादवी के इस दावे में है कि इस्लाम के सार्वभौमिक संदेश के प्रसार हेतु वातावरण बनाने के लिये तलवार का प्रयोग किया गया:

> ...तलवार क्षेत्रों को जीत सकता है और राज्यों पर अधिकार कर सकता है, पर यह कभी भी लोगों का हृदय जीतने और उसमें इस्लाम का बीज बोने में सफल नहीं हो सकता है। इस्लाम का प्रसार कुछ समय बाद हुआ, जब इन देशों के सामान्य लोगों और इस्लाम के बीच के अवरोध को दूर कर दिया गया। इस बिंदु पर, वे जंग के बखेड़ा और जंग की भूमि से दूर शांतिपूर्ण वातावरण में इस्लाम पर विचार करने में समर्थ हुए। इस प्रकार अ-मुस्लिम मुसलमानों के उत्कृष्ट नैतिकता को देख पाने में सक्षम हुए...।

प्रख्यात इस्लामी विद्वान डॉ. फज़लुर रहमान, जिन्हें इस्लाम पर अपने कथित उदार विचारों के कारण पाकिस्तान छोड़कर भागना पड़ा था और अमरीका में शरण लेनी पड़ी थी, वे भी अल-क़रादवी की इस बात से सहमत हैं। रहमान कहते हैं कि कुरआन में रेखांकित धार्मिक-सामाजिक वैश्विक-व्यवस्था की स्थापना के लिये जिहाद (तलवार द्वारा) परम आवश्यकता है। वह पूछते हैं: 'इस प्रकार की विचाराधारात्मक विश्व व्यवस्था का अस्तित्व ऐसे साधनों का प्रयोग किये बिना कैसे आ सकता है?' किंतु अचानक रहस्यमयी ढंग से वो फट पड़ते हैं और कहते हैं कि 'इस्लाम तलवार से फैलाया गया', यह अपप्रचार ईसाइयों द्वारा किया जा रहा है। यद्यपि, वे स्पष्ट रूप से सहमत हैं कि इस्लाम का प्रसार करने से पूर्व अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिये तलवार पहले

आया। वो लिखते हैं, '...जो तलवार के बल पर फैलाया गया, वह इस्लाम धर्म नहीं था, अपितु वह इस्लाम का राजनीतिक क्षेत्र था, जिससे कि इस्लाम कुरआन में बतायी गयी विश्व-व्यवस्था को धरती पर लाने के लिये काम कर सके...। परंतु कोई यह कभी नहीं कह सकता है कि इस्लाम तलवार के बल पर फैलाया गया।'[158]

जिहाद के प्रश्न पर अरब लीग के महासचिव अब्देल खालेक हसौना (1952-71) ने एक साक्षात्कार (1968) में कुछ ऐसा ही कहा था कि 'जैसा कि इस्लाम के शत्रु दावा करते हैं कि इस्लाम तलवार के बल पर थोपा गया, पर यह सही नहीं है। लोगों का इस्लाम में धर्मांतरण उनकी इच्छा से किया गया, क्योंकि इस्लाम ने उन्हें जो जीवन देने का वचन दिया, वह उनके पहले के जीवन से श्रेष्ठ था। मुसलमानों ने यह सुनिश्चित करने के लिये दूसरे देशों पर हमला किया कि पुकार (इस्लाम की ओर आने की) सभी स्थानों पर जनसमूहों तक पहुंचे।'[159]

इन विख्यात मुस्लिम विद्वानों ने इस बात का खंडन करने का पूरा प्रयास किया कि इस्लाम तलवार से फैला। इस प्रक्रिया में इन विद्वानों ने अनजाने में यह स्वीकार कर लिया कि इस्लाम के प्रसार में तलवार ने मुख्य भूमिका निभाई थी।

यदि ध्यान से विश्लेषण किया जाए, तो इनके कथन स्पष्ट रूप से इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस्लाम के प्रसार में तलवार मुख्य हथियार थाः पहले तलवार का प्रयोग किया गया; इसके बाद इस्लाम का प्रसार हुआ- पर इनका दावा है कि यह शांतिपूर्ण साधनों से आया। इस संबंध में अनेक प्रश्न पूछे जाने की आवश्यकता हैः

1. इस्लाम का प्रसार चरण कितना शांतिपूर्ण था?
2. क्या इस्लाम के प्रसार में आरंभिक तलवार-चरण ने कोई भूमिका नहीं निभायी?

जब आप इस पुस्तक को पूरा पढ़ेंगे, तो इन प्रश्नों का उत्तर पा जाएंगे। मुस्लिम इतिहासकारों के अभिलेखों के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि पराजित लोगों का इस्लाम में धर्मांतरण व्यापक स्तर पर जंग की भूमि से ही प्रारंभ हुआ था। आइए, अब इन मुस्लिम विद्वानों के दावे से संबंधित निम्नलिखित दो बिंदुओं का परीक्षण करेंः

1. पहला, क्या अ-मुस्लिम इस्लाम की छतरी के नीचे आने के लिये इसलिये नहीं दौड़ पड़े थे कि उन्हें समझ में आ गया था इस्लाम का संदेश शांति व न्याय का संदेश है?
2. दूसरा, यदि इस्लाम तलवार से फैला, तो क्यों अभी क्रमशः 1400 वर्ष और 1000 वर्ष के इस्लामी शासन के बाद भी मध्यएशिया में 14 करोड़ अ-मुस्लिम और भारत में 80 प्रतिशत जनसंख्या हिंदू है?

---

[158] शर्मा, पृष्ठ 125

[159] वैडी सी (1976) द मुस्लिम माइंड, लांगमैन ग्रुप लिमिटेड, लंदन, पृष्ठ 187

आरंभिक मुस्लिम हमलों में मध्य एशिया और भारत के लोगों के साथ क्या हुआ, इसका संक्षिप्त विवरण पहले ही दिया जा चुका है। सुल्तान महमूद ने 1000 से 1027 ईसवी के बीच उत्तरी भारत पर 17 बार भयानक हमले किये। सुल्तान महमूद के प्रथम हमले के तीन दशक बाद अलबरूनी ने अपनी पुस्तक, ***अलबरूनी का भारत*** (इंडिका, 1030 ईसवी) में लिखा कि मुस्लिमों द्वारा जीती गयी भूमि पर हिंदू ''धूल के कण'' बन गये थे; और जो बचे उनके मन में सभी मुसलमानों के प्रति कभी न समाप्त होने वाला विरोध रहा।' अलबरूनी ने आगे लिखा कि हिंदू लोग 'अपने बच्चों को हमसे (मुसलमान), हमारे पहनावे और चाल-ढाल व प्रथाओं से भयभीत करते थे और हमें ''शैतान की औलाद'' कहकर झिड़कते थे तथा वो मानते थे कि हम जो कुछ भी करते हैं, वह अच्छाई व नैतिकता के सर्वथा विपरीत होता है।'[160] अलबरूनी ने लिखा, 'अरब के मुसलमानों के प्रति हिंदुओं की घृणा का कारण यह था कि पहले पारसियों और बाद में मुसलमानों द्वारा खुरासान, फारस, ईराक, मोसुल और सीरिया से बौद्धों को पूरा का पूरा मिटा दिया गया था। और उसके बाद मुहम्मद बिन कासिम भारत की ओर बढ़ा तथा ब्राह्मणाबाद और मुल्तान नगरों को जीत लिया और कन्नौज तक पहुंच गया था। और इन सब घटनाओं ने उनके मन में गहरे घृणा का भाव भर दिया।' इब्न बतूता ने ऐसे अनेक हिंदू वीरों व योद्धाओं के बारे में बताया है, जिन्होंने मुसलमान शासकों के आगे झुकने अथवा इस्लाम में धर्मांतरित होने की अपेक्षा मुल्तान और अलीगढ़ के निकट दुर्गम पहाड़ियों में शरण लिया। बाद के मुस्लिम शासन में मुगल बादशाह बाबर को भी ऐसा ही अनुभव हुआ (नीचे देखें) था। अपेक्षाकृत उदार जहांगीर (मुत्यु 1627) के शासन में हजारों-लाखों या संभवतः करोड़ों की संख्या में हिंदुओं ने भारत के अरण्यों (जंगलों) में ठिकाना बनाया था और विद्रोह किया था; जहांगीर ने 1619-20 में उनमें से 200000 लोगों को पकड़ लिया और उन्हें ईरान ले जाकर बेच दिया।[161]

अलबरूनी ने सिद्ध किया कि सुल्तान महमूद के प्रथम हमले के तीन दशक बाद भी भारत के हिंदुओं को इस्लाम में शांति व न्याय का संदेश नहीं दिखा। यदि उन्होंने ऐसा कुछ देखा होता, तो मुसलमानों के विरुद्ध ''कभी कम न होने वाले विरोध'' और ''गहरे बैठी घृणा'' के स्थान पर इस्लाम स्वीकार करने के लिये दौड़ पड़ते। इस्लाम की आरंभिक सदियों में भारत आने वाले अन्य मुस्लिम विद्वानों, यात्रियों और व्यापारियों ने इसी प्रकार की कुंठा व्यक्त की है। भारत में इस्लामी शासन ठीक से 712 ईसवी में आया और ऐसा लगता है कि सदियों तक हिंदुओं को इस्लाम में ऐसा कुछ नहीं दिखा, जो शांति व न्याय जैसा कुछ हो, जैसा कि प्रोफेसर हबीबुल्लाह लिखते हैं, 'आरंभ में सीधा धर्मांतरण न के बराबर ही रहा होगा; दसवीं-सदी के एक अरब भूगोलवेत्ता द्वारा उद्धृत एक आरंभिक रिपोर्ट में कहा गया है कि इस्लाम भारत में एक भी धर्मांतरण नहीं कर पाया।'[162] व्यापारी सुलेमान (851), जिसने भारत और चीन की यात्रा की थी, ने लिखा हैः 'उसके समय में, उसे न तो कोई भारतीय मिला और न चीनी, जिसने इस्लाम

---

[160] सचाउ ईसी (1993) अलबरूनीज इंडिया, लो प्राइस पब्लिकेशन, न्यू देल्ही, पृष्ठ 20-21

[161] इलियट एंड डाउनसन, अंक 6, पृष्ठ. 516; लेवी (2002) हिंदूज बियांड द हिंदू कुशः इंडियन इन द सेंट्रल एशियन स्लेव ट्रेड, जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटही, 12(3), पृष्ठ 283-84

[162] हबीबुल्लाह एबीएम (1976) द फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, सेंट्रल बुक डिपो, प्रयागराज, पृष्ठ 1

स्वीकार किया हो या अरबी बोलता हो।'[163] इब्न बतूता और बादशाह बाबर ने भारत में इस्लाम के आने के छह-आठ सदियों बाद भी हिंदुओं में इस्लाम के प्रति प्रबल विरोध का भाव देखा था, और ऐसा ही नौ सदी बाद जहांगीर ने भी पाया था।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि भारत में मुस्लिम राज के अंत के दिनों तक भी हिंदुओं को इस्लाम में कोई सुंदरता नहीं दिखी और वे इस्लाम के विरोध में ही रहे। हम (अध्याय 6) में देखेंगे कि 1206 में दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के एक सदी के भीतर ही जजिया, खरज और अन्य प्रकार के कष्टदायी करों के कराहते हुए हिंदू मुसलमानों के द्वार पर भीख मांगने लगे। वे इस्लाम स्वीकार करके इस निराशाजनक स्थिति से बच सकते थे, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। हम मुस्लिम इतिहास-वृत्तांतों व यूरोपीय यात्रियों द्वारा दिये गये साक्ष्यों में पायेंगे कि सत्रहवीं सदी तक भी हिंदू असहनीय बोझ वाले करों को चुकाने के लिये अपनी पत्नियों व बच्चों को हाट में बेचते थे। मुसलमान अधिकारी करों की उगाही के लिये अभागे हिंदुओं के बच्चों को बलपूर्वक हाट ले जाकर बेच देते थे (देखें अध्याय 7)। परंतु तब भी वे इस्लाम स्वीकार नहीं कर रहे थे।

जैसा कि अनेक मुस्लिम इतिहासकारों और शासकों ने बताया है कि पूरे भारत में विस्तृत घने वनों का विशाल क्षेत्र भी हिंदुओं की रक्षा का मूल्यवान साधन बन रहा था। सुल्तान महमूद शाह तुगलक के शासन में भारत की यात्रा पर आये इब्न बतूता को मुल्तान के निकट ऐसे हिंदू 'विद्रोही और योद्धा' मिले, जिन्होंने (दुर्गम) पहाड़ियों पर स्थित दुर्गों में स्वयं को सुरक्षित रखा था...।' दिल्ली के सुल्तान के दूत-मंडल के साथ चीन की यात्रा पर गये इब्न बबूता को कोल (अलीगढ़) के निकट ऐसे हिंदू विद्रोही मिले, जिन्होंने एक ''दुर्गम पहाड़ी'' पर शरण ली हुई थी वहीं से वे मुसलमानों द्वारा शासित क्षेत्रों पर आक्रमण करते थे। उसका दल ऐसे ही विद्रोहियों के आक्रमण में फंस गया था।[164] महान सूफी विद्वान अमीर खुसरो ने अपनी कृति सूह निफर में ऐसी ही घटनाओं का वर्णन किया है। अपने संस्मरण मुल्फुज़ात-आई-तैमूरी में बर्बर हमलावर अमीर तैमूर (तैमूर लंग) ने लिखा है कि उसे उसके मंत्रियों ने भारतीयों की रक्षा शैली के बारे में चेताया था। भारतीयों की इस रक्षा शैली में अरण्य और वन व वृक्षों की ऐसी श्रृंखला होती थी, जिनकी जड़ें और शाखाएं एक-दूसरे से सटी हुई होती थीं और उस क्षेत्र में प्रवेश करना अत्यंत कठिन है... उस क्षेत्र के योद्धा, भूस्वामी, राजकुमार और राजा उन वनों के दुर्गों में रहते हैं और वहां उनका जीवन जंगली मनुष्यों जैसा हो गया था।'[165]

जब प्रथम मुगल शासक बाबर ने 1520 में हमला किया, तो उसने उन लोगों की बचने की रणनीति में ऐसा पाया कि वो लोग उन 'कंटीले वनों के अनेक भागों' में आगे बढ़ रहे हैं और वो वन उनको अच्छा रक्षात्मक साधन उपलब्ध करा रहा है, जिससे वे लोग दृढ़ता से विद्रोही बन जा रहे हैं। बाबर जब आगरा पहुंचा था, तो वहां भी वनों में आश्रय लेने के साहसी व सफल रणनीति पाया था और इस बारे में उसने लिखा है, 'हमारे पास न कोई अनाज था और न ही हमारे घोड़ों के लिये दाना। हमारे प्रति शत्रुता

---

[163] शर्मा, पृष्ठ 110

[164] गिब एचएआर (2004) इब्न बतूताः ट्रैवेल्स इन एशिया एंड अफ्रीका, डीके पब्लिशर्स, न्यू देलही, पृष्ठ 190, 215

[165] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 395

भाव के कारण ग्रामीण चोरी और राजमार्गों पर लूट करने लगे थे; मार्गों पर कोई गतिविधि नहीं होती थी...सभी निवासी (जंगलों में) भाग गये थे।'[166]

इन साक्ष्यों से हमें भली-भांति ज्ञात होता है कि मुस्लिम हमलावरों और भारत के मुस्लिम शासकों के प्रति हिंदुओं का दृढ़ प्रतिरोध कितना अधिक था। इससे यह भी समझने में सहायता मिलेगी कि भारत के हिंदू इतनी सदियों तक मुसलमानों के हमले से बच पाने में कैसे सफल रह सके थे। वास्तव में भारत पर इस्लामी इतिहास में यत्र-तत्र मुस्लिम हमला झेल रहे उन भारतीय शासकों व उनके सैनिकों, विद्रोहियों व सामान्य लोगों के उदाहरण बिखरे पड़े हैं, जो प्राण बचाने के लिये प्रायः दुर्गम वनों और पहाड़ियों में आश्रय लिया करते थे।

स्पष्ट है कि हिंदुओं में इस्लाम के प्रति प्रबल प्रतिरोध और घृणा थी; उन्होंने अपने प्राण बचाने और बंदी व बंधक बनाकर इस्लाम में धर्मांतरित किये जाने से बचने के लिये दुर्गम वनों व पहाड़ों में शरण ली। अभी भी दूसरे लोग दमनकारी जिम्मी करों के बोझ से बचने के लिये इस्लाम स्वीकार करने की अपेक्षा उन करों को ढो रहे थे। औरंगजेब द्वारा 1679 में अपमानजनक जजिया कर पुनः लागू करने के बाद (अकबर (शासन 1556-1605) द्वारा पहले इसे समाप्त कर दिया गया था), बड़ी संख्या में प्रत्येक वर्ग के लोग दिल्ली आ गये और शाही महल के बाहर विरोध में बैठ गये। उन अड़ियल प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने के लिये औरंगजेब ने अपने हाथियों और घोड़ों को उन पर दौड़ा दिया। खाफी खान ने लिखा है, 'उनमें से बहुत से लोग हाथियों और घोड़ों के पांव के नीचे कुचलकर मर गये। अंत में उन लोगों ने जजिया देना स्वीकार कर लिया।'[167]

इससे स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि मुसलमान हमलावरों के भारत आने के हजार वर्ष बाद भी हिंदू इस्लाम में धर्मांतरण के लिये दिये जा रहे इतने सारे अधिकार व लालच की उपेक्षा कर रहे थे और आज भी वे इस्लाम में कुछ भी अच्छा और आकर्षक नहीं देखते हैं। अपितु वे इस प्रकार का खतरनाक विरोध कर रहे थे और अपमानजनक जजिया, कष्टकारी खरज और अन्य दमनकारी कर देकर भी अपने पूर्वजों के धर्म पर अडिग बने हुए थे।

इसके अतिरिक्त उनमें से बहुत से लोग, जो तलवार के भय या अन्य परिस्थितियों में इस्लाम स्वीकार लिये थे, पुनः अवसर मिलते ही अपने पूर्वजों के धर्म में वापस आने को तत्पर थे। सुल्तान महमूद शाह तुगलक ने 1326 में दक्षिण के पठारों के दो भाइयों हरिहर और बुक्का को बंदी बनाकर मुसलमान बना दिया था। इसके दस वर्ष पश्चात सुल्तान ने दोनों भाइयों को एक फौज के साथ दक्षिण में अराजक स्थिति को नियंत्रित करने के लिये भेजा। राजधानी दिल्ली से इतनी दूर आकर इन दोनों भाइयों ने न केवल हिंदू धर्म में पुनः वापसी की, अपितु विजयनगर साम्राज्य की स्थापना करते हुए दक्षिण भारत से इस्लामी शासन को उखाड़

---

[166] लाल (1999), पृष्ठ. 62-63

[167] लाल (1999), पृष्ठ 118

फेंका।[168] विजयनगर शक्तिशाली हिंदू साम्राज्य एवं भारतीय सभ्यता का फलने-फूलने वाला केंद्र बना तथा यह 200 वर्षों तक दक्षिण भारत के इस्लामीकरण में विशाल अवरोध बना रहा।

जब विकृत अकबर ने धर्म के चयन की स्वतंत्रता दी, तो इस्लाम में धर्मांतरित हो गये बहुत से हिंदू अपने पूर्वजों के धर्म में वापस लौट आये। मुस्लिम महिलाओं ने हिंदू पुरुषों से विवाह करना प्रारंभ कर दिया और हिंदू धर्म स्वीकार किया। ऐसी ही एक घटना है कि बादशाह शाहजहां कश्मीर के अभियान से वापस लौट रहा था कि उसने देखा भादुरी और भीमर में सामाजिक प्रथा के रूप में हिंदू पुरुष मुस्लिम महिलाओं से विवाह कर रहे हैं। और उनमें से कुछ महिलाओं ने अपने हिंदू पतियों के धर्म को स्वीकार कर लिया था। शाहजहां ने ऐसे विवाहों को अवैध घोषित कर दिया और उन मुस्लिम महिलाओं को अपने हिंदू पतियों से पृथक करने का आदेश दिया।[169] यह जानकर आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री अबुल कलाम आज़ाद ने अकबर की निंदा करते हुए कहा था कि उसके 'सहिष्णु शासन से भारतीय इस्लाम लगभग आत्महत्या के निकट' पहुंच गया। इस आजाद ने सूफी नेता शेख अहमद सरहिंदी की प्रशंसा की, क्योंकि इस सूफी ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और हिंदुओं के उत्पीड़न को पुनः प्रारंभ करने की अपील की थी (इस पर बाद में विमर्श किया जाएगा)।[170]

बहारिस्तान-ए-शाही में लिखा है कि कश्मीर में 'सुल्तान सिकंदर बुतशिकन के शासन में तलवार के बल पर धर्मांतरण और हिंदू मंदिरों के सामूहिक विध्वंस के माध्यम से हिंदू धर्म को कुचल डाला गया था।[171] हैदर मलिक चादुराह लिखता है, सुल्तान सिकंदर शासन 1389-1413) 'निरंतर हिंदुओं के सफाये में लगा रहा रहा और मंदिरों को नष्ट किया।'[172] जब सिकंदर का उत्तराधिकारी ज़ैनुल आब्दीन (उपाख्य शाही खान, शासन 1417-67) सत्तासीन हुए, तो उन्होंने धर्मांतरित हिंदुओं को वापस अपने धर्म में जाने की छूट दी। सिडनी ओवन ने लिखा है कि ज़ैनुल आब्दीन के शासन में 'बहुत से हिंदू (जिन्हें बलपूर्वक इस्लाम में धर्मांतरित किया गया था) हिंदू धर्म में पुनः वापस चले गये।'[173] अज्ञात लेखक की फारसी कृति बहारिस्तान-ए-शाही ने क्षोभ प्रकट करते हुए ज़ैनुल आब्दीन के शासन में हिंदुत्व के उदय और इस्लाम के अस्त होने के बारे में लिखा है कि,

---

[168] स्मिथ, पृष्ठ 303-04

[169] शर्मा, पृष्ठ 211

[170] एल्स्ट के (1993), नीगेशनिज्म इन इंडिया, वॉयस ऑफ इंडिया, न्यू देल्ही पृष्ठ 41

[171] पंडित केएन (1991) एक क्रॉनिकल ऑफ मेडिवल कश्मीर, (अनुवाद), फिर्मा केएलएम प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता, पृष्ठ 74 (बहारिस्तान-ए-शाही शीर्षक वाला स़त्रहवीं सदी का यह प्रामाणिक पुस्तक अज्ञात व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। इसका अनुवाद ए क्रॉनिकल ऑफ मेडिवल कश्मीर शीर्षक से केएन पंडित द्वारा किया गया है।

[172] चादुराह एमएम (1991) तारीख-ए-कश्मीर, ईडी. एंड ट्रांस, रज़िया बानो, न्यू देल्ही, पृष्ठ 55

[173] ओवन एस (1987) फ्रॉम महमूद गज़नी टू द डिइंटीग्रेशन ऑफ मुगल एम्पायर, कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, न्यू देल्ही, पृष्ठ 127

> '...काफिर और उनकी भ्रष्ट व अनैतिक प्रथाओं ने ऐसी लोकप्रियता पकड़ ली कि उस क्षेत्र के उलेमा, विद्वान (सूफल), सैय्यद (कुलीन) और काजी (न्यायाधीश) भी उन प्रथाओं के प्रति तनिक भी घृणा दिखाये बिना उनका पालन करने लगे।' कोई उन्हें रोकने वाला नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस्लाम धीरे-धीरे दुर्बल होता गया और इसके धार व आधारतत्वों में क्षरण हुआ; मूर्तिपूजा और भ्रष्ट व अनैतिक प्रथाएं आगे बढ़ीं।'[174]

बाद में मलिक रैना के प्रशासन में हिंदुओं का बलपूर्वक सामूहिक धर्मांतरण कराया गया। बाद के वर्षों में जब शिथिलता हुई, तो ये लोग पुनः हिंदू धर्म में वापस हुए। अमीर शमशुद्दीन मुहम्मद ईराकी के उकसावे पर कश्मीर के प्रसिद्ध सूफी संत जनरल काजी चाक ने अशुरा (मुहर्रम, 1518 ईसवी) के पवित्र त्यौहार के दिन पुनः हिंदू बनने वाले इन लोगों का सामूहिक नरसंहार करना प्रारंभ किया और उनके 700-800 प्रमुख व्यक्तियों को काट डाला (देखें अध्याय 4, श्रेणीः कश्मीर में बर्बर धर्मांतरण)। समाजवादी, इतिहासकार और भारत का प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू, जो कि भारत में इस्लामी अत्याचार को छिपाने के लिये उतावला था, ने भी चार सदी बाद बलपूर्वक धर्मांतरित किये गये कश्मीरी मुसलमानों का वापस अपने मूल हिंदू धर्म में लौटने के विषय में लिखा है। उन्होंने भारत एक खोज में लिखा कि,

> 'कश्मीर में लंबे समय से चल रही इस्लाम में धर्मांतरित करने की प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि 95 प्रतिशत जनसंख्या मुसलमान बन गयी, यद्यपि वे अपनी पुरानी हिंदू परंपराओं को निभाते रहे। 19वीं सदी के मध्य में राज्य के हिंदू राजा ने पाया कि वे लोग बड़ी संख्या में सामूहिक रूप से हिंदू धर्म की ओर लौटने को उद्यत हैं।'[175]

क्यों भारत में इतने सारे लोग अभी भी हिंदू हैं?

उपरोक्त ऐतिहासिक अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि भारत के हिंदू कभी इस्लाम से प्रभावित नहीं हुए। अपितु यहां इसके उलट हुआः मुस्लिम इतिहासकारों और विद्वानों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि बलपूर्वक धर्मांतरित किये गये लोग पुनः हिंदू धर्म में वापसी के लिये उत्सुक थे। कुछ छिटपुट अवसरों पर जब उदारवादी मुसलमान शासन में आए और नागरिकों को धर्म के चयन की स्वतंत्रता दी, तो इस्लाम का क्षरण हुआ तथा हिंदू धर्म व अन्य स्थानीय धर्म फले-फूले।

यह जानकारी इस बात का उत्तर देने के लिये पर्याप्त है कि क्यों इतनी सदियों के मुस्लिम शासन के बाद भी प्रायद्वीपीय भारत में 80 प्रतिशत जनसंख्या अ-मुस्लिम बनी रही। नीचे यह बताया जाएगा कि हिंदुओं ने दृढ़तापूर्वक कठोर सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक अवमूल्यन, अपमान व वंचना सही और भेदभावपूर्ण करों के दमनकारी बोझ को सहा, किंतु वे बर्बर इस्लामी शासन के हजार वर्ष बाद भी अपने पूर्वजों के धर्म पर अडिग रहे।

---

[174] पंडित, पृष्ठ 74

[175] नेहरू जे (1946) भारत एक खोज, द जॉन डे कंपनी, न्यूयार्क, पृष्ठ 264

एक और तथ्य जिसका यहां उल्लेख आवश्यक है, यह है कि यद्यपि मुसलमानों ने मजहबी आधार पर 11 सदी से अधिक समय तक भारत पर राज किया, किंतु कदाचित ही ऐसा हुआ कि वे समूचे देश पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर पाये हों। 712 ईसवी में सिंध में कासिम के प्रवेश के बाद प्रथम तीन सदियों में मुस्लिम शासन विशाल भारत के एक छोटे से उत्तरपश्चिम क्षेत्र तक ही सीमित रहा। इन क्षेत्रों की अधिकांश जनसंख्या अब मुसलमान है और यह तथ्य सिद्ध करता है कि मुस्लिम शासक उन्हीं क्षेत्रों में प्रभावशाली ढंग से इस्लाम थोप सके, जहां उनके पास लंबे समय तक सुदृढ़ राजनीतिक सत्ता रही।

अकबर महान (शासन 1556-1605) के कमांडरशिप में ही भारत का अधिकांश भाग मुस्लिम शासन के प्रवाह में आया। किंतु अकबर इस्लाम का बड़ा पक्षत्यागी था और वह इस्लाम के प्रसार के उद्देश्य में सहायता नहीं कर सका। उसके पांच दशक के शासन में मुस्लिम जनसंख्या बढ़ने की अपेक्षा संभवत: घट गयी। अकबर के बाद उसके बेटे जहांगीर और पौत्र शाहजहां के शासन में अगले 50 वर्ष इस्लामीकरण की नीति को राज्य नीति के रूप में सुदृढ़ता नहीं मिल सकी। जब अकबर के पड़पोते उन्मादी औरंगजेब (शासन 1658-1707) के हाथ सत्ता आयी, तो इस्लामीकरण और बलात् धर्मांतरण राज्य का प्रमुख केंद्रबिंदु बन गया। किंतु उसके शासन में राज्य के सभी कोनों में विद्रोह हो रहे थे। बर्निअर के अनुसार, औरंगजेब के बर्बर शासन में शक्तिशाली और विद्रोही राजपूत व मराठा राजकुमार उसके महल के दरबार में सदा अपने घोड़े पर सवार होकर, शस्त्रों से सुसज्जित होकर और अपने सैनिकों के साथ प्रवेश किया करते थे।[176] जब औरंगजेब ने उमर के नियम और शरिया विधियों के अनुरूप अ-मुस्लिमों को शस्त्र रखने से प्रतिबंधित कर दिया, तो भी विद्रोही व खतरनाक राजपूतों को इस प्रतिबंध से छूट देनी पड़ी। काफिर विरोधियों पर औरंगजेब की भयानक नीतियों और अत्याचार के बाद भी शिवाजी और राणा राज सिंह जैसे विद्रोहियों ने जजिया का विरोध करते हुए पत्र लिखा। जब उसके अधिकारी (अमीन) जजिया उगाहने गये, तो उन अमीनों में से एक को हिंदुओं ने मार डाला और दूसरे को उसकी दाढ़ी और बाल पकड़कर घसीटते हुए लाये और खालीहाथ वापस भेजा।[177]

यहां तक कि अकबर और जहांगीर के समय जब मुगल शासन सर्वाधिक सुदृढ़ माना जाता था, तब भी पूरे देश में उनका प्रभाव अपेक्षाकृत दुर्बल ही रहा। जहांगीर ने अपने संस्मरण तारीख-ए-सलीम शाही में लिखा है कि *''अशांति और असंतुष्टों की संख्या कभी कम होती नहीं दिखी; क्योंकि मेरे पिता के शासन और उसके बाद मेरे अपने शासन में जो उदाहरण स्थापित किये गये थे, ...साम्राज्य में कदाचित ही ऐसा कोई राज्य रहा होगा, जिसमें किसी न किसी ओर से, कोई न कोई अभिशप्त ऊधमी मनुष्य विद्रोह का झंडा लेकर खड़ा न हो गया हो; इससे हिंदुस्तान में कभी भी सम्पूर्ण शांति की अवधि नहीं रही।"* हिंदुओं के प्रतिकार का उल्लेख करते हुए डिर्क एच कोल्फ ने लिखा है, *'करोड़ों की संख्या में सशस्त्र पुरुष, किसान व अन्य लोग उनके (शासन) के विरोधी थे, न कि प्रजा।'* अकबर के दरबार के बदायूंनी के अनुसार, हिंदू प्रायः जंगलों में अपने छिपने के स्थानों से मुस्लिम फौज पर आक्रमण कर देते थे। जिन्होंने जंगलों में आश्रय लिया था, वे वहां जो भी जंगली फल, कंद और कच्चा अन्न मिल जाता था, वही

---

[176] बर्नियर एफ (1934) ट्रैवेल्स इन द मुगल एम्पायर (1656-1668), संशोधित स्मिथ वीए, ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ 40, 210

[177] लाल (1999), पृष्ठ 118-119

खाकर जीवित रहते थे।[178] इन उदाहरणों से अनुमान लगाया जा सकता है कि क्यों इतनी सदियों के मुस्लिम शासन के बाद भी प्रायद्वीपीय भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी अ-मुस्लिम है।

भारत में धर्मांतरण कैसे हुए?

ऊपर दिये गये प्रमाणों के आलोक में अब यह प्रश्न शेष नहीं बचता है कि क्यों इतनी सदियों के मुस्लिम शासन के बाद भी 80 प्रतिशत भारतीय अभी भी अ-मुस्लिम हैं। अपितु यह प्रश्न अवश्य उठता है कि इस्लाम के विरुद्ध प्रचंड प्रतिरोध के बाद भी वो 20 प्रतिशत भारतीय क्यों और कैसे मुसलमान बने। मुसलमानों की जनसंख्या कैसे बढ़ गयी, जबकि हिंदू इस्लाम को इतना घृणित मानते थे, जैसा कि अनेक मुस्लिम इतिहासकारों व शासकों ने भी लिखा है?

तलवार के बल पर धर्मांतरण

तलवार के बल पर धर्मांतरण रसूल मुहम्मद द्वारा तब प्रारंभ किया गया, जब उसने कुरआन 9:5 में दिये गये अल्लाह के आदेश के अनुपालन में बहुदेववादियों को विकल्प दिया कि या तो वे मृत्यु का वरण करें अथवा इस्लाम स्वीकार करें। इसलिये हिंदुओं को भी मृत्यु या इस्लाम में से एक चुनने का विकल्प दिया जाना था।

जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध विजय प्रारंभ किया, तो जिन स्थानों पर उसका प्रतिकार हुआ, वहां उसने मृत्युतुल्य पीड़ा देकर लोगों का इस्लाम में धर्मांतरण की नीति अपनायी। उसने उन लोगों को स्थान दिया, जिन्होंने उसकी हमलावर सेना का प्रतिकार किये बिना आत्मसमर्पण कर दिया। उसने ऐसे लोगों पर धर्मांतरण का दबाव नहीं डाला। जब उसकी नरम नीतियों की सूचना बग़दाद के हज्जाज में उसके संरक्षक के पास पहुंची, तो उसने इस नरमी को अस्वीकार करते हुए कासिम को लिखा:

> '...मुझे ज्ञात है कि जिन पद्धतियों और नियमों का तुम पालन करते हो, वो (इस्लामी) विधि के अनुरूप हैं। बस इसके अतिरिक्त कि तुम छोटे और बड़े सबको समान रूप से संरक्षण देते हो और शत्रु और मित्र में कोई भेद नहीं करते हो। अल्लाह कहता है, 'काफिरों को स्थान मत दो, बल्कि उनका गला रेत दो।' तो यह जान लो कि यह महान अल्लाह का आदेश है। तुमको संरक्षण देने में इतना तत्पर नहीं होना चाहिए... इसके बाद किसी भी शत्रु को संरक्षण मत दो, सिवाय उनके जो तुम्हारे में सम्मिलित हो गये हों (इस्लाम स्वीकार कर लिया हो)। यह एक उत्तम संकल्प है, और ऐसा बड़प्पन नहीं भी दिखाओगे, तो तुम पर कलंक नहीं लगेगा।'[179]

हज्जाज से यह आदेश पाने के बाद कासिम ने अपने अगले ब्राहम्णाबाद की जीत में इसका अक्षरशः पालन किया और जिसने इस्लाम स्वीकार नहीं किया, उसे जीवित नहीं छोड़ा। अल-बिलाज़ुरी के अनुसार, 'आठ हजार और कुछ कहते हैं कि छब्बीस

---

[178] लाल (1994), पृष्ठ 64

[179] इलियट एंड डाउसन, अंक प्रथम, पृष्ठ 173-74

हजार पुरुषों को तलवार से काट डाला गया।'[180] चूंकि इतनी बड़ी संख्या में हिंदुओं ने इस्लाम स्वीकार करने से मना कर दिया था कि उन सारे लोगों को मार डालना कठिन था। इसकी अपेक्षा उन पर दमनकारी कर लगाकर जीने देना अधिक लुभावना विकल्प था। इस संबंध में कासिम ने हज्जाज को एक पत्र लिखा। उत्तर में हज्जाज ने लिखाः

> 'मेरे प्रिय भतीजे मुहम्मद कासिम का पत्र मिला और स्थिति समझ में आ गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणावाद के मुख्य निवासियों ने बुद्ध के मंदिर के जीर्णोद्धार और अपने धर्म के पालन की अनुमति देने की गुहार की है। चूंकि उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है और खलीफा को कर चुकाने को सहमत हो गये हैं, तो उनसे कुछ और की आवश्यकता नहीं है। वे हमारे संरक्षण में (ज़िम्मी के रूप में) लिये गये हैं, और हम किसी भी प्रकार से उनके प्राण या संपत्ति पर हाथ नहीं डाल सकते हैं।'[181]

इस प्रकार तब हिंदू ज़िम्मी प्रजा के रूप में स्वीकार किये गये और वे तलवार के बल पर धर्मांतरित होने से कुछ समय के लिये बच गये। उमय्यद शासक अ-मुस्लिम जनता को मुसलमान बनाने की अपेक्षा उनसे ऊंचा कर लेकर अपनी निधि भरने में अधिक रुचि रखते थे। उदाहरण के लिये अल-हज्जाज ने उन लोगों के साथ कठोर व्यवहार किया, जो इस्लाम में धर्मांतरित हो गये थे।[182] जब अ-मुस्लिमों का एक समूह उसके पास अपने इस्लाम स्वीकार करने की सूचना देने आया, तो अल-हज्जाज ने उनकी बात सुनने से मना कर दिया और अपनी फौज को उन लोगों को उनके गांव पहुंचाने का निर्देश दिया।[183] प्रथम उमय्यद खलीफा मुआविआ पूरे मन से चाहता था कि इजिप्ट के कॉप्ट्स इस्लाम में धर्मांतरित न हों, *'क्योंकि उसका कहना था कि यदि वे सभी सच्चे मजहब (इस्लाम) में धर्मांतरित हो गये, तो इससे उसे जजिया न मिलने से आय की बड़ी हानि होगी।'[184]*

उमय्यद खलीफा द्वारा हिंदुओं को प्रदान की गयी नरमी निश्चित रूप से कुरआन और सुन्नत के मजहबी इस्लामी कानूनों का उल्लंघन था। यह धृष्ट छूट बाद में हनफी विधियों में भी जोड़ी गयी; इस्लामी कानून की अन्य सभी शाखाएं बहुदेववादियों की मृत्यु अथवा धर्मांतरण की मांग करती हैं। इसलिये, जहां तक बलात् धर्मांतरण का संबंध है, तो भारत के काफिरों ने उत्पीड़न का नरम रूप सहा था।

750 ईसवी में उमय्यद राजवंश के पतन के बाद आये और अधिक रुढ़िवादी शासकों ने प्रायः मृत्युतुल्य पीड़ा देकर हिंदुओं का धर्मांतरण कराया। सफारीद वंश के शासक याकूब लैस ने 870 ने काबुल पर अधिकार कर लिया और काबुल के राजकुमार को

---

[180] इबिद, अंक प्रथम, पृष्ठ 122

[181] शर्मा पृष्ठ 109

[182] बुलीट आरडब्ल्यू (1979), कन्वर्जन टू इस्लाम एंड द इमरजेंस ऑफ ए मुस्लिम सोसाइटी इन ईरान, एन. लेवत्जिऑन ईडी., कन्वर्जन टू इस्लाम, होम्स एंड मीअर पब्लिशर्स इंक, न्यूयार्क, पृष्ठ 33

[183] पाइप्स (1983) पृष्ठ 52

[184] तैघर, पृष्ठ 19

बंदी बना लिया। उसने अज-रुखज के राजा की हत्या कर दी, मंदिरों को लूटा और नष्ट किया तथा वहां के निवासियों को इस्लाम स्वीकार करने को बाध्य किया गया। वह लूट के माल के साथ अपनी राजधानी लौटा, जिसमें तीन राजाओं के सिर और भारतीय देवी-देवताओं की अनेक प्रतिमाएं भी थीं।[185]

सुल्तान महमूद के सचिव अबू नस्र अल-उत्बी ने लिखा है, सुल्तान महमूद की कन्नौज की जीत में 'वहां के निवासियों ने या तो इस्लाम स्वीकार कर लिया अथवा इस्लामी तलवारों का भोजन बनने के लिये शस्त्र उठा लिये।'[186] अत-उत्बी ने बारन के आहरण के संबंध में लिखा है, 'चूंकि अल्लाह की तलवार म्यान से निकल गयी थी, और दंड का कोड़ा उठ गया था... दस हजार लोगों ने अपनी मूर्तियों को त्यागने और धर्मांतरण की घोषणा कर दी।'[187]

नगर को जीतने के बाद सुल्तान महमूद, जो कि स्वयं एक शिक्षित सुसंस्कृत व्यक्ति व इस्लामी न्यायशास्त्र का विद्वान था, सामान्यतः युद्धरत पुरुषों को काट डालता, उनकी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक बंदी बना लेता तथा बची हुई जनता को इस्लाम स्वीकार करने को विवश करता। वह किसी ऐसे धर्मांतरित राजकुमार को सिंहासन पर बिठा देता था, जो इस्लामी कानूनों के अनुसार राज्य शासन चलाये और इस्लाम के प्रसार पर ध्यान दे तथा मूर्तिपूजा का दमन करे। ऐसा ही एक धर्मांतरित राजकुमार नवासा शाह था। अल-उत्बी ने लिखा है, जब सुल्तान महमूद भारत से निवृत्त हुआ, तो 'नवासा शाह पर शैतान सवार हो चुका था, क्योंकि वह पुनः बहुदेव पूजा के दलदल में जाकर धर्मत्याग की ओर बढ़ने लगा... तो सुल्तान वायु से तेज गति से उस ओर बढ़ा और अपने शत्रुओं के रक्त से अपनी तलवार की प्यास बुझायी।'[188] इसका अर्थ यह है कि सुल्तान महमूद ने भारत में अपने अभियान में केवल तलवार के बल पर धर्मांतरण ही नहीं कराया, अपितु उसने यह भी सुनिश्चित किया कि उसके गज़नी जाने के बाद यहां के धर्मांतरित मुसलमान अपने पूर्वजों के धर्म में वापस न जाने पायें। हम अध्याय 6 (श्रेणीः 1947 के दंगे और नरसंहारः कौन उत्तरदायी?) में देखेंगे कि 1947 में भारत विभाजन के क्रम में पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में लाखों की संख्या में हिंदुओं को मृत्युतुल्य कष्ट देकर मुसलमान बनाया गया था।

दास (गुलाम) बनाकर धर्मांतरण

भारत में प्रथम सफल अतिक्रमण में मुहम्मद बिन कासिम ने देबल, ब्राह्मणाबाद और मुल्तान में बड़ी संख्या में हिंदुओं की हत्याएं कीं। ऐसा प्रतीत होता है कि शस्त्र धारण करने की आयु वाले मुसलमान फौज की पहुंच में जो भी वयस्क पुरुष आये, उन सबको निर्दयतापूर्वक काट डाला गया। निस्संदेह, उन वयस्क पुरुषों में से बहुत से लोग तलवार से बचने के लिये अपनी स्त्रियों और

---

[185] इलियट एंड डाउसन, अंक द्वितीय, पृष्ठ 419

[186] इबिद, पृष्ठ 26

[187] इबिद, पृष्ठ 42-43

[188] इबिद, पृष्ठ 33

बच्चों को छोड़कर सभी दिशाओं में भागे। उन स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्वक दास बना लिया गया। चचनामा में लिखा है कि रावर पर कासिम के हमले में 60,000 दास बनाये गये थे। चचनामा कहती है, सिंध की जीत के अंतिम चरण में एक लाख स्त्रियों और बच्चों गुलाम बनाया गया।[189]

इन हमलावर अभियानों में मुसलमान हमलावरों द्वारा दास बनायी गयी स्त्रियों और बच्चों की ठीक-ठीक संख्या नहीं अंकित की गयी है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि सेहवान, धलीला, ब्राह्मणाबाद और मुल्तान में कासिम के प्रत्येक बड़े हमलों में इतनी ही संख्या में बंदी बनाये गये थे। भारत की सिंध सीमा पर तीन वर्षों (712-15) के संक्षिप्त अत्याचारी काल में लाखों लोग दास बनाये गये। वह बंदी बनायी गयी स्त्रियों व बच्चों एवं लूट के अन्य माल में से पांचवां भाग कुरआन [8:41], सुन्नत और शरिया के अनुसार राज्य के भाग के रूप में दमाकस में स्थित खलीफा के पास भेज देता था और शेष अपने फौजियों में बांट देता था। जब बंदी बनाये बच्चे मुसलमान के रूप में बड़े हुए, तो उन पुरुषों की एक टुकड़ी उन्हीं हिंदुओं के विरुद्ध नये पवित्र जंग लड़ने के लिये बनायी गयी, जो कुछ वर्ष पूर्व उन पुरुषों के अपने संबंधी व स्वधर्मी ही थे। दूसरे शब्दों में, एक दशक की छोटी सी अवधि में वो बंदी बनाये बच्चे मुसलमान राज्य के लिये इस्लाम के क्षेत्र के प्रसार, परास्त काफिरों के धर्मांतरण, उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बनाने और उनकी संपत्ति लूटने के लिये नये जिहाद अभियान प्रारंभ करने के साधन बन गये। यहां तक कि भारत के विभाजन (1946-47) के समय भी लगभग एक लाख हिंदू व सिख महिलाओं को बलपूर्वक दास बनाकर ले जाया गया और मुसलमानों के साथ उनकी शादी कर दी गयी (अध्याय 6)।

दास बनायी स्त्रियां बच्चे जनने वाले साधन के रूप में

बंदी बनायी गयी स्त्रियों को कुरआनी स्वीकृति और पैगम्बरी प्रथाओं अर्थात सुन्नत के अनुपालन में उनके मुसलमान मालिकों द्वारा लौंडी (सेक्स-स्लेव) के रूप में उपयोग किया जाता था (दासप्रथा पर अध्याय 7 में देखें)। इसलिये उन स्त्रियों ने न केवल मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने में योगदान दिया, अपितु वो प्रजनन के माध्यम से मुसलमानों की जनंसख्या बढ़ाने वाली मूल्यवान साधन भी बन गयीं। जब वो स्त्रियां, विशेष रूप से प्रजनन की आयु वाली स्त्रियां, उठा ले जायी गयीं, तो हिंदू पुरुष, जो भाग गये थे, अपनी स्त्रियों और बच्चों को ढूंढ़ने आये, तो पाया कि वे नहीं हैं। परिणामस्वरूप प्रजनन के लिये उनके पास पर्याप्त स्त्रियां नहीं रहीं। इसका अर्थ यह हुआ जब भी मुसलमानों ने सफल हमला किया, तो हिंदू समुदाय में प्रजनन तेजी से घटा। दूसरी ओर मुहम्मद बिन कासिम के साथ आये कुछ हजार आदमियों के पास अधिकतम क्षमता तक बच्चा जनने के लिये पर्याप्त यौन-संगी थे। यहां तक कि बादशाह अकबर ने अपने हरम में 5000 सुंदर स्त्रियों को रखा था। मोरक्को के सुल्तान मौला इस्माइल (शासन 1672-1727) ने अपनी 2000-4000 बीवियों और यौन-दासियों से 1200 बच्चे उत्पन्न किये थे।[190] परास्त हिंदुओं को व्यापक

---

[189] लाल (1994), पृष्ठ 18-19

[190] मिल्टन जी (2004) व्हाइट गोल्ड, हॉडर एंड स्टफ्टन, लंदन, पृष्ठ 120

स्तर पर दास बनाने और विशेषकर महिलाएं- जो मुस्लिम बच्चों को जन्म देने में संलिप्त की गयीं- को बलपूर्वक दास बनाने की प्रथा ने मुस्लिम जनसंख्या की तीव्र वृद्धि में सहायक बनीं।

इसलिये जहां कहीं भी मुसलमानों ने सफल अतिक्रमण किया, वहां उन्होंने बड़ी संख्या में पुरुषों की हत्या करके और स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाकर हिंदुओं की जनसंख्या को कम किया। इससे अप्रत्यक्ष रूप से हिंदुओं की संख्या इस कारण भी घटी, क्योंकि बचे हुए हिंदू पुरुषों को गर्भधारण करने योग्य महिला साथी से वंचित करके प्रजनन से हीन कर दिया गया। चूंकि वो स्त्रियां मुसलमान बच्चों को जन्म देने की साधन बन गयीं, तो इसका अंतिम परिणाम हिंदुओं की जनसंख्या में कमी और मुसलमानों की संख्या में वृद्धि के रूप में सामने आयी। बढ़ रही मुस्लिम जनसंख्या का भरण-पोषण और देखभाल परास्त हिंदुओं पर दमनकारी कर लगाकर शोषण के माध्यम से किया जाना था। यह कुछ वैसी ही परिपाटी थी, जैसा कि रसूल मुहम्मद ने बनू क़ुरैज़ा और खैबर के यहूदियों पर लागू किया था।

भारत में कासिम की तीन वर्ष की लूटपाट, हत्या और शोषण से न केवल कुछ सौ हजार हिंदू दास बनाकर तुरंत इस्लाम में लाये गये, किंतु दास बनायी गयी सि्त्रयों ने भी प्रजनन के वाहक के रूप में काम किया, जिससे मुसलमानों की जनसंख्या तेजी से बढ़ी। रसूल द्वारा प्रारंभ की यह प्रथा मुसलमान हमलावरों और शासकों ने प्रत्येक स्थान पर लागू की; भारत में बादशाह अकबर ने इस परिपाटी पर प्रतिबंध लगाया, यद्यपि प्रतिबंध अपेक्षाकृत असफल रहा। भारत के अभियानों में सुल्तान महमूद ने बड़ी संख्या में पुरुषों की हत्याएं कीं और बड़ी संख्या में मुख्यतः स्त्रियों और बच्चों को दास बनाकर ले गया। अत-उत्बी लिखता है कि सुल्तान महमूद ने अपने 1001-02 के अपने अभियान में 500,000 लोगों को बंदी बनाकर ले गया था। उत्बी ने लिखा, निंदुना (पंजाब) के अपने हमले में उसने इतने अधिक लोगों को बंदी बनाकर दास बनाया कि 'वे अत्यंत सस्ते हो गये...।' थानेसर (हरियाणा) में महमूद ने 200,000 लोगों को दास बनाया और 1019 में 53,000 दासों के साथ वापस गया।[191]

मुस्लिम इतिहासकारों के अभिलेखों के आधार पर प्रोफेसर केएस लाल ने अनुमान लगाया है कि उत्तरी भारत पर सुल्तान महमूद के कई बार के हमलों में हिंदू जनसंख्या लगभग 20 लाख घट गयी थी।[192] हमलों के क्रम में बड़ी संख्या में हिंदुओं की हत्याएं की गयी थीं; जो बचे थे उन्हें तलवार की नोंक पर दास बनाकर ले जाया गया और वे भय के मारे तुरंत मुसलमान बन गये।

बाद में खुरासान के सुल्तान मुहम्मद गोरी (मुइजुद्दीन, मृत्यु. 1206) और उसके जनरल कुत्बुद्दीन ऐबक भारत में मुस्लिम शासन को जमाने के लिये एकसाथ आये, जिसका परिणाम 1206 में भारत में प्रत्यक्ष मुस्लिम शासन दिल्ली सल्तनत की स्थापना के रूप में सामने आया। मुहम्मद फरिश्ता के प्रमाण के अनुसार मुइजुद्दीन द्वारा तीन से चार हजार खोखरों (हिंदू) को इस्लाम में

---

[191] लाल (1994), पृष्ठ 20

[192] लाल केएस (1973), ग्रोथ ऑफ मुस्लिम पॉपुलेशन इन मेडिवल इंडिया, आदित्य प्रकाशन, न्यू देल्ही पृष्ठ 211-17

धर्मांतरित किया गया। फख्र-ए-मुजाबिर में मुइजुद्दीन और ऐबक के अत्याचार के बारे में इस प्रकार लिखा हैः 'यहां तक कि निर्धन (मुसलमान) परिवार भी कई-कई दासों के मालिक बन गये।'[193]

अकबर का शासन आने तक मुस्लिम शासित भारत में पकड़कर बलपूर्वक दास बनाना सामान्य नीति बना रहा। अकबर (शासन 15556-1605) ने जंग के मैदान में सामूहिक रूप से दास बनाने पर प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रतिबंध के बाद भी, सदियों पुरानी यह प्रथा उसके राज्य में भी पूरे प्रभाव से चलती रही। उसके कुंठित परामर्शक व मुक्त-चिंतक अबुल फज़ल ने अकबरनामा में कहा है कि 'बहुत से बुरे स्वभाव वाले और पापी अधिकारी उन्हें लूटने के लिये गांवों और महलों की ओर चले जाते थे।' उन लूटपाटों में सामान्यतः महिलाओं व बच्चों को पकड़कर उठा लाया जाता था। मोरलैंड इस बात की पुष्टि करते हैं कि अकबर के शासन में 'बिना किसी औचित्य के किसी गांव या गांवों के समूहों पर हमला करना और वहां के लोगों को दास बनाकर पकड़ लाना फैशन हो गया था।'[194] इसीलिये कोई आश्चर्य नहीं लगता कि अकबर के एक जनरल अब्दुल्ला खान उज्बेग ने डींगें हांकते हुए घोषणा की थीः

> 'मैंने पांच लाख (500,000) पुरुषों और स्त्रियों को बंदी बनाया और उन्हें बेच दिया। वे सब के सब मुसलमान बना दिये गये। उनकी संततियों से कयामत के दिन तक करोड़ों (एक करोड़=दस मिलियन) होंगे।'[195]

अकबर की मृत्यु के पश्चात जहांगीर और शाहजहां के शासन के समय भी धीमी गति से इस्लामीकरण चलता रहा। जिस बादशाह जहांगीर को उदार व दयालु-हृदय कहा जाता है, उसके बारे में शाश फतह-ए कांगड़ा में लिखा है कि 'उसने मुसलमान मजहब को लागू करने के लिये पूरा बल व प्रयास झोंक दिया था...' और उसके 'सारे प्रयास इस ओर होते थे कि मूर्तिपूजा की आग समाप्त हो जाए... ।'[196] इंतिखाब-ए जहांगीर शाही के अनुसार, जब गुजरात में जैनों ने भव्य मंदिर बनवायें, जहां भक्त आते थे, तो 'बादशाह जहांगीर ने जैनों को देश निकाला देने और उनके मंदिरों को तोड़ने का आदेश दिया। उनकी मूर्तियों को मस्जिद की सीढ़ियों में चुन दिया गया, जिससे कि नमाज पढ़ने के लिये आने वाले मुसलमान उनको कुचलते हुए जाएं।'[197] बादशाह शाहजहां अपने पिता जहांगीर से भी अधिक रुढ़िवादी था।

वह औरंगजेब (शासन 1658-1707) था, जिसने अपनी राज्य नीति में डालकर दास बनाने और बलात् धर्म परिवर्तन कराने का काम पुनः पूरे दल और बल के साथ प्रारंभ किया। 1757 में जब ब्रिटिशों ने बंगाल पर अधिकार कर लिया, तो भी

---

193 लाल (1994), पृष्ठ 43-44

194 मोरलैंड (1994), पृष्ठ 92

195 लाल (1994), पृष्ठ 73

196 इलियट एंड डाउसन, अंक 6, पृष्ठ 528-29

197 इबिद, पृष्ठ 451

मुसलमान शासकों द्वारा दास-बनाने का काम पूरे भारत में पूरे प्रभाव में चल रहा था। सियार-उल-मुताखिरिन के अनुसार, 1761 में पानीपत के युद्ध में अहमद शाह अब्दाली की विजय के पश्चात, भोजन-पानी के अभाव में दुर्भिक्ष स्थिति में आ गये बंदियों को लंबी पंक्ति में खड़ा किया गया और उनके सिर धड़ से पृथक कर दिये गये तथा 'उनकी स्त्रियों व बच्चों में से जो बच गये थे, उन्हें बलपूर्वक दास बनाकर ले जाया गया- दास बनाये गये इन लोगों की संख्या बाइस हजार थी और इनमें से बहुत से उस क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियों के परिवारों के थे।'[198] दो दशक पूर्व, ईरान के नादिर शाह ने भारत पर (1738) हमला किया था। उसने भयानक अत्याचार व लूटपाट की थी तथा लगभग 200,000 लोगों को काट डाला गया था। इस हमले के बाद नादिर शाह हजारों दास और बहुत बड़े परिमाण में धन अपने साथ ले गया था।

यह समझना कठिन नहीं कि किस प्रकार दास-बनाने की नीति व अपराध ने भारत में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने में सहायता की। संभवतः किसी अन्य स्रोत से मुसलमान जनसंख्या इतनी नहीं बढ़ी थी। जनरल अब्दुल्ला खान उज़बेग ने अपने उस डींगभरे कथन में इसका वर्णन ठीक-ठीक किया है, जो ऊपर दिया गया है। मुसलमान जनसंख्या वृद्धि में बलपूर्वक दास बनायी गयी स्त्रियों के योगदान को संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया है: 'जब बड़ी संख्या में स्त्रियां बलपूर्वक दासी बनायी थीं तो रखैल बनाकर रखी गयी ये स्त्रियां मुसलमान जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ा सकती थीं।'[199] इससे सहमति प्रकट करते हुए मुहम्मद अशरफ का विचार है कि 'भारत में मुस्लिम जनसंख्या वृद्धि में बलपूर्वक दास बनायी गयी स्त्रियों का योगदान है।'[200] यद्यपि यह कहना गलत नहीं होगा कि इन दासों ने न केवल मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने में योगदान दिया; अपितु वो दास ही थे, जिन्होंने आरंभिक वर्षों और दशकों में मुसलमान जनसंख्या के समूह का गठन किया। एक ओर दास बनाये जाने का काम चलता रहा, तो दूसरी ओर उन दासों से उत्पन्न संतानों ने बाद की अवधि में मुसलमान जनसंख्या बढ़ाने का काम किया।

आधुनिक इस्लामी विद्वान शेख अल-क़रादवी, डॉ. ज़ाकिर नाइक और डॉ. फज़लुर रहमान आदि के दावों के उलट, धर्मांतरण और मुसलमान जनसंख्या में वृद्धि स्पष्टतः विजयों के समय से ही प्रारंभ हो गयी थी: यद्यपि सुल्तान महमूद और याकूब लैस जैसे हमलावरों द्वारा परास्त लोगों के बलपूर्वक धर्मांतरण एवं तलवार की नोंक पर उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बनाने के माध्यम से मुसलमान जनसंख्या बढ़ी, क्योंकि दास बनाये गये लोग बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये। मुहम्मद रसूल के समय से ही स्त्रियां और विशेष रूप से युवा स्त्रियां बलपूर्वक दास बनाये जाने का बड़ा लक्ष्य थीं। बाद में दास बनायी गयी वो स्त्रियां मुसलमानों के लिये बच्चे उत्पन्न करने और मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने का बड़ा उपकरण बन गयीं।

अपमान और आर्थिक बोझ का धर्मांतरण में योगदान

---

[198] लाल (1994), पृष्ठ 155

[199] अर्नाल्ड टीडब्ल्यू (1994), द प्रीचिंग ऑफ इस्लाम, वेस्टमिंस्टर, पृष्ठ 365

[200] अशरफ केएम (1935), लाइफ एंड कंडीशन ऑफ द पीपुल ऑफ हिंदुस्तान, कलकत्ता, पृष्ठ 151

इस्लाम ने एकेश्वरवादी यहूदियों और ईसाइयों को ज़िम्मी प्रजा के रूप में मान्यता दी। यद्यपि अल्लाह ने बहुदेववादियों अर्थात हिंदू, बौद्ध और जीववादी आदि को मृत्यु या धर्मांतरण के मध्य एक विकल्प दिया। भारत में सिंध की जीत पर उमय्यद जिहादियों का सामना बड़ी संख्या में ऐसे बहुदेववादियों से हुआ, जो अपने धर्म पर अडिग थे और उसने ऐसे बहुदेववादियों को तलवार से काट डाला। चूंकि उमय्यद हमलावरों की रुचि मुहम्मद के मजहब को लागू करने में उतनी नहीं थी, जितनी कि करों से अपना कोषागार भरने की, तो उन्होंने बड़ी संख्या में भारत के बहुदेववादियों को अपने राजस्व का स्रोत बनाकर छोड़ दिया। इसलिये उमय्यद सुल्तानों ने कुरआन [9:5] का उल्लंघन करते हुए इन बहुदेववादियों को ज़िम्मी प्रजा की श्रेणी में ला दिया। सामान्यतः ज़िम्मियों का सामाजिक रूप से अति अवमून्यन व अपमान किया जाता था और आर्थिक रूप से उनका शोषण किया जाता था, क्योंकि यह उन पर इस्लाम स्वीकार करने का दबाव डालने का बड़ा उत्पीड़क साधन बनता था। इस्लाम के द्वितीय खलीफा (कुछ लेखक इसे खलीफा उमर द्वितीय, शासन 717-20 ईसवी कहते हैं) उमर द्वारा विनियमित उमर की संधि में इस्लामी शासन में ज़िम्मी प्रजा के साथ किये जाने वाले व्यवहार की रूपरेखा दी गयी है।

उमर की संधिः यह नियम इस्लामी विधियों की शाफी शाखा के संस्थापक इमाम शाफी की किताब उल-उम्म (पुस्तक की जननी) में उद्धृत हैं। जब अरब सीरिया पर अतिक्रमण करने में सफल हो गये, तो खलीफा के निर्देशन में खलीफा उमर और सीरिया के ईसाई प्रमुख के बीच हुई इस संधि पर हस्ताक्षर हुए। उस संधि में मुस्लिम शासन में ज़िम्मियों का पूर्ण व अपमानजनक दमन करने को कहा गया है और कहा गया है कि ज़िम्मियों को अपनी नीच स्थिति के प्रतीक के रूप में भेदभावपूर्ण कर चुकाने होंगे तथा बहुत से अन्य अवमूल्यनकारी व अमानवीय सामाजिक-राजनीतिक विकलांगता को सहना होगा। खलीफा उमर ने सीरिया के संरक्षक को पत्र भेजकर इस्लाम के अधीन आने की शर्तों को लागू कराया। उन शर्तों के मुख्य बिंदु निम्नलिखित थे:[201]

'मैं और सभी मुसलमान तुम्हें और तुम्हारे ईसाई सहचरों को तब तक सुरक्षा देने का वचन देते हैं, जब तक तुम इन शर्तों को मानते रहोगे। ये शर्तें निम्न हैं:

1. तुम मुस्लिम विधि के अधीन होगे, न कि किसी अन्य विधि के अधीन, और हम जो कुछ भी मांग करेंगे, तुम उसे मानने से अस्वीकार नहीं करोगे।
2. यदि तुममें से कोई भी रसूल, उनके मजहब और कुअरान में बारे में कुछ ऐसा कहता है, जो ठीक नहीं है, तो वह व्यक्ति ईमान वालों और सभी मुसलमानों के कमांडर अल्लाह की सुरक्षा से वंचित कर दिया जाएगा। वह शर्त, जिस पर सुरक्षा दी गयी, निरस्त कर दी जाएगी और तुम्हारा जीवन विधि (कानून) की सीमा से परे हो जाएगा।
3. यदि तुममें से कोई भी किसी दूसरी स्त्री के साथ संबंध रखता है अथवा किसी मुसलमान औरत से शादी करता है, अथवा राजमार्गों पर किसी मुसलमान को लूटता है, अथवा किसी मुसलमान को उसके मजहब से विमुख करता है, अथवा मुसलमान के शत्रु की सहायता करता है अथवा गुप्तचर को शरण देता है, तो ऐसा माना जाएगा कि उस व्यक्ति ने संधि तोड़ी है, और उसका जीवन व संपत्ति विधि विरुद्ध हो जाएगा।

---

[201] ट्रिटन, पृष्ठ 12-24

4. वह व्यक्ति जो मुसलमानों की संपत्ति व सम्मान के प्रति तनिक भी हानि करेगा, दंडित किया जाएगा।
5. हम मुसलमानों के साथ तुम्हारे व्यवहार पर दृष्टि रखेंगे, और यदि तुमने किसी मुसलमान के लिये कुछ भी अविधिक (गैरकानूनी) किया, तो हम उसे उलट देंगे और तुम्हें दंड देंगे।
6. यदि तुम या अन्य अ-मुस्लिम न्याय मांगोगे, तो हम मुस्लिम विधि के अनुसार देंगे।
7. *तुम किसी भी मुस्लिम नगर में क्रॉस प्रदर्शित नहीं करोगे, न ही अपनी मूर्तिपूजा का प्रदर्शन करोगे, न ही गिरिजाघर अथवा प्रार्थनास्थल बनाओगे, न ही नकूस (गिरिजाघर का घंटा) बजाओगे, न ही किसी मुसलमान के सामने ईसामसीह, मैरी के बेटे (अर्थात ईसामसीह ईश्वर का बेटा है) के बारे में मूर्तिपूजक भाषा का प्रयोग करोगे।*
8. तुम अपने सभी वस्त्रों के ऊपर (पहचान में आने के लिये) जुन्नार (वस्त्र पेटी) लगाओगे, जो छिपा हुआ नहीं होना चाहिए।
9. तुम अपने घोड़े पर चढ़ने के लिये काठियों व लगामों, अपने कलानसुवास (टोपी) पर चिह्न लगाकर मुसलमानों द्वारा उपयोग की जा रही इन वस्तुओं से भिन्न दिखने वाला बनाकर प्रयोग करोगे।
10. जब मुसलमान उपस्थित हो, तो तुम मार्ग में उसके आगे नहीं रहोगे, और न ही सभाओं में मुख्य सीट पर बैठोगे।
11. स्वस्थ चित्त का प्रत्येक स्वतंत्र वयस्क पुरुष नये वर्ष पर पूरे वजन का एक दीनार का पोल-कर (जजिया) भुगतान करेगा। जब तक वह इस जजिया का भुगतान नहीं करेगा, नगर नहीं छोड़ेगा।
12. जब तक जजिया दिया जा रहा है, निर्धन व्यक्ति अपने जजिया का स्वयं उत्तरदायी है; निर्धनता से जजिया देने की बाध्यता को निरस्त नहीं होगी, न ही तुम्हें दी जा रही सुरक्षा समाप्त होगी। यदि तुम्हारे पास जो भी है, तो हम उसे लेंगे। मुस्लिम क्षेत्र में व्यापार के लिये रहने वाले या यात्रा करने वालों को छोड़कर जो भी मुस्लिम क्षेत्र में रहेगा या यात्रा करेगा, उसके लिये जजिया देना अनिवार्य होगा।
13. किसी भी स्थिति में तुम मक्का में प्रवेश नहीं कर सकते हो। यदि तुम व्यापारिक वस्तुओं के साथ यात्रा करते हो, तो तुम्हें उसका दसवां भाग मुसलमानों को देना होगा। मक्का को छोड़कर तुम कहीं भी आ-जा सकते हो। हेज़ाज़ को छोड़कर तुम किसी भी मुस्लिम क्षेत्र में ठहर सकते हो, किंतु हेज़ाज़ में मात्र तीन दिन रुक सकते हो, उसके बाद वहां से जाना होगा।

ये वो मानक शर्तें थीं, जिन्हें यहूदियों और ईसाइयों (हनफी कानून के अंतर्गत आने वाले देशों में बहुदेववादियों पर भी) लागू किया गया। उमर की संधि में ज़िम्मियों के साथ व्यवहार की शर्तें अल्लाह की स्वीकृति कुरआन [9:29] और सुन्नत के अनुपालन में निश्चित की गयी थीं। इसलिये आठवीं सदी के महान हनफी न्यायशास्त्री अबू युसुफ ने लिखा, 'उमर की संधि कयामत के दिन तक लागू रहेगी।'[202] यहूदियों और ईसाइयों (भारत में हिंदू भी), जो कि अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र और सम्मानित थे, को अब

---

[202] इबिद, पृष्ठ 37

मुसलमान हमलावरों के अधीन दमनकारी अपमानजनक व शोषण करने वाला व्यवहार सहना पड़ा। यह कल्पना करना कठिन नहीं कि इस प्रकार के व्यवहार से उन पर इस्लाम में धर्मांतरित के लिये कितना मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ा होगा।

जजिया और अपमानः ज़िम्मी प्रजा पर जजिया थोपने की प्रथा से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उन लोगों ने मुस्लिम राज्यों में किस प्रकार का सामाजिक अवमूल्यन सहा था। अल्लाह तो मांग करता है कि इस प्रक्रिया में 'ज़िम्मियों को ''स्वेच्छा से समर्पण'' करते हुए तथा स्वयं को ''पराजित (नीच)'' होने का अनुभव करते हुए जजिया देना होगा [कुरआन 9:29]।' ''इच्छा से समर्पण'' और ''अपमान'' में जजिया देने का अर्थ है कि जजिया का भुगतान उस अपमानजनक प्रोटोकॉल के अनुसार करना होगा, जिससे ज़िम्मियों की आत्मा चोटिल हो। महान इस्लामी टीकाकार अल-ज़मखशारी (मृत्यु 1144) ने जजिया भुगतान पर कुरआन की आयत 9:29 की व्याख्या इस प्रकार की है:[203]

> 'उन्हें तुच्छ अनुभव कराकर और अपमानित करके जजिया लेना होगा। (ज़िम्मी) पैदल सामने आएंगे, न कि घोड़े अथवा किसी वाहन पर चढ़कर। जब वह जजिया का भुगतान कर रहा हो, तो खड़ा रहेगा और उसके सामने जजिया लेने वाला बैठा होगा। जजिया लेने वाला उसके गरदन के ऊपर केशों को पकड़कर उसे झकझोरेगा और कहेगाः 'जजिया दे!' और जब वह जजिया दे दे, तो उसके गरदन के पिछले भाग पर बल से मारा जाए।'

सोलहवीं सदी के प्रसिद्ध इजिप्ती सूफी विद्वान अश-शरनी ने अपनी पुस्तक किताब अल-मिज़ान में जजिया भुगतान के ढंग का वर्णन यूं किया है:[204]

> 'ज़िम्मी, ईसाई या यहूदी, जजिया लेने के लिये नियुक्त अमीर के पास स्वयं जाकर खड़ा होगा। अमीर ऊंची कुर्सी पर बैठा रहेगा। उसके समक्ष आया ज़िम्मी अपनी खुली हथेलियों पर जजिया कर रखकर देगा। अमीर यह कर ऐसे लेगा कि उसका हाथ ऊपर होगा और ज़िम्मी का हाथ नीचे। इसके बाद उस ज़िम्मी को वहां से भगाने से पूर्व अमीर उसकी गरदन पर प्रहार करेगा... जनता को इस दृश्य को देखने की अनुमति है।'

आइए देखें कि भारत में ये मानक सिद्धांत कैसे लागू किये गये। बादशाह औरंगजेब द्वारा 1679 में पुनः जजिया कर थोपते हुए (अकबर ने 1564 में जिसे हटा दिया था) जजिया के भुगतान में निम्न प्रक्रिया अपनाने का आदेश दियाः

> 'मृत्यु होने अथवा इस्लाम स्वीकार कर लेने पर जजिया समाप्त हो जाता है... अ-मुस्लिम को जजिया भुगतान करने स्वयं आना चाहिए; यदि वह अपने किसी सहायक को भेजे, तो उसका जजिया नहीं स्वीकार किया जाना चाहिए। जजिया भुगतान के समय अ-मुस्लिम

[203] इब्न वराक, पृष्ठ 228-29

[204] ट्रिटन, पृष्ठ. 227

को खड़ा रहना चाहिए, जबकि लेने वाले मुखिया को बैठे रहना चाहिए। अ-मुस्लिम का हाथ नीचे होना चाहिए और उस मुखिया का हाथ इसके ऊपर होना चाहिए और उसे कहना चाहिए, 'रे अ-मुस्लिम! जजिया दे...।''[205]

जब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने विद्वान क़ाजी मुग़ीसुद्दीन से खरज (भूमि कर) के संग्रह के विषय में परामर्श मांगा, तो उसने इसी प्रकार की प्रक्रिया बताते हुए कहा कि **''जजिया देने के बाद अ-मुस्लिम मुंह खोले और कर लेने वाला उसके मुंह में थूक दे। ऐसा घोर अपमान एवं कर लेने वाले का उसके मुंह में थूकने का उद्देश्य उस वर्ग पर अधिकाधिक अधीनता, इस्लाम के वैभव व पारंपरिक विश्वास एवं मिथ्या धर्म (हिंदू) के अवमूल्यन का प्रदर्शन करना होता है।''**[206] ऐसा ही फारसी विद्वान मुल्ला अहमद ने कश्मीर के उदार व सहिष्णु सुल्तान ज़ैनुल आब्दीन (1564-67) को स्मरण दिलाने के लिये लिखा था कि ''उन पर जजिया थोपने का मुख्य उद्देश्य उनका अपमान करना है... अल्लाह ने उनके अपमान के लिये जजिया स्थापित किया है। जजिया का उद्देश्य यह होता है कि उनका अपमान हो तथा मुसलमानों की प्रतिष्ठा व गरिमा (की स्थापना) हो।''[207]

हिंदुओं के प्रति बादशाह अकबर की उदार नीतियों से कुढ़े लोकप्रिय सूफी उस्ताद शैख अहमद सरहिंदी (1564-1624) ने बादशाह के दरबार पर लिखा है: ''इस्लाम का सम्मान कुफ्र (अल्लाह, उसके रसूल और इस्लाम को न मानना) एवं काफिरों (अ-मुस्लिमों) के अपमान में निहित होता है। जो कोई भी काफिरों का सम्मान करता है, वह मुसलमान का अपमान करता है...। उन पर जजिया थोपने का वास्तविक उद्देश्य उन्हें इस सीमा तक अपमानित करना होता है कि वे ठीक से पहन-ओढ़ न सकें और अच्छे से जी न सकें। वे भयभीत रहें और कांपते रहें।'' ऐसा ही विचार भारत के मुस्लिम शासन की अवधि में सूफी संत शाह वलीउल्लाह (मृत्यु 1762) और अन्य प्रमुख्य इस्लामी विद्वानों व सूफी उस्तादों के रहे हैं।[208]

ज़िम्मियों के ऐसा असहनीय अपमान करने के ये उपाय इसलिये किये गये थे, जिससे कि उन्हें मुस्लिम राज्य में अपनी अत्यंत नीची सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति (दर्जा) का अनुभव होता रहे। यह समझना कठिन नहीं है कि हिंदुओं पर धर्मांतरण का मनोवैज्ञानिक दबाव डालने के लिये उन्हें अपमान और अवमूल्यन के किस स्तर पर ला दिया गया था। हिंदुओं को इतनी अपमानजनक स्थिति में लाकर उन्हें यह प्रलोभन दिया जाता था कि मुसलमान बन जाएं, तो भेदभावपूर्ण कर जजिया, खरज व अन्य आर्थिक बोझों से मुक्त हो जाएंगे। सबसे बड़ा बोझ दमनकारी कर खरज था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316) के काल में किसान एक प्रकार से शासन के बंधुआ दास हो गये थे, क्योंकि उनकी उपज का 50-60 प्रतिशत करों के रूप में और मुख्यतः खरज कर के रूप में छीन लिया जाता था। यहां तक कि अकबर के शासन में भी कश्मीर में उपज का एक तिहाई भाग

---

[205] लाल (1994), पृष्ठ 116

[206] इबिद, पृष्ठ 130

[207] इबिद, पृष्ठ 113

[208] इबिद, पृष्ठ 113-14

खरज कर के रूप में निश्चित किया गया था, किंतु वास्तव में यह कर उपज का दो तिहाई भाग लिया जाता था। बादशाह शाहजहां के शासन में सन 1629 के आसपास गुजरात में किसानों को अपनी उपज का तीन चौथाई भाग कर के रूप में देना पड़ता था।[209]

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि हिंदुओं पर दमनकारी कर थोपकर उनको ऐसी निम्न स्थिति में ला दिया गया था कि वे कर-संग्राहकों के अत्याचार से बचने के लिये जंगलों की ओर भाग रहे थे। इस्लाम स्वीकार करने वाला कलमा- शहादाः मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं है, और मुहम्मद उसका रसूल है, पढ़कर हिंदू इन दमनकारी करों के बोझ, अपमान और पीड़ा से स्वयं को मुक्त कर सकते थे। जैसा कि सुल्तान फिरोज़ शाह तुग़लक (शासन. 1351-88) ने अपने संस्मरण फतुहत-ए-फिरोज़ शाही में लिखा है कि इस उत्पीड़नकारी प्रलोभन धर्मांतरण के बहुत काम आया:

> मैंने अपनी काफिर प्रजा को रसूल के मजहब को स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहित किया, और घोषणा की कि जो कोई भी पंथ को दुहराया और मुसलमान बना, उसे जजिया अथवा पोल-कर से मुक्त कर दिया जाएगा। लोगों तक इसकी सूचना विलंब से पहुंची, और बड़ी संख्या में हिंदू स्वयं उपस्थित हो गये तथा इस्लाम के सम्मान में लाये गये। इस प्रकार वे प्रत्येक क्षेत्र से दिन प्रतिदिन आने लगे, और, इस्लाम स्वीकार करने के साथ जजिया से मुक्त कर दिये गये, एवं सम्मान व उपहार से उपकृत किये गये।[210]

इसलिये मुसलमान हमलावरों द्वारा जीते गये क्षेत्रों में इस्लामी धर्मांतरण और मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि के संबंध यह बात सत्य है कि धर्मांतरित मुसलमानों की पहली लहर तलवार की नोंक पर दास बनाने के माध्यम से आयी। इसके पश्चात, बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये इन लोगों की संतानों ने मुसलमानों की बिरादरी को बढ़ाया। सुल्तान महमूद जैसे हमलावर कोई नगर जीतने के बाद वहां के निवासियों को मृत्युतुल्य पीड़ा देकर मुसलमान बनाते थे, जिससे ठोस रूप से मुसलमान जनसंख्या बढ़ती थी। कुछ प्रकरणों में बर्बर मुसलमान फौज के हमले के कारण मृत्य व विनाश के भय से बिना लड़े ही आत्मसमर्पण कर दिया और ऐसे लोगों ने अपनी इच्छा के विरुद्ध इस्लाम स्वीकार करना पड़ा, जिससे मुसलमानों की संख्या बढ़ी। मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने में अगला प्रमुख और संभवतया सबसे बड़ा योगदान इससे मिला कि काफिरों पर इस प्रकार की उत्पीड़नकारी बाध्यता डाल दी गयी थी कि अपमानजनक जजिया, दमनकारी खरज और अन्य भेदभावपूर्ण करों के बोझ से मुक्त होने के लिये उन्हें मुसलमान बनना पड़े।

बर्बर औरंगजेब के अंतर्गत धर्मांतरण

काफिरों को इस्लाम में धर्मांतरित कराने के लिये मुस्लिम शासकों ने अन्य प्रकार के अवैध प्रलोभन व बाध्यताएं थोपीं। इब्न अस्करी ने अपने अल-तारीख में लिखा है कि बादशाह औरंगजेब ने धर्मांतरण के लिये शासन में प्रशासनिक पद, बंदीगृहों से

---

[209] इबिद, पृष्ठ 132, 134

[210] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 386

बंदियों की मुक्ति, पक्ष में विवादों का निपटारा और शाही परेड का सम्मान आदि प्रलोभन भी दिये।[211] परिणामस्वरूप, अनेक कुख्यात अपराधियों ने इस्लामी पंथ स्वीकार कर लिया। यह प्रवृत्ति आज भी अत्यंत लोकप्रिय है; विशेष रूप से पश्चिमी देशों के कारागारों में बंद कुख्यात अपराधी इस्लाम में धर्मांतरित हो रहे हैं।

उत्तरी भारत में मुस्लिम जनसंख्या की वर्तमान जननांकिकी व्यापक रूप से बर्बर औरंगजेब के समय आकार दी गयी, क्योंकि उसके काल में बलपूर्वक एवं अन्य उत्पीड़नकारी बाध्यताओं के कारण बड़े स्तर पर धर्मांतरण हुए थे। उत्तर पश्चिम प्रांत (एनडब्ल्यूपी), जिसमें कि आज के राज्य उत्तरप्रदेश व दिल्ली आते हैं, के गजट में लिखा है: ''अधिकांश मुसलमान किसान अपने धर्मांतरण की तिथि औरंगजेब के शासन का बताते हैं और कहते हैं कि कभी उत्पीड़न करके उन्हें मुसलमान बनाया गया, तो कभी वे इसलिये मुसलमान बन गये, क्योंकि वे कर चुकाने में असमर्थ हो गये थे और मुसलमान बन जाने से उनका अधिकार बच जाता।'' (औरंगजेब के समय यह प्रवृत्ति पूरे प्रांत में फैली हुई होगी)। यूरोपियन दरबारी निकोलो मैनुसी, जो कि औरंगजेब के शासन के समय भारत में रहे थे, ने अपने इस कथन में इस बात की पुष्टि की है, ''(कर) भुगतान में असमर्थ बहुत से हिंदू मुसलमान बन गये, जिससे कि वे कर-उगाहने वालों के अपमान से बच सकें''; और औरंगजेब को इसमें आनंद मिलता था। सूरत में इंग्लिश फैक्ट्री के अध्यक्ष थॉमूस रोल ने लिखा है कि औरंगजेब द्वारा जजिया दोहरे उद्देश्यों से उगाहा जाता था, जिसमें से एक उद्देश्य अपने कोषागार में धन भरना था और दूसरा यह था कि इससे जनसंख्या के निर्धन वर्ग पर मुसलमान बनने के लिये दबाव डाला जाए।''[212]

15 दिसम्बर 1666 को औरंगजेब ने राजदरबार और प्रांतों के शाही दरबार की सेवाओं से हिंदुओं को निकाल बाहर करने तथा उनके स्थान पर मुसलमानों को नियुक्त करने का आदेश निर्गत किया।[213] इस आदेश से हिंदुओं पर अपनी आजीविका बचाने के लिये धर्मांतरित होने का और दबाव पड़ा। उसने हिंदू जमींदारों (भूस्वामी) पर मुसलमान बनने अथवा नौकरी खोने या यहां तक कि मृत्यु का सामना करने का दबाव डाला। मनोहरपुर के जमींदार देवीचंद अपने पद से हटा दिये गये और कारागार में डाल दिये गये। औरंगजेब ने अपने कोतवाल को भेजकर निर्देश दिया कि वे मुसलमान हो जाएं, तो उन्हें छोड़ दिया जाएगा; यदि उन्होंने मुसलमान बनने से मना किया, तो उनकी हत्या की जाएगी। उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन्हें अपनी जमींदारी बचानी थी। वे मुसलमान बन गये, तो उन्हें जीवन दान दे दिया गया और जमींदारी पुनः मिल गयी।[214] रतन सिंह, जिन्हें उनके पिता के मालवा स्थित रामपुरा राज्य की जमींदारी से वंचित कर दिया गया था, ने मुसलमान बनकर उसे प्राप्त किया।[215]

---

[211] रॉय चौधरी एमएल (1951) द स्टेट एंड रिलीजन इन मुगल इंडिया, इंडियन पब्लिसिटी सोसाइटी, कलकत्ता, पृष्ठ 227

[212] शर्मा, पृष्ठ 219

[213] एक्जीबिट संख्या. 34, बीकानेर म्यूजियम आर्काइव, राजस्थान, इंडिया; http://according-to-mughalrecords.blogspot.com/

[214] एक्जीबिट संख्या. 41, बीकानेर म्यूजियम आर्काइव

[215] शर्मा, पृष्ठ 220

अन्य घटनाओं में, मुसलमान हिंदुओं पर इस्लाम का अपमान करने का झूठा आरोप लगाया करते थे और तब उन्हें दंड के रूप में इस्लाम स्वीकार करने को विवश किया जाता था। 1668 में सूरत के दरबार में धर्मांतरण के लिये इसी प्रकार की रणनीति का उल्लेख मिलता है। जब मुसलमान हिंदू सेठों (बनिया) से धन उधार लेता, किंतु वापस नहीं करना चाहता, तो ''मुसलमान काजी (न्यायाधीश) के पास परिवाद (शिकायत) अंकित करा देता था कि उक्त हिंदू ने रसूल के बारे में अपमानजनक टिप्पणी की है अथवा उसके मजहब के बारे में बुरा बोला है और वह मुसलमान दो झूठे गवाह भी प्रस्तुत कर देता। इसके बाद उस निरीह हिंदू बनिया का बलपूर्वक खतना कर दिया जाता और उसे इस्लाम स्वीकार कराया जाता।''[216]

औरंगजेब ने भी सन 1685 में एक आदेश दिया कि प्रांतों के उसके अधिकारी हिंदुओं को इस्लाम में धर्मांतरित होने के लिये प्रोत्साहित करने के लिये प्रस्ताव दें कि 'जो भी हिंदू पुरुष मुसलमान बनेगा, उसे राज्य कोषागार से चार रुपये और जो भी हिंदू स्त्री मुसलमान बनेगी, उसे दो रुपये दिये जाएंगे।[217] उस समय चार रुपये की राशि पुरुष की पूरे माह की आजीविका के बराबर हुआ करती थी। जैसा कि ज्ञात है कि धर्मांतरण करने से जजिया, खरज और अन्य दमनकारी करों से मुक्ति एवं अपमान व अवमूल्यन से बचने का मार्ग मिलता था, इसलिये धर्मांतरण के लिये यह लाभ अपने वित्तीय मूल्य से कहीं अधिक बड़ा प्रलोभन बन गया। एक मुगल पत्रक में लिखा है कि बिठूर के फौजदार शेख अब्दुल मोमिन द्वारा 150 हिंदुओं को सरोपा (सम्मान की पगड़ी) और नगदी देकर मुसलमान बनाया था।[218]

औरंगजेब ने कश्मीर के पंडितों का बलपूर्वक सामूहिक धर्मांतरण कराया। दुखी पंडित पंजाब के सिख गुरु तेग बहादुर के पास आये। जब गुरु कश्मीरियों के अवैध धर्मांतरण के बारे में पूछताछ करने औरंगजेब के दरबार में आये, तो उन्हें बंदी बना लिया गया और कई सप्ताह तक उन पर अत्याचार करते हुए उन्हें धर्म परिवर्तन को कहा गया। धर्म परिवर्तन न करने पर अंततः उनका (और उनके दो शिष्यों) का सिर धड़ से पृथक कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब के समय के पूर्व कश्मीर में भले ही हिंदू बहुलता में न रहे हों, किंतु वे प्रभावशाली तो थे ही। औरंगजेब के अत्याचारी कार्यों ने भारत के सुंदर हिमालयी राज्य को व्यापक स्तर पर मुस्लिम-बहुत और सर्वाधिक उन्मादी राज्य बना दिया। औरंगजेब के समय में भारत के अन्य उन स्थानों पर भी इसी प्रकार की नीतियां रही होंगी, जहां मुसलमानों का प्रभावशाली नियंत्रण था।

कश्मीर में बर्बर धर्मांतरण

---

[216] इबिद, पृष्ठ 219-20

[217] बीकानेर म्यूजियम आर्काइव, एक्जीबिट संख्या. 43

[218] बीकानेर म्यूजियम आर्काइव, एक्जीबिट संख्या. 40

हिंदुओं का हिंसक और उत्पीड़नकारी कृत्यों से किया जा रहा धर्मांतरण दिल्ली में स्थित केंद्रीय मुस्लिम सत्ता तक ही सीमित नहीं रहा। यह उन प्रांतों तक भी फैल गया, जहां मुसलमान शासक प्रायः स्वतंत्र थे और उन शासकों ने भी पवित्र कत्र्तव्य के रूप में अपनी प्रजा पर इस्लाम के आदेशों को लागू किया।

सिकंदर बुतशिकन (1389-1413) के शासन में वो और उसका वजीर, जो कि ब्राह्मण था और मुसलमान बन गया था, मिलकर कश्मीरी हिंदुओं पर भयानक अत्याचार करने लगे। फरिश्ता में सिकंदर का एक आदेश दिया गया हैः

> 'कश्मीर में मुसलमानों के अतिरिक्त किसी और के निवास पर रोक लगाते हुए; और उसने आदेश दिया कि कोई व्यक्ति अपने माथे पर तिलक (जो कि हिंदू लगाते हैं) नहीं लगाये... अंत में उसने बल दिया कि सोने और चांदी की सभी मूर्तियां तोड़ दी जाएं और उन्हें गला दिया जाए, तथा उससे मिली धातु से सिक्के ढाल दिये जाएं। बहुत से ब्राह्मणों ने अपना धर्म या अपना देश छोड़ने की अपेक्षा विष पी लिया; कुछ अपने पैतृक स्थान छोड़कर चले गये, जबकि बहुत थोड़े से लोग नष्ट हो जाने से बचने के लिये मुसलमान बन गये। ब्राह्मणों को निर्वासित करने के बाद सिकंदर ने आदेश दिया कि कश्मीर के सभी मंदिर तोड़ दिये जाएं... कश्मीर में सभी मूर्तियों को तोड़ने के बाद उसने बुतशिकन (मूर्तिभंजक), मूर्तियों का नाश करने वाला की उपाधि प्राप्त की।'[219]

विद्वान फरिश्ता (मुत्यु 1614) के अनुसार, यह सुल्तान सिकंदर का सबसे बड़ा कार्य था।

बुतशिकन का उत्तराधिकारी बने उसके बेटे अमीर खान (या ऐली शाह) ने भी अपने पिता के उन्मादी वजीर के मार्गदर्शन में अवशेष हिंदुओं का नरसंहार निरंतर रखा। फरिश्ता ने लिखा है, इन दोनों ने 'थोड़े से बचे उन ब्राह्मणों पर भयानक अत्याचार करना प्रारंभ किया, जो अभी भी अपने धर्म पर अडिग थे; और उनमें से जिसने भी मुसलमान बनने से मना किया, उसे मार डाला गया। जो हिंदू अभी भी कश्मीर में भटक रहे थे, उन सबको उसने अपने राज्य से भगा दिया।'[220] बाद में मलिक रैना और काजी चाक के शासन में हिंदुओं को तलवार के बल पर धर्मांतरित किया गया। प्रायः धर्मांतरण और हिंदुओं के सामूहिक नरसंहार साथ-साथ चलता था (नीचे दिया गया है)। इन ऐतिहासिक अभिलेखों से अब किसी के मन में उन कृत्यों के विषय में कोई संशय नहीं बचा होगा, जो भारतीय काफिरों का इस्लाम में सामूहिक धर्मांतरण में साधक थे।

धर्मांतरण के विषय में छलभरा प्रचार

स्वैच्छिक धर्मांतरण

---

[219] फरिश्ता एमक्यूएचएस (1829), हिस्ट्री ऑफ द राइज ऑफ द मोहम्डन पॉवर इन इंडिया, अनुवाद जॉन ब्रिग्स द्वारा, डी.के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्राइवेट) लिमिटेड, न्यू देल्ही, अंक 4, (1997 इम्प्रिंट), पृष्ठ 268

[220] इबिद, पृष्ठ 269

आधुनिक इस्लामी विद्वानों व इतिहासकारों (बहुत से अ-मुस्लिम इतिहासकार भी) ने मध्यकालीन भारत और अन्य स्थानों पर मुसलमान जनसंख्या की वृद्धि को लेकर मिथकों का मोटी धुंध रच रखी है। वह मिथक यह है कि विजित काफिरों ने जब इस्लाम के शांति व न्याय को संदेश को सुना, तो अपनी इच्छा से इस्लाम स्वीकार कर लिया। मध्यकालीन इस्लामी इतिहासकारों, यात्रियों, हमलावरों और शासकों के अभिलेखों से यह दावा आधारहीन सिद्ध होता है। यूरोपीय यात्रियों व दरबारियों द्वारा भारत पर लिखे गये वृत्तांत और विशेष रूप से मुगल काल में भारत आये यूरोपीय यात्रियों व दरबारियों द्वारा अंकित तथ्य मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा लिखी गयी बातों से मेल खाते हैं। इन वृत्तांतों व अभिलेखों से ज्ञात होता है कि हिंदुओं में इस्लाम के प्रति घृणा और असंतोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस दावे को कोई साक्ष्य नहीं मिलता है कि इस्लाम के संदेशों से प्रभावित होकर अ-मुस्लिमों ने धर्मांतरण किया था। मध्यकालीन अभिलेखों में अंकित साक्ष्यों में हिंदुओं के धर्मांतरण का सर्वाधिक शांतिपूर्ण साधन यही बताया गया है कि उन्हें निर्दयी खरज, जजिया व अन्य दमनकारी करों के कारण उत्पन्न एवं पंगु करने वाली दुर्गति एवं दुखदायी अपमान से अपने को मुक्त कराने के लिये धर्मांतरण का प्रलोभन दिया गया था। धर्मांतरण की ऐसी उत्पीड़क पद्धति, जो कि घिनौने विकल्प से बचने मात्र के लिये विवशता में स्वीकार की जाती थी, शांतिपूर्ण या स्वैच्छिक तो नहीं ही कही जा सकती है। स्वैच्छिक धर्मांतरण हुए होंगे, पर ऐसे धर्मांतरण की घटनाएं न के बराबर हैं-अधिकांश धर्मांतरण हिंसक, अत्याचारी दबाव बनाकर ही कराये गये।

निम्न जाति के हिंदुओं का धर्मांतरण

भारत में मुसलमान दावा करते हैं कि सामाजिक रूप से भेदभाव व अत्याचार का सामना कर रहे निम्न जाति के हिंदुओं ने ही अधिकांशतः इस्लाम में धर्मांतरण किया, क्योंकि इस्लाम में सभी के लिये समानता का संदेश है। यद्यपि, जिन मध्यकालीन इस्लामी लेखकों ने कभी-कभी धर्मांतरण का पूर्ण विस्तार से विवरण दिया है, उन्होंने भी इस तथ्य का कहीं उल्लेख नहीं किया है कि निम्न वर्ग के हिंदू उच्च वर्ग के हिंदुओं के अत्याचार व उत्पीड़न से बचने के लिये इस्लाम में आये। यह हो सकता है कि निम्न जाति के हिंदुओं के धर्मांतरण का अनुपात अधिक हो, किंतु ऐसा होने का कारण पूर्णतः भिन्न था। वे हिंदू समाज के निर्धनतम वर्ग से थे और वे दमनकारी खरज, जजिया व अन्य करों से स्वाभाविक रूप से सबसे अधिक कष्ट में थे। उपमहाद्वीप में मुसलमान जनसंख्या का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि धर्मांतरण समाज के सभी वर्गों में हुआ था। यह तथ्य है कि आज भी भारत के 70 प्रतिशत हिंदू निम्न वर्ग से संबंध रखते हैं और इस तथ्य से यह दावा झूठा सिद्ध हो जाता है कि इस्लाम के श्रेष्ठ संदेश से प्रभावित होकर निम्न वर्ग के हिंदू बहुत बड़ी संख्या में इस्लाम के झंडे के नीचे आ गये।

कुछ समय पूर्व आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा कराये गये एक अध्ययन के अनुसार, आज 85 प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज आज निम्न जाति में आते हैं।[221] इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच जन्मदर समान थी, तो उच्च जातियों के हिंदुओं की तुलना में धर्मांतण करने वाली निम्न जाति के हिदुओं की संख्या दोगुनी थी। यद्यपि इस पर विचार किया जाना चाहिए कि निम्न जाति के हिंदुओं ने प्रेरक उपदेशों से प्रभावित होकर अधिक संख्या में बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और कुछ सीमा तक कई बार

---

[221] 85 परसेंट ऑफ मुस्लिम्स इन इंडिया वर एससी, बैकवर्ड हिंदूजः रिपोर्ट इंडियन एक्सप्रेस, 10 अगस्त 2008

ईसाई धर्म स्वीकार किया था। यदि इस्लाम में धर्मांतरण भी ऐसा ही हुआ होता, तो जब इस्लामी धर्मांतरण प्रारंभ हुआ, तो अतीत में मुसलमान बने निम्न जाति के लोगों का अनुपात बहुत अधिक रहा होता और ऐसा होने पर संभवत: मध्यकालीन भारत के 80 प्रतिशत हिंदू इस्लाम में धर्मांतरित हो गये होते। इसका सीधा सा अर्थ है कि निम्न जाति के हिंदुओं का इस्लाम में धर्मांतरण की संभाव्यता अधिक नहीं थी। यदि थोड़ी-बहुत इसकी उच्च संभाव्यता को मान भी लिया जाए, तो इसके पीछे तथ्य यह था कि दमनकारी इस्लामी करों से निर्धन निम्न जाति का हिंदू गंभीर रूप से कराह रहा था। सत्य यह है कि जब इस्लामी हमलावरों और शासकों सदियों तक निरंतर अभियान चलाकर तलवार की नोंक पर सैकड़ों हजारों लोगों को बलपूर्वक दास बनाया और उन्हें मुसलमान बनाया, तो उनके पास यह सोचने का समय न के बराबर था कि कौन निम्न जाति का है और कौन उच्च जाति का।

ऐतिहासिक रूप से मुसलमानों को यह जानने में कोई रुचि नहीं थी कि किस वर्ग के लोगों को मुसलमान बनाया जा रहा था। वो तो कुछ यूरोपीय थे, जिन्होंने कुछ छिटपुट घटनाओं के आधार पर यह झूठा मिथक गढ़ने का प्रयास किया कि हिंदू समाज के अत्याचार से दुखी होकर निम्न जाति के हिंदुओं ने इस्लाम स्वीकार किया था। इसके पश्चात बलपूर्वक धर्मांतरण के आरोपों से घिरे मुस्लिम विद्वानों ने यह कहानी गढ़ने के लिये इस अवसर को लपक लिया कि भारत में निम्न जाति के हिंदुओं का धर्मांतरण स्वैच्छिक और शांतिपूर्ण था। मुर्शिदाबाद के नवाब के दीवान खोंदकर फज़ल-ए रब्बी ने 1890 में दावा किया कि बुनकर और धोबी जैसे निम्न वर्ग के हिंदुओं ने बंगाल में इस्लाम स्वीकार किया था। यद्यपि उसने यह भी कहा था कि मुसलमानों की जनसंख्या में इस प्रकार के धर्मांतरण से बने मुसलमानों की संख्या में बहुत कम थी।[222]

यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि मुस्लिम शासन की पूरी अवधि में बड़ी संख्या में निम्न जाति के हिंदू और सिख मुस्लिम शासकों के विरुद्ध प्रतिकार और विद्रोह में लगे रहे; अनेक प्रकरणों में तो निम्न जाति के हिंदू ही थे, जिन्होंने विद्रोह का नेतृत्व किया था। यहां कुछ उदाहरण दिये गये हैं। बलपूर्व बंदी बनाकर बधिया करके हिंदू से मुसलमान बना दिये गये खुसरो खान ने 1320 में अपने मालिक सुल्तान कुत्बउद्दीन मुबारक खिलजी की हत्या करा दी और सुल्तान के प्रमुख मुस्लिम अधिकारियों का सफाया करवा दिया। खुसरो खान ने गुजरात के 20,000 बेवाड़ी हिंदुओं (कुछ लेखकों के अनुसार परवाड़ी हिंदू) को अपना सहयोगी बनाया।[223] खुसरो खान के इन सहयोगियों का लक्ष्य दिल्ली की सत्ता से इस्लाम को मिटा देना था। जियाउद्दीन बर्नी के अनुसार, 'चार-पांच दिन के समय में, महल में मूर्तिपूजा की तैयारियां की गयीं' और 'पवित्र पुस्तक (कुरआन) की प्रतियों को नीचे रखकर उस पर आसन लगाया गया तथा मस्जिदों के ऊंचे मंच पर मूर्तियां स्थापित की गयीं।'[224] मध्यकालीन वृत्तांत लेखक जिआउद्दीन बर्नी, अमीर खुसरो

---

[222] रब्बी (1895) द ओरिजिंस ऑफ द मुसलमान्स ऑफ बेंगाल, कलकत्ता, पृष्ठ 113

[223] फरिश्ता, अंक. प्रथम, पृष्ठ 224

[224] इलियट एंड डाउसन, अंक. तृतीय, पृष्ठ 224

और इब्न बतूता ने बेवाड़ियों का वर्णन ऐसे निम्न वर्ग के हिंदुओं के रूप में किया है, जो अपने नेताओं के लिये अपना जीवन समर्पित करने वाले वीर व तत्पर लोग थे।'[225]

यहां तक कि बड़ी संख्या में निम्न जाति के हिंदुओं ने उदार व अधिक समतापरक अकबर महान के विरुद्ध भी शस्त्र उठा लिये थे। यह पहले ही बताया जा चुका है कि 1568 में अकबर के चित्तौड़ हमले के समय उसके विरुद्ध राजपूतों की ओर से 40,000 किसानों अर्थात निम्न जाति के हिंदुओं ने लड़ा था। उन हिंदुओं ने ऐसा अदम्य प्रतिरोध किया था कि क्रुद्ध अकबर ने बंदियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार के नियम को तोड़कर उन 30,000 किसानों की सामूहिक हत्या का आदेश दिया था, जिन्होंने आत्मसमर्पण किया था। इसी प्रकार मराठा साम्राज्य की स्थापना करने वाले शिवाजी (मृत्यु 1680) ने औरंगजेब की बादशाहत अस्वीकार कर दी थी और वे भी निम्न जाति के हिंदू थे (देखें अध्याय 4, श्रेणीः मुस्लिम अवधि में हिंदू शासकों की सहिष्णुता एवं वीरता)। मराठा, जो कि निम्न जाति के हिंदू थे, 1761 तक लड़ते रहे; पानीपत के तृतीय युद्ध में अफगानिस्तान से अहमद शाह अब्दाली उनका नाश करने आया। इस्लामी प्रभुत्व के आरंभ से लेकर उसके अंतिम दिन तक समस्त भारत से सभी वर्गों के निम्न जातियों के हिंदू-बेवाड़ी, मराठा, जाट, खोखर, गोंड, भील, सतनामी, रेड्डी व अन्य लड़ते रहे। खोखर खेतिहर (अथवा गुक्कुर)- जिन्हें फरिश्ता में 'बिना किसी धर्म या नैतिकता वाली असभ्य बर्बर जाति कहा गया है'[226]- ने मुल्तान जैसे क्षेत्र में मुहम्मद ग़ोरी का प्रचंड प्रतिरोध किया था। 715 में मुल्तान कासिम द्वारा जीत लिया गया। मुल्तान में इस्लाम के आने के पांच सदी पश्चात भी खोखर खेतिहर इस्लाम के संदेश से तनिक भी प्रभावित नहीं हुए और उन्होंने सुल्तान ग़ोरी के विरुद्ध शस्त्र उठा लिये।

इब्न असीर ने लिखा है, खोखरों के विद्रोह से निपटने के लिये सुल्तान वापस आया, 'उसने विद्रोहियों को पराजित किया तथा उनके रक्त की धाराएं बहा दीं।'[227] यद्यपि खोखरों ने अंततः 1206 में जंग के शिविर में सुल्तान ग़ोरी का वध कर दिया। ग़ोरी के हमले में जिन लोगों ने अपने प्रिय जनों को खो दिया था, उनमें से 20 खोखर लोगों ने पराक्रम दिखाते हुए सुल्तान के तम्बू में प्रवेश किया और कटारों से उसका शरीर छलनी करते हुए वध कर दिया।[228] इस घटना के दो सदी बाद लिखी गयी याहया बिन अहमद की तारीख-ए मुबारक शाही से हमें जसरथ शैका खोखर के विषय में ज्ञात होता है, जो मुस्लिम शासकों (1420-30) का सबसे बड़ा व कट्टर शत्रु बन गया था।

वास्तविकता यह है कि प्रायः उच्च जाति के हिंदू ही मुस्लिमों की ओर से विद्रोही निम्न जाति के हिंदुओं से लड़ते थे। उदाहरण के लिये, जब औरंगजेब अपनी राजधानी दक्षिण लेकर गया, तो उत्तर में जाट खेतिहरों ने विद्रोह का बिगुल बजा दिया। वे

---

[225] लाल केएस (1995) ग्रोथ ऑफ शेड्यूल्ड ट्राइब्स एंड कास्ट्स इन मेडिवल इंडिया, आदित्य प्रकाशन, न्यू देल्ही, पृष्ठ 73

[226] फरिश्ता, अंक प्रथम, पृष्ठ 104

[227] इलियट एंड डाउसन, अंक द्वितीय, पृष्ठ 297-98

[228] इबिद, पृष्ठ. 233-36; फरिश्ता, अंक प्रथम, पृष्ठ 105

दक्षिण में औरंगजेब के दरबार के लिये वस्तुओं, राजस्व व खाद्य सामग्री ले जाने वाले कारवां पर आक्रमण करने लगे। औरंगजेब ने जाटों के विद्रोह को दबाने के लिये एक शाही फौज भेजी, जिसमें उच्च जाति के राजपूत और मुसलमान फौजी थे। लंबी घेराबंदी के बाद जनवरी 1690 में सिनसनी (राजस्थान) स्थित जाटों के दुर्ग में शाही फौज घुस गयी, यद्यपि इस संघर्ष में दोनों पक्षों की बड़ी क्षति हुई। लगभग 1500 जाटों ने प्राणों का बलिदान दिया, जबकि शाही सेना के 200 मुगल और 700 राजपूत मारे गये या गंभीर रूप से घायल हुए।[229] इसलिये यह दावा करना पूर्णतः आधारहीन है कि निम्न जाति के हिंदुओं ने उच्च जाति के हिंदुओं के अत्याचार से मुक्ति पाने के लिये प्रसन्नतापूर्वक इस्लाम को नष्ट स्वीकार किया था।

सबसे बड़ा इस्लामी धर्मांतरण बौद्धों में हुआ था। भारत पर इस्लाम के हमले के समय, उत्तरपश्चिम (आज का पाकिस्तान, अफगानिस्तान आदि) एवं पूर्वी भारत (यथा बंगाल) में बुद्ध धर्म का प्रभुत्व था। इन दोनों क्षेत्रों से बुद्ध धर्म का लगभग पूर्णतः सफाया कर दिया गया है। बंगाल में मुस्लिम शासन के समय 60 प्रतिशत तक लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। इन क्षेत्रों में जिन लोगों ने अपने पूर्वजों के धर्म को बचाये रखा था, वो बौद्ध नहीं, हिंदू थे और उन हिंदुओं में से अधिकांश निम्न जाति से संबंध रखते थे। बौद्ध धर्म में कोई जाति प्रथा या जातिपरक अत्याचार नहीं है; यह धर्म निस्संदेह इस्लाम से कहीं अधिक समतावादी और शांतिपूर्ण है। तब किस कारण से इन बौद्धों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया? और यदि निम्न जाति के हिंदू उच्च-जाति के हिंदुओं के अत्याचार से पीड़ित थे, तो इस्लाम बंगाल की निम्न जाति के हिंदुओं की बड़ी संख्या को धर्मातरित कर पाने में विफल क्यों रहा!

सूफियों द्वारा शांतिपूर्ण धर्मांतरण

इस्लामी धर्मांतरण को लेकर एक और बड़ा दावा किया जाता है कि मुस्लिमों के एक अशास्त्रीय प्रकार, जिन्हें सूफी कहा जाता है, ने शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों के माध्यम से इस्लाम को फैलाया। ब्रिटिश इतिहासकार थॉमस अर्नाल्ड (1864-1930), जो यूरोपीयों द्वारा इस्लाम पर दिये गये सदियों पुराने मत को परिवर्तित करने के व्याकुल थे, ने 1890 के दशक में इस दावे का प्रचार करना प्रारंभ किया और इसे बहुत से मुस्लिम व अ-मुस्लिम इतिहासकार व विद्वान आगे बढ़ाने लगे। जैसा कि पीटर हार्डी द्वारा लिखा गया है, निम्नलिखित घटनाओं ने अर्नाल्ड को इस निष्कर्ष पर पहुंचाया थाः

> ...1878 में, पंजाब के मोंटगोमरी जनपद के लिये बंदोबस्त प्रतिवेदन में लेफ्टिनेंट एल्फिस्टोन को उद्धृत किया गया है, जो कि निम्न हैः 'इसमें (पाकपत्तन के नगर) में प्रतिष्ठित सूफी व शहीद बाबा फरीद की दरगाह है। बाबा फरीद ने दक्षिणी पंजाब के बड़े भाग को मुहम्मदवाद में धर्मांतरित किया, और उनके चमत्कारों से उन्हें इस मजहब के पीरों (सूफियों) में सर्वाधिक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है।' झांग जनपद के बंदोबस्त प्रतिवेदन में भी शेख फरीद अल-दीन के बारे में इसी प्रकार का दावा किया गया है। 1881 के पंजाब जनगणना प्रतिवेदन में इबेस्टन ने मुल्तान के बना अल-हक़ और बाबा फरीद का नाम दो ऐसे संतों के रूप में जोड़ा है, जिनको 'पश्चिम के मैदानों के लोग सामान्यतः अपने धर्मांतरण का उत्तरदायी बताते हैं।' 1980 में प्रकाशित कच्छ के बॉम्बे गजेटियर में लिखा है कि कच्छ के मेमनों का धर्मांतरण इसलिये हुआ, क्योंकि उन लोगों ने सैय्यद अल-क़ादिर के एक वंशज सैय्यद युसू अल-दीन के चमत्कारों को देखा था। कहा जाता है कि बॉम्बे प्रेसीडेंसी में कहीं किसी सैय्यद मुहम्मद गेसू दराज ने हिंदू बुनकरों का इस्लाम में धर्मांतरण

[229] लाल (1995), पृष्ठ 90

किया था। उत्तरी-पश्चिमी प्रांतों में, 1868 में संकलित आजमगढ़ बंदोबस्त प्रतिवेदन के आंकड़ों में इस जनपद के मुस्लिम जमींदारों की अनुश्रुति जोड़ी गयी कि ''किसी मुसलमान संत के उपदेश'' सुनकर उनके पूर्वजों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। शेख जलाल अल-दीन तबरीज़ी, जो कि बाद में बंगाल चला गया था, के बारे में कहा जाता है कि उसने बदायूं में एक हिंदू दूधिये पर मात्र दृष्टि डाली और वह दूधिया धर्मांतरित हो गया। इस घटना और कुछ अन्य घटनाओं के बारे में सुनकर अर्नाल्ड इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि भारतीय मुसलमानों की बड़ी संख्या उन धर्मांतरित लोगों की है, जिनके धर्मांतरण में बल प्रयोग की भूमिका नहीं थी, अपितु वे शांतिपूर्ण मिशनरियों के उपदेश व प्रभाव में आकर धर्मांतरित हुए थे।[230]

अर्नाल्ड ने जिस प्रमुख संदर्भ के आधार पर अपना निष्कर्ष निकाला था कि इस्लाम में धर्मांतरण करने में बड़ी भूमिका सूफियों द्वारा कराये गये शांतिपूर्ण धर्मांतरण की थी, वह 1884 के बॉम्बे गजेटियर में अंकित वह सामान्य संदर्भ है कि सूफी संत मआबरी खंडायत (पीर मआबरी) लगभग 1305 ईसवी में मिशनरी के रूप में दक्षिण आया और बड़ी संख्या में जैनियों को इस्लाम में धर्मांतरित कराया।[231] इस पत्रक में इस बात पर कोई विशिष्ट जानकारी नहीं दी गयी है कि पीर मआबरी ने धर्मांतरण कार्य के लिये कौन सा साधन अपनाया था; ऐसे ही ऊपर उद्धृत अन्य दावों (ये दावे प्रायः अप्रामाणिक और सुनी-सुनायी बातों पर आधारित होते थे) के बारे में भी कोई स्पष्ट जानकारी नहीं है कि धर्मांतरण के लिये किस प्रकार का साधन अपनाया गया था। यद्यपि जब इतिहासकार रिचर्ड ईटन मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा पीर मआबरी पर दिये गये प्राचीन पत्रकों का अध्ययन किया, तो मआबरी द्वारा काफिरों के धर्मांतरण के लिये प्रयुक्त साधनों के विषय में पता चला। मुहम्मद इब्राहीम ज़ुबैरी के रौज़ात अल-औलिया (1825-26) के अनुसार, पीर मआबरी खंदयात दक्षिण में एक जिहादी फौजी बनकर आया था:

'दिल्ली के शाह अला अल-दीन खलजी (अलाउद्दीन खिलजी, मृत्यु. 1316) के काल में वह (पीर मआबरी) ए.एच. 710 (1310-11 ईसवी) में तब इस्लाम की फौज के साथ आया था, जब मुसलमानों के हाथ गड़ा हुआ सोने व चांदी का खजाना लग गया और इस्लाम की जीत प्रभाव में आयी।'[232]

एक हैजिओग्राफी अभिलेख में लिखा हैः

'(पीर मआबरी) यहां आया और (बीजापुर के) राजाओं व विद्रोहियों के विरुद्ध जिहाद छेड़ा। और उसने अपने लौह दंड से अनेक राजाओं के सिर व गरदनें तोड़ीं तथा उन्हें परास्त कर धूलधूसरित किया। अनेक मूर्तिपूजक, जो अल्लाह के मार्गदर्शन और कृपा से, अपने कुफ्र व भूल पर प्रायश्चित किये और (पीर मआबरी) के हाथों इस्लाम में सम्मिलित हुए।'[233]

---

230 हार्डी पी (1979) मॉर्डन यूरोपियन एंड मुस्लिम एक्स्प्लेनेशंस ऑफ कन्वर्जन टू इस्लाम इन साउथ एशियाः एक प्रिलिमिनरी सर्वे, इन एन. लेवत्जिऑन एड, पृष्ठ 85

231 अर्नाल्ड, पृष्ठ 271

232 ईटन आरएम (1978), सूफीज ऑफ बीजापुर 130-1700, प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 28

233 इबिद, पृष्ठ 30

एक और अनुश्रुति कहती है कि पीर मआबरी ने बीजापुर में ब्राह्मणों के एक समूह को उनके गांव से निकाल बाहर किया था। मुस्लिम साहित्य पीर मआबरी को काफिरों के विरुद्ध भयानक जिहाद छेड़ने वाले ऐसे जिहादी के रूप में वर्णन करते हैं, जो लौह दंड भांजता था। इसी से उसके नाम का अंतिम भाग खंडायत पड़ा, जिसका अर्थ होता है भोंथरा दंड।

ईटन विशेष रूप से इस कहानी का प्रभावशाली प्रचारक बन गया था कि इस्लाम सूफियों द्वारा शांतिपूर्वक फैलाया गया था। वह कहता है कि जिन क्षेत्रों में मुस्लिम सत्ताएं नहीं पहुंच सकीं थीं, वहां इस्लाम 'ऐसे अज्ञात, घुमंतू पवित्र व्यक्तियों के आने से आया, जो स्थानीय लोगों में चामत्कारिक ताकत के लिये जाने जाते थे।' फिर ईटन बंगाल के एक लोकप्रिय लोक-कथा का वर्णन करने लगता है कि रहस्यमयी ताकत वाला एक मुस्लिम पीर एक गांव में दिखा, वहां मस्जिद बनायी और अपने चमत्कारिक ताकत से रोगियों को ठीक करने लगा, जिससे उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गयी। उसके बाद सैकड़ों की संख्या में लोग उसके दर्शन के लिये आने लगे। दर्शनार्थी उसके लिये 'चावल, फल, स्वादिष्ट भोजन, बकरी, मुर्गा व पक्षी का उपहार' लेकर आते थे, पर वह इन वस्तुओं को स्पर्श तक नहीं करता था। वह इन वस्तुओं को निर्धनों में बांट देता था। ईटन कहता है कि सूफियों के इस मानवीय गुणों के कारण वह मस्जिद इस्लाम का ऐसा केंद्र बन गया, जहां से इस्लाम दूर-दूर तक पहुंचा।[234]

ईटन के बारे में एक रोचक तथ्य यह है कि *सूफीज इन बीजापुर 1300-1700* शीर्षक से प्रकाशित भारतीय सूफियों पर मध्यकालीन साहित्य के अपने पीएचडी शोधप्रबंध (थिसिस) में ही वह सूफियों के विचारों व कार्यों एवं धर्मांतरण की उनकी पद्धतियों में शांति का कोई लक्षण पाने में विफल रहा था। उसने अपने शोध में पाया कि सभी प्रतिष्ठित सूफी, विशेष रूप से बीजापुर पहले पहुंचने वाले सूफी, भयानक जिहादी और हिंदुओं का उत्पीड़न करने वाले थे; ऐसा ही एक उदाहरण, पीर मआबरी का उदाहरण ऊपर दिया गया है।

सूफियों के बारे में उसके शोध का परिणाम ऐसा आंख खोलने वाला था कि भारत में मुसलमानों ने उसकी पुस्तक का विरोध किया, जिसका परिणाम भारत में उनकी पुस्तक के प्रतिबंध के रूप में आया। किंतु तब भी ईटन ने सूफियों के पक्ष में अपने मनगढ़ंत व आधारहीन पक्ष फैलाना बंद नहीं किया। कोई भी तार्किक व्यक्ति सूफियों के आध्यात्मिक व रहस्यमयी शक्तियों की कहानियों को ऊटपटांग मिथकों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानेगा। प्रोफेसर महमूद हबीब के अनुसार, समग्र शोध में पाया गया है कि इस प्रकार की कहानियां ''बाद के वर्षों में गढ़ दी'' गयीं थीं (नीचे देखें)। धर्मांतरण के संबंध में ऐतिहासिक अभिलेख एवं परिस्थितिजन्य साक्ष्य इस बात का समर्थन न के बराबर करते हैं कि सूफियों ने शांतिपूर्ण साधनों से बड़ी संख्या में काफिरों को इस्लाम में धर्मांतरित किया था। महान उदारवादी सूफी विद्वान अमीर खुसरो (चौदहवीं सदी) ने अपने वृत्तांतों में मुस्लिम शासकों द्वारा धर्मांतरण के लिये बड़ी संख्या में काफिरों को बलपूर्वक दास बनाने की अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है, किंतु उन्होंने कहीं भी किसी सूफी संत द्वारा शांति का उपदेश देने की ऐसी घटना का उल्लेख नहीं किया है, जिससे कि महत्वपूर्ण संख्या में हिंदू

---

[234] ईटन आरएम (2000), एस्सेज ऑन इस्लाम एंड इंडियन हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यू देल्ही, पृष्ठ 32

इस्लाम में सम्मिलित होने के लिये खिंचे चले आये हों। भारतीय सूफियों के विचार और काफिरों के धर्मांतरण में उनकी संलिप्तता के विषय में यहां कुछ विवरण दिया जाएगा।

सूफीवाद की उत्पत्तिः अल्लाह ने जिहाद को मुसलमानों के लिये ऐसा अनिवार्य कर्तव्य बनाया, जिसके अंतर्गत उन्हें तब तक लड़ते रहना है, जब तक कि इस्लाम-मानव जीवन के लिये सम्पूर्ण, सार्वभौमिक मार्गदर्शन- विश्व में एकमात्र धर्म न हो जाए [कुरआन 2:193]। अल्लाह ने मोमिनों का जीवन खरीद लिया है, उन्हें उसके आदेश के प्रति समर्पित होना ही होगा और जिहाद करना ही होगा- तथा इस प्रक्रिया में मारना और मरना ही होगा- जन्नत प्राप्त करने के लिये [कुरआन 9:111]। अल्लाह उन पर कृपालु रहता है, जो जिहाद में मारे जाते हैं, वे शहीद, सीधे जन्नत पहुंचते हैं: 'और जो अल्लाह के मार्ग में मारे गये हैं, उनके बारे में मत कहोः वे मर गये। नहीं, वे जीवित हैं, भले ही तुम (इसे) न देख पाओ' [कुरआन 2:154]। अल्लाह ने मुसलमानों से कहा कि वे अल्लाह के मार्ग में आगे बढ़ने के लिये 'अपने पिता, और अपने बेटों, और अपने भाई-बंधुओं, और अपनी बीवियों, और अपने कबीलों' से अपने संबंध तोड़ दें, साथ ही एक ही धुन पालकर सांसारिक संलिप्तता व आनंद से दूर रहें'' [कुरआन 9:24]।

रसूल मुहम्मद अपने नये पंथ की स्थापना के क्रम में अल्लाह के इन आदेशों पर चलाः उसके अनुयायियों ने अपने को अल्लाह के उद्देश्य के लिये समर्पित कर दिया- नमाज और रोजा आदि के लिये। और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि उन लोगों ने इस्लाम को धरती का एकमात्र मजहब बनाने के लिये अपने को जिहाद में झोंक दिया। मदीना जाने के बाद, जहां कि अल्लाह द्वारा जिहाद का सिद्धांत लाया गया था, रसूल मुहम्मद और उसका उग्रवादी समुदाय नये-नवेले इस्लामी राज्य की स्थापना के लिये आगे बढ़कर ऐसे आक्रामक व हिंसक जिहाद में संलिप्त हो गया, जिसमें लूटपाट, हमले और काफिरों के विरुद्ध जंग आते थे और यहां वे इन हमलों में लूटे गये माल पर ही जीवित थे। अल्लाह ने कहा [कुरआन 2:154], लड़ते समय शहादत मिलना जन्नत पहुंचने का पक्का मार्ग हैः और जन्नत प्राप्त करना ही इस जीवन में मुस्लिमों द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य का मुख्य उद्देश्य होता है। इसलिये जो उन पवित्र जंगों में मारे गये, वे सबसे बड़े भाग्यशाली माने गयेः क्योंकि उन्होंने शहीद होकर इस्लामी जन्नत का सीधा टिकट पा लिया था।

इस्लाम के आरंभिक वर्षों व दशकों में शहादत ओढ़ने की प्रेरणा ने जिहाद के व्यवसाय में बड़ी संख्या में जिहादी जोड़े। शहादत के माध्यम से इस्लाम के काम-वासना पूर्ण जन्नत में स्थान सुरक्षित करने के लिये- ऐसी जन्नत जो सेक्स की सेवा देने के लिये काली आंखों, उन्नत उरोजों वाली अपूर्व कुंवारी सुंदरियों से भरा हुआ है [कुरआन 44:51-54, 78:31-33]- उन जिहादियों ने अल्लाह के उद्देश्य में अपने को पूर्णतः संलिप्त करने हेतु रक्त संबंधों और सामाजिक बंधनों व सांसारिक संलिप्तता को छोड़ दिया। उनकी जीवनशैली कुछ इस प्रकार की ''असांसारिक''- सामाजिक अंतर्संबंधों से दूर नमाज में लिप्त और मुख्यतः शहादत प्राप्त करने के लिये जिहाद में संलिप्त होने के अवसरों के प्रति समर्पित हो गयी। जीवन के प्रति आरंभिक इस्लामी दृष्टि मोटा-मोटी कुछ ऐसी ही थी, जिसे रसूल मुहम्मद ने, अल्लाह की स्वीकृति से, अपने अनुयायियों में डाली थी।

आरंभिक इस्लाम के समय, विशेष रूप से रसूल मुहम्मद के दिनों में, लड़ने की आयु वाले एवं अच्छी शारीरिक स्थिति वाले सभी मुस्लिम पुरुषों को जिहादी अभियानों में भाग लेना आवश्यक माना जाता था। जैसे ही इस्लामी राज्य तीव्रता से विस्तृत हुआ और अधिक संगठित हुआ, तो यह राज्य शाही-वेतन पर नियमित फौजियों के रूप में जिहादियों की भर्ती करने लगा। अभी भी

दूसरे मुसलमान मात्र इस बात से प्रेरित होकर कि शहादत और फिर जन्नत मिलेगी, अल्लाह के उद्देश्य में जंग के लिये स्वैच्छिक रूप से अपने को समर्पित कर रहे थे। उन स्वैच्छिक जिहादियों, जिनका वर्णन विभिन्न प्रकार से उत्साही या साहसी के रूप में किया जाता है, को जब भी काफिरों के विरुद्ध जंग करने का अवसर मिलता, तो वे जिहाद में लग जाते थे। उन जिहादियों को राज्य कोषागार के स्थान पर उस ज़कात निधि से वेतन दिया जाता था, जो पूर्णतः मजहबी उद्देश्य के लिये बनी थी। जिहादी अभियानों में मिला लूट का माल भी उनकी आजीविका का भाग बना।

मुहम्मद बिन कासिम द्वारा अपने 6000 अरबी जिहादियों के साथ आकर उत्तरपश्चिम भारत में जिहादी जीत के लिये नयी सीमाओं को खोलने के बाद लूटपाट और धर्मांतरण कराने के लिये मुसलमानों के देश से उत्साही मुसलमान कासिम की फौज के साथ सिंध में टूट पड़े।[235] पक्के मुसलमानों में शहादत की इच्छा इतनी बलवती थी कि वे जिहादी जंग में सम्मिलित होने के लिये सैकड़ों मील दूर स्थित विदेशी धरती पर आने के लिये लालायित थे। डेनियल पाइप्स लिखते हैं, 'ऐसा इसलिये था, क्योंकि सन् 965 में 20,000 जिहादियों ने बैजेंटाइनों से लड़ने के लिये ईरान से सीरिया तक की 1000 मील की यात्रा की थी।' उस्मानिया साम्राज्य के विजेता बाल्कान में ईसाइयों के विरुद्ध जिहाद करने के लिये दूर-दराज के मुस्लिम क्षेत्रों से मुसलमान फौजियों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।[236]

आरंभिक उभार के पश्चात जिहाद के अभियान अपेक्षाकृत यदा-कदा ही होते रहे। जो जिहादी जीवित बच गये थे जिन्हें गाज़ी कहा गया, अल्लाह और मजहबी जीवन के प्रति समर्पित हो गये थे और इस आशा में सीमाओं पर किलों या रिबत (पिकेट) कहे जाने वाले अभेद्य स्थानों पर चले गये थे कि सीमा पर स्थित काफिरों के क्षेत्र में काफिरों के विरुद्ध शहादत का अभियान में भाग लेने का अवसर पुनः मिलेगा। शहादत की इच्छा रखने वाले नये जिहादी इस अपेक्षाकृत निठल्ले गाजियों के गिरोह की ओर आकर्षित होते रहे। ये जिहादी 14वीं सदी तक अंदलूसिया (स्पेन) में स्थित रिबत में बने रहे।[237]

ये ग़ाजी-जो मुराबित के नाम से भी जाने जाते हैं, जिसका मोटा-मोटी अर्थ होता है ''सीमा पर डटा घुड़सवार सिपाही''- उन उग्रवादी एकांतवास में प्रतीक्षारत थे कि जैसे ही जिहाद की पुकार हो, वे निकल पड़ें। उनका ये एकांतवास कभी-कभी तो बहुत लंबे समय तक बना रहता था। बहुत कम जिहाद में लड़ने और अपने परिवार व समाज से दूर रहकर वे एकाकीपन में रहने और कुछ-कुछ अकेले जीवन बिताने की प्रवृत्ति के अभ्यस्त होते जा रहे थे। उनमें से कुछ का जीवन धीरे-धीरे आलसी, मंद और अहिंसक हो गया था। अल्लाह के प्रति समर्पित और सांसारिक संलिप्तता के त्याग से उनकी जीवन शैली धीरे-धीरे वैसे ही और अधिक अहिंसक व काम-लोलुप हो गयी, जैसे कि ईसाई व बौद्ध मठों में रहने वाले साधुओं की थी। समय के साथ ये जिहादी सीमावर्ती एकांत-स्थान मजहबी आश्रमों के परिवर्तित हो गये, जैसा कि सर हैमिल्टन गिब बताते हैं, 'वह (रिबत) इस्लाम के भीतर मजहबी व

---

[235] इलियट एंड डाउसन, अंक प्रथम, पृष्ठ 435

[236] पाइप्स (1983), पृष्ठ 69

[237] गिब, पृष्ठ 33

रहस्यमयी आंदोलन (अर्थात सूफीवाद) के उभार से जुड़ गया...। बाद में जिहाद की व्याख्या सांसारिक मोहमाया से मुक्ति के लिये अपने भीतर आध्यात्मिक संघर्ष के रूप में की गयी।'[238]

रिबतों में रहने वाले कुछ तत्वों ने जीवन के शांतिपूर्ण व अहिंसक दृष्टि को अपनाना प्रारंभ कर दिया, और ये लोग ऐसे ही जीवन के अभ्यस्त हो गये। ये लोग समाज से निर्लिप्त होने तथा विलासिता व तड़क-भड़क से दूर रहने का उपदेश देने लगे। उमरुद्दीन लिखता है, 'इन लोगों का उद्देश्य ऐसी किसी भी प्रकार की संलिप्तता से दूर होना था, जो आत्मा को बांधती हों और उसके विकास को रोकती हों।'[239] समय के साथ, इस शांतिपूर्ण सिद्धांत के अनुयायियों को सूफियों के रूप में जाना जाने लगा, ये सूफी जंग से दूर हो गये; रिबत अब एक ऐसे केंद्र, आश्रयस्थल या विहार का रूप ले चुका था, जहां मजहबी जीवन जीने के लिये श्रद्धालु एकत्र होते थे।[240] बेंजामिन वाकर के अनुसार,

> आश्रम संबंधी सिद्धांतों पर अनेक सूफी व्यवस्थाएं स्थापित हुईं तथा प्रमुख सूफियों ने निर्धनता का महिमामंडन करते हुए लिखा, और वे भिखारियों के आदर्श (फकीर) व मजहबी भिक्षुक (दरवेश) के रूप में प्रतिष्ठित हुए। थोड़े से लोगों ने स्वेच्छा से संसार के आनंद- धन, प्रसिद्धि, त्यौहार, स्त्रियों और साहचर्य-को त्यागकर और निर्धनता, अज्ञातपना, भूख, काम-वंचना और एकांतवास धारण करने का प्रयास करते हुए ऐसी जीवन पद्धति स्वीकार की। यहां तक कि वे लोग अपशब्द और अपमान का भी स्वागत यह कहकर करते थे कि यह निंदा और उपहास से उदासीन रहकर आत्मा को बल देने का साधन हैं।[241]

इसलिये सूफीवाद के पूर्ववर्तियों की जड़ें उग्रवादी इस्लामी रुढ़िवादिता में है। उमरुद्दीन ने लिखा है, यह 'शासक वर्ग के अनीश्वरीय व्यवहारों, तर्कवादियों व दार्शनिकों की बौद्धिकता के विरुद्ध' प्रतिक्रिया के रूप में उभरा।[242] अब्बासी शासकों ने अरब की संस्कृति को किनारे करते हुए जजिया पद्धतियों और इस्लाम से पहले की फारसी सभ्यता (जिसे इस्लाम खा गया) की प्रथाओं को बनाये रखा था। अब्बासी शासकों ने नैतिकता में लचीलेपन को प्रोत्साहित किया। इसके विपरीत, दार्शनिकों ने प्लेटो और अरस्तू की सटीकता में विश्वास किया- न कि रसूलों में। उमरुद्दीन कहता है कि इन प्रवृत्तियों को रोकने के लिये सूफीवाद के सिद्धांतों का उदय हुआ और इसका व्यवहारिक नियम कुरआन, रसूल व उसके साथियों के जीवन पर आधारित था।'

---

238 इबिद

239 उमरुद्दीन, पृष्ठ 61

240 गिब, पृष्ठ 33-34

241 वाकर, पृष्ठ 305

242 उमरुद्दीन, पृष्ठ 58-59

उमरुद्दीन के अनुसार, 'अपने विकास के आरंभिक चरण में सूफीवाद इस्लाम (रुढ़िवादी इस्लाम) से बहुत भिन्न नहीं था। सूफियों ने अपने सिद्धांतों में इस्लाम की कुछ बातों पर (और अधिक) बल दिया'[243], जबकि अन्य बातों पर कम ध्यान दिया। बाद में सूफियों की कुछ शाखाएं नाटकीय ढंग से रूपांतरित हो गयीं और रुढ़िवादी इस्लाम के कठोर स्वरूप के विरोध में हो गयीं। रुढ़िवादी इस्लाम वाह्य कर्मकांडों व आडम्बरों का समूह बन चुका था और इससे आत्मा की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति न के बराबर होती थी। ये सूफी मूल रुढ़िवादी पथ से हट गये और शरिया नियमों के वाह्य आडम्बरवाद को मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के सबसे निम्न स्तर के रूप में देखा। सूफी का जीवन और उसके अनुयायी ऐसी रहस्यमयी जीवन यात्रा की ओर उद्यत हुए, 'जो नियम से मुक्ति, रुढ़िवादिता से आत्मप्रकाश और स्व की मुक्ति से ईश्वर में विलीन होने के चरणों से होता हुआ जाता था।'[244] शनैः-शनैः सूफी सिद्धांतों में बहुत सी नयी व समझौतापरक बातों की बाढ़ आ गयी, जिनमें से कुछ तो मतांतर, अश्रद्धा, और इस्लाम की अवज्ञा के बराबर थीं। समय के साथ कुछ विचलनकारी सूफी सर्वेश्वरवादी अ-इस्लामी सिद्धांत की ओर बढ़ गये। सर्वेश्वरवादी सिद्धांत ब्रह्मांड के रचयिता और मनुष्य व उसकी सभी रचनाओं को एक ही अस्तित्व से एकाकार करता है। इस्लाम के परंपरावादी भाव में सर्वेश्वरवाद वह सिद्धांत है, जो आत्म-समावेशन, आत्म-विलोपन, स्व को लोप को मानता है और मनुष्य व ईश्वर के समागम की ओर ले जाता है, इसलिये यह पवित्रता में दोष उत्पन्न करने वाला होता है। विकास के इस चरण में उन्हें किसी मार्गदर्शक (जैसे कि कोई पैगम्बर या रसूल) अथवा किसी विधि-पुस्तक (जैसे कि कुरआन) की आवश्यकता नहीं रह जाती है। वे रुढ़िवादी इस्लाम में वांछित लगभग सभी प्रथाओं जैसे कि शरिया, रोजा, नमाज, हज आदि को त्याग देते हैं। इस्लामी समाज में वे लोग बिशारिया अर्थात शरिया अथवा इस्लाम से बाहर माने जाते हैं।

मुख्यधारा के इस्लामी समाज में सूफीवाद को ग्राह्य बनाने वाले इमाम ग़ज़ाली (मृत्यु 1111) ने सूफी के लक्ष्य के विषय में लिखा है कि,

> 'सूफी रसूल के जीवन के प्रत्येक पक्ष को अक्षरशः अपने व्यवहार में उतारने का प्रयास करते थे। रसूल द्वारा प्रत्येक वर्ष एक निश्चित अवधि के लिये हीरा के खोह में जाकर ध्यान लगाया जाता था और इसीलिये सूफियों के लिये एक आदर्श था कि वे भी समाज से दूर होकर ध्यान करें। आनंदातिरेक और स्व का लोप करने का अभ्यास रसूल के नमाज में डूब जाने की प्रवृत्ति से स्थापित हुआ था। सूफीवाद का वैरागी पक्ष रसूल द्वारा साधारण जीवन जीने की प्रवृत्ति पर आधारित है...। वो अपने वस्त्र धोते थे, अपने जूते स्वयं ठीक करते थे, अपनी बकरियां स्वयं दुहते थे और उन्होंने कभी ऐसा अवसर नहीं दिया कि कोई दूसरा उनके इन कामों को करे।'[245]

भारतीय सूफीः यद्यपि कुछ सूफी इस्लाम से पूर्णतः दूर हो गये थे, किंतु अधिकांश सूफी रुढ़िवादी इस्लाम को ही मानते थे। ग़ज़ाली ने बारहवी सदी के मुस्लिम समाज में सूफी वर्चस्व बनाया। उसने मूलतः सूफियों के उन विचारों व रीतियों को मिटाया,

---

[243] इबिद, पृष्ठ 62

[244] वाकर, पृष्ठ. 304

[245] उमरुद्दीन, पृष्ठ 59-60

जो इस्लाम से बाहर थीं और इस्लामी रुढ़िवादिता को सूफीवाद के आकार में ढाला, जिससे सूफीवाद को मुस्लिम समाज में अधिक स्वीकार्यता मिली। इसलिये मुसलमानों में सूफीवाद का रुढ़िवादी स्वरूप स्वीकार्य हुआ और यह ग़ज़ाली के कारण हुआ। इस्लाम के अनुसार पथभ्रष्ट हो चुके बेशरिया सूफियों का बर्बर उत्पीड़न हुआ और यहां तक कि उनकी हत्याएं भी हुईं। उदाहरण के लिये, कट्टर रुढ़िवादी मुसलमान सुल्तान फिरोज़ शाह तुग़लक (मृत्यु 1338) ने अपने संस्मरण में लिखा है कि उसने दिल्ली के सूफी शेख रुकनुद्दीन को पकड़ा था, 'जो कि स्वयं को महादी (मसीहा) कहता था और लोगों को यह कहकर रहस्यमयी प्रथाओं व विकृत विचारों की ओर ले जाता था कि वह ईश्वर का दूत है।' लोगों ने रुकनुद्दीन व उसके कुछ अनुयायियों की हत्या कर दी; उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उनकी अस्थियां (हड्डियां) खंड-खंड कर दी।[246]

जब मध्य एशिया के तुर्कों ने भारत में प्रत्यक्ष मुस्लिम शासन की स्थापना (1206) में की, तो सूफीवाद, और सच कहें तो, ग़ज़ाली के रुढ़िवादी सूफीवाद ने मुस्लिम समाज में व्यापक स्वीकृति पा ली। मुस्लिम हमलावरों के पीछे-पीछे बड़ी संख्या में सूफी भारत आये।

भारत के महान सूफी पीरों में निज़ामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो, नसीरुद्दीन चिराग़, ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती और जलालुद्दीन आदि थे और ये सब अपेक्षाकृति धर्मांध इस्लामी और असहिष्णु विचारों वाले थे। इन्होंने इस्लाम के रुढ़िवादी विद्वानों अर्थात उलेमाओं का मान बढ़ाया और अपने अनुयायियों को मजहबी नियमों व सामाजिक व्यवहारों में उलेमाओं के नियमों का पालन करने को कहा। प्रसिद्ध अरब-स्पेनी सूफी विचारक इब्न अरबी (मृत्यु 1240) के अपरंपरागत, विवादास्पद सिद्धांतों व व्यवहारों से प्रभावित मुईनुद्दीन चिश्ती और निज़ामुद्दीन औलिया भारत में सबसे अधिक अपरंपरावादी और उदारवादी माने जाते हैं। रुढ़िवादियों को चिढ़ाते हुए इन्होंने अपने मजहबी व्यवहार में संगीतमय सत्र (समा) और नृत्य (रक्स) को ग्रहण किया। किंतु जब भी इस्लाम का वास्तविक प्रश्न आया, तो ये सूफी कभी परंपरागत रुढ़िवादिता के विरुद्ध एक शब्द नहीं बोले; इन्होंने सदैव मजहबी प्रकरणों में उलेमाओं को अपने से आगे रखा। यह प्रश्न उठा था कि सूफी दरवेशों द्वारा नृत्य व वाद्ययंत्रों को बजाने का जो काम किया जा रहा है, क्या इस्लाम में उसकी अनुमति है भी या नहीं? इस पर औलिया ने कहा, ''जो भी शरिया में वर्जित है, वह स्वीकार्य नहीं है।'' इस प्रश्न पर कि क्या विवादास्पद सूफी मजहबी प्रथाएं सही हैं या नहीं, औलिया ने कहा, ''वर्तमान में इस विवाद पर काजी (रुढ़िवादी उलेमा) जो निर्णय देंगे, वही मान्य होगा।''[247]

भारत के सूफियों की उलेमाओं से मतभिन्नता नहीं थी; दोनों का एक ही उद्देश्य था- इस्लाम का हित, यद्यपि दोनों इस उद्देश्य की पूर्ति अपनी-अपनी पद्धति से करना चाहते थे। औलिया कहा करता था, 'उलेमा जो अपने भाषणों से प्राप्त करना चाहते हैं, उसे हम अपने व्यवहार से प्राप्त करना चाहते हैं।' लंबे समय तक औलिया के सहायक रहे जमाल क़िवामुद्दीन ने कभी भी उसे

---

[246] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 378-79

[247] शर्मा, पृष्ठ 226

रसूल की सुन्नत की एक भी बात को छोड़ते नहीं देखा।[248] अन्य प्रमुख सूफियों के विचार तो और भी रुढ़िवादी थे। उदाहरण के लिये, महान सूफी संत नसीरुद्दीन चिराग सूफी पद्धति की उन बातों का शुद्धिकरण करते हुए उन्हें रुढ़िवादी स्वरूप में लाया। प्रोफेसर केए निज़ामी के अनुसार, उसने यह कहते हुए सूफी समुदाय में आ गये (शरिया से) विचलित सभी रीतियों व परंपराओं को वर्जित बना दिया कि ''अल्लाह और उसके रसूल ने जिसका आदेश दिया है, वही करो और जो कुछ भी अल्लाह और उसके रसूल ने वर्जित (हराम) किया है, वह कदापि न करो।'' निज़ामी आगे कहता हैः 'उसने सूफी संस्था को सुन्नत के अनुसार बनाया। जहां कहीं भी विरोधाभास होता था, वहां वह शरिया कानूनों की श्रेष्ठता को ऊपर रखता था।'[249]

सूफियों के विचारः इस भाग में, काफिरों पर और जिहाद जैसे हिंसक इस्लामी सिद्धांतों पर प्रमुख सूफियों के विचार और विशेष रूप से भारत के सूफियों के विचार को उनके मन-मस्तिष्क और विचारधारा को समझने के लिये सारांश रूप में दिया जाएगा। महानतम सूफी विचारक ग़ज़ाली जिहाद को लेकर अपने विचारों में अपेक्षाकृत अधिक रुढ़िवादी और हिंसक विचार रखता था। उसने मुसलमानों को परामर्श दिया कि,

> '...मुसलमान को वर्ष में कम से कम एक बार जिहाद करने अवश्य जाना चाहिए...। जब (काफिर अर्थात अ-मुस्लिम) गढ़ी में हों और भले ही उनमें स्त्रियां और बच्चे भी हों, तो मुसलमान को उन पर गुलेल से वार करना चाहिए। मुसलमान को उन (काफिरों अर्थात अ-मुस्लिमों) को जीवित जला देना चाहिए या उन्हें डुबाकर मार देना चाहिए...। मुसलमान को उनके वृक्षों को काट डालना चाहिए...। मुसलमान को उनकी उपयोगी पुस्तकों (बाइबिल, तौरात, रामायण आदि) को अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिए। जिहादी जो चाहें, वो सब काफिरों से छीनकर लूट के माल के रूप में ले सकते हैं...।'[250]

ज़िम्मी को पराजित व अपमानित अनुभव कराने हेतु लिये जाने वाले जजिया के प्रोटोकॉल के विषय में उसने लिखाः

> '...यहूदियों, ईसाइयों और मैजिअनों को जजिया भुगतान करना ही होगा... जजिया कर देते समय ज़िम्मी अपना सिर नीचे झुकाये रहे, जबकि कर लेने वाला अधिकारी उसकी दाढ़ी पकड़कर खींचे और उसके कान के नीचे गरदन पर प्रहार करे।'

उसने आगे शरिया और उमर की संधि में उल्लिखित उन बातों पर चलने को कहा, जो ज़िम्मियों को पंगु बनाने के लिये मानक के रूप में दिये गये हैं। उसने लिखाः

> 'उनको अपने बाग या गिरिजाघर की घंटियों के प्रत्यक्ष प्रदर्शन की अनुमति नहीं है...। उनके भवन मुसलमानों के भवन से ऊंचे नहीं हो सकते हैं, भले ही मुसलमानों के भवन कितने भी नीचे हों। ज़िम्मी सुसज्जित घोड़े या खच्चर पर नहीं बैठ सकता है; वह केवल गधे

---

[248] निज़ामी केए (1991ए) द लाइफ एंड टाइम्स ऑफ शेख निज़ामुद्दीन औलिया, न्यू देल्ही, पृष्ठ 138

[249] निज़ामी केए (1991बी) द लाइफ एंड टाइम्स ऑफ शेख नसीरुद्दीन चिराग़-प्रथम देल्ही, न्यू देल्ही, पृष्ठ. 100, 103

[250] बोस्टन, पृष्ठ. 199

की सवारी कर सकता है और वह भी तब जब उस गधे पर लगी काठी लकड़ी की हो... और उनके वस्त्र चीथड़े होने चाहिए... और यहां तक कि जब वे सार्वजनिक रूप से स्नान कर रहे हों, तो उनके मुख से कोई ध्वनि नहीं निकलनी चाहिए...।'[251]

प्रमुख भारतीय सूफियों ने अ-मुस्लिम या जिहाद जैसे विषयों पर अपने विचारों को बहुत अधिक नहीं प्रकट किया। यद्यपि कुछ यदा-कदा अवसरों पर की गयी उनकी टिप्पणियों से इन विषयों पर उनके विचार पर प्रकाश पड़ता है। सामान्य रूप से काफिरों और जिहाद पर उनके विचार महानतम सूफी पीर गज़ाली के अनुरूप ही थे।

निज़ामुद्दीन औलिया (1238-1325), जो कि रुढ़िवादी विचारधारा पर चलता था, ने यह कहते हुए हिंदुओं नर्क (जहन्नुम) की आग में जलने वाला बताता था कि: 'मृत्यु के समय अ-मुस्लिम दंड का अनुभव करेंगे। उस समय, वे मजहब (इस्लाम) स्वीकार करेंगे, किंतु तब यह उनका ईमान लाना नहीं माना जाएगा, क्योंकि अदृश्य में ईमान नहीं होगा...। मृत्यु के समय किसी अ-मुस्लिम के इस्लाम स्वीकार करने से उसे ईमान लाने वाला मानना स्वीकार्य नहीं है।' उसने बल देकर कहा कि 'कयामत के दिन जब अ-मुस्लिम दंड व यातना पायेंगे, तो वे मजहब स्वीकार कर लेंगे, किंतु तब मजहब उन्हें कोई लाभ नहीं देगा...। भले ही वे वहां एक मोमिन के रूप में जाएंगे, पर पर वो भी जहन्नुम में ही जाएंगे।'[252] अपने खुत्बा (उपदेश) में निज़ामुद्दीन औलिया अ-मुस्लिमों को दुष्ट कहकर अपमानित करता था और कहता था, 'उस (अल्लाह) ने मुसलमानों के लिये जन्नत और अ-मुस्लिमों के लिये जहन्नुम बनाया है, जिससे कि उन दुष्टों (अ-मुस्लिमों) ने जो किया है, उसका दंड भोगें।'[253]

अ-मुस्लिमों के विरुद्ध जिहाद पर औलिया के विचार को उसके इस कथन से जाना जा सकता है, जिसमें उसने कहा था कि कुरआन के प्रथम अध्याय सूरा फातिहा में इस्लाम की वो दो आयतें नहीं हैं, जो अ-मुस्लिमों से जंग करने और अल्लाह के विधिक आदेश का पालन करने के बारे में उन दस आधारभूत आयतों में से लिखा है....।'' औलिया न केवल अ-मुस्लिमों से जंग करने अर्थात जिहाद करने में विश्वास रखता था, अपितु वह अपने अनुयायियों के साथ भारत में जिहाद करने ही आया था। उसने मुल्तान में नसीरुद्दीन क़िबाचा के नेतृत्व में हुए जिहाद में भाग लिया था। जब क़िबाचा की फौज पराजय का सामना करते हुए विपत्ति में फंस गयी, तो औलिया भागा-भागा उसके पास गया और अपना जादुई तीर उसे देकर बोला: 'इस तीर को काफिरों (अ-मुस्लिमों) की सेना की ओर छोड़ो।'... जैसा कहा गया, क़िबाचा ने वैसा ही किया, और जब दिन ढला, तो एक भी काफिर नहीं दिख रहा था; वे सब भाग गये थे![254] जब क़ाजी मुग़ीसुद्दीन ने मलिक काफूर के नेतृत्व में दक्षिण भारत में चल रहे जिहाद में जीत की संभावना के बारे में पूछा, तो औलिया अतिरेक से भरे आत्मविश्वास में बोलाः 'यह जीत क्या? मैं तो और भी विजयों की प्रतीक्षा

---

251 इबिद

252 शर्मा, पृष्ठ 228-29

253 निज़ामी (1991ए), पृष्ठ 185

254 इबिद, पृष्ठ 232

कर रहा हूं।'[255] सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा जिहादी अभियानों में लूटी गयी धन-संपत्ति में से बड़ी मात्रा में उपहार भेजता था और औलिया उन्हें स्वीकार करता था तथा गर्व से उन उपहारों को अपने खनक़ाह (ठहरने के स्थान) में प्रदर्शित करता था।[256]

ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती (1141-1230), जो संभवतः भारत का दूसरा सबसे बड़ा सूफी पीर है, निज़ामुद्दीन औलिया के बाद भारत आया। मुईनुद्दीन चिश्ती ने भी हिंदू धर्म और परंपराओं के प्रति असीम घृणा दिखायी। वह अजमेर में अनासागर झील के निकट पहुंचा, तो उसने वहां बहुत से मूर्तियों वाले मंदिर देखे, जिस पर उसने वादा किया कि अल्लाह और उसके रसूल की सहायता से वह उन मूर्तियों-मंदिरों का विध्वंस कर देगा। वहां बसने के बाद ख्वाजा के अनुयायी उसके लिये उसी प्रसिद्ध मंदिर के पास गाय (हिंदुओं के लिये पवित्र) लाते थे और काटकर उसका कबाब बनाते थे, जहां राजा और हिंदू पूजा करते थे। यह हिंदू धर्म के प्रति उसकी घृणा को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इस्लाम के चमत्कार को सिद्ध करने के लिये उसके बारे में एक झूठी कहानी गढ़ी गयी कि 'उसने अपनी आध्यात्मिक ताकत की गर्मी से अनासागर व पनसेला झील (हिंदुओं के लिये पवित्र) को सुखा दिया था।'[257] चिश्ती भी अपने अनुयायियों के साथ काफिरों से जिहाद लड़ने आया था और उसने सुल्तान महमूद ग़ोरी के उस कपटी जिहाद में भाग लिया, जिसमें दयालु व पराक्रमी हिंदू राजा पृथ्वीराज चौहान को अजमेर में पराजित किया गया था। अपने जिहादी उत्साह में चिश्ती इस जीत का श्रेय स्वयं को देते हुए बोला था: 'हमने पिथाउरा (पृथ्वीराज) को जीवित पकड़ लिया है और उसे इस्लाम की फौज को सौंप दिया है।'[258]

शेख निज़ामुद्दीन औलिया के चहेते चेले *अमीर खुसरो* (1253-1325) की सराहना महानतम उदारवादी सूफी कवि के रूप में की जाती है। अनेक इतिहासकार मानते हैं कि उसका भारत आना प्रायद्वीप के लिये कृपा थी। उसे तीन सुल्तानों के शाही दरबार में कार्य करने का अवसर मिला था। भारत के महानतम कवियों में से एक माने जाने वाले खुसरो को भारतीय शास्त्रीय संगीत और कव्वाली (सूफी मजहबी संगीत) का सर्जक माना जाता है। तबला (भारतीय ड्रम) के अविष्कार का श्रेय भी उसी को दिया जाता है।

संगीत और कविता में अमीर खुसरो की उपलब्धियों पर तनिक भी संशय नहीं है। किंतु जब बात पराजित काफिरों और उनके धर्म की आती है, तो उसका धर्मांध इस्लामी भाव स्पष्ट दिखता है। हिंदू राजाओं पर मुसलमानों की विजय का वर्णन करते हुए वह उनकी धार्मिक परंपराओं का उपहास करता है, जैसे कि वह ''पेड़-पौधों'' और ''पत्थर की मूर्तियों'' की पूजा करने वाला कहकर उनका उपहास करता है। मुस्लिम जिहादियों द्वारा नष्ट की गयी पत्थर की मूर्तियों की हंसी उड़ाते हुए उसने लिखा: 'मुहम्मद के मजहब का उत्कर्ष करने के लिये अल्लाह का महिमामंडन करो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि गब्र (मूर्तिपूजकों के लिये प्रयोग

---

[255] इबिद

[256] शर्मा, पृष्ठ 200

[257] इबिद, पृष्ठ 230

[258] इबिद

किया जाने वाला अपशब्द) लोगों द्वारा पत्थर पूजे जाते हैं, पर तब भी पत्थरों से उन्हें कुछ भी नहीं मिलता है, वे जब ऊपर जाते हैं, तो उनके पास केवल उस पूजा की निरर्थकता ही होती है।''[259]

अमीर खुसरो मुसलमान जिहादियों द्वारा हिंदू बंदियों के बर्बर नरसंहार का वर्णन करने में आनंद का अनुभव करता था। 1303 में चित्तौड़ विजय के बाद खिज्र खान द्वारा 30,000 हिंदुओं की हत्या के आदेश का वर्णन करते हुए वह आनंद प्रकट कर रहा थाः 'अल्लाह की महिमा! कि उसने, अपने काफिरों को काटने वाली तलवार से, इस्लाम के झंडे के नीचे न आने वाले हिंद के सभी सरदारों की सामूहिक हत्या का आदेश दिया...। अल्लाह के इस खलीफा के नाम में, कि (भारत में) पाखंड का कोई अधिकार नहीं होगा।'[260] वह मलिक काफूर द्वारा दक्षिण भारत में प्रसिद्ध हिंदू मंदिरों को नष्ट करने एवं हिंदुओं व उनके पुजारियों के नरसंहार का वर्णन करते हुए काव्य-आनंद लेता था।[261] उस नरसंहार का वर्णन करते हुए उसने लिखा, '...ब्राह्मणों और हिंदुओं के सिर उनकी गरदन से पृथक हुए और भूमि पर उनके पैरों में गिरे तथा रक्त-धारा फूट पड़ी।' भारत में हिंदुओं की निरीह पराजय और इस्लाम की बर्बर जीत पर अपनी धर्मांध प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उसने लिखाः

> पूरा देश, हमारे पवित्र जिहादियों के तलवार के बल पर, ऐसा बना दिया गया है, मानों आग ने किसी वन के कांटों का नाश कर दिया हो? इस्लाम विजय है, मूर्तिपूजा पराजित है। यदि कानून ने जजिया के भुगतान पर मृत्यु से छूट न दी होती, तो हिंद का नाम, इतिहास और शाखा सब मिट गयी होतीं।[262]

अमीर खुसरो ने मुस्लिम विजेताओं द्वारा हिंदुओं पर की गयी बर्बर क्रूरता की अनेक घटनाओं का वर्णन, प्रायः आपत्तिजनक शब्दों में, किया है। किंतु उसने कहीं भी दुख या पश्चाताप का कोई लक्षण नहीं प्रकट किया है, अपितु वह इन घटनाओं के वर्णन में आनंद का अनुभव करता रहा। बर्बरता के उन अपराधों का वर्णन करते हुए वह निरपवाद रूप से यह कहकर अल्लाह के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता रहा और मुहम्मद का महिमा मंडन करता रहा कि उसने मुसलमान जिहादियों को उन वैभवशाली विजय को प्राप्त करने योग्य बनाया।

अन्य सूफी: एक और सूफी पीर जो भारत आया, उसका नाम था शेख मखदम जलालुद्दीन बिन मोहम्मद, जो हज़रत शाह जलाल के रूप में प्रसिद्ध है और वह बंगाल के सिलहट में बस गया था (आगे इस पर बात की जाएगी)। इन अत्यंत सम्मानित सूफी पीरों के अतिरिक्त, कुछ और महान सूफी व्यक्तित्व जैसे शेख बहाउद्दीन ज़कारिया, शेख नुरुद्दीन मुबारक ग़जनवी, शेख अहमद सरहिंदी और शेख शाह वलीउल्लाह आदि थे, जिनकी कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने उनके अपेक्षाकृत रुढ़िवादी विचारों के कारण

---

259 इलियट एंड डाउसन, अंक तृतीय, पृष्ठ 81-83

260 इबिद, पृष्ठ 77

261 इबिद, पृष्ठ 91

262 इबिद, पृष्ठ 545-46

बहुत निंदा की है। उदाहरण के लिये सुहरावर्दी सम्प्रदाय का महान इस्लामी विद्वान व सूफी शेख मुबारक ग़जनवी के मन में अ-मुस्लिमों (काफिरों) व उनके धर्म के प्रति घोर असम्मान व हिंसक घृणा थी। वह सुल्तानों को स्मरण कराया करता था कि ''सुल्तान मजहब की रक्षा करने के अपने कर्तव्य को तब तक पूरा नहीं कर पायेंगे, जब तक कि वे कुफ्र और काफिरपने, शिर्क (अल्लाह के बराबर किसी और को पूजनीय मानना, बहुदेववाद) तथा मूर्तिपूजा को पूर्णतः उखाड़ नहीं फेंकेंगे, और ये सब अल्लाह के वास्ते तथा रसूल मुहम्मद के दीन की रक्षा के लिये सम्मान के भाव की प्रेरणा से किया जाए।''[263] यद्यपि, उसने परामर्श दिया कि यदि ऐसा करने के लिये असंभव स्थिति हो तो ''...यदि कुफ्र की गहरी जड़ों और काफिरों व मुशरिकों (मूर्तिपूजकों अथवा बहुदेववादियों) की बड़ी संख्या के कारण मूर्तिपूजा का समूल नाश संभव न हो, तो सुल्तानों को कम से कम मुशरिकों व मूर्तिपूजक हिंदुओं को अपमानित करने, कलंकित करने और अपयश देने के लिये आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि मुशरिक व मूर्तिपूजक हिंदू अल्लाह व उसके रसूल के सबसे बड़े शत्रु हैं।''[264]

भले ही आधुनिक इतिहासकारों ने इन सूफियों की निंदा की हो, किंतु ये अपने समय में अत्यंत लोकप्रिय थे और उलेमाओं में इनका बड़ा सम्मान था। विशेष रूप से शासक वर्ग में इनका बहुत सम्मान था, इसलिये ये राज्य-नीति के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाते थे। सूफी उस्ताद बहाउद्दीन ज़कारिया एवं नुरुद्दीन मुबारक उच्च इस्लामी पद-शेख उल-इस्लाम धारण करते थे। यह पद सामान्यतः इस्लाम के सर्वाधिक विख्यात विद्वानों को प्रदान किया जाता था। इन लोकप्रिय, किंतु अधिक रुढ़िवादी सूफियों के विचारों के और विवरण में जाए बिना ही, आइये हम उस भूमिका को देखें, जो इस्लाम के प्रसार में सूफियों ने निभाया।

इस्लाम के प्रसार में सूफीः सूफियों को शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों द्वारा बड़ी संख्या में काफिरों का धर्मांतरण कराने का श्रेय दिया जाता है। किंतु इस दावे का प्रमाण न के बराबर है। इस विमर्श में सबसे पहले दो बिंदुओं पर विचार किया जाना चाहिए। पहला, सूफी 13वीं और 14वीं सदी के आरंभ में संगठित व स्वीकार्य समुदाय बने। इस समय तक, मध्यपूर्व, फारस, इजिप्ट और उत्तरी अफ्रीका के लोग बड़े स्तर पर मुसलमान बन चुके थे। सूफी इन लोगों के धर्मांतरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा पाने की स्थिति में नहीं रहे। इससे सहमति व्यक्त करते हुए फ्रांसिस रॉबिन्सन कहते हैं, सूफियों ने '13वीं सदी के बाद से इस्लाम के उल्लेखनीय प्रसार' में अग्रणी भूमिका निभायी।[265] दूसरा, इस्लाम का प्रसार आगे बढ़ सके, इसके लिये उनके कथित शांतिपूर्ण मिशन से पूर्व सूफियों को इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित करने के लिये निरंतर सत्ता और तलवार के आतंक की आवश्यकता थी।

मध्यभारत के महानतम सूफी पीरों के व्यवहार व सोच, जैसा कि उपर विमर्श किया गया है, उन रुढ़िवादी इस्लामियों से भिन्न नहीं थी, जो काफिरों के धर्मांतरण के लिये कुरआन, सुन्नत और शरिया के अनुरूप अनियंत्रित बल प्रयोग का पक्ष लेते थे। भारत के प्रसिद्ध सूफियों ने इस्लाम को विजेता बनाने के लिये हिंसक जिहाद का समर्थन निरंतर किया। निज़ामुद्दीन औलिया और

---

[263] इबिद, पृष्ठ 179

[264] इबिद, पृष्ठ 183

[265] रॉबिन्सन एफ (2000) इस्लाम एंड मुस्लिम हिस्ट्री इन साउथ एशिया, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यू देल्ही, पृष्ठ 31-32

मोईनुद्दीन चिश्ती जैसे भारत के प्रसिद्ध सूफी पीर तो काफिरों के विरुद्ध जिहाद लड़ने ही भारत आये थे और इन दोनों ने जिहादी जंग लड़ी। औलिया ने भी बंगाल के महान सूफी पीर शेख शाह जलाल को 360 जिहादियों के साथ भेजा कि वे सिलहट के राजा गौर गोविंद के विरुद्ध जिहाद में भाग लें। बीजापुर के प्रसिद्ध सूफी भी काफिरों के नरसंहार एवं इस्लामी शासन की स्थापना के लिये वहां जिहादी के रूप में वहां आया था (जैसा कि पहले ही बताया गया है)।

बंगाल में सूफियों द्वारा धर्मांतरणः इस दावे का कहीं कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है कि सूफियों ने शांतिपूर्ण ढंग से बड़ी संख्या में अ-मुस्लिमों को इस्लाम में धर्मांतरित किया। इसके अतिरिक्त, अधिकांश सूफी सहिष्णु नहीं थे, अपितु वे हिंसक जिहादी सोच के थे और वे स्वयं भी जिहादी ही थे। मैं दो ज्ञानी धर्मनिरपेक्ष बांग्लादेशी विद्वानों से मित्रवत् विमर्श में इन विषयों पर बात कर रहा था, तो उन्होंने मुझे बताया कि कम से कम बांग्लादेश में तो सूफियों ने शांतिपूर्ण साधनों से इस्लाम का प्रसार किया था। यह बात नेहमिआ लेवत्जिऑन के उस मत से मिलता-जुलता है कि 'विशेष रूप से पूर्वी बंगाल के लगभग सम्पूर्ण धर्मांतरण की उपलब्धि प्राप्त कराने में सूफियों की भूमिका महत्वपूर्ण थी।'[266]

नीचे दिये गये बंगाल के दो महान सूफी पीरों की पड़ताल से हमें उस भूमिका की झलक मिलेगी, जो सूफियों ने धर्मांतरण में निभायी थी और यह भी ज्ञात होगा कि उनका यह कार्य कितना शांतिपूर्ण था। दो जलालुद्दीन, शेख जलालुद्दीन तबरीज़ी (मृत्यु 1226 या 1244) और शेख शाह जलाल (मृत्यु 1347) बंगाल के बडे सूफी पीर थे। शेख जलालुद्दीन तबरीज़ी बंगाल तब आया, जब बख्तियार खिलजी ने 1205 में हिंदू राजा लक्ष्मण सेन को पराजित कर बंगाल जीत लिया था। वह पांडुआ (मालदा, पश्चिम बंगाल) में रहने लगा। उसके बारे में कहा जाता है कि उसने ''बड़ी संख्या में काफिरों को इस्लाम में धर्मांतरित'' किया था, किंतु उसके धर्मांतरण कराने की पद्धति अज्ञात है। सईद अख्तर अब्बास रिज़वी के अनुसार, 'किसी काफिर (हिंदू या बौद्ध) ने (देवतल) में एक विशाल मंदिर और कुआं बनवाया था। शेख ने उस मंदिर को नष्ट कर दिया और वहां एक ताकिया (खनक़ाह) का निर्माण कराया... ।[267] इससे यह भली प्रकार पता चलता है कि काफिरों को इस्लाम में धर्मांतरित करने के लिये सूफियों ने किस प्रकार के साधन अपनाये थे।[268]

बंगाल का एक और बड़ा सूफी शेख जलाल सिहलट में बस गया था। बांग्लादेशी मुसलमानों द्वारा इसका सम्मान राष्ट्रीय नायक के रूप में किया जाता है। शाह जलाल और उसके अनुयायियों को शांतिपूर्ण साधनों के माध्यम से की बड़ी संख्या को इस्लाम में धर्मांतरित कराने का श्रेय दिया जाता है।

---

[266] लेवत्जिऑन एन (1979) टुवार्ड एक कम्परेटिव स्टडी ऑफ इस्लामाइजेशन, इन कन्वर्शेसन टू इस्लाम, पृष्ठ 18

[267] रिज़वी एसएए (1978) ए हिस्ट्री ऑफ सूफिज्म इन इंडिया, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, न्यू देल्ही, अंक प्रथम, पृष्ठ 201

[268] कश्मीर में, महान सूफी दरवेश सईद अली हमदानी ने भी अपना खनकाह बनाने के लिये एक मंदिर तोड़ा था। हिंदुओं का धर्मांतरण कराने में प्रयुक्त पद्धतियों को लेकर इन दोनों सूफी पीरों में समानता प्रतीत होती है (नीचे देखें)।

जब शाह जलाल पूर्वी बंगाल (आज का बांग्लादेश) के सिलहट में बसने आया, तो वहां एक हिंदू राजा गौड़ गोविंद का शासन था। उसके बंगाल पहुंचने से पूर्व गौड़ के सुल्तान शम्सुद्दीन फिरूज़ शाह ने दो बार गौड़ गोविंद पर हमला किया था; इन हमलों का नेतृत्व उसके भतीजे सिकंदर खान ग़ाजी ने किया था। दोनों बार मुस्लिम हमलावर पराजित हुए थे।[269] गौड़ गोविंद पर तीसरे हमले की कमान सुल्तान के मुख्य जनरल नसीरुद्दीन ने संभाली। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने 360 अनुयायियों के साथ अपने प्रसिद्ध चेले शाह जलाल को इस जिहादी अभियान में भाग लेने भेजा। शाह जलाल अपने जिहादियों के साथ बंगाल पहुंचा और मुस्लिम फौज में जुड़ गया। भयानक संघर्ष हुआ, जिसमें राजा गौड़ गोविंद पराजित हो गये।[270] परंपरागत कथाओं के अनुसार, मुसलमानों की विजय का श्रेय शाह जलाल और उसके अनुयायियों को जाता है।

जैसा कि सामान्य नियम है, मुस्लिम अभियानों की प्रत्येक जीत से बड़ी संख्या में दास मिलते हैं, तो प्रायः हजारों-लाखों लोग बंदी के रूप में दास बना लिये जाते थे और ये लोग बलपूर्वक मुसलमान बना दिये जाते थे। निस्संदेह सिलहट में अपने आने के पहले दिन से ही शाह जलाल ने तलवार की नोंक पर अ-मुस्लिमों को दास बनाकर उनका बड़े स्तर पर धर्मांतरण कराने में सहायता की। अहा! यह इस्लाम के प्रसार का कितना शांतिपूर्ण साधन है ना! इब्न बतूता, जो सिलहट में शाह से मिलने गया था, लिखता है कि 'वहां जिन काफिरों ने इस्लाम स्वीकार किया, उनको इस्लाम में धर्मांतरित करने में शाह का प्रयास बड़ा फलदायी रहा।'[271] किंतु बतूता उन उपायों का विवरण नहीं देता है, जिसको अपनाकर सूफी पीरों ने धर्मांतरण कराया था। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि शाह जलाल 'जिहाद (पवित्र जंग) में भाग लेने के लिये अपने 700 साथियों के साथ भारत आया था'[272] और उसने राजा गौर गोविंद के विरुद्ध खूनी जिहाद लड़ा था। ये घटनाएं स्पष्ट रूप से बताती हैं कि उसने सिलहट के हिंदुओं को धर्मांतरित करने में किस उपकरण का प्रयोग किया था।

एक दूसरी घटना में सूफी पीर नूर कुत्ब-ए-आलम ने बंगाल में उच्च वर्ग के लोगों के धर्मांतरण में मुख्य भूमिका निभायी। 1414 में हिंदू राजकुमार गणेश ने मुस्लिम शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और बंगाल की सत्ता अपने हाथ में कर ली। सत्ता पर एक हिंदू के बैठने से सूफियों और उलेमा वर्ग दोनों में घोर घृणा पनप गयी। उन्होंने उसके शासन को अस्वीकार कर दिया और बंगाल के बाहर के मुस्लिम शासकों की सहायता मांगी। उसकी पुकार सुनकर इब्राहीम शाह शर्की ने बंगाल पर हमला किया और

---

[269] एक अनुश्रुति यह है कि राजा गौर गोविंद पर हमला इसलिये हुआ था, क्योंकि उन्होंने गाय काटने के अपराध में किसी शेख बुरहुद्दीन और उसके बेटे को दंडित किया था। उस गोमांस का एक टुकड़ा राजा के मंदिर में भी फेंका गया था, जिससे राजा क्रोधित हो गये थे। इस प्रकार की कथाओं को इस तथ्य के आलोक में देखा जाना चाहिए कि मुसलमानों ने भारत के प्रत्येक कोने में हमला किया था और ऐसा नहीं था कि प्रत्येक हमले में उन्हें इस प्रकार के वैध कारण की आवश्यकता पड़ती थी।

[270] हज़रत शाह जलाल, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Hazrat_Shah_Jalal

[271] गिब, पृष्ठ 269

[272] शाह जलाल (आर), बांग्लापीडिया; http://banglapedia.search.com.bd/HT/S_0238.htm

गणेश को पराजित किया। बंगाल का अग्रणी सूफी पीर नूर कुत्ब-ए-आलम संधि कराने आगे बढ़ा। उसने गणेश को सिंहासन से हटा दिया और उसके 12 वर्षीय बेटे जद्दू को मुसलमान बनाकर सुल्तान जलालुद्दीन मुहम्मद के नाम से सिंहासन पर बिठाया।[273] सूफी पीर द्वारा कराये गये इस धर्मांतरण को आप चाहे शांतिपूर्ण कहें या तलवार की नोंक पर कराया गया कहें, पर यह इस्लाम के लिये वरदान सिद्ध हुआ। सूफियों (उलेमाओं ने भी) ने इस धर्मांतरित युवा सुल्तान को ऐसा प्रशिक्षित किया कि वह काफिरों पर भयानक हिंसा कर उन्हें मुसलमान बनाने वाला दरिंदा बन गया। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया में लिखा है, जलालुद्दीन मुहम्मद के शासन (1414-31) में धर्मांतरण की लहर चली।[274] बंगाल के हिंदुओं को इस्लाम में धर्मांतरित करने में जलालुद्दीन की महत्वूपर्ण भूमिका के विषय में डॉ. जेम्स वाइज ने द जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (1894) में लिखा है कि 'उसने एक ही विकल्प दिया था या तो कुरआन अथवा मृत्यु... बहुत से हिंदू कामरूप और असम के जंगलों में चले गये, किंतु तब भी ऐसा हुआ कि इस्लाम में जितने मुसलमान इन 17 वर्षों (1414-31) में जुड़े, उतने आने वाले तीन सौ वर्षों में भी नहीं जुड़े।'[275]

प्रोफेसर इश्तियाक हुसैन कुरैशी एक रोचक बात बताते हैं कि बंगाल में सूफियों ने हिंदुओं और बौद्धों के धर्मांतरण में महत्वपूर्ण मिशनरी भूमिका निभायी थी, किंतु यह भूमिका ''रुढ़िवादी'' के रूप में निभायी थी।[276] इसका अर्थ यह हुआ कि बंगाल के सूफी अपने मजहबी सिद्धांतों में कठोर थे; इसलिये वहां के काफिरों के धर्मांतरण में सैद्धांतिक समझौता और शांतिपूर्ण प्रेरणा की पद्धति होने की संभावना नहीं बचती है, क्योंकि रुढ़िवादिता में काफिरों के धर्मांतरण के लिये अनियंत्रित बल का प्रयोग वांछनीय होता है। इश्तियाक ने यह कहते हुए बंगाल के सूफियों की धर्मांधता का साक्ष्य दिया है कि 'उन्होंने अपने खनक़ाह और इबादत स्थल उन्हीं स्थानों (मंदिरों) पर बनाये, जो इस्लाम के पहले से ही पवित्र तीर्थस्थान की छवि रखते थे।' इश्तियाक हमें बताना चाहते हैं कि हिंदू या बौद्ध मंदिरों (नष्ट करने के बाद) के स्थान पर अपना खनक़ाह बनाना, जो कि प्रत्येक स्थान पर सूफियों की प्रवृत्ति रही, वहां के निवासियों के धर्मांतरण का एक सुविधाजनक केंद्र बना, जैसा कि लेवत्जिऑन इससे सहमत होते हुए कहते हैं, '(सूफियों ने) बौद्धों के पवित्र स्थलों अर्थात विहारों व मंदिरों पर पर अपने खनक़ाह बनाये, और (यह) बंगाल की धार्मिक स्थिति में ठीक से फिट हो गयी।'[277]

---

[273] शर्मा, पृष्ठ 243-44

[274] स्मिथ, पृष्ठ 272

[275] लाल केएस (1990) इंडियन मुस्लिमः हू आर दे, वॉयस ऑफ इंडिया, न्यू देल्ही, पृष्ठ 57

[276] कुरैशी आईएस (1962) द मुस्लिम कम्युनिटी ऑफ द इंडो-पाकिस्तान सबकांटिनेंट (610-1947), 'एस-ग्रेवनहेज, पृष्ठ 74

[277] लेवत्जिऑन एन (1979) इन कन्वर्जन टू इस्लाम, पृष्ठ 18

यह कहना अत्यंत अविश्वसनीय है कि बंगाल के हिंदू और बौद्धों को अच्छा लगा होगा कि सूफियों ने उनके मंदिरों को तोड़ा और उन पर खनक़ाह बनाये, जिससे स्थानीय लोग उनसे सरलता से जुड़ गये।[278] वास्तव में भारतीय इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है कि जब तक मुसलमान हिंदुओं और अन्य अ-मुस्लिम समुदायों के बीच शांति से रहे, उन्होंने उनका सदैव स्वागत किया, किंतु जब मुसलमानों ने उनके धर्म पर प्रहार किया, तो उन्होंने उनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मुस्लिम हमलावरों ने भारत के मूल निवासियों के बीच अनवरत विद्रोह व कलह का जो बीज बोया था, उसके पीछे का उद्देश्य जितना राजनीतिक था, उतना ही उनकी धार्मिक संस्थाओं व संस्कृति पर आघात करने की मंशा वाला भी था। इस तथ्य की पुष्टि जवाहर लाल नेहरू ने अपने लेखों में बार-बार की है। कथित उदारवादी अकबर और (कश्मीर में) उदारवादी ज़ैनुल आब्दीन, जिन्होंने धार्मिक उत्पीड़न पर रोक लगायी और धार्मिक स्वतंत्रता की अनुमति दी, के शासन शांतिप्रिय व समृद्ध थे। इससे सिद्ध होता है कि जब भी मुसलमानों, चाहे शासक रहे हों या सूफी, ने भारतीयों के धार्मिक प्रतीकों पर आघात किया, तो भारतीयों वह कभी अच्छा नहीं लगा। इसके अतिरिक्त, वो बौद्ध, जो बंगाल में इस्लाम स्वीकार करने वालों में से सबसे अधिक थे, अपने पूर्व की हिंदू आस्था को त्यागकर अपनी इच्छा से बौद्ध धर्म में इसलिये आये थे, क्योंकि बौद्ध धर्म की प्रकृति शांतिप्रिय व अ-हिंसक थी। जब मुसलमानों ने उन बौद्धों के मंदिरों व विहारों पर हमला कर उन पर मस्जिदें व खनक़ाह बनाये, तो निश्चित रूप से बौद्धों में मुसलमानों के प्रति अनुकूल भाव नहीं जागा, अपितु बड़ी घृणा पनपी।

कश्मीर में भयाक्रांत करने वाले सूफियों द्वारा धर्मांतरण: फारसी वृत्तांत व कृतियां बहारिस्तान-ए-शाही और तारीख-ए-कश्मीर (1620) कश्मीर में हिंदुओं के धर्मांतरण में सूफियों की संलिप्तता के विषय में विस्तृत जानकारी देती हैं। कश्मीर पहुंचने वाला सबसे बड़ा सूफी अमीर शम्सुद्दीन मुहम्मद ईराकी था। उसने मलिक मूसा रैना के साथ सुदृढ़ संबंध बनाये। मलिक मूसा 1501 में कश्मीर का प्रशासक हुआ था। पूर्व के सुल्तान ज़ैनुल आब्दीन (1423-74) कश्मीर के ऐसे एकमात्र उदारवादी व सहिष्णु शासक थे, जिन्होंने उस हिंदू धर्म के पल्लवित होने के लिये धार्मिक स्वतंत्रता की अनुमति दी, 'जो सिकंदर बुतशिकन के शासन में रौंदी गयी थी।'[279] बहारिस्तान-ए-शाही में लिखा है, मलिक रैना के संरक्षण व प्रभुत्व से 'अमीर शम्सुद्दीन ने मूर्तिपूजा के सभी स्थानों को नष्ट करने के साथ ही कुफ्र व इस्लाम में अविश्वास के विनाश का बीड़ा उठाया था। उसने मूर्ति-पूजा के जो भी स्थल नष्ट किये, उन पर मस्जिदें बनाकर इस्लामी ढंग से इबादत करने का आदेश दिया।'[280] सुल्तान युसुफ शाह के दरबार में कार्यरत (1579-86) हैदर

---

[278] फॉर द सूफीज, बिल्डिंग ऑफ दियर खनक़ाह ऐट द साइट ऑफ द डेस्ट्रायड टेम्पल्स वाज मीन्ट फॉर शोइंग दियर अटर कन्टेम्प्ट एंड डिसरेस्पेक्ट फॉर द रिलीजन ऑफ इन्फाइडल्स

[279] पंडित, पृष्ठ 74

[280] इबिद, पृष्ठ 93-94

मलिक चादुराह द्वारा लिखित कश्मीर के ऐतिहासिक विवरण तारीख-ए-कश्मीर में लिखा हैः 'शेख शम्सुद्दीन कश्मीर पहुंचा। वह हिंदुओं के पूजास्थलों व मंदिरों का विध्वंस करने लगा और अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास किया।'[281]

तोहाफत-उल-अहबाब शीर्षक के एक मध्यकालीन वृत्तांत में लिखा है कि 'शम्सुद्दीन ईराकी के आग्रह पर मूसा रैना ने आदेश निर्गत किया था कि उसके अनुयायी प्रतिदिन 1500 से 2000 काफिरों को मीर शम्सुद्दीन के द्वार पर लायें। वे उनके पवित्र धागे (जुन्नार) को निकाल कर फेंक दें, उन्हें कलमा पढ़ाएं (मुसलमान बनायें), उनका खतना करें और उन्हें गोमांस खिलायें।' और वे मुसलमान बन गये। तारीख-ए-हसन खुईहामी में शम्सुद्दीन द्वारा हिंदुओं का इस्लाम में धर्मांतरण कराने के विषय में लिखा है कि 'चौबीस हजार हिंदू परिवारों को बलपूर्वक बाध्य करके (कहरान व जबरान) ईराकी के दीन में धर्मांतरित किया गया था।'[282]

आगे 1519 में मलिक काजी चाक सुल्तान मुहम्मद शाह के शासन में फौजी कमांडर बना। बहारिस्तान-ए-शाही बताता है, 'और उसके द्वारा अमीर शम्सुद्दीन मुहम्मद ईराकी का जो सबसे बड़ा आदेश पूरा किया, वह था उस भूमि के काफिरों व बहुदेववादियों का नरसंहार।'[283] मलिक रैना के शासन में जिन लोगों को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया था, उनमें से अधिकांश बाद में बहुदेववाद (हिंदू धर्म) में लौट आये। एक प्रवाद (अफवाह) उड़ा कि 'इस्लाम छोड़ने वाले इन लोगों ने बैठने के लिये पवित्र कुरआन की एक प्रति अपने नितम्बों के नीचे रखा था।' यह सुनकर क्रोधित हो उठे इस सूफी पीर ने मलिक काजी चाक के समक्ष इसका विरोध प्रकट करते हुए कहा कि,

> 'मूर्तिपूजकों का यह समुदाय, इस्लाम मजहब स्वीकार करने और इसके अधीन आने के बाद, अब अवज्ञा और मजहब त्याग पर चला गया है। यदि आप शरिया के प्रावधानों (जिसमें इस्लाम छोड़ने पर मृत्युदंड का प्रावधान है) के अनुसार उन्हें दंड देने और उनके विरुद्ध कार्रवाई करने में सक्षम नहीं हैं, तो मेरा स्व-घोषित निर्वासन में चले जाना ही श्रेयस्कर व उचित होगा।'[284]

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि शेख ईराकी के परिवाद (शिकायत) में कहीं भी कुरआन के कथित अनादर का उल्लेख नहीं है, उसकी शिकायत बस यही है कि इस्लाम स्वीकार करने के बाद हिंदुओं ने इसे छोड़ दिया। बहारिस्तान-ए-शाही में लिखा है, 'उस बड़े सूफी पीर को प्रसन्न करने के लिये काजी चाक ने काफिरों का सामूहिक नरसंहार करने का निर्णय लिया।' निश्चित हुआ कि यह नरसंहार अशुरा (मुहर्रम, 1518 सीई) के पवित्र त्योहार के दिन किया जाएगा और उस दिन 'लगभग सात-आठ सौ काफिरों को मार डाला गया। जो मारे गये, उनमें उस समय के काफिरों के समुदाय के अग्रणी लोग थे।' बहारिस्तान-ए-शाही में लिखा है, इसके बाद 'कश्मीर में काफिरों व बहुदेववादियों के समूचे समुदाय का उत्पीड़न करके उन्हें तलवार की नोंक पर इस्लाम स्वीकार कराया

---

281 चादुराह एचएम (1991), तारीख-कष्मीर, ईडी. एंड ट्रांस. रजिया बानो, दिल्ली, पृष्ठ 102-03

282 पंडित, पृष्ठ 105-106

283 इबिद, पृष्ठ 116

284 इबिद, पृष्ठ 117

गया। यह मलिक काजी चाक की बड़ी उपलब्धियों में से एक था।'[285] निस्संदेह इस भयानक कार्रवाई का आदेश उस महान सूफी पीर द्वारा दिया गया था।

सैय्यद अली हमदानी एक और प्रसिद्ध सूफी पीर था। हमदानी 1371 या 1381 में कश्मीर पहुंचा था। वहां उसने सबसे पहला काम यह किया कि ध्वस्त किये गये एक छोटे मंदिर पर अपना कनखाह बनाया... ।[286] उसके कश्मीर आने से पूर्व तत्कालीन शासक सुल्तान कुत्बुद्दीन ने मजहबी कानून लागू करने पर बहुत कम ध्यान दिया था। उन दिनों के काजियों व धर्मशास्त्रियों सहित समाज के सभी स्तरों के मुसलमान इस्लाम के हराम या हलाल पर नाममात्र का ध्यान देते थे। मुसलमान शासकों, धर्मशास्त्रियों व साधारण मुसलमानों ने अपनी सुविधानुसार हराम व हलाल का भी हिंदू परंपरा में लोप कर दिया था।[287] कश्मीरी मुसलमानों द्वारा गैर-इस्लामी प्रथाओं का पालन किये जाने से क्रुद्ध सैय्यद हमदानी ने इस शिथिलता को प्रतिबंधित करते हुए इस्लामी रुढ़िवादिता थोपने का प्रयास किया। सुल्तान कुत्बुद्दीन अपने व्यक्तिगत जीवन में इस्लाम की रुढ़िवादी परंपरा का पालन करता था, किंतु 'वह अमीर सैय्यद अली हमदानी की इच्छाओं व अपेक्षाओं के अनुसार इस्लाम के प्रसार में विफल रहा।' काफिरों की संस्कृति, प्रथाओं व धर्म के प्रभुत्व वाली भूमि पर रहने को अनिच्छुक इस सूफी पीर ने विरोधस्वरूप कश्मीर छोड़ दिया। बाद में कश्मीर का एक और बड़ा सूफी पीर उसके बेटा अमीर सैय्यद मुहम्मद सिकंदर बुतशिकन के शासन में वहां आया। प्रतिष्ठित सैय्यद मुहम्मद और सिकंदर बुतशिकन के एक साथ आने से कश्मीर से मूर्तिपूजा का सफाया करने में सफलता मिली। बहारिस्तान-ए-शाही में लिखा है कि यहां के निवासियों के जनजीवन में से कुफ्र और इस्लाम से मतभिन्नता मिटाने का श्रेय इसी पवित्र सूफी संत सैय्यद मुहम्मद को जाता है।[288]

गुजरात में सूफियों द्वारा धर्मांतरण: सुल्तान फिरोज शाह तुगलक (शासन 1351-88) ने फुरहुत-उल-मुल्क को गुजरात का गवर्नर (अमीर) नियुक्त किया था। फरिश्ता में लिखा है, 'हिंदू समुदाय के प्रति सहिष्णुता अपनानते हुए फुरहुत-उल-मुल्क ने हिंदू धर्म को प्रोत्साहित किया और मूर्तिपूजा का दमन करने की अपेक्षा एक प्रकार से बढ़ावा दिया।'[289] स्वभाविक रूप से इससे गुजरात के विद्वान (सूफी) और रुढ़िवादी उलेमाओं को यह बात अखरने लगी कि इससे कहीं हिंदू धर्म उन क्षेत्रों में सच्चे मजहब (इस्लाम) को पीछे छोड़कर आगे न बढ़ जाए। उन सूफियों व उलेमाओं ने दिल्ली के सुल्तान को संबोधित करते हुए इस उदारवादी मुस्लिम गवर्नर के राजनीकि विचारों की शिकायत करते हुए आशंका व्यक्त की कि यदि फुरहुत-उल-मुल्क को शासन चलाने दिया गया, तो सच्चे

---

[285] इबिद

[286] इबिद, पृष्ठ 36

[287] इबिद, पृष्ठ 35

[288] इबिद, पृष्ठ 37

[289] फरिश्ता, अंक 4, पृष्ठ 1

मजहब के लिये खतरा उत्पन्न हो जाएगा। यह शिकायत मिलने पर सुल्तान फिरोज शाह ने दिल्ली में अपने पवित्र व्यक्तियों (सूफियों) के साथ बैठक की और उसके बाद जफर (मुजफ्फर खान) को गुजरात का वायसराय (नवाब) नियुक्त किया।[290]

वायसराय बनाने के लिये इस मुजफ्फर खान का नाम सूफियों ने चुना भी था और अनुशंसा भी की थी। मुजफ्फर खान ने शीघ्र ही फुरहुत-उल-मुल्क को गुजरात के शासन से हटा दिया और हिंदुओं पर क्रूरता व दमनचक्र प्रारंभ कर दिया, बलपूर्वक हिंदुओं को मुसलमान बनाया और उनके मंदिरों का विध्वंस किया। 1935 में वह सोमनाथ की ओर बढ़ा और वहां उसे जो भी हिंदू मंदिर मिले, उन्हें तोड़ा; उन मंदिरों के अवशेषों पर मस्जिद बनाये और वहां इस्लाम के प्रचार के लिये विद्वान व्यक्तियों (सूफियों) को रखा तथा शासन चलाने के लिये अपने अफसरों को रखा।[291]

यह उदाहरण पुनः सिद्ध करता है कि सूफी इतने असहिष्णु थे कि वे कुछ सहृदय और उदार मुसलमान शासकों द्वारा गैरमुस्लिमों पर दिखायी जा रही थोड़ी-बहुत सहिष्णुता भी सहन नहीं करते थे। तब पुनः यही प्रश्न उठता हैः सोमनाथ में मुजफ्फर खान द्वारा रखे गये सूफियों ने भयग्रस्त हिंदुओं के बीच इस्लाम का प्रसार कैसे किया, क्योंकि उन हिंदुओं के मंदिरों तक को तोड़ दिया गया था?

गुजरात और दिल्ली के सूफी फकीर गुजरात से सहिष्णु गवर्नर फुरहुत-उल-मुल्क को इसलिये हटाना चाहते थे, क्योंकि वह मूर्तिपूजा (अर्थात हिंदू धर्म) का दमन नहीं कर रहा था। यह देखते हुए किसी के मन में संशय नहीं जाएगा कि मुजफ्फर खान द्वारा रखे गये सूफी मुसलमान अफसरों के साथ मिलकर इस्लामी कानून थोपना चाहते थे और हिंदू धर्म का दमन करना चाहते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सूफियों ने यह सुनिश्चित किया कि नष्ट किये गये मंदिर दोबारा न बनाये जा सकें और हिंदू अपने धर्म का पालन न कर सकें, जिससे कि मूर्तिपूजा का दमन सुनिश्चित किया जाए। निश्चित ही वे कश्मीर के उस सूफी शम्सुद्दीन ईराकी के जैसा व्यवहार कर रहे थे, जिसके अनुयायी मुसलमान फौजियों की सहायता से प्रतिदिन 1500-2000 काफिरों को खनक़ाह लाते थे और बलपूर्वक उनको मुसलमान बनाते थे।

धर्मांतरण में वास्तविक सूफी योगदानः जैसा कि लोकप्रिय धारणा है कि इस्लाम के प्रसार में सूफियों ने बड़ी भूमिका निभायी थी, किंतु यदि ऐसा था तो भारत में भी यह हुआ होगा। क्योंकि भारत में इस्लामी विजय सही अर्थों में उस समय प्रारंभ हुई, जब सूफीवाद ठीक ढंग से संगठित हो गया था और पहली बार मुस्लिम समाज में व्यापक स्तर पर स्वीकार किया गया था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ख्वाज़ा मुइनुद्दीन चिश्ती मुहम्मद ग़ोरी की फौज के साथ अजमेर आया था। यही वो समय था, जब उत्तरी भारत में मुस्लिम विजय अपनी पकड़ बना रहा था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, भारत के किसी महान सूफी की मानसिकता वह नहीं थी, जो इस्लाम के शांतिपूर्ण प्रसार के लिये आवश्यक थी। ख्वाज़ा मुइनुद्दीन चिश्ती, निज़ामुद्दीन औलिया और शेख शाह जलाल भारत में जिहाद लड़ने के लिये आये थे और वे हिंदुओं के नरसंहार और बलपूर्वक दास बनाने सहित जिहादी जंग में

---

[290] इबिद

[291] इबिद, पृष्ठ 3

सम्मिलित हुए। निजामुद्दीन औलिया ने सुल्तान अलाउद्दीन के बर्बर जिहादी जंगों को प्रोत्साहित किया और रक्तपात करने वाले जिहादी अभियानों में विजय पर प्रसन्नता व्यक्त की। औलिया इन जिहादी अभियानों में लूटे गये माल में से उपहार भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता था।

तो ये हैं मध्य भारत के उन सबसे सम्मानित और तथाकथित सहिष्णु सूफी फकीरों की सच्चाई। तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि शांतिपूर्ण ढंग से इस्लाम के प्रचार की मिशनरी प्रोफेसन अपनाने के बजाय ये सूफी मुस्लिम शासकों द्वारा हिंदुओं का रक्त बहाने वाले जिहादी जंग के मजहबी और नैतिक समर्थक थे। इनमें से अधिकांश सूफी जिहाद, गैरमुसलमानों के नरसंहार, बलपूर्वक धर्मांतरण में सम्मिलित भी थे। कश्मीर में सूफी ही थे, जिन्होंने रक्तरंजित जिहाद करने को उकसाया, जिसका परिणाम हिंदू मंदिरों व मूर्तियों के विध्वंस, हिंदुओं की सामूहिक हत्या और बलपूर्वक मुसलमान बनाने की घटनाएं व्यापक स्तर पर हुईं। मध्य भारत के ये प्रख्यात सूफी फकीर चाहे अजमेर में हों, अथवा बंगाल, बीजापुर, दिल्ली या कश्मीर में हों, किंतु इनकी मानसिकता, प्रवृत्ति और कार्य-व्यवहार में न के बराबर अंतर था। इसलिये धर्मांतरण में कश्मीर के सूफी फकीरों की जो भूमिका थी, पूरे भारत में इस काम में सूफियों की भूमिका उससे भिन्न नहीं रही होगी।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत के मुस्लिम शासक हिंदुओं की बहुसंख्या के विरुद्ध निरंतर जिहाद चलाते रहे। इन जिहादी अभियानों में से अधिकांश में पराजित लोगों की सामूहिक हत्या की जाती थी और बलपूर्वक मुसलमान बनाने के लिये हजारों-लाखों की संख्या में उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बना लिया जाता था। एक भी सूफी फकीर ने इन क्रूर व बर्बर कृत्यों एवं काफिरों को सामूहिक रूप से बलपूर्वक मुसलमान बनाने पर आपत्ति नहीं प्रकट की। भारत के किसी महान सूफी फकीर ने कभी इन बर्बर कृत्यों की निंदा में कुछ नहीं बोला। उन्होंने शासकों से कभी भी इन बर्बर अभियानों और मृत्युतुल्य कश्ट देने वाले धर्मांतरण को रोकने के लिये नहीं कहा। उनमें से किसी ने भी नहीं कहाः 'इतने क्रूर ढंग से इस्लाम स्वीकार करवाने के लिये हिंदुओं को बंदी न बनाओ। यह कार्य हम पर छोड़ दो। यह हमारा मिशन है कि शातिपूर्ण ढंग से समझाकर यह लक्ष्य प्राप्त करें।' इसकी अपेक्षा इन सूफी फकीरों ने क्रूर व बर्बर कृत्यों के लिये प्रचुर समर्थन दिया या यूं कहें कि बर्बर जिहाद को न केवल प्रोत्साहन दिया, अपितु उसमें भाग लेने की उत्सुकता भी दिखायी।

कश्मीर, गुजरात और बंगाल में हिंदुओं के धर्मांतरण में सूफियों की संलिप्तता से उस साधन का स्पष्ट चित्र उभरता है, जो उन्होंने अपनी विक्षिप्त विचारधारा और प्रवृत्ति के अनुसार गैर-मुस्लिमों व उनके धर्मों पर अपनाया था। कश्मीर में इन सूफियों ने हिंदुओं पर बर्बरता और हिंदुओं के बलपूर्वक धर्मांतरण के लिये शासकों को प्रेरित किया। इस दावे का एक भी साक्ष्य नहीं मिलता है कि इन सूफियों ने शांतिपूर्ण साधनों से इतने व्यापक स्तर पर गैर-मुस्लिमों को मुसलमान बनाया था। यदि इस ढंग से कहीं धर्मांतरण कभी हुआ भी, तो मध्यकालीन भारत में हुए कुल धर्मांतरण में ऐसे शांतिपूर्ण धर्मांतरण की भूमिका न के बराबर ही कही जाएगी। उनकी भूमिका कहीं और संभवतः कम महत्वपूर्ण थी।

सूफियों द्वारा शांतिपूर्ण धर्मांतरण का कुछ प्रलेखनः मुस्लिम इतिहासकार मध्यकालीन भारत के सभी ओर निरंतर चलते रहे मुस्लिम जिहादी अभियानों में बड़ी संख्या में जंग लड़कर और दास बनाकर काफिरों के धर्मांतरण का लिखित प्रमाण बहुतायत में छोड़ गये

हैं। किसी एक भी पत्रक में किसी ऐसे अवसर का उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे यह पता चले कि किसी सूफी फकीर ने उल्लेखनीय संख्या में अहिंसक साधनों से हिंदुओं को मुसलमान बनाया।

सुल्तान महमूद ने भारत के अपने पहले अभियान में 5 लाख हिंदुओं को पकड़कर दास बनाया और बंदी बनाये गये इन हिंदुओं को तुरंत ही मुसलमान बनाया गया। शम्स सिराज अफीफ में लिखा है कि सुल्तान फिरोज तुग़लक़ ने दमनकारी व अपमानजनक जजिया व अन्य कष्टदायी कर थोपकर बड़ी संख्या में हिंदुओं को मुसलमान बनाया था। यह दावा सुल्तान ने स्वयं किया है।[292] अफीफ के अनुसार उसने 180,000 हिंदू बालकों को पकड़कर दास बनाया था; 'इनमें से कुछ बालकों को कुरआन पढ़ने और रटने में लगाया और शेष को इस्लामी पुस्तकों की नकल बनाने में लगाया।'[293] यहां तक कि प्रबुद्ध कहे जाने वाले उस अकबर, जिसने दासप्रथा और बलपूर्वक धर्मांतरण पर रोक लगा दी थी, के समय में मालवा में शासन करने वाले उसके जनरल अब्दुल्ला खान उज्बेक ने बलपूर्वक दास बनाकर 500,000 काफिरों को मुसलमान बनाया था।[294] उत्तर पश्चिम प्रांत के आज के मुसलमानों के पूर्वज वही हैं, जिन्होंने औरंगजेब के समय दमन, उत्पीड़न, कमर तोड़ने वाली भेदभावपूर्ण करों से बचने और कुछ अधिकार प्राप्त करने के लिये इस्लाम स्वीकार कर लिया था।

धर्मांतरण के इस प्रमुख उत्पीड़कारी पद्धति के बीच कुछ ऐसे साक्ष्य या अभिलेख हैं, जो यह बताते हैं कि सूफियों ने धर्मांतरण में महत्वपूर्ण योगदान दिये थे। मध्यकालीन भारत में धर्मांतरण के ऐतिहासिक अनुसंधान के आधार पर हबीब ने लिखा है, 'मुसलमानों के पास अंकित करने के लिये कोई मिशनरी कार्य नहीं था... हमें गैर-मुस्लिमों के धर्मांतरण के लिये मिशनरी आंदोलन का कोई लक्षण नहीं मिलता है।' उन्होंने आगे कहा कि इस्लाम 'किसी प्रकार की मिशनरी गतिविधि विकसित करने में विफल रहा;' और 'हमें सीधे-सीधे स्वीकार करना होगा कि भारत में अभी तक गैर-मुस्लिमों के धर्मांतरण के लिये मिशनरी आंदोलन के लक्षण नहीं मिले हैं।' उन्होंने फिर कहाः 'कुछ घटिया सूफी पुस्तकें अब धर्मांतरण को मुसलमान सूफियों से जोड़ते हुए यह बताने का प्रयास करती हैं कि लोगों ने उन चमत्कारों को देखकर इस्लाम स्वीकार कर लिया था, जो उन सूफियों ने दिखायी थी...। किंतु शोध किये जाने पर मिलेगा कि ऐसी सभी पुस्तकें बाद में मनगढंत रूप से लिखी गयीं।''[295] मध्यकालीन भारत के सूफी रहस्यों पर रिज़वी अपने अनुसंधान से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 'आरंभिक सूफी अभिलेखों (मलफ़ुज़ात और मकतुबात) में इन सूफी फकीरों द्वारा लोगों को इस्लाम में दीक्षित किये जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।' निजामुद्दीन औलिया भारत का महानतम सूफी

---

[292] शर्मा, पृष्ठ 185

[293] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 341

[294] लाल (1994), पृष्ठ 73

[295] लाल (1990), पृष्ठ 93

फकीर कहा जाता था, किंतु उसके आत्मवृत्तात्मक संस्मरण फवैद-उल-फुआद में लिखा है कि वह मात्र दो हिंदू जुलाहों का धर्मांतरण करने में ही सफल हुआ था।[296]

बड़े स्तर पर धर्मांतरण की जिन घटनाओं में सूफी संलिप्त थे, उनमें उनकी भूमिका मुस्लिम शासकों को गैरमुस्लिमों पर हिंसा व क्रूरता करने के लिये उकसाने की थी, जिसके परिणामस्वरूप वो धर्मांतरण हुए थे। ऊपर दिये गये साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि इन सूफी फकीरों ने शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों में न के बराबर रुचि या पहल की थी। वास्तव में ये लोग शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों के विरुद्ध थे। उदाहरण के लिये, महदी हुसैन लिखते हैं कि उत्साही धर्मांतरित सुल्तान मुहम्मद शाह तुग़लक जब इन सूफियों को शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों में लगाना चाहा, तो उसे सूफी समुदाय की ओर से विरोध का सामना करना पड़ा।[297] सूफी जब भी धर्मांतरण में संलिप्त हुए, तो उनकी पद्धति स्पष्ट रूप से शांतिपूर्ण नहीं थी।

इसके अतिरिक्त अधिकांश भारतीय सूफी, जो कि फारस और मध्यपूर्व से आये थे, भारतीय भाषाएं नहीं बोलते थे, इसलिए वे जनसाधारण में प्रभावशाली ढंग से इस्लाम के संदेशों का प्रसार करने में समक्ष नहीं थे। सूफियों ने घृणित जाहिलिया भारतीय भाषाएं कभी सीखी नहीं और चूंकि भारत के मूल निवासियों में से बड़ी संख्या में लोगों निरक्षर थे, तो वो भारतीय लोग कदाचित ही अरबी या फारसी भाषा सीखते रहे होंगे। अंततः, हमारे आज के समय के हिंदू, विशेष रूप से निम्नजाति के लोग समानता, शांति और सामाजिक न्याय के श्रेष्ठ संदेश को परखने में कहीं अधिक सक्षम हैं, वह संदेश जो कथित रूप से इस्लाम में है। आज इस्लाम का संदेश अनेक सरलगामी व नवोन्मेषी साधनों के माध्यम से भारत के प्रत्येक कोने में सुव्यवस्थित और स्पष्ट भाषा में पहुंच रहा है। यदि यही बात थी कि इस्लाम के संदेश की महानता से प्रभावित होकर मुस्लिम शासन के समय दसियों लाख भारतीय काफिरों ने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था, तो आज तो मुसलमान बनने की दर पहले के किसी भी समय की तुलना में कहीं अधिक होनी चाहिए।

दक्षिणपूर्व एशिया में व्यापारियों द्वारा धर्मांतरण

आजकल दक्षिणपूर्व एशिया में यह दावा बहुत उछाला जा रहा है कि धर्मांतरण मुस्लिम व्यापारियों द्वारा शांतिपूर्ण ढंग से धर्म प्रचार के माध्यम से कराया गया था । टाइम्स ऑफ इंडिया में अतुल सेठी इस दावे पर कहते हैं कि 'भारत में इस्लाम मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा लाया गया', यह मिथ्या धारणा है। इस मिथ्या धारणा को स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए उन्होंने लिखा:[298]

---

[296] इबिद, पृष्ठ 93-94

[297] इबिद, पृष्ठ 94

[298] सेठी ए, इस्लाम वाज ब्रॉट टू इंडिया बाई मुस्लिम इन्वैडर्स, द टाइम्स ऑफ इंडिया, 24 जून, 2007; ऑलसो क़ासमी एमबी, ओरिजिन ऑफ मुस्लिम्स इन इंडिया, एशियन ट्रिब्यून, 22 अप्रैल 2008

> अधिकांश इतिहासकार अब सहमत हैं कि भारत से इस्लाम का परिचय अरब के व्यापारियों के माध्यम से हुआ, न कि जैसा कि सामान्यतः माना जाता है कि मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा यह काम किया गया। अरब में इस्लाम के आने से बहुत पहले से दक्षिण भारत के मालाबार में अरब के लोग आते रहे थे...। एचजी रालिंसन ने अपनी पुस्तक भारत का प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास ने लिखा है, 'सातवीं सदी के अंतिम काल में भारतीय तट के नगरों में पहले अरबी मुसलमान आकर बसने लगे।' उन्होंने भारतीय महिलाओं से शादी की। उन अरबी मुसलमानों के साथ सम्मान का व्यवहार किया जाता था तथा उन्हें अपने धर्म के प्रचार की अनुमति थी। दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष बीपी साहू के अनुसार, 8वीं और 9वीं सदी तक अरब के मुसलमान उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान धारण करने लगे, जहां वो बसे थे...। वास्तव में देश में पहली मस्जिद 629 ईसवी में कोडुंगलूर में एक अरब व्यापारी द्वारा बनायी गयी। कोंडुगलूर अब केरल में आता है। रोचक बात यह है कि उस समय रसूल मुहम्मद जीवित था और भारत की यह मस्जिद संभवतः विश्व की पहली कुछ मस्जिदों में रही है। इस प्रकार मुस्लिम आक्रांताओं के आने के बहुत पहले भारत में इस्लाम की उपस्थिति को रेखांकित किया गया।

916-17 में विख्यात मुस्लिम यात्री और वृत्तांत लेखक अल-मसूदी ने दसियों-हजारों ऐसे मुसलमानों की चॉल (आधुनिक बम्बई के 25 मील दक्षिण) अर्थात बस्ती का वर्णन किया, जहां के निवासी मुसलमानों के पूर्वज कालीमिर्च और मसालों के व्यापार के लिये अरब और ईराक से आये थे। स्थानीय राजा द्वारा इस बस्ती को राजनीतिक स्वायत्तता प्रदान की गयी थी। इस बस्ती में मुख्यतः वो अरब थे, जो उस चॉल में जन्मे थे और स्थानीय जनसंख्या के लोगों से आपस में शादी-व्याह किये थे।[299]

स्पष्ट है कि मुस्लिम आक्रांताओं के आने के बहुत पहले ही मुस्लिम व्यापारियों ने 712 में सिंध में अपने पांव जमाने प्रारंभ कर दिये थे। इस प्रकार के उदाहरणों के आधार पर यह दावा किया जाता है कि मुस्लिम आक्रांताओं और लड़ाकों ने नहीं, अपितु उन व्यापारियों ने भारत और अन्य स्थानों पर इस्लाम का प्रसार किया। इस माध्यम से इस्लाम के प्रचार के आदर्श उदाहरण के रूप में मलेशिया, इंडोनेशिया, दक्षिणी फिलीपींस और दक्षिणी थाईलैंड को प्रस्तुत किया जाता है। गैर-मुस्लिमों के धर्मांतरण में बल के प्रयोग को नकारने के लिये जाकिर नाइक कहता है, 'विश्व में इंडोनेशिया वह देश हैं, जहां सर्वाधिक मुसलमान हैं। मलेशिया की अधिकांश जनता मुसलमान है। कोई पूछेगा, 'कौन सी मुसलमान फौज इंडोनेशिया और मलेशिया गयी थी?'' इसका उत्तर हैः सिल्क मार्ग और समुद्री मार्ग के व्यापारियों से पहुंचे वर्तमान समय के मजहब (अर्थात इस्लाम) के आगे स्वैच्छिक रूप से समर्पित हुए (व्यक्तिगत संवाद)। नाइक के प्रश्न का उत्तर डेनियल पाइप्स इस प्रकार देता हैः 'दारुल-इस्लाम शांतिपूर्वक तभी फैला, जब राजा धर्मांतरित हुए; उदाहरण के लिये, 1410 में मलाक्का के शासक परमेश्वर ने इस्लाम स्वीकार किया और उसके बाद उनका नगर दक्षिणपूर्व एशिया में इस्लाम का बड़ा केंद्र बन गया था।'[300] इसी प्रकार अरब लीग के महासचिव अब्दुल खालिक हसौना ने कहा (1968), 'इस्लाम चीन, मलेशिया, इंडोनेशिया और फिलीपींस में बिना जंग के फैला।'[301]

---

[299] ईटन (1978), पृष्ठ 13

[300] पाइप्स (1983), पृष्ठ 73

[301] वैडी, पृष्ठ 197

इंडोनेशिया के इतिहासकार रादेन अब्दुलकादिर विडजोजोमोडजो ने इंडोनेशिया में गैर-मुस्लिमों के धर्मांतरण पर लिखा है कि,

> इंडोनेशिया के धर्मांतरण के समूचे इतिहास में किसी बाहरी बल का कोई लक्षण नहीं मिलता है। क्योंकि सच्चे मजहब के प्रसार का एकमात्र ढंग जिहाद ही नहीं है। इस सिद्धांत के अनुसार, जिहाद का आश्रय लेने की अनुमति तभी है, जब समझाना-बुझाना और उपदेश देना काम न आये।'[302]

विडजोजोमोडजो निष्कपटता से यह तो स्वीकार करते हैं कि इस्लाम में धर्मांतरण के लिये ''जिहाद'' की स्वीकृति है, किंतु उन्हें इंडोनेशिया में इसके प्रयोग का कोई साक्ष्य नहीं दिखता है। यद्यपि वे अपने इस विचार में स्पष्ट हैं कि यदि इंडोनेशिया द्वीप-समूह के काफिरों ने धर्मांतरण के लिये समझाने-बुझाने वाले साधनों का विरोध किया होता, तो उनके विरुद्ध जिहाद अर्थात जंग होता।

तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी में दक्षिणपूर्व एशिया में इस्लाम के फैलने से पूर्व इस क्षेत्र में तीन शक्तिशाली साम्राज्य थेः श्रीविजय (मलेशिया), मजापहित (इंडोनिशया द्वीप-समूह) और स्याम (थाईलैंड)। लोग मिले-जुले धर्म को मानते थेः यह धर्म हिंदू, बौद्ध और जीववाद से मिश्रित था। इस्लाम ने बहुत पहले ही तीसरे खलीफा उस्मान (मृत्यु 656) के समय समुद्र मार्ग से चीन जाने वाले मुस्लिम व्यापारियों के माध्यम से इंडोनेशिया से संपर्क स्थापित कर लिया था। बाद में सन् 904 और 12वीं सदी के मध्य मुसलमान व्यापारी श्रीविजय के सुमात्रा व्यापारिक समुद्रपत्तनों पर व्यापार में अधिक सक्रिय हो गये। भारत में इस्लाम के स्थापित होने के बाद बड़ी संख्या में मुस्लिम व्यापारी गुजरात, बंगाल और दक्षिण भारत के तटीय समुद्रपत्तनों पर आये। इन समुद्र पत्तनों (बंदरगाहों) पर कुछ व्यापारी चीन से आये। मुस्लिम व्यापारी सदैव अपने साथ मजहबी मिशन लेकर आते थे और उत्तरी सुमात्रा के मलाक्का व समुद्र अथवा पसई (ऐके में, जावा) नामक स्थानों पर बस गये। इन व्यापारियों ने स्थानीय काफिर लोगों से आपस में शादियां कीं और अपना मुस्लिम समुदाय बनाया। इस क्षेत्र में मुस्लिम व्यापारियों, जो संभवतः आरंभिक दसवीं सदी में बसे थे, ने 13वीं सदी के अंत तक अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति बना ली। इस समय तक उन लोगों ने दो छोटे नगर राज्य स्थापित कर लिये थेः एक समुद्र (पसई) में और दूसरा इंडोनेशियाई द्वीप-समूह के परलाक में। इब्न बतूता ने 1345-46 में समुद्र के मुस्लिम नगर-राज्य की यात्रा की थी।

इस समय तक स्थानीय काफिर इतनी संख्या में इस्लाम स्वीकार नहीं किये थे कि इसे महत्वपूर्ण कहा जाए। उदारवादी और सहिष्णु स्थानीय संस्कृति का लाभ उठाते हुए मुसलमानों ने स्थानीय महिलाओं के साथ शादियां करने लगे और उनसे उत्पन्न होने वाले बच्चों से धीरे-धीरे अपना समुदाय बनाया। तीन-चार सदियों में उन मुसलमानों की संख्या इतनी हो गयी कि वे समुद्र और परलाक नामक स्थानों पर मुस्लिम नगर-राज्य की स्थापना कर लें। शीघ्र ही इन मुसलमानों ने आसपास के काफिरों के विरुद्ध बर्बर

---

[302] विडजोजोमोडजो आरए (1982) इस्लाम इन नीदरलैंड्स ईस्ट इंडीज, इन द फार ईस्टर्न क्वार्टरली, 2 (1), पृष्ठ 51

जिहाद करना प्रारंभ कर दिया। समुद्र के सल्तनत की यात्रा के बाद इब्न बतूता ने लिखा कि वहां शासन कर रहा सुल्तान अल-मलिक अज़-ज़हीर ''सर्वाधिक विख्यात व मुक्त-हस्त'' शासक था। ऐसा इसलिये क्योंकि,

> वह निरंतर इस्लाम के लिये जंग (काफिरों के विरुद्ध जिहाद) में संलिप्त रहा और हमलावर अभियान चलाता रहा...। उसकी प्रजा भी इस्लाम के लिये जंग करने में प्रसन्नता का अनुभव करती थी और उसके हमलावर अभियानों में स्वयं ही आगे बढ़कर भाग लेती थी। वे अपने आसपास के काफिरों पर भारी थे और वे काफिर शांति के लिये उन्हें जजिया कर देते थे।[303]

इतना सब होने के बाद भी 14वीं सदी के अंत तक वहां काफिरों को मुसलमान बनाने में बहुत कम सफलता मिली और इस्लाम एक छोटे अलग-थलग क्षेत्र में सिमटा रहा। यह स्थिति नाटकीय रूप से तब परिवर्तित हुई, जब श्रीविजय के राजा परमेश्वर को छल से मुसलमान बना लिया गया। परमेश्वर पालेमबंग से अपना शासन चलाते थे। उस समय श्रीविजय साम्राज्य पतन की ओर था और मजापहित उसका अधिपति बन चुका था। मजापहित के शासक के साथ एक विवाद के कारण परमेश्वर अपनी राजधानी पालेमबंग से स्थानांतरित करके सुरक्षित तेमसेक द्वीप (सिंगापुर) ले जाने पर विवश हुए। मजापहित की सेना के साथ एक संघर्ष में परमेश्वर ने स्याम के राजकुमार तेमगी की हत्या कर दी। स्याम का राजकुमार तेमगी मजापहित का सहयोगी था। इससे क्रुद्ध होकर मजापहित से जुड़े स्याम के राजा ने परमेश्वर को पकड़ने और उनकी हत्या करने के लिये श्रीविजय साम्राज्य पर आक्रमणों की झड़ी लगा दी। परमेश्वर पीछे हट गये और तेमसेक द्वीप से भाग गयेः वह भागकर पहले मुआर गये और इसके बाद मलाक्का जाकर वहां 1402 में अपनी राजधानी बनायी।

इस समय तक सदियों पूर्व बसे हुए मुसलमानों ने मलाक्का के समुद्रपत्तन नगर में अपनी महत्वूपर्ण स्थिति बना ली। ये मुसलमान मुख्यतः व्यापार व वाणिज्य का व्यवसाय करते थे और भारत के साथ मलाक्का के व्यापार को बढ़ाने में अत्यंत महत्वपूर्ण थे। इसलिये मुसलमानों का परमेश्वर के दरबार में स्वागत हुआ और धीरे-धीरे उन्होंने उसके दरबार में अपनी उपस्थिति सुदृढ़ कर ली। इसी के बल पर उन्होंने उसके राजनीतिक भाग्य पर प्रभाव डाला। उसकी सेना में मुसलमानों को सम्मिलित करवा दिया गया। धीरे-धीरे परमेश्वर स्याम और मजापहित के आक्रमणों को टालने के लिये मुसलमानों पर निर्भर हो रहा था। इन सब के बीच परमेश्वर के मुस्लिम परामर्शदाताओं ने एक जाल फेंका कि वह इस्लाम स्वीकार ले, तो वे उसकी ओर से लड़ने के लिये और अधिक मुस्लिम लड़ाके भेजेंगे। परमेश्वर ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। चूंकि आगे के वर्षों में कट्टर शत्रुओं के साथ उनका संघरष चलता रहा, इसलिये उनकी स्थिति अस्थिर होती गयी।

इसी बीच अरब के व्यापारियों ने परमेश्वर को पसई की एक मिश्रित जाति की नवयौवना को उपहार में दिया। वह नवयौवना अरबी पिता और इंडोनेशियाई माता की शादी से उत्पन्न हुई थी। वह कुंवारी नवयौवना अप्रतिम सौंदर्य की स्वामिनी थी। परमेश्वर उस दास-कन्या के प्रेम में पड़ गये। परमेश्वर के रनिवास में वह नवयौवना गर्भवती हो गयी। संतानहीन परमेश्वर अपने साम्राज्य के उत्तराधिकारी के लिये तरस रहे थे। जब उन्होंने उस बच्चे को विधिक उत्तराधिकारी बनाने के लिये उसे विवाह का

---

[303] गिब, पृष्ठ 274

प्रस्ताव दिया, तो उसने शर्त रख दी कि शादी से पूर्व उन्हें इस्लाम स्वीकार करना होगा। उनकी स्थिति निरंतर दुर्बल और अस्थिर होती जा रही थी, इसलिये उन्हें मुसलमान सैनिकों के समर्थन की आवश्यकता थी। ऊपर से मुसलमानों द्वारा भेजे गये इस हनी-ट्रैप में परमेश्वर फंस चुके थे और लाख प्रयास करने के बाद भी उन्हें इससे निकलने का उपाय नहीं दिख रहा था। अंततः परमेश्वर को उस दास-कन्या की शर्त को मानना पड़ा। उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया और उस दास-कन्या को अपने महल में विधिक रानी बनाकर ले आये।

मलाक्का सल्तनत और जिहाद में तीव्र वृद्धि: 1410 में इस्लाम स्वीकार करने के बाद परमेश्वर ने श्रीविजय के अपने हिंदू साम्राज्य को मुस्लिम सल्तनत- मलाक्का सल्तनत में परिवर्तित कर दिया और सुल्तान इस्कंदर शाह की उपाधि धारण की। उनके धर्मांतरण के बाद उसकी अर्द्ध-मुस्लिम रानी और मुस्लिम सैनिकों व दरबारियों ने उसे कट्टर मुसलमान बना दिया। एक चीनी मुसलमान मा हुआन ने 1414 में चीन के सम्राट युंग लो के दूत के सचिव ड्रैगोमन के रूप में सुल्तान इस्कंदर शाह से मिला। उसने पाया कि सुल्तान पहले से ही ''इस्लाम का कट्टर अनुयायी'' था।[304]

जैसा कि इब्न बतूता ने लिखा है, आरंभिक 14वीं सदी में मुसलमान ज्यों ही समुद्र में थोड़ी-बहुत ताकत एकत्रित करने में सफल हुए, दक्षिण एशिया में काफिरों के विरुद्ध छोटे स्तर पर हिंसक जिहाद प्रारंभ हो गया था। मलाक्का सल्तनत की स्थापना के बाद अपना प्रताप स्थापित करने के लिये जिहाद की तीव्रता बढ़ गयी। इस्लाम के क्षेत्र के विस्तार के लिये यह सल्तनत पड़ोस के राज्यों के विरुद्ध बड़े स्तर पर जिहादी अभियान छेड़ने का केंद्र बन गया। उसकी मुसलमान फौज अब शहादत प्राप्त करने या गाज़ी बनने के लिये अल्लाह के मार्ग में जंग करने की इस्लामी उत्साह से प्रेरित थी और इस फौज ने अस्थिर व दुर्बल हो चुके मलाक्का सुल्तान का भाग्य नाटकीय रूप से परिवर्तित कर दिया। अंत के निकट आ चुके परमेश्वर, जो कि अब सुल्तान इस्कंदर शाह थे, और उनके वंशजों ने शीघ्र ही आस-पड़ोस के राज्यों पर राजनीतिक सत्ता पर प्रभुत्व पा लिया। इस सल्तनत का विस्तार हुआ; जब यह सल्तनत अपने चरम पर था, तो इसमें आज के मलेशियन प्रायद्वीप, सिंगापुर और पूर्वी सुमात्रा व बोरनिओ का बड़ा क्षेत्र सम्मिलित था। बाद में बोरनिओ स्वतंत्र सल्तनत होने के लिये मलाक्का से पृथक हो गया। लंबे समय तक मलाक्का मलेशिया, ऐके, रिआऊ, पालेमबंग और सुलावेसी सहित दक्षिण एशियाई इस्लाम का केंद्र बना रहा।

पंद्रहवीं सदी में मलाक्का सल्तनत ने पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया और शक्तिशाली मजापहित साम्राज्य को नष्ट कर दिया तथा स्याम साम्राज्य की नींव हिला दी। जब मुसलमान लड़ाकों ने 1526 में जावा को रौंद डाला, तो मजापहित साम्राज्य का अस्तित्व मिट गया। इस सल्तनत ने बचे हुए थाई साम्राज्य से शत्रुता ठाने रखी और उसके दक्षिणी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। पंद्रहवी सदी के अंतिम भाग और सोलहवीं सदी के आरंभिक वर्षों में मुस्लिम आक्रांता थाई राजधानी अयोध्या तक घुसने पर उतारू थे। कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि मुस्लिम जिहादी लड़ाके स्याम को रौंद डालेंगे।

---

[304] विडजोजोमोडजो, पृष्ठ 49

किंतु संयोग से उस कठिन समय में मलाक्का जलडमरूमध्य के समुद्री मार्ग पर व्यापारी पुर्तगाली पोतों का बेड़ा वहां पहुंच गया। इसके परिणामस्वरूप पुर्तगालियों और मलाक्का सल्तनत में भयानक संघर्ष हुआ। इससे संकट में पड़े स्याम के लिये स्वागतयोग्य सहायता मिली। 1509 में एडमिरल लोपेज डी सैक्वीरा के नेतृत्व में पुर्तगाली पोतों का बेड़ा मलाक्का जलडमरूमध्य पहुंचा। भारत में मुसलमानों और पुर्तगालियों के बीच संघर्ष से उत्तेजित वहां शासन कर रहे सुल्तान महमूद शाह ने पुर्तगाली बेड़े पर हमला किया और उन्हें भागने पर विवश किया। 1511 में कोचीन (भारत) से एक और पुर्तगाली पोतों का बेड़ा मलाक्का पहुंचा, जिसका नेतृत्व अल्फांसो डी' अल्बुक्यूएर्क ने किया था। इसके बाद दोनों के बीच संघर्ष बढ़ गया। चालीस दिन के संघर्ष के बाद 24 अगस्त को मलाक्का सल्तनत ने पुर्तगालियों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। सुल्तान महमूद मलाक्का छोड़कर भाग गया। आने वाले वर्षों और दशकों में पुर्तगालियों और मुसलमान फौज के बीच भयानक संघर्ष चलता रहा।

पुर्तगालियों द्वारा मलाक्का सल्तनत को अस्थिर करने और अंततः विनाश करने से स्याम मुस्लिम शासन के अधीन आने से बच गया। सातवीं सदी में स्याम के शासकों ने नाविक पुर्तगालियों और डच शक्तियों के साथ गठबंधन किया और मुसलमानों के खतरे का सामना करने में उनको सफलता मिली। आठवीं सदी में स्याम साम्राज्य ने अपनी खोयी हुई भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिये आक्रमण किया। स्याम साम्राज्य ने पत्तनी के मुस्लिम सल्तनत को रौंद डाला और अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

फिलीपींस में इस्लाम का प्रसार: मिंडानाओ एवं सुलू द्वीपों वाले फिलीपींस का मुस्लिम धर्म एक और उदाहरण है, जिसके बारे में मुसलमान और कई विद्वान दावा करते हैं कि वहां इस्लाम व्यापारियों द्वारा फैलाया गया। मुसलमान पूछते हैं, तलवार के बल पर इस्लाम फैलाने के लिये कौन सी मुस्लिम फौज फिलीपींस गयी थी? वे दावा करते हैं कि भारत और मलय प्रायद्वीप से आने वाले मुसलमान व्यापारियों और सूफियों ने शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियों के माध्यम से वहां इस्लाम का प्रसार किया।

दक्षिणी फिलीपींस के सुलू द्वीप-समूह में इस्लाम कथित रूप से अरब व्यापारी मकदूम करीम द्वारा 1380 ईसवी में लाया गया। वह वहां बस गया और एक मस्जिद बनायी, जो उस क्षेत्र की सबसे प्राचीन मस्जिद है। किंतु जीववाद मानने वाले फिलीपींस के लोगों का इस्लाम में धर्मपरिवर्तन बड़े स्तर पर नहीं हुआ। जब मलाक्का सल्तनत ने मलय प्रायद्वीप व इंडोनेशिया द्वीप-समूह में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया, तो उसके बाद ही वहां ऐसा हो सका। 1450 में मलेशिया के जोहोर में जन्मा अरबी लड़ाका हाशिम सईद अबू बक्र फौज लेकर बोरनिओ से सुलू द्वीप-समूह की ओर बढ़ा और उसने 1457 में सुलू सल्तनत की स्थापना की। इस्लामी राजनीतिक सत्ता के बल पर वहां की जीववादी प्रजा को मुसलमान बनाने का काम चला। 15वीं सदी के अंत तक बोरनिओ सल्तनत के संरक्षण में सुलू में प्रारंभ जिहाद से विस्यास (मुख्य फिलीपींस), लुजान का आधा भाग (उत्तरी फिलीपींस) और दक्षिण में मिंडानाओ द्वीप मुस्लिमों के नियंत्रण में आ गया। मुस्लिम जिहादियों के औचक हमलों के कारण भयभीत जीववादी फिलीपीनी जनता में इस्लाम के प्रसार की गति तीव्र हो गयी। जिहादी लड़ाकों के प्रभाव से सुलू से मिंडानाओ तक इस्लाम फैला और 1565 में मनीला पहुंचा।

स्थानीय फिलीपीनी छोटे-छोटे ग्रामीण या जनजातीय समुदाय पर आधारित समूहों अर्थात बारंगेज में रहते थे। इन समूहों ने संगठित मुस्लिम हमलों का छिटपुट और क्षीण विरोध भी किया। 1521 में सेबू द्वीप में स्पेनिश उपनिवेशवादियों के आने के बाद जब इन्होंने धीरे-धीरे फिलीपींस तक अपने नियंत्रण का विस्तार कर लिया, तो अंततः इस्लाम का प्रसार थम गया। इस समय तक

दक्षिणी फिलीपींस की जीववादी जनता के अधिकांश भाग को मुसलमान बना दिया गया था। जब स्पेनी योद्धाओं ने फिलीपीनो द्वीप पर अपना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित किया, तो मुस्लिम लड़ाकों से आतंकित और सतायी गयी जीववादी जनता ने इस नये साम्राज्यवादी का अधिक विरोध नहीं किया। यद्यपि मुसलमानों के नियंत्रण वाले द्वीपों ने भयानक और लंबा विरोध किया।[305] वहां की स्थानीय जनसंख्या स्पेनी योद्धाओं के साथ मिल गयी और मुसलमानों के नियंत्रण वाले द्वीपों को वापस छीन लेने का प्रयास किया, किंतु विफल रहे। यद्यपि स्पेनी सेनाओं ने कुछ क्षेत्रों से मुसलमान हमलावरों को खदेड़ दिया और मुसलमानों के क्षेत्र विस्तार और इस्लाम के प्रसार पर अंकुश लगा दिया। मिंडानाओ और सुलू द्वीप-समूह, जिनका कि व्यापक रूप से इस्लामीकरण कर दिया गया था, मुसलमानों के नियंत्रण में रहे और आज भी इस्लामी हैं।

दक्षिणपूर्व एशिया में धर्मांतरण की पद्धतिः यह निर्विवाद है कि मुसलमान दक्षिणपूर्व एशिया में सबसे पहले व्यापारी बनकर आये और स्थानीय लोगों के बीच समुद्रपत्तन-नगरों में बस गये। स्थानीय उदारवादी और सहिष्णु संस्कृति का लाभ उठाते हुए उन्होंने बिना किसी रोक-टोक के काफिर महिलाओं से शादी की और उनसे मुसलमान बच्चे उत्पन्न किये। यहां तक कि शक्तिशाली परमेश्वर भी अपने धर्म पर अडिग न रह सके और उन्हें अपनी आधी मुसलमान व आधी इंडोनेशियन रखैल सुंदरी के दबाव में धर्म परिवर्तन करने को बाध्य होना पड़ा। चूंकि दसवीं सदी के आरंभ से ही मुसलमान दक्षिणपूर्व एशिया में बसने लगे थे, तो ऐसा लगता है कि स्थानीय काफिर महिलाओं से शादी कर संतान उत्पन्न करना मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने का मुख्य अस्त्र था। चूंकि गैर-मुस्लिमों के प्रति मुसलमानों में घृणा के भाव होते थे, तो हो सकता है कि मुस्लिम व्यापारियों के यहां काम कर रहे कुछ सेवकों और कर्मचारियों का भी धर्मपरिवर्तन हुआ हो, जिससे दोनों पक्षों में अधिक सद्भावनापूर्ण संबंध बनाने में सहायता मिली। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को चार बीवी रखने, अस्थायी शादी (मुता)[306] और असीमित लौंडी या रखैल (सेक्स-स्लेव) रखने के इस्लामी नियम ने भी मुस्लिम जनसंख्या तीव्रता से बढ़ाने में सहायता की होगी।

दक्षिण एशिया में मुसलमानों के बसने के आरंभिक वर्षों में स्थानीय लोग इस्लाम के संदेशों से प्रभावित नहीं हुए और अधिक लोगों ने इस्लाम स्वीकार नहीं किया। मुस्लिमों के बसने के लगभग चार सदी बाद तक 1290 के दशक में उत्तरी सुमात्रा में केवल दो छोटे मुस्लिम नगर-राज्य स्थापित हो पाये थे। राजा परमेश्वर के धर्मांतरण और मलाक्का में इस्लामी सल्तनत की स्थापना के बाद इस्लाम का प्रसार तीव्रता से हुआ, क्योंकि उसके बाद ही मलय प्रायद्वीप, इंडोनेशियाई द्वीप-समूह, फिलीपींस और दक्षिणी थाईलैंड को जीतने की गति आगे बढ़ी। यद्यपि मलाक्का सल्तनत एक सदी से भी कम समय तक मुसलमानों के नियंत्रण में रह सका, क्योंकि पुर्तगालियों ने उन्हें उखाड़ फेंका। किंतु उस अल्प समय में ही वहां जनसंख्या के बड़े भाग को मुसलमान बना दिया गया था।

---

[305] पाइप्स (1983), पृष्ठ 266

[306] कहा जाता है कि परमेष्वर को पसाई की जिस नवयौवना सुंदरी को उपहार में दिया गया था, वह मुता शादी से जन्मी थी।

दक्षिणपूर्व एशिया के काफिर अब तक इस्लाम का प्रबल प्रतिरोध कर रहे थे, परंतु ऐसा क्या हुआ कि मुसलमानों द्वारा राजनीति सत्ता प्राप्त करने के बाद उनका धर्मांतरण हो गया?

बहुत से इतिहासकारों में रिचर्ड ईटन और एंथनी जॉन जैसे इतिहासकारों का मानना है कि काफिर अभी इस्लाम का प्रबल प्रतिरोध कर रहे थे और अब बारी उन सूफियों की थी, जो मुख्यतः भारत से आये थे कि वे उन्हें शांतिपूर्ण ढंग से समझाबुझाकर इस्लाम के तीव्र प्रसार का कार्य संभालें। किंतु ईटन के कथन में भी कोई ऐसा स्पष्ट अभिलेख या साक्ष्य नहीं मिलता है, जो यह दिखाये कि सूफियों ने काफिरों का इस्लाम में धर्मांतरण किया था। न ही सूफियों द्वारा धर्मांतरण के लिये प्रयोग की गयी पद्धति का कोई संकेत मिलता है। ईटन के अनुसार, ''विलक्षण पुरोधाओं'' की प्रकृति वाले ''अत्यंत प्रभावषाली जावा के सूफियों (कियायी)'' के विषय में बहुत कम जानकारी मिलती है और जो मिलती भी है, वह इधर-उधर टुकड़ों में मिलती है।[307] इन अप्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर ये विद्वान यह रटते हैं कि धर्मांतरण शांतिपूर्ण प्रकृति का था और उसका श्रेय सूफियों को जाता है।

एक दुराग्रही अभिकथन में सईद नग़ीब अल-अत्तास लिखता हैः 'मुझे यह स्वीकार करना होगा कि सूफी ही थे, जिन्होंने वास्तव में प्रचार किया और अंततः उन लोगों में इस्लाम को स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। मलय के संबंध में मैं निश्चित रूप से अनुभव करता हूं कि वहां सूफियों द्वारा इस्लाम का प्रसार किया गया।' यद्यपि नग़ीब के इस कथन के पीछे कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि उसने इसके तुरंत पश्चात कहाः 'हो सकता है कि मेरी इस मान्यता के समर्थन में कोई सीधा प्रमाण न हो।'[308]

भारत में वो सूफी पुरोधा अधिक लोकप्रिय हैं, जो अधिकांशत: कपटी प्रवृत्ति के थे। यह पहले ही बताया जा चुका है कि भारत में काफिरों का शांतिपूर्ण धर्मांतरण करा पाने में ये सूफी कितने असफल थे और इसी असफलता के कारण ये कितने भयानक हो गये थे। इसका उदाहरण कश्मीर में देखा जा सकता है। विडजोजोमोडजो के अनुसार, इब्न बतूता ने समुद्र सल्तनत को 'अपने मजहबी कर्तव्य को पूरे उत्साह से' पूरा करता हुआ पाया था। यह सल्तनत इमाम शाफी के मज़ाब (विचारधारा) से संबंधित था।'[309] दक्षिण एशिया में मुसलमानों द्वारा मज़ाब कानून को स्वीकार किया गया। मज़ाब विचारधारा में हिंदू, बौद्ध और जीववादी जैसे मूर्तिपूजकों को मृत्यु या मुसलमान बनने में से एक विकल्प चुनने को विवश करने का नियम है। इब्न बतूता के वर्णन से ज्ञात होता है कि जैसे ही मुसलमानों ने समुद्र में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया, उन्होंने आसपास के काफिरों के विरुद्ध बर्बर जिहाद प्रारंभ कर दिया।

---

[307] ईटन (2000), पृष्ठ 39

[308] अल-अत्तास एसएन (1963) सम ऑस्पेक्ट्स ऑफ सूफिज्म ऐज अंडरस्टुड एंड प्रैक्टिस अमंग द मलयज, एस गॉर्डन एड., मलेशियन सोशियोलॉजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट लिमिटेड, सिंगापुर, पृष्ठ 21

[309] विडजोजोमोडजो, पृष्ठ 49

परमेश्वर के इस्लाम स्वीकार करने के मात्र चार वर्ष बाद ही चीनी मुस्लिम ड्रागोमान (दूत) मा हुआन ने पाया कि वह ''अपने दीन का पक्का अनुयायी'' था। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अपने सल्तनत में शाफी कानूनों को कड़ाई से लागू कर रहा था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सुल्तान इस्कंदर (परमेश्वर) और उसके वंशजों ने अपनी गैर-मुस्लिम प्रजा पर कैसी नीतियां लागू की थीं। समुद्र की छोटी सी सल्तनत अपने आसपास के काफिरों के विरुद्ध इस प्रकार की बर्बरता कर रहा था, तो यदि उससे अधिक शक्तिषाली मलाक्का सल्तनत द्वारा इससे अधिक घातक व उत्पीड़नकारी दमन न भी किया गया हो, तो भी उसे इस्कंदर के पदचिह्नों पर चलने के लिये एक मॉडल तो मिला ही होगा।

आरंभिक पंद्रहवी सदी के प्रारंभ में मुस्लिम-शासित मलय प्रायद्वीप और इंडोनेशियाई द्वीप-समूह में इस्लाम का प्रसार जिस प्रकार हुआ, वह गुजरात में हुए समानांतर धर्मांतरण के जैसा ही है, क्योंकि गुजरात का एशियाई मुस्लिम सल्तनतों के साथ निकट संपर्क था। गुजरात उन मुस्लिम व्यापारियों और सूफियों का बड़ा स्रोत था, जो उस समय मलय व इंडोनेशियाई द्वीप-समूह आये। भारत में धर्मांतरण कराने में सूफियों की भूमिका, विशेष रूप से गुजरात में उनकी भूमिका, संभवतः दक्षिणपूर्व एशियाई मुस्लिम सल्तनतों के लिये मलय व इंडोनेशियाई द्वीप-समूह के काफिरों के धर्मांतरण में अनुकरणीय मॉडल थी। हमने पढ़ा है कि दक्षिण भारतीय तटीय नगर माबार (कोरमंडल) का पीर माबारी खंदायत किस प्रकार हिंदुओं के विरुद्ध जिहाद करने और उस क्षेत्र के इस्लामीकरण का लक्ष्य लेकर ब्राह्मणों को उनके घरों से निर्वासित करने के लिये बीजापुर आया था।

सभी संभावनाएं ऐसी ही दिखती हैं कि दक्षिणपूर्व एशिया के मुस्लिम शासकों, सूफियों और उलेमाओं की काफिरों के प्रति असहिष्णुता का स्तर भारत के ऐसे लोगों से कहीं अधिक था। हां, दक्षिण भारत संभवतः इसका अपवाद था। ऐसा इसलिये था, क्योंकि जिस शाफी कानून को वो मानते थे, उसमें गैर-मुसलमानों के लिये धर्मांतरण और मृत्यु में से किसी एक को चुनना अनिवार्य कर दिया गया था; जबकि भारत में प्रचलित हनफी कानूनों ने गैर-हिंदुओं के प्रति थोड़ी सहिष्णुता दिखाते हुए उन्हें ज़िम्मी की स्थिति प्रदान की गयी थी। वास्तव में मुसलमानों द्वारा जीते गये भूभाग पर काफिरों को कुछ स्थान देने के विरोध में शाफी कानून सबसे कठोर है। कुरआन की आयत 9:2 को मानते हुए-जिसमें कहा गया हैः 'जाओ तुम लोग, आगे और पीछे, (जैसे तुम चाहो), पूरी भूमि पर, पर जान लो कि तुम अल्लाह को (अपने खोट से) निष्फल नहीं कर सकते, पर अल्लाह उन्हें तिरस्कार के साथ अपमानित करेगा जो उसे नहीं स्वीकारते हैं'- शाफी (हनबाली भी) कानूनों ने काफिरों को धर्मांतरण करने के लिये ठीक चार माह का समय दिया, जबकि इस्लाम के दूसरे मत इसके लिये एक वर्ष तक समय देते हैं।[310] एक प्रकार से प्रतिरोध कर रहे दक्षिणपूर्व एशियाई काफिरों का इस्लाम में धर्मांतरण भारत की अपेक्षा बहुत कम समय में पूर्ण हो गया। 1511 में मलाक्का सल्तनत को छिन्न-भिन्न कर देने से पूर्व यह सल्तनत मात्र एक सदी तक ही अस्तित्व में रहा। इससे अनुमान लगता है कि मलेशिया, इंडोनेशिया और फिलीपींस के हिंदू-बौद्ध-जीववादी काफिरों को मुसलमान बनाने के लिये संभवतः उनका बड़ा उत्पीड़न किया गया।

दक्षिण एशिया के सूफियों के विषय में ईटन लिखते हैंः 'अत्यंत प्रभावषाली सूफी... जिनके बारे में लगता है कि उन्होंने अनेक अवसरों पर सुल्तान को सत्ता चलाने में सहायता की और कई बार उन्होंने ग्रामीण जनसमूहों में अपने बड़े प्रभाव का प्रयोग

[310] रूडोल्फ पी (1979) इस्लाम एंड कॉलोनिअलिज्मः द डॉक्ट्रीन ऑफ जिहाद इन मॉडर्न हिस्ट्री, मौटन पब्लिशर्स, द हेग, पृष्ठ 31

सुल्तान की सत्ता को दुर्बल करने में भी किया।'[311] ऐसे उदाहरण डॉ ईटन के लिये इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये पर्याप्त हैं कि उन लोकप्रिय और क्रांतिकारी नायक जैसे सूफियों ने हिंदू-बौद्ध और स्थानीय जावा संस्कृतियों इस्लामी रंग में रंगने के लिये रहस्यमयी, मजहबी व बौद्धिक आंदोलन प्रारंभ किया था, जिसके परिणामस्वरूप निश्चित ही मानवीय व शांतिपूर्ण प्रक्रिया द्वारा 'हिंदू संस्कृति वाले जावा को मुस्लिम संस्कृति में' रूपांतरित किया।

किंतु ईटन जिस बात की उपेक्षा करते हैं और जिससे परिचित नहीं हैं, यह है कि सूफी पीर जावा में ही नहीं, अपितु प्रत्येक स्थान पर एक जैसे राजनीतिक आंदोलन में संलिप्त रहे। अन्य अवसरों पर उन्होंने अपने विवेक से काम करने वाले उन मुस्लिम शासकों के विरुद्ध मुस्लिम जनता को भड़काया, जो गैर-मुस्लिमों के प्रति सहिष्णु थे। बर्नार्ड लेविस के अनुसार, मुस्लिम शासक प्रायः उस खतरनाक दमित ऊर्जा से भयभीत रहते थे, जिसे दरवेश नेता (सूफी फकीर) नियंत्रित कर सकते थे और जब चाहें भड़का सकते थे। सेल्जुक व उस्मानिया सुल्तानों के समय दरवेशों के भी विद्रोह हुए। समय-समय पर इन विद्रोहों ने स्थापित व्यवस्था पर गंभीर खतरा भी उत्पन्न किया।'[312]

जैसा कि पहले बताया गया है कि सूफीवाद इस्लाम से दूर जा रहे अब्बासी शासकों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में स्वयं ही विकसित हुआ; क्योंकि इन शासकों ने गैर-इस्लामी फारसी संस्कृति को संरक्षण दिया और इस्लाम के उल्लंघन में नैतिक शिथिलता को प्रोत्साहित किया। कश्मीर और गुजरात में सूफियों ने हिंदुओं का उत्पीड़न करने के लिये शासकों का साथ लिया। सूफी फकीर सईद अली हमजानी जब कश्मीरी सुल्तान को इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार हिंदुओं को प्रताड़ित करने के लिये भड़काने में विफल रहा, तो विरोधस्वरूप उस क्षेत्र को ही छोड़कर चला गया। मुस्लिम जनता और उलेमाओं के मिलकर अपने समय के अग्रणी सूफी फकीर शेख अहमद सरहिंदी ने बादशाह अकबर की गैर-मुस्लिमों के प्रति उदार व सहिष्णु नीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया।

ऐसा कम ही रहा कि सूफी उदार मुस्लिम शासकों के विरुद्ध न हुए हों। ऐसे ही एक उदाहरण में एक सूफी पीर बुद्धू शाह के 700 अनुयायी बादशाह औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध गुरु गोविंद सिंह के साथ आ गये थे। किंतु यह गठबंधन गोविंद सिंह की सेना के हिंदुओं और सिखों को इस्लाम स्वीकार करने की ओर आकर्षित कर पाने में विफल रहा। सूफी पीर सामान्यतः इस्लाम के आदेशों को लागू करने के लिये शासकों से हाथ मिलाते थे, विशेष रूप से गैर-मुस्लिम जनता पर अत्याचार करने के उद्देश्य से वे ऐसा करते थे। अन्य स्थानों की अपेक्षा जावा में शासकों के विरोध या पक्ष के राजनीतिक आंदोलनों में सूफियों की संलिप्तता अविश्वसनीय रूप से अन्य कारणों से भिन्न थी। भले ही सूफियों ने कभी सताये गये काफिरों के साथ हाथ मिलाया हो, लेकिन इस बात पर विश्वास करने का कोई आधार नहीं है कि ऐसे गठबंधनों से बड़ी संख्या में इस्लाम में स्वैच्छिक धर्मांतरण संभव हुआ।

यह पहले ही बताया गया है कि इस्लामी जिहादी लड़ाकों ने अपने अभियानों में जो बर्बरता दिखायी थी, उसने प्रायः काफिरों को आत्मसमर्पण करने और इस्लाम स्वीकार करने के लिये आतंकित किया। दक्षिणपूर्व एशिया में मुस्लिम शासकों द्वारा

---

[311] ईटन (2000), पृष्ठ 28

[312] लेविस बी (2000) द मिडिल ईस्ट, फोनिक्स, लंदन, पृष्ठ 241

किये गये जिहादी हमले भी कम बर्बर और कम आतंक फैलाने वाले नहीं थे। प्रोफेसर एंथनी रीड, जो यह सोचते हैं कि दक्षिण एशिया में 'इस्लाम अधिक समतावादी था', लिखते हैंः '1618-24 की अवधि में ऐके के (मुस्लिम शासकों द्वारा) जिहादी अभियानों के परिणामस्वरूप मलय ने अपनी अधिकांश जनसंख्या खो दिया।'[313] इसी प्रकार दक्षिण एशिया का महान मुस्लिम सुल्तान कहे जाने वाले मातरम के सुल्तान आगुंग ने अपने 80,000 जिहादियों के साथ सुराबाया और इसके आसपास के नगरों की घेराबंदी की, तो उसकी फौज ने चावल की सभी उपजों को नष्ट कर दिया और यहां तक कि जल में विष मिला दिया, नदी को बांधकर नगर में उसकी धारा का प्रवाह रोक दिया। इन अभियानों के परिणामस्वरूप उस नगर के 50,000-60,000 निवासियों में से मात्र 500 ही जीवित बचे; शेष नागरिक या तो मर गये अथवा भुखमरी और अकाल की स्थिति आ जाने के कारण नगर छोड़कर चले गये।[314]

इसके अतिरिक्त दक्षिणपूर्व एशिया में मुस्लिम शासकों द्वारा छेड़ी गयी जंगों का लक्ष्य बलपूर्वक लोगों को सामूहिक रूप से मुसलमान बनाने का था। उदाहरण के लिये, 16वीं सदी में सुलावेसी के मकास्सर के लोग उनमें प्रमुख थे, जो इस्लाम का विरोध कर रहे थे। बुलो-बुलो (सिंदजय क्षेत्र) के स्थानीय इतिहास में वर्णित है कि मकास्सर के मुस्लिम शासक ने मकास्सर के लोगों को इस्लाम स्वीकार करने को कहा और ऐसा न करने पर परिणाम भुगतने की धमकी दी। मकास्सर के एक प्रमुख नेता ने 'इस आदेश की अवज्ञा करते हुए घोषणा की कि जब तक बुलो-बुलो के जंगलों खाने के लिये सुअर हैं, चाहे रक्त की नदियां बह जाएं, वो इस्लाम के आगे नहीं झुकेंगे। एक निराधार कहानी सुनायी जाती है कि उसी रात सारे सुअर लुप्त हो गये, इसलिये वह मुखिया और उसके सभी लोग धर्मांतरण करने को विवश हो गये।'[315] यद्यपि किसी के लिये यह विश्वास करना अति ही होगी कि उस प्रकार चामत्कारिक रूप से सभी सुअर लुप्त हो गये। जबकि वास्तव में हुआ यह होगा कि मकास्सर के लोग हिंसा या वास्तविक युद्ध के खतरे से विचलित होकर सामूहिक धर्मांतरण किये होंगे। बंजारमसिन (इंडोनेशिया) के मध्य-सातवीं सदी की तिथि वाले इतिहास वृत्त हिकयात बंजर के अनुसार, 'जब सत्ता के विरोधी दावेदारों ने गृहयुद्ध टालने के लिये एक ही संघर्ष पर निर्णय कर लिया, तभी बंजारमसिन का इस्लामीकरण प्रभावशाली ढंग से सुनिश्चित हो गया था।'[316] यह पुनः सिद्ध करता है कि दक्षिणपूर्व एशिया के मुस्लिम शासकों ने पराजित लोगों को मुसलमान बनाने के तीव्र उद्देश्य से जिहाद छेड़ा था। जब मुस्लिम शासक इसमें जीत गये, तो धर्मांतरण एक विकल्प नहीं, अपितु बाध्यता बन गयी। इन उदाहरणों के आधार पर एमसी रिकलैफ्स तर्क देते हैं, 'मुस्लिम

---

[313] रीड ए (1988) साउथईस्ट एशिया इन द एज ऑफ कॉमर्स 1450-1680, येल यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यू हावेन, अंक 1, पृष्ठ 35, 18

[314] इबिद, पृष्ठ 17

[315] इबिद, पृष्ठ 35

[316] इबिद, पृष्ठ 124

पदाधिकारियों द्वारा (जावा में) गैर-मुस्लिमों को पराजित करने के बाद उन्हें हथियारों के बल पर बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया होगा और इसके बाद संभवतः पराजित प्रमुख और उनके लोगों को इस्लाम स्वीकार करने को विवश होना पड़ा होगा।'[317]

दक्षिणपूर्व एशिया में मलाक्का और अन्य सल्तनतों ने अपने भूभाग के विस्तार के लिये बड़ी संख्या में जिहादी अभियान चलाये थे, जिनमें निस्संदेह बड़ी संख्या में दास (गुलाम) मिले और उन दासों ने सामान्यतः इस्लाम स्वीकार कर लिया। मुस्लिमों द्वारा सत्ता पर नियंत्रण करने के बाद उस क्षेत्र में दास बनाने का काम बहुत बढ़ गया था। जब पुर्तगाली इस्लामी दक्षिण एशिया में आये, तो उन्हें पारिश्रमिक पर काम करने वाले लोगों की भर्ती में कठिनाई आयी, क्योंकि वहां के लगभग सभी लोग किसी न किसी के दास थे। फारसी इतिहास वृत्त लेखकर मुहम्मद इब्न इब्राहीम ने 1668 में लिखा कि ''दासों को भाड़े पर देना उनकी परंपरा है। वे भाड़े पर लिये गये दास को कुछ धन देते हैं और दास वह धन अपने स्वामी को दे देता है और तब वे उस दास से उस दिन जो चाहें वो काम कराते हैं।'' इसी प्रकार पुर्तगाली लेखक जोआओ डी बैरोस ने 1563 में लिखाः 'आपको एक भी मूल मलय निवासी ऐसा नहीं मिलेगा, भले ही वह कितना भी निर्धन क्यों न हो, जो अपनी पीठ पर अपनी वस्तुएं या दूसरे की वस्तुएं उठाकर चलने को तैयार हो, चाहे इस काम के लिये उन्हें कितना भी धन दिया जाए। क्योंकि उनके सारे काम दासों द्वारा किये जाते हैं।''[318] चीनी यात्री ह्वांग चुंग ने 1537 में लिखा कि मलक्का के लोग ''कहते हैं कि भूमि रखने की अपेक्षा दास रखना अधिक अच्छा है, क्योंकि दास अपने स्वामियों के लिये व्यापक रूप से सुरक्षित संपत्ति होते थे।''[319] रीड के अनुसार, 'दास रखने वाले व्यापारी वर्ग के अनेक सदस्य इस्लामी संसार से गहरे जुड़े हुए थे और इस्लाम में संपत्ति के रूप में दास रखने का स्पष्ट विधान है।'[320] इससे पता चलता है कि जिन्होंने मुस्लिम दक्षिण एशिया में इतने व्यापक ढंग से दास प्रथा को प्रोत्साहित किया, वो मुस्लिम व्यापारी थे।

जब इब्न बतूता ने समुद्र सल्तनत की यात्रा की, तो वहां के सुल्तान ने उसे दो दास-बालिकाएं और दो पुरुष सेवक उपहार में दिये।[321] बतूता ने मुल-जावा के काफिर शासक द्वारा रखे दासों का भी उल्लेख किया है। मुल-जावा ने तीन दिनों तक बतूता का सत्कार किया था। बतूता ने कहा कि उस (शासक) के प्रेम के वशीभूत उनमें से एक दास ने अपने ही हाथों अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।[322] इसका अर्थ यह हुआ कि दक्षिणपूर्व एशिया के इस्लामी होने से पहले भी वहां दासप्रथा थी। रीड लिखते हैं, थाई

---

317 रिकलैफ्स (1979) सिक्स सेंचुरीज ऑफ इस्लामाइजेशन इन जावा, इन एन. लेवट्जिऑन., पृष्ठ 106-07

318 रीड (1988), पृष्ठ 131

319 इबिद, पृष्ठ 129

320 इबिद, पृष्ठ 134

321 गिब, पृष्ठ 275

322 इबिद, पृष्ठ 277-78

साम्राज्य के लोगों को अपना आधा समय राजा का काम करने के लिये देना पड़ता था।[323] यह भी एक प्रकार की दास प्रथा थी। इस्लाम पूर्व दक्षिणपूर्व एशिया में दास संभवतः राजाओं और उच्चाधिकारियों के पास होते थे, न कि सामान्य लोगों के पास। किंतु मुस्लिम शासन में दासप्रथा सर्वत्र व्याप्त हो गयी। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि मुस्लिम जिन्हें दास बनाते थे, उन्हें इस्लाम में धर्मांतरण करना पड़ता था, जबकि पहले ऐसा नहीं था। दक्षिण एशिया में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के बाद गैर-मुस्लिम भू-भागों पर हमला करना निरंतर चलने वाली घटना बन गयी। रिकलैफ्स कहते हैं, 'यह अवधि जावा के लगभग अनवरत युद्ध की विशेषता वाले इतिहास की रही।'[324]

यहां की जनसंख्या का पर्याप्त भाग, जो तथाकथित आदिम जातियां थीं, पहाड़ियों में रहता था। आरंभिक पंद्रहवी सदी में मुसलमानों के सत्ता में आने के बाद पांच सदी में वो जीववादी आदिम जनजातियां लुप्त हो गयीं, क्योंकि 'हमला करके, लोभ देकर या क्रय करके और विशेष रूप से उनके बच्चों को क्रय करके दास बना लेने के माध्यम से उन्हें मलय, सुमात्रा और बोरनिओ की मुस्लिम जनसंख्या में मिला लिया गया।'[325] रीड ने आगे लिखा है, 'कुछ छोटे सल्तनत, विशेष रूप से सुलू, बूटन और टिडोर, पूर्वी इंडोनेशिया या फिलीपींस में हमला कर लोगों को दास बनाने और उन दासों को समृद्ध नगरों या सातवीं सदी के दक्षिणी बोरनिओ के कालीमिर्च बागानों में बेचने का लाभकारी व्यवसाय प्रारंभ करने लगे थे।'[326] दक्षिणपूर्व एशिया में मुस्लिमों के जिहाद द्वारा दास बनाने का काम प्रायः पूरा कर लिया गया थाः वहां की समूची जनसंख्या को दास बनाकर ले जाया गया। उदाहरण के लिये, थॉमस ईवी ने 1634 में रिपोर्ट किया कि काली मिर्च क्रय करने के लिये अंग्रेजों का एक दल दो दिन तक सुमात्रा के एक नगर इंद्रागिरि को ढूंढ़ता रहा, पर वह नगर नहीं मिला, जबकि इंद्रागिरि कभी फलता-फूलता नगर हुआ करता था। उन्हें बाद में पता लगा कि 6 वर्ष पूर्व ऐके के मुस्लिम हमले में उस नगर की पूरी जनसंख्या को बलपूर्वक वहां से तीन दिन की नदी यात्रा वाले एक दूर स्थान पर हांककर ले जा गया था।[327] वो लोग बहुदेववादी हिंदू, बौद्ध और जीववादी मत से संबंधित थे और उन लोगों को बंधक बनाने वाले शाफी विचारधारा के मुस्लिम जिहादियों ने संभवतः उन्हें अपने धर्म को मानने की अनुमति नहीं दी थी।

यद्यपि स्पेनी योद्धाओं ने फिलीपींस पर अधिकार कर लिया था और दक्षिण में मुस्लिम नियंत्रित क्षेत्रों पर दबाव बनाये रखा, किंतु मोरो के मुस्लिम हमलावरों ने दासों को पाने के लिये स्पेनी अधिकार वाले भू-भागों पर निरंतर औचक हमले कर जिहाद को जीवित रखा। मनीला के ऑर्कबिशप में 1637 में दावा किया था कि मुस्लिम हमलावरों ने पिछले तीस वर्षों में औसत रूप से

---

[323] रीड (1988), पृष्ठ 132

[324] रिकलैफ्स (1979), पृष्ठ 106

[325] रीड (1988), पृष्ठ 133

[326] इबिद

[327] इबिद पृष्ठ 122-23

10,000 कैथोलिक फिलीपीनियों को दास बनाया। ऐसा अनुमान है कि मोरो जिहादियों ने फिलीपींस में 1665 में प्रारंभ हुए स्पेनी शासन के पहले की दो सदियों में यही कोई 20 लाख गैर-मुसलमानों को बलपूर्वक दास बनाया था।[328] इसके बाद स्पेनी और पुर्तगाली समुद्री रक्षक दल मोरो जिहादियों के हमलों को रोकने में उत्तरोतर सफल हुए। परंपरागत अनुमानों के अनुसार 1770 से 1870 के मध्य दक्षिण फिलीपीनो मुस्लिम दो से तीन लाख लोगों को दास बनाकर मलय प्रायद्वीप और इंडोनशियाई द्वीप-समूह ले आये थे।[329] उन्नीसवी सदी के अंतिम वर्षों में मलय प्रायद्वीप और इंडोनषियाई द्वीप-समूह में दासप्रथा बहुत अधिक थीः 1879 में पेरक सल्तनत में यही कोई 6 प्रतिशत जनसंख्या दास थी, 1860 के दशक में पश्चिम सुमात्रा के पूर्वी क्षेत्र की एक तिहाई जनसंख्या दास थी, उत्तरी सुलावेसी के मुस्लिम-शासित क्षेत्र में दासों की संख्या 30 प्रतिशत थी और 1880 के दशक में उत्तरी बोरनिओ के अनेक भागों में दासों की संख्या जनसंख्या की दो तिहाई या इससे भी अधिक थी।[330] यहां आपको यह तथ्य ध्यान रखना चाहिए कि यूरोप ने 1815 में दासप्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया था, जिसके दबाव में मुस्लिम शासकों को भी यह करना पड़ा और इसके बाद भी जब भी आवश्यकता पड़ी, तो यूरोप ने दास-व्यापार रोकने के लिये बल प्रयोग किया।

व्यापक दासप्रथा के इन उदाहरणों से पाठकों को स्पष्ट अनुमान लग जाएगा कि दक्षिणपूर्व एशिया में धर्मांतरण कैसे हुआ। मुस्लिम शासकों ने पराजित जनता को विवश कर तीव्रता से धर्मांतरण के लिये भी जिहाद छेड़ा। इसके अतिरिक्त निरंतर मुस्लिम हमले, इस्लामी कानून के अनुसार मुस्लिम शासकों द्वारा गैर-मुसलमान जनता का भयानक सामाजिक अपमान एवं कष्टदायी व भेदभावपूर्ण खरज, जज़िया व अन्य करों के बोझ से लोगों का इतना उत्पीड़न किया गया कि वे इस्लाम में धर्मांतरण कर लें। डच जनरल कोहेन (1615) द्वारा दिये गये एक साक्ष्य में दक्षिणपूर्व एशिया के इस्लामी शासकों द्वारा गैर-मुसलमान जनता के मन में भरे गये आतंक का चित्र मिलता है। लोगों ने जनरल डच को बताया था कि बैंटेन के पैनगैरैन के मन में पुतर्गाली, स्पेनी, हॉलैंड के लोगों या अंग्रेजों को लेकर भय नहीं है, अपितु वे केवल मातरम के मुस्लिम राजा से आतंकित रहते हैं। लोगों ने बताया कि वह मुस्लिम राजा कहता है कि यहां का कोई भी व्यक्ति भाग नहीं सकता है और जहां तक बाहरी लोगों की बात है, तो उनको रोकने के लिये पहाड़ियां ही पर्याप्त हैं, क्योंकि वे लोग वहां अपने पोतों से हमारा पीछा नहीं कर सकते हैं।''[331]

इस निराशाभरी स्थिति के बीच, मुस्लिम धर्मोपदेशकों, सूफियों और उलेमाओं ने उन सताये गये, अपमानित किये गये, कंगाल बना दिये गये और आतंकित किये गये काफिरों (गैरमुसलमानों) को इस्लाम में धर्मांतरित करने में कुछ योगदान दिया होगा,

---

[328] रीड ए (1983) इंट्रोडक्शनः स्लेवरी एंड बांडेज इन साउथईस्ट एशियन हिस्ट्री, इन स्लेवरी बांडेज एंड डिपेंडेंसी इन साउथईस्ट एशिया, एंथनी रीड ईडी., यूनीवर्सिटी ऑफ क्वीन्सलैंड प्रेस, सेंट लूसिया, पृष्ठ 32

[329] वारेन जेएफ (1981) द सुलू जोन, 1768-1898: द डायनैमिक्स ऑफ द एक्सटर्नल स्लेव ट्रेड एंड एथनिसिटी इन द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ एक साउथईस्ट एशियन मैरीटाइम स्टेट, सिंगापुर यूनीवर्सिटी प्रेस, सिंगापुर, पृष्ठ 208

[330] क्लैरेंस-स्मिथ डब्ल्यूजी (2006) इस्लाम एंड एबॉलिशन ऑफ स्लेवरी, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ 15-16

[331] रीड (1988) पृष्ठ 122

किंतु इस प्रकार के धर्मांतरणों का संभवतः नाममात्र का ही प्रभाव रहा, क्योंकि 'चौदहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी के अंत तक उस (इंडोनेशियाई) द्वीप-समूह में कोई संगठित मुस्लिम मिशनरी गतिविधि नहीं देखी गयी।'[332] ईटन जैसे इतिहासकारों को अस्पष्ट, अप्रमाणित ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर अपना निष्कर्ष निकालने से पूर्व इस तथ्य पर भी विचार करना चाहिए था। इसका तात्पर्य यह है कि वहां सूफियों या उलेमाओं द्वारा चलाया गया कोई भी संगठित शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधि नहीं थी (यही स्थिति भारत में थी), इसलिये इस प्रकार समझाने-बुझाने के साधनों से बहुत कम धर्मांतरण हुए। जैसा कि भारत में हुआ, वैसा ही दक्षिणपूर्व एशिया में भी धर्मांतरण निश्चित ही प्रमुख रूप से राज्य के बल प्रयोग अर्थात तलवार, व्यापक स्तर पर बंदी बनाकर दास बनाने और अन्य उत्पीड़कारी बाध्यताएं थोपने के माध्यम से हुआ होगा।

जब मुसलमान दक्षिण एशिया में आकर बसे, तो वे प्रत्यक्ष रूप से शादी या व्यापारिक संपर्क जैसे माध्यमों से स्थानीय लोगों को धर्मांतरित कर सकते थे। मुस्लिमों ने अपने मजहब के लोगों को इस्लाम छोड़ने की अनुमति कभी नहीं दी, किंतु इसके विपरीत सामान्य रूप से सहिष्णु स्थानीय लोगों की ओर से मुसलमान बन गये काफिरों या उनको मुसलमान बनाने वालों को कभी अत्याचार का सामना नहीं करना पड़ा। यदि इस्लाम का संदेश इतना ही आकर्षक था, तो ऐसे अनुकूल वातावरण में सूफियों, व्यापारियों या जो भी इस्लाम को लेकर विश्वास दिलाने वाला उपदेश देता था, उसे मुस्लिमों की जीत से पूर्व ही काफिरों के धर्मांतरण में सफल हो जाना चाहिए था, किंतु ऐसा नहीं हुआ। वास्तविक तथ्य यह है कि मुस्लिम जीत से पहले उपदेश के माध्यम से धर्मांतरण न के बराबर हुआ था। दक्षिणपूर्व एशिया में तलवार की जीत ही निस्संदेह काफिरों को मुसलमान बनाने में प्राथमिक हथियार बनी।

भारत में मुसलमानों ने भी यही मॉडल अपनाया था। अल-मसूदी के अभिलेख स्पष्ट रूप से बताते हैं कि मुस्लिम आक्रांताओं के आने से पूर्व भारत की सहिष्णु संस्कृति में मुस्लिम जनसंख्या का विस्तार मुख्यतः शादियां करके संतानोत्पत्ति से हुआ। अल-मसूदी बताता है कि शादी के माध्यम के अतिरिक्त धर्मांतरण न के बराबर होता था। किंतु मुस्लिम आक्रांता इस्लाम की तलवार तीन बार में भारत लायेः पहली बार आठवीं सदी के आरंभ में मुहम्मद बिन क़ासिम द्वारा, इसके बाद आरंभिक ग्यारहवीं सदी में सुल्तान महमूद द्वारा और अंततः बारहवीं सदी के अंतिम वर्षों में सुल्तान गोरी द्वारा लायी गयी। इसके पश्चात बर्बर मुस्लिम हमलों, गैर-मुसलमानों को सामूहिक रूप से बंदी व दास बनाने और अन्य प्रकार के अत्याचारों से बड़े स्तर पर स्थानीय भारतीयों का बलपूर्वक धर्मांतरण हुआ।

निष्कर्ष

इतिहासकार डी लैसी ओ'लीरी इस्लाम में धर्मांतरण करने के विषय पर लिखते हैं कि,

---

[332] वैन न्यूवेन्हुइजे सीएओ (1958) आस्पेक्ट्स ऑफ इस्लाम इन पोस्ट-कॉलोनियल इंडोनेशिया, डब्ल्यू. वैन होईव लिमिटेड, द हेग, पृष्ठ 35

> 'यद्यपि इतिहास में यह स्पष्ट है कि उन्मादी मुसलमानों के सरलता से सफलता पाना और जीते गये लोगों पर तलवार के बल पर इस्लाम थोपने जैसी बातें आश्चर्यजनक रूप से ऐसे बेतुके मिथकों में से एक है, जो इतिहासकारों ने बारबार दोहराया है।'[333]

यदि इतिहास समकालीन विद्वानों और इतिहासवृत्त लेखकों के अभिलेखों में भावी पीढ़ियों के लिये दिये गये तथ्यपरक साक्ष्यों के अध्ययन को कहते हैं, तो ''ओ'लीरी ने संभवतः इस दृष्टिकोण पर विचार नहीं किया कि इस्लाम का प्रसार अपने आप में आश्चर्यजनक रूप से सबसे बेतुका मिथक है।'' यदि मिथक और तथ्य एक-दूसरे के पर्याय होते, तो लीरी निश्चित ही सही होते। ओ'लीरी के जैसे ही बहुत से आधुनिक मुस्लिम इतिहासकार और उनके सहचर गैर-मुस्लिम यात्री, विशेष रूप से वामपंथी-मार्क्सवादी झुकाव वाले, सोचते हैं कि अनुसंधानपरक इतिहास का अर्थ तथ्यों का अन्वेशण या गणना करना नहीं होता है, अपितु कुतर्क लिखते हुए तथ्यों को छिपाना इतिहास होता है। दुर्भाग्य से जब इस्लाम का इतिहास लिखने की बात आती है तो यह एक परिपाटी बन गयी है। पर जो इस्लामी इतिहास के बारे में सीधा सच जानना चाहते हैं, जैसे कि भारत के बारे में, तो उन्हें अल-कुफी (चचनामा), अल-बिलाज़ुरी, अलबरूनी, इब्न असीर, अल-उत्बी, हसन निज़ामी, अमीर खुसरो, जियाउद्दीन बर्नी, सुल्तान फिरोज तुगलग, बादशाह बाबर व जहांगीर, बदायूंनी, अबुल फज़ल, मुहम्मद फरिश्ता और ऐसे मध्यकालीन इतिहासकारों के लेखन को पढ़ना चाहिए।

एक प्रतिष्ठित फिलीस्तीनी समाजशास्त्री और शिक्षा पर संयुक्त राष्ट्र रिलीफ व कार्य एजेंसी (यूएनआरएडब्ल्यूए) के परामर्शक डॉ. अली ईसा उस्मान ने इस्लाम के प्रसार पर कहा है कि, ''इस्लाम का प्रसार फौज द्वारा हुआ। (मुसलमानों) में इसके लिये माफी मांगने की प्रवृत्ति है, पर हमें माफी नहीं मांगनी चाहिए। यह कुरआन का आदेश है कि तुम्हें इस्लाम के प्रसार के लिये अनिवार्य रूप से जंग करना चाहिए।''[334] मध्यकालीन इतिहास वृत्तांत लेखकों, इतिहासकारों और शासकों के प्रत्यक्ष साक्ष्य वाले विवरणों के अभिलेखों में उस्मानिया प्रतिमान से स्पष्ट सहमति दिखती है।

अंततः यह नहीं भूलना चाहिए कि इस्लाम के सर्वाधिक करिश्माई उपदेशक कहे जाने वाले पैगम्बर मुहम्मद ने भी जब तक तलवार के बल पर धर्मांतरण कराना नहीं प्रारंभ किया, तब तक वह अरब के लोगों और यहां तक कि अपने संबंधियों का भी धर्मांतरण करने में विफल रहा था।

---

[333] ओ'लीरी डीएल (1923) इस्लाम एट द क्रॉस रोड्स, ई. पी. डट्टन एंड को, न्यूयार्क, पृष्ठ 8

[334] वैड्डी, पृष्ठ 94

अध्याय 5

अरब-इस्लामी साम्राज्यवाद

'(अल्लाह ने) ने तुम (मुसलमानों) को अपना एजेंट, धरती का उत्तराधिकारी बनाया' और वादा किया... उनको धरती पर शासक बनाने का।'

- अल्लाह, कुरआन 24:55, 6:165

'और उनसे तब तक लड़ो... जब तक कि न्याय न व्याप्त हो जाए और सबमें एवं सब स्थान पर अल्लाह में विश्वास न स्थापित हो जाए।'

- अल्लाह, कुरआन 8:39

'... अरबी अब तक के सभी साम्राज्यवादियों में सबसे सफल थे, तो उनके द्वारा जीता जाना (और फिर उनके जैसा बनना) आज भी मुसलमानों के मन में भरा जाना है।'

- वी.एस. नायपॉल, अमंग द बिलीवर्स, पृष्ठ 142

पूर्व के उपनिवेशों के नागरिक सामान्यतः यूरोपीय देशों के औपनिवेशिक शासन के अतीत के कारण आज के यूरोपीय देशों के प्रति शत्रुता का भाव रखते हैं। उनकी सामूहिक राष्ट्रीय मानसिकता और बौद्धिक, साहित्यिक व राजनीतिक संवाद में यह दुर्भाव प्रमुख रूप से चला आ रहा है। यूरोपीय राष्ट्रों ने एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और आस्ट्रेलिया को उपनिवेश बनाया, किंतु उसमें कोई नृजातीय या धार्मिक भेदभाव नहीं था। किंतु उनका औपनिवेशिक अतीत निरंतर मुसलमानों के मन में क्रोध और घृणा भरने का काम कर रहा है।

पूर्व के गैर-मुस्लिम उपनिवेश यथाः भारत, हांगकांग, फिलीपींस, वियतनाम, दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील आदि अपने अतीत के उपनिवेशवादी अन्याय को किनारे रखकर परिपक्व ढंग से अपने पूर्व औपनिवेशिक स्वामियों के साथ मूल्यवान आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक संबंध बनाने के लिये आगे बढ़ चले हैं। उनके इस बुद्धिमानी भरे दृष्टिकोण से उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद महत्वपूर्ण विकासात्मक लाभ व प्रगति मिली है। उदाहरण के लिये, दक्षिण कोरिया ने अपने पूर्व के बर्बर औपनिवेशिक स्वामी जापान (1910-45) के विरुद्ध रोष को भुलाकर उसके साथ सुदृढ़ संबंध स्थापित किये हैं। किंतु वहीं दूसरी ओर, मुस्लिम दुनिया अतीत के औपनिवेशिक अत्याचारों को निरंतर स्मरण रखने के व्यर्थ के काम में व्यस्त है। वे अपनी वर्तमान

दुर्दशा व आशाहीन स्थिति के कारणों को पहचानने के लिये अपने भीतर झांकने के बजाय वर्तमान की अपनी कमियों व विफलताओं के लिये अतीत के औपनिवेशिक स्वामियों को उत्तरदायी ठहराना सुविधाजनक पाते हैं।

मुसलमानों में औपनिवेशिक-विरोधी रोष इतना गहरा है कि यह इस्लामी कट्टरपंथियों में पश्चिम-विरोधी घृणा व हिंसा को बढ़ावा देने में बड़ी भूमिका निभाता है। नाटककार और अभिनेता ऐडम ब्रोइनाउस्की के अनुसार, मुस्लिम चरमपंथियों द्वारा आत्मघाती विस्फोट 'उपनिवेशवाद के अतीत और इसके रोष' से जुड़ा हुआ है और संभवतः इसमें (अतीत के) साम्राज्यवाद का विरोध सम्मिलित है।'[335] जोन पेर सोचते हैं, महाद्वीपों में यूरोपीय उपनिवेशवाद के इतिहास ने 'पीढ़ियों तक रहने वाले शिकायत के भाव के साथ बड़ी, अटूट और अत्यधिक अशांत इस्लामी जनसंख्या के तैयार होने में सहायता की है', जिससे यू.एस. और यूरोप में पनपने वाले आतंकवाद को ईंधन मिलता है।[336]

यद्यपि आश्चर्य इस बात पर होता है कि मुसलमान यह स्वीकार करने से दूर भागते हैं कि उनका अपना अतीत न केवल साम्राज्यवादी था, अपितु जिनके ऊपर वे टूट पड़े थे उनके लिये बर्बर और सबकुछ नष्ट कर देने वाला था। मुसलमान बन गये एक आस्ट्रेलियाई जनजातीय रॉकी डेविस उर्फ शहीद मलिक दावा करता है कि 'इस्लाम उपनिवेशवाद और नस्लवाद के दाग से मुक्त एक मजहब प्रस्तुत करता है। उसके अनुसार, 'मुस्लिम और ईसाई धर्म में भेद यह हैः एक सताये हुए लोगों के लिये है और एक सताने वालों के लिये है, एक उपनिवेश बनाने वाले के लिये है और एक उपनिवेश बनने वाले के लिये है।'[337] उसने बीबीसी रेडियो से कहा कि,

> ईसाइयत आक्रमण की संस्कृति है और यदि कोई कहता है कि ऐसा नहीं है, तो मैं चाहूंगा कि ऐसे लोगों से दर्शकों के सामने या लाइव टीवी पर बहस करूं कि ईसाइयत सारे संसार के देशज लोगों पर आक्रमण करने के लिये एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया, कनाडाई भारतीय तुम्हें बतायेंगे, माओरिस तुम्हें बतायेंगे, कुक द्वीप के लोग तुम्हें बतायेंगे, अफ्रीकी लोग तुम्हें बतायेंगे, कि अंग्रेजों ने ईसाइयत का प्रयोग जीतने और दास बनाने के लिये किया... और मुझ पर कभी किसी मुस्लिम देश द्वारा हमला नहीं किया गया। जहां कहीं भी ईसाई गये, उन्होंने लूटा, छीना, हत्याएं कीं, दास बनाये और बलात्कार किये।[338]

मुस्लिम अरबियों, जो अधिकांशतः असभ्य अराजक रेगिस्तानी घुमंतू थे, ने 630 ईसवी में अरब प्रायद्वीप से विश्व को बर्बरता से जीतने का बड़ा अभियान चलाया। एक सदी के भीतर उन्होंने एशिया, समूचे मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन तक

---

[335] द एज, डेडली डिजीज बिदाउट क्योर, 19 जून 2007

[336] पेर जे, होमग्रोन टेररिज्म इन द यू.एस. एंड यूरोप, पर्सपेक्टिव डॉट काम, 13 अगस्त, 2006

[337] ए न्यू फेथ फॉर कूरीज, द सिडनी मॉर्निंग हेराल्ड, 4 मई 2007

[338] एबीसी रेडियो, एबॉर्जिनल दावा- 'काल टू इस्लाम', 22 मार्च 2006;
http://www.abc.net.au/rn/talks/8.30/relrpt/stories/s1597410.htm

विस्तृत विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने सामूहिक नरसंहार के माध्यम से बहुत बड़ी संख्या में लोगों को सफाया कर दिया, उस समय की महान सभ्यताओं को मिटा दिया और सदा के लिये बहुतों की सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर दिया। इस अध्याय में इस्लामी विस्तारवाद की उस हिंसक व विनाशकारी पक्ष पर बात की जाएगी, जिसे विनाशकारी औपनिवेशिक शासन ने भी अपनाया था।

इस्लामी साम्राज्यवादः कुरआन के आदेश और पैगम्बर का मॉडल

उपननिवेशवाद का वर्णन शासन की एक ऐसी प्रणाली के रूप में किया जा सकता है, जिसके अंतर्गत शक्तिशाली राज्य दुर्बल राज्य या जनता पर उनके धन, संसाधन, श्रम और बाजार का दोहन करने के लिये प्रभुत्व स्थापित करते हैं। उपनिवेशवाद प्रायः पराधीन बनाने गये लोगों के सामाजिक-राजनीतिक मानदंडों और सांस्कृतिक मूल्यों को नीचा भी दिखाता है। यद्यपि साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को एक-दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है, किंतु साम्राज्यवाद अधिक विशिष्टता से राजनीतिक सत्ता और शक्तिशाली राज्यों द्वारा दुर्बल राज्यों पर परोक्ष प्रभाव या प्रत्यक्ष सैन्य शक्ति से नियंत्रण करने की ओर इंगित करता है। इसलिये उपनिवेशवाद का लक्ष्य व्यापक होता है, जिसमें साम्राज्यवाद समाहित होता है।

कुरआन जिहाद के माध्यम से वैश्विक स्तर पर मजहबी-राजनीतिक बादशाही स्थापित करने की विचारधारा को मानना अनिवार्य करती है। इस्लाम एक मजहबी, सामाजिक और राजनीतिक पंथ है-एक में ही सब समाहित-एक सम्पूर्ण जीवनशैली। अल्लाह मुसलमानों को सम्पूर्ण धरती पर इस्लाम के सर्व-व्यापक मजहबी-सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली की स्थापना के लिये काफिरों के विरुद्ध हिंसक हमलों और जंग वाला अंतहीन जिहाद छेड़ने का आदेश देता है।

उदाहरण के लिये, कुरआन आदेश देती हैः

1. 'और जब तक कि उपद्रव या अत्याचार [गैर-इस्लामी धर्म] का अंत न हो जाए, और न्याय और अल्लाह में ईमान न व्याप्त हो जाए, उनसे (काफिरों से) जब तक जंग करते रहो' [कुरआन 2.193]
2. 'जब तक कि उपद्रव या अत्याचार समाप्त न हो जाए और सबमें और सब स्थान पर न्याय और अल्लाह में ईमान न फैल जाए, और उनसे तब तक जंग करते रहो' [कुरआन 8.39]

[कुरआन 24:42, 34:1] कहती है, आकाश और धरती एवं इसमें जो भी है, वो सब अल्लाह का है। [कुरआन 57:5, 67:1] आकाश और धरती पर अल्लाह का सर्वोच्च और सम्पूर्ण अधिकार है और अल्लाह ने वैश्विक इस्लामी शासन स्थापित करने के लिये मुसलमानों को धरती का उत्तराधिकारी बनाया है। कुरआन कहती हैः '(अल्लाह ने) तुम्हें अपना एजेंट, धरती का उत्तराधिकारी बनाया है' [कुरआन 6:165] और धरती का शासक बनाने का वादा किया है' [कुरआन 24:55]। जब मुसलमान काफिरों के विरुद्ध जिहाद छेड़ेंगे, तो अल्लाह उनकी सहायता के लिये आएगा, जिससे कि वे धीरे-धीरे उन (काफिरों) की भूमि पर अधिकार कर लें और अंततः अल्लाह पूरी धरती को उनके (मुसलमानों के) नियंत्रण में लाएगा; इस प्रकार अल्लाह की वैश्विक खलीफाई साकार होगीः

1. 'क्या वे नहीं देख रहे हैं कि हम धरती के सभी किनारों को काटते हुए उन पर विनाश ला रहे हैं?'
2. 'वे नहीं देख रहे हैं कि हमने (उनके नियंत्रण वाली) भूमि के इसकी बाहरी सीमाओं से धीरे-धीरे कम कर दिया है?'

यदि आवश्यकता पड़ी तो अल्लाह न झुकने वाले काफिरों के समुदायों को नष्ट करके, निश्चित ही, उनकी भूमि को जब्त कर मुसलमानों को सौंपने में सहायता करेगा।

> और हमने कितने ही ऐसे समुदायों को नष्ट कर दिया, जो अपनी जीविका पर इतराने लगे थे! और ये हैं उनके बचे-खुचे थोड़े से घर, जो उसके पश्चात कभी आबाद नहीं किये गये। और हम, हम ही उत्तराधिकारी रह गये [कुरआन 28:58]

अल्लाह ने इन बड़े-बड़े वादों को पूरा किया भी। अल्लाह ही था, जिसने मुसलमानों को मदीना की यहूदी भूमि को छीनने में सहायता की। अल्लाह दावा करता है कि उसने बनू क़ैनक़ा और बनू नज़ीर के लोगों उनकी भूमि से भगाकर उस पर कब्जा करने में मुसलमानों की सहायता कीः वही है, जिसने अह्ले किताब के काफ़िरों (यहूदियों) के मन में आतंक उत्पन्न कर उनके घरों से पहले ही निर्वासन में निकाल भगाया और उनसे अल्लाह ने जो भी माल (भूमि और धन-संपत्ति) छीना, उसे अपने रसूल को दे दिया [कुरआन 59:2-6]। जहां तक बनू क़ुरैजा की यहूदी जनजाति का संबंध है, तो 'अल्लाह ने उन्हें अपने मजबूत गढ़ियों से निकाल फेंका और उनके मन में आतंक भर दिया, जिससे कि मुसलमान उनमें कुछ की हत्या कर पायें और शेष को बंदी बना पायें [कुरआन 33:26], तुम्हें (अर्थात मुसलमानों) उनकी भूमि, भवन और संपत्ति व वस्तुओं का मालिक बना दिया और तुम लोगों को उनकी ऐसी भूमि का मालिक बना दिया, जिस पर तुम लोग (पहले) कभी पैर तक न रख पाये थे।' [कुरआन 33:26]

वास्तव में इस्लाम के जन्म से ही मुसलमान सदियों से यह स्पष्ट विश्वास करते आ रहे हैं कि अल्लाह उन्हें विजय प्राप्त करने और उनके जिहादी जीतों में काफिरों की भूमि पर अधिकार करने में सहायता कर रहा था। अब्बासी दरबार (मध्य-नौवीं सदी) का प्रमुख इतिहासकार अल-बिलाज़ुरी कहता है कि अल्लाह ही था, जिसने मुसलमानों के लिये मदीना के यहूदियों की भूमि को जीता था।[339] पेशावर में राजा जयपाल पर सुल्तान महमूद की विजय के बारे में अल-उत्बी लिखता है कि 'अल्लाह ने अपने बंदों को पांच लाख दासों, पुरुषों और स्त्रियों सहित इतना माल दिया था, जो असीम और अनगिनत था। सुल्तान बड़े स्तर पर लूटपाट करने और अल्लाह की सहायता से विजय प्राप्त करने के बाद दुनिया के मालिक अल्लाह के प्रति कृतज्ञ होकर अपने अनुयायियों के साथ वापस आया।'[340] सोलहवीं सदी के अंत में लैपांतो की जंग (1571) में उस्मानिया साम्राज्य की पराजय के बारे में उसके अभिलेखों में लिखा है कि 'अल्लाह द्वारा मार्गदर्शित साम्राज्य की फौज की भिड़ंत अभागे काफिरों की सेना से हुई, किंतु अल्लाह की इच्छा कुछ

---

[339] हित्ती पीके (2002) हिस्ट्री ऑफ अरब्स, पालग्रेव मैकमिलन, लंदन, पृष्ठ 21,33

[340] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 26

और थी।'[341] इस्लामी इतिहास वृत्तांतों में सभी स्थानों पर इस प्रकार की कहानियां गढ़ी गयी हैं कि वह अल्लाह ही था, जो मुस्लिम जिहादियों को काफिरों के विरुद्ध जिहाद में विजय प्रदान कर रहा था।

अल्लाह ने मुसलमानों को धरती का जो उत्तराधिकार दिया है, उसे पाने के लिये उन्हें जहां कहीं भी गैर-मुसलमान मिलें, वहीं उनकी हत्या करनी ही चाहिए और उनकी स्त्रियों और बच्चों को (मुसलमान बनाने के लिये) बंदी बना लेना चाहिए [कुरआन 9:5]। इस प्रकार मुसलमान उनकी भूमि पर कब्जा कर लेंगे और इस्लामी शासन स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त करेंगे। उदाहरण के लिये, कुरआन एकेश्वरवादियों अर्थात यहूदियों और ईसाइयों के नियंत्रण वाली भूमि पर कब्जा करने के लिये कहती है- मुसलमानों को उनसे तब तक जंग करते रहना चाहिए, जब तक कि वे पराजित न हो जाएं, मुस्लिम शासन के अधीन न आ जाएं [कुरआन 9:29]। इस प्रकार से मुसलमानों को वैश्विक विस्तार वाले साम्राज्यवादी इस्लामी राज्य की स्थापना को पूर्ण करना चाहिए।

वैश्विक साम्राज्यवादी इस्लामी राज्य का एक औपनिवेशिक आयाम आर्थिक शोषण और लाभ भी है। अल्लाह मुसलमानों को जिहादी जंगों में पवित्र माल के रूप में काफिरों के धन को लूटने का आदेश देता हैः '(अल्लाह ने) तुम्हें उनकी भूमि, उनके भवनों, उनके धन और उस भूभाग का उत्तराधिकारी बनाया है, जिस पर तुमने कभी पांव नहीं रखा है। अल्लाह सबकुछ करने में समर्थ है [कुरआन 33:27]। अल्लाह मुसलमानों को न केवल माल लूटने का आदेश देता है, अपितु वह लूट के इस माल में अपना भाग भी लेता हैः 'और जान लो कि लूट के उन सब माल, जो (जंग में) तुम पाओगे, में पांचवां भाग अल्लाह और उसके रसूल के लिये है... [कुरआन 8:41]।' इसके अतिरिक्त अल्लाह इस्लामी राज्य के कोष को समृद्ध बनाने के लिये पराजित और अधीन हुए ज़िम्मी यहूदियों और ईसाइयों आदि पर कर थोपने का आदेश देता है [कुरआन 9:29]।

इस प्रकार कुरआन स्पष्ट रूप से वैश्विक विस्तार वाले औपनिवेशिक राज्य की स्थापना की रूपरेखा देता है, और उस पर भी तुर्रा यह कि यह राज्य अल्लाह की प्रकृति का होना चाहिए। रसूल मुहम्मद ने ध्यान से अल्लाह के प्रत्येक आदेश पर काम किया और अल्लाह की सहायता से इस्लामी राज्य का प्रतिकृति मॉडल स्थापित किया। यह इस्लामी राज्य प्रकृति में औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी थी। एक विदेशी भूमि से वह अपने अनुयायियों के साथ शरणार्थी के रूप में मदीना आया। उसने एक के बाद एक यहूदी जनजातियों को मिटाकर शीघ्र ही एक विदेशी सत्ता और इस्लामी राज्य की स्थापना कर ली और वहां के मूर्तिपूजकों को उत्पीड़न या लूट के माल का लोभ देकर अपने फौजी मजहबी समुदाय में जोड़ लिया। उस विदेशी इस्लामी शासन की स्थापना के बाद मदीना आगे की विजयों और इसकी सीमाओं से बाहर साम्राज्यवादी विस्तार के लिये लांचिंग-पैड बन गया।

मुहम्मद द्वारा औपनिवेशिक शासन की स्थापना का सबसे उपयुक्त उदाहरण खैबर की विजय है। बिना किसी उकसावे के उसने मई 628 में यहूदी जनजाति खैबर पर हमला करने करते हुए बड़ी मुस्लिम फौज का नेतृत्व किया। उन यहूदियों को पराजित करने के बाद अपने लोगों की रक्षा करने की आयु वाले उनके सारे उसने उनके उन सारे पुरुषों की हत्या कर दी। उसने उनकी धन व संपत्ति पर कब्जा कर लिया और उनकी स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्सक दास बनाकर उठा ले गया। बच गये (वृद्धों) को छोड़

---

341 लेविस बी (2002) व्हाट वेंट रांगः वेस्टर्न इम्पैक्ट एंड मिडिल ईस्टर्न रेस्पांस, फोनिक्स, लंदन, पृष्ठ 12

दिया गया और उन्हें अपनी भूमि पर काम करने की अनुमति दी गयी। मुहम्मद ने यह कहकर उन बचे यहूदियों पर उपज का 50 प्रतिशत भारी-भरकम कर थोप दिया कि वह कर मदीना में बनाये गये इस्लामी राज्य के खजाने में भेजा जाना था। किंतु उनको अपनी भूमि पर खेती करने की अनुमति तभी तक थी, जब तक कि मुसलमान स्वयं खैबर की भूमि को अपने कब्जे में लेने में सक्षम न हो जाएं। दूसरे खलीफा उमर (मृत्यु 644) ने बाद में रसूल मुहम्मद की अंतिम इच्छा के अनुसार वहां से सभी यहूदियों को भगा दिया।

अल-तबरी लिखता है, इसी प्रकार अल्लाह ने हवाज़िन और साक़िफ जनजाति की ''स्त्रियों, बच्चों और पशुओं'' को अपने रसूल के लिये लूट के माल के रूप में स्वीकार किया। रसूल ने लूट के इस माल को उन कुरैशों में बांट दिया, जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही इस्लाम स्वीकार किया था।''[342] जब मुहम्मद मरा, तो वह ईसाइयों, यहूदियों और मूर्तिपूजकों के गढ़ पर औपनिवेशिक इस्लामी प्रभुत्व का विस्तार करके अरब प्रायद्वीप में एक नया इस्लामी साम्राज्य स्थापित कर चुका था। जब भी उसने फौज के प्रयोग या धमकी देकर किसी विदेशी धरती को जीता, तो वहां के लोगों, विशेष रूप से मूर्तिपूजकों को मृत्यु-तुल्य कष्ट देकर मुसलमान बनाया, उनकी धार्मिंक संस्थाएं नष्ट कर दी और उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाओं पर प्रतिबंध लगा दिया। सबसे बढ़कर उसने पराजित लोगों की स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्वक दास बनाने के साथ ही उनका धन और खजाना लूटा तथा उन पर जजिया, खरज जैसे दमनकारी व अपमानकारी कर लगा दिये। यह घोर आर्थिक शोषण और सामाजिक-सांस्कृतिक अवमूल्यन करने वाले औपनिवेशिक शासन का उपयुक्त नमूना है।

मुहम्मद के इस साम्राज्यवादी व औपनिवेशिक शोषण के उपयुक्त मॉडल को उसकी मृत्यु के बाद आये उसके उत्तराधिकारी खलीफाओं और बाद के मुस्लिम शासकों ने मध्यकालीन इस्लामी प्रभुत्व की समूची अवधि में अपनाया। मुहम्मद की मृत्यु के दो दशक के भीतर ताकतवर फारस साम्राज्य इस्लाम के चरणों में था, जबकि उस समय के सबसे ताकतवर बैंजेंनटाइन साम्राज्य को निरंतर बढ़ रहे इस्लामी साम्राज्य के आगे अपने राज्य के भूभाग के बड़े भाग को खोना पड़ा। मध्यकालीन अवधि के अंतिम वर्षों में जब उस्मानिया सुल्तान साम्राज्यवादी इस्लामी विस्तार में आगे थे, तो जिहाद का झंडा ली हुई इस्लामी फौज यूरोप को इस्लामी साम्राज्य में सम्मिलित करने के लिये दो बार वियना के अति निकट तक पहुंच गई थी।

इसलिये इस्लाम की स्थापना ही अल्लाह के ईश्वरीय आदेशों का बहाना बनाकर रसूल मुहम्मद द्वारा साम्राज्यवादी औपनिवेशिक सत्ता के रूप में की गयी थी। समय के साथ इस्लाम मध्यकालीन संसार का सबसे बड़ा उपनिवेश स्थापित करने के लिये आगे बढ़ता रहा और साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद के इतिहास में सबसे लंबे समय तक जमा रहा। बाद में प्रतिद्वंद्वी यूरोपियन उपनिवेशवादियों ने अठारहवीं सदी के मध्य में इस्लामी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करना प्रारंभ किया। यद्यपि जब भी विश्व इतिहास पढ़ेंगे, तो जो पहली बात पाएंगे, वह यूरोपियन उपनिवेशवाद की ही होगी, किंतु ''इस्लामी साम्राज्यवाद'' या ''इस्लामी

---

[342] अल-तबरी, अंक 9, पृष्ठ 3

उपनिवेशवाद'' की चर्चा तक नहीं होती, क्यों? कितने लोगों ने ''इस्लामी साम्राज्यवाद'' या ''इस्लामी उपनिवेशवाद'' जैसी शब्दावली को सुना होगा?

इस्लामी शासन की धारणा

इस उपमहाद्वीप में बढ़ रहे मुसलमानों को भारत में इस्लाम की बहादुरी और श्रेष्ट अतीत पर गर्व करना सिखाया जाता है। तीन बड़े इस्लामी आक्रांताओं मुहम्मद बिन क़ासिम, गज़नी के सुल्तान महमूद और मुगल बादशाह औरंगजेब के लिये विशेष प्रशंसा की जाती है, क्योंकि उन्होंने हिंदुस्तान में इस्लामी मजहब को जमाने में निर्णायक भूमिका निभायी थी। क़ासिम वह पहला आक्रांता था, जो 712 में सिंध जीत के माध्यम से इस्लाम की मशाल लाया। इसके बाद सुल्तान महमूद 1000 ईसवी में भारत आया और सत्रह बार हमला किया। सत्रहों बार वह भारतीय उपमहाद्वीप के काफिरों में इस्लाम का प्रसार करने की अडिग संकल्प के साथ हमला करने आया। मुसलमानों की दृष्टि में वह इस्लाम की मशाल फैलाने की अडिगता का मॉडल बन गया। सुल्तान महमूद के अडिग संकल्प का उदाहरण देते हुए मुस्लिम बच्चों को जीवन में अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिये वैसी ही अडिगता उत्पन्न करने को कहा जाता है।

बादशाह औरंगजेब (शासन 1658-1707) भारत के मुसलमानों का एक और नायक है। उसने अकबर के पृथक व उदार और इस्लाम के लिये हानिकारक नीतियों को उलट कर भारत में इस्लाम बचाने की निर्णायक भूमिका निभायी। अकबर ने दीन-ए-इलाही नामक एक नये मिले-जुले धर्म को लाने का प्रयास किया था, जो भारत से इस्लाम की लौ को सदा के लिये बुझा देता। अकबर के पौत्र दाराशिकोह इस्लाम, हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म के मिश्रण को पुनर्जीवित करने के लिये उसके पदचिह्नों पर चले। उन्मादी सुन्नी मुसलमान औरंगजेब ने गद्दी के वास्तविक उत्तराधिकारी एवं अपने उदारवादी भाई दाराशिकोह के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया और इस्लाम छोड़ने का आरोप लगाकर उनकी हत्या कर दी। औरंगजेब ने हनफी कानूनों के सार-संग्रह फतवा-ए-आलमगीरी बनाने को भी संरक्षण दिया। भारत में लंबे समय से हनफी कानून की उपेक्षा हो रही थी और अब उसके पुनः प्रभाव में आने से भारत में स्वेच्छाचारी इस्लाम को सही मार्ग पर लाने में सहायता मिली। संक्षेप में कहा जा सकता है कि औरंगजेब ने भारत में क्षीण होते इस्लाम को पुनः जीवन दिया तथा उसे क्षरण और संभवतः लुप्त होने से बचाया। औरंगजेब ने धर्मांतरण को संरक्षण दिया और बल प्रयोग एवं अन्य उत्पीड़नकारी उपायों व लोभ-लालच से गैर-मुसलमानों के धर्मांतरण को प्रोत्साहित किया। अपने पंद्रह वर्ष के शासन में उसने राज्य की नीति में पूरी ताकत से इस्लाम को सम्मिलित किया और यह इतना अधिक था कि उत्तर भारत के अधिकांश मुसलमान अपनी मुस्लिम जड़ें औरंगजेब के शासन में हुए धर्मांतरण में पाते हैं। ये तीनों बड़े इस्लामी विजेता और शासक ने भारत की अंधकारमय, पतनोन्मुखी, मूर्तिपूजक भूमि पर इस्लाम की लौ लाये और उसका प्रसार किया। इस्लाम के आगमन से जाहिलिया (अज्ञान) भरे अतीत के स्थान पर एक महान सभ्यता का प्रारंभ हुआ। इस्लामी तकरीरों में तो कुछ ऐसा ही बताया जाता है!

इस्लामी शासन के बारे में यह भाव न केवल मुसलमानों में भरा है, अपितु गैर-मुस्लिम पृष्ठभूमि के आधुनिक इतिहासकारों में भी यही विचार घर किये हुए है। पाकिस्तान में इतिहास के पुस्तकों में पढ़ाया जाता हैः 'मुहम्मद (क़ासिम) से पूर्व अंधकारः

दासप्रथा, शोषण व्याप्त था। मुहम्मद के आने के बाद प्रकाश आयाः दासप्रथा और शोषण समाप्त हो गया।'[343] भारत में इतिहास लेखन के इस मत की सामान्य विषय-वस्तु पर शशि शर्मा ने संक्षेप में इस प्रकार लिखा हैः

> भारत का मुस्लिम-पूर्व का अतीत क्षरण, अंधविश्वास, असामनता और अत्याचार का लाट भर था। उसकी सीमाओं में कुछ भी विश्वसनीय या सार्थक नहीं हुआ। इस्लाम ही वो सबकुछ जैसे सूफी, क़बाब, गज़ल,[344] धार्मिक श्रद्धा, मानवीय बंधुत्व और अमीर खुसरो आदि लाया, जिसे भारतीय अपनी सभ्यता के सकारात्मक पक्ष में रूप में गर्व कर सकते हैं। क्या ऐसा नहीं है कि इस्लाम के प्रकाश द्वारा सभ्यता के चौखट तक लाने से पहले तक अरब भी नाकारा अज्ञानता के अंधियारे में डूबा था?[345]

जब यही इतिहासकार भारत के ब्रिटिश शासन के बारे में लिखते हैं, तो ये इसे ब्रिटिशों द्वारा अपना कोष भरने के लिये लूट और आर्थिक शोषण के उद्देश्य से किये गये उत्पीड़न, अत्याचार और घोर शोषण वाला भारतीय इतिहास का सबसे काला काल बताते हैं।

जैसा कि इब्न वराक लिखते हैं कि इस्लाम को परोपकारी बताने वाले इतिहास के लेखन का विचार वैश्विक रूप से फैलाया गयाः 'इस्लाम का परिचय कराने वाली किसी भी आधुनिक पुस्तक को खोलिए, तो अधिक संभावना यही होगी कि आपको उन्हीं लोगों के प्रशंसा-गीत मिलें, जिन्होंने आश्चर्यजनक रूप से छोटे से काल में सभ्य संसार के आधे भाग पर कब्जा कर एक ऐसा साम्राज्य स्थापित किया, जो पूर्व में सिंधु के तट से पश्चिम में अटलांटिक सागर के किनारे तक विस्तृत था। इन पुस्तकों में उस समय के लिये स्पष्ट चमकदार शब्दावलियां मिलेंगी, जबकि मुस्लिमों ने विभिन्न देशों और संस्कृतियों की बड़ी जनसंख्या पर शासन किया था।'[346] उदाहरण के लिये, इस्लाम के प्रसार पर पंडित जवाहर लाल नेहरू लिखता है: 'अरबी अपने साथ उत्कृष्ट संस्कृति लिये हुए... उत्साह के अच्छे आवेश और गतिमान ऊर्जा के साथ फैल गये थे और स्पेन से लेकर मंगोलिया की सीमा तक जीते...।'[347] कोई इतिहासकार साइरस और प्राचीन संसार के अलेक्जेंडर महान के विशाल साम्राज्य का ऐसा गुणगान नहीं करता है और इनके बहुत बाद आये यूरोपियन साम्राज्यों के बारे में भी इतिहासकारों ने ऐसा ही किया।

जब आधुनिक इतिहासकार यूरोपियन औपनिवेशिक साम्राज्यों, उदाहरण के लिये ब्रिटिश और फ्रेंच साम्राज्यों पर लिखते हैं या बात करते हैं, तो वे एक सुर में इन साम्राज्यों का वर्णन अत्यंत नकारात्मक और वस्तुतः अपमानजनक शब्दावली में करते हैं। वे इन साम्राज्यों का वर्णन विदेशी स्वामियों द्वारा पराधीन बनाये गये लोगों पर भयानक शोषण, अन्याय और दुख लाने वाले काल के

---

[343] नायपॉल वीएस (1981) अमंग द बिलीवर्सः ऐन इस्लामिक जर्नी, अल्फ्रेड ए नूफ, न्यूयार्क, पृष्ठ 143

[344] गज़ल एक प्रकार का गीत होता है।

[345] शर्मा, पृष्ठ 111

[346] इब्न वराक, पृष्ठ 198

[347] नेहरू (1946), पृष्ठ 222

रूप में करते हैं। बाहर के सभी यूरोपियन शासकों पर उपनिवेशवादी या साम्राज्यवादी होने का एक जैसा ठप्पा लगाया जाता है और उपनिवेशवादी या साम्राज्यवादी होने को निंदनीय, अपमानजनक और नकारात्मक संकेतार्थ में लिया जाता है। यदि किसी ब्रिटिश इतिहासकार ने सकारात्मक आलोक में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के लाभकारी परिणामों का चित्रण किया होता, तो उस इतिहासकार की निंदा होती, उसका उपहास उड़ाया जाता और उसका पूर्णतया तिरस्कार कर दिया गया होता।

षडयंत्रकारी ढंग से संसार की अधिकांश जनसंख्या और उनमें भी वो जिन पर विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा बर्बरतापूर्वक इस्लामी शासन थोपा गया था, ने कदाचित ही इस्लामी साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद जैसा कोई नाम सुना हो। भारतीय उपमहाद्वीप के मुसलमान और यहां तक कि बड़ी संख्या में गैर-मुसलमान भी, न तो मानेंगे और न सहमत होंगे कि उनके देश सहित विश्व के बड़े क्षेत्रों पर इस्लामी आधिपत्य के लंबे काल को साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद कहना उपयुक्त होगा। अरब, फारसी, तुर्क और बर्बर मुस्लिम आक्रांताओं ने बहुत से राष्ट्र को जीता और अधिकांश प्रकरणों में उन पर स्थायी रूप से इस्लामी शासन थोपा। मुसलमान विदेशी भूमियों पर इन मुस्लिम शासनों को कभी भी साम्राज्यवादी या उपनिवेशवादी प्रकृति का नहीं मानते हैं। इस्लामिक इतिहास पर पीबीएस वृत्तचित्र, जिसे अमरीकन विद्यालयों में व्यापक स्तर पर शिक्षण सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता है, में इस्लाम द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य को औपनिवेशिक साम्राज्य न कहकर मजहब का साम्राज्य कहा जाता है।

जैसा कि पूर्व के अध्यायों में बताया गया है, मुसलमान यह मानते हैं कि इस्लामी विजय मानवीय और उपकार के कारणों से जुड़ी है। इस्लामी विजेता आये, उन्होंने कब्जा किया, किंतु शोषण करने के लिये नहीं, अपितु तत्कालीन शासकों के अन्याय और अत्याचार से जनसमूहों को मुक्ति दिलाने के लिये। वे स्थानीय लोगों के साथ एकाकार होने और अर्थ, संस्कृति, कला, शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में जीते गये राष्ट्रों का पोषण करने के लिये आये। भारत में मुस्लिम शासक अपने मुख्य मूल्य के रूप में एक सच्चे मजहब-''सामाजिक समानता व न्याय के मजहब'' को लाये और वो सब अच्छे गुण व वस्तुएं लाये जो वहां पहले कभी नहीं थीं।

पाकिस्तान के संस्थापक मुहम्मद अली जिन्ना ने फरवरी 1948 को अमरीकी लोगों के सामने एक भाषण में यह डींग हांकी: ''इसने (इस्लाम ने) मानव समानता, न्याय और प्रत्येक व्यक्ति के साथ निष्पक्ष व्यवहार सिखाया। हम ऐसी श्रेष्ठ परंपराओं के वाहक हैं।''[348] यह संभवतः सत्य है, क्योंकि दोगले प्रकृति का जिन्ना कुरआन की इस आयत से सहमत होगा कि 'हे मोमिनो! वास्तव में मूर्तिपूजक गंदे हैं [कुरआन 9:28]' और सोचता होगा कि हिंदू गंदे लोग हैं; और उनसे दूर रहने के लिये उसने मुसलमानों के लिये एक पृथक देश बनाने के अभियान चलाया तथा इसका नाम भी ध्यान से पाकिस्तान अथवा ''शुद्ध (अर्थात शुद्ध मुसलमान)'' लोगों की भूमि चुना। तो ऐसी होती है इस्लामी ''मानव समानता, न्याय और प्रत्येक व्यक्ति से निष्पक्ष व्यवहार'' और जिन्ना की यही मान्यता थी!

इस्लामी शासन उपनिवेश नहीं है! क्यों?

---

[348] जमाल के, फाउंडिंग फादर्स डिसेंडैंट्स कंडेम इमर्जेंसी, द न्यूज इंटरनेशनल, 20 नवंबर, 2007

अरब प्रायद्वीप के आरंभिक मुसलमान और इसके बाद फारसी, तुर्की, बर्बर और मंगोल मुस्लिम जिहादियों ने इस्लामी शासन की स्थापना और इस्लाम के प्रसार के उद्देश्य से विदेशी धरती पर हमला करने और उसे जीतने के लिये लंबी दूरी नापी। कुछ स्थानों पर उन्होंने कुछ सदियों तक राज किया और कुछ स्थानों पर आज भी शासन कर रहे हैं (यद्यपि यूरोपियन उपनिवेशवादियों ने उनके राज व विस्तार को थोड़ा-बहुत रोका भी)। उन्होंने उनमें से अधिकांश देशों को सदा के लिये इस्लामी बना लिया है। भारत, बाल्कान और पूर्वी यूरोप जैसे स्थानों पर मुस्लिम शासक बहुत अधिक संख्या में लोगों का धर्मांरण कर पाने में विफल रहे। चाहे ऐसा इन स्थानों की मूल संस्कृति व धर्म के प्रति लोगों की अडिगता और मुस्लिमों द्वारा किये जा रहे उत्पीड़न व बल प्रयोग का प्रतिकार करने के कारण हुआ हो, या फिर मुस्लिम शासन की अपेक्षाकृत अल्प अवधि के कारण मुसलमानों को जन-समूहों के धर्मांतरण के लिये पर्याप्त न मिला हो, परंतु वे व्यापक स्तर पर धर्मांतरण करा पाने में विफल रहे थे।

711 में स्पेन की विजय के साथ यूरोप में इस्लामी साम्राज्यवादी शासन प्रारंभ हुआ और 1492 तक चला। स्पेन से वे यूरोप के भीतर घुसे और फ्रांस के मध्य पहुंच गये और वहीं टूर्स में चार्ल्स मारटेल द्वारा 732 ईस्वी में पराजित किये गये। इस पराजय ने यूरोप में मुसलमानों के विस्तार पर रोक लगा दी और अंततः 1492 में मुसलमानों को यूरोप से पूर्णतः उखाड़ फेंका गया। यह यूरोप में इस्लाम के तीव्र विस्तार पर अस्थायी, किंतु तगड़ा झटका था। इस युद्ध के संबंध में सामान्य भावना को सारांश रूप में नेहरू लिखता है: 'एक इतिहासकार ने कहा है, 'टूर्स के मैदान पर अरबों ने विश्व का साम्राज्य तब खो दिया, जब वह लगभग उनकी पकड़ में था। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि अरब टूर्स में जीते होते, तो यूरोप का इतिहास अत्यधिक परिवर्तित हो गया होता। उन्हें रोकने वाला और कोई नहीं था... ईसाइयत के स्थान पर इस्लाम यूरोप का मजहब हो गया होता और वहां के रीति-रिवाज परिवर्तित हो गये होते।''[349] एडवर्ड गिबन ने लिखा, यदि मार्टेल की विजय नहीं हुई होती, तो संभवतः ऑक्सफोर्ड के स्कूलों में कुरआन की व्याख्याएं पढ़ायी जा रही होतीं और उनका धर्मोपदेश सिंहासन खतना किये हुए लोगों को मुहम्मद की आयतों की पवित्रता और सच्चाई का बखान कर रहा होता।''[350]

यद्यपि अल्लाह द्वारा आदेशित वैश्विक इस्लामी आधिपत्य की स्थापना के लिये पूरे विश्व को जीतने की मुसलमानों की जिहादी इच्छा कदाचित ही कभी समाप्त होगी। यूरोप पर आधिपत्य जमाने की अपनी भूख को शांत करने के प्रयास में उन्होंने नौवीं सदी के आरंभ में भूमध्य सागर के तटीय नगरों और इटली के दूरवर्ती द्वीपों पर हमला तेज कर दिया। 813 में उन्होंने सेंटूमैकिली, इसिया और लैपेदुसा को उजाड़कर उस पर कब्जा कर लिया। उसी वर्ष उन्होंने सरदीनिया और कोर्सिका द्वीपों पर हमला किया। 829 में सेंटूमैकिली का पुनः सर्वनाश किया गया।

840 में अरबों ने इटली के भीतर जाकर हमला किया और सुबायको के मठ को उजाड़ दिया। 840 में उन्होंने बेनेवेंटों के आसपास के तटीय उपनगरों को जीत लिया; कारोलिंगियन सम्राट लुडोविको द्वितीय 871 में उनको उखाड़ फेंकने में सफल हुआ।

---

349 नेहरू जे (1989) ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यू देल्ही, पृष्ठ 146

350 पाइप्स (1983), पृष्ठ 86

845 में उन्होंने रोम के भीतर जाकर कैपो मिसेना (नेपल्स) और पोंजा पर नियंत्रण कर लिया और उसे रोम पर हमले के लिये अपना बेस बना लिया। 846 में उन्होंने ब्रिंदिसी को उलट-पलट डाला और इटली के दक्षिणपश्चिम छोर के निकट टारंटो को जीत लिया; बैंजंटाइन सम्राट बासिल प्रथम ने 880 में तारंटो को मुक्त कराने में सफलता प्राप्त की।

28 अगस्त 846 को एक मुस्लिम फौज तिबर नदी के मुहाने पर पहुंच गयी और रोम पर हमला करने के लिये जलमार्ग से आगे बढ़ी। इसी बीच, सिवीटावेछिआ से एक मुस्लिम फौज और पोटर्स व ओस्टिया से दूसरी मुस्लिम फौज उस हमले में मुसलमानों का साथ देने के लिये सड़क मार्ग से चली। ये मुस्लिम फौजें चारों से अभेद्य उन दीवारों को भेद पाने में असफल रहीं, जो चट्टान की भांति रोमनों की रक्षा कर रही थीं। अरबों ने सेंट पीटर व सेंट पऑल गिरिजाघरों में तोड़फोड़ की और लूटपाट की। सैक्संस, लांगोबाडर्स, फ्रिसियंस और फ्रैंक्स लोगों ने अपनी अंतिम सांस तक सेंट पीटर गिरिजाघर की रक्षा की। मुसलमानों ने सबर्ब जनपद के सभी गिरिजाघरों को नष्ट कर दिया। पोप लियो चतुर्थ अल्प काल के लिये रोम से भाग गया और पड़ोस के राज्यों से सहायता करने की अपील की। उसकी गुहार पर सहायता के लिये आगे बढ़ते हुए स्पॉलेटो के मैरक्विस गाई ने प्रति-आक्रमण किया और अरबों को पराजित कर दिया। अरबी मुसलमान फौजों में से कुछ सिवीटावेछिआ की ओर तो कुछ फांडी की ओर भागे, परंतु भागते समय वे उस स्थान के विनाश करने और उजाड़ने में लगे रहे। गैटा में लांगबार्ड की सेना ने उनसे पुनः संघर्ष किया। स्पॉलेटो के गाई गंभीर कठिनाई में पड़ गये, पर नेपल्स से सेसैरियस की बैजेंटाइन सेना समय से उन्हें बचाने पहुंच गयी। मुसलमानों के इस हमले के कारण पोप लियो चतुर्थ वैटिकन पहाड़ी की रक्षा के लिये 848 में सिविटास लियोनीना के निर्माण करने को प्रेरित हुए।

848 में अरबों ने एंकोना को पराजित किया। अगले वर्ष मुसलमानों का बड़ा समुद्री बेड़ा रोम पर हमला करने निकला और ओस्टिआ के निकट तिबर नदी के मुहाने पर उनका सामना इटली के नौसैनिक बेड़े से हुआ। इस युद्ध में अरबों की घोर पराजय हुई। 856 में उन्होंने पुग्लिआ में कैनोसा कैथेड्रल पर हमला कर उसे नष्ट कर दिया। 861 में उन्होंने एस्कोली पर हमला किया और वहां के बच्चों का नरसंहार करने के बाद स्थानीय निवासियों को बलपूर्वक दास बनाकर ले गये। 872 में उन्होंने सालेर्नो पर हमला करके उसकी छह मास तक घेराबंदी की। 876 में उन्होंने लैटिअम और अम्ब्रिआ पर हमला करके वहां को निवासियों का नरसंहार किया, उन्हें बलपूर्वक दास बनाया और रोम की ओर बढ़ने से पहले गांवों का विध्वंस किया; उन्होंने इस रोमन देश को एक वीरान रेगिस्तान बना दिया। पोप जॉन अष्टम (872-82) ने सिरसिओ में अरबों को पराजित किया और अठारह मुस्लिम पोतों पर बंधक बनाकर रखे गये 600 ईसाइयों को मुक्त कराया। उन्होंने इस विध्वंस के बाद अरबों को निकाल फेंकने का प्रयास किया, किंतु यूरोपीय राजाओं से पर्याप्त सहायता न मिल पाने के कारण वो विफल हो गये और अंततः उन्हें इसका परिणाम भुगतना पड़ा।

मुसलमानों ने रोमन देश लैटियम पर अपनी विजय को और सुदृढ़ करते हुए वहां के तटीय और भीतरी दोनों स्थानों पर विध्वंस का अभियान चलाये रखा। वे लैटियम की राजधानी टिवोली (सरासिनेस्को), सैबिना (सिसिलानो), नार्नी, नेपी, ओर्टे, टिबुर्टिनो कंट्रीज, सैक्को वैली, ट्यूसिआ और अर्जेंटीनो माउंटेन पर कब्जा करने पर उतारू रहे। हत्या, लूटपाट और विध्वंस का उनका अभियान 880 से 890 के दशक तक चलता रहा। दसवीं सदी के आरंभ में मुसलमान दक्षिणी इटली में अमीरात की स्थापना की योजना बना रहे थे। 916 में ट्यूस्का के मार्क्विस एडलबर्टस, स्पॉलेटो के मार्क्विस एलबेरिकस, कैपुआ के प्रिंस लैंडल्फ व बेनीवेंटो, सार्लेनो के प्रिंस गैमार, गैटा व नेपल्स के ड्यूक और बैजंटाइन सम्राट कांस्टैंटाइन ने एक एंटी-अरब गठबंधन बनाया। गठबंधन के

साथ पोप जॉन दशम व्यक्तिगत रूप से थलसेना का नेतृत्व कर रहे थे। अरब पूर्णतः पराजित हुए और इटली का मुख्य भूभाग मुस्लिम आक्रांताओं से मुक्त करा लिया गया।

मुसलमानों ने सिसिली के भूमध्यसागरीय द्वीप पर लंबे समय तक चलने वाले अमीरात की स्थापना की थी और वहां 612 में डकैती व लूटमार वाला पहला जिहादी हमला किया था। वहां 669, 703, 728, 729, 730, 731, 733, 734, 740 और 752 मे पुनः जिहादी हमला किया गया। सिसिली में आरंभिक मुस्लिम हमलों (652-752) से वहां इस्लाम का पांव जमाने में सफलता नहीं मिली थी। वहां वास्तव में मुसलमानों की जीत तब प्रारंभ हुई, जब 827 में ट्यूनिस से एक अग़लाबिद अरब फौज मजारा डेल वालो पहुंची। इससे संघर्ष की लंबी श्रृंखला चालू हो गयीः 831 में पालेर्मो ढह गया, 835 में पैंटेलरिआ पर नियंत्रण छूट गया और 843 में मसीना भी मुसलमानों के अधिकार में आ गया। सीफालू और एन्ना वर्ष तक मुसलमानों से संघर्ष करते रहे, किंतु अंततः वे 858 में पराजित हो गये और 859 में उन्हें जलाकर राख कर दिया गया। सायरक्यूज लंबे समय तक दृढ़ता से लड़ता रहा, किंतु अरबों ने 878 में इसे रौंदकर वहां के सभी नागरिकों की हत्या कर दी। सिसिली हाथ से निकल गया। पालेर्मो का नाम अल-मदीना कर दिया गया और यह नयी इस्लामी राजधानी बना; यूनानी भाषा के स्थान पर अरबी भाषा थोप दी गयी। सिसिली पर कब्जे के विरोध में स्थानीय प्रति-आक्रमण 827 में प्रारंभ हुआ। किंतु स्थानीय लोगों की वास्तविक विजय 1061 में प्रारंभ हुई और अंततः 1091 में मुसलमानों को वहां से खदेड़ दिया गया।

एक और सीमा पर मुसलमानों ने अंत में कुस्तुंतुनिया (कांस्टैंटिनोपल) के मध्य स्थित समूचे पूर्वी क्राइस्टेंडम को रौंद डाला। 1453 की प्रसिद्ध कुस्तुंतुनिया विजय में उस्मानिया साम्राज्य के जिहादी तीन दिनों तक स्थानीय लोगों को काटते रहे और इसके बाद जो बचे, उन्हें बंदी बना लिया गया। ये जिहादी कुस्तुंतुनिया को एक ओर छोड़कर 1350 में यूरोप की ओर बढ़ चुके थे। कई दशकों तक कभी ये भारी तो कभी वो, यही चलता रहा। इस प्रकार के संघर्षों के बाद उस्मानिया साम्राज्य के जिहादियों अर्थात तुर्कों को 1380 में बुल्गारिया और बाल्कान्स पर कब्जा करने में सफलता मिली। इसके बाद 1423 में उस्मानिया जिहादी अर्थात तुर्क वेनिस पर हमला करने निकल पड़े। 1453 में कुस्तुंनिया पर कब्जा करने में मिली सफलता तुर्कों की यूरोप जीत में सहायक हुई। उन्होंने समूचे बाल्कान प्रायद्वीप पर नियंत्रण करते हुए 1529 में क्रीमिया पर कब्जा करने के लिये रूस की ओर बढ़े और 1683 में पश्चिम यूरोप के हृदय वियना और पवित्र रोमन साम्राज्य पर दो बार असफल हमला किया। एक समय मुसलमानों ने पूरे स्पेन, पुर्तगाल, हंगरी, यूगोस्वालिया, अल्बानिया, ग्रीस अर्थात यूनान, बुल्गारिया और रोमानिया पर शासन किया। उन्होंने फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, इटली, आस्ट्रिया, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और सोवियत यूनियन के भागों पर शासन किया। सोलहवीं सदी तक तुर्कों की वृहद जीत से यूरोप एक खंडित, अलग-थलग किये गये ईसाई भूमि के ऐसे टुकड़े में सिमट गया था, जो अपनी पूरी शक्ति से तुर्कों के अपरिहार्य कब्जे का प्रतिरोध कर रहा था। पवित्र रोमन साम्राज्य के दूत बुसबेक (1554-62) ने ईसाइयों के इस प्रबल भाव को यह कहते हुए प्रकट किया कि तुर्की साम्राज्य पर जो खतरा सफाविद पर्सिया से मंडरा रहा था, उसी कारण से यूरोप तुर्कों की आसन्न जीत से बच गया।[351]

---

[351] लेविस (2002), पृष्ठ 10

वियना (1683) में तुर्की हमलावरों को जब दूसरी पराजय मिली, तो इससे यूरोपीय शक्तियों को सदियों से अत्याचार कर रहे मुसलमानों पर निर्णायक विजय मिल गयी। इस्लाम और यूरोप के मध्य निरंतर चल रहे संघर्ष में यूरोप का पलड़ा भारी हो गया। इससे न केवल इस्लामी विस्तार का अंत हुआ, अपितु इस्लामी साम्राज्य का पतन भी प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे तुर्कों को खदेड़ दिया गया और अंत में पश्चिम यूरोप के सभी भागों से उन्हें उखाड़ फेंका गया। तुर्क बीसवीं सदी के आरंभ तक बाल्कान के कुछ क्षेत्रों पर शासन करते रहे। अठाहरवीं शताब्दी के मध्य से मुसलमान न केवल यूरोप से खदेड़े गये, अपितु ब्रिटेन, हॉलैंड, फ्रांस, इटली और स्पेन ने भी इस्लामियों के हाथ से अपनी भूमि छीन ली। रूस ने मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप क्षेत्रों का बड़ा भाग ले लिया, जबकि चीन, बर्मा और थाइलैंड ने भी पूर्व में मुस्लिमों द्वारा जीती गयी अपनी धरती पर पुनः अधिकार कर लिया। केवल अगम्य क्षेत्र या आर्थिक दृष्टि से गौण क्षेत्र जैसे अफगानिस्तान व सऊदी अरब और ईरान व तुर्की ही यूरोपियों के नियंत्रण से बाहर रहे। यूरोपियन साम्राज्यवाद काल को औपनिवेशिक युग के रूप में जाना गया। जब यूरोपियन औपनिवेशिक ताकतें उन क्षेत्रों व देशों को छोड़कर गयीं, तो इनमें से जो मुस्लिम बाहुल्य थे, वो इस्लामी शासन के अधीन आ गये। जहां मुसलमान अल्पसंख्यक थे, जैसे कि भारत, वहां राजनीतिक सत्ता मुसलमानों के हाथों से निकलकर उस भूमि के वास्तविक उत्तराधिकारियों अर्थात बहुसंख्यकों के पास चली गयी। कुछ देशों जैसे नाइजीरिया में अल्पसंख्यक होने के बाद भी मुसलमानों ने राजनीतिक प्रभुत्व बनाये रखा।

यहां जिस मुख्य बात पर विचार किया जाना है, वह यह है कि मुस्लिम हमलावरों ने बर्बर हमलों से उन विदेशी भूभागों पर कब्जा किया था और कई सदियों तक निरंकुश ढंग से वहां शासन करते रहे। उनमें से कई देशों को सदा के लिये इस्लामी बना दिया। यूरोपियन उपनिवेशवादी भी बहुत दूर से विदेशी भूभागों पर अधिकार करने और अपना शासन स्थापित करने आये, परंतु जिन साधनों से उन्होंने यह किया, वो मुसलमानों द्वारा अपनाये गये साधनों की तुलना में निश्चित ही कम बर्बर थे। मुसलमानों के हमले की तुलना में भारत में ब्रिटिश सत्ता जब आयी तो रक्तपात, चोट या नागरिकों के जीवन में विध्वंस बहुत कम हुआ।

इसलिये यह प्रश्न उठता हैः भारत में दो विदेशी सत्ताएं आयीं, तो उनमें एक को घृणित उपनिवेशवाद या साम्राज्यवाद के रूप में देखा जाएगा और दूसरे को नहीं, ऐसा क्यों? इस प्रश्न का उत्तर यॉर्क विश्वविद्यालय (कनाडा) के प्रोफेसर डॉ ताज हाशमी ऐसे देते हैं: …'ब्रिटिश आक्रांताओं के विपरीत, मुस्लिम शासकों ने भारत को घर समझा, क्योंकि उनके पास लंदन जैसा विदेश में स्थित कोई स्थान नहीं था, जहां वो भारत की संपदा और संसाधनों को लूटकर ले जाते।'[352]

डॉ ताज के इस दावे में दो मौलिक वाक्य हैं, जिनका गहरायी से विश्लेषण होना चाहिए। पहला यह कि विदेशी धरती पर इस्लामी शासन शोषण करने की भावना से प्रेरित नहीं था। दूसरा यह कि मुस्लिम हमलावरों ने विदेशी धरती को अपने घर के रूप में देखा; और यह कि उन्होंने उस विदेशी धरती के विकास व समृद्धि के लिये कार्य किया। इसके विपरीत यूरोपियन शासन के पीछे की प्रेरणा ठीक उलट थी और वह प्रेरणा केवल विदेशी लोगों और उनके संसाधनों के शोषण करने की थी। यद्यपि यह सत्य नहीं है कि यूरोपियन उपनिवेशवादियों ने कभी जीती हुई धरती को अपना घर नहीं कहा। कुछ अफ्रीकी देशों, दक्षिण व उत्तर अमरीका और आस्ट्रेलिया में यूरोपियन बड़ी संख्या में बस गये हैं। यदि भारत में भी ब्रिटिश शासन निरंतर रहा होता या यूं कहें कि जैसे लगभग

---

[352] हाशमी टी, न्यूज फ्रॉम बांग्लादेश वेबसाइट; 2 जून 2005

हजार वर्ष तक मुस्लिम शासन रहा, वैसे ही ब्रिटिशों का भी शासन चला होता, तो यहां के अधिकाधिक ब्रिटिश भारत को अपना घर कहते।

इस्लामी विस्तार में आर्थिक शोषण

इस पर भला कौन वाद-विवाद करेगा कि यूरोपियन औपनिवेशिक शासन प्राथमिक रूप से यूरोपियन राजधानियों के कोषागार को भरने के लक्ष्य से विदेशी धरती के संसाधन, सस्ते श्रम और हाटों (बाजारों) के आर्थिक शोषण के लिये नहीं थे? उन दिनों में लंदन, पेरिस, एमस्टर्डम, मैड्रिड और लिस्बन की समृद्धि और विपुलता जो थी, वह बाहरी देशों के आर्थिक शोषण से उत्पन्न धन के कारण ही तो थी। आज के बहुत से महत्वपूर्ण यूरोपीय परिवारों की सुखभरी और समृद्धि भरी सामाजिक स्थिति उनके उन उद्यमी एवं रंक से राजा बनने वाले औपनिवेशिक पूर्वजों की सफलता के कारण है, जिन्होंने चाय, मसालों, रबर, चीनी या पोतपरिवहन से अर्जित की।

पर सारे संसार में इस्लामी हमलों व शासन का सही उद्देश्य क्या था? क्या ये हमले आर्थिक शोषण करने के उद्देश्य से नहीं किये गये थे? आइए, इस्लाम की स्थापना के दिनों में चलते हैं और देखते हैं कि आर्थिक संग्रह के लिये रसूल मुहम्मद के कारनामों ने बाद के इस्लामी विस्तार पर कैसे प्रभाव डाला था।

खैबर की जीत में मुहम्मद ने लूट और आर्थिक शोषण का जो मॉडल स्थापित किया था, वह इस्लाम की आरंभिक सदियों में मुस्लिम हमलों की कार्यप्रणाली बन गयी। ऐसा भला हो भी क्यों न, रसूल ने जो भी किया, वह मुसलमानों के लिये न केवल स्वीकृति का स्टैंप है, अपितु यह मजहबी दृष्टि से ऐसा आदर्श उदाहरण है, जिसे मुसलमानों को अपने क्रियाकलापों और कार्यों में उतारने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। उमर की संधि भी पराजित ज़िम्मी प्रजा से कर उगाहने की ऐसी ही रूपरेखा देती है। जब आरंभिक मुस्लिम हमलावरों ने सीरिया, येरूशलम और इजिप्ट आदि को जीता, तो ईसाइयों और यहूदियों को मदीना के खलीफा के खजाने में जाने वाला जजिया देने और मुस्लिम शासन में ज़िम्मी जनता पर लागू अन्य अपमानजनक करों को देने के लिये बाध्य किया गया। इसके अतिरिक्त खलीफा उमर ने खरज नामक एक भूमि-कर की प्रणाली बनायी और जीते गये मुस्लिम भूभागों पर ज़िम्मियों पर यह कर लगाया।

712 में सिंध में सफल घुसपैठ करने के बाद मुहम्मद बिन क़ासिम ने अपार धन और संपत्ति लूटी और पुरुषों की हत्या करने के बाद बड़ी संख्या में स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाया। क़ासिम सदैव इस्लामी पंथ के अनुपालन में अल्लाह द्वारा स्वीकृत ''लूट के माल'' (अन्फाल) और बंधक बनायी गयी स्त्रियों व बच्चों का पांचवां भाग राज्य के अंश के रूप में दमाकस में बैठे खलीफा को भेजता था। प्रत्येक सफल अभियान के बाद लूट के माल में से राज्य का पांचवां भाग खलीफा को भेजने के लिये अलग रख दिया जाता था। चचनामा में अल-कुफी लिखता है कि एक बार लूटी गयी धन-संपत्ति के साथ 20,000 बंधक स्त्रियां

और बच्चे खलीफा के पास भेजे गये।[353] खलीफा उन बंधक लोगों में से सबसे सुंदर युवा स्त्रियों को अपने हरम में रख देता था; शेष को अपने दरबारियों और जनरलों को उपहार के रूप में दे देता था; और इसके बाद जो बंधक स्त्रियां बच जाती थीं, उन्हें राजकोष में राजस्व बढ़ाने के लिये बेच दिया जाता था।

रसूल मुहम्मद बंदी बनायी गयी प्रतिष्ठित परिवारों की सर्वाधिक सुंदर स्त्रियों को अपने हरम में रख लेता था, जैसे कि साफिया खैबर के नेता किनाना की सुंदर युवा पत्नी थी और उसे मुहम्मद ने बलपूर्वक अपनी रखैल बना लिया था। उसी प्रकार क़ासिम भी उन स्त्रियों को खलीफा के पास सम्मानसूचक और विशेष उपहार के रूप में भेज देता था, जिनका विशेष मूल्य या महत्व होता था, जैसे कि यदि वे अति सुंदर अथवा किसी राजपरिवार की हों या किसी प्रतिष्ठित कुल की हों। जब क़ासिम द्वारा राजा दाहिर की दो बेटियों को बंदी बनाया गया तो, उसने उन दोनों को खलीफा अल-वलीद के पास पहुंचा दिया, जिसने उन्हें अपने हरम में डाल दिया।

सिंध में क़ासिम के आरंभिक हमलों में 60 मिलियन दिरहम का व्यय आया था, जिसका वहन खलीफा के राजकोष से हुआ था। सिंध में तीन वर्षों के अभियान से वापस बुलाये जाने के कुछ मास पूर्व उसने ईराक में गवर्नर अल-हज्जाज के पास लूट के माल का पांचवां भाग भेजा था, जो 120 मिलियन दिरहम के मूल्य का था।[354] लूट के इस माल से हज्जाज ने तुरंत ही खलीफा के राजकोष से लिये गये उधार को चुकाया और यह कहते हुए क़ासिम को पत्र लिखाः 'मेरे भतीजे, जब तुम फौज के साथ निकले थे, तो मैं हांमी भरी थी और स्वयं से प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारे जिहादी अभियान के लिये राजकोष से जितने धन का वहन किया गया है, वह मैं खलीफा वलीद बिन अब्दुल मलिक बिन मारवां को लौटा दूंगा। ऐसा करना मुझ पर बाध्यकारी है।'[355]

क़ासिम ने कुरआन और सुन्नत में दिये गये सिद्धांतों के आधार पर खलीफा उमर द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार हिंदू जनता पर जजिया और खरज कर थोपे। चचनामा में लिखा हैः 'मुहम्मद क़ासिम ने रसूल के कानूनों के अनुसार जनता पर कर लगाये। जिन्होंने मुहम्मदवाद मजहब को स्वीकार कर लिया, उन्हें दासता, खरज और जजिया से मुक्ति मिल गयी; और जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तन नहीं किया, उन पर ये कर लगा दिये गये।'[356] सदियों से हिंदू अपने पूर्वजों की जिस धरती पर स्वामी थे, सिंध पर मुसलमानों के कब्जे के बाद उस पर उनकी स्थिति एक खेत जोतने वाले दास की हो गयी और वह धरती मुस्लिम राज्य की संपत्ति हो गयी। हिंदुओं को भूमि-कर अर्थात खरज देना पड़ता था, जो इस प्रकार निश्चित किया गया थाः 'यदि खेत को सार्वजनिक नहर से सींचा गया हो, तो खरज सामान्यतः गेहूं और जौ की उपज का दो बटे पांच भाग की दर से देना होता था। यदि चक्के या

---

[353] लाल (1620-1707), पृष्ठ 19

[354] इलियट एंड डाउसन, अंक 1, पृष्ठ 470-71

[355] इबिद, पृष्ठ 206

[356] इबिद, पृष्ठ 182

अन्य कृत्रिम साधनों से सींचा गया हो, तो तीन बटे दस भाग देना होता था। यदि खेत असिंचित हो, तो एक चौथाई देना होता था...। खरज का यह नियम उमर की उस मूल व्यवस्था के अनुसार था, जो उसने तब बनाया था जब ईराक की सिंचित भूमि (सवाद) का आंकलन किया था।'[357]

इन करों से एकत्र राजस्व में से राज्य का पांचवां भाग नियमित रूप से खलीफा के खजाने में भेज दिया जाता था। संभवतः मुल्तान से जुड़ा हुआ सिंध प्रांत खलीफा के खजाने के लिये 11.5 मिलियन दिरहम (1860 के मूल्य के अनुसार 270,000 लीरा) और 150 पौंड अगर की लकड़ी का वार्षिक राजस्व जुटा लेता था। इस राजस्व में जजिया, खरज और अन्य सीमा कर सम्मिलित थे। इलियट और डाउसन द्वारा मुस्लिम खलीफा के अन्य प्रांतों से खलीफा के खजाने को जाने वाले राजस्व का वार्षिक एकत्रीकरण का अनुमान निम्न प्रकार लगाया गया है:[358]

1. मरखनः 400,000 दिरहम
2. सिजिस्तानः 460,000 दिरहम, 300 रंगबिरंगे व बहुमूल्य वस्त्र और 20,000 पाउंड मिठाइयां
3. किरमनः 4,200,000 दिरहम, 500 बहुमूल्य वस्त्र, 20,000 पाउंड खजूर और 1000 पाउंड कालाजीरा
4. तुखरिस्तानः 106,000 दिरहम
5. काबुलः 11,500,000 दिरहम और 1000 पशु (700,00 दिरहम मूल्य के)
6. फार्सः 27,000,000 दिरहम, 30,000 बोतल गुलाब जल और काले अंगूर के रस की 20,000 बोतल
7. खुल्तानः 1,733,000 दिरहम
8. बुस्तः 90,000 दिरहम

ये तथ्य स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि मुहम्मद बिन क़ासिम द्वारा सिंध में थोपा गया मुस्लिम शासन किसी भी अर्थ में विदेशी शासन से कम नहीं था, क्योंकि यह दूर अरब के मध्य में बैठे खलीफा द्वारा थोपा गया था। ऐसा ही उन दूसरी विदेशी धरती पर भी हुआ, जहां मुसलमान जीते। यह स्पष्ट है कि मुस्लिम हमलावर सिंध के केवल शासन करने नहीं आये थे, अपितु उनका उद्देश्य उस विदेशी धरती की धन-संपदा और संसाधनों का शोषण करके उन्हें दमाकस में बैठे खलीफा (बाद में बगदाद में बैठे खलीफा) के खजाने में पहुंचाना भी था। यह उसी मॉडल के समान है, जो यूरोपियनों ने अपने उपनिवेशों में लागू किया था। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भारत के हिंदुओं पर मुस्लिम शासकों द्वारा लगाये गये कर इतने दमनकारी थे कि उन करों को चुकाने के लिये उन्हें अपनी स्त्रियों और बच्चों तक को बेचना पड़ जाता था। समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों और यूरोपियन यात्रियों के वृत्तांत के अनुसार, बादशाह शाहजहां और औरंगजेब के शासनकाल (1620-1707) में इस प्रकार दमनकारी कर उगाही सामान्य बात थी। इन दमनकारी करों को चुका पाने में विफल होने पर बड़ी संख्या में किसानों ने जंगलों में आश्रय ले लिया था।

---

[357] इबिद, पृष्ठ 474

[358] इबिद, पृष्ठ 471-472

सुल्तान महमूद (1000) द्वारा जब भारत में इस्लामी हमले की दूसरी लहर आयी, तो बगदाद खलीफा का प्रभुत्व अपेक्षाकृत क्षीण पड़ चुका था। बगदाद के क्षीण अब्बासी खलीफाओं की अवज्ञा करते हुए 909 में फातिमियों ने इजिप्ट (मिस्र) में स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। सन 756 से उमय्यद राजवंश स्पेन पर स्वतंत्र रूप से शासन कर रहा था। बगदाद के अब्बासी खलीफाओं का अभी भी भारत पर हमला करने वाले बर्बर सुल्तान महमूद पर बड़ा प्रभाव था। जब महमूद ने खुरासान के अब्दुल मलिक को पराजित किया, तो खलीफा अल-क़ादिर बिल्लाह अपने इस होनहार और ताकतवर जनरल से अत्यंत प्रसन्न हुआ। खलीफा अल-क़ादिर ने महमूद को अमीर (नेता) के रूप में मान्यता दी और उसे यामिन-उद-दौला (राज्य का दाहिना हाथ) और अमीन-उन-मिल्ला (समुदाय का न्यासी) उपाधियां दीं। खलीफा के वरदहस्त के साथ सुल्तान महमूद ने लगभग 1000 ईसवी में उत्तरपश्चिम भारत पर हमला करना प्रारंभ किया। खलीफा द्वारा मिली पहचान और वरदहस्त की कृतज्ञता चुकाने के लिये महमूद भारत में मिले लूट के माल और करों में से बड़ी मात्रा में धन व उपहार खलीफा को भेजा करता था। इसमें ''सभी प्रकार का धन'' होता था। तारीख-ए-अल्फी के अनुसार, सुल्तान महमूद अपनी लूट का पांचवां भाग बगदाद भेजने के लिये पृथक रख देता था, जिसमें बंदी के रूप में दास बना लिये गये 150,000 लोग भी होते थे।[359] इसका अर्थ यह हुआ कि महमूद का राज्य बगदाद खलीफा का पूर्ण प्रांत था। उसके बेटे व उत्तराधिकारी सुल्तान मसूद ने भी 'प्रतिवर्ष 200,000 दीनार, 10,000 वस्त्र और अन्य उपहार भेजने का वादा करके खलीफा की मजहबी-कृपा और सम्मान प्राप्त किया।'[360]

भारत पर सुल्तान महमूद के बर्बर हमलों से उत्तरपूर्व भारत का पंजाब गजनी-शासन में आ गया। इसके 150 वर्ष पश्चात अफगान गोरी वंश के सुल्तान मुहम्मद गोरी (मृत्यु 1206) और उसका भाई गयासुद्दीन उत्तरी भारत पर हमला करने लगे, जिसका परिणाम दिल्ली में 1206 में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के रूप में सामने आया। गजनी के शासकों सुल्तान मुहम्मद गोरी और बाद में ताजुद्दीन यिल्दोज (मृत्यु 1216) दोनों ने बगदाद के खलीफा का वरदहस्त और सम्मान प्राप्त किया। दिल्ली के सुल्तान इल्तुमिश (मृत्यु 1236) ने यिल्दोज को पराजित किया और खलीफा की ओर से अधिकार प्राप्त किया। यद्यपि प्रत्येक प्रकरण में यह विवरण अंकित नहीं है कि कितने धन और उपहार के बदले में खलीफा ने वह सम्मान व अधिकार दिया था। बगदाद के खलीफा की कृपा और (जब मंगालों ने खलीफा को बगदाद से मार भगाया तो इसके) बाद में काहिरा में जाकर बैठा खलीफा इस्लामी सत्ता के केंद्र को बड़ी मात्रा में भेजे जाने वाले धन के बदले इन सुल्तानों को अधिकार दिये रहा। सुल्तान फिरोज तुग़लक (मृत्यु 1388) ने खलीफा से सम्मान प्राप्त किया और उसने लिखा हैः 'मुझे खलीफा राज्य के प्रतिनिधि रूप में अधिकार की पूर्ण पुष्टि करते हुए प्रमाणपत्र भेजा गया और और ईमान वालों के नेता (खलीफा) दयालुता दिखाते हुए मुझे सैय्यदू-स सलातिन की उपाधि से विभूषित करने में प्रसन्न थे।'[361]

---

[359] लाल पृष्ठ 19-20

[360] लाल (1999) पृष्ठ 208

[361] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 387

समकालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बर्नी ने खलीफा, जो कि अब इजिप्ट में बैठता था, के प्रति मुहम्मद तुग़लक के त्याग के बारे में लिखा है कि 'सुल्तान की खलीफाओं में निष्ठा ऐसी थी कि यदि लूटपाट का खतरा न होता, तो वह अपना सारा खजाना दिल्ली से इजिप्ट भेज देता।'[362] लगभग महत्वहीन और लुप्तप्राय हो चुके बगदाद खलीफा के परिवार का वंशज गयासुद्दीन मुहम्मद तुग़लक के शासन में दिल्ली आया। सुल्तान की अपने इजिप्टियन अधिपति के प्रति निष्ठा का आंकलन इस बात से किया जा सकता है कि उसने बाहर के इस अपेक्षाकृत महत्वहीन गयासुद्दीन के प्रति कितना सम्मान व उदारता लुटायी थी, जो कि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया में निम्नलिखित हैः

> ...उस (गयासुद्दीन) के महल में पात्र सोने और चांदी के थे, स्नानगृह में सोना जड़ा था और जब पहली बार वह इसका प्रयोग कर रहा था, तो 40,000 तांगा का उपहार उसे भेजा गया; उसके पास पुरुष और स्त्री सेवक व दासियां भेजी गयीं। उसे प्रतिदिन 300 तांगा की राशि व्यय करने की अनुमति थी, यद्यपि उसके द्वारा किये जाने वाले भोजन का अधिकांश भाग शाही रसोईघर से आता था; उसे शुल्क में सुल्तान अलाउद्दीन का नगर सीरी उसमें स्थित सभी बाग-बागीचों, भूमि और सौ गांव पूरे मिले। सीरी उन चार नगरों में से एक था, जिन्हें मिलाकर राजधानी बनी थी। वह दिल्ली प्रांत के पूर्वी जिले का गवर्नर (अमीर) नियुक्त किया गया; उसे सोने के साज-संवार वाले 30 खच्चर मिले और जब वह दरबार जाता था, तो उसे उस कालीन को पाने का अधिकार होता था, जिस पर राजा बैठता था।[363]

जब गयासुद्दीन जैसे बाहरी और अपेक्षाकृत महत्वहीन अतिथि को सुल्तान की ओर से इतना धन और सम्मान मिल सकता है, तो यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि वह काहिरा स्थित खलीफा को कितना अधिक धन भेजता होगा। बंगाल (1337-1576), जौनपुर और मालवा के स्वतंत्र सुल्तान भी खलीफा को बड़े परिमाण में धन व उपहार देने के बदले प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे। उदाहरण के लिये खलीफा अल-मुस्तांजिद बिल्लाह ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी (1436-69) को सम्मान व प्रतिष्ठा के वस्त्र भेजे थे, जिसे उसने बड़े परिमाण में धन, सोना और दास भेजने के बदले स्वीकार किया था। यहां तक कि दिल्ली सल्तनत के कुछ विद्रोहियों ने धन, सोना और दासों के बदले खलीफा से सम्मान प्राप्त किया था।[364]

निस्संदेह दिल्ली सल्तनत वास्तव में मुख्य इस्लामी खलीफा राज्य का एक प्रांत था। खलीफा के साथ यह औपचारिक संबंध तब छिन्न-भिन्न हो गया, जब बर्बर जिहादी हमलावर अमीर तैमूर (तैमूर लंग) ने तुग़लक वंश (1399) को नष्ट कर दिया। दिल्ली के सिक्कों से अरब के खलीफा का नाम हटा दिया गया। ऐसा करना इस कारण आवश्यक हो गया था, क्योंकि अपने बर्बर हमले के बाद स्वयं को दिल्ली का बादशाह घोषित करने और गद्दी पर सैय्यदों को बिठाने के बाद उसने दिल्ली छोड़ा। बर्बर तैमूर के खतरे और उसकी अनुमति के महत्व को भांपकर सैय्यद सुल्तानों ने तैमूर व उसके उत्तराधिकारियों को खलीफा के रूप में मान्यता दे

---

[362] लाल (1999), पृष्ठ 210

[363] हैग डब्ल्यू (1958), कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया

[364] अहमद ए (1964), स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन द इंडियन एनवायरनमेंट, क्लैरेंडर प्रेस, ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ 10

दी और तैमूर की राजधानी समरकंद नजराना भेजा। फरिश्ता के अनुसार, प्रथम सैय्यद सुल्तान खिज्र खान ने 'तैमूर के नाम से शासन चलाया, उसके नाम का सिक्का चलाया और खुतबा पढ़वाया। तैमूर की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी शाहरूख मिर्जा के नाम से खुतबा पढ़ा गया। सुल्तान खिज्र खान ने कुछ समय तक शाहरूख मिर्जा को नजराना भी भेजा...।'[365] दिल्ली सल्तनत का इस्लामी अधिपति समरकंद जाकर स्थापित हो गया था, पर उस अधिपति का उन्मूलन नहीं हुआ था। दूसरे मुस्लिम शासकों यथा उस्मानिया साम्राज्य या फारसी साम्राज्य के जैसे ही ताकतवर अकबर महान (शासन 1556-1605) ने बाद विदेशी अधिपति से स्वतंत्र होने की घोषणा कर दी। इसलिये 712 से सोलहवीं सदी तक भारत के मुस्लिम-शासन वाला भाग मूलतः विस्तृत इस्लामी दुनिया का एक प्रांत था।

यहां तक कि जब भारत के मुस्लिम शासकों ने विदेशी अधिपतियों से स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया, तो इसके बाद भी मुगल काल में दमाकस, बगदाद, काहिरा या समरकंद स्थित खलीफा के मुख्यालय को राजस्व व उपहार भेजने के अतिरिक्त इस्लाम के पवित्र नगरों मक्का व मदीना को भी बड़ी मात्रा में धन, उपहार भेजे जाते रहे। बादशाह बाबर (शासन 1525-30) ने अपनी आत्मकथा में उन उपहारों और नजरानों को लिखा है, जो उसने ''अल्लाह के मार्ग'' में समरकंद, खुरासान, मक्का और मदीना के जिहादियों को भेजा था। इसमें एक स्थान पर उसने लिखा है, ''हमने काबुल के देश और वरसाक की घाटी के पुरुषों व स्त्रियों, बंधुआ और स्वतंत्र, बच्चों और बड़ों सबको एक-एक शाहरुखी (सिक्का) दिया।'' यहां तक कि अकबर ने भी मक्का और मदीना नगरों पर बहुत धन लुटाये। हुमायूंनामा में लिखा है, ''यद्यपि उसने (अकबर) स्वयं को हिंदुस्तान छोड़ने से रोक लिया, परंतु तब भी वह इस्लामी दीन का प्राथमिक कर्तव्य (हज) पूरा करने के लिये बहुतों की सहायता करता था, हज करने जाने वालों के लिये वह खजाना खोल देता था और उन दोनों पवित्र नगरों के लिये अकूत धन और उपहार देता था। जब उसकी चाची गुलबदन बेगम हज गयी, तो उसने उसके साथ सुल्तान ख्वाजा के लिये बहुत सा उपहार भेजा, जिसमें सुल्तान ख्वाजा के लिये सम्मानसूचक 12000 अलंकृत वस्त्र भी थे।'' मुगल बादशाह अकबर (शासन 1556-1605), जहांगीर (शासन 1605-27) और शाहजहां (शासन 1628-58) फारस, रूम (कुस्तुंतुनिया) और अजरबैजान के मजहबी व्यक्तियों का खर्चा यह कहकर भेजते थे कि मुस्लिम मजहबी चाहे हिंदुस्तान में हों अथवा किसी दूसरे मुस्लिम देश में हों, उनके लिये धन भेजना ''अल्लाह की ओर से'' ''उसके सेवकों'' के लिये भत्ता जैसा है। बादशाह शाहजहां भी मक्का के लिये महंगे उपहार भेजा करता था।[366]

तो इस प्रकार भारत की हिंदू प्रजा और उसकी धरती का खून चूसकर उसके धन व संसाधन को दमाकस, बगदाद, काहिरा या ताशकंद के इस्लामी खलीफा के खजानों और मक्का व मदीना पहुंचाया गया और इस्लामी दुनिया के मुस्लिम जिहादियों की थैलियां भरी गयीं। परिणाम यह हुआ कि भारत के काफिर अर्थात हिंदू भयंकर दरिद्रता में आ गये।

---

[365] फरिश्ता, अंक एक, पृष्ठ 295; लाल (1999), पृष्ठ 210

[366] लाल (1999), पृष्ठ 212

यह सु-लिखित तथ्य है कि मुहम्मद के समय से ही मुस्लिमों के हमले का लक्ष्य पराजित लोगों के धन व संसाधन की लूटपाट करना था, परंतु जानबूझकर इस तथ्य की उपेक्षा की गयी। हमलों का दूसरा लक्ष्य स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाकर दास बनाना था, जिन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था और इसके बाद उन्हें दूसरे मुसलमानों को बेच दिया जाता था, जहां वे अपने मुस्लिम स्वामियों के घरों में सभी प्रकार के घृणित कार्यों में लगाये जाते थे (दासप्रथा पर अध्याय 8 देखें)। बंदी बनायी गयी स्त्रियों में जो आकर्षक व सुंदर होती थीं, उन्हें मुस्लिम शासकों, जनरलों, दरबारियों व सामान्य मुसलमानों के हरम व घरों में यौन-दासी अर्थात लौंडी (सेक्स-स्लेव) बनाकर रखी गयीं। ये लौडियां तीन उद्देश्यों को पूरा करती थीं: पहला वे अपने मुस्लिम मालिक के सुख के लिये श्रमिक का कार्य करती थीं; दूसरा उनका उपयोग अपने मालिक के यौन-सुख के लिये होता था; तीसरा वे मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने के लिये जन्म देने वाले उपकरण के रूप में काम आती थीं। मुसलमानों द्वारा विदेशी भूमि जीतने का तीसरा उद्देश्य पराजित लोगों से जजिया, खरज और अन्य दमनकारी कर उगाहना होता था और इससे प्राप्त धन का एक भाग मुख्य खजाने में जाता था।

मुहम्मद ने विजय और इस्लामी शासन के विस्तार का एक नमूना स्थापित किया था और इस नमूने में वह आक्रामक धमकी या हिंसक हमले करके विदेशी भूमि को जीतता था। विदेशी भूमि या लोग जब पराजित कर दिये जाते थे, तो उनकी धन-संपत्ति लूट ली जाती थी और इस लूट का पांचवां भाग अल्लाह और उसके रसूल मुहम्मद के लिये राज्य के कोषागार (खजाने) को जाती थी तथा इस धन का उपयोग रसूल करता था। बनू क़ुरैज़ा या खैबर जैसे किसी समुदाय ने यदि हमले या लूटपाट का प्रतिरोध किया, तो मुहम्मद ने उनके सारे वयस्क पुरुषों की सामूहिक हत्या कर दी और उनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर दास बना लिया। रसूल ने पराजित लोगों पर खरज (भूमि कर) और जजिया नामक कर लगाये। खरज और जजिया से उगाहा गया धन जिस खजाने में जाता था, उसे मुहम्मद स्वयं अपने अधिकार में रखता था। मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात लूट के माल और दासों का पांचवां भाग खलीफा के खजाने में जाता था। मुहम्मद के बाद के समय में मुस्लिम फौज आतंक उत्पन्न करने वाली और लगभग अपराजेय ताकत बन गयी। इस समय मुहम्मद द्वारा स्थापित उदाहरणों को व्यापक स्तर पर अक्षरश: लागू किया गया। समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों और यूरोपीय यात्रियों द्वारा लिपिबद्ध उपरोक्त उदाहरणों से इस बात की पुष्टि होती है कि साम्राज्यवादी विजय व औपनिवेशिक शोषण के मुहम्मदी मॉडल को इस्लामी विजयों में निरंतर अपनाया जाता रहा।

औपनिवेशिक शासन के जैसे ही, इस्लामी विजयों और उसके बाद विश्व के बड़े भाग में आये उनके शासन का सामान्य लक्ष्य पराजित ज़िम्मी प्रजा का आर्थिक शोषण और उसके धन व संसाधन को विदेश में स्थित मुस्लिम राजधानियों में पहुंचाना होता था। ब्रिटिश, डच और फ्रेंच आदि यूरोपियन औपनिवेशिक शक्तियों का मुख्य लक्ष्य आर्थिक शोषण करना था। किंतु इस्लामी औपनिवेशिक विस्तार में यह लक्ष्य द्वितीयक होता था। इस्लामी साम्राज्यवादी विस्तार, जो कि अल्लाह के उद्देश्य से जंग करने के नाम पर मुहम्मद द्वारा प्रारंभ किया गया था, का मुख्य लक्ष्य संसार के सभी कोने में सभी लोगों को इस्लामी मजहब में लाना था। इस्लामी उपनिवेशवादियों ने बहुत बड़ी संख्या में काफिरों का नरसंहार किया और निर्ममतापूर्वक उनके धर्म, संस्कृति और सभ्यता को नष्ट किया। पुर्तगालियों और स्पेनियों की भांति ही इस संबंध में इस्लामी उपनिवेशवादियों के लक्ष्य मिलते-जुलते थे: वो लक्ष्य धार्मिक विस्तार के साथ आर्थिक शोषण का था।

इस्लाम का सांस्कृतिक साम्राज्यवाद

कुरआन में अल्लाह कहता है कि उसने दीन के रूप में इस्लाम को पूर्ण बनाया है और सभी मनुष्यों के लिये इसे अपनी कृपा के रूप में चुना है तथा घोषणा की है कि इस्लाम अन्य सभी धर्मों पर प्रभुत्व स्थापित करेगाः

1. आज के दिन मैंने तुम्हारे लिये तुम्हारा दीन मुकम्मल किया, तुम पर अपनी कृपा पूरी की, और तुम्हारे लिये इस्लाम को दीन के रूप में चुना है। [कुरआन 5:3]
2. वही है, जिसने मार्गदर्शन और सत्य के मजहब के साथ अपना रसूल भेजा है कि वो सभी धर्मों पर सत्य के मजहब (इस्लाम) का प्रभुत्व स्थापित कर सकेः और इस पर अल्लाह का गवाह होना ही पर्याप्त है। [कुरआन 48:28]

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि इस्लाम मानव जाति के लिये पूर्ण पैकेज है, जिसमें धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सहित जीवन व समाज के सभी पक्ष सम्मिलित हैं। मुसलमान सार्वभौमिक रूप से मानते हैं कि इस्लाम ''जीवन की पूर्ण संहिता'' है, इसलिये इस्लाम ईश्वरीय प्रकृति का सम्पूर्ण सभ्यतामूलक मजहब है। मुहम्मद और मदीना (622-661) में उसके आरंभिक उत्तराधिकारियों-सत्पथ पर मार्गदर्शित खलीफाओं- द्वारा स्थापित मोमिनों का समाज ऐसी आदर्श सभ्यता मानी जाती है, जो संसार के सभी कोनों में पहुंचनी चाहिए। जैसा कि पहले ही बताया गया है कि मोमिनो को ताकत के साथ जिहाद करके सभी धर्मों और लोगों पर इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित करने के अल्लाह के लक्ष्य को अवश्य ही प्राप्त किया जाना चाहिए।

मुहम्मद के अधीन इस्लाम के जन्म के समय इस्लाम से पहले की जो सभ्यताएं, संस्कृति, परंपराएं और धर्म थे, उन्हें अज्ञानता (जाहिलियत) का युग बता दिया गया। मुहम्मद और उसके मोमिन समुदाय द्वारा स्थापित अल्लाह से मार्गदर्शित सभ्यता द्वारा उन सभ्यताओं, संस्कृतियों, परंपराओं और धर्मों को लील लिया गया। रसूल मुहम्मद इस्लाम के पहले की धार्मिक परंपराओं, संस्कृति और प्रथाओं व मूर्तिपूजक सभ्यता और यहां तक अपने परिवार व संबंधियों की मूर्तिपूजक परंपरा को मिटा डालने के लक्ष्य पर एकाग्रचित होकर काम कर रहा था। यहां तक कि मुहम्मद ने कुरआन 9:5 में दिये गये आदेश के अनुसार अपने परिजनों और संबंधियों को भी आदेश दिया कि या तो वे इस्लाम स्वीकार करें या मृत्यु। जैसे-जैसे अल्लाह के उद्देश्य से जिहाद करते हुए मुस्लिम जिहादी अरब से बाहर फैले और विश्व की महानतम सभ्यताओं भारत की सभ्यता, फारस की सभ्यता, बैजेंटाइन सभ्यता आदि सहित बड़ा भू-भाग जीत लिया, इन सभ्यताओं की पराजित जनता को अपनी संस्कृति, परंपराओं और धार्मिक प्रथाओं का बड़ा विनाश सहना पड़ा। इस प्रकार आर्थिक शोषण और राजनीतिक आतंक फैलाते हुए मुस्लिम हमलावरों व शासकों ने मानवता को अभूतपूर्व व अनगिनत सांस्कृतिक एवं सभ्यता संबंधी विध्वंस दिये।

इस्लाम से पहले के महान विजेताओं जैसे कि अलेक्जेंडर महान, साइरस महान, यूरोप के जर्मनीक (वैन्डाल्स, विसीगोथ्स, ऑस्ट्रोगोथ्स आदि) और विदेशी शक व हूणों ने भारत में जिस भूभाग को जीता, वहां वे स्थानीय संस्कृतियों को आत्मसात् कर वहां घुलमिल गये या फिर जीतने वाली और हारने वाली संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करने वाली नीतियों को आगे बढ़ाया। इस्लामी समय में, मंगोल आक्रांताओं ने भी अंततः जीते गये भू-भाग की स्थानीय सभ्यता को अपना लिया: 'चीन और मंगोलिया में इन

आक्रांताओं में से अधिकांश बौद्ध हो गये; मध्य एशिया में ये मुसलमान हो गये; रूस और हंगरी में ये ईसाई बन गये।'[367] किंतु इस्लामी हमलावरों ने पराजित काफिरों की संस्कृति को नष्ट करने का काम किया। ऐसा उस धर्मांध मुस्लिम मान्यता के कारण हुआ कि इस्लाम के पहले के युग के किसी भी अवशेष या प्रभाव को नष्ट करके वहां इस्लाम की पूर्ण मजहबी, राजनीतिक व सांस्कृतिक सभ्यता को अनिवार्य रूप से थोपा जाना चाहिए। भारत से लेकर स्पेन तक अनगिनत हिंदू मंदिर, बौद्ध मठ, ईसाई गिरिजाघर, यहूदी उपासनागृह (सिनगॉग) नष्ट किये गये और विध्वंस किये गये उन मंदिरों, मठों, गिरिजाघरों, उपासनागृहों के भग्नावशेश आज भी मुस्लिम हमलावरों द्वारा किये गये गैर-इस्लामी संस्कृतियों के विनाश का साक्ष्य देते हैं। इस प्रकार इस्लामी विजयों के साथ ही ऐसा ''असाधारण सांस्कृतिक विध्वंस'' भी आया'', जिसके बारे में बात नहीं की जाती है।[368] किंतु आश्चर्य तब होता है कि जब मुसलमानों द्वारा किये गये सांस्कृतिक व सभ्यता विध्वंस की बात करने की अपेक्षा मुस्लिम हमलावरों को जीते गये भूभाग की सभ्यता को समृद्ध बनाने का श्रेय दिया जाता है। शासित जनता के सांस्कृतिक व सभ्यता संबंधी पक्षों पर यूरोपीय और अरब (इस्लामी) नियमों की पारस्परिक तुलना करते हुए इब्न वराक़ भारी मन से लिखते हैं:

> वैसे यूरोपियों पर निरंतर यह कलंक लगाया जाता है कि उन्होंने तृतीय विश्व पर अपनी धूर्त व पतित मूल्य, संस्कृति और भाशा थोपी, किंतु यह बताने की चिंता किसी को नहीं है कि इस्लाम ने जिन देशों को उपनिवेश बनाया, वे अति उन्नत और प्राचीन सभ्यताओं की भूमि थीं और इस्लाम ने उन्हें उपनिवेश बनाते हुए उनकी उन्नत सभ्यताओं को रौंदा तथा बहुत सी संस्कृतियों को सदा के लिये नष्ट कर दिया।[369]

इस प्रकार इस्लामी हमलावरों ने आर्थिक शोषण और राजनीतिक प्रभुत्व के उद्देश्य से तो हमला किया ही, साथ ही वे सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का प्रमुख मिशन भी चला रहे थे। इस्लाम यह बात गांठ बांधकर आता है कि मुहम्मद सबसे महान था और वह मानव जीवन का पूर्ण आदर्श है; मुसलमानों को अपने जीवन, कार्यों व व्यवहार में जितना अधिक हो सके, उसके जैसा बनने का प्रयास करना चाहिए। मुहम्मद एक अरबी और इस्लाम का सूत्रधार था, इसलिये कोई अ-अरबी (गैर-अरबी) व्यक्ति जब इस्लाम स्वीकार करता है, तो वह मुहम्मद के जीवन की नकल करने का प्रयास करता है। वह अपनी संस्कृति व सभ्यता के मूल्यों, बोध व परंपराओं को छोड़कर जीवनभर इसी मिशन में लगा रहता है कि वह अपनी जीवनशैली और मजहबी विश्वासों में अरबी बन जाए। डॉ वीएस नायपाल तेहरान में रह रहे और ब्रिटेन से शिक्षित एक पत्रकार जाफरी से मिले। जाफरी शिया मुस्लिम था और लखनऊ (भारत) में जन्मा और पढ़ा-लिखा था, पर वह ''मोमिनों के समाज जामे तौहीदी'' अर्थात मदीना में मुहम्मद द्वारा स्थापित इस्लाम के आरंभिक दिनों की संस्कृति व समाज के पुनर्निर्माण का सपना लेकर बड़ा हुआ था। मुहम्मद के समय के इस्लामी जीवन को जीने का सपना देखते हुए वह 1948 में भारत छोड़कर पाकिस्तान चला गया। वहां वह सुन्नी मुस्लिम समाज और शियाओं के साथ उनके व्यवहार से संतुष्ट नहीं हुआ, तो शिया देश ईरान चला गया, जहां उसने एक अंग्रेजी दैनिक तेहरान टाइम्स में काम किया। वह वहां

---

367 नेहरू जे (1989) ग्लिम्पस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृष्ठ 222

368 क्रोन पी एंड कुक एम (1977) हैगरिज्मः द मेकिंग ऑफ द इस्लामिक वर्ल्ड, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, पृष्ठ 8

369 इब्न वराक़, पृष्ठ 198

भी निराश हुआ, क्योंकि उसे लगता था कि ईरान के शासक शाह के अधीन रहना अत्याचार है और उसे यह भी लगता था कि जब ईरान में अकूत संपदा आयी, तो उससे भ्रष्टाचार, अप्राकृतिक मैथुन और सब जगह दुष्टाचरण फैला।'[370] इसके बाद ईरान में इस्लामी क्रांति आयी, जिसे देखकर जाफरी अत्यंत प्रसन्न हुआ। अयातुल्लाओं के अधीन आकर ईरान में रसूल की शैली में मजहबी और राजनीतिक संप्रभुता का शासन चल रहा था और यह जाफरी के उस जामे तौहीदी के सपने के निकट था, जो वह लंबे समय से देख रहा था। लगभग सभी स्थानों पर और यहां तक कि पश्चिम में भी धर्मांध मुसलमान ऐसा ही सपना देखते हैं।

जाफरी की कहानी को समझने पर एक प्रमुख मुस्लिम इच्छा का पता चलता हैः वह यह है कि पश्चिमी धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रणाली में उच्च शिक्षा ग्रहण किये हुए मुसलमान भी अपने पूर्वजों की संस्कृति और परंपराओं को छोड़कर अरबी-इस्लामी मजहबी, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक जीवन जीने की अधिक इच्छा रखता है। पराजित और धर्मांतरित लोगों पर इस्लाम द्वारा अरब संस्कृति की प्रधानता थोपे जाने पर अनवर शेख लिखते हैं:[371]

> ...इस्लाम में धर्मांतरित होने वाले सभी व्यक्तियों का कर्तव्य हो जाता है कि वे अरब संस्कृति की प्रधानता को अनिवार्यतः स्वीकार करें। इसका तात्पर्य यह है कि वे मुहम्मद को अपने आचरण का आदर्श मानते हुए अपनी सभी राष्ट्रीय संस्थाओं को अरब की राष्ट्रीय संस्थाओं के अधीन लायें, इस्लामी कानून स्वीकार करें, अरबी भाषा व अरबी संस्कार अपनायें मक्का और अरब से प्रेम करें, क्योंकि अरबी होने के कारण मुहम्मद ने उन्हीं सब से प्रेम किया और थोपा, जो अरबी थे। इससे भी भयानक बात यह है कि मुसलमान बने लोगों को अपनी संस्कृति व मातृभूमि से इतनी घृणा करनी चाहिए कि अपने देश को दारुल-हर्ब अर्थात जंग का मैदान मानें।

जब कोई महाद्वीपों में फैले इस्लामी देशों को ध्यान से देखता है, तो उसे वृहद धार्मिक, सांस्कृतिक, नृजातीय व भौगोलिक विविधता के लोगों की बड़ी संख्या के सांस्कृतिक विरासत पर इस्लाम के घातक प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि एशिया में बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, मलेशिया व इंडोनेशिया, मध्यपूर्व में ईरान, सीरिया व फिलिस्तीन, अफ्रीका में इजिप्ट, सूडान, अल्जीरिया व सोमालिया, यूरोप में तुर्की व चेचन्या, जहां मुसलमानों के हमले से पूर्व हिंदू, बौद्ध, पारसी, जीववादी, ईसाई, यहूदी और मूर्तिपूजक धर्म व परंपराएं थीं, वहां मुसलमानों की संस्कृति व परंपराओं को किस प्रकार थोड़े-बहुत अंतर के साथ अरबी-इस्लामी रूप में ढाल दिया गया है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इन देशों में मुसलमानों की संस्कृति और जीवन के प्रति दृष्टिकोण उनके आसपास इस्लाम-पूर्व की जड़ों से जुड़कर रह रहे बचे-खुचे लोगों से कितनी भिन्न है। इनमें से बहुत से देशों में लगभग दो सदी तक यूरोपियन औपनिवेशिक शासन रहा और उस काल में बिखरी हुई या खो गयी इस्लाम-पूर्व सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को पुनः ढूंढ़ने और सहेजने के साथ ही धर्मनिरपेक्ष बनाने का दृढ़ प्रयत्न किया गया, किंतु तब भी यहां के मुसलमानों का अरबीकरण हो गया।

---

[370] नायपाल वीएस (1998) बियांड बिलीफः द इस्लामिक इन्कर्जन अमंग द कन्वर्टेड पीपुल्स, रैंडम हाउस, न्यूयार्क, पृष्ठ 144-45

[371] शेख ए (1998) इस्लामः द अरब इम्पीरियलिज्म, द प्रिंसिपैलिटी पब्लिशर्स, कार्डिफ, चैप्टर 7

ईमान वाले सभी मुसलमान यह इच्छा पाले रहते हैं कि जीवन व समाज के सभी पक्षों में समस्त संसार इस्लामी हो जाए। मैं पश्चिमी देशों में रहने वाले भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान या अन्य कई देशों के ऐसे मुसलमानों को जानता हूं, जो उच्च शिक्षित हैं। यद्यपि वे अपने देश का इस्लामी जीवन जीने के लिये शरणदाता पश्चिम देश छोड़ने के बारे में सोचते तक नहीं हैं, किंतु वे पश्चिम के समाज व संस्कृति को घोर पतित बताते हुए ऐसे समाज में रहने का दुख भी कभी नहीं छिपाते। इन मुसलमानों की प्रबल इच्छा है कि आर्थिक व कुछ सीमा तक राजनीतिक पक्ष (लोकतंत्र आदि) के अतिरिक्त पश्चिम के समाज व संस्कृति को इस्लामी बना दिया जाए। मुस्लिम अप्रवासियों में शरिया के अनुसार वित्त की बढ़ती लोकप्रियता संभवतः इसी कारण है कि वे पश्चिमी समाज के आर्थिक पक्ष को भी परिवर्तित कर देना चाहते हैं।

इसका बोध होना चाहिए कि इस्लाम के जन्म के समय पारसी फारस, हिंदू-बौद्ध भारत, मूर्तिपूजक-कोप्टिक इजिप्ट, मूर्तिपूजक-बौद्ध चीन और ईसाई बैजेंटियम विश्व की वो सर्वोत्कृष्ट सभ्यताएं थीं, जिनका लंबा सांस्कृतिक इतिहास और कला, वास्तुशिल्प, शिक्षा, साहित्य व विज्ञान में बड़ी उपलब्धियां थीं। इसके विपरीत इस्लाम की स्थापना अराजक बद्दू अरब प्रायद्वीप में हुई और फूहड़ अरबियों की अपेक्षा उन सभ्यताओं के लोग बहुत बड़ी प्रगति व उपलब्धियां अर्जित कर चुके थे। यह ध्यान देने योग्य है कि इस्लाम ने ईरान, ईराक, सीरिया, इजिप्ट और फिलिस्तीन आदि की महान भूमि से इस्लाम के पहले की सभ्यताओं को पूर्णतः मिटा दिया है। इजिप्ट अर्थात मिस्र वह स्थान है, जहां प्राचीन विश्व की 3000 वर्ष पुरानी आरंभिक व उत्कृष्ट सभ्यता रही। किंतु गैर-अरबी होने के बाद भी इजिप्ट के मुसलमान आज अरबी हैं। इजिप्ट के समाज के इस पतनोन्मुखी रूपांतरण पर दुख प्रकट करते हुए अनवर शेख लिखते हैं, 'इजिप्ट अर्थात मिस्र को देखिए... जब से इस्लाम ने विज्ञान, कला, संस्कृति और धर्मपरायण आचार-विचार की इस महान भूमि की नियति पर अधिकार किया, यह पतन की ओर अग्रसर हो गया। अब वहां कोई इजिप्टी अर्थात मिस्री नहीं बचा। वे सब के सब अरबी हो चुके हैं!'[372]

सबसे अचंभे वाली बात तो यह है कि आज के मजहबी मुसलमान, जो कि उन महान सभ्यताओं के वंशज हैं, किस प्रकार अपनी मूल विरासत के भग्नावशेषों से घृणा करते हैं। उदाहरण के लिये, अल्जीरियाई इस्लामी आंदोलन ने 1990 में हथियार उठा लिया और अपने देश का पूर्णतः अरबीकरण करने के प्रयास में अपने ही 2,00,000 देशवासियों की हत्या कर दी, जिससे कि वे अपने बेरबर (अफ्रीका की घुमंतू जनजाति) अफ्रीकी अतीत को मिटा सकें। यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उनके इस्लाम-पूर्व के बेरबर पूर्वजों ने अफ्रीका में अरबों के विरुद्ध कड़ा प्रतिरोध किया था। इब्न खलदुन के अनुसार, बेरबरों ने बारह बार इस्लाम छोड़कर अपने पूर्वजों का धर्म पुनः अपना लिया था, यद्यपि अंततः अरब हमलावर उन पर निर्णायक रूप से इस्लाम थोपने में सफल रहे। बेरबरों का प्रतिरोध इतना प्रबल था कि कई बार मगरिब से ही अरबों को पीछे हटना पड़ा।[373]

---

[372] इबिद

[373] लेवट्जिऑन एन (1979), टुवर्ड एक कम्परेटिव स्टडी ऑफ इस्लामाइजेशन, इन एन. लेवट्जिऑन ईडी., पृष्ठ 6

इस्लाम में धर्मांतरित होकर मुसलमान बनने वाले जीवन के सभी पक्षों में कुरआन और सुन्नत (मुहम्मद के जीवन व उदाहरण) के अनुसार जीवन जीते हैं; वे अरबी-इस्लामी सांस्कृतिक गुलाम बन जाते हैं। उनके लिये न केवल अरबी-इस्लामी सभ्यता से ओतप्रोत होकर अरबी-इस्लामी जीवन शैली का नकल करना अनिवार्य हो जाता है, अपितु अपने इस्लाम-पूर्व की संस्कृति, परंपरा व उपलब्धियों को नष्ट करना भी उनकी बाध्यता बन जाती है। जब तक वे अपनी मातृभूमि को मजहबी, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से इस्लामी रंग में न रंग दें, वह दारुल-हर्ब अर्थात जंग की भूमि रहती है। 'मुस्लिम राष्ट्रीयता में विश्वास करने के दिखावे के चक्कर में ये गैर-अरबी मुसलमान अपनी संस्कृति और मातृभूमि के प्रति घृणा का भाव रखने लगते हैं।'[374]

इसीलिये उपमहाद्वीप के मजहबी मुसलमानों में अपने देश से मूर्तिपूजक हिंदू धर्म, परंपरा और संस्कृति का पूर्णतः सफाया होते देखने की प्रबल इच्छा बनी रहती है। अपने लिये एक पाक देश बनाने के लिये करोड़ों लोगों की हत्या के मूल्य पर मुसलमानों ने पाकिस्तान बनाया। ऐसा ही आंदोलन मुस्लिम-बाहुल्य कश्मीर में 1947 से चल रहा है। इसी प्रकार ईरान के मुसलमान यथाशीघ्र अपने देश से इस्लाम-पूर्व धार्मिक व सांस्कृतिक परंपराओं के सभी अवशेषों को मिटते हुए देखना चाहते हैं। ईरानी क्रांति के बाद अयातुल्लाओं, जिनका लक्ष्य सामाजिक, राजनीतिक और मजहबी समाज को मुहम्मद द्वारा स्थापित समाज के समान बनाना था, ने विद्यालयों व विश्वविद्यालयों में प्राचीन ईरान के इतिहास का अध्ययन प्रतिबंधित कर दिया और इसको पढ़ाने वाले शिक्षकों को त्यागपत्र देना पड़ा। ऐसे ही इजिप्ट के धर्मांध मुसलमानों की बड़ी इच्छा है कि इस्लाम-पूर्व के कोप्टिक ईसाइयों और उनकी संस्कृति व परंपराओं को वहां से सदा के लिये नष्ट कर दिया जाए।

1970 के दशक के अंतिम वर्षों और 1990 के दशक के आरंभिक वर्षों में पाकिस्तान, इंडोनेशिया, मलेशिया और ईरान की यात्रा करने के समय नायपाल ने अति पढ़े-लिखे मुसलमानों में भी अपने समाज से तथाकथित गैर-इस्लामी रीतियों व लक्षणों को मिटा देने तथा इस्लाम-पूर्व की अपनी सांस्कृतिक विरासत के अवशेषों को नष्ट कर देने की व्यापक इच्छा देखा। इंडोनेशिया में दीन के पक्के मुसलमानों में इस्लाम द्वारा डाले गये धर्मांध अरब साम्राज्यवादी रोग को देखकर नायपाल ने लिखाः 'इस्लामी धर्मांधता की क्रूरता ऐसी है कि यह केवल एक ही जाति-मुहम्मद के मूल लोग अरबों के अतीत, और पवित्र स्थानों, तीर्थस्थानों और उस भूमि के सम्मान की ही अनुमति देता है। इन पवित्र अरबी स्थानों को सभी धर्मांतरित लोगों का पवित्र स्थान मानना होगा। धर्मांतरित लोगों को अपने अतीत को निकाल फेंकना होगा; धर्मांतरित लोगों के लिये और कुछ आवश्यकता नहीं है, बस उन्हें विशुद्ध दीन, इस्लाम, आत्मसमर्पण की ही आवश्यकता है।'[375]

पराजित और धर्मांतरित गैर-अरबी लोगों एवं उनकी संस्कृति व सभ्यता पर इस्लाम के घातक प्रभाव के प्रेक्षण के आधार पर नायपाल ने लिखा है, 'धर्मांतरण करके मुसलमान बन गये लोगों के लिये अपनी धरती का कोई धार्मिक या ऐतिहासिक महत्व

---

[374] शेख, अध्याय 7

[375] नायपाल (1998), पृष्ठ 64

नहीं रहा; उसके स्मृतिचिह्न नगण्य हो गये; अब केवल अरब का बालू ही उनके लिये पवित्र है।'[376] इस्लाम के सिंध विजय की दो सदी बाद मुसलमानों पर अरबी मजहब, अरबी भाषा, अरबी वस्त्र, अरबी नाम आदि की घातक अरबी सांस्कृतिक की प्रधानता का प्रेक्षण करते हुए नायपाल ने लिखा:[377]

> ...संभवतः वैसा साम्राज्यवाद कहीं नहीं रहा, जैसा इस्लाम और अरबियों का साम्राज्यवाद रहा। रोमन शासन के पांच सौ वर्ष पश्चात गौल लोग (फ्रांसीसी) अपने प्राचीन देवताओं व सम्मान को पुनः प्राप्त कर सके; उनकी वो प्राचीन आस्थाएं मरी नहीं थीं; वे केवल रोमन परत के नीचे पड़ी रहीं। पर इस्लाम अतीत को मिटाने के लिये मजहब का प्रयोग करता है; अंततः मोमिन केवल अरब का ही सम्मान करता है; उनके पास वापस लौटने के लिये कुछ नहीं बचता है।

इस्लाम-पूर्व के अतीत को मिटा डालने का उत्कट भाव मुसलमानों की कोई दबी हुई इच्छा नहीं है। अपने-अपने देशों में वे सक्रियतापूर्वक एवं हिंसक रूप से गैर-इस्लामी धार्मिक, सांस्कृतिक व परंपराओं के लक्षणों व चिह्नों तथा इस्लाम-पूर्व विरासतों के अवशेषों को मिटा डालने के लिये कार्य कर रहे हैं। उदाहरण के लिये, अफगानिस्तान में तालिबान ने 2001 में अठारह सौ वर्ष प्राचीन बामियान बुद्ध प्रतिमाओं को ढहा दिया था; इस्लामियों ने सितम्बर 2007 में उत्तरपश्चिम पाकिस्तान की स्वात घाटी में चट्टानों को काटकर निर्मित प्रथम सदी की बुद्ध मूर्तियों को बम से उड़ा दिया था; जनवरी 1985 में इस्लामियों ने मध्य जावा (इंडोनेशिया) में स्थित नौवीं सदी के आश्चर्य बोरोबुदूर बौद्ध मंदिर को बम से उड़ा दिया था; इस्लामियों ने जून 2008 में देईर अबू फना में विश्व के सबसे प्राचीन बौद्ध मठ पर हमला किया था। इजिप्ट के शीर्ष न्यायवादी व आला मुफ्ती अली गोमा ने अप्रैल 2006 में इस्लामी ग्रंथों के आधार एक मजहबी आदेश (फतवा) निर्गत करते हुए प्रतिमाओं की प्रदर्शनी को गैर-इस्लामी घोषित कर दिया था। इस बात की आशंका प्रकट की जाती है कि इजिप्ट की इस्लाम-पूर्व की समृद्ध विरासत के विरुद्ध उत्पात करने के लिये इस्लामी इस फतवा का बहाना ले सकते हैं। जैसा कि अखबार अल अदब पत्रिका के संपादक ने लिखा, 'हम इस आशंका को अस्वीकार नहीं कर सकते कि इस फतवा का बहाना लेकर कोई लक्सर में कर्णाक मंदिर या फिरऔन के किसी मंदिर में प्रवेश करेगा और बम से उड़ा देगा।'[378] ईरान के अयातुल्ला शासक कोई न कोई बहाना लेकर पिछले तीन दशकों से इस्लाम-पूर्व स्मारकों और समाधियों को सुनियोजित ढंग से नष्ट कर रहे हैं।

जो भी अ-इस्लामी अर्थात गैर-इस्लामी हैं, उन्हें मिटाने का लक्षित प्रयास बांग्लादेश और पाकिस्तान में भी देखा जाता है, वहां पर मुसलमान हिंदुओं का नरसंहार और नृजातीय सफाया कर रहे हैं। 1947 में विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में हिंदुओं की जनसंख्या 25-30 प्रतिशत थी, जबकि पाकिस्तान में यह जनसंख्या 10 प्रतिशत थी। आज बांग्लादेश में हिंदुओं की जनसंख्या 10 प्रतिशत से भी कम बची है और पाकिस्तान में एक प्रतिशत हिंदू ही रह गये हैं। मुस्लिम-बहुत बांग्लादेश

---

[376] इबिद, पृष्ठ 256

[377] इबिद, पृष्ठ 331

[378] फतवा अगेंस्ट स्टेच्यूज ट्रिगर्स अपरोर इन इजिप्ट, मिडल ईस्ट टाइम्स, 3 अप्रैल 2006

और पाकिस्तान में हिंदू जनसंख्या की इस अपार हानि का बड़ा कारण यह है कि इन देशों में हिंदुओं के साथ इतना बुरा व्यवहार होता है कि वे भारत की ओर निरंतर पलायन करने पर विवश हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सीमा तक हिंदुओं का बलपूर्वक धर्मांतरण भी इनकी जनसंख्या घटने का कारण है। हिंदू लड़कियों (और अन्य अ-मुस्लिम लड़कियां भी) का अपहरण करके ठग मुस्लिमों से जबरन शादी करना, व्यापक स्तर पर हिंदुओं की स्त्रियों का बलात्कार करना, उनकी संपत्ति व भूमि हड़प लेना, धर्मांतरण के लिये तैयार नहीं होने वाले हिंदुओं पर विभिन्न प्रकार का सामाजिक दबाव बनाना एवं उपद्रव करके उनको अपने घरबार से भगाना आदि वो कारण हैं, जिनसे हिंदू अपने पैतृक स्थान को छोड़ने का विवश हो जाते हैं। बांग्लादेश में कुछ समय पूर्व हुए एक अध्ययन में सामने आया है कि 1964 से 2001 के मध्य सांप्रदायिक संघर्ष और विनाश के कारण लगभग एक करोड़ हिंदुओं को अपना घरबार छोड़कर भारत में शरण लेनी पड़ी है। 1965 से 2006 के मध्य मुसलमानों द्वारा हिंदुओं की लगभग 26 लाख एकड़ भूमि हड़प ली गयी।[379] फिल्म निर्माता और टिप्पणीकार नईम मोहईमेन बांग्लादेश में अ-मुस्लिम नागरिकों के साथ व्यवहार पर कहते हैंः

> हम केवल भद्र वर्ग भर नहीं हैं, अपितु एक ऐसे मुसलमान भद्र हैं, जो इस देश का नाश करते हैं और अन्य लोगों को अस्तित्वहीन नागरिक बना देते हैं। निहित संपत्ति अधिनियम लागू होने के बाद ऐसे कानून, समझौते, सामाजिक मापदंड, राजनीति और घोर भेदभाव पनपे हैं, जिन्होंने हमारे हिंदू, ईसाई, बौद्ध, आदिवासी और पहाड़ी नागरिकों को विद्यालयों, नौकरियों, राजनीति, संस्कृति और जीवन के अस्तित्व से दूर करके अवमानवीय बना दिया है।[380]

इजिप्ट में मुसलमानों के उत्पीड़न के कारण देशज कोप्टिक ईसाई जनसंख्या निरंतर घटती जा रही है। ईसाइयों पर दबाव बनाने के लिये मुसलमानों ने उस प्रत्येक गली में मस्जिद बनाये हैं, जहां गिरिजाघर हुआ करते थे। मुसलमान नियमित रूप से ईसाइयों के विरुद्ध दंगा करने में संलिप्त रहते हैं और उनकी संपत्ति, गिरिजाघरों और व्यापार में तोड़फोड़ करते हैं और अन्य सामाजिक समस्याएं खड़ी करते हैं (मीडिया में प्रायः इसकी रिपोर्ट आती है)। इससे वे कोप्टिक ईसाई या तो मुसलमान बन जाने के लिये विवश हो जाते हैं अथवा पश्चिम की ओर पलायन कर जाने पर बाध्य हो जाते है। कुछ समय पूर्व हुई ऐसी ही एक घटना में पश्चिम अइन शम्स (काहिरा) स्थित वर्जिन मैरी ऑर्थोडॉक्स गिरिजाघर के शुभारंभ के दिन पत्थर और ब्यूटेन गैस सिलेंडर से लैस 20,000 मुसलमानों की भीड़ घुस गयी और लगभग 1000 ईसाइयों को बंधक बना लिया। रातों-रात मुसलमानों ने इस गिरिजाघर के सामने एक नये बने भवन के प्रथम तल को मस्जिद में परिवर्तित कर दिया और वहां नमाज पढ़ने लगे। जब सुरक्षा बलों ने तितर-बितर करने का प्रयास किया, तो मुसलमानों की भीड़ ने उस गिरिजाघर पर हमला कर दिया..., उसके किवाड़ तोड़ दिये और समूचा प्रथम तल ढहा दिया। मुसलमानों की वह भीड़ यह कहते हुए जिहाद की आयतें पढ़ रही थी और नारे लगा रही थी कि ''हम इस गिरिजाघर को ढहा देंगे'' और हे इस्लाम, हम तेरे लिये अपना रक्त और प्राण लुटा देंगे, हम तेरे लिये कुर्बान हो जाएंगे।''[381] अभी कुछ समय पूर्व ही रिपोर्ट आयी थी कि लंदन में मुस्लिम युवाओं ने कई हिंदू लड़कियों पर धर्मांतरण का दबाव

---

379 हिंदूज लास्ट 26 लाख एकर्स ऑफ लैंड फ्रॉम 1965 टू 2006, द डेली स्टार, ढाका, 15 मई 2008

380 मोहिमेन एन, टैटर्ड ब्ल्ड-ग्रीन फ्लैगः सेक्युलरिज्म इन क्राइसिस, डेली स्टार, बांग्लादेश, 26 फरवरी, 2007

381 20,000 मुस्लिम्स अटैक ए चर्च इन काहिरा, अससीरियन इंटरनशनल न्यूज एजेंसी, 26 नवंबर, 2008

बनाते हुए इतना आतंकित किया था कि उन्हें पुलिस की सुरक्षा देनी पड़ी।[382] जब ब्रिटेन में ऐसा कुछ हो सकता है, तो मुस्लिम-बाहुल्य देशों में अ-मुस्लिमों के साथ क्या होता होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार मध्य पूर्व देशों में अरबी ईसाइयों की जनसंख्या तेजी से घटती जा रही है; वे भेदभाव और उत्पीड़न से बचने के लिये मुख्यतः पश्चिम की ओर भाग रहे हैं। फिलिस्तीन के पश्चिम तट पर स्थित बेथलेहम नगर कभी ईसाई बाहुल्य हुआ करता था, परंतु अब यह मुस्लिम-बाहुल्य नगर हो चुका है। 1990 में यहां ईसाइयों की जनसंख्या 60 प्रतिशत थी, जो 2000 तक घटकर 40 प्रतिशत रह गयी और वर्तमान में केवल 15 प्रतिशत ईसाई बचे हैं। अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार अधिवक्ता एवं हीब्रू विश्वविद्यालय में व्याख्याता जस्टस रीड वीनर के अनुसार, फतह के नेतृत्व वाली फिलिस्तीनी सरकार की मूकसहमति और उकसावे से ईसाई अरबियों को मुसलमानों द्वारा निरंतर किये जा रहे मानवाधिकार उल्लंघन को सहना पड़ता है। मुसलमानों द्वारा किये जा रहे दुर्व्यवहार में 'धमकी देना, मारपीट करना, भूमि-हड़पना, गिरिजाघरों व अन्य ईसाई संस्थाओं में आग लगा देना और बम से उड़ा देना, रोजगार से वंचित रखना, आर्थिक बहिष्कार करना, प्रताड़ित करना, अपहरण करना, बलपूर्वक शादी करना, यौन उत्पीड़न करना और छिनैती करना आदि सम्मिलित हैं।'[383] इन समस्याओं के कारण ईसाई कहीं और पलायन कर जाने को विवश होते हैं। दूसरी ओर इजराइल में ईसामसीह के जन्मस्थान वाला नगर नज़रथ 1848 से ईसाइयों की बहुलता वाला क्षेत्र है और आज भी यह ईसाइयों के प्रभुत्व वाला नगर है। हाल के रूझानों पर आधारित एक अनुमान के अनुसार, निरंतर बढ़ रहे उत्पीड़न व प्रताड़ना के कारण आने वाले 15 वर्षों में मुस्लिमों के नियंत्रण वाले पश्चिमी तट और गाज़ा के फिलिस्तीनी क्षेत्र से ईसाई समुदाय लुप्त हो जाएगा।[384]

जबकि हिंदू बाहुल्य भारत में मुस्लिमों की जनसंख्या बढ़ती ही जा रही है। 1960 में ब्रिटेन से स्वतंत्रता मिलने के समय नाईजीरिया में लगभग 40 प्रतिशत मुसलमान थे, पर अब वे वहां संभवतः बहुसंख्यक हो गये हैं। 1990 के दशक के मध्य हुए गृह युद्ध से पूर्व बोस्निया-हर्जेगोविना में 43.5 प्रतिशत मुसलमान थे, पर 2008 में उनकी संख्या 50 प्रतिशत से अधिक हो गयी। इजराइल में बड़ी संख्या में पूरे विश्व से यहूदी अप्रवासियों के आने के बाद भी मुसलमान अपनी जनसंख्या का अनुपात स्थिर रखे हुए हैं। जिस भी देश में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, वहां उनकी जनसंख्या अन्य समुदायों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रही है। पर इस्लामी देशों में गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक निरपवाद रूप से तेजी से घटते जा रहे हैं।

इस्लाम का आधारभूत मत शहादा कहता है, ''अल्लाह के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है'' [कुरआन 6:102,106; 2:163]। ब्रह्मांड के सच्चे और एकमात्र मालिक सर्वोच्च अल्लाह द्वारा स्वीकृत मजहबी, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक

---

382 डेली मेल, पुलिस प्रोटेक्ट गर्ल्स फोर्स्ड टू कन्वर्ट टू इस्लाम, 22 फरवरी, 2007

383 वीनर जेआर (2008) पैलिस्तीनियन क्राइम अगेंस्ट क्रिश्चियन अरब्स एंड दियर मैनीपुलेशन अगेंस्ट इजराइल, इन इंस्टीट्यूट फॉर ग्लोबल ज्यूइश अफेयर्स बुलेटिन, नंबर 72, 1 सितंबर, 2008

384 लेकोविद्व ई, 'क्रिश्चियन ग्रुप्स इन पी.ए. टू डिसऐपियर', येरूशलम पोस्ट, 04 दिसम्बर, 2007

व्यवस्था इस्लाम को अन्य सभी व्यवस्थाओं को हटाकर स्थापित करना और संसार के सभी मनुष्यों पर लागू करना अनिवार्य है। जैसा कि अल्लाह का कहना है कि समस्त मानवजाति के लिये एकमात्र और सम्पूर्ण जीवनशैली इस्लाम ही हो, इसलिये सबको मिटाकर इस्लामी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की स्थापना के लिये मुसलमान जिस भी प्रकार से जिहाद कर पाएं, उन्हें करना ही चाहिए [कुरआन 2:193; 8:39]। इस्लामी देशों में चल रहा गैर-मुसलमानों का नरसंहार जाने या अनजाने में इस्लाम के आधारभूत आदेश इस्लामी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद थोपने के लिये ही हो रहा है। दुर्भाग्य यह है कि अधिकांश मुस्लिम जनता गैर-मुसलमानों का नरसंहार किये जाने का विरोध बहुत कम करती है।

इसीलिये, इस्लामी हमलों में मानवजाति ने संस्कृति और सभ्यता के विरासत की जो विशाल निधि खो दी है, उस पर अधिकांश मुसलमानों को कोई दुख नहीं होता। दीनी मुसलमानों के लिये तो यह दुख मनाने की अपेक्षा प्रसन्नता प्रकट करने का विषय होता है; क्योंकि उन्हें नष्ट करना उनका सद्गुण और अल्लाह द्वारा बाध्यकारी बनाया गया कर्तव्य है। नायपाल ने ठीक ही लिखा है: 'धर्मांतरित लोगों पर इस (इस्लाम) का घातक प्रभाव हुआ है। धर्मांतरित होने के लिये आपको अपने अतीत को नष्ट करना पड़ता है, अपने इतिहास को नष्ट करना पड़ता है। आपको इसे पददलित करना पड़ता है, आपको कहना पड़ेगा 'मेरे पूर्वजों की संस्कृति का कोई अस्तित्व नहीं था, उस संस्कृति का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा।''[385] पूरे महाद्वीप में जिन देशों में मुसलमान सत्ता में हैं, वहां इस्लाम-पूर्व के धर्म, परंपरा, संस्कृति और विरासत के अवशेषों को मिटाने का अभियान पूरे वेग से चल रहा है। वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवादी इस्लामी स्टेट की स्थापना करके मुसलमान समस्त संसार को एक समान अरबी-इस्लामी रंग में रंगना चाहते हैं। वे वैश्विक स्तर पर ऐसा इस्लामी स्टेट स्थापित करना चाहते हैं, जहां सभी मनुष्यों के जीवन के सभी पक्षों में मानव की विचारधारा और सम्पूर्ण मार्गदर्शिका केवल इस्लाम हो। आज की पोस्ट-कॉलोनियल मुस्लिम दुनिया में इस प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक रूपांतरण अति तीव्र गति से हो रहे हैं, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां जनसंख्या में मुसलमानों की बहुलता है। अब पश्चिम में भी मुस्लिम अप्रवासियों द्वारा वैश्विक संस्कृति के अरबी-इस्लामीकरण की प्रक्रिया शुरू की गयी है।

जीते गये देशों में इस्लाम का योगदान

हम सदा इस बात का विश्लेषण करते हैं कि मुसलमान हमलावर औपनिवेशिक-शैली के आर्थिक शोषण के उद्देश्य से भारत गये थे। जबकि मुसलमान अस्वीकार करते हैं कि ऐसा कुछ हुआ भी था। इस्लामी हमलावर बारंबार निर्दोष हिंदुओं के क्षेत्रों में हमले करते रहे; इस प्रक्रिया में उन्होंने अकूत धन-संपत्ति लूटी, बहुत बड़ी संख्या में हिंदुओं का नरसंहार किया और बड़ी संख्या में उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बनाया। लूटे गये धन और बंदियों का पांचवां भाग खलीफा के खजाने में भेजा जाता था। इस्लामी शासन स्थापित हो जाने के बाद भी जब काफिर जनता धर्मांतरित नहीं हुई, तो उस पर सभी प्रकार के दमनात्मक और भेदभावकारी कर लाद दिये गये। दिल्ली में सल्तनत स्थापित करने के एक सदी के भीतर ही अलाउद्दीन खिलजी (शासन 1296-1316) का शासन आते-आते हिंदू जनता में दरिद्रता इतनी बढ़ गयी कि कभी समृद्ध रहे भारत के हिंदू मुसलमानों के दरवाजे पर भीख मांगने

---

[385] एजार्ड जे, नोबल ड्रीम कम्स टू फॉर वीएस नायपाल, द गार्जियन, 12 अक्टूबर, 2001

लगे और करों के बोझ को निपटाने के लिये अपनी स्त्रियों और बच्चों को बेचने लगे। जो हिंदू ऐसा नहीं कर पाए, वो कर उगाहने वाले अमीनों के उत्पीड़न से बचने के लिये जंगलों में भागकर शरण लिये। परंतु मुसलमानों को ये सब औपनिवेशिक-शैली में स्थानीय लोगों का शोषण किया जाना नहीं लगता है। मुसलमान तो इन कुकृत्यों को भी मुस्लिम हमलावारों द्वारा भारत में लाये गये महान सामाजिक न्याय और समतावाद को मानते हैं। हाशमी सारगर्भित ढंग से मुसलमानों की इस सोच के नमूने को प्रस्तुत करता है:[386]

> 'मुसलमान भारत में उच्च संस्कृति लाये। मुस्लिम शासकों, व्यापारियों और सूफियों द्वारा तरबूज, सेब, अंगूर, विभिन्न प्रकार के अखरोट, केसर, परिमल (,ईत्र), बारूद, पच्चीकारी, चीनी मिट्टी, नुकीला व घोड़े की नाल, वास्तुशिल्प में गुंबद और मीनार, सितार व तबला और परिष्कृत संगीत स्वर, घोड़े, पगड़ी, चमड़े के जूते, धोती, साड़ी और सैरंग (लुंगी) के स्थान पर सिले हुए वस्त्र, बर्फ, गुलाब जल एवं सामाजिक समतावाद भारत लाया गया...।'

मुसलमान क्या अच्छा अथवा लाभकारी वस्तुएं भारत में ले आये, उस पर इस पुस्तक में विमर्श नहीं किया जाएगा। पर हां, यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इस्लामी शिक्षा में इन लाभकारी वस्तुओं का कोई आधार नहीं है; इनमें से अधिकांश वस्तुओं का न तो अरब की शिक्षा और न ही वहां की विरासत में कोई स्थान है (वास्तव में संगीत, कविता, कला और वास्तुशिल्प आदि इस्लाम में सीधे-सीधे हराम हैं)। सच तो यह है कि ये सब इस्लाम-पूर्व की उन उन्नत सभ्यताओं फारस, इजिप्ट, सीरिया और बैजेंटियम से हड़पी गयी हैं, जिसे मुसलमानों ने जीत लिया था अथवा जिनके संपर्क में आये थे।

हाशमी के अतिरंजनापूर्ण दावे के प्रत्युत्तर में लेखक और इस्लाम के आलोचक मुहम्मद अशगर लिखते हैं कि,

> यह तो वही बात है, जो विदेशी ताकतों द्वारा किसी देश पर अधिकार कर लेने को केवल इस आधार पर न्यायोचित ठहराता है कि उन ताकतों ने हमला किये गये राष्ट्रों कुछ वस्तुओं से परिचय कराया था। क्या हम आज के संसार में हो रही कुछ बातों के लिये भी यही तर्क दे सकते हैं? ईराकियों के पास कीमा और सैंडविज बनाने का ज्ञान नहीं था और न ही वे टिक्का या वो पदार्थ खाने के अभ्यस्त थे, जो अमरीकी सामान्यतः खाते हैं। न ही ईराकियों के पास गगनचुंबी भवन, बांध और अन्य आधुनिक सुविधाओं को बनाने की क्षमता थी। वे 30 वर्षों से दमनकारी और अनवरत तानाशाही में जी रहे थे। इसलिये अमरीकियों ने ईराकियों को अपनी उच्च संस्कृति से परिचित कराने के लिये उस पर आक्रमण किया था। ईराक में अमरीकियों की उपस्थिति के कारण अब ईराकी कीमा और सैंडविच खाने में समर्थ हो सके हैं और अमरीकियों ने उन्हें यह भी सिखाया है कि ऊंचे-ऊंचे भवन कैसे बनायें। अमरीकियों ने उन्हें लोकतंत्र का पाठ पढ़ाया है। अल्प समय में ही अमरीकी ईराक को एक सभ्य राष्ट्र बना देंगे; यह तो वही हो रहा है न जो मुसलमानों ने मध्यकालीन भारतीय लोगों के साथ किया था।

इन दोनों प्रकरणों में आधारभूत अंतर होने के बाद भी, अशगर ने मुसलमान हमलावरों द्वारा निर्दोष भारतीयों पर की गयी निर्मम क्रूरता को न्यायोचित ठहराने वाले हाशमी के विचित्र तर्क का उपयुक्त उत्तर दिया है। उच्च संस्कृति, सामाजिक समतावाद,

---

[386] हाशमी, ओपी सीआईटी

कला, वास्तुशिल्प, संगीत उपकरणों और उन महान सूफी पीरों जो भारत में इस्लाम लाये थे, के बारे में हाशमी के दावे की सत्यता को परखा जाना आवश्यक है। इस संबंध में कुछ प्रश्नों को देखा जाना आवश्यक है:

1. क्या जिन अरबियों और उनकी संस्कृति में इस्लाम की नींव है, उनका इन योगदानों से कुछ लेना-देना है?
2. क्या ये सब अरब के अविष्कार थे?
3. क्या रसूल मुहम्मद के समय अरबी समाज सामाजिक-सांस्कृतिक, बौद्धिक और भौतिक विकास के इन पक्षों में इतना समृद्ध था?

अरबियों का अविकसित समाज

मुहम्मद के समय के अरबी समाज व संस्कृति से संबंधित ऐतिहासिक अभिलेखों से पता चलता है कि उनके पास ऐसी कोई उपलब्धि, अविष्कार या बौद्धिकता नहीं थी। इस्लाम-पूर्व के अभिलेख और आरंभिक इस्लामी साहित्य दोनों से ज्ञात होता है कि रसूल मुहम्मद के समय अरब प्रायद्वीप में ऐसे गंवार लोग रहते थे, जिनके पास नाममात्र की अथवा अल्पविकसित संस्कृति व सभ्यता थी। भारत, फारस, इजिप्ट और सीरिया की सुविकसित समकालीन सभ्यताओं की तुलना में अरब की सामाजिक, राजनीतिक और सभ्यता संबंधी विकास कुछ नहीं था। बंजर रेगिस्तान के मध्य स्थित मक्का नगर में नगण्य खेती थी, जैसा कि अल्लाह द्वारा इसकी पुष्टि की गयीः 'मैंने प्रतिष्ठित घर (काबा) के निकट बंजर घाटी में अपनी कुछ संतानों को बसा दिया है... [कुरआन 14:37]।' इस कारण मक्का के लोगों के पास दैनिक कार्य अति अल्प था। उनकी आजीविका यदा-कदा किये जाने वाले व्यापार, काबा के लिये आने वाले तीर्थयात्रियों से मिले धन और मक्का से होकर जाने वाले महत्वपूर्ण व्यापारिक-मार्ग पर यात्रा करने वाले कारवां से मिलने वाले कर के धन चलता था। उनमें से कुछ जो दुष्ट और जोखिम उठाने वाले होते थे, वे जीविका के लिये हमले और लूटपाट में संलिप्त रहते थे। उनकी जनसंख्या का बड़ा भाग घुमंतू अरब जनजातियों का था और वो जनजातियां जीवन निर्वाह के लिये रेगिस्तान में घूमने की अभ्यस्त थीं। 20 सदी में तेल की खोज होने से पहले तक अरबियों की जीवनशैली ऐसी ही पिछड़ी और असभ्य रही।

मुहम्मद के पैतृक नगर के लोग अपेक्षाकृत आलसी जीवन जीते थे। आजीविका के लिये वे बस इतना करते थे कि कभी यदा-कदा कुछ हाथ लग गया, तो उसे ले लेते थे। अधिकांश समय वे यौन गतिविधियों में संलग्न रहते थे और ऐसा लगता है कि समय व्यतीत करने का यह उनका प्रिय साधन था। प्रमुख इस्लामी इतिहासकार मैक्सिम रोडिंसन ने उस समय के अरब समाज के बारे में रब्बी वासन का उद्धरण देते हुए लिखा हैः

> 'संसार में कहीं भी परस्त्रीगमन की ऐसी प्रवृति नहीं थी, जैसा कि अरबियों में थी। ऐसे ही संसार में कहीं भी ऐसी सत्ता नहीं थी, जैसी कि फारस की थी, ऐसा धन नहीं था, जैसा कि रोम में था, अथवा ऐसा जादू नहीं था, जैसा कि इजिप्ट (मिस्र) में था। यदि संसार के

> सभी यौनिक दुराचारों के लिये लाइसेंस दिया जाता और उन लाइसेंसों को दस भागों में बांटा जाता, तो उनमें से नौ भाग अरबियों में बांटना पड़ता, जबकि केवल एक भाग ही अन्य जातियों के लिये पर्याप्त होता।'[387]

इसी प्रकार रोनॉल्ड बोल्डी मक्का के अरबियों के सांस्कृतिक लक्षण के बारे में लिखते हैं कि,

> मक्का की सुंदर वेश्या का बेटा अम्र इब्न अल-आस था। चूंकि मक्का के सभी बड़े लोग उस वेश्या के मित्र थे, इसलिये अबू सूफ्यान को छोड़कर उनमें से कोई भी अम्र का पिता हो सकता था। जहां तक कोई यह निश्चित कर पाता कि पिता कौन है, अम्र अपने को अम्र इब्न अबू लहाब या इब्न अल-अब्बास कह सकता था अथवा कुरैशों के शीर्ष दस व्यक्तियों में किसी और को भी अपना पिता कह सकता था। उस समय के मक्का मानकों के अनुसार, यह कोई विषय ही नहीं था कि किस पिता से वह जन्मा था।[388]

कुछ पाठक सोच सकते हैं कि उस समय सारे संसार में ही ऐसा चलता था, किंतु ऐसा नहीं था। वास्तव में इस्लाम के बहुत से पीड़ितों ने भले ही किसी परिस्थिति में इस्लाम स्वीकार कर लिया था, किंतु वे अपेक्षाकृत अकर्मण्य व असभ्य अरबियों से घृणा करते रहे। उदाहरण के लिये फारसी (ईरानी) तो आज भी उस घृणित द्वितीय खलीफा उमर की मृत्यु का उत्सव उत्साह से मनाते हैं, जो महान फारसी सभ्यता को असभ्य अरबियों के पांव के नीचे लाया था। इस्लामी हमलावरों ने जिन उन्नत सभ्यताओं को जीता था, उनके लोगों को इस्लाम स्वीकार करने को बाध्य किये जाने के बाद भी वहां के सामाजिक संभ्रांत लोग अपने अरबी मालिकों का सम्मान न के बराबर करते थे। वे कई इस्लामी रीतियों का उपहास उड़ाते थे और झिड़की देते थे कि इस्लाम के पास कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं है। वे अपने देश की उपलब्धियों और योगदानों का महिमामंडन करते थे। वे अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करते थे और यहां तक कि क्रूरतापूर्वक थोपी गयी इस्लामी प्रथाएं और बोध को समाप्त कर इस्लाम-पूर्व की सभ्यता को पुनस्थापित करने का प्रयास करते थे।

फारसियों, इजिप्ट के लोगों और फिलिस्तीनियों में ऐसा ही एक अरब-विरोधी आंदोलन शुउबिया चला था, जो दूसरी-तीसरी इस्लामी सदियों में प्रमुख आंदोलन बन गया था। इस आंदोलन के बड़े ध्वजवाहक फारसी जनरल खैदर बिन कावुस (उपाख्य अफषीन) थे, जिन्होंने उदारवादी, मुक्तचिंतक अब्बासी खलीफा अल-मुतासिम (मृत्यु 842) के नेतृत्व में सेवाएं दी थी। अब्बासी इस्लामी साम्राज्य को बड़ी सैन्य सफलता दिलाने के बाद भी अफशीन के मन में अरब संस्कृति और इस्लामी मजहब के लिये केवल घृणा थी। उनके बारे में इग्नाज़ गोल्डजाइहर ने लिखा है कि 'वह इतना कम मुसलमान थे कि उन्होंने इस्लाम के दो प्रचारकों के साथ क्रूरता का व्यवहार किया, क्योंकि वे दोनों प्रचारक मूर्तिपूजकों के एक मंदिर को मस्जिद में परिवर्तित कर देना चाहते थे। वह इस्लामी कानूनों का उपहास करते थे।' गोल्डजाइहर लिखते हैं, हराम-हलाल की इस्लामी वर्जनाओं का उल्लंघन करते हुए 'वह झटका पद्धति से तैयार मांस खाते थे और यह कहते हुए दूसरों को भी यही खाने को प्रेरित करते थे कि इस्लामी रीति से मारे गये पशु के मांस की अपेक्षा इस प्रकार का मांस अधिक शुद्ध (ताजा) होता है।' वह विभिन्न इस्लामी प्रथाओं जैसे खतना आदि का

---

387 रोडिन्सन एम (1976) मुहम्मद, अनुवाद ऐनी कार्टर, पेंगुइन, हारमंडस्वर्थ, पृष्ठ 54

388 बोल्डी आरवीसी (1970) द मैसेंजरः द लाइफ ऑफ मुहम्मद, ग्रीनवुड प्रेस रीप्रिंट, पृष्ठ 73

उपहास उड़ाते थे तथा फारस साम्राज्य की पुनर्स्थापना का स्वप्न देखते थे। वह अरबियों, मग़रिब के लोगों और मुसलमान तुर्कों की हंसी उड़ाते थे।'[389] यह आरोप लगाकर कि जनरल अफशीन ने इस्लाम छोड़ दिया है और अपने पूर्वजों के पारसी धर्म को पुनः स्वीकार कर लिया है, उन्हें कारागार में डाल दिया गया, जहां 841 में उनकी मृत्यु हो गयी।[390]

अपनी राष्ट्रीय और ऐतिहासिक उपलब्धियों पर गर्व करते हुए शुउबिया के सहभागी ध्वजवाहक कभी भी अरबों के अविकसित बद्दू संस्कृति पर उंगली उठाने में नहीं चूके और वे अरबियों को जंगली, अशिष्ट व असभ्य कहते थे। उनका दावा था कि इन अरबियों ने फारस से ही सभ्यता सीखी है। वे अरबियों को तम्बू में रहने वाले, भेंड़ चराने वाले, ऊंट चराने वाले, रेगिस्तान के अवैध निवासी और गिरगिट खाने वाले कहते थे। इस्माइल अल-सालिबी के अनुसार, वे कुरैशों (अरबियों) में प्रचलित समलिंगी मैथुन की निंदा करते थे (यह अरबियों की उच्छृंखल, पतित यौनिक व नैतिक स्थिति के उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करता है)।[391] बलपूर्वक थोपी गयी अरबी संस्कृति के विरुद्ध इसी प्रकार का आंदोलन इजिप्ट के कोप्ट्स (ईसाइयों), नबातियाई अरब और संभवतः उन सभी क्षेत्रों में हुआ, जिन्हें अरबों ने जीता था। अरबी संस्कृति के विरुद्ध ये आंदोलन स्थानीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के उद्देश्य से हुए थे। जिस फिरुज़न (अथवा अबू लूलू) ने फारस में अरब हमलावरों द्वारा किये गये अत्याचार का प्रतिशोध लेने के लिये 644 में खलीफा उमर की हत्या की थी, उसे ईरान में आज भी नायक के रूप में सम्मान दिया जाता है।[392]

ये घटनाएं उन अरबियों के सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास के झूठे दिखावे की पोल खोलती हैं, जिनके बीच इस्लाम का जन्म हुआ और पनपा तथा जिनके सांस्कृतिक मानदंडों पर इस्लामी मजहब आधारित है। मुस्लिम हमलावर जिस प्रकार की निरंकुश क्रूरता व यौन दासप्रथा, समलिंगी मैथुन व विशाल हरम की संस्कृति अपने साथ लाये और मुस्लिम दुनिया के सुदूर क्षेत्रों तक इसे जमाया, वह उस समय के असभ्य बद्दू अरब समाज की नैतिक व सांस्कृतिक दरिद्रता का प्रतिबिंब है।

तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है: यह किस प्रकार और किस सीमा तक संभव है कि ऐसे असभ्य, अल्पविकसित लोगों के पास भारत, फारस, इजिप्ट (मिस्र), लीवैंट और बैंजेंटियम जैसी विश्व की महानतम सभ्यताओं को देने के लिये कुछ मूल्यवान रहा भी होगा?

---

389 गोल्डजाइहर आई (1967) मुस्लिम स्टडीज, अनुवाद सीआर बार्बर एंड एसएम स्टर्न, लंदन, अंक प्रथम, पृष्ठ 139

390 एंड्रेस जी (1988) ऐन इंट्रोडक्शन टू इस्लाम, अनुवाद सी. हिलनब्रांड, कोलंबिया यूनीवर्सिटी प्रकाशन, न्यूयार्क, पृष्ठ 172

391 अल-सालिबी आई (1968) लतीफ अल-माअरिफ। द बुक ऑफ क्यूरिअस एंड एंटरटेनिंग इन्फॉर्मेशन, ईडी. सीई बॉसवर्थ, एडिनबरा यूनीवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 25

392 मोहम्मद-अली ई, टॉम्ब ऑफ फिरुज़न (अबू-लूलू) इन कशान टू बी डिस्ट्रायड, द सर्किल ऑफ एंसिएंट ईरानियन स्टडीज वेबसाइट, 28 जून 2007; http://www.cais-soas.com/News/2007/June2007/28-06.htm

सातवीं सदी के अरबियों में एक ही बात दिखती है कि वे जीते हुए लोगों पर यौन अत्याचार करने और उनकी सामूहिक हत्या करने में ही आगे रहे। मुस्लिम हमलावरों द्वारा जीते गये अपने सभी भूभागों पर बड़े-बड़े हरम बनना और व्यापक स्तर पर यौन-दासप्रथा शुरू करना स्पष्ट रूप से उनकी यौन संस्कृति की अनैतिक प्रकृति को सिद्ध करता है। कविता में इस्लाम-पूर्व के अरबियों की उत्कृष्टता थी। यद्यपि इस्लाम कवियों और कविताओं की स्पष्ट निंदा करता है [कुरआन 26:224; बुखारी 8:175; मुस्लिम 28:5609]। आज भी अरबियों की कविता की तुलना में यूनानी कविता उत्कृष्ट है।

जबकि मुसलमान डींगें हांकते हैं कि उन्होंने भारत को शायरी, गज़ल, कला, वास्तुशिल्प और विज्ञान से समृद्ध किया है। सच तो यह है कि शायरी को छोड़कर इनमें से किसी भी क्षेत्र में मुसलमानों के पास प्रतिभा नहीं थी और उनके पास भारत को देने के लिये अपना कुछ भी नहीं था।

हमने ऊपर देखा है कि कैसे नेहरू अति भावुक महिमामंडन करते हुए कहता है कि अरबी लोग ''उत्कृष्ट संस्कृति'' विश्व के एक कोने से दूसरे कोने में लेकर गये। पर नेहरू अपनी ही बात का खंडन करते हुए आगे के पृष्ठों में लिखता है: 'उन्होंने (अरबियों) शीघ्र ही अपनी साधारण जीवन शैली छोड़ दी और चमक-दमक वाली संस्कृति अपना ली... उन पर बैजेंटाइन प्रभाव पड़ा... जब वे बगदाद की ओर बढ़े, तो प्राचीन ईरान (फारस) की परंपराओं ने उनके जीवन को प्रभावित किया।'[393] नेहरू जो चाहे निष्कर्ष निकाल सकता है, किंतु सच तो यही है कि 'साधारण जीवन जीने वाले लोगों' के पास कुछ भी ऐसा मूल्यवान नहीं हो सकता, जो वे उन उच्च विकसित सभ्यताओं को दे पाते, जिनको वे लील गये थे। अरबी केवल नकल कर सकते थे और हड़प सकते थे तथा नेहरू के शब्दों में कहें तो उन्होंने यही किया, बैजेंटियम व फारस की सभ्यता से मूल्यवान ज्ञान व कला को हड़पा।

इस्लाम में बौद्धिकता की ओर बढ़ने पर प्रतिबंध

मध्यकालीन मुस्लिम दुनिया ने कला व वास्तुशिल्प, संगीत व कविता, ज्ञान व विज्ञान आदि जिन अनेक बौद्धिक क्षेत्रों प्रवीणता प्राप्त की है, वे सब इस्लाम में स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित हैं। उदाहरण के लिये, अल्लाह ने इस संसार में मुसलमानों को तड़क-भड़क और विलासिता में संलिप्त रहने को वर्जित (हराम) किया है: 'और यदि यह खतरा न होता कि मानव जाति उस कृपालु अल्लाह में अविश्वास की ओर झुके, तो हम (अल्लाह) अवश्य ही उनके लिये, उनके घरों की छतों और जिन सीढ़ियों पर वे चढ़ते हैं उसे चांदी की बना देते। और उनके घरों के द्वार और जिन बिस्तरों पर वे आराम करते हैं एवं अन्य ठाठ-बाट को सोने का बना देते; और ये सब इस संसार के जीवन के लिये तुच्छ ही नहीं, वर्जित हैं और इस संसार से जाने के बाद आखिरत (परलोक) में ये सब अल्लाह के पास केवल उन्हीं के लिये हैं जो रक्षा करते हैं (दीन की) [कुरआन 43:33-35]। इसका तात्पर्य यह है कि इस संसार में तड़क-भड़क और विलासिता केवल उन्हीं के लिये है, जो पथ से विचलित काफिर हैं; मुसलमानों को निष्ठापूर्वक इन सबसे दूर रहना चाहिए। मुसलमानों को हंसी-ठिठोली, खेल, विनोद व मनोरंजन में संलिप्त नहीं होना चाहिए, क्योंकि अल्लाह कहता है: 'यह

---

[393] नेहरू (1946), पृष्ठ 224

सांसारिक जीवन एक खेल और मनोरंजन ही तो है, और क्या है? किंतु जो अल्लाह के आज्ञाकारी हैं, उनके लिये सर्वोत्तम आखिरत (परलोक) अर्थात मृत्यु के बाद का जीवन है। क्या तुम इतना भी नहीं समझते? [कुरआन 6:32]

अल्लाह स्पष्ट रूप से वास्तुशिल्प और भवन के तड़क-भड़क, मनोरंजन में संलिप्तता और क्रीड़ा (संगीत, कविता आदि) को हराम कहता है। इसलिये जो मुसलमान संगीत वाद्ययंत्रों को हलाल मानते थे, उनके विषय में रसूल मुहम्मद ने कहा है कि वे मिट जाएंगे और लंगूर व सुअर बन जाएंगे [बुखारी 7:494बी]। एक और सुन्नत के अनुसार रसूल ने अली को निर्देश दिया: जैसा अल्लाह ने मुझे निर्देश दिया, वही मैं तुम्हें दे रहा हूं कि सारंगियों और बांसुरियों को तोड़ डालो।'[394] बड़े स्तर पर भवन बनाने के बारे में मुहम्मद ने अल्लाह से सहमति प्रकट करते हुए बोला: 'वास्तव में मोमिन के धन को खाने वाला सर्वाधिक अलाभकारी काम है भवन बनाना' और भवन में किये गये व्यय को छोड़कर मोमिन के प्रत्येक व्यय का अच्छा प्रतिफल मिलेगा।'[395] मक्का में ताकतवर इस्लामी स्टेट स्थापित करने के बाद भी मुहम्मद ने कोई भव्य भवन बनाने में कभी रुचि नहीं दिखायी। आरंभिक काल की जिन दो मस्जिदों को उसने बनवाया, वे उसकी मृत्यु तक मामूली ढांचे वाली थीं। इन दो मस्जिदों में से एक काबा और दूसरी मदीना में बनवायी गयी थी। जब उसके साथियों ने पूछा कि क्या इन मस्जिदों की मरम्मत की जाए, तो उसने कहा: 'नहीं, मस्जिद सादा और दिखावारहित होनी चाहिए, मस्जिद एक झोंपड़ा होना चाहिए, जैसा कि मूसा का झोंपड़ा था।'[396]

अल्लाह भी कभी विज्ञान, दर्शन या बौद्धिक शिक्षा जैसे रचनात्मक कार्यों के पक्ष में नहीं रहा। रसूल मुहम्मद अनपढ़ था और अल्लाह रसूल के इस गुण को गर्व से महिमामंडित करता है: 'जो उस पैगम्बर का अनुसरण करेंगे, वह रसूल जो न पढ़ सकता है और न लिख सकता है, जिसके बारे में वो तौरात और इंजील (गॉस्पेल) में उल्लेख पाएंगे...[कुरआन 7:157]। अल्लाह मुसलमानों को जिज्ञासु होने और संसार के बारे में रचनात्मक प्रश्न पूछने से रोकते हुए चेतावनी भी देता है: हे मोमिनो! बहुत सी बातों के बारे में प्रश्न न करो, क्योंकि यदि वो तुम्हें बता दी जाएं, तो तुम समस्या में पड़ जाओगे... तुमसे पहले कुछ लोगों ने ऐसे प्रश्न पूछे थे और परिणामस्वरूप वे काफिर हो गये [कुरआन 5:101-02]।' रसूल मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को रचनात्मक प्रश्न न पूछने का परामर्श दिया था और कहा था कि अल्लाह ने जो कुछ भी कहा है, उसका आंख बंद कर पालन करो: 'अल्लाह के रसूल ने कहा, 'तुम्हारे ऊपर शैतान आएगा और कहेगा, 'ये सब किसने बनाया? फिर वह कहेगा, 'तुम्हारे अल्लाह को किसने बनाया,' इसलिये जब वह इस प्रकार के प्रश्न मन में डाले, तो तुम अल्लाह की शरण में जाओ और इस प्रकार के विचारों को त्याग दो [बुखारी 4:496; मुस्लिम 1:242-43]। मदीना में अपने शासन के समय मुहम्मद ने स्वयं भी विज्ञान, कला, वास्तुशिल्प अथवा अन्य किसी रचनात्मक शिक्षा को प्रोत्साहन नहीं दिया।

---

[394] वाकर, पृष्ठ 283

[395] हफ्स, पृष्ठ 178

[396] वाकर, पृष्ठ 271

मजहबी मानते हैं कि सर्वव्यापी सृजनकर्ता की ओर से सीधे कुरआन में भेजे गये इस्लामी संदेश सम्पूर्ण सार्वभौमिक ज्ञानकोश है। कुरआन 3:164 कहती है, 'अल्लाह ने ईमान वालों पर उपकार किया है कि उन में उन्हीं में से एक रसूल भेजा, जो उनके सामने उस (अल्लाह) की आयतें सुनाता है, और उन्हें शुद्ध करता है तथा उन्हें पुस्तक (कुरआन) और सुन्नत की शिक्षा देता है, यद्यपि वे लोग इससे पहले कुपथ में थे।' दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो कुरआन के माध्यम से अल्लाह ने मानवजाति के लिये अपना सच्चा ज्ञान, बुद्धिमत्ता और मागदर्शन प्रकट कर दिया है कि इस्लाम के आने से पूर्व जो कुछ भी मानव जानता था, वह त्रुटिपूर्ण था। अपने ज्ञान के विश्वकोश कुरआन में अल्लाह दावा करता है कि प्राकृतिक संसार का कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है, जो इसमें दिया न गया हो: 'धरती पर कोई ऐसा विचरता जीव और अपने पंखों से उड़ता प्राणी ऐसा नहीं है, जो तुम्हारी जैसे समुदाय का गठन करता हो, हमने पुस्तक में कोई कमी नहीं की है... [कुरआन 6:38]।' अल्लाह बल देकर कहता है कि कुरआन कोई खोटी पुस्तक नहीं है, अपितु आकाश से सीधे भेजी गयी वह पुस्तक हैं, जिसमें स्पष्ट ढंग से वर्णित उसका सच्चा मार्गदर्शन व ज्ञान है और उसमें जो पहले था और जो भविष्य में होने वाला है, उन सबका ज्ञान हैः इसके इतिहासों में समझने वालों के लिये बड़ी शिक्षा है। यह (कुरआन) ऐसी बातों का संग्रह नहीं है, जिसे अपने मन से गढ़ लिया जाए, अपितु यह इससे पहले की बातों का सत्यापन और संसार की सभी बातों की स्पष्ट व्याख्या है और जो ईमान लाये हैं, यह उन लोगों के लिये मार्गदर्शन और दया है [कुरआन 12:111]।'

इसीलिये मजहबी मानते हैं कि केवल कुरआन में समाहित ज्ञान और मागदर्शन ही इस संसार में सम्पूर्ण जीवन जीने के लिये आवश्यक है। इस संसार में मुसलमान का एकमात्र लक्ष्य जन्नत जाना होता है और कोई मुसलमान जन्नत तभी जा सकता है, जब वह कुरआन के आदेश और मनाही के अनुसार निष्ठापूर्वक चले। इस्लाम की इस आधारभूत मान्यता से सहमति प्रकट करते हुए प्रोफेसर उमरुद्दीन लिखते हैं: 'आरंभिक दिनों से ही मुसलमान यह मानने लगे कि इस्लाम के आने के साथ ही पूर्व की सभी विचार प्रणालियां निषिद्ध हो गयीं। उस कुरआन को मानव जाति का एकमात्र सच्चा मार्गदर्शक माना गया, जिसने इस संसार में और आखिरत (परलोक) में सफलता का वचन दिया।'[397] इसी प्रकार डॉ अली ईसा उस्मान इससे सहमति प्रकट करते हैं कि कुरआन मुसलमानों के लिये ''मनन का प्रेरक और ज्ञान का अंत'' है।[398] इसीलिये अब्बासी शासकों के संरक्षण में जब यूनान, भारत और इजिप्ट आदि की प्राचीन पांडुलिपियों का अनुवाद मुसलमानों तक पहुंचाया गया, तो वे यह जानकर अचंभित रह गये कि इस्लाम से पहले मानवजाति के पास ज्ञान व बुद्धिमत्ता की इतनी विशाल निधि थी। कहा जाता है कि जब यूनानी और लैटिन ग्रंथों का अरबी में अनुवाद होने लगा, तो इस्लाम-पूर्व काल के ज्ञान व बुद्धिमत्ता को मिथ्या और बहकाने वाला बताकर अस्वीकार करने की इस्लामी प्रवृत्ति के अनुरूप कुछ खलीफाओं ने उनकी मूल पांडुलिपियों को आग में जला देने का आदेश दिया था। ऐसा करने के पीछे उनकी मंशा यह थी कि उन पांडुलिपियों के इस्लाम-पूर्व के होने के साक्ष्य को नष्ट कर दिया जाए और आगे से उन्हें इस्लामी युग के उत्पाद

---

[397] उमरुद्दीन, पृष्ठ 42

[398] वैडी, पृष्ठ 15

के रूप में दिखाया जा सके। इसी का परिणाम है कि प्राचीन रचनाओं में उल्लिखित 'बहुत से यूनानी और लैटिन ग्रंथ अब अपनी मूल भाषा में हैं ही नहीं, उनका केवल अरबी संस्करण उपलब्ध है।'[399]

इसीलिये आरंभिक काल के मुसलमानों में इस प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, राजनीतिक व भौतिक उपलब्धियों में कोई रुचि नहीं थी, अपितु उनके मन में उनके प्रति घृणा थी। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन क्षेत्रों को मुसलमानों ने जीता, वहां स्वाभाविक रूप से ज्ञान-विज्ञान के ऐसे प्रयासों की उपेक्षा और क्षरण होने लगा। कला, कविता, संगीत, विज्ञान व वास्तुशिल्प आदि के प्रति इस्लाम की घृणा का इन क्षेत्रों पर भयानक दुष्परिणाम पड़ा। जैसा कि गिलाउमी कहते हैं, 'जहां-जहां मजहब का तगड़ा प्रभाव रहा, वहां इस्लाम की विरासत दो कौड़ी की सिद्ध हुई।'[400] अलबरूनी ने भारत में विज्ञान व ज्ञान पर इस्लाम के घातक प्रभाव की आंखों देखी स्थिति बताते हुए लिखा है कि 'हमने भारत के जिन भागों को जीत लिया है, वहां से हिंदू विज्ञान कोसों दूर भाग गया है और कश्मीर, बनारस व अन्य उन स्थानों पर जा छिपा है, जो अभी हमारी पहुंच से दूर हैं।'[401] भारत में मुस्लिम हमलावरों के योगदान पर रिजवान सलीम लिखते हैं:

> अरब और पश्चिम एशिया से आरंभिक सदियों में ऐसे दुष्ट वहशी प्रवेश करने लगे, जिनकी सभ्यता निकृष्ट थी और जिनकी संस्कृति किसी काम की नहीं थी। इस्लामी हमलावरों ने अनगिनत हिंदू मंदिरों का विध्वंस किया, अनगिनत ग्रंथों और मूर्तियों को नष्ट किया, हिंदू राजाओं के अनगिनत महलों व दुर्गों को लूटा, बहुत बड़ी संख्या में हिंदुओं की हत्याएं कीं और उनकी स्त्रियों को उठा ले गये। यह सच्चाई पढ़े-लिखे भारतीय तो जानते ही हैं, बहुत सारे अशिक्षित भारतीय भी इस सच से भली-भांति अवगत हैं। इतिहास की पुस्तकों में ये सच विस्तार से लिखा हुआ है। किंतु ऐसा लगता है कि बहुत से भारतीय यह स्वीकार करने से दूर भागते हैं कि विदेशी मुस्लिम लुटेरों ने धरती के सर्वाधिक मेधासम्पन्न व उन्नत सभ्यता, सर्वाधिक भावपूर्ण संस्कृति और सर्वाधिक ओजस्वी रचनात्मक समाज के ऐतिहासिक उद्विकास को नष्ट किया।[402]

इस्लाम समतावादी या नस्लभेदी?

इस्लामी मत का अध्ययन किये बिना या समझे बिना ही सामाजिक समतावाद व समानता का श्रेय इस्लाम को दे दिया जाता है। इस्लाम के समतावाद के संबंध में हाशमी और रीड के दावे के बारे में पहले ही बताया जा चुका है। नेहरू कहता है कि

---

399 वाकर, पृष्ठ 289

400 अर्नाल्ड टी एंड गिलाउमी ए ईड्स. (1965), द लीगैसीज ऑफ इस्लाम, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 5

401 लाल (1999), पृष्ठ 20

402 सलीम आर, व्हाट द इन्वैडर्स रियली डिड, हिंदुस्तान टाइम्स; 28 दिसम्बर 1997

इस्लाम 'लोकतंत्र और समानता का रस' लेकर आया और यही वो तत्व था, जिससे अरब के जनसमूह और पड़ोसी देश इस्लाम की ओर आकर्षित हुए थे।[403] इस्लाम के समातावादी प्रकृति के संबंध में प्रतिष्ठित इस्लामी इतिहासकार बर्नार्ड लेविस कहते हैं:[404]

> इस दावे में बहुत सच्चाई है...। इस्लामी व्यवस्था वास्तव में समानता का संदेश लाता है। इस्लाम न केवल इस प्रकार के सामाजिक भेदभाव (नस्लभेद, जाति प्रथा आदि) को अमान्य करता है, अपितु इन्हें स्पष्टता और दृढ़ता से अस्वीकार करता है। सुन्नत में संरक्षित रसूल के कार्य और बातें, इस्लाम के आरंभिक शासकों के प्रतिष्ठित दृष्टांत अपरिहार्य रूप से वंश, कुल, सामाजिक स्थिति, धन अथवा दीन व गुण के आधार पर विषेशाधिकार के विरोध में हैं।

लेविस आगे कहते हैं कि इन आधारभूत सिद्धांतों से किसी भी प्रकार का विचलन गैर-इस्लामी और वास्तव में इस्लाम-विरोधी व्यवहार माना जाता था। यद्यपि वह उतनी ही तेजी से यह भी कहते हैं कि इस्लाम के पवित्र आदेश में दासों, काफिरों और स्त्रियों की स्थिति निम्न व अपमानजनक बनाये रखने पर बल दिया गया है, किंतु तब भी इस्लाम के पूरे इतिहास में इन सब पर कभी प्रश्न नहीं उठाये गये।[405]

वैसे यह कहना मूर्खता ही होगी कि इस्लाम नस्ल, रंग अथवा राष्ट्रीयताः अरबी या गैर-अरबी, काले या गोरे का भेदभाव न करके सभी के लिये समानता लाया। कुरआन के ईश्वरीय आदेशों में ही इस्लाम एक नस्लभेदी और अरबी श्रेष्ठतावादी मजहब है। अल्लाह अरबी लोगों को विश्व में सर्वोत्तम बताकर महिमामंडित करता है। अल्लाह कहता है कि अरबी उसके द्वारा चुनी गयी नस्ल है और वह धरती के सभी लोगों पर अरबी लोगों की श्रेष्ठता व प्रभुत्व स्थापित करने में सहायता करेगा। यह कुछ वैसी ही बात हुई कि इजराइली, जो ईश्वर के सर्वाधिक प्रिय लोग हैं, किंतु उनके प्रभुत्व का विस्तार इजराइल तक ही सीमित रखना होगा। इस्लाम का अल्लाह कहता है कि हेजाज़ के अरबी विश्व के सभी राष्ट्रों (लोगों, नस्लों) में सर्वश्रेष्ठ हैं: 'तुम सभी मनुष्यों में ऐसी सर्वश्रेष्ठ जाति हो, जिसे मानव जाति की भलाई के लिये उत्पन्न किया गया है, तुम लोग हलाल करने और हराम से दूर रहने का आदेश देते हो, तथा अल्लाह में ईमान रखते हो... [कुरआन 3:110]।'

मुहम्मद का आरंभिक आत्मवृत्त लिखने वाले इब्द साद के अनुसार, रसूल ने यह कहते हुए इसी के समान दावा किया थाः

> 'अल्लाह ने धरती को दो भागों में बांटा और उनमें से जो अच्छा था, उसमें (मुझे) रखा, तत्पश्चात् उसने उस अच्छे भाग को तीन भागों में विभाजित किया, और मैं उनमें से सर्वश्रेष्ठ भाग में था, उसके बाद उसने मनुष्यों में से अरबियों को चुना, तत्पश्चात् उसने

---

[403] नेहरू (1989), पृष्ठ 145

[404] लेविस (2002), पृष्ठ 91

[405] इबिद, पृष्ठ 91-92

अरबियों में से कुरैशों को चुना, उसके बाद उसने बनू हाशिम में से अब्दुल-मुत्तालिब को चुना और तब उसने अब्दुल-मुत्तालिब के बच्चों में से मुझे चुना।'[406]

वास्तव में, अल्लाह की इच्छा थी कि इस्लाम केवल उन अरबियों का ही धर्म हो, जिनके पास पहले कोई आयत नहीं भेजी गयी थी: 'अथवा वे क्या कहते हैं, कि 'उस (मुहम्मद) ने इसे अपने मन से गढ़ लिया है?' नहीं, सत्य यह है कि यह तुम्हारे अल्लाह की ओर से आया सत्य है, जिससे कि तुम उन लोगों को चेता सको जिनके पास तुमसे पहले कोई चेताने वाला नहीं आया है: जिससे कि वे सीधे मार्ग पर आ जाएं [कुरआन 32:3]। अल्लाह ने संसार को इस्लाम के झंडे के नीचे लाने के नेतृत्व के लिये मुहम्मद के कुरैश कबीले को सर्वश्रेष्ठ नस्ल के रूप में चुना। जैसा कि रसूल की सुन्नत कहती हैः 'अल्लाह के रसूल ने कहा, 'शासन का अधिकार कुरैशों का ही होगा, और जो कोई भी कुरैशों से शत्रुता पालेगा, उसे अल्लाह नष्ट कर देगा, जब तक कि वे मजहब के कानूनों को मानने न लगें [बुखारी 4:56:704]।''

इस प्रकार इस इस्लामी अल्लाह ने स्पष्ट रूप से इस्लाम को एक अरब-श्रेष्ठतावादी मजहब होने का आदेश दिया है और यह उन महान विद्वानों द्वारा इस्लाम की समतावादी प्रकृति के बारे में किये गये दावे के सर्वथा विपरीत है। इतना ही नहीं, यह इस्लामी अल्लाह गोरा श्रेष्ठतावादी है- अर्थात यह अल्लाह ऐसा अश्वेत-विरोधी नस्लभेदी है, जो कयामत के दिन काफिरों को काला बना देगाः

1. 'कयामत के दिन तुम देखोगे कि जिन्होंने अल्लाह के विरुद्ध झूठ बोला है, उनके मुख काले हो जाएंगे...' [कुरआन 39:60]
2. उस दिन जब कुछ मुख गोरे होंगे, और कुछ मुख काले होंगेः तब जिनके मुख काले होंगे (उनसे कहा जाएगा): 'क्या तुमने ईमान लाने (अर्थात इस्लाम स्वीकार करने) के बाद उसे छोड़ दिया था अर्थात कुफ्र किया था? तो अब अपने कुफ्र का दंड चखो।' किंतु जिनके मुख गोरे होंगे, उन पर अल्लाह की दया होगी... [कुरआन 3:106-07]।'
3. जिन लोगों ने अच्छा किया, उनके लिये अच्छा ही होगा, और (उससे भी) अधिक; और कालिख या अपयश उनके मुख पर न आएगा... और जिन लोगों ने बुराइयां कमाई हैं... उन्हें अल्लाह से बचाने वाला कोई न होगा- उनके मुखों पर ऐसी कालिमा छायी होगी जैसे कि उन पर अंधेरी रात के काले पर्दे पड़े हुए हों... [कुरआन 10:26-27]।'

ऐसा नहीं है कि इस्लाम में अल्लाह द्वारा अरबी श्रेष्ठतावाद और अश्वेत-विरोधी नस्लवाद करने का आदेश यूं ही कहीं कोने में पड़ा हुआ है; इस्लाम का ये नस्लभेदी व्यवहार इस्लाम के आरंभिक समय से लेकर आज तक चलता आ रहा है। आज मध्य एशिया के अरबी लोग बांग्लादेश या अफ्रीका के मुसलमानों को अपमान व तिरस्कार से देखते हैं। यद्यपि कुरआन की अनैतिकता से अनजान बनते हुए प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान इग्नाज गोल्डजाइहर भी सोचता था कि इस्लाम अल्लाह के समक्ष सभी मुसलमानों को सुस्पष्ट समानता प्रदान करता है। इसीलिये जब गोल्डजाइहर कहता है, *'इस्लाम में सभी मनुष्यों की समानता की मुस्लिम शिक्षा लंबे*

[406] इब्न साद एएएम (1972) किताबुल-तबाक़त, अनुवाद एस. मुईनुद्दीन हक़, किताब भवन, नई दिल्ली, अंक प्रथम पृष्ठ 2

समय से मृतप्राय है और अरबियों की चेतना में यह कभी आयी ही नहीं और उनके दिन-प्रतिदिन के व्यवहार से यह लगभग लुप्त रही'[407], तो वह अरबियों द्वारा सबके लिये इस्लाम की कथित समानता के ऐतिहासिक अनादर पर अनावश्यक दुख प्रकट करता है।

जब अरबी मुसलमान अरब से बाहर निकले और विशाल भूभाग जीतकर उन पर शासन स्थापित किया, तो उन्होंने गैर-अरबी धर्मांतरित मुसलमानों को कभी समानता प्रदान नहीं की; उन भूभागों पर वे शासन करने वाले अधिपति थे और अन्य नस्लों के मुसलमान द्वितीय श्रेणी की प्रजा थी। निश्चित रूप से ऐसा अल्लाह के आदेशों के अनुपालन में ही किया गया था। अरबियों ने गैर-अरबी धर्मांतरितों को तुच्छ मानकर व्यवहार किया और उन्हें वित्तीय, सामाजिक, राजनीतिक, सैन्य और अन्य प्रकार से अपाहिज बनाया।'[408] अरबों ने गैर-अरब मुसलमानों पर रंगभेद की नीति लागू की। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इस्लाम के अनुसार,

> वे उन्हें (गैर-अरबी मुसलमान) को जंग के मैदान में पैदल ले जाते थे।[409] वे उन्हें लूट के माल से वंचित रखते थे। वे उनके साथ एक ही मार्ग पर एक ओर नहीं चलते थे और न ही उनके साथ बैठकर भोजन करते थे। लगभग सभी स्थानों पर, उनके प्रयोग के लिये पृथक शिविर और मस्जिदें बनायी जाती थीं। उनके और अरबों के मध्य वैवाहिक संबंध अपराध माना जाता था।[410]

निस्संदेह इस्लाम का जन्म हुआ ही इसलिये था कि वह अरबियों द्वारा शासित वैश्विक साम्राज्यवाद बने और उसमें वरीयता यह थी कि शासन करने वाला अरबी रसूल मुहम्मद के कबीले कुरैश से हो। इसलिये पूरे इतिहास में मुस्लिम राजवंशों का स्वभाव और आवश्यकता ऐसी बन गयी कि वे वैधता पाने के लिये अपने को अरबों के कुल और विशेष रूप से कुरैश कबीले से जोड़ें। बीसवीं सदी के मध्य में बहावलपुर (सिंध) का जो नवाब था, वह धुत्त काले रंग का था और गोरे बच्चे उत्पन्न करने के लिये उस पर गोरी स्त्रियों की धुन सवार थी। वह स्वयं को कुरैश कबीले के अब्बासी सुल्तानों के कुल का होने का दावा कट्टरता से करता था। यद्यपि इस्लाम के अद्यतन विश्वकोश ने उसके इस दावे को सिरे से झूठा बताया है।[411] दक्षिणपूर्व एशिया में सुलू सल्तनत के मंगोल दिखने वाले सुल्तानों ने सत्ता पर अपनी पकड़ को वैध बनाने के लिये अपने को रसूल का वंशज होने का दावा करते हुए अपने इस्लामी प्रमाण को आगे बढ़ाया था। ऐतिहासिक रूप से उत्तरी अफ्रीका के सुल्तानों ने अपने वंश को अरबों से जुड़ा हुआ होने का दावा किया था। सुल्तान मौलै इस्माइल (मृत्यु 1727) ने दावा किया था कि वह रसूल के परिवार का वंशज है। सफाविद राजवंश का संस्थापक शाह इस्माइल (शासन 1502-24) तुर्क था और फारसी संस्कृति को अंगीकार किये हुए था, किंतु उसने भी अपने को

---

[407] गोल्डजाइहर, पृष्ठ 98

[408] लेविस बी (1966) द अरब्स इन हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ 38

[409] एग्ज़ाम्पल्स ऑफ दीज ट्रीटमेंट्स विल बी फाउंड इन द चैप्टर ऑन स्लेवरी

[410] इब्न वराक, पृष्ठ 202

[411] नायपाल (1998), पृष्ठ 329-31

मुहम्मद के वंश का होने का दावा किया था। पूरे इतिहास में लगभग सभी स्थानों पर मुस्लिम शासकों के ऐसे दावे मिलते हैं। आज भी उत्तरी अफ्रीका के कई देशों जैसे सूडान और मोरक्को में अरबी ही शासन करते हैं।

अल्लाह निश्चित ही मनुष्यों में अश्वेतों को अच्छा नहीं मानता है। इसी कारण अश्वेतों को अरब हमलावरों के हाथों भयानक दुर्व्यवहार और क्रूरता सहनी पड़ी। अरबों ने सदियों तक अफ्रीका को दासों का शिकार करने एवं जनसंख्या बढ़ाने के लिये बच्चे उत्पन्न करने की भूमि बनाकर रखा था (देखें अध्याय 8)। अफ्रीकियों की नियति आज भी किसी न किसी रूप में वैसी ही है, जैसे कि सूडान में (अध्याय 8; भागः सूडान में दासप्रथा का पुनः शुरू होना)। इस्लाम के आरंभिक समय से ही अरब के अनेक प्रसिद्ध कवि अश्वेत थे और वे नस्लभेद व रंगभेद के कारण सह रहे अपने कष्टों को ऐसे विलाप करते हुए प्रकट करते थे कि 'मैं काला हूं, पर मेरी आत्मा धवल है' अथवा 'यदि मैं गोरा होता, तो स्त्रियां मुझसे भी प्रेम करतीं।' इस्लाम-पूर्व अरब में आज के जैसा नस्लभेद नहीं था, इस पर लेविस कहते हैं,

> इस्लामी व्यवस्था इसे प्रोत्साहित करना तो दूर, अपितु नृजातीय व सामाजिक अहंकार की प्रवृत्ति की भी निंदा करती है तथा अल्लाह के समक्ष सभी मुसलमानों की समानता की घोषणा करती है। किंतु, साहित्यों से यह स्पष्ट होता है कि इस्लामी दुनिया में सामाजिक शत्रुता व भेदभाव का बुरा स्वरूप पनप चुका था।[412]

लेविस निश्चित ही उस अरबी श्रेष्ठतावादी और अश्वेत-विरोधी नस्लभेदी व्यवस्था से अनजान हैं, जो इस्लाम के पवित्र ग्रंथ कुरआन में है; और इस बात से भी अनजान हैं (कि अरबी आज के संसार में सर्वाधिक नस्लभेदी लोग हैं), यह जो नस्लभेदी व्यवस्था आगे बढ़ी है और आज भी निरंतर है, वही व्यवस्था है जो इस्लामी अल्लाह स्पष्ट रूप से चाहता था।

इस्लाम के जन्म के समय सभी समाजों में निस्संदेह किसी न किसी प्रकार का सामाजिक भेदभाव व्याप्त था। किंतु यदि भारत जैसी उन्नत सभ्यताओं की उच्च संस्कृति व सामाजिक समतावाद से तुलना करते हुए देखें, तो अल्पविकसित अरबी समाज के विचारों, बोधों और मूल्यों को मिलाकर स्थापित इस्लाम भी सामाजिक भेदभाव दूर करने के लिये कुछ विशेष नहीं दे सका। भारत में इस्लामी शासन की विशिष्टता निरंकुश दासप्रथा (साथ में सेक्स-स्लेवरी अर्थात यौन-दास प्रथा), बड़े-बड़े हरम, भयानक सामाजिक दुर्दशा व अपमान और गैर-मुस्लिम जनता का घोर आर्थिक शोषण रही और इन सबका उन बातों से कोई मेल ही नहीं हो सकता है, जिन्हें उच्च संस्कृति और सामाजिक समतावाद समझा जाता है। अपितु इस्लामी शासन की विशिष्टताएं तो उच्च संस्कृति व सामाजिक समतावाद के सर्वथा विपरीत हैं। ब्रिटिश शासकों के विपरीत मुस्लिम शासकों ने सतीप्रथा या जाति प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करने अथवा इन्हें समाप्त करने की कोई पहल नहीं की। वास्तव में इन सामाजिक बुराइयों में बहुत कुछ तो मुस्लिम शासन में बढ़ीं (अगला अध्याय देखें)।

---

[412] लेविस (1966), पृष्ठ 36

यह जो आधारहीन दावा प्रायः, बारंबार और सुनियोजित ढंग से किया जाता है कि इस्लाम उच्च संस्कृति, मानव बंधुत्व और सामाजिक समतावाद लाया, उस पर अनवर शेख ने लिखा है:[413]

> गैर-अरबी मुसलमानों की राष्ट्रीय गरिमा और सम्मान को जितनी क्षति किसी अन्य आपदा ने पहुंचायी होगी, उससे लाख गुना अधिक क्षति इस्लाम ने पहुंचायी, किंतु फिर भी उन्हें लगता है कि यह मजहबः 1) समानता और 2) मानव प्रेम का संदेशवाहक है...। इस्लाम समानता और मानव प्रेम का संदेशवाहक है, यह दावा एक ऐसा झूठ है, जिसे अनूठी दक्षता के साथ सत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया। सच तो यह है कि रसूल मुहम्मद ने मनुष्य जाति को दो भागों में बांटा था- एक अरबी और दूसरा गैर-अरबी। इस विभाजन के अनुसार अरबी शासक हैं और गैर-अरबी अरब सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के जुए से हांके जाने वाले शासित हैं... मानव जाति को प्रेम करने का इस्लामी जुमला एक मिथक अर्थात झूठ का पुलिंदा है। इस्लामी अस्तित्व की धुरी ही गैर-मुसलमानों से घृणा करना है। इस्लाम न केवल सभी असंतुष्टों को जहन्नुम का वासी बताता है, अपितु यह मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच स्थायी तनाव को उकसाता भी है।...

इस्लाम द्वारा समतावादी बौद्ध धर्म का विनाश

इस्लामी विस्तार के समय मध्य व दक्षिणपूर्व एशिया में सर्वाधिक शांतिप्रिय, अहिंसक व समतावादी प्राचीन धर्म-प्रणाली बौद्ध धर्म फलफूल रहा था। भारत के कुछ भागों (बंगाल, सिंध आदि) में बौद्ध धर्म की सशक्त उपस्थिति थी। इस्लाम जहां भी गया, वहां बौद्ध धर्म पर पूर्ण विनाश ले आया; अलबरूनी के उपरोक्त उद्धरण में यह पहले ही बताया गया है। बख्तियार खिलजी द्वारा 1903 में बिहार में बौद्धों का बर्बर विनाश किये जाने पर इब्न असीर ने लिखा है,[414] 'शत्रु को खतरे से अनजान पाकर मुहम्मद बख्तियार पूरे उत्साह और दुस्साहस के साथ तीव्रता से दुर्ग के द्वार तक पहुंचा और महल पर नियंत्रण कर लिया। विजेताओं के हाथ लूट का बहुत बड़ा माल लगा। उस महल में रहने वाले अधिकांश व्यक्ति सिर मुंडाये हुए ब्राह्मण (वास्तव में बौद्ध भिक्षु) थे। उन सब की हत्या कर दी गयी।' इब्न असीर आगे लिखते हैं, जब वह प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय पहुंचा, तो वहां उसे बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें मिलीं। वहां इस सीमा तक नरसंहार हुआ था कि जब बख्तियार खिलजी की फौज ने उन पुस्तकों की विषय-वस्तु के बारे में जानना चाहा, तो कोई बताने वाला न था, क्योंकि सभी व्यक्तियों की हत्या की जा चुकी थी।'[415] वस्तुतः नालंदा विश्वविद्यालय में नौ तल वाला एक विशाल पुस्तकालय था। जब इसकी पुष्टि हो गयी कि उसके भीतर कुरआन की कोई प्रति नहीं है, तो बख्तियार खिलजी ने उस पुस्तकालय को जला कर राख कर डाला।

---

[413] शेख ए (1995) इस्लामः द अरब नेशनल मूवमेंट, द प्रिंसिपैलिटी पब्लिशर्स, कार्डिफ, प्रीफेस

[414] इन द अटैक ऑफ बिहार, बख्तियार खिलजी हैड टू ब्रेव ब्रदर्स, निजामुद्दीन एंड शम्सुद्दीन, इन हिज आर्मी। ऑथर इब्न असीर हैड मेट शम्सुद्दीन ऐट लखनौती इन 1243

[415] इलियट एंड डाउसन, अंक द्वितीय, पृष्ठ 306

हिंदू से बौद्ध धर्म में धर्मांतरित और भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पी डॉ बीआर अम्बेडकर ने भारत में बौद्ध धर्म पर इस्लामी हमलों के प्रभाव पर लिखा है, 'भारत में बौद्ध धर्म का विनाश निस्संदेह मुसलमानों के हमले के कारण हुआ।' भारत में इस्लाम के मूर्ति-विध्वंसक मिशन का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा हैः

> 'इस्लाम का उदय 'बट' के शत्रु के रूप में हुआ। किंतु जैसा कि सभी जानते हैं कि 'बट' एक अरबी शब्द है और इसका अर्थ मूर्ति होता है। इस प्रकार इस शब्द का मूल यह इंगित करता है कि मुसलमानों के मस्तिष्क में जब मूर्ति-पूजा का प्रतीक आया, तो उन्होंने इसकी पहचान बुद्ध धर्म के साथ जोड़कर की। मुसलमानों के लिये मूर्तिपूजा एक थी और एक ही जैसी थी। इसलिये मूर्तियों के विध्वंस का मिशन बुद्ध धर्म को नष्ट करने का मिशन बन गया। इस्लाम ने न केवल भारत में बुद्ध धर्म को नष्ट किया, अपितु जहां-जहां गये, वहां-वहां नष्ट किया। इस्लाम के जन्म से पूर्व बौद्ध धर्म बैक्ट्रिया, पर्सिया, अफगानिस्तान, गंधार और चीनी तुर्किंतान का धर्म था और इस प्रकार यह पूरे एशिया का धर्म था।... '

अम्बेडकर हमें बताते हैं कि इस्लाम ने न केवल बौद्ध धर्म पर प्रहार किया, अपितु इसके ज्ञान के केंद्रों को भी नष्ट किया। जैसा कि वो लिखते हैंः 'मुसलमान हमलावरों ने जिन बौद्ध विश्वविद्यालयों को नष्ट किया, उनमें कुछ नाम नालंदा, विक्रमशिला, जगद्दला, उदंतपुरी विश्वविद्यालय हैं। इस बारे में मुस्लिम इतिहासकारों ने ही लिखा है कि किस प्रकार इस्लामी हमलावरों के तलवार से बौद्ध पुरोहितों को मिटाया गया।' भारत में बौद्ध धर्म पर इस्लाम के घातक प्रहार का वर्णन करते हुए अम्बेडकर ने लिखा है: 'इस्लामी हमलावरों द्वारा बौद्ध पुरोहितों का ऐसा नरसंहार किया गया था। धर्म की जड़ों पर प्रहार किये गये थे। क्योंकि इस्लामी हमलावरों ने बौद्ध पुरोहितों की हत्या करके बौद्ध धर्म की हत्या कर दी। यह भारत में बुद्ध धर्म पर सबसे बड़ी आपदा थी।।'[416]

इसके अतिरिक्त निम्न जाति के लोगों के साथ व्यवहार करने में मुस्लिम शासक उतने ही बड़े जातिवादी थे, जितने कि उच्च वर्ग के हिंदू थे। जब मुस्लिम शासकों ने अपनी फौज व अन्य सेवाओं में कुछ हिंदुओं को रखना प्रारंभ किया, तो वे सदा उच्च-जाति के राजपूतों और ब्राह्मणों को ही अवसर देते थे। जबकि प्रताड़ित निम्न-जाति के हिंदुओं और सिखों ने मुस्लिम शासकों का प्रतिरोध किया था। विशेष रूप से मुगल शासन में ऐसा अधिक हुआ। यह पहले से ज्ञात है कि औरंगजेब ने 1690 में सिनासनी में निम्न-जाति के जाटों को कुचलने के लिये जो फौज भेजी थी, उसमें मुख्यतः राजपूत थे। इसमें 1500 जाट मारे गये थे।

हाशमी दावा करता है कि इस्लाम अमीर खुसरो, निजामुद्दीन औलिया और मुईनुद्दीन चिश्ती जैसे प्रमुख सूफियों को भारत लाया। यदि मुस्लिम शासक अरस्तू, ईसाक न्यूटन अथवा अल्बर्ट आइंस्टीन जैसे युग प्रवर्तक चिंतकों व मेधाओं को लाये होते, तो उन्हें कुछ मूल्यवान लाने का श्रेय दिया जा सकता था, किंतु नरसंहार, हत्या व जिहाद को प्रोत्साहित करने वाले इन उन्मादियों को लाना मूल्यवान कैसे माना जाए। यद्यपि यह पहले ही बताया जा चुका है कि वह कथित महान उदारवादी सूफी शायर अमीर खुसरो इस्लामी लुटेरों द्वारा हिंदुओं के नरसंहार और हिंदू मंदिरों का विध्वंस पर परपीड़क आनंद का अनुभव करता था। अन्य महान सूफी फकीर जैसे औलिया, मुईनुद्दीन चिश्ती और शाह जलाल आदि जिहाद करने और हिंदुओं का नरसंहार करने भारत आये थे। औलिया

[416] अम्बेडकर बी आर (1990) राइटिंग्स एंड स्पीसेजः पाकिस्तान ऑर द पार्टिशन ऑफ इंडिया, गर्वमेंट ऑफ महाराष्ट्र, अंक तृतीय, पृष्ठ 229-38

भारत में व्यापक लूटपाट, नरसंहार और दास बनाने के अभियानों की सफलता पर आनंदित होता था और प्रसन्नतापूर्वक लूट के माल में से उपहार स्वीकार करता था। कश्मीर और गुजरात में आये अन्य महान सूफी फकीरों ने न केवल भारतीय लोगों पर आतंक और विनाश लाने के लिये उकसाते थे, अपितु वे इन कुकृत्यों में भाग लेते थे।

इस विमर्श से सिद्ध होता है कि मुहम्मद की मृत्यु के बाद अरबों ने अल्प समय में जिस भारत और अन्य महान सभ्यताओं व राष्ट्रों को जीता था, उन्हें देने के लिये उनके पास कुछ नहीं था। इस्लामी हमलों का तात्कालिक प्रभाव यह पड़ा कि इन महान सभ्यताओं की कला, संस्कृति, साहित्य, वास्तुशिल्प, विज्ञान और ज्ञान का क्षरण होने लगा। भारत से इजिप्ट तक फैले इन महान सभ्यताओं के अनेक ज्ञान-केंद्रों के भग्नावशेष इसका स्पष्ट साक्ष्य देते हैं। फारसियों, इजिप्ट के लोगों और सीरिया के लोगों में अपनी इस्लाम-पूर्व संस्कृति व सभ्यता के विरासतों के प्रति प्रेम वापस लौटने के कारण इन क्षेत्रों में बौद्धिक व भौतिक विकास का प्रयत्न पुनः पनपा। यहां तक कि जो नेहरू सामान्यतः भारत में मुस्लिम शासन का उज्जवल चित्रण करता रहा, वह भी कुछ भी ऐसा सकारात्मक नहीं देख सका, जो इस्लाम भारत को दे सका हो। उसने लिखा हैः

> भारत में बाहर से जो मुसलमान आये, वो न तो कोई नई तकनीक लाये और न ही कोई राजनीतिक या आर्थिक प्रणाली। इस्लामी बंधुत्व में मजहबी आस्था के बाद भी अपने दृष्टिकोण में वे वर्ग में सिमटे हुए और सामंतवादी थे। तकनीकों और उत्पादन पद्धतियां व औद्योगिक संगठन में वे भारत में प्रचलित व्यवस्थाओं व प्रणालियों के सामने तुच्छ थे। इसलिये भारत के आर्थिक जीवन और सामाजिक संरचना पर उनका प्रभाव अत्यंत न्यून रहा।[417]

मुस्लिम दुनिया बौद्धिक और भौतिक रूप से उन्नत हुई कैसे?

इस्लामी हमलावरों के बर्बर व मूर्ति-विध्वंसक हमलों के आरंभिक ज्वार के बाद उन गंवार बद्दू अरबियों के सामने विश्व की उन्नत सभ्यताओं को संभालने का असंभव कार्य आया। उन्नत संगठित राज्यों का प्रशासन चलाने के लिये जिस ज्ञान, दक्षता और अनुशासन की आवश्यकता थी, वो सब उन अरबों में न के बराबर था। इसलिये जब वे अपने जीते हुए क्षेत्रों में आये, तो उन्हें अपने मजहब को लेकर बहुत से समझौते करने पड़े और इस्लाम के पूर्व के मानव पुरुषार्थों को ग्रहण करना पड़ा। उन्हें अपनी जीती हुई भूमि पर उन्नत गैर-मुस्लिम प्रणाली अपनानी पड़ी और सामाजिक, राजनीतिक, वित्तीय, व्यापारिक और शैक्षणिक प्रशासन में स्थानीय लोगों के कौशल का आश्रय लेना पड़ा। अरबों ने प्रशासन संबंधी कार्यों के संचालन का काम प्रायः-अधर्मांतरित लोगों पर छोड़ दिया और स्वयं जीत के अभियान में लगे रहे।

सामान्यतः मुस्लिम शासकों को यहूदी लोग वित्त में प्रवीण मिले, तो यूनानी लोग भवन निर्माण कला में दक्ष मिले, जबकि ईसाई लोग विधि, चिकित्सा, शिक्षा और प्रशासन में कुशल मिले। उन्हें इन काफिरों में से कुछ को उनके संबंधित व्यवसाय में नौकरी देना सुविधाजनक और विवेकपूर्ण लगा। इसीलिये इस्लाम की आरंभिक सदियों में जिस भी योगदान को मुसलमान इस्लामी मानते हैं, वो सब उन तिरस्कृत गैर-अरबी काफिरों के मस्तिष्क, भूमि और परिश्रम की देन है, न कि मुसलमानों की उपलब्धि है।

---

[417] नेहरू (1946), पृष्ठ 265

अ-मुस्लिमों (गैरमुस्लिमों) पर मुस्लिम शासकों की निर्भरता का स्तर इस तथ्य से समझा जा सकता है कि इस्लाम के जन्म के लगभग ढाई सदी बाद 856 में जब खलीफा मुतावक्किल अपने पुस्तकालय का विस्तार करने लगा, तो उसे एक भी शिक्षित मुस्लिम विद्वान नहीं मिला, जो इस काम का नेतृत्व कर सके। यहूदियों और ईसाइयों से वह घृणा करता था और उनका उत्पीड़न कर रहा था, किंतु उसे यह काम एक ईसाई विद्वान होनैन इब्न इसाक को सौंपना पड़ा।

आरंभ में आघात सहने के बाद गीत, संगीत, कला, साहित्य, वास्तुशिल्प और विज्ञान इस्लामी दुनिया में फले-फूले, किंतु इन सबमें योगदान देने की तो बात ही छोड़िए, रेगिस्तान के अरबों में तो ये सब गुण धेलाभर भी नहीं थे। अरबों ने जिन उन्नत गैर-अरब देशों और सभ्यताओं को पराजित किया था, वहीं की स्थानीय व जीवंत इस्लाम-पूर्व विरासत में से ही ये कलाएं विकसित हुईं। इन मानव-हितैषी कला, साहित्य, तकनीक व विज्ञान आदि की उपलब्धियां तब मिलीं, जब इस्लामी शिक्षाओं की अनदेखी की गयी, क्योंकि ये सारी उपलब्धियां इस्लाम के जन्म से पहले की उस विरासत की थीं, जिसे इस्लाम द्वारा खारिज कर दिया गया था। जैसा कि पहले बताया गया है कि इनमें से कई अच्छी बातों व गुणों की निंदा अल्लाह और रसूल मुहम्मद द्वारा प्रत्यक्ष रूप से की गयी थी। इस्लाम का जन्म इन अच्छी बातों, गुणों या उपलब्धियों को पोषण करने के लिये नहीं, अपितु इन्हें नष्ट करने के लिये हुआ था। रसूल मुहम्मद और उसके बाद के मुस्लिम शासकों ने विध्वंस के इस लक्ष्य को प्राप्त करने लिये गैर-इस्लामी सभ्यताओं पर के एक के बाद एक भयानक हमले करना चालू कर दिया। इस्लामी विजयों के आरंभिक चरण में इन गैर-इस्लामी उपलब्धियों को मिटाने में उल्लेखनीय सफलता भी मिली, किंतु अंततः वे अपने लक्ष्य को पहचान में पूर्णतः विफल हो गये, क्योंकि हजारों वर्ष प्राचीन इन गहरी रची-बसी संस्कृतियों व सभ्यताओं का उत्थान होने लगा। जिन कार्यों को रसूल ने आगे बढ़ाया था, उनकी राजनीतिक और वैचारिक परिस्थितियां नाटकीय रूप से तब परिवर्तित हो गयीं, जब इस्लामी सत्ता पर ईश्वरहीन उमय्यद वंश का आरोहण (661) हुआ।

यद्यपि यह इस पुस्तक के विषयों में नहीं है, किंतु संक्षिप्त रूप से यह बताना महत्वपूर्ण है कि उमय्यद वंश के शासकों में से अधिकांश के मन में रसूल मुहम्मद के प्रति घोर घृणा भरी हुई थी। मुहम्मद और उमय्यद वंश के प्रथम खलीफा मुआविया के पिता अबू सुफ्यान के मध्य निरंतर चली रक्तरंजित शत्रुता के कारण यह घृणा थी। मुआविया स्वयं इस्लाम के कट्टर विरोधी थे। जब मुहम्मद ने 630 में मक्का जीता, तो अबू सुफ्यान को इस्लाम स्वीकार करने को विवश होना पड़ा। उस दिन बड़ी संख्या में मक्कावासियों ने इस्लाम स्वीकार किया, किंतु मुआविया मुसलमान नहीं बने। अगले वर्ष जब अल्लाह ने आयत 9:1-5 भेजकर आदेश दिया कि मूर्तिपूजकों को मृत्युतुल्य कष्ट दो, जिससे कि वे इस्लाम स्वीकार करने के लिये बाध्य हो जाएं, तो सभी मक्कावासियों को इस्लाम स्वीकार करने पर विवश होना पड़ा, पर मुआविया तब भी मुसलमान नहीं बने और यमन भाग गये। किंतु जब मुसलमानों ने यमन और पूरे अरब पर कब्जा कर लिया, तो मुआविया को मन मार के इस्लाम स्वीकार करना पड़ा।

इसीलिये मुआविया और अधिकांश उमय्यद शासकों में इस्लाम और कुरआन के प्रति न के बराबर सम्मान था। 657 ईसवी में खलीफा अली के विरुद्ध सिफ्फिन के युद्ध में मुआविया ने पवित्र कुरआन के प्रति मुसलमानों के सम्मान को जानते हुए भी

अपने सैनिकों को कुरआन के पृष्ठों को अपन बरछों की नोंक पर रखने का आदेश दिया।[418] यह देखकर अली के फौजी दल ने जंग लड़ने से मना कर दिया और तकनीकी रूप से युद्ध हार गये। खलीफा बनने के बाद उमय्यद वंश के शासक अली के परिवार के कई सदस्यों की मृत्यु के उत्तरदायी थे। मुआविया के बेटे यज़ीद प्रथम के शासन काल में कर्बला की जंग (680) में अली के बेटे और मुहम्मद के नाती हुसैन की क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी गयी। हुसैन ने यज़ीद की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और कर्बला में जब उसका सामना यज़ीद की सेना से हुआ, तो बद्र की घटना का प्रतिशोध लेने के लिये यज़ीद की सेना ने पीने के पानी के स्रोतों से हुसैन की फौज का संपर्क काट दिया था। क्योंकि बद्र की घटना में मुहम्मद ने ठीक इसी प्रकार अबू सुफ्यान की सेना का जलस्रोतों से संपर्क काट दिया था। मारे गये पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के कटे हुए सिर को बसरा लाया गया, जबकि हुसैन का सिर दमाकस में खलीफा यज़ीद के पास भेज दिया गया और वहां हुसैन का सिर चौराहे पर लटका दिया गया। हुसैन के क्षत-विक्षत सिर के साथ हुए व्यवहार के बारे में सही बुखारी [5:91] में अंकित है कि 'अल-हुसैन का सिर उबैदुल्ला बिन ज़ियाद के पास लाया गया और एक ट्रे में रखा गया; और इसके बाद इब्न ज़ियाद एक छड़ी से अल-हुसैन के सिर में मुंह और नाक को खोदने लगे तथा उसके आकर्षक डील-डौल के विषय में कुछ कहने लगे।'

खलीफा अल-वलीद द्वितीय (मृत्यु 743) ने कुरआन [14:9] में अल्लाह द्वारा किये गये उस वादे का उपहास उड़ाया, जिसमें अल्लाह ने कहा है कि जैसे उसने नूह, आद और समूद के लोगों को नष्ट कर दिया था, वैसा ही इस्लाम से विद्रोह करने वाले सभी लोगों के साथ करेगा, और उन्होंने कुरआन के पृष्ठों को फाड़ दिया, बरछे पर रखकर उन पृष्ठों के टुकड़े-टुकड़े किये और तीर से उड़ा दिया। वलीद ने चुनौती दी: 'क्या तुम सभी विरोधियों को झिड़कोगे? आंख फाड़ कर देख लो, मैं हूं वो हठी विरोधी! जब कयामत के दिन अपने अल्लाह के सामने जाना, तो उससे बता देना कि वलीद ने तेरे अल्लाह को ऐसे फाड़ दिया था।'[419] वलीद द्वितीय अत्यंत सभ्य व्यक्ति थे और कवियों, नर्तकियों और संगीतकारों से घिरे हुए रहते थे और भोग-विलास व आनंद का जीवन जीते थे। मजहब में वलीद की कोई रुचि नहीं थी।[420]

यदि अपेक्षाकृत रुढ़िवादी समय (660-750) के छोटे से कालखंड को छोड़ दें, तो उमय्यद वंश के 90 वर्ष के शासन में अधिकांश समय उमय्यद शासकों ने इस्लाम को क्षति पहुंचाने वाले सारे कार्य किये। उमय्यद शासकों ने पूरे मन से इस्लामी पंथ की मात्र एक ही बात स्वीकार की और वह थी विजय के लिये इसके जंग का सिद्धांत। जिन मुआविया के नेतृत्व में इस्लामी दुनिया ने सबसे अधिक विस्तार करने की उपलब्धि प्राप्त की, वह एक उस्ताद अरब साम्राज्यवादी थे।

यद्यपि उमय्यद शासकों ने अपनी विजयों के लिये जिहाद के सिद्धांत का उपयोग किया, किंतु उन्होंने कभी मुहम्मद के मजहब का प्रसार करने में रुचि नहीं दिखायी; जैसा कि ऊपर बताया गया है कि वे पराजित लोगों धर्मांतरण का विरोध करते थे।

---

[418] सम सोर्सेज क्लेम एक कॉपी ऑफ कुरआन वाज रेज्ड ऐज एक साइन ऑफ कालिंग टू रिसाल्व द डिस्प्यूट थ्रू मीडिएशन

[419] वाकर पृष्ठ 237; इब्न वराक, पृष्ठ 243

[420] इब्न वराक, पृष्ठ 243

मुहम्मद के उलट अबू सुफ्यान एक शालीन व्यक्ति थे और मक्का के नेता थे। अबू सुफ्यान का परिवार उस नगर में सर्वाधिक षिक्षित था। अबू सुफ्यान के वंशज उमय्यद राजवंश का शासन जब आया, तो कला व वास्तुशिल्प, संगीत व कविता, ज्ञान व विज्ञान के बिखरे हुए रचनात्मक कार्यों का धीरे-धीरे पुनः उत्थान होने लगा। बाद में फारसी रंग में रंग गये अब्बासी शासक आगे बढ़े और इन रचनात्मक पहलों का विस्तार किया, जिससे मध्यकालीन मुस्लिम दुनिया में स्वर्णयुग आया।

यह निर्विवाद है कि नौवीं से बारहवीं सदी के मध्य मुस्लिम दुनिया शेष संसार की तुलना में विशिष्ट बनी। इसका कारण यह था कि मुसलमानों ने विश्व की महानतम सभ्यताओं भारत, फारस, इजिप्ट और लीवैंट को तहस-नहस कर डाला था और उनकी धन-संपत्ति, प्रतिभा व संचित बौद्धिक निधि पर कब्जा कर लिया था। अलेक्जेंडर की विजय के पदचिह्नों पर चलते हुए हेलेनिक सभ्यता यूनान से आगे बढ़कर अलेक्जेंड्रिया और लीवैंट तक आ गयी थी। इस प्रकार शास्त्रीय यूनान की बौद्धिक निधि भी इस्लामी दुनिया में जुड़ी। चूंकि वैंडल्स, गोथ और वाइकिंग्स आदि तथाकथित बर्बरों द्वारा घायल एवं प्रगति विरोधी ईसाई प्रभाव वाला यूरोप अंधकार में डूब चुका था। इन परिस्थितियों में और कौन सभ्यता आगे रह सकती थी? उन्मादी मुसलमानों द्वारा आरंभिक विनाश के बाद जिन इस्लाम-पूर्व महान सभ्यताओं को इस्लाम लील गया था, वो स्वयं ही विशाल इस्लामी दुनिया में उठ खड़ी हुईं। मुस्लिम दुनिया में जिन लोगों ने बौद्धिक व भौतिक विकास किया एवं सृजन का पुनरुत्थान व पोषण किया, वो लोग अरबी नहीं थे, अपितु वे भारतीय, फारसी, यूनानी और लैवेंटाइन के लोग थे और उनमें से अधिकांश गैर-मुस्लिम थे। इस्लामी दुनिया की विशिष्टता के पीछे का प्रमुख कारण विदेशी पांडुलिपियों का वो अनुवाद था, जो इस्लाम के जन्म से पूर्व फारस में पहले से ही हो रहा था।

मुस्लिम काल में ईश्वरहीन उमय्यद शासकों और फारसी रंग में रंग गये अब्बासी शासकों द्वारा विदेशी अर्थात गैर-इस्लामी पांडुलिपियों के अनुवाद कार्य को संरक्षण दिया गया और अनुवाद का पूरा कार्य गैर-मुस्लिम विद्वानों, अधिकांशतः ईसाइयों द्वारा किया गया। इनमें से एक भी अनुवादक मुसलमान नहीं था। चूंकि इस्लामी मजहब में बौद्धिक व रचनात्मक कार्य निषिद्ध अर्थात हराम घोषित किये गये हैं, इसलिये मध्यकालीन मुस्लिम दुनिया की उत्कृष्टता का तनिक भी श्रेय इस्लाम को नहीं जाना चाहिए। इसका श्रेय इस्लाम के पहले की उन महान सभ्यताओं को जाना चाहिए, जिन पर इस्लाम ने हिंसक रूप से कब्जा कर लिया था और भकोस गया था।

उपनिवेशों को घर कहना

यह सच है कि मुसलमान जहां भी हमलावर बनकर गये, उस स्थान को अपना घर बनाने का प्रयास किया, जबकि यूरोपीय उपनिवेशवादी अधिकांशतः ऐसा नहीं करते थे। किंतु ऐसी अपेक्षा मुसलमान से ही हो सकती थी, क्योंकि अल्लाह का आदेश है कि सारे संसार को जीतो और उसे पूर्णतः इस्लामी बनाओ। अल्लाह ने मुसलमानों को धरती का उत्तराधिकारी बनाया है। इसलिये मुसलमानों का अनिवार्य कर्तव्य है कि वे गैर-मुस्लिमों से संसार का स्वामित्व छीन लें। यूरोपीय उपनिवेशवादियों के विपरीत, मुसलमानों ने जिस भी विदेशी भूमि को जीता, उसके मालिक बन बैठे (इस्लामी कानूनों की सभी विचारधाराएं इसकी पुष्टि करती हैं) और उन्होंने उस भूमि को पूर्व के स्वामी को नहीं लौटाया। मुसलमान हमलावरों को दूसरे का भूभाग जीतना इतना प्रिय था कि उन्होंने अधिकांशतः वहां की स्थानीय संस्कृति, परंपरा और लोगों को पूर्णतः नष्ट कर दिया। मुसलमान इस काम को गर्व का

विषय मानते हैं, जैसा कि हाशमी डींगे हांकते हुए कहता है, 'ब्रिटिश आक्रांताओं के विपरीत, मुस्लिम शासकों ने भारत को अपना घर माना।' मुस्लिम हमलावरों के इस लक्षण की प्रशंसा करते हुए नेहरू भी लिखता है: 'उनके राजवंश भारतीय राजवंश हो गये और आपस में शादियों से बड़ा नस्लीय आदान-प्रदान हुआ...। उन्होंने भारत को अपने गृह देश के रूप में देखा और दूसरी किसी भूमि से नाता नहीं जोड़ा।' दूसरी ओर नेहरू कहता है, भारत में ब्रिटिश बाहरी, विदेशी व अनुपयुक्त बने रहे...।'[421]

अफ्रीका में बसने वाले बहुत से यूरोपीय, अमेरिकी और आस्ट्रेलियाई लोगों ने भी अपने पूर्व के उपनिवेशों को अपना घर बना लिया है। मुसलमान अपनी जीती हुई भूमि पर बस जाने को गर्व का विषय मानते हैं और इसके लिये उनकी प्रशंसा भी होती है। किंतु अपने पूर्व के उपनिवेशों में बस गये यूरोपियों को इसी बात के लिये भिन्न प्रतिक्रिया मिलती है; प्रशंसा मिलने को कौन कहे, उन्हें इसके लिये संदेह, अवमानना और यहां तक कि हिंसा का सामना करना पड़ता है। जीते गये देशों में जहां मुसलमान बहुसंख्यक हो गये हैं, घोर निर्धनता में जी रहे हैं और आधुनिक सभ्यता में उनका योगदान न के बराबर है। ये मुसलमान अधिकांशतः उन्माद, हिंसा, आतंकवाद, मानव अधिकार उल्लंघन आदि क्षेत्रों में ही आगे रहते हैं। जहां मुसलमान अल्पसंख्यक होते हैं, जैसे कि भारत, थाईलैंड, सिंगापुर, चीन, पूर्वी यूरोप, रूस व अन्य देश, वहां वे अन्य धर्मों के नागरिकों की तुलना में अपेक्षाकृत पिछड़े और निर्धन होते हैं। अधिकांश प्रकरणों में वे इन गैर-मुस्लिम बहुल राष्ट्रों के लिये स्थायी बोझ बन गये हैं। उदाहरण के लिये, भारत में मुस्लिम शासकों ने सदियों तक देश के विभिन्न भागों में स्थानीय गैर-मुस्लिम जनता पर असहनीय क्रूरता की और उनकी सामाजिक दुर्दशा करने के साथ भयानक आर्थिक शोषण किया। किंतु 1947 में ब्रिटिशों के जाने के बाद जब बहुसंख्यक हिंदुओं ने देश की कमान अपने हाथ ली, तो मुसलमान इस नये ज्ञान-आधारित व तकनीक-प्रेरित अर्थव्यवस्था में निरंतर पिछड़ते गये। भारत सरकार देश के करदाताओं की कमाई को मुसलमानों के लिये विशेष आर्थिक सहायता में लगा रही है। चूंकि मुसलमान खुली प्रतियोगिता में सफल नहीं होता है, इसलिये केरल में सरकारी नौकरियों का कुछ प्रतिशत मुसलमानों के लिये आरक्षित कर दिया गया है। आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु भी इसी ओर बढ़ने की प्रक्रिया में हैं और संभवतः एक दिन यह पूरे भारत में फैलेगा।

सदियों के मुस्लिम शासन के समय इन करदाताओं, जो कि मुख्यतः हिंदू थे, का भयानक शोषण हुआ था, उन्हें सताया गया था, आतंकित किया गया था और उनकी दुर्दशा की गयी थी। कुछ टिप्पणीकारों ने ठीक ही कहा है कि ब्रिटिश सरकार ने भले ही जजिया कर को समाप्त कर दिया था, किंतु स्वतंत्र भारत की सरकारों द्वारा मुसलमानों को दिये जा रहे ये आर्थिक लाभ उसी भेदभावपूर्ण जज़िया को पुनः लागू करने जैसा है, जिसे मुसलमानों ने गैर-मुसलमानों पर लगाया था। यद्यपि ब्रिटिश शासन के पूर्व लगने वाले जज़िया कर और स्वतंत्रता के बाद लगने वाले जज़िया में एक ध्यान देने योग्य अंतर है। वह अंतर यह है कि ब्रिटिश शासन के पूर्व इस्लामी शासन में मुसलमान हिंदुओं व अन्य गैर-मुसलमानों से बलपूर्वक जज़िया उगाहते थे। किंतु स्वतंत्र भारत की नई नीति में यह है कि अब शासन करने वाले हिंदू (प्रमुख करदाता) मुसलमानों से जजिया उगाहने की अपेक्षा स्वेच्छा से स्वयं ही जजिया दे रहे हैं। दोनों ही स्थितियों में वो हिंदू ही हैं, जिन्हें जज़िया देना पड़ रहा है, जबकि मुसलमान इसका लाभ उठा रहे हैं। ये

---

[421] नेहरू (1946), पृष्ठ 233-34

वही हिंदू हैं, जिन्हें भारत में इस्लामी कानून के अनुसार ज़िम्मी (अर्थात निम्न, तुच्छ व गंदे नागरिक) की श्रेणी में रखा गया था। हिंदू करदाताओं के धन को मुसलमानों को देने की यह नीति मजहबी इस्लामी कानून के अनुसार सही है।

वहीं दूसरी ओर अपने पूर्व के उपनिवेशों को घर समझकर बस गये यूरोपीय लोग अति उत्पादक और देश के विकास में योगदान देने वाले नागरिक हैं। उदाहरण के लिये जिंबावे में जो यूरोपीय बसे हैं, उनकी संख्या भले ही कम है, पर तब भी अभी कुछ समय पूर्व अपने फार्मों से निकाले जाने से पूर्व तक वे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ थे। ऐसे मूल्यवान नागरिक होने के बाद भी उन्हें स्थानीय लोगों की घृणा और अवमानना सहनी पड़ी तथा सरकार ने भी उनका उत्पीड़न किया। जिंबावे में बस गये गोरों पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद का बुरा चिह्न होने का आरोप लगाया जाता है। 1980 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद जिंबावे सरकार ने औपनिवेशिक शोषण के इस अवशेष को मिटाने के नाम पर गोरे भू-स्वामियों की भूमि को अपने अधिकार में लेकर अश्वेत किसानों को देने के लिये भूमि सुधार कार्यक्रम प्रारंभ किया। 2000 में राबर्ट मुगाबे सरकार ने अश्वेतों को खुली छूट दे दी कि यदि आवश्यकता पड़े, तो वे गोरों के स्वामित्व वाली भूमि पर अधिकार करने के लिये बलप्रयोग करें। इसका परिणाम भीड़ की हिंसा के रूप में सामने आया और कृषि भूमि के बहुत से गोरे स्वामी मारे गये।[422] इस हिंसक भूमि-हड़पो अभियान में गोरों के स्वामित्व वाली लगभग 110,000 वर्ग किलोमीटर कृषि भूमि छीन ली गयी।[423]

श्वेत-विरोधी अभियान के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में गोरे कृषकों ने जिंबावे छोड़ दिया। उन गोरे कृषकों से जब्त की गयी भूमि के अधिकांश भाग पर अब ऐसे अश्वेतों का अधिकार है, जिनमें आधुनिक कृषि के ज्ञान व कौशल का अभाव है। परिणाम यह है कि इतने बड़े परिमाण में भूमि परती पड़ी हुई है। अश्वेत लोगों में पूंजी निवेश का अभाव और कठिन परिश्रम के प्रति अनिच्छा भी कृषि के नष्ट होने का कारण है। जिस जिंबावे की कृषि भूमि कभी उत्पादकता में समृद्ध हुआ करती थी, वह अब अनुत्पादक पड़ी है। इससे वहां गंभीर आर्थिक संकट उत्पन्न हो रहा है और देश इतिहास के सबसे भयानक अकाल की ओर बढ़ रहा है। जिंवाबे की एक करोड़ 16 लाख की जनसंख्या का दो तिहाई भाग गंभीर खाद्य संकट का सामना कर रहा था। (2007)

1980 में जब ब्रिटिश शासन ने जिंबावे छोड़ा, तो यह देश उस महाद्वीप का सबसे समृद्ध राष्ट्र था और इसे दक्षिणी अफ्रीका के गेहूं की टोकरी के रूप में जाना जाता था। अब जिंबावे अपनी जनता को भोजन उपलब्ध कराने के लिये संघर्ष कर रहा है। जिंवाबे की 45 प्रतिशत जनता कुपोषित मानी जाती है; अकाल पड़ने का खतरा निरंतर बढ़ता जा रहा है। जब अचानक गोरे किसानों को अपमानित करके और हिंसा के द्वारा भगाये जाने का अहंकारी कुकृत्य किया जा रहा था, तो राबर्ट मुगाबे के समर्थक मारे प्रसन्नता के सड़कों पर नृत्य कर रहे थे। किंतु इस अविवेकपूर्ण निर्णय ने जिंवाबे के आर्थिक जीवन को विनाशकारी और अपूरणीय क्षति पहुंचायी है। जिंवाबे में मुद्रास्फीति प्रति वर्ष 100,000 चल रही है।[424]

---

[422] व्हाइट फार्मर्स हेल्ड इन जिंबावे, बीबीसी न्यूज, 7 अगस्त 2001

[423] विकीपीडिया, लैंड रिफार्म इन जिंवाबे, http://en.wikipedia.org/wiki/Land_reform_in_Zimbabwe

[424] एंगस शा, जिंबावे इंफ्लेशन पासेज 100,000 परसेंट, आफिसियल्स से, गार्जियन, 22 फरवरी 2008

अनेक पूर्व उपनिवेशों, जहां यूरोपीय बड़ी संख्या में बस गये हैं, में उपनिवेश-विरोधी स्वर उठते रहते हैं। राबर्ट मुगाबे को एक सहयोगी और ''उपनिवेश-विरोधी प्रतिरोध आंदोलन के नायक'' के रूप में देखने वाले दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति थाबो मबेकी के अश्वेत समर्थक भी अपने देश में जिंबावे जैसी स्थिति आते हुए देखना चाहते हैं। मबेकी के विषय में मैक्स हैस्टिंग्स लिखते हैं कि 'उनके मतदाताओं में से बहुत से लोग जिंवाबे के भूमि जब्तीकरण और गोरों के अवशेषों के प्रति निर्मम व्यवहार की प्रशंसा करते हैं।'[425] ऐसा इस तथ्य के बाद भी है कि ये गोरे अधिवासी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आधार हैं; उनके बिना उन राष्ट्रों के समक्ष गंभीर आर्थिक समस्याएं खड़ी हो जाएंगी।

दूसरी ओर पूर्व में जिन देशों को मुसलमानों ने जीता था, वहां बाहर से आकर बसे मुसलमानों और स्थानीय धर्मांतरित मुसलमानों ने उस देश के लिये गंभीर आर्थिक अपंगता उत्पन्न की है। यदि भारत पर दृष्टि डाली जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय हिंदुओं का इस्लाम में धर्मांतरण कुल मिलाकर उन पर घोर अपंगता लेकर आया। यद्यपि भारत में मुसलमान आनुवंशिक रूप से हिंदुओं से भिन्न नहीं हैं, किंतु वे शिक्षा, विज्ञान, समृद्धता आदि के क्षेत्र में हिंदुओं से बहुत पिछड़े हैं। तब भी वे मुसलमान होने के काल्पनिक श्रेष्ठता के मद में फूले रहते हैं। वे इस बात के लिये बहुत से गैर-मुसलमानों से भी प्रशंसा पाते हैं कि वे अपनी जीती हुई विदेशी भूमि को अपना घर कहते हैं। परंतु सत्य तो यही है कि मुसलमान हिंदुओं और उनकी संस्कृति से घृणा करते हैं और इन्हें पूर्णतः नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। हाल के दशकों में भारत के मुसलमानों को कट्टरपंथी बनाने का अभियान तेज होने के साथ ही उनमें हिंदुओं और उनकी संस्कृति को नष्ट करने की भावना भरी जा रही है। यदि वे भारत के पूर्ण इस्लामीकरण में सफल होते हैं, तो इसकी संभावना बढ़ जाएगी कि वे भारत की विशाल जनसंख्या को विश्व के लिये विकलांग बना देंगे।

---

425 हास्टिंग्स एम, आई विल नेवर लैमेंट द पासिंग ऑफ व्हाइट रूल इन जिंबावे, गार्जियन, 27 फरवरी 2007

अध्याय 6

भारत में इस्लामी साम्राज्यवाद

'तलवारें ऐसे लहरा रही थीं, मानों काले घने बादलों में बिजली कड़क रही हो, और रक्त के फव्वारे ऐसे बह रहे थे, जैसे कि अस्त होता कोई तारा गिर रहा हो। अल्लाह के दोस्तों ने अपने शत्रुओं को पराजित कर दिया... मुसलमानों ने अल्लाह के काफिर शत्रुओं से प्रतिशोध लिया, उनमें से 15000 काफिरों को मारकर... उन्हें मांस का लोथड़ा बनाकर और शिकार होने वाली चिड़िया बनाकर... अल्लाह ने अपने दोस्तों पर इतना लूट का माल बरसाया था, जो गिनती और परिमाण से परे था, जिसमें पांच हजार दास, सुंदर पुरुष और स्त्रियां भी थीं।'

- सुल्तान महमूद का वजीर अल-उत्बी भारत के अपने अभियान पर

'(सुल्तान) महमूद ने देश की समृद्धि को पूर्णतः मिटा डाला था और अचंभित करने वाले कारनामे किये, जिससे हिंदुओं की स्थिति ऐसी हो गयी, मानों वे चारों ओर बिखरे हुए धूल के कण हों... यह भी एक कारण है कि हमारे द्वारा जीते गये देश के भागों में हिंदू ज्ञान-विज्ञान, कला, शास्त्र, तकनीक व कौशल दूर-दूर तक नहीं दिखते हैं और भाग कर कश्मीर, बनारस व ऐसे अन्य स्थानों पर चले गये हैं, जो अभी तक हमारी पहुंच से बाहर हैं।'

- अलबरूनी, महान मुस्लिम विद्वान व वैज्ञानिक, मृत्यु 1050

'हिंदू स्त्रियां और बच्चे मुसलमानों के द्वार पर भीख मांगने निकल पड़े।'

- सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा हिंदुओं के दमनकारी शोषण पर मिस्री सूफी फकीर शम्सुद्दीन तुर्क

भारतीय उपमहाद्वीप के आठवीं सदी के आरंभ से बीसवीं सदी के मध्य तक के इतिहास को एक के बाद आये दो विदेशी शासनोंः इस्लामी और ब्रिटिश में वर्गीकृत किया जाता है। 712 में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर कब्जा करने के साथ

इस्लामी हमला और शासन शुरू हुआ और इसका आधिकारिक अंत 1857 में सिपाही विद्रोह के बाद हुआ। ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण का प्रभाव में आना 1757 से प्रारंभ हुआ और 1947 में इसका अंत हुआ।[426]

बगदाद के गवर्नर हज्जाज बिन युसुफ के निर्देश और दमाकस के खलीफा अल-वलीद की कृपा पाकर कासिम ने 712 में भारत पर इस्लामी विजय और शासन प्रारंभ किया। मुगल बादशाह अकबर के अधीन मुस्लिम शासकों ने 150 में अंततः लगभग पूरे भारत पर नियंत्रण कर लिया। औरंगजेब के शासन काल में भारत का मुस्लिम नियंत्रण तनिक और विस्तृत हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी के भाड़े के ब्रिटिश सैनिकों द्वारा 1757 में प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को पराजित किये जाने के बाद इस्लामी शासन के अंत का संकेत मिलने लगा था। जब 1799 में अंतिम स्वतंत्र मुस्लिम शासक मैसूर का टीपू सुल्तान पराजित हुआ, तो प्रभावी ढंग से भारत में मुस्लिम शासन का अंत हो गया। 1850 में पंजाब को नियंत्रण में लाने के साथ ही भारत का अधिकांश भाग सचमुच ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया। जब तक कि 1857 में सिपाही विद्रोह नहीं उठ खड़ा हुआ था, ब्रिटिश सैनिकों ने मुस्लिम शासकों को 'राज्य का कठपुतली प्रमुख' बनाये रखा था। प्रत्यक्ष ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन 1858 में आया।

भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा लंबे समय तक अभियान चलाने के बाद ब्रिटिश शासकों ने अंततः 26 जनवरी 1947 को भारत पर अपनी संप्रभुता त्याग दी और भारत उसी वर्ष 14-15 अगस्त को स्वतंत्र हुआ। कई सदियों तक विदेशी प्रभुत्व के बाद अंततः एक स्वतंत्र उपमहाद्वीप पहली बार उभरा और अपना भविष्य निश्चित करने को स्वतंत्र हुआ, यद्यपि इसे दो राज्योंः भारत और पाकिस्तान में विभाजित कर दिया गया था।

अचंभा इस बात पर होता है कि भारत में दो विदेशी शासन रहे, किंतु केवल एक ब्रिटिश शासन को ही औपनिवेशिक ठहराया जाता है और इस उपमहाद्वीप व अन्य देशों के इतिहासकारों, विद्वानों और नागरिकों द्वारा निंदा करने के लिये चुन लिया जाता है। सच्चाई यह है कि इस्लामी शासन के इतने लंबे, विनाशकारी और अंधकार काल को छिपाने के लिये सतर्क व सुनियोजित प्रयास किये गये हैं। विचित्र बात तो यह है कि प्रमुख आधुनिक इतिहासकारों और लेखकों द्वारा इस्लामी शासन को अधिकांशतः सकारात्मक आलोक में दिखाया जाता है। आधुनिक इतिहास लेखन में प्रधान विषय इस्लामी शासन की कालिमा पर लीपापोती करना रहा है और न केवल इस्लामी पाकिस्तान और बांग्लादेश में ऐसा हो रहा है, अपितु हिंदू भारत में भी ऐसा ही हो रहा है। उपमहाद्वीप के मुसलमान और गैर-मुसलमान दोनों को 190 वर्ष के ब्रिटिश शासन की कहानियां निरंतर सुनायी जाती हैं कि वे कितने क्रूर थे और कितना आर्थिक शोषण किया था। किंतु मुस्लिम हमलावरों और इतने लंबे समय तक राज करने वाले मुस्लिम शासकों ने इससे लाख गुना अधिक बर्बरता, शोषण और असमानता की थी, किंतु उनका न के बराबर उल्लेख किया जाता है। जब भारत में मुस्लिम शासन की बात की जाती है, तो सामान्यतः इसका चित्रण सकारात्मक, परोपकारी और श्रेष्ठ के रूप में किया जाता

---

[426] भारत के कुछ तटीय क्षेत्र जैसे कि गोवा 16वीं सदी में पुर्तगालियों के नियंत्रण में आ गये थे।

है। उदाहरण के लिये, नेहरू, जो कि भारत में इस्लामी अत्याचारों को छिपाने में सबसे आगे था, कहता है, 'इस्लाम भारत में प्रगति का तत्व लाया।'[427]

भारत में मुसलमानों की बड़ी जनसंख्या है और इसमें तेजी से कट्टरपंथ, असहिष्णुता और उग्रवाद बढ़ने के कारण आने वाले समय में भारत की स्थिरता पर खतरा मंडरा रहा है। जिस ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अब भारत के भविष्य पर कोई प्रभाव नहीं बचा है, उसे भारतीय संवाद में पैशाचिक खलनायक के रूप में बारंबार प्रस्तुत किया जाता है। किंतु भारत पर जिस इस्लामी शासन का घातक प्रभाव पड़ा, और अभी भी जिसका खतरा मंडरा रहा है, उसके बारे में भारत में तथ्यपरक पड़ताल और विमर्श पर अभी तक व्यापक स्तर पर चुप्पी या खंडन की नीति अपनायी गयी है, या बात करना निषिद्ध विषय बना दिया गया है। बड़े इतिहासकार, बुद्धिजीवी और लेखक कठोरता से इस्लामी विजयों के वास्तविक परिणामों को स्वीकार करने से मना कर देते हैं, जबकि यही लोग पूरी शक्ति से उस ब्रिटिश शासन की नकारात्मक छवि प्रस्तुत करते हैं, जिसका अब भारत के भविष्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला है। ये लोग ब्रिटिश शासन को नकारात्मक रूप में दिखाते हुए निंदा करने में तो मुखर रहते हैं, किंतु जैसे ही इस्लामी शासन के अत्याचारों, घातक प्रभावों और विध्वंस की बात आती है, विचित्र चुप्पी साध लेते हैं या नकारने लगते हैं। सबसे आश्चर्यजनक तो यह है कि मार्क्सवादी झुकाव वाले बहुत से हिंदू इतिहासकार भी इस्लामी शासन और इसकी विरासत का महिमामंडन करने वाला गुलाबी चित्र बनाने में अपने मुस्लिम साथियों से हाथ मिला चुके हैं। यद्यपि यह दृष्टिकोण दिखाता है कि दुराग्रह के कारण इन इतिहासकारों में उस समय के वृत्तांतों व मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा अंकित साक्ष्यों के बड़े तत्व के प्रति उदासीनता है।

इतिहासकारों और बुद्धिजीवियों द्वारा विभिन्न महाद्वीपों में रहे यूरोपियन औपनिवेशिक शासन की बहुत भत्र्सना की जाती है और इस सीमा तक उन्हें बुरा-भला कहा जाता है कि अधिकांश यूरोपियन अतीत के औपनिवेशिक अपराध बोध से ग्रस्त हैं, लज्जित अनुभव करते हैं और अपने पूर्वजों के बुरे कार्यों को खुलकर स्वीकार करते हैं। भारत के ब्रिटिश शासन को लेकर नकारात्मक भाव कैसे तैयार किया गया, इस पर इब्न वराक लिखते हैंः

> 1947 में स्वतंत्रता मिलने के कुछ समय बाद भारतीय इतिहासकारों ने ऐसा ''राष्ट्रवादी'' इतिहास तैयार किया, जिसमें ऐसा दिखाया गया कि ब्रिटिश साम्राज्य का एक भी अच्छा पक्ष नहीं था। बाद में 1960 और 70 के दशक में अंततः इस नये देश की प्रत्येक बुराइयों, प्रत्येक विफलताओं, प्रत्येक कमियों का उत्तरदायी ब्रिटिश काल से लेकर ब्रिटिश शोषण में ढूंढ़ा गया।[428]

वराक कहते हैं, किंतु मध्यपूर्व से लेकर भारत, यूरोप और अफ्रीका तक इस्लाम की रक्त-रंजित विस्तारवादी हमलों को इस रूप में प्रदर्शित किया गया कि मानों यह ऐसा कुछ था जिस पर मुसलमानों को गर्व करना चाहिए, इसकी प्रशंसा व सराहना होनी चाहिए।

---

[427] नेहरू (1989) पृष्ठ 213

[428] इब्न वराक, पृष्ठ 198

उदाहरण के लिये, ऑर्गनाइजेशन ऑफ इस्लामिक कांफ्रेंस (ओआईसी) के महासचिव एकमेलद्दीन इहसानोग्लू, जो कि तुर्की के थे, ने मांग की थी कि चूंकि जब यूरोप में इस्लाम का औपनिवेशिक शासन था, तो उसने वहां योगदान दिया था, इसलिये तुर्की को यूरोपियन यूनियन में सम्मिलित किया जाए। उन्होंने कुछ समय पहले कहा थाः 'हमारा कहना है कि इस्लाम यूरोप के आधार तत्वों में है। बाल्कान में उस्मानिया साम्राज्य के शासकों ने पांच सदी तक शासन किया था और अंदालूसिया में मुस्लिम शासन आठ सदी तक चला है... यूरोप में इस्लाम को बाहरी तत्व के रूप में नहीं देखा जा सकता है। यह यूरोप की सभ्यता के आधार तत्वों में से एक है।'[429] इस तथ्य के बाद भी कि शिक्षा से लेकर प्रशासन तक, शासन से लेकर चिकित्सा व्यवस्था तक आज के भारत का जो स्वरूप व विकास है, वह ब्रिटिश योगदान के बिना संभव नहीं होता। यद्यपि यदि कोई ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भारत में ब्रिटिश योगदानों का उल्लेख करे, तो निस्संदेह अंतर्राष्ट्रीय चिल्ल-पों उठेगी।

आज जब भारत की भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के इस्लामी आतंकवाद द्वारा भारत के भविष्य की सुरक्षा और स्थिरता को गंभीर चुनौती दी जा रही है, तो ऐसे समय में भारत में इस्लामी हमलों और इसके बाद आये मुस्लिम शासन के वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः इस्लामी आतंकवादी खतरा मुस्लिम बांग्लादेश और पाकिस्तान की स्थिरता और सुरक्षा के लिये और है। इस अध्ययन में उपमहाद्वीपीय भारत में इस्लामी शासन और इसके सतत् प्रभाव के उन अनछुए पहलुओं का मूल्यांकन किया जाएगा, जिन पर बात नहीं की जाती है। पुनः यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि भारत में इस्लामी शासन उतना ही साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक था, जितना कि ब्रिटिश शासन था।

इस्लामी विजय और शासन

भारत के आधुनिक इतिहास लेखन का केंद्र बिंदु यही है कि ब्रिटिश नियंत्रण से पूर्व मुसलमानों और हिंदुओं (व अन्य गैर-मुसलमान) के मध्य बड़ी सद्भावना, शांति और बंधुत्व था। भारत में सत्ता पर नियंत्रण करने के बाद ब्रिटिश शासकों ने मुसलमानों और हिंदुओं के बीच वैमनस्य उत्पन्न किया और वह वैमनस्य आज तक भारत का अभिशाप बना हुआ है।

यदि कोई व्यक्ति अग्रणी मुस्लिम इतिहासकारों और शासकों द्वारा अंकित ऐतिहासिक साक्ष्यों को देखे, तो यह दावा कि ब्रिटिश काल से पूर्व हिंदू-मुस्लिम विसंगति का अस्तित्व नहीं था, पूर्णतः सत्य से परे लगेगा। सत्य तो यह है कि जिस दिन भारत में इस्लामी हमलावरों ने कदम रखा, उस दिन के बाद से कभी भी हिंदुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना नहीं रही। आइए, भारत में मुस्लिम हमलों व शासन के समय हिंदू-मुस्लिम संबंधों की वास्तविकता की पड़ताल करें।

मुहम्मद बिन कासिम का हमलाः कुरआन और सुन्नत के आदेशों के अनुपालन की प्रेरणा से हज्जाज ने 6000 जिहादियों के साथ कासिम को यह निर्देश देकर भारत की ओर भेजा कि अपनी विजय की कार्रवाई में सभी हृष्ट-पुष्ट पुरुषों की हत्या कर दे और उनकी स्त्रियों व बच्चों को पकड़कर दास बना ले। सिंध में देबल पर कब्जा करने के बाद कासिम की फौज तीन दिनों तक स्थानीय

---

[429] कामिल सुबासी, इहसानोग्लूः इस्लाम नाट जस्ट ए गेस्ट इन यूरोप, टुडेज ज़मन, 9 अक्टूबर, 2008

नागरिकों की हत्या करती रही। ब्राह्मणाबाद में शस्त्र धारण करने योग्य 6000 से 16000 हिंदू पुरुष काट डाले गये; मुल्तान में शस्त्र धारण करने योग्य सभी पुरुषों की हत्या करने का आदेश दिया गया। चचनामा में अंकित है कि रावर में कासिम के सफल हमले में 60,000 लोग बंदी बनाकर दास बनाये गये थे।[430] सिंध में अपने तीन वर्ष के काल में कासिम ने मातृभूमि की रक्षा कर रहे दसियों हजार भारतीयों को मार डाला और व्यापक स्तर पर सैंकड़ों हजार की संख्या में उनकी स्त्रियों और बच्चों को दास बना लिया। इसके अतिरिक्त मंदिर ध्वस्त किये गये, शास्त्रों व धार्मिक ग्रंथों और मूर्तियों को नष्ट कर दिया गया और उनके अवशेषों पर मस्जिद खड़े कर दिये गये। हिंदू प्रतिष्ठानों, मंदिरों और महलों की लूटपाट से बड़ी मात्रा में लूट का माल (खुम्स) मिला।

सुल्तान महमूद का अभियानः सुल्तान महमूद ने उत्तरी भारत (1000-27) में सत्रह बार हमला किया और लूटपाट किया। उसने कासिम के नरसंहार और विध्वंस के बड़े कारनामों को और अधिक उग्रता व परिमाण में आगे बढ़ाया। एक के बाद एक हमलों में सुल्तान महमूद निर्ममता से वयस्क पुरुषों का नरसंहार किया करता था; हजारों-लाखों की संख्या में उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बनाता था; और जो कुछ भी मिलता था उसे लूट लेता था, अपने कब्जे में कर लेता था।

उत्तर-पश्चिम भारत में 1001-02 में उसके हमले के बारे में अल-उत्बी ने लिखा हैः

> ‘तलवारें ऐसे लहरा रही थीं, जैसे कि काले घने बादलों में बिजली कड़क रही हो, और रक्त के फव्वारे ऐसे बह रहे थे, जैसे कि अस्त होता कोई तारा गिर रहा हो। अल्लाह के दोस्तों ने अपने शत्रुओं को पराजित कर दिया... मुसलमानों ने अल्लाह के काफिर शत्रुओं से प्रतिशोध लिया, उनमें से 15000 काफिरों को मारकर... उन्हें मांस का लोथड़ा बनाकर और शिकार होने वाली चिड़िया बनाकर... अल्लाह ने अपने दोस्तों पर इतना लूट का माल बरसाया था, जो गिनती और परिमाण से परे था, जिसमें पांच हजार दास, सुंदर पुरुष और स्त्रियां भी थीं।’[431]

1008 में नागरकोट (कांगड़ा) पर कब्जे के समय उसे 70,000,000 दिरहम मूल्य के सिक्के और सोने व चांदी के 700,400 सिल के साथ ही बहुमूल्य पत्थर और कढ़ाई किये हुए वस्त्र मिले थे। अल-उत्बी लिखता है, सुल्तान महमूद ‘इस्लाम के मानक को रोपने और मूर्तिपूजा को नष्ट करने’ के उद्देश्य से 1011 में थानेसर पर हमला करने के लिये निकला। वहां हुए संघर्ष में ‘काफिरों का इतना रक्त बहा कि जल की शुद्धता की तो बात ही छोड़िए, उनका रंग तक ऐसा बदल गया कि लोग वह जल पी नहीं सकते थे...। सुल्तान इतना लूट का माल लेकर लौटा कि उसे गिनना असंभव था। अल्लाह का महिमामंडन हो कि उसने इस्लाम और मुसलमानों को इतना सम्मान प्रदान किया!’[432]

अल-उत्बी आगे लिखता है, ‘कन्नौज की विजय में वहां के लोगों ने या तो इस्लाम स्वीकार कर लिया या फिर इस्लामी तलवार का भोजन बनने के लिये उनके विरुद्ध शस्त्र उठा लिये। उसने इतना लूट का माल और बंदी (अर्थात दास) व धन एकत्र

---

[430] लाल (1994), पृष्ठ 18

[431] इलियट और डाउसन, अंक द्वितीय, पृष्ठ 26

[432] इबिद, पृष्ठ 40-41

किया था कि उसके लोग गिनते-गिनते थक जाते, पर पूरा न गिन पाते।' अल-उत्बी लिखता है: 'वहां के अधिकांश निवासी भाग गये और अपनी भूमि से दूर अभागी विधवाओं व अनाथों की भांति छिन्न-भिन्न हो गये... इस प्रकार उनमें से अनेक लोग बचकर निकल पाये और जो नहीं भागे, उनकी हत्या कर दी गयी। सुल्तान ने एक ही दिन में सभी सात किलों पर कब्जा कर लिया और अपने जिहादियों को उनमें लूटपाट करने और लोगों को बंदी बनाने के लिये छोड़ दिया।'[433]

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि महमूद के दरबार के अलबरूनी ने हिंदुस्तान पर उसके हमले का चित्रण करते हुए कहा है कि 'इससे देश की समृद्धि का पूर्णतः नाश हो गया था' और 'स्थानीय निवासियों पर उसकी बर्बरता ऐसी थी कि हिंदू चारों दिशाओं में बिखरे हुए धूल के कण के समान हो गये थे तथा हिंदुओं के मन में सभी मुसलमानों के प्रति अपार घृणा भर गयी थी।'[434] भारत में महमूद के हमले पर नेहरू लिखता है, 'वह पूरे उत्तर में आतंक का पर्याय बन गया था। .... अधिकांश मुसलमान उसकी प्रशंसा करते हैं; अधिकांश हिंदू उससे घृणा करते हैं।'[435] नेहरू आगे लिखता है, 'महमूद के हमलों और नरसंहार के बाद, उत्तर भारत में इस्लाम बर्बर क्रूरता और विनाश से जुड़ गया।'[436]

गोरी के हमले: बारहवीं सदी के अंतिम वर्षों में मुहम्मद गोरी के हमलों से भारत में आयी इस्लामी जीत की तीसरी लहर और विस्तार ने अंततः 1206 में भारत में इस्लामी शासन की नींव रख दी। फारसी इतिहासकार हसन निज़ामी ने अपनी पुस्तक ताज-उल-मासिर में अजमेर पर मुहम्मद गोरी की जीत के बारे में लिखा है कि 'गिड़गिड़ा रहे एक लाख हिंदू जहन्नुम की आग में समा गये और हमलावरों को इतना अधिक लूट का माल और धन मिला कि उसे देखकर आप कह उठते कि समुद्र और पहाड़ों के गुप्त खजाने खुल गये हैं।' सुल्तान गोरी दिल्ली पर हमला करने के लिये आगे बढ़ा और 'जंग के मैदान में रक्त का फव्वारा बह उठा...।'[437]

निज़ामी लिखता है, मुहम्मद गोरी के जनरल कुतुबदीन ऐबक के 1193 के अलीगढ़ अभियान में 'तलवार की धार पर उन्हें (हिंदुओं) जहन्नुम की आग में भेज दिया गया।' इतना भयानक नरसंहार हुआ कि 'उनके सिरों के ढेर से तीन ऊंचे टीले बन गये और उनके धड़ जानवरों के भोजन बन गये। वह क्षेत्र मूर्तियों व मूर्तिपूजा से मुक्त कर दिया गया और कुफ्र की नींव नष्ट कर दी गयी।'[438]

---

[433] इबिद, पृष्ठ 45-46

[434] लाल (1999), पृष्ठ 155

[435] नेहरू (1989), पृष्ठ 155

[436] इबिद, पृष्ठ 209

[437] इलियट एंड डाउसन, अंक द्वितीय, पृष्ठ 215-216

[438] इबिद, पृष्ठ 224

निज़ामी कहता है, ऐबक के बनारस अभियान में, 'जो हिंद देश का केंद्र था... यहां उन्होंने लगभग एक सहस्त्र (हजार) मंदिरों का विध्वंस किया और उन पर मस्जिदें खड़ी कर दीं; और शरिया लागू कर दी गयी, तथा मजहब की नींव स्थापित की गयी।'[439] जनवरी 1197 में कुतुबदीन ऐबक गुजरात की राजधानी नाहरवाला पर हमला करने के लिये निकला और 'तलवार से पचास हजार काफिरों को जहन्नुम भेज दिया गया। मारे गये लोगों के ढेर से पहाड़ और मैदान एक ही तल में आ गये' और 'बीस हजार से अधिक दास एवं अगणित संख्या में पशु विजेताओं के हाथ आये।'[440] 1202 में कलिंजर के अभियान में ऐबक की बड़ी उपलब्धि पर निज़ामी लिखता हैः 'मंदिरों को मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया गया था... और अजान देने वालों के स्वर ऊंचे गगन में गुंजायमान हो रहे थे तथा मूर्तिपूजा का नाम मिटा दिया गया था।' निजामी ने आगे लिखा है, पचास हजार हिंदुओं के गले में दासता का पट्टा टांग दिया गया और मैदान हिंदुओं के शवों से पट गये।'[441] गोरी के हमले पर नेहरू लिखता हैः 'ये मुसलमान भयानक और क्रूर थे... मुस्लिम हमलों का पहला प्रभाव दक्षिण की ओर लोगों के पलायन के रूप में आया... जब नये-नये हमलावर आते रहे और उन्हें रोका नहीं जा सका, तो दक्ष शिल्पियों और विद्वानों का समूह दक्षिण भारत की ओर चला गया।'[442]

अभागे हिंदुओं के सामूहिक नरसंहार, दासता और बड़ी संख्या में बलात् धर्मपरिवर्तन, असंख्य हिंदू मंदिरों को विध्वंस करके उनके स्थान पर मस्जिद खड़ा करने, उनके धन की व्यापक लूटपाट और हरण के ये उदाहरण कोई इक्का-दुक्का नहीं थे। अपितु अधिसंख्य विजयों और जंगों में ऐसा होना मानक व्यवहार था और पूरे इस्लामी शासन में भारत में हिंदुओं के साथ ऐसा ही व्यवहार होता रहा। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (शासन 1296-1316) और मुहम्मद शाह तुगलक (1325-1351) भारत में काफिरों को सताने वाले सबसे बड़े आततायी थे। दिल्ली के सुल्तानों में सुल्तान फिरोज शाह तुगलक (1351-88) सबसे दयालु था। मुसलमान, चाहे उसके पक्ष के हों या शत्रु पक्ष के, खतरे में हों, तो फिरोज शाह बड़ा चिंतित हो उठता था। वैसे, सिराज़ अफीफ में लिखा है कि बंगाल के उसके अभियान में '(मारे गये बंगाली हिंदुओं के) सिर गिने गये और 180,000 से अधिक सिर मिले।'[443]

सभी आरंभिक मुस्लिम शासकों ने ब्राह्मणों को जजिया भुगतान से छूट दे रखी थी। किंतु कट्टर मजहबी मुसलमान सुल्तान फिरोज ने यह सोचकर कि ऐसा करना मजहबी भूल है और यह कि ब्राह्मण मूर्तिपूजा के कोष्ठ की मुख्य कुंजी हैं, उन पर भी जजिया लगा दिया।[444] उसने कठोरता से मूर्तिपूजा का दमन किया और अनेक हिंदू मंदिरों का विध्वंस किया। उसने अपने राज्य में गुप्तचर

---

[439] इबिद, पृष्ठ 223

[440] इबिद, पृष्ठ 230

[441] इबिद, पृष्ठ 231

[442] नेहरू (1989), पृष्ठ 208-9

[443] इलियट एंड डाउसन, अंक तृतीय, पृष्ठ 297

[444] इबिद, पृष्ठ 366

लगा दिये, जो उसे मूर्तिपूजा और मंदिरों के निर्माण की सूचना देते थे। उसने हिंदू मंदिरों के विध्वंस और पुजारियों की हत्या की अनेक घटनाओं को लिखा है। अपने संस्मरण फुतुहत-ए फिरोज शाही में ऐसी ही एक घटना का उल्लेख करते हुए उसने लिखा हैः '(हिंदुओं ने) अब नगर में और इसके आसपास मूर्ति-मंदिर खड़े कर लिये थे। यह रसूल के उस कानून के विरोध में था, जो यह कहता है कि ऐसे मंदिरों को सहन न किया जाए। अल्लाह के मार्गदर्शन में मैंने उन भवनों को तोड़ दिया और कुफ्र के उन नेताओं के प्राण ले लिये, जो दूसरों को ऐसी भूल व रीति पर चलने के लिये बहका रहे थे तथा जब तक ये कुरीति पूर्णतः समाप्त न हो गयी, मैं कोड़े मरवाता रहा, दंड देता रहा।'[445] एक और घटना में उसे सूचना मिली कि हिंदुओं ने कोहना गांव में एक मंदिर बना लिया है; वे लोग उसमें एकत्र हुए हैं और अपने धार्मिक अनुष्ठान कर रहे हैं। वह लिखता हैः 'मैंने आदेश दिया कि ऐसी दुष्टता कर रहे लोगों के अगुवा लोगों के इस विकृत व्यवहार का सार्वजनिक रूप से ढिंढ़ोरा पीटा जाए और महल के मुख्य द्वार के सामने उन्हें मृत्यु दंड दे दिया जाए। मैंने यह भी आदेश दिया कि काफिरों के शास्त्रों, मूर्तियों और पूजा में प्रयुक्त पात्रों आदि को सार्वजनिक रूप से जला दिया जाए। धमकी और दंड देखकर अन्य हिंदू थम गये और इसे सबके लिये चेतावनी समझा कि किसी मुसलमान देश में कोई जिम्मी (धिम्मी) इस प्रकार के दुष्ट व्यवहार नहीं कर सकता है।'[446]

अब्दुल कादिर बदायूंनी ने लिखा है, 'मध्य भारत के गुलबर्गा और बीदर के स्वतंत्र बहमनी सुल्तान प्रतिवर्ष लाख हिंदू पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या को सराहनीय कार्य मानते थे।'[447] फरिश्ता में लिखा है, 'दक्खिनी सल्तनत का यह नियम था कि एक मुसलमान की मृत्यु के बदले लाख हिंदुओं की हत्या की जाए।' इसी का परिणाम था कि जब राजा देव राय द्वितीय ने एक युद्ध में दो मुसलमान जिहादियों को पकड़ लिया, तो सुल्तान अलाउद्दीन अहमद शाह बहमनी द्वितीय (1436-58) ने सौगंध ली कि 'यदि देवराय (देवराय द्वितीय) ने उन जिहादियों के प्राण लिये, तो वह एक-एक जिहादी के बदले एक-एक लाख हिंदुओं को मारेगा।' यद्यपि राजा देवराय ने उन मुस्लिम बंदियों को मुक्त कर दिया था।[448]

अमीर तैमूर ने अपने संस्मरण मलफुज़ात-ए तैमूरी में लिखा है कि उसने काफिरों के विरुद्ध जिहाद करने के अपने इस्लामी कर्तव्य को पूरा करने के लिये भारत पर हमला किया था, जिससे कि जिहाद में 'वह गाज़ी (काफिरों को मारने वाला) बने या शहादत प्राप्त करे।' दिल्ली पर अपने हमले के ठीक पहले बड़ी संख्या में बंदियों की हत्या किये जाने के आदेश (दिसम्बर 1398) में

---

[445] इबिद, पृष्ठ 380

[446] इबिद, पृष्ठ 381

[447] लाल (1999), पृष्ठ 62

[448] फरिश्ता, पृष्ठ 267-68

उसने लिखा था: जब यह आदेश इस्लाम के गाज़ियों तक पहुंचे, तो वे अपनी तलवारें निकाल लें और अपने बंदियों की हत्या कर दें। उस दिन 100,000 काफिर, मूर्तिपूजक काट डाले गये।[449]

औरंगजेब के समय: इस्लामी शासन के उत्तरार्द्ध में बादशाह औरंगजेब (शासन 1658-1707) के इस्लामी शासन में भारत ने व्यापक स्तर पर हिंदू मंदिरों, विद्यालयों का विध्वंस और काफिरों (हिंदुओं, सिखों आदि) का नरसंहार देखा। उसके आधिकारिक वृत्तांत मा-असिर-ए आलमगीरी के अनुसार, 1669 में बादशाह को पता चला कि 'मूर्ख ब्राह्मणों में अपने विद्यालयों और विद्यार्थियों व शिक्षार्थियों में तुच्छ पुस्तकों को पढ़ाने की प्रवृत्ति है और वहां वो जो शैतानी ज्ञान देते हैं, उसे लेने के लिये दूर-दूर से मुसलमान और हिंदू दोनों आते हैं। इसलिये क्रुद्ध औरंगजेब ने सभी प्रांतीय गवर्नरों को काफिरों के विद्यालयों और मंदिरों को नष्ट करने का आदेश दिया। उन्हें आदेश दिया गया कि वे कठोरता से मूर्तिपूजा की शिक्षा व प्रथा पर पूर्णतः रोक लगायें।'[450] 'हिंदुओं को सम्मान का कोई प्रतीक लगाने, हाथी पर चढ़ने आदि की अनुमति नहीं थी...। सबसे बड़ा बोझ गैर-मुसलमानों पर 1679 में थोपा गया जजिया कर था... ।[451] औरंगजेब हिंदू मंदिरों को अपवित्र करने में अग्रणी था; उसने उनमें से हजारों मंदिरों को ढहा दिया। मा-असीर-ए आलमगीरी में केवल एक वर्ष 1679 में मंदिरों को लूटने और तोड़ने का जो विवरण दिया गया है, वह अचंभित करने वाला है:

1. 'जोधपुर से खान जहान बहादुर अपने साथ कई गाड़ियों में मूर्तियां भर कर पहुंचा। ये मूर्तियां उन मंदिरों की थीं, जिन्हें ध्वस्त कर दिया गया था।' इनमें से कुछ मूर्तियों को जामा मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे दबा दिया गया, 'जिससे कि मुसलमान आते-जाते उनको पैरों के नीचे कुचल सकें।'
2. जब शहजादा मुहम्मद आज़म और खान जहान बहादुर मूर्तिपूजकों के मंदिरों के ध्वंस के लिये उदयपुर की ओर बढ़े, तो कोई बीस राजपूत राजकुमारों ने उन मंदिरों की रक्षा के लिये विद्रोह कर दिया और 'उन उन्मादियों' को जहन्नुम भेज दिया गया तथा ''अब मंदिर धराशायी हो चुका था, और अग्रदूतों ने मूर्तियों को नष्ट कर दिया।''
3. औरंगजेब ने उड़ीसागर के राणा द्वारा निर्मित तीन मंदिर को तोड़ने का आदेश दिया। इस अभियान से वापस लौटते समय हसन अली खान ने बताया 'महल के समीप स्थित मंदिर और आसपास के क्षेत्रों के एक सौ बीस अन्य मंदिर ध्वस्त कर दिये गये थे।'
4. औरंगजेब चित्तौड़ की ओर बढ़ा, 'जहां तिरसढ़ मंदिर ढहा दिये गये।'

---

[449] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 394, 436

[450] इबिद, अंक 7, पृष्ठ 184-184; बीकानेर म्यूजियम आर्काइव, एक्जीबिट संख्या 9

[451] एंटोनोवा के, बोंगार्ड-लेविन जी एंड कोतोवस्की जी (1979), ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, अनुवाद जूडेल्सन के, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, पृष्ठ 255

5. अंबेर के देव-मंदिरों के विध्वंस के आदेश को पूरा करने के बाद अबू तुराब ने बताया 'कि इन मंदिरों में से तिरसढ़ का ध्वंस करके वहां भूमि समतल कर दी गयी है।'[452]

औरंगजेब के आदेश से 1679 में ही 200 हिंदू मंदिर ध्वस्त कर दिये गये। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि उसके पचास वर्ष के शासन में कितने मंदिरों का विध्वंस किया गया होगा। कुछ लोग अनुमान लगाते हैं कि उसके शासन में लगभग 5,000 मंदिर तोड़े गये। मंदिरों की रक्षा करने वालों को भी मिटाया गया। उसने अपने सगे भाई दारा शिकोह तक को नहीं छोड़ा। उसने हिंदू धर्म में रुचि दिखाने के कारण दारा शिकोह को मुर्तद अर्थात इस्लाम छोड़ने वाला घोषित कर दिया और उनकी हत्या करवा दी। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि औरंगजेब ने सिख गुरु तेग बहादुर जी को उनके दो सहयोगियों के साथ मार डाला था, क्योंकि वे कश्मीरी हिंदुओं के बलात् धर्मांतरण पर आपत्ति कर रहे थे।

1738 में फारसी शासक नादिर शाह ने भारत पर हमला किया और लगभग 200,000 लोगों की हत्या की। वह हजारों सुंदर लड़कियों सहित बड़ी संख्या में दास और बड़ी मात्रा में लूट का माल लेकर गया। भारतीय दर्शन, धर्म, इतिहास और कला से संबंधित फ्रेंच विद्वान एलैन डेनियलो (मृत्यु 1994) ने दिल्ली पर नादिर शाह के हमले का वर्णन करते हुए लिखा हैः ...एक सप्ताह तक उसके जिहादी प्रत्येक व्यक्ति की हत्या करते रहे, सब कुछ तहस-नहस करते रहे और लूटते रहे तथा गांव के गांव मिटा दिये। स्थिति यह थी कि जो लोग जीवित बच भी गये होंगे, उनके पास खाने को कुछ नहीं बचा होगा। वह अपने साथ बहुमूल्य फर्नीचर, कलाकृतियां, घोड़े, कोहिनूर हीरा, प्रसिद्ध मयूर सिंहासन और 15 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं लेकर ईरान वापस लौट गया।'[453] यह लूट का माल इतना विशाल था 'कि विजय के बाद वापस लौटने पर नादिर शाह ने तीन वर्ष तक ईरान में कोई कर नहीं लगाया।'[454]

भारत में मुसलमानों द्वारा हिंदू, बौद्ध, जैन और सिख धार्मिक संस्थाओं का जितना विनाश किया गया, वैसा उदाहरण विदेशियों द्वारा जीते गये किसी ओर देश में विरले ही मिलता है। अधिकांश घटनाओं में मंदिर का विध्वंस करने के बाद उसमें रखी मूर्तियां और धन उठा ले जाया जाता था, जबकि ध्वस्त मंदिर के अवशेषों का उपयोग प्रायः वहीं मस्जिद बनाने में किया जाता था। दिल्ली में कुव्वतुल-इस्लाम (इस्लाम की ताकत) मस्जिद उस क्षेत्र के सत्तर मंदिरों के विध्वंस से निकली सामग्री से बनायी गयी थी।[455] अमीर खुसरों और सुल्तान फिरोज तुगलक ने आनंद लेते हुए बताया है कि उन मंदिरों और मठों के पुजारियों को सामान्यतः काट डाला जाता था।

---

[452] इलियट एंड डाउसन, अंक 7, पृष्ठ 187-88

[453] डेनियलो ए (2003) एक ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ इंडिया, अनुवाद केनेथ एफ. हरी, इनर ट्रेडिशंस, रॉचेस्टर, पृष्ठ 290

[454] नादिर शाह, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Nadir_Shah

[455] वाटसन एफ एंड हीरो डी (1979) इंडियाः एक कंसाइज हिस्ट्री, थेम्स एंड हडसन, इंडिया, पृष्ठ 96

मुस्लिम हमलावरों और शासकों की क्रूरता, असभ्यता और वहशीपन का ये विशद् विवरण उस समय के अग्रणी मुस्लिम इतिहासकारों के अभिलेखों में ही मिलता है। इन इतिहासकारों ने सामान्यतः इन विनाशकारी बर्बरता और विध्वंस को सुखद मजहबी अभिमान के साथ लिखा है। मंदिरों का विध्वंस करने को लेकर मुस्लिम हमलावरों और शासकों में उत्साह के बारे में फ्रांसिस वाटसन ने लिखा हैः

> अपने मन-मस्तिष्क में हिंदुस्तान के मूर्ति-पूजकों के प्रति विष भरे हुए मुसलमानों ने बड़ी संख्या में प्राचीन मंदिरों को नष्ट किया। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसका उल्लेख तत्कालीन समय के मुस्लिम वृत्तांत लेखकों व अन्य ने किया है। बहुत से मंदिरों को केवल क्षति पहुंचायी गयी, पर वे खड़े रहे। किंतु बड़ी संख्या में अर्थात सैकड़ों नहीं, हजारों की संख्या में प्राचीन मंदिरों को तोड़कर उन्हें टूटे पत्थरों के टुकड़ों में रूपांतरित कर दिया गया। प्राचीन नगरों वाराणसी और मथुरा और उज्जैन और महेश्वर, ज्वालामुखी और द्वारका में एक भी मंदिर ऐसा नहीं बचा, जो पूरा हो या उसी स्वरूप में अक्षत हो, जैसे कि प्राचीन काल में था।[456]

यहां तक कि मुस्लिम शासकों में सर्वाधिक सदाशय कहे जाने वाले और सबके विचार में प्रबुद्ध माने जाने वाले अकबर ने चित्तौड़ (1568) में आत्मसमर्पण करने वाली 30,000 हिंदू जनता के नरसंहार का आदेश दिया था, क्योंकि उन्होंने राजपूत राजकुमारों का समर्थन किया था।

जब घेराबंदी में 8000 राजपूत सैनिक मारे गये, तो उनकी स्त्रियों ने शील हरण और यौन-दासता से बचने के लिये जलती आग में कूदकर प्राण दे दिये। कुछ कहते हैं कि ऐसी 8000 स्त्रियां थीं, जिन्हें बंदी बनाने का आदेश दिया गया था।[457] जैसा कि पहले ही बताया गया है, बादशाह जहांगीर ने लिखा है कि उसके पिता (प्रबुद्ध दयालु-हृदय वाले अकबर) और उसके अपने शासन काल की संयुक्त अवधि (1556-1627) में 500,000 से 600,000 लोगों का नरसंहार किया गया था।

भारत में सिंध के हमले के समय से प्रारंभ इस्लामी बर्बरता और वहशीपन अंतिम स्वतंत्र मुस्लिम शासक टीपू सुल्तान (1750-99) के शासन तक चलता रहा। यह वही टीपू सुल्तान था, जिसे ब्रिटिशों के विरुद्ध साहसी प्रतिरोध करने वाले राष्ट्रवादी ''नायक'' के रूप में चित्रित किया जाता है। हयवदन राव द्वारा लिखित मैसूर के इतिहास के अनुसार, टीपू सुल्तान ने 1790 में दीपावली के दिन मैसूर के अयंगर समुदाय के 700 पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या की थी; क्योंकि उन्होंने कथित रूप से मद्रास व तिरुमालियंगर के ब्रिटिश गवर्नर जनरल हैरिस से समझौता किया था। मोहिबुल हसन के अनुसार, एम.एम.के.एफ.जी. के संक्षिप्त नाम से जाने जाने वाले एक मुगल जनरल ने टीपू सुल्तान के जीवन के विवरण (जिसे टीपू के बेटे ने ठीक किया) में लिखा है कि सुल्तान ने त्रावणकोर के युद्ध में 10,000 हिंदुओं और ईसाइयों की हत्या की थी और 7,000 लोगों को बंदी बनाया था। बंदी बनाये गये लोगों को श्रीरंगपट्टणम ले जाया गया, जहां उनका खतना किया गया, उन्हें गोमांस खिलाया और मुसलमान बनने को

---

[456] इबिद, पृष्ठ 96

[457] लाल केएस (1992) द लीगेसी ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, आदित्य प्रकाशन, देल्ही, पृष्ठ 266-67

बाध्य किया गया।[458] मुस्लिम वृत्तांत लेखक किरमानी ने अपने निशान-ए-हैदरी में लिखा है कि टीपू सुल्तान द्वारा कुर्ग के 70,000 लोगों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया था। कुछ आधुनिक इतिहासकार इसे लेखक की अतिरंजना बताते हुए इसे विवादित बताते हैं और कहते हैं कि लेखक ने सुल्तान को इस्लाम के चैम्पियन के रूप में प्रस्तुत करने के लिये ऐसा लिख दिया है।[459] ये संख्या सही हो या गलत, किंतु ये आधुनिक इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि भारत में मुस्लिम शासन के इस काल में भी तलवार के बल पर काफिरों को धर्मांतरित करना निश्चित ही महान कार्य समझा जाता था।

एलैन डेनियलौ ने भारत में मुस्लिम हमलों का वर्णन करते हुए लिखा हैः '632 ईसवी में जब मुसलमानों का आना शुरू हुआ, तब से ही भारत के इतिहास में हत्याओं, नरसंहारों, लूटपाट, अपहरण और विध्वंस की लंबी व नीरस कथाएं प्रारंभ हुईं। अपने मजहब, अपने एकमात्र ईश्वर के ''पवित्र जंग'' अर्थात जिहाद के नाम पर इन बर्बर मुसलमानों ने सभ्यताओं को नष्ट किया, पूरी की पूरी नस्ल को मिटा दिया।' डेनियलौ आगे लिखते हैं, 'महमूद गज़नवी मुस्लिम निर्दयता का आरंभिक उदाहरण था। उसने 1018 में मथुरा के मंदिरों को जला डाला था, कन्नौज को मिटा दिया था और समस्त हिंदुओं के लिये प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर का विध्वंस कर दिया था। उसके उत्तराधिकारी उतने ही निर्दयी थे, जितना कि वह स्वयं थाः पवित्र नगर बनारस में 103 मंदिरों को तोड़कर मिट्टी में मिला दिया गया, नगर के अद्भुत मंदिर नष्ट हो गये, नगर के भव्य महल उजड़ गये।' डेनियलौ का निष्कर्ष है, वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में मुस्लिम हमलावरों की नीति ही यह थी कि लक्ष्य बनाकर व्यवस्थित ढंग से वो सबकुछ नष्ट कर दिया जाए, जो सुंदर, (भारतीयों के लिये) पवित्र, निर्मल था।[460]

अमरीकी इतिहासकार विल ड्यूरैंट, जो सोचते हैं कि भारत की मुस्लिम विजय संभवतः इतिहास में सर्वाधिक रक्तरंजित थी, ने लिखा हैः 'इस्लामी इतिहासकारों और विद्वानों ने 800 ईसवी से 1700 ईसवी तक इस्लाम के जिहादियों द्वारा किये गये हिंदुओं के नरसंहार, बलात् धर्मांतरण, हिंदू स्त्रियों व बच्चों का अपहरण कर उन्हें गुलामों के बाजार में बेचने, और मंदिरों के विध्वंस का अंकन बड़े आनंद और गर्व के साथ किया है। इस काल में करोड़ों हिंदुओं को तलवार के बल पर मुसलमान बनाया गया।'[461] वस्तुतः इस्लामी प्रभुत्व के अंतिम दिनों तक मुस्लिम इतिहास लेखन में भारतीय काफिरों पर इस्लामी बर्बरता का महिमामंडन करना सामान्य कथ्य रहा है। मुहम्मद अल-कुफी, अल-बिलाजुरी, अल-उत्बी, हसन निज़ामी, अमीर खुसरो और जियाउद्दीन बर्नी जैसे बहुत से मुस्लिम इतिहासकारों की कृतियों में इसके साक्ष्य उपलब्ध हैं।

भारत में मुस्लिम हमलावरों द्वारा पराजित काफिरों का नरसंहार और दास बनाने तथा उनकी धार्मिक संस्थाओं का विध्वंस करने की जो घटनाएं हुईं हैं, वैसी घटनाएं कहीं और के इतिहास में विरले ही मिलती हैं। हिंदू कुश पर्वत का नाम ही इसलिये पड़ा,

---

[458] हसन एम (1971) द हिस्ट्री ऑफ टीपू सुल्तान, आकार बुक्स, न्यू देल्ही, पृष्ठ 362-63

[459] टीपू सुल्तान, विकीपीडिया

[460] डेनियलौ, पृष्ठ 222

[461] ड्यूरैंट डब्ल्यू (1999) द स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशनः अवर ओरिएंटल हेरिटेज, एमजेएफ बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 459

क्योंकि हिंदू बंदियों को दास बनाकर मध्य एशिया ले जाए जाने के समय कठिन मौसम में फंसने से बहुत बड़ी संख्या में हिंदुओं की मृत्यु हो गयी थी। इब्न बबूता (1333 में वर्णित) के अनुसार, हिंदू कुश का अर्थ है ''भारतीयों का हत्यारा'' (हिंदुओं का हत्यारा), क्योंकि भारत से दास बनाकर ले जाए जा रहे लड़कों और लड़कियों में से बड़ी संख्या में लोगों की असहनीय ठंड और बर्फ के कारण वहीं मृत्यु हो गयी थी।[462] बर्फ में जमकर प्राण गंवाने वाले उन लोगों की संख्या निश्चित नहीं है। मोरलैंड के अनुसार, 'उनकी संख्या इतनी बड़ी थी कि जो बच गये थे, वो ही इतने अधिक थे कि विदेशी बाजारों में उनका मूल्य बहुत कम लगा था।[463]

इस्लाम के आने से पूर्व का भारत

एक उन्नत सभ्यता

मुस्लिमों की विजय से पूर्व भारत विज्ञान, गणित, साहित्य, दर्शन, चिकित्सा, खगोल विद्या, वास्तुशिल्प आदि में महत्वपूर्ण उपलब्धियों के साथ विश्व की शीर्ष सभ्यताओं में आता था। भारतीय गणितज्ञों ने शून्य की गणितीय संकल्पना दी और बीजगणित (अलजेबरा) के मूलभूत तत्वों की स्थापना की। फारसी बन गये अब्बासी खलीफाओं, जो कि इस्लाम-पूर्व फारस के फारसी ज्ञान-धारा से प्रेरित थे,[464] ने विज्ञान, गणित, चिकित्सा व औषधि और दर्शन के शास्त्रों व पांडुलिपियों का अध्ययन कर उनके संग्रह के लिये विद्वानों और व्यापारियों को भारत भेजा था। नेहरू के अनुसार, 'चिकित्सा और गणित में उन्होंने भारत से बहुत कुछ सीखा। बड़ी संख्या में भारतीय विद्वान और गणितज्ञ बगदाद आये। अनेक अरबी विद्यार्थी उत्तर भारत के तक्षशिला में अध्ययन के लिये गये। तक्षशिला अभी भी एक महान विश्वविद्यालय था, जिसके पास औषधियों की विशेषज्ञता थी।'[465]

770 ईसवी में एक भारतीय विद्वान बीजीय गणित रचनाओं को बगदाद लेकर आया। इनमें से एक सातवीं सदी के महान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त की रचना ब्रह्मसिद्धांत (जिसे अरबी में सिंदहिंद नाम दिया गया) थी। इसमें बीजगणित के आरंभिक सिद्धांत थे। नौवीं सदी में प्रसिद्ध मुस्लिम गणितज्ञ व खगोलविद् मुहम्मद इब्न मूसा अल-ख्वारिज्मी ने भारतीय क्रियाओं को यूनानी ज्यामिती से जोड़कर अलजेबरा की गणितीय प्रणाली प्राप्त की। ख्वारिज्मी को बीजगणित के जनक के रूप में जाना जाता है। अल-ख्वारिज्मी

---

[462] गिब, पृष्ठ 178

[463] मोरलैंड डब्ल्यूएच (1923) फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब, मैक्मिलन, लंदन, पृष्ठ 63

[464] फारस के ससानियन शासकों के संरक्षण में जुंजिशपुर का महान नेस्टोरियन शिक्षा केंद्र यूनानी, भारतीय व अन्य सभ्यताओं के प्राचीन ग्रंथें के अनुवाद का फलता-फूलता केंद्र बन चुका था। राजा खुसरो प्रथम (531-579) के समय यह केंद्र सीरियाई, फारसी और भारतीय विद्वानों के मिलन का केंद्र बन गया। खुसरो प्रथम ने अपने व्यक्तिगत चिकित्सक को चिकित्सा के ग्रंथ की खोज में भारत भेजा था। इसके बाद इन ग्रंथों का संस्कृत से पहलवी (मध्य फारसी) में अनुवाद किया गया और अनेक अन्य वैज्ञानिक कृतियों का अनुवाद यूनानी से फारसी या सीरियाई भाषा में किया गया।

[465] नेहरू (1989), पृष्ठ 151

द्वारा भारतीय संख्या-सूचक शब्दों-चिह्नों का प्रयोग कर अंकगणितीय गणना करने की तकनीक विकसित की गयी, जिसे कलन विधि (अल्गॉरिथम अथवा अल्गॉरिज्म) नाम दिया गया और यह उसके नाम का इटली संस्करण था। दूसरी पांडुलिपि में शून्य की संकल्पना सहित निर्दिष्ट संख्या की क्रांतिकारी विधि दी गयी थी, जो संसार में और कहीं ज्ञात नहीं था। मुस्लिम विद्वान इस भारतीय संख्या प्रणाली को ''भारतीय (हिंदी) संख्या-सूचक शब्द-चिह्न'' कहते थे, जिसे बाद में यूरोपियनों ने ''अरबी संख्या सूचक संख्या-सूचक शब्द-चिह्न'' नाम दे दिया।[466] यद्यपि मुस्लिमों ने इन उपलब्धियों में महत्वपूर्ण योगदान दिया, किंतु वे अपने अहं की तुष्टि के लिये प्रायः साहित्यिक चोरी से प्राप्त की गयी अपनी इस उन्नति का सारा श्रेय स्वयं ले लेते हैं। इस्लाम-पूर्व भारत में दिव्य व अलंकृत ग्रंथों की रचना और आश्चर्यजनक वास्तुशिल्प वाली भव्य संरचनाओं के निर्माण की महान परंपरा थी। मुस्लिम हमलावरों के आने के बाद भारतीय भवन निर्माताओं और शिल्पकारों ने अपनी कलाओं में इस्लामी विचार का मिश्रण करके नये भवनों व वास्तु संरचनाओं में भारतीय-इस्लामी पच्चीकारी की रचना की, जिसे स्व-घोषित इस्लामी सभ्यता की ''विरासत'' से जोड़ दिया गया।

अलबरूनी (मृत्यु 1050) ने 1030 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध कृति इंडिका में इन प्राचीन भारतीय विधाओं की अनेक उपलब्धियों का वर्णन किया है। अरबी विद्वान एडवर्ड सचाउ ने 1880 में इसका अनुवाद किया और यह अलबरूनी का भारत (1910) में प्रकाशित हुई। सचाउ लिखते हैंः 'अलबरूनी की दृष्टि में, हिंदू उत्कृष्ट दार्शनिक, श्रेष्ठ गणितज्ञ व खगोलविद् थे।'[467] अलबरूनी ने गणित में भारतीय उपलब्धि का सारांश यूं लिखा हैः

> वे संख्यात्मक संकेतन के लिये अपनी वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग नहीं करते हैं, जबकि हम हीब्रू वर्णमाला के क्रम में अरबी अक्षरों का प्रयोग करते हैं... जिन संख्यात्मक चिह्नों का हम प्रयोग करते हैं, वो हिंदू चिह्नों के ही उत्कृष्ट रूप हैं... अरब भी, हजार की गिनती पर ही ठहर गये हैं और ऐसा करना सबसे सही और सबसे स्वाभाविक ही था।... किंतु जो हजार से ऊपर की गिनती जानते हैं, वो हिंदू हैं। वो हिंदू ही हैं, जो कम से अपनी अंकगणितीय तकनीकी शब्दावलियों में उच्चतम क्रम की गिनती का प्रयोग करते हैं और उन्होंने कुछ शब्द-व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार या इन शब्दावलियों का मुक्त रूप से अविष्कार किया है अथवा व्युत्पत्ति की है, जबकि अन्य में दोनों पद्धतियां एकसाथ मिली हैं। वे धार्मिक कारणों से संख्याओं के क्रमों की संज्ञाओं (नामों) का विस्तार तब तक करते रहते हैं, जब तक कि अठाहरवां क्रम न आ जाए, इस कार्य में सभी प्रकार के व्युत्पत्ति शास्त्रों के साथ व्याकरणविद् गणितज्ञों की सहायता कर रहे हैं।[468]

अलबरूनी के अनुसार, भारतीय ज्ञान, जैसे कि कलीला और दिमना की कथाओं एवं प्रसिद्ध चरक सहित चिकित्सा शास्त्र की पुस्तकें अरब संसार में या तो सीधे संस्कृत से अरबी में अनुवाद होकर आयीं अथवा पहले उनका अनुवाद संस्कृत से फारसी में

[466] ईटन (2000), पृष्ठ 29

[467] सचाउ, प्रीफेस, पृष्ठ XXX

[468] इबिद, पृष्ठ 160-61

हुआ और उसके बाद फारसी से अरबी में हुआ। सचाउ भी मानते हैं कि भारत का ज्ञान का भंडार दो चरणों में बगदाद पहुंचा। इस पर वो लिखते हैं:

> चूंकि सिंध वास्तव में खलीफ मंसूर (753-74) के शासन में था, तो भारत के उसी भाग से दूत बगदाद आये और इन दूतों में ऐसे विद्वान भी थे, जो अपने साथ दो पुस्तक ब्रह्मगुप्त की ब्रह्मसिद्धांत और खंडखाद्यक (जिसका अरबी में अरकंद नाम से अनुवाद हुआ) लेकर आये। इन पंडितों की सहायता से अलफज़री और संभवतः याकूब इब्न तारिक ने इन पुस्तकों का अनुवाद किया। इन दोनों पुस्तकों का उपयोग व्यापक स्तर पर हुआ और इनका बड़ा प्रभाव रहा। इसी अवसर के कारण ही अरब पहली बार खगोलविद्या की वैज्ञानिक विधि से परिचित हो सका। उन्होंने टॉलेमी से पूर्व ब्रह्मगुप्त से सीखा था।[469]

सचाउ आगे लिखते हैं कि अरब संसार में हिंदू ज्ञान का प्रवाह पुनः आया, जब हारुन अल-राशिद (शासन 786-808) हुए। बल्ख के बर्माक का प्रसिद्ध राजदरबारी परिवार, जो बाहर से दिखावे के लिये तो इस्लाम में धर्मांतरित हो गया था, किंतु पीढ़िया बीतने के बाद भी उसने अपने पूर्वजों के बुद्ध धर्म की परंपराओं को नहीं छोड़ा था,

> ...ने चिकित्सा विज्ञान और औषधि विज्ञान के अध्ययन के लिये अपने विद्वानों को भारत भेजा। इसके अतिरिक्त इस परिवार ने हिंदू विद्वानों को बगदाद बुलाया और अपने चिकित्सालयों का मुख्य चिकित्सक नियुक्त किया तथा चिकित्सा विज्ञान, औषधि विज्ञान, विष विज्ञान, दर्शन, ज्योतिष व अन्य विषयों की पुस्तकों का संस्कृत से अरबी में अनुवाद का आदेश दिया। बाद की सदियों में भी मुस्लिम विद्वान बर्माके के दूत बनकर इन्हीं उद्देश्यों के लिये भारत की यात्राएं करते रहे, जैसे कि अलमुवाफुक आया, जो कि अलबरूनी के समय से बहुत पहले का नहीं है... ।[470]

सचाउ ने आगे लिखा है, इसके अतिरिक्त अरबों ने सांपों, विष, पशु चिकित्सा प्रवीणता, तर्क और युद्ध के दर्शन, नीति सिद्धांत, राजनीति व विज्ञान सहित अनेक विषयों के भारतीय ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया। 'बहुत से अरब लेखकों ने उन विषयों पर काम करना प्रारंभ किया, जो उन्हें हिंदुओं द्वारा संचारित किया गया था और उन्होंने मूल रचनाओं, टीकाओं और अंशों से उनका अर्थ ढूंढ़ा। उनका प्रिय विषय भारतीय गणित था, वह भारतीय गणित जो अलकिंदी और अन्य अनूदित रचनाओं के प्रकाशन से दूर-दूर तक फैला।[471]

ग्यारहवीं सदी के स्पेनी मुस्लिम विद्वान सईद अल-अंदालुसी ने विश्व के विज्ञान पर लिखी अपनी पुस्तक 'राष्ट्रों की श्रेणियां (द कैटिगरीज ऑफ नेशंस) में भारत को अत्यंत सकारात्मक रूप में चित्रित किया है और भारत का वर्णन विज्ञान, गणित व संस्कृति प्रमुख केंद्र के रूप में किया है। इस पुस्तक के आलेखों में इस बात की पुष्टि की गयी है कि भारत वह प्रथम राष्ट्र है, जिसने विज्ञान

---

[469] इबिद, पृष्ठ XXXIII

[470] इबिद, पृष्ठ XXXIII-XXXIV

[471] इबिद, पृष्ठ XXXVI

को उत्पन्न किया और प्रज्ञावान होने, ज्ञान की सभी शाखाओं में दक्ष होने एवं उपयोगी व दुर्लभ अविष्कार करने के लिये भारतीयों की प्रशंसा की गयी है। इसमें आगे लिखा हैः

> भारतीयों ने संख्याओं और ज्यामिती के अध्ययन में महान प्रगति की है और यह उनकी अर्जित की हुई अपनी उपलब्धि है। उन्होंने अपार ज्ञान अर्जित किया है और वे ग्रहों की गति के ज्ञान (खगोल विद्या) और अंतरिक्ष के रहस्यों (ज्योतिष विज्ञान) के साथ ही अन्य गणितीय ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंच चुके हैं। इसके अतिरिक्त, वे चिकित्सा व विभिन्न औषधियों की शक्तियों, यौगिकों के लक्षणों और तत्वों (रसायन) की विशिष्टताओं के अपने ज्ञान में विश्व के अन्य देशों से बहुत आगे निकल चुके हैं।[472]

आरंभिक काल (सातवीं-आठवीं सदी) के बहुत से इस्लामी विद्वानों ने अनेक घने व समृद्ध नगरों वाले जीवंत और समृद्ध भारत के साक्ष्य अंकित किये हैं। इस्लाम-पूर्व भारत की सभ्यता के विषय में फ्रांसिस वाटसन ने लिखा हैः[473]

> यह स्पष्ट है कि जब मुसलमान हमलावर भारत की ओर आना प्रारंभ हुए (8वीं से 11वीं सदी), तो यह धरती पर सोने और चांदी, मूल्यवान व दुर्लभ रत्नों, धर्म व संस्कृति एवं ललित कलाओं व विद्याओं की संपदा वाला सबसे समृद्ध क्षेत्र था। दसवीं सदी तक का हिंदुस्थान भी परिकल्पनात्मक दर्शन व वैज्ञानिक सिद्धांत प्रतिपादन, गणित और प्रकृति की गतिविधियों के ज्ञान के क्षेत्रों की उपलब्धियों में पूर्व और पश्चिम के अपने समकालीन देशों से कई गुना उन्नत था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि तत्कालीन अग्रगमित सदियों में आरंभिक मध्यकालीन अवधि के हिंदू अनेक क्षेत्रों में चीनियों, फारसियों (ससैनियनों सहित), रोमनों और बैजेंटाइनों से श्रेष्ठ थे। इस उपमहाद्वीप पर शिव और विष्णु के अनुयायियों ने अपने लिये मानसिक रूप से विकसित और आनंद व समृद्धि से परिपूर्ण एक ऐसे समाज की रचना की थी, जिसकी उस समय के यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमान एकेश्वरवदियों ने कल्पना तक नहीं की थी। मुसलमानों द्वारा नष्ट किये जाने के पूर्व तक मध्यकालीन भारत इतिहास का सबसे सम्पन्नतायुक्त कल्पनाशील संस्कृति और सृष्टि की पांच सर्वाधिक उन्नत सभ्यताओं में से एक था।
>
> उन हिंदू कलाओं पर दृष्टि डालिए, जिसे मुसलमान मूर्तिभंजकों ने निर्दयता से क्षतिग्रस्त किया या नष्ट किया। प्राचीन हिंदू मूर्तिकला व वास्तुशिल्प उच्चतम कोटि की ओजस्वी और अप्रतिम सौंदर्ययुक्त है और धरती पर कहीं और रची गयी मानव अलंकृत कला की तुलना में कहीं अधिक मंत्रमुग्ध कर देने वाली है। (केवल शास्त्रीय ग्रीक कलाकारों द्वारा निर्मित प्रतिमाएं ही उस श्रेणी की हैं, जो हिंदू मंदिर वास्तुशिल्प की है)। प्राचीन हिंदू मंदिर स्थापत्य विश्व में सर्वाधिक विस्मयकारी, अलंकृत और सम्मोहित करने वाली वास्तुशैली है। (फ्रांस में कैथेड्रल की गोथिक कला ही वह एकमात्र दूसरा धार्मिक स्थापत्य है, जिसकी तुलना हिंदू मंदिरों के गूढ़ स्थापत्य से हो सकती है)। किसी भी ऐतिहासिक सभ्यता का कोई भी कलाकार कभी ऐसी प्रतिभा नहीं दिखा पाया है, जैसी कि हिंदुस्थान के कलाकार और शिल्पकारों ने दिखाई है।

---

[472] अल-अंदलूसी एस (1991) साइंस इन द मेडिवल वर्ल्डः बुक ऑफ द कैटिगरीज ऑफ नेशंस, ट्रांसलेटेड बाई सालेम एसआई एंड कुमार ए, यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास प्रेस, चैप्टर 5

[473] वाटसन एंड हीरो, पृष्ठ 96

अन्य प्राचीन सभ्यताओं की तुलना में प्राचीन ग्रीक (यूनानियों) ने निस्संदेह विज्ञान, चिकित्सा और दर्शन में महान योगदान दिया है, किंतु भारत निश्चित रूप से बौद्धिक उपलब्धियों के सभी क्षेत्रों में अग्रणी सभ्यता था।

सहिष्णु और मानवता का समाज

भारत के बौद्धिक व वैज्ञानिक उपलब्धियों के अतिरिक्त सईद अल-अंदलूसी ने लिखाः 'सदियों से सभी राष्ट्रों के लिये परिचित भारतीय पांडित्य के तत्व (सार), सद्व्यवहार व निष्पक्षता के स्रोत हैं। वे उदात्त विचारशीलता, सार्वभौमिक नीति-कथा वाले लोग हैं...।' वास्तव में भारत न केवल विज्ञान, साहित्य, दर्शन, कला व स्थापत्य में अपनी उपलब्धियों वाला असाधारण सभ्यता था, अपितु मानवता, शौर्य, मर्यादा और नीतिगत व्यवहार के संबंध में स्वयं को मुसलमान हमलावरों से भिन्न भी रखा था। इस्लामी हमलों से पूर्व उस समय किसी अन्य बड़ी सभ्यताओं की भांति ही भारत के हिंदू राजा और राजकुमार भी युद्ध किया करते थे, किंतु अपेक्षाकृत इस प्रकार के युद्ध कम ही होते थे। इसकी पुष्टि करते हुए मुस्लिम यात्री व्यापारी सुलैमान ने अपनी सलसिलातूत तवारीख (851) में लिखा हैः 'भारतीय कभी-कभी विजय के लिये युद्ध में जाते हैं, किंतु ऐसे अवसर विरले ही होते हैं।' चीनी सम्राट के पास जाने वाले मुहम्मद तुगलक के कूटनयिक दल के साथ यात्रा करते समय इब्न बतूता यह देखकर अचंभित हो गया कि मालाबार के हिंदू शासक एक-दूसरे के भूभाग के प्रति बहुत सम्मान रखते थे और युद्ध से दूर रहते थे। उसने लिखा, 'मालाबार में 12 काफिर राजा हैं, उनमें से कुछ पचास हजार सैनिकों की सेना धारण करने वाले शक्तिशाली राजा हैं और कुछ कुछ तीन हजार सैनिकों वाले दुर्बल भी हैं। परंतु इसके बाद भी वहां उनके मध्य कोई अनबन नहीं है और शक्तिशाली राजा अपने से दुर्बल की संपत्ति हड़पने की इच्छा नहीं रखते हैं।'[474] मुस्लिम हमलावर भारत (और अन्य स्थानों) में न केवल हिंदुओं के विरुद्ध निरंतर जंग छेड़े रहे, अपितु आपस में भी लड़ते रहे। इस्लामी शासन के समूचे काल में समस्त भारत में मुस्लिम जनरलों, मुखियाओं और शहजादों का अंतहीन विद्रोह होता रहा। इसलिये बतूता के अचंभे को समझा जा सकता है। सुलेमान आगे लिखता है कि भारतीय राजा नियमित वेतन पर अपनी सेनाएं भी नहीं रखते हैं। जब उन्हें युद्ध के लिये बुलाया जाता है, तभी उन्हें वेतन दिया जाता है। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद, 'वे नागरिक जीवन जीने लगते हैं और राजा से कुछ प्राप्त किये बिना ही अपनी जीविका चलाते हैं।'[475]

भारतीय शांति और युद्ध दोनों समयों में उच्च नैतिक व्यवहार का पालन करते हैं। युद्ध और संघर्ष सामान्यतः प्रतिद्वंद्वी पक्षों योद्धा वर्ग क्षत्रियों तक ही सीमित था और ये क्षत्रिय अधिकांशतः युद्ध के खुले मैदान में संघर्ष करते थे। वे एक शिष्टाचार-संहिता का पालन करते थे और विजय अथवा भौतिक लाभ के लिये इसका त्याग करना मृत्यु से भी बुरा अपमान समझा जाता था। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अल-इदरीसी ने भी लिखा है कि हिंदू कभी न्याय से विरत नहीं होते थे। संघर्ष के समय धार्मिक गुरु और पुरोहित, युद्ध से बाहर रहने वाले नागरिक, विशेष रूप से स्त्रियों और बच्चों को सामान्यतः कोई क्षति नहीं पहुंचायी जाती थी। धार्मिक प्रतीक और प्रतिष्ठान यथा मंदिर, गिरिजाघर और मठों एवं नागरिक पुरवा (बस्ती) पर सामान्यतः आक्रमण नहीं किया जाता

---

[474] गिब, पृष्ठ 232

[475] इलियट एंड डाउसन, अंक प्रथम, पृष्ठ 7

था, उनमें लूटपाट या उनका विध्वंस नहीं किया जाता था। जहां इस्लामी जंग में लूटा गया माल अल्लाह द्वारा स्वीकृत हलाल वस्तु है, वहीं इस्लाम-पूर्व भारत में युद्ध और विजय में शत्रु की संपत्ति को छुआ तक नहीं जाता था। पराजित पक्ष की स्त्रियों को सामान्यतः न तो बंदी बनाया जाता था और न ही उनका शील हरण किया जाता था।

व्यापारी सुलेमान भारतीय युद्ध के इन नैतिक व्यवहारों की पुष्टि करता है। वह कहता है: 'जब कोई राजा पड़ोसी राज्य को पराजित करता था, तो वह उसी राज्य के राजपरिवार के किसी सदस्य को सिंहासन पर बिठाता था और वह सदस्य विजेता के नाम से शासन चलाता था। किसी भी प्रकार से राज्य के निवासियों को कोई कष्ट नहीं दिया जाता था।'[476] दसवीं सदी के मुस्लिम वृत्तांत लेखक अबू ज़ैदुल हसन ने कुमार (खमेर) के राज्य पर जबाज (श्रीविजय या जावा) के महाराजा की विजय पर लिखा है:[477] कुमार के युवा और अहंकारी राजकुमार ने जबाज को जीतने की इच्छा व्यक्त की। जब जबाज के राजा ने यह सुना, तो उसने कुमार के राज्य पर आक्रमण कर दिया। महाराजा ने कुमार के महल की घेराबंदी की और राजकुमार का वध कर दिया। 'इसके बाद उसने सभी नागरिकों को सुरक्षा का आश्वासन देते हुए अपने शासन की घोषणा की और स्वयं राजसिंहासन पर बैठा।' उसने कुमार के प्रधान (मंत्री) को संबोधित करते हुए कहा कि,

'मैं जानता हूं कि आपका आचरण एक सच्चे मंत्री के जैसा रहा है; तो अब अपने आचरण का प्रतिफल ग्रहण कीजिए। मैं जानता हूं कि आपने स्वामी को उचित परामर्श दिया होता, यदि उन्होंने आपसे पूछा होता, किंतु ऐसा नहीं हुआ। सिंहासन पर बैठने के लिये कोई उपयुक्त व्यक्ति ढूंढ़िए और इस मूर्ख व्यक्ति के स्थान पर उसे उस पर बिठाइए। इसके पश्चात महाराजा तत्काल अपने देश लौट गये। न तो उन्होंने और न ही उनके किसी व्यक्ति ने कुमार के राज्य के किसी वस्तु को हाथ लगाया।[478] प्राचीन यूनानी यात्री व इतिहासकार मेगस्थनीज (350-290 ईसा पूर्व) ने अपनी भारत यात्रा के समय जो भारतीय युद्ध प्रणाली के अनूठे लक्षण देखे, उसे लिखा है। एलैन डेनियलौ ने उनके प्रेक्षण के सारांश को निम्नलिखित ढंग से लिखा है:

> जहां अन्य देशों में युद्ध के संघर्ष में उस धरती को तहस-नहस करके बंजर भूमि बना देना सामान्य था; वहीं इसके विपरीत भारतीय लोग किसानों को ऐसा वर्ग मानते हैं, जो पवित्र और अउल्लंघनीय, भूमि को जोतने वाला होता है, जब पड़ोस में कोई संघर्ष भी हो रहा हो, तो भी उनका मन किसी भी प्रकार के खतरे के भाव से दूर होता है। क्योंकि युद्धरत पक्ष एक-दूसरे का संहार भले कर रहे हों,

---

[476] इबिद

[477] द साउथईस्ट एशियन किंगडम ऑफ श्रीविजय, जावा एंड खमेर वर देन ऐन एक्सटेंशन ऑफ द इंडियन सिविलाइजेशन विद ए फर्म्ली रूटेड हिंदू-बुद्धिस्ट रिलीजियस इंफ्लूएंस। द फेमस हिस्टॉरियन अल-मसूदी हैड मेट ज़ैदुल हसन इन बसरा इन 916, रीप्रोड्यूस्ड दिस स्टोरी इन हिज मीडोज ऑफ गोल्ड।

[478] इलियट एंड डाउसन, अंक प्रथम, पृष्ठ 8-9

किंतु कृषि में लगे लोगों को पूर्णतः बाधारहित रहने देते हैं। इसके अतिरिक्त वे कभी भी शत्रु की धरती पर न तो आग लगाते हैं और न ही पेड़ों को काटकर गिराते हैं।[479]

प्राचीन भारतीय संस्कृति और पूरब की सभ्यताओं पर अग्रणी विद्वान प्रोफेसर आर्थर बाशम (मृत्यु 1986) ने युद्ध की प्राचीन भारतीय संहिता के बारे में लिखा है कि 'भारत के युद्ध के समस्त इतिहास में हिंदू भारत में न के बराबर ऐसी कथाएं मिलेंगी कि किसी नगर को तलवार के अधीन रखा गया हो अथवा अ-योद्धाओं का नरसंहार किया गया हो। अस-सीरिया के सुल्तान जिस प्रकार जीवित बंदियों की चमड़ी उधेड़ लेते थे, उस प्रकार का वीभत्स परपीड़न प्राचीन भारत में कहीं नहीं मिलता है। हमारे लिये प्राचीन भारतीय सभ्यता का असाधारण पक्ष इसकी मानवता है।'[480] सातवीं सदी के बौद्ध तीर्थयात्री ह्वेन सांग, जो चीन से नालंदा विश्वविद्यालय आये थे, ने लिखा है कि भारत के शासन कर रहे राजकुमारों के मध्य पर्याप्त प्रतिद्वंद्विता होने के बाद भी यह देश बहुत कम आहत था। भारत आये चौथी सदी के चीनी तीर्थयात्री फाह्यान भारतीयों की शांति, समृद्धि और उच्च संस्कृति को देखकर अचंभित रह गया। लिंडा जॉनसन कहते हैं, युद्धग्रस्त चीन में पला-बढ़ा फाह्यान एक ऐसा देश देखकर अत्यंत प्रभावित हुआ, जहां के राजा जनसंख्या के बड़े भाग को मारने-काटने के स्थान पर वाणिज्य और धर्म को प्रोत्साहन दे रहे थे।[481]

जंग की मुस्लिम विधि

अब तक के विमर्श से यह स्पष्ट है कि भारत में इस्लामी हमलावर जंग के नितांत भिन्न नियम लेकर आये, जो कि कुरआन और सुन्नत पर आधारित था। समकालीन मुस्लिम इतिहासकार हमें बताते हैं कि यह सामान्य नियम था कि जंग के मैदान में शत्रु के सभी योद्धाओं की हत्या कर दिया करते थे। विजय के बाद प्रायः वे गांवों व नगरों के नागरिकों पर टूट पड़ते थे और सभी वयस्क पुरुषों की हत्या कर देते थे। वे लूट का माल पाने के लिये घरों को छिन्न-भिन्न कर देते थे और लूट लेते थे तथा कभी-कभी तो पूरे के पूरे गांवों व नगरों में आग लगा देते थे। जनसमुदाय में से भी उन बौद्ध भिक्षुकों और पुरोहित ब्राह्मणों को मिटाने का उनका विशेष लक्ष्य होता था, जिनमें सामान्य जनता आस्था रखती थी। काफिर धर्म और ज्ञान केंद्र यथा हिंदू व जैन मंदिर, बौद्ध मठ, सिख गुरुद्वारा एवं देसी शैक्षणिक संस्थान प्रमुख लक्ष्य होते थे, जिन्हें अपवित्र किया जाता था, जिनका विध्वंस किया जाता था और जिन्हें लूटा जाता था। बड़ी संख्या में स्त्रियों और बच्चों को दास के रूप में बंदी बनाया जाता था। जो बंदी स्त्री युवा व सुंदर होती थी, उन्हें वे यौन-दासी (सेक्स-स्लेव) बनाकर रखते थे, अन्य महिला बंदियों को घरों की नौकरानी बनाकर रखते थे तथा जो शेष बचती थीं, उन्हें बेच दिया जाता था। बंदियों की संख्या और लूट के माल के परिमाण से फौजी मिशनों की प्रतिष्ठा और सफलता मापी जाती थी; अग्रणी मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा इसका गुणगान करने वाले वर्णनों में यह प्रतिबिंबित होता है। जब बड़ी संख्या में काफिर मारे जाते थे, तो सुल्तान मुहम्मद गोरी, कुत्बुद्दीन ऐबक और बादशाह बाबर आदि अपनी उपलब्धि का उत्सव मनाने के

---

[479] डेनियलौ, पृष्ठ 106

[480] बाशम एएल (2000) द वंडर दैट वाज इंडिया, साउथ एशिया बुक्स, कोलंबिया, पृष्ठ 8-9

[481] जॉनसन एल (2001) कम्प्लीट इडियट्स गाइड टू हिंदूइज्म, अल्फा बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 38

लिये उनके सिरों का ढेर लगाकर ''विजय-स्तंभ'' खड़ा करते थे। फरिश्ता में लिखा है, 'दक्खिनी सल्तनत के सुल्तान अहमद शाह बहमनी (1422-36) ने विजयनगर साम्राज्य पर हमला किया, तो वह जहां-जहां पहुंचा वहां निर्दयतापूर्वक पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्याएं कीं, जबकि उसके चाचा व पूर्ववर्ती महमूद शाह और बीजानगर के रायों के बीच (नागरिकों को क्षति नहीं पहुंचाने की) संधि थी। जब मारे गये लोगों की संख्या बीस हजार पहुंच जाती थी, तो वह वहां तीन दिन तक ठहरता था और इस रक्तरंजित घटना का आनंद मनाने के लिये उत्सव का आयोजन करता था। उसने मूर्तिपूजा वाले मंदिरों को भी तोड़ा और ब्राह्मणों के गुरुकुलों को नष्ट किया।'[482] मुस्लिम हमलावरों और शासकों ने कुरआन में दिये गये आदेश के अनुसार अल्लाह के मार्ग में जिहाद के लिये ये सब बर्बर कृत्य किये। इस्लाम के आने वाले जिहादियों के लिये रसूल मुहम्मद द्वारा मदीना के बनू क़ुरैजा यहूदी जनजाति (627) या खैबर के यहूदियों (628) पर किये गये हमले और उनके साथ उसका व्यवहार आदर्श रहा।

हिंदू युद्ध संहिता और मुस्लिम जंग नियम एक-दूसरे के विपरीत हैं और दिल्ली और अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान पर मुहम्मद गोरी के हमले (1191) में यह स्पष्ट दिखा। पहले हमले में मुहम्मद गोरी पराजित हुआ और बंदी बना लिया गया। भारत की उत्तरी सीमाओं पर नरसंहार, दास बनाने, लूटपाट और विध्वंस करने वाले उसके अनेक बर्बर हमलों के बाद भी पृथ्वीराज चौहान ने उसे क्षमा कर दिया और कोई दंड या अपमान दिये बिना उसे मुक्त कर दिया। कुछ ही मासों में गोरी ने पुनः गिरोह बनाकर हमला किया और इस उदारमना हिंदू राजा को पराजित किया।[483] पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी पर जो उदारता दिखायी थी, उसके बदले उसने मृत्यु से पूर्व उनकी आंखें तक निकाल ली थीं।[484]

युद्ध के हिंदू और मुस्लिम नियमों में अंतर फरिश्ता में दिये गये उस वर्णन से भी जाना जा सकता है, जिसमें 1366 में विजयनगर साम्राज्य के राजा कृष्णदेव राय पर दक्खिनी सल्तनत के सुल्तान मुहम्मद शाह के हमले का वर्णन है। फरिश्ता में लिखा है कि मुहम्मद शाह ने इस हमले में 100,000 काफिरों की हत्या का प्रण लिया था और 'इतने निर्मम ढंग से उन काफिरों का नरसहार हुआ कि गर्भवती महिलाएं और दूध पिलाती माताएं भी तलवार से नहीं बच सकी थीं।'[485] मुस्लिम फौज द्वारा छल से अचानक किये गये इस हमले में कृष्णदेव राय बचकर निकलने में सफल रहे, पर उनके 10,000 सैनिक मारे गये। फरिश्ता में लिखा है, 'इतने से ही मुहम्मद की प्रतिशोध की प्यास कम नहीं हुई और उसने आदेश दिया कि विजयनगर के आसपास के प्रत्येक स्थान के सभी निवासियों का नरसंहार किया जाए।'

कृष्णदेव राय ने शांति संधि के लिये दूत भेजे, पर मुहम्मद शाह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसके बाद सुल्तान के एक प्रिय परामर्शक ने उसे स्मरण कराया कि 'उसने केवल एक लाख हिंदुओं की हत्या का प्रण लिया था, न कि हिंदुओं की प्रजाति

---

[482] फरिश्ता, अंक द्वितीय, पृष्ठ 248

[483] दत्त, केजी, द मॉर्डन फेस ऑफ अंग क्षेत्र, ट्रिब्यून इंडिया, 17 अक्टूबर 1988

[484] पृथ्वीराज तृतीय, विकीपीडिया

[485] फरिश्ता, अंक 2, पृष्ठ 195

को नष्ट करने का संकल्प लिया था।' इस पर सुल्तान ने उत्तर दिया कि 'जितने हिंदुओं को मारने का प्रण लिया था, उससे दोगुनी संख्या में हिंदू मारे गये हैं', परंतु वह अभी भी न तो शांति संधि करने और न ही वहां की जनता को छोड़ने का इच्छुक है।[486] इसका अर्थ यह है कि इस अभियान में लगभग 200,000 हिंदू मारे गये थे। अंततः वे दूत वहीं बड़ी मात्रा में धन देकर शांति संधि करने में सफल रहे और सुल्तान से निवेदन किया कि उन्हें बोलने दिया जाए। फरिश्ता के अनुसार, 'बोलने की अनुमति मिलने पर, उन्होंने कहा कि कोई धर्म किसी दोषी (राजाओं) के अपराध के लिये निर्दोष जनता को दंडित करने को नहीं कहता है, विशेष रूप से निरीह स्त्रियों और बच्चों को दंड देने की आवश्यकता नहीं होतीः यदि कृष्णदेव दोषी हैं, तो उनकी भूल के लिये निरीह व दुर्बल प्रजा अपराधी नहीं होती है। इस पर मुहम्मद शाह ने कहा कि अल्लाह के विधान (अर्थात अल्लाह की ओर से कुरआन 9:5 दिया गया आदेश कि मूर्तिपूजकों का नरसंहार करो) का आदेश दिया गया है, जो पूरा किया गया है और बोला कि कोई ताकत अल्लाह के विधान में फेरबदल नहीं कर सकती है।' फरिश्ता में आगे लिखा है, 'फिर भी अंत में वो दूत मुहम्मद शाह में मानवीय भाव जगाने में सफल रहे और 'उसने शपथ ली कि वह आगे से जीतने पर एक भी शत्रु की हत्या नहीं करेगा और अपने उत्तराधिकारी को यही व्यवहार करने के लिये निर्देशित करेगा।'[487] युद्ध के हिंदू और इस्लामी नियम एक-दूसरे के विपरीत होने के बारे में जॉन जोन्स ने टिप्पणी कीः 'यह एक रोचक तथ्य है कि जब तक मुहम्मद के अनुयायियों ने भारत भूमि पर हमला नहीं शुरू किया, भारत के लोगों को कदाचित ही असहिष्णुता के इस घिनौना और रक्तरंजित राक्षस के विषय में पता था।'[488] उन्नीसवीं सदी के महान दार्शनिक आर्थर शोपेनहावर (मृत्यु 1860) ने भारत में इस्लामी हमले की नीच कथाओं का वर्णन इस प्रकार किया हैः '...अंतहीन अत्याचार, मजहबी जंगें, रक्त का प्यासा उन्माद, इन सबका प्राचीन (भारत के) लोगों में कल्पना तक ना थी! प्राचीन मंदिरों और मूर्तियों का विध्वंस अथवा उनको विकृत करना, दुखजन्य, उपद्रवी और बर्बर कृत्य आज भी उस एकेश्वरवादी विक्षिप्तता के साक्षी हैं... जो गजनी की घृणायोग्य स्मृति महमूद से लेकर औरंगजेब तक चलता रहा... हम हिंदुओं के विषय में ऐसा कुछ नहीं सुनने को पाते हैं।'[489] अंग्रेजी उपन्यासकार एल्डाउस हक्सले (1894-1963) ने इस्लाम के पाशविक इतिहास की तुलना बाद के वर्षों के ईसाइयत के इतिहास से करते हुए एंड्स एंड मीन्स में लिखते हैं:

> यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि मुसलमानों के आने के पहले भारत में अत्याचार व उत्पीड़न वास्तव में नहीं था। चीनी यात्री ह्वेन सांग, जो सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत आये थे, ने भारत में बिताये अपने 14 वर्षों का विस्तृत विवरण लिखा है और इसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि हिंदू और बौद्ध एक-दूसरे के साथ बिना किसी हिंसा के रहते थे। धार्मिक न्यायाधिकरण जैसा कुछ नहीं था, जो हिंदू धर्म

---

[486] इबिद, पृष्ठ 196-97

[487] इबिद, पृष्ठ 197

[488] जोन्स जेपी (1915) इंडिया- इट्स लाइफ एंड थॉट, द मैक्मिलन कंपनी, न्यूयार्क, पृष्ठ 166

[489] सांडर्स टीबी (1997) द एस्सेज ऑफ आर्थर शोपेनहावरः बुक 1: विजडम ऑफ लाइफ, डी यंग प्रेस, पृष्ठ 42-43

या बौद्ध धर्म को नीचा दिखाता हो। जैसे अल्बीजेंसियन धर्मयुद्ध या 16 वीं व 17वीं सदियों के मजहबी जंगों जैसे आपराधिक उन्माद हुए थे, उस प्रकार से भारत में किसी को धार्मिक आलोचना के लिये अपराधी नहीं ठहराया गया था।[490]

इसमें कोई विवाद नहीं है कि भारत में बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिख धर्म का जन्म हिंदू धर्म से विद्रोह स्वरूप हुआ। ये नयी धार्मिक शाखाएं हिंदू समाज के मध्य की पोशित हुईं और इन्हें वैसे किसी भी प्रकार के उत्पीड़न का सामना नहीं करना पड़ा, जैसा कि भारत में इस्लाम द्वारा अत्याचार किया गया और इस्लाम के पूरे इतिहास में इस्लाम न स्वीकार करने वालों अथवा इस्लाम छोड़ने वालों को भयानक सताया गया। यूरोप, दक्षिणी अमेरिका और भारत के गोवा में ईसाई उत्पीड़न और बर्बरता करोड़ों बहुदेववादियों, यहूदियों, धर्म पर तर्क करने वालों, नास्तिकों की मृत्यु का कारण बना। इस्लाम में रसूल मुहम्मद ने अपनी आलोचना करने वालों और इस्लाम छोड़ने वालों की हत्या करने का आदेश दिया था और तब से लेकर आज तक आलोचकों और इस्लाम छोड़ने वालों की हत्या की श्रृंखला चलती आ रही है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस्लाम के जन्म के समय बुद्ध धर्म मध्य व दक्षिणपूर्व एशिया में फलता-फूलता धर्म था तथा भारत के विभिन्न भागों में ओजस्वी स्थिति में था। इस्लाम ने भारत से इस सर्वाधिक मानवीय और शांतिपूर्ण धर्म को लगभग पूर्णतः नष्ट कर दिया। इस्लाम ने मुहम्मद के जीवनकाल में ही तलवार के बल पर अरब से मूर्तिपूजा मिटा दी। इस्लाम के हिंसक हमलों के कारण फारस के पारसी (जोराष्ट्रियन) और लीवैंट, इजिप्ट और अंतोलिया आदि के ईसाई भी लुप्त होने की स्थिति में आ गये। दसियों हजार पारसी भागकर भारत चले गये, जहां हिंदू समाज ने उनका स्वागत किया और आज भी वे वहां शांतिपूर्ण और सम्पन्न समुदाय के रूप में जी रहे हैं। यद्यपि जब बाद में मुस्लिम हमलावरों ने भारत पर कब्जा कर लिया, तो यहां भी पारसियों को भी इस्लाम का बर्बर अत्याचार सहना पड़ा। गजनी वंश के सुल्तान महमूद का वंशज सुल्तान इब्राहीम भारत की ओर बढ़ा; और तबाकत-ए-अकबरी के लेखक व इतिहासकार निजामुद्दीन अहमद के अनुसार, 'उसने बहुत से नगरों और किलों को जीत लिया। इसमें से एक सघन जनसंख्या वाला नगर था, जिसमें खुरासानी वंश (पारसी) की जनजाति बहुतायत में रहती थी। इन खुरासानियों को अफ्रासिया ने उनके देश से भगा दिया था। यह जनजाति पूर्णतः नष्ट कर दी गयी.... वह इस जनजाति कम से कम 100,000 लोगों को बंदी बनाकर ले गया।'[491]

मुस्लिम वृत्तांत लेखकों की दृष्टि में भारतीय सहिष्णुता

भारतीयों की मानवता, सहिष्णुता और शिष्टता से मुस्लिम इतिहासकार अत्यंत प्रभावित हुए। अरब भूगोलविद् अबू ज़ैद ने भारतीय सभ्यता के विस्तार सरंदीब (श्रीलंका) के शासकों व प्रजा के विषय में लिखा है कि नौवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 'सरंदीब में यहूदियों और अन्य धर्मावलंबियों, विशेष रूप मैनिचिअनों की बहुत सी बस्तियां थीं। राजा की ओर से प्रत्येक पंथ को अपने धर्म का पालन करने की अनुमति दी गयी थी।'[492] प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार और यात्री अल-मसूदी ने दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के सबसे

---

[490] स्वरूप आर (2000) ऑन हिंदुइज्म रिव्यूज एंड रिफ्लेक्शंस, वॉयस ऑफ इंडिया, पृष्ठ 150-51

[491] इलियट एंड डाउसन, अंक 5, पृष्ठ 559

[492] इबिद, अंक एक, पृष्ठ 10

शक्तिशाली राजा बलहार का अपने साम्राज्य में बसे हुए मुसलमानों के साथ व्यवहार का वर्णन किया है। मसूदी ने बलहार (दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट वंश) को विश्व तीन सबसे बड़े साम्राज्यों: बगदाद का खलीफा, चीन के सम्राट और कुस्तुंतुनिया के सम्राट की श्रेणी में रखा है।[493] मुस्लिमों के प्रति महाराजा बलहार के व्यवहार पर अल-मसूदी ने लिखा है: 'सिंध और भारत के राजाओं में कोई ऐसा नहीं है, जो मुसलमानों को महाराजा बलहार से अधिक सम्मान देता हो। उनके राज्य में इस्लाम सम्मानित और संरक्षित है।'[494] बंबई के निकट काली मिर्च व मसालों के अरबी और ईराकी व्यापारियों के बसने से वहां बड़ा मुस्लिम समुदाय था, जिसके बारे में अल-मसूदी ने वर्णन (916-17) किया है कि स्थानीय राजा द्वारा इस मुस्लिम समुदाय को एक सीमा तक राजनीतिक स्वायत्ता प्रदान की गयी थी और स्थानीय लोगों से शादियां भी करते थे।'[495] बलहार के साम्राज्य में मुसलमानों की स्थिति के विषय में अल-इस्तहकरी (सी. 951) ने लिखा है: 'बलहार साम्राज्य काफिरों की धरती है, पर इसके नगरों में मुसलमान भी हैं तथा उस भाग पर कोई और नहीं, अपितु मुसलमान ही उन पर शासन करते हैं।'[496]

दसवीं सदी का विख्यात अरब यात्री, भूगोलवेत्ता व सूरत अल-अर्ज अर्थात धरती का स्वरूप (977) नामक प्रसिद्ध आलेख का लेखक इब्न हयकल जब काम्बे और सैमूर के बीच के क्षेत्रों की यात्रा कर रहा था तो-देखा कि 'जनता मूर्तिपूजक थी, पर स्थानीय राजाओं द्वारा मुसलमानों के साथ भी अच्छा व्यवहार किया जाता था। मुसलमानों पर उन्हीं के मजहब के व्यक्ति द्वारा शासन किया जाता था... उन्होंने इन काफिर नगरों में मस्जिदें खड़ी कर ली थीं और उन्हें अजान देकर अन्य मुसलमानों को नमाज के लिये बुलाने की अनुमति थी।[497] अल-इदरीसी भी बलहारा के क्षेत्र में मुसलमानों के साथ व्यवहार का ऐसा ही विवरण देता है: 'नगर में बड़ी संख्या में मुसलमान व्यापार के लिये आते हैं। राजा और उसके मंत्रियों द्वारा उनका सम्मान के साथ स्वागत किया जाता है और उनकी सुरक्षा और संरक्षण का प्रबंध किया जाता है।' अल-इदरीसी आगे लिखता है: 'भारतीय स्वाभाविक रूप से न्याय की ओर झुके होते हैं और अपने कार्य-व्यवहार में न्याय का पक्ष कभी नहीं छोड़ते हैं। अपने वचन के प्रति श्रेष्ठ आस्था, शुचिता और शुद्धता सुविख्यात है, और वे अपने इन गुणों के लिये इतने प्रसिद्ध हैं कि संसार भर से लोग उनके देश में आते हैं।' वह भारतीयों में 'सत्य के प्रति प्रेम और पापाचार के प्रति घृणा' से भी अत्यंत प्रभावित था।''[498] यहां तक कि आधुनिक मुस्लिम इतिहासकार

---

[493] नेहरू (1989), पृष्ठ 210

[494] इबिद, पृष्ठ 24

[495] ईटन (1978), पृष्ठ 13

[496] इबिद, पृष्ठ 27

[497] इलियट एंड डाउसन, अंक 1, पृष्ठ 457

[498] इबिद, पृष्ठ 88

हबीबुल्लाह कहता है कि 'हिंदुओं द्वारा मुसलमानों के साथ उदारता और सम्मान का व्यवहार होता था और उन्हें स्वतंत्रता प्रदान की गयी थी, यहां तक कि अपने ऊपर शासन करने का उनको अधिकार दिया गया था।'[499]

भारतीयों के ये नैतिकतापूर्ण सिद्धांत उनकी सभ्यता के मूल्य प्रणाली से आते हैं। राजा अशोक के विषय में लगता है कि वह महान विजेता बनने की अपनी महात्वकांक्षा में इन सिद्धांतों से दूर हुआ था। यद्यपि वह भी कलिंग की विजय में 100,000 सैनिकों और सामान्य जनों के मारे जाने एवं भयानक क्षति से व्यथित हो गया। परिणामस्वरूप वह महान मानवतावादी हो गया और युद्ध की कल्पना मात्र से भयाक्रांत हो जाया करता था; वह एक संकल्पबद्ध युद्ध-विरोधी कार्यकर्ता बन गया। मुस्लिम जीत में बड़ी संख्या में काफिरों का मारा जाना सामान्य घटना थी और अधिकांश महान मुस्लिम बुद्धिजीवियों सहित मुसलमानों द्वारा सामान्यतः सभी स्तरों पर इस रक्तपात का महिमामंडन किया जाता है।

यह स्पष्ट है कि निर्दयी मुस्लिम हमलावरों के हाथों भयानक क्रूरता सहने के बाद भी भारतीय शासकों ने मुसलमानों के प्रति उदारता, मानवता और शिष्टता का व्यवहार किया। खलीफा अल-मुतासिम (833-42) के शासन के समय हिंदुओं ने मुस्लिम शासकों से विद्रोह कर उन्हें सिंधन से उखाड़ फेंका, तो तब भी हिंदुओं की ओर से उदारता और शिष्टता दिखायी गयी। दो सदियों से अधिक समय तक इतना अधिक नरसंहार, विनाश, लूटपाट, दासता और मंदिरों को अपवित्र करने के घटनाएं सहने के बाद भी हिंदुओं ने उन मस्जिदों का सम्मान किया, जहां मुसलमान प्रत्येक शुक्रवार को खलीफा के लिये खुतबा करने और दुआ पढ़ने के आते थे।'[500]

मुस्लिम काल में हिंदुओं की सहिष्णुता और शिष्टता

इस्लामी प्रभुत्व के अंतिम काल तक में भी भारतीय शासकों ने मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता, उदारता और शिष्टता का सिद्धांत अपनाया; इस समय तक मुसलमान हमलावरों ने लगभग एक हजार वर्षों से कई भागों में हिंदुओं पर भयानक क्रूरता की थी और उनके धर्म का विनाश किया था। भारत में मुस्लिम शासन की अवधि में साहसी भारतीय राजाओं व साधारण लोगों ने मुस्लिम हमलावरों के विरुद्ध विद्रोह किया और कई बार हिंदू राज्य स्थापित किये। दक्षिण भारत (आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु व केरल) का विजयनगर साम्राज्य ऐसा ही हिंदू साम्राज्य (1336-1565) था। निरंतर मुस्लिमों के हमले को झेलते हुए इस साम्राज्य कभी स्वतंत्र राज्य रहा, तो कभी-कभी इसे मुस्लिम सुल्तानों को नजराना भी देना पड़ा। किंतु तब भी विजयनगर साम्राज्य उस समय के विश्व में सबसे महान साम्राज्य था। अब्दुल रज्जाक हेरात, जो कि मध्य एशिया के मंगोल खान का दूत बनकर 1443 में विजयनगर आया, ने लिखा है, ''यह नगर ऐसा अप्रतिम है कि पूरी धरती पर इसके समान कोई नगर न तो देखा और न ही सुना गया गया होगा।''[501]

---

[499] शर्मा, पृष्ठ 89

[500] इलियट एंड डाउसन, अंक 1, पृष्ठ 450

[501] इबिद, अंक 4, पृष्ठ 106

सन् 1522 में विजयनगर की यात्रा करने वाले पुर्तगाली यात्री पेस ने इस नगर को रोम जितना बड़ा और दिखने में अत्यंत सुंदर पाया; यह विश्व में ''सबसे सुव्यवस्थित-सम्पन्न नगर था... क्योंकि इस नगर की स्थिति उन अन्य नगरों के जैसे नहीं थी, जो आपूर्ति और व्यवस्था में प्रायः विफल रहते हैं। यहां तो सब कुछ प्रचुर था।''[502] नायपाल लिखते हैं, जनश्रुतियों के अनुसार यह इतना समृद्ध साम्राज्य था कि हाट में मोती और माणिक्य की बिक्री ऐसे होती थी, जैसे कि अनाज।[503] रज्जाक का आंखों देखा वह विवरण इस जनश्रुति की पुष्टि करता है, जिसमें कहा गया हैः 'सोनार अपने माणिक्य, मोती और हीरा व पन्ने खुले हाट में बेचते हैं।'[504] 1564 के उत्तरार्द्ध में चार पड़ोसी मुस्लिम सल्तनतों ने 200 वर्ष से चल रही विजयनगर की इस महान हिंदू सभ्यता को नष्ट करने के हाथ मिलाया। पांच मास की घेराबंदी के बाद जनवरी 1565 में इस नगर को जलाकर राख दिया गया। अंग्रेजी इतिहासकार राबर्ट सेवेल ने इस विनाश के बारे में लिखा है कि ''इतना वैभवशाली नगर; समृद्धि व सम्पन्नता से परिपूर्ण.... घेराबंदी की गयी, लूटा गया और खंडहर बना दिया गया, नृशंस नरसंहार और भयानक आतंक के दृश्यों के बीच।''[505] भाग रहे हिंदुओं के नरसंहार और लूटपाट पर फरिश्ता में लिखा है, 'नदियां उनके रक्त से लाल हो गयी थीं। सर्वोत्तम आधिकारिक विद्वानों द्वारा परिकलित किया गया है कि 'इस कार्रवाई और लक्ष्य में एक लाख से अधिक काफिर मारे गये थे। लूटपाट इतनी अधिक थी कि सल्तनतों के गठबंधन फौज का प्रत्येक व्यक्ति सोना, आभूषणों, शिविरों, हथियारों, घोड़े और दासों से धनी हो गया...।'[506]

आइए, विजयनगर राजाओं की सहिष्णुता पर लौटते हैं। फरिश्ता में लिखा है, मुस्लिम हमलों को रोकने के लिये अपनी सेना को सुदृढ़ बनाने हेतु राजा देवराय द्वितीय (1419-49) ने सेवा में (अपने साम्राज्य के) मुसलमानों को सूचीबद्ध करने का आदेश दिया, उन्हें भूमि आवंटित की तथा बीजानगर (विजयनगर) के नगर में उनके उपयोग के लिये एक मस्जिद भी बनवायी। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि कोई भी मुसलमानों को अपने मजहब के पालन के लिये बुरा नहीं कहेगा तथा इसके अतिरिक्त उन्होंने आदेश दिया कि उनके सिंहासन के सामने एक ऊंचे डेस्क पर कुरआन रखी जाए, जिससे कि वे दीन वाले (मुसलमान) अपने मजहबी नियमों से घात किये बिना उनके सामने निष्ठा की शपथ ले सकें।'[507] यद्यपि इन विश्वासघाती मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता और उनको प्रोत्साहित करना अंततः हिंदू सभ्यता विजयनगर के लिये बहुत महंगा सिद्ध हुआ। सोलहवीं सदी के मध्य तक मुसलमान विजयनगर की सेना में महत्वपूर्ण स्थिति में आ गये थे। जब आसपास के सल्तनतों के गठबंधन की फौजों ने 1564-65 में विजयनगर पर हमला किया, तो मुस्लिमों की दो बड़ी बटालियनों ने विजयनगर के राजा रामराजा को छोड़ दिया। मुस्लिमों की एक-

---

[502] नेहरू (1989), पृष्ठ 258

[503] नायपाल वीएस (1977), भारतः ए वाउंडेड सिविलाइजेशन, अल्फ्रेड ए नोफ इंक, न्यूयार्क, पृष्ठ 5

[504] इलियट एंड डाउसन, अंक 4, पृष्ठ 107

[505] नेहरू (1989), पृष्ठ 258

[506] फरिश्ता अंक तृतीय, पृष्ठ 79

[507] इबिद, पृष्ठ 266

एक बटालियन में 70,000-80,000 सैनिक थे। इन दोनों मुस्लिम कमांडरों के विश्वासघात के कारण रामराजा मुस्लिमों के हाथों में पड़ गये। सुल्तान हुसैन निजाम शाह ने तत्काल उनका सिर उड़ा देने का आदेश दिया। इसके दो वर्ष बाद 1567 में विजयनगर की यात्रा करने वाले सीजर फ्रेडरिक ने बताया है कि मुसलमानों के विश्वासघात ने विजयनगर को पराजय के द्वार पर पहुंचा दिया।[508]

यद्यपि यह स्वीकार करना चाहिए कि रामराजा की सेना में कुछ अंश तक असहिष्णुता पनप रही थी। रामराजा अत्यंत शक्तिशाली हो गये थे और पड़ोस के मुस्लिम सल्तनतों के भूभाग पर नियंत्रण कर रहे थे, जिससे मुस्लिम सल्तनत के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा था। मुस्लिम क्षेत्र में घुसपैठ के क्रम में उनकी सेना मुसलमानों को उसी भाषा में उत्तर दे रहे थे, जो मुसलमान 630 के दशक से भारत में हमले के समय से ही करते आ रहे थे, प्रमुखतः वे पिछले 200 वर्षों से विजयनगर साम्राज्य के साथ जैसा कर रहे थे। फरिश्ता में लिखा है, उनकी सेना ने मस्जिदों का अनादर करना, उनमें हिंदू पूजा करना और यहां तक कि उनमें से कुछ को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया था; उन्होंने 1558 में हुसैन निजाम द्वारा शासित अहमदनगर पर हमले में मुस्लिम औरतों के साथ भी दुर्व्यवहार किया।[509] यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदू सम्राट ने अपनी सेना के इन दोषपूर्ण कृत्यों का अनुमोदन नहीं किया। एक अवसर पर उनके मुसलमान सैनिकों ने हिंदुओं की भावना आहत करने के लिये विजयनगर के तुरुकवाड़ा में हिंदुओं में पवित्र मानी जाने वाली गाय काट दिया। इससे आहत रामराजा के भाई तिरुमला सहित अधिकारियों और दरबारियों ने उनके समक्ष मुसलमानों के इस अपराध को बताते हुए अनुनय किया। ध्यान दीजिए कि आज भी किसी मुस्लिम-बहुल देश यथा पाकिस्तान या बांग्लादेश में इस्लाम के विरुद्ध ऐसा कोई अपराध हो, तो इससे मुस्लिम भीड़ हिंसा के लिये भड़क जाएगी, और संभव है कि रक्तपात होने लगे। किंतु तब भी रामराजा ने अपने मुस्लिम सैनिकों द्वारा गो-हत्या किये जाने पर प्रतिबंध लगाने से मना कर दिया और बोले कि उनकी मजहबी प्रथाओं में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है। रामराजा ने कहा कि वे अपने सैनिकों के शरीर के स्वामी हैं, न कि उनकी आत्मा के।[510]

उन्मादी औरंगजेब (मृत्यु 1707) के शासन में जब भारत में इस्लामी प्रभुत्व अवसान की ओर था, तो उसके मराठा प्रतिद्वंद्वी शिवाजी शक्ति संगठित कर रहे थे और अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। काबिल खान ने अदब-ए-आलमगीरी में लिखा है, 'जब शिवाजी ने दक्षिण में मुगलों के क्षेत्र में घुसना प्रारंभ किया, तो औरंगजेब, जो कि अभी भी एक शहजादा ही था, ने अपने जनरल नासिरी खान व अन्य अधिकारियों को लिखा कि वे गांवों को उजाड़ते हुए, बिना किसी दया के लोगों को काटते हुए और लूटते हुए चारों ओर से शिवाजी के क्षेत्र में प्रवेश करें।' उन्हें यह भी निर्देश दिया गया कि लोगों की हत्या करने और उन्हें पकड़कर

---

[508] मजूमदार आरसी ईडी (1973) द मुगल एम्पायर, इन द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपुल, बॉम्बे, अंक 7, पृष्ठ 425

[509] फरिश्ता, अंक 3, पृष्ठ 72,74

[510] जर्नल ऑफ द बांबे ब्रांच ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, अंक 12, पृष्ठ 28

दास बनाने तनिक भी दया न दिखाएं,[511] जो कि सदियों पुराना मुस्लिम चलन था। किंतु नितांत धार्मिक व्यक्ति शिवाजी कभी इस प्रकार की क्रूरता और हिंसा में संलिप्त नहीं रहे। यहां तक उनके कट्टर आलोचक खाफी खान ने भी अपनी पुस्तक मुंतखब-उल-लुबाब में यह कहकर शिवाजी के ऊंचे आदर्शों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकाः 'किंतु उन्होंने (शिवाजी) यह नियम बनाया था कि जब भी उनके अनुयायी धावा बोल रहे हों, तो वे न तो किसी मस्जिद व कुरआन को क्षति पहुंचाएं और न ही किसी की स्त्री को हानि पहुंचाएं।'[512]

शिवाजी ने अपना वचन आचरण में भी निभाया। इस तथ्य के बाद भी कि मुस्लिम शासन दसियों हजार की संख्या में हिंदू स्त्रियों को पकड़कर दास बना लिया करते थे और उन्हें सेक्स-स्लेव बना देते थे, वो बंदी बनायी गयी अत्यंत सुंदर स्त्रियों के लोभ की उपेक्षा करते हुए इस प्रकार की घृणित प्रथा से दूर रहे। 1657 में उनके एक अधिकारी ने एक सुंदर मुस्लिम कन्या को बंदी बना लिया और उसे शिवाजी को उपहार में दिया। शिवाजी ने उस कन्या को अपनी मां जीजाबाई से सुंदर बताते हुए प्रशंसा की और सम्मानपूर्वक वस्त्र व आभूषण देकर 500 घुड़सवारों की सुरक्षा में उसे उसके लोगों के पास वापस भेज दिया।[513] निश्चित रूप से इस प्रकार के शिष्टाचार को देखकर ही खाफी खान अपने कट्टर शत्रु की प्रशंसा करने को विवश हो गया।

शिवाजी ने धार्मिक संस्थाओं और मुस्लिमों सहित सभी लोगों के प्रतीकों का सम्मान करने के अपने वचन को निभाया। इस तथ्य के बाद भी कि उनके शत्रु औरंगजेब ने हजारों मंदिरों का विध्वंस किया था- उसने 1979 के एक वर्ष में ही 200 मंदिरों को तोड़ा था, शिवाजी ने निष्ठापूर्वक मुस्लिम मस्जिदों, मदरसों या मजहबी स्थानों को अपवित्र करने में संयम दिखाया। वह तो इनके प्रति बहुत सम्मान दिखाते थे। उन्होंने सूफियों का सम्मान किया और उनकी जीविका की व्यवस्था भी की, अपनी लागत पर उनके लिये खनक़ाह बनवाया। विशेष रूप से, केलोशी के बाबा याकूत ऐसे ही एक सूफी फकीर थे, जिन्हें शिवाजी से सहायता मिली।[514]

शिवाजी ने रक्तपात की अति भी नहीं की। जबकि मुस्लिम हमलावर और शासकों द्वारा दसियों हजार हिंदुओं का एक साथ हत्या कर दिया जाना सामान्य था। यहां तक कि सहिष्णु और मानवीय कहकर जिसका महिमामंडन किया गया है, उस अकबर ने भी चित्तौड़ (1568) में आत्मसमर्पण करने वाली 30,000 निर्दोष जनता का नरसंहार करवा दिया था। शिवाजी ने कभी भी युद्ध में बंदी बनाये गये अपने शत्रुओं की ऐसी नृशंष सामूहिक हत्या नहीं की। 1664 में जब उन्होंने सूरत पर चढ़ाई की, तो मुगल गवर्नर इनायत खान मैदान छोड़कर भाग गया और उसकी मुस्लिम फौज के 500 जिहादियों को बंदी बना लिया गया। इनायत खान जहां छिपा हुआ था, वहीं से उसने शांति समझौता करने के लिये दूत भेजा। समझौता प्रस्ताव लेकर आने के बहाने दूत के वेश में आए उस जिहादी ने छिपाकर लाये गये कटार से शिवाजी पर हमला कर दिया, जो असफल रहा। जिहादी का यह विश्वासघात देखकर

---

[511] सरकार जे (1992) शिवाजी एंड हिज टाइम्स, ओरिएंट लांगहैम, मुंबई, पृष्ठ 39

[512] घोष एससी (2000) द हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन मेडिवल इंडिया 1192-1757, ओरिनल्स, न्यू देल्ही, पृष्ठ 122

[513] सरकार, पृष्ठ 43

[514] सरकार, पृष्ठ 288; घोष, पृष्ठ 122

और यह सोचकर शिवाजी मार दिये गये, शिवाजी के सैनिक मुस्लिम बंदियों को मार डालने के लिये चीखते हुए आगे बढ़े। इतने में शिवाजी तत्परता से भूमि से उठ खड़े हुए और उन्हें नरसंहार करने से रोका। यद्यपि जिहादी के इस विश्वासघात से आवेश में आये शिवाजी ने मुस्लिम बंदियों में चार का वध करके, 24 का अंगभंग करके अपना क्रोध शांत किया तथा शेष मुस्लिम बंदियों को मुक्त कर दिया।[515] वैसे शिवाजी इस प्रकार का प्रतिशोध कम ही लेते थे; यह प्रत्यक्ष रूप से अति वर्जित था, यहां तक बाद में ब्रिटिश व्यापारी दूत आये, तो वे भी शिवाजी द्वारा अपनाये गये संयम की बराबरी नहीं कर सकते हैं।

जदुनाथ सरकार ने लिखा है, 'अपने प्रशासन में शिवाजी अपने राज्य में शांति व सुव्यवस्था लाये, नारी सम्मान और बिना भेदभाव के धर्म के सभी पंथों के सम्मान का संरक्षण सुनिश्चित किया, सभी पंथों (मुस्लिमों सहित) के वास्तविक धार्मिक व्यक्तियों को राजसत्ता का संरक्षण दिया और लोक सेवाओं में जाति या पंथ का भेदभाव किये बिना प्रतिभा के आधार पर भर्ती खोलकर सभी प्रजा को समान अवसर प्रदान किया।'[516] अत्यंत धार्मिक रुढ़िवादी हिंदू होने के बाद भी शिवाजी की नीति नागरिकों के बेमेल समूहों, जिसकी उनके समय के मुस्लिम शासित भारत के मुस्लिमों के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, के प्रति निष्पक्ष, सहिष्णु व न्याय की थी।

यद्यपि शिवाजी अपने कट्टर मुस्लिम शत्रुओं के भूभाग पर धावा बोलने और उन्हें लूटने में संलिप्त रहे। भारत के एक ऐसे भाग, 'जहां चावल का उत्पादन असंभव था और गेहूं व जौ की उपज भी बहुत कम मात्रा में होती थी', में होने के कारण शिवाजी के पास बहुत कम विकल्प थे। उन्होंने ने इस संबंध में औरंगजेब के सूरत के गर्वनर से कहा कि 'तुम्हारे बादशाह ने हमें अपने लोगों और राज्य की रक्षा के लिये सेना रखने का विवश किया है। सेना को भुगतान राज्य की प्रजा द्वारा ही किया जाना चाहिए।'[517] यह बहाना उनके प्रत्येक आक्रमण में नहीं चल सकता है। शिवाजी अत्याचारी, भेदभावपूर्ण विदेशी मुस्लिम शासकों के विरोध में थे और एक स्वदेशी हिंदू राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा पाले हुए थे; उनके आक्रमण निश्चित रूप से इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये भी हो रहे थे। यद्यपि शिवाजी ने जो किया, उसमें कुछ कमियां हो सकती हैं, किंतु उनके वो कार्य मुस्लिम समकक्षों द्वारा किये गये लूटमार और गैर-मुस्लिम जनता पर किये गये अत्याचार, भेदभाव व अपमान की तुलना में कहीं नहीं ठहरते हैं।

ये उदाहरण, जो कि मुख्यतः मुस्लिम इतिहासकारों के लेखन से पता चलते हैं, स्पष्ट रूप से भारतीय समाज के मानवीय, शिष्टाचार, सहिष्णुता और मुक्त प्रकृति को सिद्ध करता है और यह भी सिद्ध करता है कि मुस्लिम हमलावर और शासक अपने साथ जो कुछ लाये, वो स्पष्ट: उससे भिन्न था। मुस्लिम शासन के उत्तरार्द्ध के कई मुस्लिम इतिहासकारों और अ-मुस्लिम प्रेक्षकों ने इस बात की पुष्टि की है। अकबर के मंत्री अबुल फजल ने भारतीयों की प्रशंसा में लिखा है: ''इस धरा के निवासी धार्मिक, स्नेहमयी, आतिथ्यपूर्ण, मिलनसार और स्पष्टवादी हैं। वे वैज्ञानिक अन्वेषण की प्रकृति वाले, जीवन के आत्मसंयम की प्रवृत्ति वाले, न्याय के

---

[515] सरकार, पृष्ठ 76

[516] इबिद, पृष्ठ 302

[517] इबिद, पृष्ठ 2, 290

अनुगामी, संतुष्ट, उद्यमी, कार्य में दक्ष, निष्ठावान, सत्यनिष्ठ व अनवरत हैं...।'' ड्यूआर्त बरबोसा ने लिखा है, 'विजयनगर साम्राज्य में कोई भी कहीं भी आ-जा सकता था और बिना कष्ट के अपने पंथ के अनुसार जी सकता था, उससे कोई नहीं पूछता था कि वह ईसाई है या यहूदी है अथवा मूर (मुस्लिम) या मूर्तिपूजक है। सबके द्वारा बड़ी समानता व न्याय का अनुपालन किया जाता है।'' अकबर के शाही दरबार का एक अपेक्षाकृत धर्मांध इतिहासकार मुल्ला बदायूंनी भी इससे अस्वीकार न कर सका कि भारतीय समाज में स्वतंत्रता व सहिष्णुता थी। बदायूंनी ने लिखाः ''हिंदुस्थान एक ऐसा सुंदर स्थान है, जहां सबकुछ की अनुमति है और कोई भी दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप है तथा लोग जहां चाहे जा सकते हैं।''[518]

मानवता, स्वतंत्रता और सहिष्णुता की ऐसी धरती पर आकर मुसलमान हमलावरों ने नरसंहार और क्रूरता की पराकाष्ठा की; उन्होंने करोड़ों लोगों की हत्या की और बड़ी संख्या में लोगों को दास बनाया। उन्होंने हजारों मंदिरों का विध्वंस किया, लूटमार किया और भारतीयों का इतना धन लूटा, जो कल्पना से परे है। समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए इस नरसंहार, हत्या, लूटमार व डकैती का वर्णन किया। भारतीय इतिहासकार कान्हड़देव प्रबंध में मुस्लिम हमलावरों (1456) की गतिविधियों की आंखों देखी स्थिति यूं लिखी हैः ''हमलावरों ने गांवों को जला दिया, भूमि को उजाड़ दिया, लोगों के धन को लूट लिया, ब्राह्मणों एवं सभी वर्गों की स्त्रियों व बच्चों को बंदी बना लिया, कच्चे चमड़े के बने हुए कोड़े बरसाये, इसके साथ (बंदी बनाये गये लोगों) का एक चलता-फिरता कारागार बनाकर ले गये और बंदियों को दास मानसिकता वाले तुर्क बनाये।''[519] मुस्लिम हमलावरों ने अपने मजहबी कर्तव्य को पूरा करने के लिये ऐसी बर्बरता की। रुढ़िवादी उलेमा और सूफी प्रायः मुस्लिम शासकों की यह कहकर निंदा करते रहे कि वे भारत से मूर्तिपूजा की गंदगी और कुफ्र का पूर्णतः करने में विफल रहे। उदाहरण के लिये, क़ाजी मुगीसुद्दीन ने सुल्तान अलाउद्दीन को स्मरण कराया कि 'हिंदू हमारे सच्चे रसूल के सबसे घातक शत्रु थे,' इसलिये उन्हें पूर्णतः मिटा दिया जाना चाहिए या फिर उनकी दुर्दशा निकृष्टतम ढंग से की जानी चाहिए।[520]

भारत में मुस्लिम हमलावरों व शासकों ने हिंदुओं, बौद्धों, सिखों और जैनों पर जितनी निर्मम व निर्दयता की और जितना उनका नरसंहार किया, उसके सामने स्पेनी व पुर्तगाली हमलावरों द्वारा किये गये दक्षिण अमरीका के मूल निवासियों का नरसंहार छोटा लगता है। 1492 में महाद्वीपीय लैटिन अमरीका के मूल निवासियों की संख्या अनुमानतः नौ करोड़ थी, जो एक सदी के बाद मात्र 1.2 करोड़ रह गयी।[521] लैटिन अमरीका के मूल निवासियों की अधिकांश जनसंख्या की मृत्यु उपनिवेशवादियों द्वारा अनजाने में लाये गये यूरोपीय व अफ्रीकी रोगों यथा बड़ी चेचक, छोटी चेचक, डिप्थीरिया, काली खांसी, मलेरिया, पीत ज्वर आदि के चपेट में आनी से हुई। स्थानीय लोगों में इन विदेशी रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता नहीं थी, जिसके कारण इतनी बड़ी संख्या में उनकी मृत्यु

[518] लाल (1994), पृष्ठ 29

[519] गोयल एसआर (1996) स्टोरी ऑफ इस्लामिक इंपीरियलिज्म इन इंडिया, साउथ एशिया बुक्स, कोलंबिया (एमओ), पृष्ठ 41-42

[520] लाल (1999), पृष्ठ 113

[521] एल्स्ट, पृष्ठ 8

हुई। एक सदी के भीतर इस तराई के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के अधिकांश लोगों का वास्तव में सफाया कर दिया गया, जबकि एंडीज और मध्य अमरीका की उच्च भूमि की 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या इन रोगों के कारण मर गयी।[522] यद्यपि उपनिवेशवादियों ने प्रायः धार्मिक आधार पर मूर्तिपूजक स्वदेशी लोगों की हत्या की और इसमें मारे गये लोगों की संख्या संभवतः करोड़ों (मिलियंस) थी। यूरोपियों में भी मलेरिया और अफ्रीकी स्रोत वाले रोग पीत ज्वर से बचने की प्रतिरोधक क्षमता नहीं आ पायी थी; वे भी अमरीका में लाये गये अफ्रीकी दासों के संपर्क में आने से इन रोगों की चपेट में आकर बड़ी संख्या में मरे।

ऐतिहासिक अभिलेखों और परिस्थितजन्य साक्ष्यों के आधार पर प्रोफेसर केएस लाल ने अनुमान लगाया है कि सन् 1000 में भारत की जनसंख्या लगभग 20 करोड़ थी और 1500 ईसवी आते-आते इनमें से केवल 17 करोड़ लोग ही बचे।[523] लाल का अनुमान है कि वर्ष 1000 से 1525 के बीच मुसलमान हमलावरों के हाथों छह से आठ करोड़ लोग मार डाले गये। वैसे मुस्लिम हमलावरों द्वारा इतनी बड़ी संख्या में भारतीयों को मिटाने की संभावना पर कुछ लोग संदेह करते हैं। किंतु एक सच यह भी है कि 1971 में बांग्लादेश मुक्ति युद्ध में पाकिस्तान की मुस्लिम फौज ने केवल 9 मास में 15 से 30 लाख लोगों की हत्या कर दी गयी थी। यह तब हुआ, जब पत्रकारिता का आधुनिक युग चल रहा है, पर विश्व ने इस तथ्य की ओर कदाचित ही ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त इस युद्ध के पीड़ितों में बड़ी संख्या में उनके अपने मजहबी बंधु अर्थात पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमान भी थे। इसलिये यह नितांत संभव है कि भारत से मूर्तिपूजा के समूल नाश के लिये आये मुस्लिम हमलावरों व शासकों ने इतने बड़े भूभाग वाले क्षेत्र में दस सदियों की अवधि में 8 करोड़ से अधिक काफिरों अर्थात गैरमुसलमानों की हत्या की होगी।

हिंदू-मुस्लिम विभाजनः ब्रिटिश हथकंडा?

भारतीय उपमहाद्वीप के आलोचकों ने ब्रिटिशों को राक्षस सिद्ध करने के लिये ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जिस पक्ष का सबसे अधिक उपयोग किया है, वह उनकी ''बांटो और राज करो'' नीति थी। ये आलोचक दावा करते हैं कि ब्रिटिशों ने अपने अधिकार और शोषण को बनाये रखने के उद्देश्य से हिंदुओं व मुसलमानों के बीच की एकता को तोड़ने और उनके सामूहिक प्रतिरोध को निष्प्रभावी करने के लिये उनके बीच वैमनस्यता निर्मित करने की यह पूर्वनियोजित चाल चली। उनका तर्क है कि इस चालबाजी से भारत के हिंदू व मुसलमान विभाजित हो गये; वे अपने धार्मिक मतभेदों पर एक-दूसरे से ही लड़ने लगे और इस प्रकार ब्रिटिश शासन निर्बाध चलता रहा।

भारत, बांग्लादेश और पाकिस्तान की अधिकांश जनता भी यही सोचती है कि ब्रिटिशों द्वारा निर्मित यह धार्मिक विभाजन ही उस घातक सांप्रदायिक समस्या का मूल कारण है, जो आज भी भारत को घेरे हुए है। वे इस पर गहराई से विश्वास करते हैं कि

---

[522] कर्टिन पीडी (1973) द ट्रॉपिकल अटलांटिक ऑफ द स्लेव ट्रेड, इन एम एडस ईडी., इस्लाम एंड यूरोपियन एक्पैंसन, टेम्पल यूनीवर्सिटी प्रेस, फिलाडेल्फिया, पृष्ठ 172

[523] लाल (1973), पृष्ठ 25-32

अंग्रेजों के आने पूर्व हिंदुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक शत्रुता नहीं थी और अंग्रेजों ने ही हिंदुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे के रक्त का प्यासा बनाने के लिये यह धूर्त व अनिष्टकारी योजना बनायी।

चाहे हिंदू हों या मुसलमान अथवा प्रगतिशील या रुढ़िवादी हों या फिर उदारवादी व उन्मादी हों, सबके सब बिना भेदभाव के प्रायः ब्रिटिशों की ''बांटो और राज करो'' नीति की इस अतिरंजनापूर्ण आलोचना को स्वीकार कर लेते हैं। आलोचकों का मानना है कि भटकाने वाले और षडयंत्रकारी अंग्रेजों द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की एकता को नष्ट किये जाने से पूर्व दोनों के मध्य मेलजोल, सहिष्णुता, बंधुत्व व पारस्परिक सहयोग की भावना थी। यहां तक कि नेहरू ने यही चित्र बनाया कि अंग्रेजों ने जानबूझकर हिंदुओं और मुसलमानों के मध्य विभाजन उत्पन्न किया। भारत की कांग्रेस पार्टी ने इस षडयंत्र-सिद्धांत को स्वतंत्र भारत में अनवरत चल रहे हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के मूल में अंतर्निहित बड़े कारण के रूप में देखा। पूर्व के उपनिवेशवादियों अर्थात अंग्रेजों की अनुपस्थिति में बड़ी सरलता से उन्हीं पर सारा दोषारोपण कर दिया जाता है।

निस्संदेह ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों के बीच धार्मिक विभाजन का लाभ उठाया। किंतु यह प्रश्न अवश्य पूछा जाना चाहिए किः क्या ब्रिटिश-पूर्व भारत में सदियों के मुस्लिम शासन के काल में हिंदुओं और मुसलमानों के मध्य एकता और बंधुत्व था?

यह दावा कि ब्रिटिश-पूर्व कालीन भारत में एक आदर्शवादी सद्भावना थी, उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों में तनिक भी सिद्ध नहीं होता है, अपितु इसके विपरीत इन साक्ष्यों में घोर वैमनस्यता की स्थिति का पता चलता है। भारत में सदियों के मुस्लिम शासन में सभी बड़े हिंदू मंदिरों को तोड़ा गया और उनमें से बहुतों को मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया। प्रायः उन मंदिरों पर इस्लाम की विजय और हिंदुओं के पराजय व अपमान के प्रतीक के रूप में ऊंची मीनारें खड़ी करके उन्हें मस्जिद बना दिया जाता था। यहां तक कि 1600 ईसवी में जब पहली बार ब्रिटिश व्यापारी दल भारत आये, तो औरंगजेब (शासन 1658-1707) हजारों की संख्या में मंदिरों का विध्वंस कर रहा था और पूरे भारत में हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना रहा था। इस्लामी उत्पीड़न और बर्बरता ने भारत से बुद्ध धर्म के प्रकाश को लगभग पूर्णतः नष्ट कर दिया। जब मुस्लिम हमलावर आये, तो भारत के कई भागों में बुद्ध धर्म पल्लवित होता हुआ धर्म था। सिखों और जैनों को भी मुस्लिम शासन के समय भयानक अत्याचार सहने पड़े।

क्या मुस्लिम हमलावरों व शासकों द्वारा भारत के मूल निवासियों हिंदुओं, बौद्धों, जैनों और सिखों के ऐसे भयानक उत्पीड़न से मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच बंधुत्व व सद्भावनापूर्ण संबंध पनप सकता था?

यदि इसका उत्तर ''हां'' है, तो हाल के वर्षों में हिंदुओं द्वारा मुसलमानों के विरुद्ध जो शत्रुता जैसे कि अयोध्या में विवादित ढांचे के स्थान पर विध्वंस हुए राम मंदिर के पुनर्निर्माण के न्यायोचित अभियान में दिखायी गयी है, वह तो इसकी तुलना में गौण है और इस अभियान से निश्चित ही हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सहिष्णुता, मेलजोल और एकता बढ़ी होगी। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि ब्रिटिश-पूर्व भारत में मुस्लिम शासकों द्वारा गैरमुसलमानों पर भयानक अत्याचार किये जाने के कारण दोनों के बीच बड़ी खाई थी।

यह मिथक कि ब्रिटिश-पूर्व काल में मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच अत्यंत सद्भावना और शांति व्याप्त थी, धर्मनिरपेक्ष-मार्क्सवादियों और मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा गढ़ी गयी है और यह इतिहास की बेतुकी जालसाजी के अतिरिक्त कुछ नहीं

है। यह मिथक सभी विद्यमान ऐतिहासिक साक्ष्यों के विपरीत है। इन साक्ष्यों में वो अभिलेख व प्रमाण भी हैं, जो समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों व शासकों द्वारा लिखे गये हैं। यह कथित सद्भावना और शांति भी इस्लाम के प्रमुख सिद्धांतों का विरोधाभासी है। क्योंकि इस्लाम भारत के मूल निवासी मूर्तिपूजकों को अपने सबसे बड़े शत्रु के रूप में देखता है और इन्हें संसार से पूर्णतः मिटा दिये जाने का आदेश देता है।

हिंदू-मुस्लिम विभाजन का ब्रिटिश शोषण: निश्चित रूप से भारत के हिंदुओं और मुसलमानों के बीच विशाल खाई है। भारत पहुंचने के बाद ब्रिटिश व्यापारी दलों ने 1757 में सत्ता पर अधिकार करने से पहले लंबे समय तक इस खाई का अनुभव किया। उनकी आंखों के सामने ही बादशाह औरंगजेब ने हजारों हिंदू मंदिरों को तोड़ डाला; उन्होंने मराठों, सिखों और अन्य हिंदुओं के साथ मुसलमानों के रक्तरंजित, कटु व अंतहीन लड़ाइयों को देखा। बाद में ब्रिटिशों ने पहले से चली आ रहे इस विरोध और शत्रुता का लाभ उठाया। उदाहरण के लिये, सिपाही विद्रोह के बाद मुख्य आयुक्त सर हेनरी लारेंस ने लखनऊ में हिंदू व मुसलमान सिपाहियों को संबोधित करते हुए कहा कि,[524]

> सैनिको! बाहर कुछ लोग यह प्रवाद (अफवाह) फैला रहे हैं कि सरकार अपने सिपाहियों के धर्म में हस्तक्षेप करना चाहती है; आपको पता होना चाहिए कि यह कोरा झूठ है। ...पहले के समय में आलमगीर (औरंगजेब) और इसके बाद हैदर अली ने हजारों की संख्या में हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया, उनके धार्मिक स्थलों को अपवित्र किया, उनके मंदिरों का विध्वंस किया और उनके घरों में रखे भगवान की मूर्तियों को निर्ममता से तोड़कर नष्ट किया। हमारे समय में आइए। यहां उपस्थित बहुत से सिपाही जानते होंगे कि महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी मुसलमान प्रजा को कभी अजान देने की अनुमति नहीं दी- कभी मुसलमानों को उन ऊंची मीनारों से ध्वनि निकालने की अनुमति नहीं दी, जो लाहौर की शोभा हैं और आज भी उनको बनाने वाले प्रतापी लोगों के स्मारक चिह्न हैं। दो वर्ष पहले तक कोई हिंदू लखनऊ में कोई नया मंदिर नहीं बनवा सकता था। आज ये सब परिवर्तित हो चुका है। अब कौन है, जो हमारी मुस्लिम और हिंदू जनता के प्रकरणों में हस्तक्षेप करने का साहस करेगा...?

यह उदाहरण न केवल मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच खाई को इंगित करता है, अपितु उस ऐतिहासिक सत्य की भी पुष्टि करता है कि ब्रिटिशों के सत्ता पर नियंत्रण करने से बहुत पहले से ही यह खाई थी। यह एक तथ्य है कि भारत के हिंदुओं और अन्य गैर-मुसलमानों ने उतने उत्साह से इस सिपाही विद्रोह का समर्थन नहीं किया, जितने जोश से मुसलमानों ने इस विद्रोह में भाग लिया। चाहे ऐसा इस विभाजनकारी ब्रिटिश षडयंत्र के कारण हुआ हो, या किसी और कारण से, पर ऐसा हुआ। सिख और गोरखाओं ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। निश्चित रूप से सिख उस भयानक बर्बरता को नहीं भूल पाये, जो औरंगजेब के समय उन्हें सहना पड़ा था। उन्होंने दिल्ली पर अधिकार करने में ब्रिटिशों की सहायता की। उत्तर में सिंधिया व अन्य राज्य भी ब्रिटिशों के साथ थे।

वैसे सिखों और हिंदुओं को उस विद्रोह में भाग क्यों लेना चाहिए था? यद्यपि ब्रिटिशों ने कार्यकारी शक्ति अपने नियंत्रण में ले ली थी, किंतु उस समय भारत का आधिकारिक प्रमुख अभी भी मुहम्मद शाह जफर ही था। आज के भारतीयों-मुसलमान और

[524] ब्राउन आरसी (1870) द पंजाब एंड देल्ही इन 1857, अटलांटिक, देल्ही, पृष्ठ 33

गैर-मुसलमान दोनों- द्वारा शाह जफर को सिपाही विद्रोह भड़काने के लिये महान क्रांतिकारी देशभक्त बताकर उसका गुणगान किया जाता है। किंतु सच तो यह है कि वह अपनी खोयी हुई मुस्लिम सल्तनत को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से ब्रिटिशों को भगाने के लिये ही लड़ रहा था। शाह जफर की अपील पर भारत भर के मुसलमानों ने अपने खोये इस्लामी प्रभुत्व की पुनर्स्थापना के लिये सिपाही विद्रोह को ब्रिटिशों के विरुद्ध जिहाद माना। सिपाही विद्रोह के समय शाह जफर ने स्वयं को भारत का बादशाह घोषित कर दिया और अपने नाम का सिक्का निर्गत किया। अपने नाम का सिक्का चलाना इस्लामी साम्राज्यवादी स्थिति के प्रदर्शन का मानक ढंग था। नमाज के समय उसके नाम का खुतबा पढ़ा जाने लगा, जिसका तात्पर्य यह था कि मुसलमानों ने उसे भारत के अमीर के रूप में स्वीकार कर लिया है।

सिपाही विद्रोह पर उस्मानिया शासन अर्थात तुर्की के समर्थन से भी ब्रिटिशों के विरुद्ध जिहाद में मुसलमानों को कोई लाभ नहीं हुआ। ब्रिटिशों द्वारा मुस्लिम शासक को उखाड़ फेंकने के बाद भारत के मुसलमानों ने तुर्की ताकतवर सुल्तान को अपना खलीफा स्वीकार करके उसके प्रति अपनी निष्ठा की प्रतिज्ञा ली, क्योंकि मुसलमान गैर-मुसलमानों के शासन में रहना सामान्यतः घृणित मानते हैं। किंतु रूस के विरुद्ध क्रीमिया के युद्ध में ब्रिटिशों ने जब तुर्कों की सहायता की, तो ब्रिटिश राज को तुर्की से एक ऐसा फतवा निकलवाने में सफलता मिली, 'जिसमें भारतीय मुसलमानों को अंग्रेजों से नहीं लड़ने का परामर्श दिया गया था।' यह फतवा पूरे भारत के मस्जिदों में पढ़कर सुनाया गया। तुर्की के सुल्तान ने समर्थन देने की अपेक्षा विद्रोहियों द्वारा किये गये अत्याचार की निंदा व भर्त्सना की...।'[525] तुर्की के प्रभाव में भारत के प्रमुख मुस्लिम विद्वान और उलेमा 1857 में कलकत्ता में मिले और इस्लाम के खलीफा तुर्की सुल्तान के साथ ब्रिटिश सरकार के संबंधों को देखते हुए एक फतवा जारी किया कि 'ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जेहाद हराम है।'[526] हैदराबाद के मुस्लिम वजीर सालार जंग के अनुसार, ''विद्रोह को फैलने से रोकने और के लिये कुस्तुंनिया से खलीफा (उस्मानिया साम्राज्य अर्थात तुर्क) के पूरे प्रभाव का निरंतर प्रयोग किया गया,'' साथ ही क्रीमिया के युद्ध के समय खलीफा ने ब्रिटेन से बड़ी मात्रा में धन उधार लिया था, जिसे उसे चुकाना था, इस कारण भी खलीफा को भारतीय मुसलमानों को ब्रिटिश राज के साथ खड़े होने को कहना पड़ा।[527] तुर्की के सुल्तान अर्थात खलीफा, जो कि भारतीय मुसलमानों का वास्तविक राजनीतिक व आध्यात्मिक प्रमुख था, द्वारा ब्रिटिशों से लड़ाई को हतोत्साहित करने के कारण उनका ब्रिटिश-विरोधी जिहाद में उत्साह समाप्त हो गया। सालार जंग कहता है, ''जब विद्रोह के चरम पर पहुंचने का क्षण आया, तो उसी समय अपने खलीफा के आदेश पर स्थानीय लड़ाकों (भारतीय मुसलमान) ने खलीफा के ब्रिटिश संबंध को प्रचुर समर्थन दे दिया।''

विद्रोह के दमन के बाद ब्रिटिश राज को समझ में आ गया कि लंबे समय तक भारत पर राज करने का सूत्र मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच लंबे समय से चली आ रही कटु धार्मिक शत्रुता का लाभ उठाने में है। इसके बाद उन्होंने विभाजनकारी

---

[525] ओजकैन (1977) पैन इस्लामिज्म, इंडियन मुस्लिम, द ओटोमंस एंड ब्रिटेन (1877-1924), ब्रिल, लीडेन, पृष्ठ 16

[526] इबिद, पृष्ठ 20

[527] इबिद, पृष्ठ 17

षडयंत्र लागू कर दिया, विशेष रूप से सेना में उन्होंने ऐसी व्यवस्था बनायी कि हिंदू, मुसलमान और सिख पृथक-पृथक स्थान पर रहें और पुनः कभी एक ही यूनिट में सेवा न दे पायें।[528]

मृतप्राय मुगल नेताओं (नवाबों) ने ब्रिटिश शासकों को उखाड़ फेंकने के अपने जिहाद में हिंदुओं का समर्थन लेने का प्रयास किया और इसके लिये उन्होंने हिंदुओं को कई लोभ भी दिये। उदाहरण के लिये, उन्होंने हिंदुओं को अयोध्या के विवादित राममंदिर/बाबरी मस्जिद स्थल सौंप देने पर सहमति दी, जिससे कि हिंदुओं में मुस्लिम-विरोधी असंतोष को दूर करके उन्हें विद्रोह में सम्मिलित होने के लिये मनाया जा सके। ब्रिटिश सेना में अनेकों हिंदू सैनिकों ने एकसाथ मिलकर मुस्लिम सहकर्मियों से विद्रोह कर दिया था। संयुक्त प्रांत, दिल्ली, मध्य भारत के कुछ भागों और बिहार में बड़ी संख्या में हिंदू सैनिक मुसलमान सहकर्मियों के विरुद्ध हो गये। किंतु कुल मिलाकर सिपाही विद्रोह में सहभागिता को लेकर हिंदुओं और अन्य गैर-मुसलमानों में उत्साह कम ही रहा; कहीं-कहीं तो उन्होंने ब्रिटिश सेना का पक्ष लिया।

सभी संभावनाओं में सिपाही विद्रोह गैर-मुसलमानों के लिये जजिया और दासता के दिनों को वापस लौटा लाने के लिये हुआ था। नेहरू के अनुसार सिपाही विद्रोह उस पुराने सामंतवाद को पुनःस्थापित करने के लिये था, जिससे वह घृणा करता था। उसने कहा, '1857-58 का विद्रोह सामंती भारत के आशा की अंतिम किरण थी।'[529] क्या भारत के गैर-मुसलमानों के लिये अपनी नियति मुसलमानों को सौंप देना, ब्रिटिशों को भगा देना और मुगल शासन में पुनः वापस आ जाना बुद्धिमानी भरा कार्य होता? सच तो यह है कि ब्रिटिश शासन के आने के बाद हिंदुओं और गैर-मुसलमानों को मुस्लिम शासन के भयानक अत्याचार, यातना, शोषण, अपमान से मुक्ति मिली थी और वे निश्चित रूप से स्वतंत्र, कम उत्पीड़ित, अधिक सम्मानित और कुछ अधिकारसम्पन्न भी हुए थे। नायपाल लिखते हैं, 'ब्रिटिश काल, जो कुछ स्थानों पर 200 वर्षों तक रहा, तो कुछ स्थानों पर सौ वर्ष से अधिक समय तक रहा, हिंदुओं के उत्थान का समय था।'[530] उनके लिये इस्लामी जुए के अधीन जिम्मीपना (धिम्मीपना) की ओर वापस लौटना स्पष्ट रूप से कम ही आकर्षित करने वाला होता।

हिंदू-मुसलमान मनमुटाव, भारत का विभाजन और ब्रिटिश मिलीभगत

ब्रिटिश शासकों को 1947 में भारत के विभाजन के लिये खुलकर दोषी बताया गया है, विशेष रूप से हिंदुओं द्वारा उन्हें विभाजन का उत्तरदायी बताया जाता है। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दल की स्थापना के बाद भारत की स्वतंत्रता का आंदोलन तैयार होने लगा, साथ ही स्वतंत्र भारत की राजनीतिक सत्ता पर नियंत्रण के लिये हिंदू-मुस्लिम तनाव भी बढ़ने लगा। 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग दल की स्थापना से इस तनाव को और बल मिला। 1920 आते-आते यह तनाव हिंसक रूप ले चुका

---

[528] ब्राउडेल एफ (1995) ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन, ट्रांसलेटेड बाई मैने आर, पेंगुइन बुक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 242

[529] नेहरू (1989), पृष्ठ 415

[530] नायपाल (1998), पृष्ठ 247

था और 1940 तक यह खतरनाक स्थिति में पहुंच गया था, जिसका परिणाम अंततः 1947 भारत और पाकिस्तान के रूप में देश के विभाजन के रूप में सामने आया। विभाजन से जुड़े दंगों में 40 लाख अधिक लोग मारे गये। इस विनाशकारी हिंसा के लिये ब्रिटिश राज को दोषी ठहराया गया। किंतु सच क्या था? विभाजन व इसके बाद हुई हिंसा में ब्रिटिश मिलीभगत थी या नहीं, इसके व्यापक पड़ताल की आवश्यकता है।

20वीं सदी के आरंभ में पूरे भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन गति पकड़ रहा था। 1914 में जब दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गांधी भारत आये, तो इस आंदोलन को बहुत बल मिला। उनका अहिंसा आंदोलन, जो हिंदू धार्मिक सिद्धांतों (अहिंसा आदि) से आच्छादित था, ने भारतीय जनता को अत्यंत उत्साहित किया। 20 सितम्बर 1920 को महात्मा गांधी द्वारा 1919 के संविधान का बहिष्कार करने के आह्वान पर अच्छी प्रतिक्रिया मिली और 1921 में गांधी के सविनय अवज्ञा आंदोलन ने स्पष्ट कर दिया कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के गिने-चुने दिन बचे हैं।

इसी समय भारत के मुसलमानों में दो पृथक-पृथक आंदोलन खड़े हुए। धर्मांधों ने खिलाफत (खलीफत) आंदोलन (1919-23) शुरू किया। इससे पहले ब्रिटिश व्यापारिक दलों ने एक के बाद एक मुस्लिम शासकों को उखाड़ फेंकना प्रारंभ कर दिया था, जिससे भारत के मुसलमान उस्मानिया सुल्तान अर्थात तुर्की के सुल्तान (खलीफा) को अपने राजनीतिक मुखिया और उद्धारक मानकर उसकी ओर देखने लगे थे। यह प्रवृत्ति अत्यंत लोकप्रिय सूफी दरवेश शाह वलीउल्लाह (मृत्यु 1762) की शिक्षाओं के कारण बढ़ी, क्योंकि शाह वलीउल्लाह कहने लगा था कि भारत में मुस्लिमों की सत्ता समाप्त होती जा रही है और उसने उस्मानिया सुल्तान को अमीर अल-मोमिन के रूप में मान्यता दी। 1799 में टीपू सुल्तान के वध के बाद मुस्लिमों की निष्ठा तुर्कों की ओर बहुत बढ़ गयी। यह उस बात से भी समझा जा सकता है कि सिपाही विद्रोह के समय उस्मानिया सुल्तान (खलीफा) ने दृढ़ता से मुसलमानों का साथ नहीं दिया, तब भी खलीफा के प्रति मुसलमानों की प्रतिक्रिया कठोर नहीं रही।

प्रथम विश्वयुद्ध में एंग्लो-फ्रेंच सेनाओं ने उस्मानी सल्तनत के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था और इसे छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में बांट दिया था। इससे विश्व भर के मुसलमानों में रोष बढ़ा। उस्मान सल्तनत में ब्रिटिश हस्तक्षेप से क्रुद्ध भारत के मुस्लिम उलेमाओं ने देश से ब्रिटिशों को उखाड़ फेंकने के लिये अभियान छेड़ दिया। वे विश्व के सभी मुस्लिम क्षेत्रों के लिये एक खलीफा बनाने के पक्ष थे और चाहते थे कि उस्मान खलीफा समस्त विश्व के मुस्लिम क्षेत्रों का खलीफा हो। वो चाहते थे कि ब्रिटिशों के जाने के बाद भारत खलीफा की इस सल्तनत का भाग हो। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस इस शत्रु ब्रिटिश सत्ता को हटाने के लिये व्याकुल थी और इसलिये कांग्रेस के लोग इस इस्लामी आंदोलन में सम्मिलित हो गये, क्योंकि मुसलमान भी ब्रिटिश सत्ता को अपना शत्रु मानते थे। किंतु 'मालाबार (केरल, 1921) के 'मोपला विद्रोह'' में निर्दोष हिंदुओं के विरुद्ध बर्बर मुस्लिम हिंसा के बाद कांग्रेस दल के नेताओं में खिलाफत आंदोलन में सम्मिलित होने के महात्मा गांधी और जवाहर नेहरू के निर्णय पर असंतोष पनप गया। 1923 में जब कमाल पाशा अतातुर्क ने उस्मानिया खलीफा के पद का उन्मूलन कर दिया, तो यह आंदोलन छोड़ दिया गया।

इसके बाद मुसलमान एक पृथक मुस्लिम देश बनाने के दूसरे अभियान पर लग गये। पृथक मुस्लिम देश बनाने के विचार का जन्म 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ ही हो गया था, किंतु खिलाफत आंदोलन की हवा निकल जाने के बाद यह

विचार जोर पकड़ा। यह पृथकतावादी आंदोलन इसलिये प्रारंभ हुआ था, क्योंकि मुस्लिमों को भय था कि स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत में उन्हें बहुसंख्यक हिंदुओं के राजनीतिक प्रभुत्व में रहना पड़ेगा। यह भय तभी प्रकट हो गया था, जब अल्लामा मुहम्मद इकबाल द्वारा लोकतंत्र की आलोचना यह कहकर की गयी कि यह शासन की ऐसी प्रणाली है, जिसमें ''केवल सिर गिने जाते हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं होता।'' मुहम्मद इकबाल (जिसके परिवार को हिंदू से मुसलमान बने बहुत समय नहीं हुआ था) विकृत मानसिकता के साथ उस प्रभुत्ववादी इस्लामी विचारधारा का अंधानुयायी था कि उसे लगता था कि ''पूरी धरा मुसलमानों की है, क्योंकि यह उनके अल्लाह की है।'[531] इसलिये भले ही सभी श्रेष्ठ चिंतक और नोबल विजेता हिंदू थे, पर मुसलमान उन श्रेष्ठ हिंदू जनों की अपेक्षा धर्मांध इकबाल पर गर्व करते थे। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि 1947 में पाकिस्तान बनने के समय भयानक हिंसा व रक्तपात होते समय मुहम्मद अली जिन्ना की अगुवाई वाले मुस्लिम लीग ने मुसलमानों में गुप्त रूप से पैम्फलेट बांटे थे, जिसमें लिखा था: 'प्रत्येक मुसलमान को पांच हिदुओं का अधिकार मिलना चाहिए, अर्थात एक मुसलमान पांच हिंदुओं के बराबर है।''[532] जब यह समझ में आ गया कि संयुक्त भारत में पुराना मुस्लिम राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करना असंभव है, तो इकबाल ने 29 दिसम्बर 1930 को इलाहाबाद में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की बैठक में अपने अध्यक्षीय भाषण में इकबाल ने मुस्लिम के लिये पृथक देश के रूप में पाकिस्तान बनाने की रूपरेखा प्रस्तुत की। इकबाल ने धर्मनिरपेक्ष-लोकतांत्रिक राजनीति से इस्लाम का मेल न हो पाने की ओर इंगित करते हुए कहा:[533]

> 'क्या मजहब निजी विषय है? क्या आप लोग इस्लाम को वैसे ही नैतिक और राजव्यवस्था आदर्श के रूप में देखना चाहेंगे, जिसकी परिणीति वैसी ही हो, जैसी कि यूरोप में ईसाइयत की हुई है? क्या यह संभव है कि जिस राष्ट्रीय राजव्यवस्था में मजहबी व्यवहार के किसी भी पक्ष को अपनाने की अनुमति न हो, उसके पक्ष में इस्लाम को एक नैतिक आदर्श के रूप में बनाये रखा जाए और राजनीति के रूप में इसे अस्वीकार कर दिया जाए? भारत के संदर्भ में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि मुसलमान यहां अल्पसंख्यक हैं। यूरोपियों के होठों पर यह कथन चढ़ा हुआ है कि धर्म व्यक्ति का निजी अनुभव होता है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। यूरोप में ईसाईयत की अवधारणा एक आश्रम व्यवस्था के रूप में हैं, जिसमें भौतिकता का त्याग और एक तार्किक विचार प्रक्रिया द्वारा अपना ध्यान पूर्णतः आत्मा के संसार पर केंद्रित करना होता है और यही इस कथन में प्रकट होता है। किंतु जैसा कि कुरआन में बताया गया है, रसूल के मजहबी अनुभव इससे नितांत भिन्न हैं।'

इसलिये मुसलमानों को एक ऐसे देश की आवश्यकता है, जहां मजहबी कार्य-सिद्धांत राज-व्यवस्था से जुड़े होंगे। इकबाल ने कहा:

> 'इसलिये इस्लाम का मजहबी आदर्श मूलतः उस सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा है, जो इस मजहब ने बनाया है। इसके मजहबी आदर्शों में से किसी एक को अस्वीकार करने का परिणाम अंततः अन्य आदर्शों को अस्वीकार करने की ओर जाएगा। इसलिये यदि राष्ट्रीय

[531] एल्स्ट, पृष्ठ 41

[532] खोसला जीडी (1989) स्टर्न रेकनिंग: ए सर्वे ऑफ इवेंट्स लीडिंग अप टू एंड फॉलोइंग द पार्टिसन ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृष्ठ 313

[533] शेरवानी एलए ईडी. (1977) स्पीचेज, राइटिंग्स, एंड स्टेटमेंट्स ऑफ इकबाल, इकबाल अकादमी (द्वितीय संस्करण), लाहौर, पृष्ठ 3-26

धाराओं पर एक ऐसी राज-व्यवस्था का निर्माण किया जाता है, जहां समन्वय के इस्लामी सिद्धांत को छोड़ना पड़े, तो किसी मुसलमान के लिये ऐसी राज-व्यवस्था के बारे में सोचना भी असंभव है। यह ऐसा प्रकरण है जो आज भारत के मुसलमानों से सीधे जुड़ा है।'

इसलिये मुसलमानों को एक पृथक देश की आवश्यकता थी और इसी सोच पर इकबाल 'द्वि राष्ट्र'' सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए बोलाः

'मैं पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, सिंध और बलूचिस्तान को एक राज्य में मिलते हुए देखना चाहूंगा। यह चाहे ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्व-शासन के रूप में हो अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के बिना हो, पर मुझे लगता है कि एक संगठित उत्तर-पश्चिम मुस्लिम राज्य ही मुसलमानों का अंतिम भाग्य होगा, किसी भी रूप में उत्तर-पश्चिम भारत में ऐसा होना ही चाहिए।'

1937 में जिन्ना को लिखे पत्र में इकबाल ने स्पष्ट कहा कि उसके प्रस्तावित पृथक मुस्लिम राज्य का संबंध 'मुसलमानों को गैर-मुसलमानों के प्रभुत्व' से बचाने से है। उसने इस पत्र में यह कहते हुए मुस्लिम राज्य में उस दूर-स्थित मुस्लिम बहुल बंगाल को भी सम्मिलित करने का प्रस्ताव दिया किः 'क्यों न उत्तर-पश्चिम भारत और बंगाल के मुसलमानों को उन लोगों के रूप में देखा जाए, जिन्हें उसी प्रकार से जनमत संग्रह का अधिकार हो, जैसा कि भारत और भारत के बाहर अन्य लोगों को है।'[534] 1938 में अपनी मृत्यु से पूर्व इकबाल ने यह कहते हुए मुसलमानों से जिन्ना का साथ देने का आह्वान किया,

'एक ही समाधान है। मुसलमान जिन्ना के हाथों को सुदृढ़ करें। वो मुस्लिम लीग में सम्मिलित हों। भारतीय प्रश्न, जैसा कि समाधान निकाला जा रहा है, का सामना हिंदुओं और अंग्रेजों दोनों के विरुद्ध संगठित मोर्चा खोलकर ही किया जा सकता है। लोग कह रहे हैं कि हमारी मांगों से सांप्रदायिकता की गंध आती है। यह कोरा दुष्प्रचार है। ये मांगे हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा से संबंधित हैं।'[535]

पाकिस्तान बनाने के अभियान में गति जिन्ना के प्रबंधन में आयी। मुस्लिम लीग ने 1940 में पृथक मुस्लिम देश पाकिस्तान के निर्माण की मांग करते हुए ''लाहौर प्रस्ताव'' पारित किया। प्रस्ताव में कहा गया, '... क्षेत्रों में मुसलमान बहुसंख्यक हैं, जैसे कि भारत के उत्तर-पश्चिम और पूर्वी जोन, वे ''स्वतंत्र राष्ट्र'' के गठन के लिये वर्गीकृत हैं और इस स्वतंत्र राष्ट्र के घटक स्वायत्त व प्रभुतत्वसम्पन्न होंगे।'[536]

इतने लंबे समय तक गैर-मुसलमानों पर अपने बर्बर ताकत का आधिपत्य चलाने के बाद मुस्लिमों का ऐतिहासिक अंहकार यह नहीं सह सकता था कि स्वतंत्र धर्मनिरपेक्ष-लोकतांत्रिक भारत में समान नागरिक बनकर अल्पसंख्यक के रूप में रहें। उन्होंने मुस्लिम देश की स्थापना के लिये अपने पृथकतावादी अभियान में हिंदुओं पर भयानक हिंसा की। इससे ब्रिटिश को विश्वास हो गया कि हिंदू और मुसलमान साथ नहीं रह सकते। इन परिस्थितियों ने अंततः 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन करवाया।

---

[534] अल्लामा इकबाल बॉयोग्राफी; http://www.allamaiqbal.com/person/biography/biotxtread.html

[535] इकबाल एंड पाकिस्तान मूवमेंट; http://www.allamaiqbal.com/person/movement/move_main.htm

[536] मेनन वीपी (1957) द ट्रांसफर ऑफ पॉवर, ओरिएंट लांगमैन, न्यू देल्ही, पृष्ठ 83

अनवर शेख लिखते हैं, 'मूलतः इस्लाम ''बांटो और राज करो'' की विचारधारा है। शेख मानते हैं कि भारत के विभाजन के लिये ब्रिटिशों की विभाजनकारी नीति नहीं, अपितु बांटों और राज करो की इस्लामी नीति उत्तरदायी थी:[537]

> ...किंतु उन (इस्लामी हमलावरों) की विचारधारा अर्थात इस्लाम ने जो घाव दिये, जिस इस्लाम को लेकर वो भारत आये, वो भारत के हिंदुओं के मन-मस्तिष्क से हट नहीं सकता है, क्योंकि ठीक होने की अपेक्षा वो घाव फोड़ा बन चुके हैं। यद्यपि भारत के मूल निवासियों में से धर्मांतरण करके मुसलमान बने लोगों में 95 प्रतिशत और शेष 5 प्रतिशत भी सदियों से स्थायी रूप से निवास करने के कारण भारतीय कहलाने की योग्यता रखते हैं, किंतु तब भी वे अपने लिये एक ऐसा पृथक देश चाहते हैं, क्योंकि उनकी मान्यता है कि उनकी मातृभूमि दारुल-हर्ब है। यही इस्लाम का वह अन्यायपूर्ण दर्शन था, जिसके कारण भारत का विभाजन हुआ। अरबी (अरब हमलावर) स्वयं जो कर पाने में असफल रहे थे, बांटो और राज करो के उस अरबी सिद्धांत ने वह कर दिखाया।

जब पृथक इस्लामी देश की स्थापना के लिये एकत्र हुए मुस्लिम उन्माद बढ़ता गया, तो एक ऐसा राष्ट्रवादी हिंदू आंदोलन भी खड़ा हुआ, जो अपनी मातृभूमि के विभाजन का विरोध कर रहा था। इस नव-हिंदुत्व आंदोलन को विभाजन के समय हुए दंगों और रक्तपात में प्रायः बराबर का उत्तरदायी ठहराया जाता है। किंतु निर्विवाद सत्य यही है कि गैर-मुस्लिम बहुसंख्यकों वाले अखंड व लोकतांत्रिक भारत को स्वीकार करने की मुसलमानों की अनिच्छा ही विभाजन के समय हुई हिंसा व नरसंहार का प्राथमिक कारण थी।

स्वतंत्र भारत में चले आ रहे सांप्रदायिक तनाव व हिंसा के लिये भी हिंदुत्व राष्ट्रवादियों को कड़ी निंदा सहनी पड़ी है। पहली बात तो यह है कि हिंदुत्व आंदोलन का जन्म मुसलमानों की उस अनुचित, धर्मांध अभियान की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था, जिसमें मुसलमान (गांधी, नेहरू आदि की सहायता से हो रहे) खिलाफत आंदोलन की मंशा के अनुसार भारत को इस्लामी खलीफा के अधीन लाना चाहते थे, भारत को विभाजित कर पृथक देश बनाने की मांग कर रहे थे और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हिंदुओं के विरुद्ध भयानक हिंसा (उदाहरण के लिये मोपला हिंसा) कर रहे थे।

मुसलमान बर्बर हमलावर के रूप में भारत आये और सदियों तक राज किया। उन्होंने स्थानीय लोगों की सामूहिक हत्या की और उन्हें दास बनाया, उनकी धन-संपत्ति लूटने और हड़पने में संलिप्त रहे तथा व्यापक स्तर पर उनके धार्मिक प्रतीकों व संस्थाओं को नष्ट करते रहे। यदि आर्थिक शोषण को छोड़ दिया जाए, तो ब्रिटिश शासन कई अर्थों में भारत के गैर-मुसलमानों के लिये इस्लामी बर्बरता व अपमान से मुक्ति दिलाने वाली शांति लाया। जब ब्रिटिश शासक वापस लौट जाने वाले थे और इतनी सदियों के विदेशी शासन के बाद भारत के लोगों को उनका प्रभुत्व लौटाने वाले थे, तो मुसलमान इस भूमि को विभाजित करने पर उतारू थे। यद्यपि इस्लामी विजयों व शासन के समय बलपूर्वक धर्मांतरण, दास बनाने एवं मुसलमानों के दमन, अत्याचार व आर्थिक शोषण के कारण बड़ी संख्या में भारतीय मुसलमान बन गये थे, पर मूल भारतीयों पर बर्बरता पूर्वक थोपी गयी विदेशी विचारधारा (इस्लाम) के आधार पर भारत को विभाजित करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। मुस्लिमों द्वारा पृथक देश की मांग और इस मांग को पूरा कराने के लिये भयानक हिंसा करने के कारण हिंदुओं में राष्ट्रवादी भावना व धार्मिक कट्टरता के उदय की

---

[537] शेख (1998), अध्याय 7

उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार हुई। परिणामस्वरूप पहली बार कुछ हिंदू तत्व अपने देश को विभाजन से बचाने के लिये उन्मादी मुसलमानों का सामना करने हेतु एक सैन्य धार्मिक-राष्ट्रवादी बल के रूप में खड़े हुए। विशेष रूप से मोपला हिंसा (1921) के बाद हिंदू सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक व राष्ट्रवादी विचारों का उदय हुआ। 1925 में हिंदू और हिदुस्थानी राष्ट्रवाद के आधार पर हिंदुत्व संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की स्थापना हुई। लंबे समय से हो रहे ऐतिहासिक अन्याय और मुस्लिम धर्मांधता, असहिष्णुता व हिंसा के प्रति यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी।

1947 के दंगे व नरसंहारः उत्तरदायी कौन?

भारत विभाजन और इससे संबंधित हिंसा का दोष सामान्यतः ब्रिटिशों पर मढ़ दिया जाता है। विशेष रूप से हिंदू यह दोष मढ़ने में आगे रहते हैं। कोनराड एल्स्ट ने लिखा है कि भारतीय के कांग्रेस दल का मानना था कि एक बुरी शक्ति (ब्रिटिश) नहीं चाहती थी कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच बंधुत्व रहे, इसलिये विभाजन थोप रही थी।'[538] विभाजन पर लिखे गये साहित्यों में से अधिकांश जैसे कि खुशवंत सिंह का उपन्यास ट्रेन टू पाकिस्तान, भीष्म साहनी के उपन्याय तमस (इस पर फिल्म भी बनी है) और उर्भवी बूतालिया के विभाजन संबंधी साक्ष्यों के संग्रह द अदर साइड ऑफ साइलेंस में घटनाओं का चित्रण इस प्रकार किया गया कि हिंदू हिंसा की घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते हुए हिंदुओं पर ही दोष मढ़ा जाए। यद्यपि इस महाद्वीप के लोगों में यह सामान्य धारणा है कि विभाजन के समय हुई हिंसा व क्रूरता के लिये हिंदू और मुसलमान दोनों बराबर के उत्तरदायी हैं। इस विषय पर हुए अधिकांश शोध भी इसी लक्ष्य के साथ किये गये हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों को बराबर का उत्तरदायी ठहराया जाए। यहां 1947 की हिंसा का एक वस्तुनिष्ठ विश्लेषण दिया जा रहा है। इससे पाठकों को यह निश्चित करने में सहायता मिलेगी कि इसमें सहभागी तीन पक्षोंः ए) ब्रिटिश राज, बी) मुसलमान व इस्लामी आंदोलन और सी) हिंदुत्व आंदोलन में से कौन अधिक उत्तरदायी था।

मोपला विद्रोह

1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने और इसके बाद विभाजन के क्रम में हुई हिंसा को समझने के लिये आइए हम सबसे पहले दक्षिण भारत के मालाबार चलें, जहां 1921 में मुसलमानों द्वारा अपने निर्दोष हिंदू पड़ोसियों पर भयानक बर्बरता की गयी थी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि मुसलमान व्यापारी पहले ही 629 ईसवी में मालाबार तट पर सहिष्णु हिंदुओं के बीच आकर बस गये थे और अपने समुदाय के विस्तार के लिये स्थानीय महिलाओं से विवाह भी कर रहे थे। कुछ निम्न जाति के हिंदू भी कथित रूप से अपनी इच्छा से धर्मांतरित हो गये थे। उन्नीसवीं सदी आते-आते मुसलमानों की संख्या ठीक-ठाक हो गयी (वर्तमान में उनकी संख्या एक चौथाई है)। मालाबार के मुसलमानों को प्रायः सूफी फकीर उकसाते थे और अब वे पुर्तगाली कब्जेदारों और हिंदुओं के विरुद्ध जिहादी मार्ग पर चलने के लिये पर्याप्त सक्षम हो गये थे। रॉबिंसन के अनुसार, उन्होंने 'जिहाद और शहादत की परंपरा'

---

[538] कामरा एजे (2000) द प्रोलांग्ड पार्टिसन एंड इट्स प्रोग्राम्स, वॉयस ऑफ इंडिया, न्यू देल्ही, पृष्ठ 7

विकसित की... इससे मजहबी हिंसा फैलने लगी- उदाहरण के लिये 1836 और 1919 के बीच 32 दंगे हुए।'[539] उनके जिहादी हमलों के पीड़ित सदा निर्दोष हिंदू होते थे।

1921 में मालाबार (जिसे मोपला कहा गया) के मुसलमानों ने निर्दोष हिंदुओं के विरुद्ध भयानक हिंसा करनी प्रारंभ कर दी। यह ''मोपला विद्रोह'' के नाम से जाना जाता है। यह विद्रोह दो मुस्लिम संगठनोंः खुद्दम-ए-काबा और केंद्रीय खिलाफत समिति द्वारा भड़काया गया था। ये आंदोलन विश्वभर के मुसलमानों के लिये खलीफा राज की स्थापना के पक्ष में किये जा रहे थे। अम्बेडकर के अनुसार, उन्होंने इस सिद्धांत का प्रचार किया कि 'ब्रिटिश शासन के अधीन भारत दारुल-हर्ब है और इसलिये मुसलमानों को इसके विरुद्ध लड़ना चाहिए, और यदि वे लड़ न पायें, तो उन्हें हिजरत के वैकल्पिक सिद्धांत (मुस्लिम देश में चले जाना) को अपनाना चाहिए।'[540] यद्यपि यह विद्रोह ब्रिटिशों के विरुद्ध था, पर वहां वे थे नहीं, तो मुसलमानों ने अपने निर्दोष पड़ोसियों पर आतंक फैलाया। अम्बेडकर मोपला के मुसलमानों द्वारा की गयी भयानक बर्बरता का वर्णन इस प्रकार करते हैंः

> मोपलाओं के हाथों हिंदुओं को भयानक नियति का सामना करना पड़ा। नरसंहार, बलपूर्वक धर्मांतरण, मंदिरों का अपवित्रीकरण, स्त्रियों का शीलहरण, गर्भवती स्त्रियों का पेट फाड़ देना, लूटमार, आगजनी और व्यापक स्तर पर विनाश, या संक्षेप में कहें कि मोपलाओं द्वारा हिंदुओं पर बर्बर और अनियंत्रित बर्बरता की पराकाष्ठा की गयी...। मारे गये, घायल हुए और बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिंदुओं की संख्या ज्ञात नहीं है, किंतु यह संख्या निश्चित बहुत बड़ी रही होगी।

जेजे बनिंगा, जो 1901 से 1943 के बीच भारत में रहे, ने इस भीषण बर्बरता का विवरण प्रकाशित किया है।[541] बनिंगा ने इस प्रकरण के अगुवा अपराधियों के अभियोग की सुनवाई करने वाले तीन न्यायाधीशों के पैनल के निर्णय को अंकित किया हैः

> 'कम से कम पिछले सौ वर्षों से मोपला समुदाय समय-समय पर अपने हत्यारे उपद्रव के कारण कलंकित हुआ है। अतीत में ये सब उन्माद के कारण हुआ। उनके कोमल मन में यह भड़काऊ शिक्षा ठूंस दी गयी है कि काफिरों की हत्या करने से जन्नत मिलती है। वे जंग के मार्ग पर निकल पड़ेंगे और हिंदुओं की हत्याएं करते जाएंगे, इससे उन्हें कोई लेना-देना नहीं कि वह हिंदू कौन है...। उनके लिये इस असभ्य कृत्य को करने किसी बहाने की भी आवश्यकता नहीं है।'

बनिंगा उन अत्याचारों पर लिखते हैंः

> ...कुएं क्षत-विक्षत शवों से भरे हुए थे; गर्भवती महिलाओं को टुकड़ों-टुकड़ों में काट दिया गया था; माताओं की बांहों से बच्चों को छीनकर उन्हें बीच से फाड़कर हत्या कर दी गयी थी; पतियों और पिताओं को यातना दी गयी, कोड़े मारे गये और उनकी पत्नियों व बच्चों के सामने ही जीवित जला दिया गया; स्त्रियों को बलपूर्वक उठा ले जा गया और बलात्कार किया गया; घरों को नष्ट कर दिया

---

[539] रॉबिंसन, पृष्ठ 247

[540] अम्बेडकर, अंक 8, पृष्ठ 163

[541] बनिंगा जेजे (1923) द मोपला रेबेलियन ऑफ 1921, इन मोस्लेम वर्ल्ड 13, पृष्ठ 379-87

> गया... कम से कम 100 मंदिर या तो तोड़ दिये गये या अपवित्र किये गये; मंदिरों में पशुओं को काटा गया और उनके सिरों की माला बनाकर मूर्तियों को पहना दिया गया; जो मिला वो सब लूट लिया गया...।

रॉबिंसन ने लिखा है कि मोपलाओं के अनुसार ''10,000 हिंदू मारे गये थे।''[542]

इस्लामी आंदोलन खिलाफत के समर्थक महात्मा गांधी ने मोपला मुसलमानों को 'उस धरती की सबसे बहादुर और अल्लाह से डरने वाला कौम बताते हुए और मुसलमानों की बर्बरता के परिमाण को छिपाने का प्रयास करते हुए अपनी पत्रिका यंग इंडिया में लिखाः 'जब मैं कलकत्ता में था, तो मुझे एक पक्की सूचना मिली थी कि बलपूर्वक मुसलमान बनाने के केवल तीन प्रकरण ही सामने आये हैं... पर मुझे नहीं लगता कि इससे हिंदू-मुस्लिम एकता पर कोई गंभीर समस्या आयेगी।'[543] किंतु सच्चाई तो यह थी कि बड़ी संख्या में हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया था।

कलकत्ता में डायरेक्ट एक्शन दंगा

मोपला विद्रोह के बाद खिलाफत आंदोलन बुझ गया। आइए, अब हम विभाजन से जुड़ी हिंसा की ओर चलें, जो 14-15 अगस्त को स्वतंत्रता मिलने के एक वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई थी। 1946 के मध्य में एक पृथक मुस्लिम देश का विचार गति पकड़ने लगा था और एक ऐसी अंतरिम सरकार बनाने का प्रयास किया जा रहा था, जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों को समान प्रतिनिधित्व मिले। मुसलमान जनसंख्या के केवल 20 प्रतिशत थी, जबकि हिंदुओं की संख्या 75 प्रतिशत थी, इसलिये कांग्रेस ने इस व्यवस्था का विरोध किया। इसके स्थान पर वे इस पर सहमत हो गये कि अंतरिम सरकार में छह हिंदू प्रतिनिधि और शेष धार्मिक समूहों के एक प्रतिनिधि के साथ पांच मुस्लिम प्रतिनिधि हों। जिन्ना इस नयी व्यवस्था के विरोध में था। जिन्ना ने इस बातचीत से पल्ला झाड़ लिया और 29 जुलाई 1946 को बाम्बे में मुस्लिम लीग काउंसिल की बैठक बुलाई। इस बैठक में एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें लिखा था:[544]

> 'यह अब और स्पष्ट हो गया है कि भारत के मुसलमान एक स्वतंत्र व प्रभुत्वसम्पन्न पाकिस्तान से कम कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगे...। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की काउंसिल आश्वस्त हो चुकी है कि अब मुसलमान लोगों के लिये वह समय आ चुका है कि वे पाकिस्तान का लक्ष्य प्राप्त करने और ब्रिटिशों के अधीन वर्तमान दासता व हिंदू प्रभुत्व वाले भविष्य से मुक्ति पाने के लिये डायरेक्ट एक्शन का आश्रय लें।'

''डायरेक्ट एक्शन'' कैसा होगा? जब जिन्ना से पूछा गया कि डायरेक्ट एक्शन हिंसक होगा या अहिंसक, तो उसने कहा, ''मैं नैतिकता की बात करने नहीं जा रहा।'' नवाबजादा लियाकत अली खान, जो बाद में पाकिस्तान का पहला प्रधानमंत्री बना, ने

---

[542] रॉबिंसन, पृष्ठ 247

[543] गांधी के. (1921) यंग इंडिया, सितम्बर 8 संस्करण

[544] खोसला, पृष्ठ 38

एसोसिएटेड प्रेस (यू.एस.ए.) से कहाः ''हम कोई उपाय नहीं छोड़ सकते। डायरेक्ट एक्शन का तात्पर्य है विधि के विरुद्ध किसी भी प्रकार का एक्शन।'' सरदार अब्दुर रब निश्तार, जो बाद में स्वतंत्र पाकिस्तान का संचार मंत्री और पंजाब का गर्वनर रहा, ने इस अनिष्टकारी विचार को और स्पष्ट कियाः 'रक्त बहाकर ही पाकिस्तान पाया जा सकता है, यदि अवसर लगे तो गैर-मुसलमानों का रक्त अवश्य बहाया जाना चाहिए, क्योंकि 'मुसलमान अहिंसा में कोई विश्वास नहीं रखते।''[545] यह नितांत स्पष्ट है कि क्या डायरेक्ट एक्शन होने वाला था। न्यूज क्रॉनिकल (यू.के.) ने जिन्ना की स्थिति और हिंसक उकसावे पर लिखाः ''...लंपट भाषा और समझौता-वार्ता को छोड़ने के कोई तर्क नहीं हो सकता... जिन्ना पूर्णतः घोर धर्मांधता के वशीभूत हो गये हैं, और जैसा की अभी दिखता है, वह वास्तव में जिहाद के लिये दुष्प्रेरित कर रहे हैं।''[546]

मुस्लिम-बहुलता (54.3 प्रतिशत) वाला कलकत्ता बंगाल प्रांत की राजधानी था और वहां मुस्लिम लीग की सरकार थी। 16 अगस्त 1946 को जिन्ना के डायरेक्ट एक्शन के लिये कलकत्ता को चुना गया। इस डायरेक्ट एक्शन रैली के उद्देश्य को समझने के लिये आइए हम उस अत्यंत भड़काऊ दुष्प्रचार की समीक्षा करें, जो इस घटना से पूर्व मुसलमानों में प्रसारित किया गया थाः

> मुस्लिम लीग द्वारा उर्दू और बंगाली दोनों भाषाओं में पर्चे जारी किये गये। इस पर्चे में होने वाले डायरेक्ट एक्शन के हिंसक दृश्यों का वर्णन करते हुए हिंसा का गुणगान किया गया था। ऐसे ही एक पर्चे में एक चित्र था, जिसमें तलवारों से लैस हजारों मुसलमान हिंदुओं की हत्याएं करके नगर की गलियों में रक्त की धारा बहा रहे थे। एक और पर्चे में बंगाली कविता में उन हिंदुओं को चेतावनी देते हुए कहा गया था कि मुसलमानों के गिरोह आ रहे हैं, हिंदुओं तुम्हारा सिर लुढ़कने वाला है।[547]

रक्त जमा देने वाले ऐसे भड़काऊ दुष्प्रचार की प्रतिक्रिया में हिंदुओं की ओर से दैनिक बसुमती समाचारपत्र में 11 अगस्त 1946 को टिप्पणी प्रकाशित हुई, जिसमें कहा गया थाः ''मुस्लिम लीग वाले जान लें कि यह कोरी धमकी नहीं चलने वाली है। वे (हिंदू) हंसते हुए गोलियों और संगीनों का सामना करने के लिये विख्यात हैं... वे एक क्षण के लिये भी पराजय स्वीकार नहीं करेंगे... लीग हमारे संकल्प का परीक्षा लेने को स्वतंत्र है, किंतु उनका क्या होगा यह सोच लें।'' तीन दिन बाद इस समाचार पत्र के मुख्य समाचार का शीर्षक यह था, हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच बड़े संघर्ष की आशंका बढ़ी।[548]

हिंसा उकसाने वाले इन पर्चों में दी गयी सूचना 16 अगस्त को डायरेक्ट एक्शन के दिन उग्रवादी मुसलमानों द्वारा कार्रवाई में बदल दी गयी। कलकत्ता का महापौर एसएम उस्मान ने रैली में लाखों मुसलमानों से आने का आह्वान किया। जिन्ना ने डायरेक्ट

---

[545] इबिद, पृष्ठ 38

[546] इबिद, पृष्ठ 43

[547] सुगात नंदी (2006), लोकेटिंग द ओरिजिंस ऑफ ए क्रिमिनल राइट, http://mail.sarai.net/pipermail/urbanstudygroup/2006-April/000824.html

[548] इबिद

एक्शन शुरू करने के लिये रमजान का अठाहरवां दिन चुना, क्योंकि इसी दिन बद्र की जंग में रसूल मुहम्मद अपने से तीन गुना बड़ी सेना से जंग जीता था। बड़ी संख्या में मुसलमानों को रैली में आने का आह्वान करने वाले मुस्लिम लीग के पर्चे में लिखा था:[549]

> 'मुसलमानों को स्मरण रखना चाहिए रमजान में ही कुरआन नाजिल हुई। रमजान में जिहाद की अनुमति मिली। रमजान में बद्र की जंग हुई, इस्लाम और हीथेनिज्म (अर्थात मूर्तिपूजा, जो हिंदू धर्म जैसा था) के बीच पहला खुला संघर्ष हुआ और 313 मुसलमानों द्वारा यह जंग जीती गयी; पुनः रमजान में ही रसूल मुहम्मद के नेतृत्व में 10,000 मुसलमानों ने मक्का पर विजय प्राप्त किया और अरब में अल्लाह का राज व इस्लामी देश की स्थापना की। मुस्लिम लीग का सौभाग्य है कि वह इस पवित्र माह में एक्शन को कर रही है।'

जिहाद के लिये मुनाजात शीर्षक वाला एक और पर्चा मस्जिदों में पढ़ा जाना था। इस पर्चे में लिखा था:[550]

> 'अल्लाह की मेहरबानी से, हम भारत में दस करोड़ हैं, किंतु दुर्भाग्य से हम हिंदुओं और ब्रिटिशों के दास गुलाम बन गये हैं। हम रमजान के इस माह में तेरे नाम से जिहाद शुरू कर रहे हैं। हम दुआ करते हैं कि हमें तन और मन से मजबूत बना- हमारी इस कार्रवाई में मदद कर- काफिरों पर विजयी बना- हमें भारत में इस्लाम का राज स्थापित करने में समर्थ बना और इस जिहाद में कुर्बानी दिला- अल्लाह की कृपा से हम भारत में विश्व का सबसे महान इस्लामी राज्य बनायेंगे।'

एक और बंगाली पर्चा मोगुर (क्लब) में इस रमजान माह की घटना के बारे में लिखा था: 'मुसलमानों की जो सबसे बड़ी इच्छा थी कि खुली जंग करें, उसे पूरा करने का दिन आ गया है... जन्नत के चमकते हुए द्वारा तुम लोगों के लिये खुल गये हैं। आओ, हजारों की संख्या में प्रवेश करें। आओ हम सब पाकिस्तान की जीत, मुस्लिम देश की जीत और जिहाद की घोषणा करने वाली इस फौज की जीत का नारा लगायें।'' कलकत्ता के महापौर ने तलवार के साथ जिन्ना के चित्र वाला पर्चा जारी किया, जिसमें लिखा था:[551]

> 'हम मुसलमानों के पास (भारत) का ताज था और हमने राज किया है... तैयार हो जाओ और अपने तलवार निकाल लो। सोचो, मुसलमानों, हम आज काफिरों के अधीन क्यों हैं। काफिरों को प्रेम करना अच्छा नहीं है। हे काफिर! गर्व मत कर। तेरे दुर्दिन बहुत दूर नहीं हैं और तेरे चारों ओर नरसंहार आने वाला है। मुसलमानों अपने हाथों में तलवारों का जलवा दिखाओ और तुम्हें विशेष विजय मिलेगी।'

तलवार के साथ रैली में आने के लिये अपील करने वाले एक और पर्चे में कहा गया था: ''हम देख लेंगे, जो भी मुकाबला करने आयेगा, रक्त की नदियां बहेंगी। हमारे हाथों में तलवारें होंगी और तकबीर (अल्लाहू-अकबर) का नारा होगा। कल कयामत का दिन होगा।''

---

[549] खोसला, पृष्ठ 51

[550] इबिद, पृष्ठ 51-52

[551] इबिद, पृष्ठ 52-53

बंगाल के मुख्यमंत्री हुसैन शहीद सुहरावर्दी, जिसके पास कानून-व्यवस्था का विभाग भी था, ने स्वयं डायरेक्ट एक्शन डे को पूरा करने का बीड़ा उठाया। डायरेक्ट एक्शन के दंगे को पुलिस रोक न सके, इसके लिये उसने कलकत्ता के महत्वपूर्ण पदों से सभी हिंदुओं के स्थानांतरण का आदेश निर्गत किया। उसने कलकत्ता के 24 थानों में से 22 थानों को मुसलमानों के हाथ में दिया और शेष दो थानों के अधिकारी के रूप में एंग्लो-इंडियन को बिठाया। मुस्लिम लीग के कार्यकर्ताओं ने उपद्रवियों और दंगाइयों को एकत्र कर उनके हाथ में सभी प्रकार के हथियार दिये। कांग्रेस के नेता किरणशंकर रे ने इस खतरनाक घटनाक्रम की ओर पुलिस का ध्यान आकर्षित किया, किंतु पुलिस ने अनदेखा कर दिया। डायरेक्ट एक्शन के दिन प्रातः मुस्लिमों ने उपद्रवी लाठियों, भालों, टंगारी और तमंचों के साथ कलकत्ता की सड़कों पर परेड किया। यूरोपीय पुलिस अधीक्षक ने हावड़ा सेतु पर रैली की ओर बढ़ रही भीड़ को रोक दिया; भीड़ से 'लाठियां, भाले, कटार, चाकू, अ-प्रज्विवल मशाल, खाली सोडा वाटर, घरों को जलाने के लिये केरोसिन तेल से भरे टिन, तेल में भीगे हुए लत्ते आदि बरामद हुए।'[552]

यास्मीन खान मुख्यमंत्री सुहरावर्दी के डायरेक्ट एक्शन भाषण के बारे में लिखते हैं, 'यदि उस (सुहरावर्दी) ने हिंसा के लिये नहीं उकसाया था, तो भी उसने भीड़ को यह संदेश तो दे ही दिया था कि मुसलमान कुछ भी करें, उन्हें कोई रोकने नहीं आयेगा, न पुलिस बुलायी जाएगी और न सेना तथा मुसलमान नगर में जो भी उपद्रव व हिंसा करेंगे, उस पर मंत्रालय अपनी आंखें बंद कर लेगा।'[553] रैली स्थल के निकट, ये हथियार बंद उग्रवादी मुसलमान कलकत्ता के हिंदुओं की घनी आबादी में घुस गये और मारकाट, लूटपाट, आगजनी और नरसंहार करने लगे। पुलिस को पहले ही चुप रहने का निर्देश मिला था, तो वह भी उदासीन बनी रही और हिंदुओं व सिखों के घरों व प्रतिष्ठानों को लुटते, जलते देखती रही। सुहरावर्दी पुलिस मुख्यालय पहुंचा और नियंत्रण कक्ष का प्रभार अपने हाथ में लेकर पुलिस को निर्देश दिया कि मुस्लिम दंगाइयों, लुटेरों और हत्यारों के विरुद्ध कोई कार्रवाई न करें। साथ ही उसने यह भी निर्देश दिया कि यदि हिंदुओं द्वारा प्रतिकार की शिकायत कहीं से मिले, तो उन पर तत्पर कार्रवाई करें। निरीक्षक वाडे ने मलिक बाजार बाजार में रेड क्रॉस का फीता बांधकर लूटपाट कर रहे आठ मुसलमानों को निरुद्ध किया था; सुहरावर्दी ने उन मुसलमानों को तत्काल छोड़ने का आदेश दिया।[554] मुसलमानों की दुकानों पर ''मुसलमान दुकान-पाकिस्तान'' लिखकर चिह्नित कर दिया गया था, जिससे कि उन्हें लूटपाट और आगजनी से बचाया जा सके। कांग्रेस नेताओं के घरों पर हमला हुआ और उनमें आग लगा दी गयी; समाचार पत्र प्रकाशन कार्यालयों पर हमले हुए और उनमें आग लगाने का प्रयास हुआ। गैर-मुस्लिम घरों व संपत्ति में लगी आग को बुझाने से रोकने के लिये मुसलमानों की भीड़ द्वारा फायर ब्रिगेड को आगे बढ़ने में बाधा पहुंचायी गयी। हिंदू मंदिरों में तोड़फोड़ की गयी और उनमें आग लगा दी गयी; चिकित्सा महाविद्यालयों (मेडिकल कॉलेजों), विद्यालयों और छात्रावासों पर भी मुसलमानों ने हमला किया, तोड़फोड़ की और आतंक फैलाया।

---

[552] इबिद, पृष्ठ 54

[553] खान वाई (2007) द ग्रेट पार्टिषनः द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 64

[554] खोसला, पृष्ठ 59

लाहौर उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति खोसला उस हत्याकांड का वर्णन करते हुए कहते हैं: 'सड़कों पर शव और कटे हुए अंग बिखरे पड़े थे... बच्चों को छतों से नीचे फेंक दिये जाने की हृदयविदारक घटनाएं हुईं। बताया गया कि किशोरों को जीवित उबलते तेल में डाल दिया गया। अन्य को जीवित जला दिया गया। स्त्रियों के बलात्कार हुए, उनके अंग काट दिये गये और इसके बाद हत्या कर दी गयी।' जब तक कि हिंदू और सिख सन्निपात से बाहर आकर साहस जुटाते हुए हमलों का प्रत्युत्तर नहीं देने लगे, मुस्लिम दंगाई डेढ़ दिन तक नरसंहार करते रहे, लूटपाट करते रहे। सुहरावर्दी ने सेना बुलाने में विलंब किया; उसने सेना तब बुलाई जब हिंदू और सिख प्रतिकार करने लगे। परंतु स्थितियां हाथ से निकल चुकी थीं; और अब दो तिहाई जनसंख्या वाले हिंदुओं और सिखों ने मुसलमानों को उनकी ही भाषा में प्रत्युत्तर दिया। तीन संगठनों ने शवों को एकत्र किया और उन्होंने कुल 3,173 शव एकत्र किये। कुल मृतकों की संख्या 5000 के आसपास थी। जीवित या मृत अस्पताल लाये गये लोगों में 138 मृतक मुसलमान थे और 151 हिंदू व 62 अन्य लोग थे। मरने वालों में लगभग 43 प्रतिशत मुसलमान थे। जलाये गये घरों व संपत्तियों में से 65 प्रतिशत हिंदुओं के थे, जबकि 20 प्रतिशत मुसलमानों के थे और 15 प्रतिशत सरकारी व अन्य संपत्ति थी।[555]

यद्यपि गैर-मुसलमानों की जितनी संपत्ति की क्षति हुई थी, उसकी तुलना में मुसलमानों की नष्ट हुई संपत्ति गौण थी। किंतु मारे गये मुसलमानों की संख्या कम न थी और मुस्लिम लीग ने जो सोचा था कि बद्र में रसूल के जिहाद की सफलता के जैसा कारनामा दिखाएंगे, यहां तो उसके नितांत उलट हुआ। अल्लाह की मेहरबानी न मिलने और अप्रिय परिणाम आने से निराश मुस्लिम लीग के नेताओं ने सारा दोष काफिरों पर मढ़ दिया और कहने लगे कि 'दंगा कांग्रेस के नेताओं द्वारा शुरू किया गया था। लीग के कुछ नेता तो यहां तक कहते पाये गये कि हिंदुओं ने मुसलमानों के नरसंहार के लिये गहरा षडयंत्र रचा था, जिससे कि मुस्लिम लीग को बदनाम किया जा सके।'[556]

डायरेक्ट एक्शन दंगों पर नेहरू की प्रतिक्रिया, जो टाइम में छपी थी, यह थी, ''या तो डायरेक्ट एक्शन सरकार गिरा देगा, अथवा सरकार डायरेक्टर एक्शन को रोक ले।''[557] ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लेने वाले और स्वतंत्रता-पश्चात पूर्वी पाकिस्तान की प्रांतीय विधानसभा के सदस्य पीसी लाहिरी ने इस दुखांतिका पर लिखा है:

> पृथक देश पाकिस्तान बनाने की मांग के आगे झुकाने के लिये कांग्रेस व हिंदुओं को भयभीत एवं आतंकित करने की मुस्लिम लीग की यह सुनियोजित योजना कलकत्ता में विफल हो गयी, क्योंकि हिंदू (और सिख) आक्रामकता और हत्याओं में मुसलमानों से पीछे नहीं रहे। बड़ी संख्या में मुसलमान भी मारे गये।[558]

---

[555] इबिद, पृष्ठ 63-66

[556] इबिद, पृष्ठ 66

[557] डायरेक्ट एक्शन, टाइम, 26 अगस्त, 1946; http://www.time.com/time/magazine/article/0,9171,933559,00.html

[558] लाहिड़ी पीसी (1964) इंडिया पार्टिसन्ड एंड माइनॉरिटीज इन पाकिस्तान, राइटर्स फोरम, कलकत्ता, पृष्ठ 6

कलकत्ता दंगों के बाद मुसलमानों ने 2 सितम्बर को बंबई में दंगा करना शुरू कर दिया। यह वही दिन था जब वहां कांग्रेस सरकार ने शपथ ली थी। यह हिंसा कई दिनों तक चलती रही, जिसमें 200 से अधिक लोग मारे गये।

हिंदू-विरोधी दंगे पूर्वी बंगाल की ओर बढ़ गये

कलकत्ता में डायरेक्ट एक्शन के परिणाम की निराशा और अपने मुस्लिम बंधुओं की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के आवेश में पूर्वी बंगाल के मुसलमानों ने अपने आसपास रहने वाले हिंदुओं पर अपनी क्रूरता दिखानी प्रारंभ कर दी, क्योंकि वे वहां बहुसंख्यक थे। वहां अनवरत दंगे होते रहे; इसमें 1946-47 के नोआखली-तिप्पेरा के दंगे (नोआखली दंगे) उल्लेखनीय हैं। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही वहां रुढ़िवादी धर्मांधता वाली सऊदी वहाबी विचारधारा और अंजुमन सोसाइटी पूरे बंगाल में और विशेष रूप से 80-85 प्रतिशत मुस्लिम बहुल नोआखली में इस्लामी कट्टरता भर रहे थे।[559] कट्टरपंथी बनाने का यह अभियान पूर्वी बंगाल के नोआखली व अन्य जिलों (फेनी, कोमिल्ला) में दंगों की आग का घी बना।[560] इन दंगों में पूर्वी बंगाल के 350 गांव प्रभावित हुए। लाहिड़ी के अनुसार, 'इस प्रकार कलकत्ता में विफल हो जाने के बाद मुस्लिम लीग ने आगजनी, लूट, हिंदू स्त्रियों का अपहरण और बलात्कार, सामूहिक धर्मांतरण व नरसंहार के लिये नोआखली जनपद के एक और स्थान को चुना, जहां हिंदुओं की संख्या कुल जनसंख्या का मात्र 18 प्रतिशत थी।'[561] कलकत्ता के कांग्रेस कार्यालय में नोआखली दंगों का पहला समाचार 15 अक्टूबर 1946 को पहुंचा। यह समाचार नोआखली के कांग्रेस सदस्यों द्वारा भेजे गये उस टेलीग्राम से पहुंचा, जिसमें लिखा था:[562]

> 'व्यापक स्तर पर मकान जलाये गये/ सैकड़ों लोग जलकर मर गये/ सैकड़ों लोगों की हत्या हुई/ बड़ी संख्या में हिंदू लड़कियों को उठाकर ले जाया गया और तलवार की नोंक पर मुसलमानों से शादी करा दी गयी/सभी हिंदू मंदिरों और मूर्तियों को अपवित्र किया गया/ लाचार शरणार्थी तिप्पेरा जिले में भागकर आ रहे थे/ नेता गुलाम सरवर मुसलमानों को उकसा रहा था कि वे नोआखली से हिंदुओं का समूल नाश कर दें...।'

इस पीर (सूफी फकीर) मौलवी गुलाम सरवर द्वारा कलकत्ता के दंगों में मुसलमानों की क्षति को बढ़ा-चढ़ाकर बताते हुए और इसका सारा दोष हिंदुओं पर डालते हुए नोआखली का दंगा भड़काया गया था। सार्वजनिक इस्लामी सभाओं (वाज़ महफिल) में मुस्लिम उलेमा कलकत्ता दंगों के संबंध में मुसलमानों के मन में हिंदुओं के प्रति घृणा भर रहे थे। हिंसा के लिये मुसलमानों को उकसाने के लिये उनमें यह प्रवाद (अफवाह) फैलाया गया कि हिंदू मुसलमानों के नरसंहार के लिये सशस्त्र हिंदू व सिख उपद्रवियों को नोआखली लाये हैं। खोसला लिखते हैं: 'अक्टूबर मध्य तक सैकड़ों की संख्या में हत्याएं की गयीं, हजारों स्त्रियों के साथ

---

[559] बताब्याल आर (1964) कम्यूनलिज्म इन बंगाल: फ्रॉम फैमाइन टू नोआखली, 1943-47, सेज पब्लिकेशंस, पृष्ठ 295-96

[560] इबिद, पृष्ठ 270-71

[561] लाहिड़ी, पृष्ठ 7

[562] खान, पृष्ठ 68

बलात्कार हुए और उन्हें उठा ले जाया गया या उन्हें मुसलमानों से शादी करने को बाध्य किया गया। **इस जिले की समूची हिंदू जनता के पास जो भी कुछ था, उसे लूट लिया गया और इसके बाद उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया।**'[563]

हिंदू मंदिरों को अपवित्र किया गया और उनकी मूर्तियों को खंडित कर दिया गया। नोआखली में लगभग 400,000 हिंदू रहते थे; जिनमें से कम से कम 95 प्रतिशत हिंदुओं को मृत्युतुल्य यातना देकर मुसलमान बनाया गया। खोसला लिखते हैं, 'धर्मांतरित लोगों को कलमा पढ़वाया गया,[564] गाय काटकर उसका मांस उन्हें खिलाया गया।' 5000 से ऊपर लोगों की हत्या की गयी, अनुमान के अनुसार 99 प्रतिशत गैर-मुसलमानों के घर लूट लिये गये और उनमें से 70-90 प्रतिशत घरों को आग लगा दी गयी। ऐसा ही भयानक दृश्य पड़ोस के तिप्पेरा जिले में भी था। सतहत्तर वर्ष की वयोवृद्ध अवस्था में गांधी 6 नवम्बर को नोआखली पहुंचे और मुसलमानों के द्वार-द्वार जाकर अहिंसा का संदेश देते हुए हिंदुओं को अपने मित्रवत् पड़ोसी के रूप में स्वीकार करने की अपील की, साथ ही जो हिंदू शरणार्थी शिविरों में आश्रय लिये हुए थे, उन्हें साहस बांधकर अपने गृहों को लौट जाने को कहा।[565]

बिहार में हिंदुओं का प्रतिकार

डायरेक्ट एक्शन के दिन से लेकर नोआखली दंगों तक बिहार में शत्रुता का वातावरण पनपता रहा। कलकत्ता में हजारों की संख्या में ऐसे व्यापार व कार्यशालाएं थीं, जो बिहारी लोगों की थीं। व्यापार नष्ट हो गया था और भय व असुरक्षा व्याप्त हो गयी थी, तो वे कलकत्ता छोड़कर बिहार लौटने लगे। खोसला लिखते हैं, उनके साथ ही 'नरसंहार, बलात्कार, आगजनी व लूटपाट की हृदयविदारक कथाएं भी बिहार पहुंचीं। इससे बिहारी हिंदू उद्वेलित हो उठे।'[566] बिहारी मुसलमानों के सुनियोजित विस्फोटक व्यवहार और उकसावे ने इस आग में घी का काम किया। डायरेक्ट एक्शन के दिन बिहार मुस्लिम लीग ने स्थानीय बैठक की। इसमें वक्ताओं ने तलवार की ताकत का बखान करते हुए भाषण दिये कि कैसे तलवार ने उन्हें अतीत की सफलताएं और उपलब्धियां दिलायी थीं। वक्ता सैयद मुहम्मद अब्दुल जलील ने मुस्लिम लीग के अग्रणी नेताओं की बातों का उल्लेख करते हुए कहा: ''उनके (हिंदुओं के) प्रतिकार व उनका व्यवहार अहिंसा पर आधारित है, किंतु... हमारे प्रतिनिधियों कायदे-आजम (जिन्ना), निजामुद्दीन और सुहरावर्दी ने हमें स्पष्ट कर दिया है कि अहिंसा का कुछ अर्थ नहीं होता। जब हम लड़ने जाएंगे, तो हमारे पास जो भी हथियार होंगे, उन सबका प्रयोग करेंगे।''

---

[563] खोसला, पृष्ठ 68

[564] कलमा इज द मुस्लिम प्रोफेसन ऑफ फेथ

[565] खोसला, पृष्ठ 69-76

[566] इबिद, पृष्ठ 77

मुस्लिम स्टूडेंट फेडरेशन के शाहिदुल हक़ ने यह कहते हुए अत्यंत उत्तेजक शब्दों में जिहाद के मूल विचार की घोषणा की, ''मुसलमान के लिये जन्नत का मार्ग हिंदुओं को मारने और हिंदुओं द्वारा मारे जाने दोनों में है।''[567] इस विस्फोटक बयानबाजी और कलकत्ता में हिंदुओं के साथ हुई भयानक बर्बरता से बिहारी हिंदुओं के रक्त में उबाल आ रहा था। कपड़ा वितरण समिति के सचिव व बिहारशरीफ के मुस्लिम लीग अध्यक्ष के भडका़ऊ कार्य से आग और भड़क गयी। उसने कपड़े के प्रत्येक राशन कार्ड पर ''अल्लाहू-अकबर, ले रहेंगे पाकिस्तान'' का मुहर लगा दिया था।[568]

तब अक्टूबर मध्य में नोआखली के भयानक दंगों के समाचार आने लगे थे। सबसे पहले स्टेट्समैन ने 16 अक्टूबर 1946 को नोआखली में हुई हत्याओं, लूटपाट व आगजनी का समाचार दिया और इसके इसमें कई दिनों तक इसी प्रकार के समाचार आते रहे। इसी बीच बिहार के विभिन्न भागों में उत्तर बिहार के स्थानीय मुस्लिम लीग नेता की ओर से तैयार हिंसा के लिये उकसाने वाले पर्चे मिले। हिंदुओं को ''इस्लाम का शत्रु'' कहते हुए इस पर्चे के लेखक ने अपने बारे में कहा था कि ''वह अपने माथे पर हिंदुओं का रक्त और जंग के मैदान की धूल लगायेगा।'' जिन्ना को संबोधित एक और पर्चे में कहा गया थाः अब तक हमने भारतीय काफिरों को बहुत समय दिया है। अब समय आ गया है कि कुफ्र के अंधकार (अर्थात हिंदू धर्म) को मिटा दिया जाए। इस श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति हेतु हमें काफिरों को वैसे ही काट डालना होगा, जैसा कि इस्लाम के आरंभिक दिनों में (अरब में इस्लाम के आरंभिक दिनों में) किया गया था। इसी बीच कलकत्ता से एक और पर्चा आया, जिसमें 'हिंदू धर्म व संस्कृति के विनाश, हिंदुओं के धर्मांतरण व हत्या, राष्ट्रवादी मुसलमानों (विभाजन के विरोधी), कांग्रेस के नेताओं की हत्या और हिंदू स्त्रियों पर पाशविक हमले' के आशय वाले जिन्ना के निर्देश थे।'[569]

बिहारी हिंदुओं के मन में बैठ गया था कि उत्पात, नरसंहार, बलात् धर्मांतरण, दास बनाना, बलात्कार और लूटपाट जैसी सारी घटनाएं मुस्लिम लीग की सुनियोजित चाल है, जिससे कि पाकिस्तान की मांग स्वीकार करने के लिये हिंदुओं और कांग्रेस को आतंकित किया जा सके। समस्या की आशंका भांपकर राजनीतिक नेताओं ने शांति की अपील की, जबकि प्रांतीय सरकार ने समस्या उत्पन्न करने वालों से कठोरता से निपटने की कड़ी चेतावनी निर्गत की, किंतु ये सब व्यर्थ रहा। अक्टूबर 25 को हिंसा और अत्याचार का भयानक विस्फोट हुआ, जो 3-4 नवंबर तक बढ़ता ही गया और इसके बाद तेजी से शांत हो गया। खोसला लिखते हैं, 'उन 12 दिनों में बिहार के हिंदुओं ने मुस्लिमों पर बलभर अपना आवेश उतारा और ढंग से प्रतिशोध लिया। पुलिस ने स्थिति को संभालने का भरसक प्रयास किया, किंतु हिंसा के उभार को थाम पाने में विफल रही। इस हिंसा का समाचार सुनकर गांधी आमरण अनशन पर बैठ गया; इसके बाद हिंसा थम गयी। बिहारी जनता (हिंदू) ने भी इस हिंसा से निपटने में अपनी भूमिका निभायी। नेहरू, जो कि हिंसा के समय बिहार गया था, 14 नवम्बर 1946 को विधानसभा में बोला कि 'कानून-व्यवस्था की स्थिति पुनः स्थापित करने

---

[567] कुरआन 9:11, अल्लाह ने मोमिनों के जान व माल को जन्नत के बदले खरीद लिया हैः वे उसके उद्देश्य में लड़ते हैं, और मरते हैं या मारे जाते हैं- ये अल्लाह पर सत्य वचन है, तौरात, इंजील और कुरआन में।

[568] खोसला, पृष्ठ 77

[569] इबिद, पृष्ठ 80-81

में सबसे शक्तिशाली कारक यह तथ्य था कि बड़ी संख्या में लोग, मुख्यतः बिहारी, गांवों में पहुंचे और जनसमूहों का सामना किया। महात्मा के प्रस्तावित भूख हड़ताल का भी बड़ा प्रभाव हुआ।'[570] खोसला के एक अनुमान के अनुसार, बिहार के इस दंगे में 5,334 मुसलमान और 224 हिंदू मारे गये थे। किंतु मुस्लिम लीग के नेताओं ने अतिरंजनापूर्ण ढंग से 20,000 से 30,000 मुसलमानों के मारे जाने की बात कही।[571]

पाकिस्तान की ओर दंगे का बढ़ना

बंगाल से बिहार तक दंगे भड़कने के बाद उपद्रव व हिंसा की गतिविधियां अब वर्तमान पाकिस्तान के प्रांतों तक पहुंच गयीं। बिहार में हिंदुओं के प्रतिकार से मुस्लिम लीग को अगले चरण की हिंसा शुरू करने के लिये दुष्प्रचार का बहाना मिल गया। उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत (एनडब्ल्यूएफपी) और पाकिस्तान के अन्य भागों से मुस्लिमों को बिहार यह जानने के लिये भेजा गया कि वहां क्या हुआ था। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्रों के साथ मिलकर उन्होंने वहां की घटनाओं की जानकारी एकत्र की और किंतु अपने क्षेत्रों में वे कुछ मुंडियां, क्षतिग्रस्त मस्जिदों की ईंटें और कुरआन के फटे पन्ने लेकर पहुंचे और बताया कि ये बिहार दंगों में पाये गये हैं। उन्होंने ये सब उत्तर-पश्चिम भारत और विशेष रूप से एनडब्ल्यूएफपी के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुसलमानों को दिखाया। इस अतिरंजनापूर्ण दुषप्रचार से हिंदू विरोधी वातावरण बनाया गया और ''हम सीमांत (एनडब्ल्यूएफपी) में बिहार का बदला लेंगे'', ''खून का बदला खून'' जैसे भयानक नारों के साथ मुसलमानों में हिंदू-विरोधी उन्माद फैलाया। शीघ्र ही दिसम्बर 1946 में एनडब्ल्यूएफपी हिंदुओं और सिखों के विरुद्ध हिंसा प्रारंभ हो गयी और यह तेजी से उन क्षेत्रों में फैल गयी, जो आज का पाकिस्तान है।[572] यहां उस भयानक हिंसा का पूरा विवरण देना संभव नहीं है, अतः कुछ घटनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जाएगा।

एनडब्ल्यूएफपी में गैर-मुसलमानों की जनसंख्या मात्र 8 प्रतिशत थी। इस हमले में हिंदुओं व सिखों की यह अत्यंत छोटा समूह सरलता से पराजित हो गया; उनके प्रतिष्ठान और व्यापार लूट लिये गये, आग लगा दिये गये; हिंदू मंदिरों और गुरुद्वारों में लूटपाट की गयी और उन्हें अपवित्र किया गया। वैसे तो मुसलमानों की भीड़ मुख्यतः व्यापारिक व धार्मिक स्थानों को लूटने और जलाने में लगी थी, किंतु उन्होंने बहुत से हिंदुओं और सिखों की हत्याएं भी कीं, उनकी स्त्रियों को उठा ले गये और जबरन मुसलमानों से शादी करा दी गयी। जनवरी (1947) तक हिंसा मुख्यतः हजारा और कुछ सीमा तक डेरा इस्माइल खान जिले में ही होती रही, किंतु जैसे ही फरवरी में मुस्लिम लीग द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ, हिंसा तेज हो गयी और इन प्रांतों के सभी

---

[570] इबिद, पृष्ठ 81-83

[571] कामरा, पृष्ठ 14

[572] खोसला, पृष्ठ 264-65

जिलों में पहुंच गयी। मुस्लिम लीग के कार्यकर्ताओं की अगुवाई में भीड़ ने हिंदुओं और सिखों के घरों को लूटने, आगजनी करने के साथ ही वृहद स्तर पर धर्मांतरण कराना प्रारंभ कर दिया।

अप्रैल 1947 में डेरा इस्माइल खान जिले और आसपास के गांवों में वृहद स्तर पर हिंसा, लूटपाट और आगजनी होने लगी, दंगाइयों ने गैर-मुसलमानों के घरों व प्रतिष्ठानों को लूटने के बाद आग लगा दिये, गैर-मुसलमान समुदाय के लोग अपने घरों व व्यापार को छोड़कर अपने क्षेत्रों से दूर भागने पर विवश कर दिये गये। तीन दिनों तक हमले होते रहे, 1200 हिंदू व सिख दुकानों को नष्ट कर दिया गया और उनमें आग लगा दिया गया; पूरा नगर एक दहकता हुआ ध्वंसावशेष बन गया। कई गांवों में पूरे के पूरे हिंदू व सिख समुदाय की हत्या कर दी गयी या उन्हें मृत्युतुल्य यातना देकर जबरन मुसलमान बनाया गया। जो हिंदू व सिख भाग रहे थे, उन पर मुसलमानों ने घात लगाकर हमला किया; उनकी स्त्रियों का अपहरण कर लिया गया। अगस्त 1947 में विभाजन से लेकर जनवरी 1948 तक एनडब्ल्यूएफपी में बेरोकटोक हिंसा होती रही। 22 जनवरी 1948 को बंदूक, भाले, कुल्हाड़ियों से लैस हथियाबंद मुसलमानों की एक भीड़ ने परचिनार के शरणार्थी शिविर पर हमला कर दिया। इस शिविर में 1500 हिंदू और सिख थे। इस हमले में 138 लोग मारे गये, 150 घायल हुए और 223 स्त्रियों को उठाकर ले जाया गया।[573]

मुस्लिम बहुत पश्चिमी पंजाब में हिंसा तनिक विलंब से प्रारंभ हुई। 4 मार्च 1947 को हिंदू व सिख विद्यार्थियों ने पाकिस्तान बनाने की मुसलमानों की मांग का विरोध करने के लिये लाहौर में रैली निकाली। पुलिस ने इस रैली पर गोलियां चलायीं, जिसमें कई विद्यार्थी मारे गये। नगर के एक और भाग में एक पृथक रैली निकाली जा रही थी और उस पर भी मुस्लिम नेशनल गार्ड्स ने हमला किया। इन घटनाओं से मुसलमान और आगबबूला हो गये; उन्होंने हिंदुओं और सिखों पर हमला किया, उनके व्यापार व प्रतिष्ठान लूट लिये और उनमें आग लगा दी। सायं होते-होते 37 हिंदुओं और सिखों की हत्या हो चुकी थी। लाहौर से शुरू हुई हिंसा की आग पंजाब के मुस्लिम बहुल जिलों अमृतसर, रावलपिंडी, मुल्तान, झेलम और अटक तक पहुंच गयी।[574] हिंसा फैलने पर सरकार (पंजाब) के मुख्य सचिव अकबर हुसैन ने कहा: ''लाहौर से शुरू हुई गंभीर घटनाओं के समाचार से अनेक जिलों में रक्तपात और आगजनी हो रही है। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों दोनों को संवेदनाहीन उन्माद का मूल्य चुकाना पड़ा है।''[575]

5 मार्च को पूरे लाहौर में हिंसा होने लगी, हिंदुओं के भवनों और संपत्तियों में तोड़फोड़ की गयी, उनमें आग लगा दी गयी। हिंदुओं और सिखों की हत्याएं हुईं। 11 मार्च को हिंसा शांत हुई। अमृतसर, जहां मुसलमान मजबूत तो थे, किंतु उनकी बहुलता नहीं थी, में 6 मार्च को हिंसा प्रारंभ हो गयी, शरीफपुरा स्टेशन पर एक रेलगाड़ी पर हमला करके हिंदू और सिख यात्रियों की हत्याएं की गयीं। वह रेलगाड़ी जब अमृतसर पहुंची, तो उसमें हिंदुओं और सिखों के शव भरे हुए थे, यहां तक कि महिला कम्पार्टमेंट में भी तीन शव पाये गये। खोसला लिखते हैं, अमृतसर में मुसलमानों द्वारा हिंसा, नरसंहार और आगजनी का नंगा नाच

---

[573] इबिद, पृष्ठ 267-73

[574] इबिद, पृष्ठ 101-02

[575] इबिद, पृष्ठ 105-06

शुरू कर दिया गया था; 'चिकित्सालयों में शव बिखरे पड़े थे, तन से लगभग काट दिये गये सिरों, पेट से बाहर निकल रही अंतड़ियों, काटकर पृथक कर दिये गये हाथ-पांवों और गंभीर रूप से घायल अंगों के साथ लोग मरणासन्न पड़े थे।' 7 मार्च को नगर में चारों ओर आग की लपटें दिख रही थीं। हिंदू और सिख प्रतिष्ठानों और व्यापार में तोड़फोड़ की गयी, उनमें आग लगा दी गयी। 8 मार्च तक 140 लोगों की हत्याएं हो चुकी थीं और बड़ी संख्या में लोग घायल थे, यद्यपि बहुत से शव ऐसे थे जो आग की लपटों में जल गये थे या गिरे हुए भवनों के नीचे दबे पड़े हुए थे। अमृतसर में पूरे सप्ताह भर तक हिंसा होती रहीः हिंदुओं और सिखों के जीवन और संपत्ति दोनों की भारी क्षति हुई थी; जवाला आटा मिल को छोड़कर गैर-मुसलमानों के सभी कारखानों को नष्ट कर दिया गया था।

5 मार्च को भी मुल्तान (पश्चिम पंजाब) में लाठी-डंडे, भाले, छुरे से लैस मुसलमानों की भीड़ ने ''लेके रहेंगे पाकिस्तान, पाकिस्तान जिंदाबाद' नारे लगाते हुए हिंदू व सिख विद्यार्थियों की रैली पर हमला किया, जिसमें बहुत से विद्यार्थी घायल हुए। इसके बाद मुसलमानों ने बर्बर हिंसा प्रारंभ कर दी। तीन दिनों तक मुस्लिम उपद्रवी तलवारों, छुरे और कुल्हाड़ी से हिंदुओं पर हमला करते हुए उनकी हत्याएं करते रहे, उनके व्यापार व घरों को लूटते रहे और इसके बाद उनमें आग लगाते रहे। उन बर्बर उपद्रवियों ने श्रीकृष्ण भगवान तपेदिक चिकित्सालय पर भी हमला किया और रोगियों व चिकित्सों को मारते-काटते उसमें आग लगा दी। मंदिरों और गुरुद्वाराओं को लूटा गया और अपवित्र किया गया, मूर्तियों का विध्वंस किया गया और उनमें आग लगा दी गयी। जोग माया, रामतीर्थ, देवपुरा और देवता खू आदि मंदिरों के भीतर घुसकर भक्तों का नरसंहार किया गया। हिंदुओं और सिखों की युवा कन्याओं को बंदी बना लिया गया और उन्हें उठा लिया गया।

रावलपिंडी जनपद (जिले) के उपनगरों और गांवों में हिंदुओं और सिखों ने विभाजन-पूर्व की सबसे भयावह हिंसाः नरसंहार, बलात्कार, दास बनाना, सामूहिक धर्मांतरण, लूटपाट और आगजनी की पीड़ा सही। यहां उनमें से कुछ के ही उदाहरण दिये जाएंगे। 6 मार्च को रावलपिंडी में मुसलमानों की भीड़ ने हिंदुओं और सिखों के घरों पर हमला और आगजनी प्रारंभ कर दी, घरों के भीतर उपस्थित लोगों को काट डाला गया, तलवार की नोंक पर मुसलमान बाया गया और बहुत से सिखों के सिर और दाढ़ी के केश काट दिये गये। कुछ क्षेत्रों में सिख और हिंदू बराबरी की संख्या में थे और उन्होंने वहां प्रबल प्रतिकार किया, जिसमें मुस्लिम पक्ष को बड़ी क्षति हुई। मुसलमानों ने पड़ोसी गांवों से उपद्रवियों को बुला लिया, जिससे हिंदू और सिखों की संख्या उनके आगे कम पड़ गयी। तीन दिनों तक हत्या और लूटपाट चलता रहा। 7 या 8 मार्च को मुस्लिम लीग ने ग्यारह हिंदू व सिख प्रतिनिधियों को शांति समिति के गठन के लिये बुलाया। मुस्लिम भीड़ ने उन प्रतिनिधियों को घेर लिया और उनमें से सात को वहीं मार डाला; दो किसी प्रकार बचकर भागने में सफल रहे।

रावलपिंडी के गांवों में हथियार बंद मुसलमान भयानक नारे लगाते हुए और नगाड़े पीटते हुए गैर-मुस्लिम गांवों की ओर बढ़े और उन गांवों को घेरकर संपत्ति लूटी, कुछ ग्रामीणों को मार डाला, बचे हुए ग्रामीणों को इस्लाम स्वीकार करने का दबाव डालते हुए आतंकित किया गया। उन्होंने घरों को लूटा और युवा व सुंदर कन्याओं व स्त्रियों को पकड़ कर अपने साथ ले गये; प्रायः

खुले में उन युवा स्त्रियों का शीलहरण होता था, उनके साथ बलात्कार होता था। मुसलमानों की भीड़ घरों व प्रतिष्ठानों को लूटती रहती थी, जलाती रहती थी। खोसला ने लिखा है,[576] निराशा में,

> कुछ स्त्रियां आत्महत्या कर लेतीं अथवा अपने ही संबंधियों के हाथों मृत्यु का वरण कर लेतीं; दूसरी स्त्रियां हृदयविदारक चीत्कार के साथ कुओं में कूद जातीं या आत्मदाह कर लेतीं। उनके घर के पुरुष उपद्रवियों का प्रत्युत्तर देने घर से बाहर निकलते और मारे जाते...। कुछ गांव तो पूर्णतः मिटा दिये गये। घरों व दुकानों को लूटा गया और इसके बाद जला डाला गया, नष्ट कर दिया गया। धर्मांतरण करके कुछ लोग प्राण तो बचा लिये, किंतु उनकी संपत्ति नहीं बची। इस्लाम स्वीकार करने से मना करने वालों को पूर्णतः मिटा दिया गया। उन पुरुषों को गोली मार दी गयी या तलवार से हत्या कर दी गयी। कुछ घटनाओं में छोटे-छोटे बच्चों को उबलते तेल के कड़ाहे में फेंक दिया गया। एक गांव में पुरुषों व स्त्रियों ने इस्लाम स्वीकार करने से मना किया, तो उन्हें एकसाथ खड़ा किया गया और उनके चारों ओर घासफूस व लकड़ी रखकर आग लगा दी गयी, जिसमें वे सब जलकर मर गये। एक स्त्री का चार मास का शिशु था, जब वो आग में जलने लगी, तो शिशु को बचाने के लिये उसे दूर फेंक दिया। उस नवजात शिशु को भाला कोंचकर उठाया गया और उसे आग में डाल दिया गया।

10 मार्च को आसपास के क्षेत्रों के मुसलमानों की भीड़ दोबेरन में घुस गयी। इस गांव में 1700 लोग रहते थे, जिनमें अधिकांश सिख थे। हिंदुओं व सिखों ने स्थानीय गुरुद्वारा में शरण लिया। मुसलमानों ने उनके खाली पड़े घर लूट लिये और आग लगा दी। जब मुसलमानों ने गुरुद्वारा पर हमला किया, तो घिरे हुए सिखों के पास जो थोड़े-बहुत शस्त्र थे, वही लेकर मुसलमानों को दौड़ा लिया, किंतु उन्हें भारी क्षति हुई, शीघ्र ही उनकी गोलियां भी समाप्त हो गयीं। मुसलमान हमलावरों ने कहा कि यदि वे शस्त्र रख दें, तो उन्हें सुरक्षा मिलेगी। उनमें से लगभग तीन सौ लोगों ने बाहर आकर अपने शस्त्र उन्हें सौंप दिये। आत्मसमर्पण करने वाले उन लोगों को बरकत सिंह के घर में रखा गया, किंतु रात में उस घर पर केरोसिन छिड़कर आग लगा दी गयी। वे सब जलकर मर गये। अगले दिन प्रातः मुसलमानों ने गुरुद्वारे का द्वार तोड़ दिया। उसमें बचे हुए सिख तलवार लहराते हुए बाहर आये और एक-एक सिख अंतिम सांस तक लड़ता रहा।

बड़ी संख्या में ऐसी भयानक घटनाएं हैं और ये घटनाएं विभाजन पूर्व हुई हिंसा के समय की ही हैं। पाकिस्तान बनाने की मांग स्वीकार करने के बाद जुलाई मास से ही और भयानक रूप व परिमाण में आतंक, नरसंहार, लूटपाट, दास बनाना, सामूहिक धर्मांतरण, बलात्कार, हिंदुओं व सिखों को जीवित जलाना, उनकी संपत्ति को जलाकर राख कर देने जैसी घटनाएं होने लगीं। ऐसी घटनाएं इतनी अधिक हुई थीं कि यहां उन सबका विवरण दे पाना संभव नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि विभाजन के दिनों से लेकर अगले एक वर्ष तक मुसलमानों ने वर्तमान पाकिस्तान के प्रत्येक भाग में हिंदुओं और सिखों पर हिंसा और रक्तपात किया। गुरबचन सिंह तालिब ने अपनी पुस्तक मुस्लिम लीग अटैक ऑन सिख्स एंड हिंदूज इन द पंजाब 1947 में पंजाब और वृहद

---

[576] इबिद, पृष्ठ 107-08

पाकिस्तान के अन्य जनपदों (जिलों) में हुए ऐसे 592 बड़े हमले की घटनाओं को अंकित किया है, जो बिना किसी उकसावे के मुसलमानों द्वारा शुरू किये गये थे।[577]

सिखों व हिंदुओं का प्रतिशोध

विभाजन-पूर्व प्रारंभ हुई हिंसा और आतंक अगस्त 1946 से जुलाई 1947 तक होता रहा। हिंसा और आतंक का नंगा नाच कलकत्ता, पूर्वी बंगाल, एनडब्ल्यूएफपी और पंजाब (अमृतसर सहित) उन स्थानों पर हुआ, जहां मुसलमानों का लगभग एकाधिकार था। बिहार में हिंदुओं ने कलकत्ता (जहां बहुत से पीड़ित बिहारी थे) और नोआखली में मुसलमानों के उत्पात के परिणामस्वरूप हुआ। इसमें बिहार के स्थानीय मुसलमानों के उकसावे ने आग में घी का काम किया। किंतु पाकिस्तान की ओर एक कोने से दूसरे कोने तक मुसलमानों ने जो हिंसा की, उसके लिये उन्हें किसी ने उकसाया नहीं था। इसी बीच, एनडब्ल्यूएफपी और पश्चिम पंजाब में जिन सिखों को अत्याचार सहना पड़ा था, वे पलायन करके अमृतसर सहित पूर्वी पंजाब के विभिन्न भागों में चले आये। अमृतसर में पहले ही मुसलमानों ने हिंसा व विनाश का भयानक उत्पात मचाया था। पूर्वी पंजाब आकर इन सिखों ने अपनी भयानक आपबीती और मुसलमानों की बर्बरता की कहानियां लोगों को बतायीं, तो स्वाभाविक रूप से लोगों के मन में रोष व प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई। विशेषकर अमृतसर में सिखों के मन में क्षोभ बढ़ा, क्योंकि यहां भी अकारण मुसलमानों ने बर्बरता की थी। बड़ी संख्या में उन सिखों के निर्दोष सहधर्मी काट डाले गये थे, बलपूर्वक सामूहिक रूप से धर्मांतरित किये गये थे; उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार हुए थे, वे दास बना ली गयी थीं, उन्हें उठा ले जाया गया था; उनके घर, व्यापार और संपत्तियां लूट ली गयी थीं और जला डाली गयी थीं; गुरुद्वारों में लूटपाट की गयी थी और अपवित्र किया गया था।

विशेष रूप से उनमें प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी, जिन्हें अपना घर-बार छोड़कर आना पड़ा था, जिनके परिवार के सदस्यों की हत्याएं हुई थीं, जिनकी पत्नियों व बेटियों के साथ बलात्कार हुआ था और अपहरण कर लिया गया था। जिन्होंने पिछले मार्च में अमृतसर में हुई भयानक हिंसा का दंश झेला था, उनमें भी क्रोध पनप रहा था। जुलाई 1947 के उत्तरार्द्ध में लाहौर में पुनः दंगे भड़क गये; तो पहले से ही क्रोधाग्नि में जल रहे अमृतसर के सिख व हिंदू और भड़क गये तथा वे अपने मुस्लिम पड़ोसियों पर टूट पड़े। सिखों के क्रोध की अग्नि में तब और घी पड़ गयी, जब शेखपुरा उनसे छीनकर पाकिस्तान को दे दिया गया। यह उनका सबसे पवित्र स्थान था, क्योंकि सिख पंथ के संस्थापक गुरु नानकदेव जी का जन्म यहीं हुआ था। हिंसा की आग अमृतसर से होते हुए पूर्वी पंजाब के अन्य जनपदों गुरुदासपुर, जालंधर, होशियारपुर, लुधियाना और फिरोजपुर पहुंच गयी और बाद में हरियाणा तक इस आग की लपटें आयीं। सिख हिंसा मुख्यतः मुसलमानों की हत्या और उनकी संपत्ति लूटने पर केंद्रित थी। मुस्लिम औरतों का अपहरण करने की कुछ घटनाएं हुईं और उनमें से कुछ की सिख पुरुषों से विवाह भी कराया गया। यद्यपि प्रशासन ने मुसलमानों की रक्षा का भरसक प्रयत्न किया और अधिकांश अपहृत औरतों को ढूंढ़कर उनके परिवारों को वापस कर दिया गया। सदियों की मुस्लिम बर्बरता और विभाजन के क्रम में डायरेक्ट एक्शन के साथ शुरू हुई मुसलमानों की हिंसा को देखते हुए पूर्वी पंजाब के सिखों के मन

[577] तालिब एसजीएस (1991) मुस्लिम लीग अटैक आन सिख्स एंड हिंदूज इन द पंजाब 1947 (संकलन), वॉयस ऑफ इंडिया, अपेंडिक्स, एट्रोसिटीज, चैप्टर्स 9-11

में बैठ गया था कि मुसलमानों के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व संभव नहीं है, इसलिये उनके प्रतिशोध का मुख्य लक्ष्य अपने बीच से मुसलमानों को खदेड़ना था।

भारत की ओर दिल्ली, जहां के कुछ क्षेत्रों में मुसलमानों की तगड़ी उपस्थिति थी, में भारी हिंसा हुई। ये हिंसा मुसलमानों द्वारा भड़कायी गयी थी। नवम्बर 1946 में मुस्लिम लीग ने मुसलमान उपद्रवियों में हथियार बांटकर दिल्ली में हिंसा भड़काने का प्रयास किया। अगस्त 1947 में विभाजन के समय मुसलमानों के पास 'स्वचालित हथियार, देशी तोप, राइफल, बम, मोर्टार और मिसाइल पहुंचाये गये।'[578] मुस्लिम लोहार और मोटर मिस्त्री हथियार बना रहे थे। मुसिलम दंगाइयों को संदेश सुनने और भेजने के लिये वायरलेस सेट दिये गये थे। पुलिस ने इन घातक हथियारों में 30 बरामद भी किये थे।

21 अगस्त 1947 को शहादरा में एक मुस्लिम छात्र के घर में बम विस्फोट हुआ। संभवतः बम बनाते समय यह विस्फोट हुआ था। 3 सितम्बर की रात को करोल बाग में धमाका हुआ। कहा जाता है कि मुसलमानों ने यह बम अपने हिंदू पड़ोसियों के घरों पर फेंका था। इसके बाद उस क्षेत्र के मुसलमानों के सांप्रदायिक उन्माद फैल गया; मुसलमानों की हथियारबंद भीड़ सड़कों पर उतर आयी और जब एक गैर-मुसलमान स्थानीय चिकित्सक डॉ जोशी उन्हें शांत कराने गये, तो उन्हें गोली मार दी गयी। इस घटना के बाद दिल्ली के अन्य भागों में हिंसा फैल गयी। 6 सितम्बर को मुसलमानों ने राजधानी में बड़े पैमाने पर लूटपाट और छुरेबाजी शुरू कर दी। मुसलमानों की एक भीड़ ने जिला जेल पर हमला करके एक हिंदू वार्डन को मार डाला। मुसलमान उस पुलिस से भिड़ते रहे, जिसमें 60 प्रतिशत मुसलमान थे।

पुलिस की एक रिपोर्ट में अंकित है कि 8 सितम्बर की प्रातः सब्जी मंडी क्षेत्र में एक पुलिस गश्ती दल ने देखा कि मुसलमान हिंदुओं पर गोलीबारी कर रहे हैं। उस संघर्ष में बहुत से पुलिसकर्मी भी घायल हुए; एक सहायक पुलिस उपनिरीक्षक को उपचार के लिये चिकित्सालय भेजना पड़ा। मुसलमानों की भीड़ और पुलिस के बीच पूरे दिन संघर्ष चलता रहा। पुलिस थानों पर भी गोली चलायी गयी। मुसलमानों ने दिल्ली के बाहरी क्षेत्रों में स्थित हिंदुओं के गांवों पर हमला करना प्रारंभ कर दिया, गांवों में आग लगाने लगे। डायरेक्ट एक्शन के बाद से ही ये जो अनवरत हिंसा का काल चला और पाकिस्तान की ओर निरीह हिंदुओं (और सिखों) के साथ जो अत्याचार हो रहे थे, उससे दिल्ली के हिंदुओं के धैर्य का बांध टूट गया। उन्होंने मुसलमानों पर चढ़ाई कर उनका वध करना प्रारंभ कर दिया। यहां मुसलमान यद्यपि हथियारबंद थे, किंतु उनकी संख्या हिंदुओं से कम थी। उनके घरों में आग लगा दी गयी। पुलिस ने मुसलमानों के घरों से अवैध बंदूकें, कटार और छुरे, 154 बम, 54 मोर्टार, राइफल की 1950 गोलियां, 13 वायरलेस ट्रांसमीटर, बहुत सारा हथगोला, स्टन-गन का कारतूस और खतरनाक रसायन बरामद किया था। पुलिस अभिलेखों के अनुसार इस हिंसा में 507 मुसलमान और 76 हिंदू मारे गये थे और संभवतः इतनी ही संख्या मारे गये और ऐसे लोग थे, जिनकी रिपोर्ट नहीं हुई थी।[579]

---

[578] खोसला, पृष्ठ 282-83

[579] इबिद, पृष्ठ 242-85

हिंदुओं और सिखों का पूर्वनियोजित नरसंहार

विभाजन के समय हुई हिंसा में लगभग दो करोड़ लोगों को भागकर सीमा पार आना पड़ाः हिंदू और सिख पाकिस्तान से भागकर भारत आये और मुसलमान भारत से पाकिस्तान गये। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम लीग न केवल पृथक देश चाहता था, अपितु यह भी चाहता था कि उसका देश काफिरों अर्थात हिंदुओं व सिखों से मुक्त होकर पूर्णतः मुस्लिम हो। ऐसा लगता है कि विभाजन के क्रम में मुसलमानों ने जो हिंसा की, वह उनकी पूर्वनियोजित चाल थी और पाकिस्तान से गैर-मुस्लिमों का सफाया करने के लिये मुस्लिम लीग द्वारा सोच समझकर यह चाल चली गयी थी। गैर-मुस्लिमों के नृजातीय सफाये के लिये मुस्लिम लीग के उकसावे के विषय में टाइम्स ऑफ लंदन ने लिखा था, 'लीग के नासमझी भरे दुष्प्रचार के कारण पंजाब में हिंसा हुई।'[580] कोलिंस एंड लैपियर का तर्क है, जिन्ना व मुस्लिम लीग के अन्य नेताओं द्वारा मुसलमानों को बहकाने और भड़काने से मुसलमानों को यह विश्वास हो गया कि 'पाक भूमि' पाकिस्तान से हिंदू बनिया, व्यापारी और जमींदार (सिख भूपति) लुप्त हो जाएंगे... यदि पाकिस्तान हमारा है, तो वहां के हिंदुओं और सिखों के प्रतिष्ठान, खेत, भवन और कारखाने भी हमारे हैं।'[581] कोलिंस एंड लैपियर ने लिखा हैः 'लाहौर का मुख्य डाकघर हिंदुओं व सिखों को संबोधित हजारों पोस्टकार्ड से भरे हुए थे। उन पोस्टकार्डों में बताया गया था कि किस प्रकार पाकिस्तान में हिंदुओं व सिखों की हत्याएं और स्त्रियों के बलात्कार हो रहे हैं। पोस्टकार्ड के पीछे वाले भाग पर लिखा थाः 'जब से मुसलमानों ने नियंत्रण किया है, हमारे हिंदू और सिख भाइयों-बहनों के साथ ये हो रहा है।'[582] ये पोस्टकार्ड मनोवैज्ञानिक जंग के उस अभियान का भाग था, जिसे मुस्लिम लीग ने इसलिये चलाया था कि सिखों और हिंदुओं के मन में आतंक भरा जा सके।'

लाहौर गर्वमेंट हाउस से एक अधिकारी ने दिनांक 5 सितम्बर 1947 को गवर्नर जनरल जिन्ना को एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा थाः ''मैं सभी लोगों से कह रहा हूं कि मुझे इसकी चिंता नहीं है कि सिख सीमा पार कैसे करेंगे, पर अच्छी बात यह है कि हम यथाशीघ्र उनसे छुटकारा पा लेंगे। लैलपुर में 300,000 सिख हैं, पर उनके जाने के लक्षण अभी नहीं दिख रहे हैं, किंतु अंत में उन्हें भी जाना ही होगा।''[583]

चाहे कलकत्ता या नोआखली रहा हो अथवा आज के पाकिस्तान के मुस्लिम बहुल जनपद रहे हों, पुलिस ने उदासीनता दिखाई और यहां तक कि तोड़फोड़, लूटपाट, आगजनी और हत्याओं में सहभागी रही, क्योंकि इन स्थानों पर पुलिस में या तो मुस्लिमों की बहुलता थी या फिर केवल मुस्लिमों की भर्ती करके फोर्स तैयार की गयी थी। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है

---

[580] टाइम्स ऑफ लंदन, 19 मार्च 1947

[581] कोलिंस एल एंड लैपियर डी (1975) फ्रीडम एट मिडनाइट, एवन, न्यूयार्क, पृष्ठ 330

[582] इबिद, पृष्ठ 249

[583] खोसला, पृष्ठ 314

कि किस प्रकार कलकत्ता दंगों में सुहरावर्दी ने पुलिस को निर्देश दिया था। डायरेक्ट एक्शन हिंसा को भड़काने में बंगाल की मुस्लिम लीग सरकार और पुलिस की भूमिका के संबंध में अविभाजित बंगाल के मुख्यमंत्री (1937-43) रहे और बाद में थोड़े समय के लिये पूर्वी पाकिस्तान के मुख्यमंत्री (1954) रहे शेर-ए-बांग्ला ए.के. फजलुल हक़[584] के कथन को पढ़ना चाहिए। फललुल हक़ ने 19 सितम्बर 1946 को बंगाल विधानसभा में अपने संबोधन में अत्याचार की आंखों देखी स्थिति बताते हुए कहा: ''ऐसा लगता था... कि कोई आज का नादिर शाह कलकत्ता पर टूट पड़ा है और नगर को लूटपाट, लूटमार और लूटखसोट के हवाले छोड़ दिया है। श्रीमान, जिस समय भी मैंने पुलिस अधिकारियों से संपर्क करने का प्रयास किया, मुझसे यही कहा गया कि नियंत्रण कक्ष में संपर्क करें।'' उन्होंने आगे कहा कि वो निरंतर पुलिस व सरकार के अधिकारियों से संपर्क करने का प्रयास करते रहे, किंतु सफल नहीं हुए:[585]

> 'पुलिस के अधिकारी सुन नहीं रहे थे, नियंत्रण कक्ष नियंत्रण नहीं कर रहा था, सरकार के हाकिम सुन नहीं रहे थे, श्रीमान, इन परिस्थितियों में भयानक हत्याएं चलती रहीं और यह निर्विवाद सत्य है कि जब 16 फरवरी को समस्या शुरू हुई, तभी यदि पुलिस और सेना ने कड़े कदम उठाये होते, तो ऐसा नहीं हुआ होता। हिंसा के इस तांडव को उसी दिन शुरू होते ही रोक दिया गया होता, और, इसलिये यह निष्कर्ष तो निकाला ही जाएगा कि यद्यपि पुलिस इस उपद्रव के शुरू होने की उत्तरदायी नहीं है, पर वो मानव जीवन की इतनी बड़ी क्षति के लिये सीधे उत्तरदायी है, और यदि निष्पक्ष जांच हो और इन अधिकारियों को चिह्नित किया जाए, तो मेरा विचार है कि वे इसके पात्र हैं कि उन्हें हत्या और हत्या के लिये उकसाने के आरोप में पृथक करके भरे चौराहे खींचकर लाया जाए और सार्वजनिक रूप से फांसी पर लटका दिया जाए...।'

आज के पाकिस्तान के जनपदों में विभाजन के समय की हिंसा के बारे में गुरबचन सिंह तालिब लिखते हैं:

> '...पुलिस और सेना-जो भारत और पाकिस्तान के बीच कर्मचारियों और संपत्तियों के विभाजन के कारण अब पूर्णतः पाकिस्तान की ओर के मुसलमानों भरे हुए हैं- ने न केवल तोड़फोड़ कर रही मुस्लिम भीड़ को प्रत्यक्ष सहायता दी और भड़काया, अपितु कई बार तो उस उपद्रवी भीड़ का नेतृत्व किया, उन्हें दिशा दिखायी और जहां भीड़ हत्या का काम पूरा नहीं कर पायी, वहां स्वयं ही हत्याएं का वह काम पूरा किया। अगस्त तक लाहौर की लाखों गैर-मुसलमान जनसंख्या का बड़ा भाग नष्ट कर दिया गया। किंतु अभी भी लाहौर में 100,000 हिंदू और सिख रह गये थे।'[586]

नागरिक व सैन्य गजट रिपोर्ट के अनुसार, सिखों ने यह कहते हुए लाहौर छोड़ने से मना कर दिया था कि वह उनका घर है। उनका मना करना उनके लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि शीघ्र ही हिंदुओं और सिखों का ध्वंस, सर्वनाश और नरसंहार

---

[584] अखंड भारत के लिये मुखर होने के कारण फजल हक को 1940 में मुस्लिम लीग से निकाल दिया गया।

[585] इबिद, पृष्ठ 307

[586] तालिब, ओपी सीआईसी

किया जाने लगा। लाहौर की सड़कों पर नौ हजार हिंदुओं और सिखों के शव पड़े हुए थे, जिनसे भयानक दुर्गंध आ रही थी।'[587] गुरबचन सिंह तालिब के अनुसार, 10 अगस्त 1947 को हिंदुओं और सिखों के लगभग सभी मुहल्लों में आग लगा दी गयी। चूने मंडी, बजाज हट्टा, सुआ बाजार, लाहौरी गेट, मोहल्ला स्थान और मोजांग से आग की लपटें उठ रही थीं। इन सभी स्थानों पर गैर-मुस्लिम क्षेत्रों में पुलिस दंगाइयों का नेतृत्व कर रही थी। लाहौर में अगस्त 1947 में हुए इस भयानक नरसंहार पर हिंदुस्तान टाइम्स के संवाददाता ने रिपोर्ट किया: ''पश्चिम पंजाब में बीते तीन सप्ताह में जो भी जनहानि हुई है, उसमें से 70 प्रतिशत क्षति सांप्रदायिक उन्मादी सेना और पुलिस ने किया है। उनकी गोलियों के पीड़ितों की संख्या हजारों में है। शेखुपुरा का नरसंहार, जो कि उन्हीं की करतूत थी, देखकर जलियांवाला बाग कांड स्मरण हो उठा।''[588]

वास्तव में, पाकिस्तान की ओर आरंभ से ही पुलिस ने मुसलमानों को हिंदुओं और सिखों पर हिंसा और तोड़फोड़ करने के लिये उकसाया और इस अपराध में स्वयं भी सम्मिलित रही। 5 मार्च 1947 को नेशनल गार्ड्स की सहायता ने मुस्लिम भीड़ लाहौर के रंगमहल में गैर-मुसलमानों के प्रतिष्ठानों (दुकानों) में लूटपाट करने लगी। जब हिंदुओं और सिखों ने प्रतिकार किया, तो दल-बल के साथ मुसलमान उपनिरीक्षक वहां पहुंचा और उन पर गोलीबारी की। जब एक युवा हिंदू व्यक्ति ने उस उपनिरीक्षक से कुछ कहा, तो उसने उसे गोली मार दी।[589] जब मुसलमानों ने अमृतसर में 6 मार्च 1946 को हिंसा करनी शुरू की, तो हिंसाग्रस्त क्षेत्रों से हिंदू पुलिसकर्मियों को हटाकर मुसलमान पुलिसकर्मियों को लगा दिया। उस हिंसा में उनकी मिलीभगत पर खोसला ने लिखा है, 'मुसलमान पुलिस अधिकारियों द्वारा मुसलमान मजिस्ट्रेटों का साथ दिया गया... मुसलमान मजिस्ट्रेटों ने उपद्रवियों को समर्थन दिया और मूकदर्शक बने रहे।' इसी प्रकार रावलपिंडी में हुई हिंसा में मजिस्ट्रेट और पुलिस मूकदर्शक बनकर दंगाइंयों को उकसाते रहे। न्यायमूर्ति खोसला लिखते हैं, जब एक वरिष्ठ सिख अधिवक्ता ने मजिस्ट्रेट से पुलिस सहायता मांगी, 'तो अपर जिला मजिस्ट्रेट ने उन पर अफवाह फैलाने का आरोप लगाया और धमकी दी कि वे अपना जीवन खतरे में डाल रहे हैं।'[590] विभाजन-पूर्व हिंसा के समय मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों में अधिकारियों और विधि प्रवर्तन एजेंसियों की ऐसी प्रतिक्रिया होती थी। अगस्त 1947 में विभाजन के क्रम में इस नयी और तीव्र हिंसा में पुलिस और सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत और अधिक बढ़ गयी। इस मिलीभगत का एक उदाहरण ऊपर दिया गया है। अगस्त 1947 में हिंदुओं और सिखों के नरसंहार में बलूच रेजीमेंट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई,

---

[587] इबिद

[588] भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के समय ब्रिटिशों द्वारा की गयी सबसे भयानक हिंसा पंजाब का जलियावाला बाग कांड था। ब्रिटिश अभिलेखों के अनुसार इस हिंसा में 379 लोग मारे गये थे, जबकि भारतीय दावा करते हैं कि इसमें 1000 लोग मरे थे।

[589] खोसला, पृष्ठ 101-02

[590] इबिद पृष्ठ 103, 106

जबकि झांग के जिला मजिस्ट्रेट पीर मुबारक अली शाह भीड़ का नेतृत्व करता हुआ और राइफल से गोलियां चलाता हुआ देखा गया।[591]

भारत की ओर अधिकारियों ने हिंसा रोकने का पूरा प्रयास किया। सीमा के दोनों ओर के अधिकारियों की प्रतिक्रियाओं में असमानता पर न्यायमूर्ति खोसला ने लिखा है, 'जहां भारत सरकार और पूर्वी पंजाब की सरकार ने उपद्रव को कुचलने के लिये अपने सभी संसाधन लगा दिये थे, वहीं पश्चिम पंजाब की सरकार अपने बहुत से आधिकारिक और अनधिकृत कृत्यों के माध्यम से उपद्रवी तत्वों को प्रोत्साहन दे रही थी।'[592] यद्यपि कुछ पुलिस अधिकारी, विशेष रूप से पूर्वी पंजाब (उदाहरण के लिये अंबाला में) में, निस्संदेह सिखों के प्रतिकार पर आंखें बंद और चुप्पी साधकर वही कर रहे थे, जो सीमा पार मुस्लिम पुलिस अधिकारी हिंदुओं और सिखों के साथ कर रहे थे; उनमें से कुछ हत्या और लूटपाट में भी भागीदार रहे थे। किंतु ऐसी घटनाएं विरले ही थीं और जिन पुलिस अधिकारियों ने ऐसा किया भी था, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। पाकिस्तान में ऐसे अपराधी पुलिस कर्मियों व सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गयी।

मुसलमानों का नृजातीय संहार

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि विभाजन के समय भारतीय सीमा की ओर नृजातीय संहार मुख्यतः पूर्वी पंजाब में हुआ। बहुत दिनों तक मुसलमानों द्वारा किया जा रहा अत्याचार, नरसंहार सहने के बाद अंततः सिखों में प्रतिशोध की आग भड़क गयी, किंतु इसका ऐतिहासिक संदर्भ देखे बिना इस पर सही-गलत का निर्णय नहीं किया जा सकता है। सिख पंथ के संस्थापक गुरु नानक देव जी, जो कि मुगल आक्रांता बाबर के समकालीन थे, ने हिंदुओं के सामूहिक नरसंहार और उनके मंदिरों के विध्वंस को अपनी आंखों से देखा था। नानक देव जी ने अपनी पुस्तक बाबर वाणी में ऐमनाबाद में बाबर द्वारा किये गये विध्वंस का स्पष्ट विवरण देते हुए इस आक्रांता के कृत्यों की निंदा स्पष्ट शब्दों में की है। उन्होंने सिख धर्मग्रंथ ग्रंथ साहिब में ईश्वर से शिकायत के रूप में हिंदुओं पर मुसलमानों की क्रूरता का वर्णन इस प्रकार किया हैः

> 'इस्लाम को सिर चढ़ाने के बाद, तूने हिंदुस्थान को विभीषिका में झोंक दिया है... उन्होंने ऐसी क्रूरता की है, और तब भी तेरी दया नहीं आयी... जब सबल किसी सबल पर चढ़ाई करता है, तो हृदय नहीं जलता है। किंतु जब सबल निर्बल का दमन करता है, तो निश्चित ही उसे ही सहायता के लिये पुकारा जाएगा, जो उनकी रक्षा कर सके... हे ईश्वर, इन कुत्तों ने हीरे जैसे हिंदुस्थान को नष्ट कर दिया है (उनका आतंक इतना भयानक है कि) जो मार डाले गये हैं, उनको पूछने वाला कोई नहीं है और तब भी तू ध्यान नहीं दे रहा है...। (महला 1:36)

इस्लामी क्रूरता बाद में गुरु नानक के अनुयायियों पर भी आ पड़ी। बादशाह जहांगीर ने अपने बेटे शहजादे खुसरो की अगुवाई में हुए विद्रोह का समर्थन करने का आरोप लगाते हुए सिख गुरु अर्जुन देव को यातना देकर मार डाला। इसके बाद

---

[591] इबिद, पृष्ठ 122, 179

[592] इबिद, पृष्ठ 119

औरंगजेब के आदेश पर गुरु तेगबहादुर को क्रूरतम यातना दी गयी और उसके बाद उनका सिर धड़ से पृथक कर दिया गया, क्योंकि उन्होंने कश्मीरी हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने की शिकायत की थी। 1705 में औरंगजेब ने गुरु गोविंद सिंह (गुरु तेगबहादुर के बेटे) और उनके अनुयायियों पर हमला किया तथा उन्हें उनके किले में घेर लिया। औरंगजेब की फौज ने पहले छल करते हुए गुरु गोविंद सिंह के अनुयायियों को सुरक्षित जाने देने का आश्वासन दिया और जब वो अनुयायी बाहर आये, तो वे जिहादी विश्वासघात कर उन पर टूट पड़े और गुरु गोविंद के परिवार सहित उन अनुयायियों व उनके परिवारों को काट डाला। यद्यपि गुरु गोविंद सिंह इस बार किसी प्रकार बच गये और वहां से निकल गये, किंतु अंततः 1707 में सरहिंद (पंजाब में) औरंगजेब के गवर्नर वजीर खान ने उनको मार दिया।

मुस्लिम शासकों द्वारा एक के बाद एक सिख गुरुओं को मार डालने के इन क्रूर संदर्भों को देखते हुए मुसलमानों के विरुद्ध सिखों के रोष को कम करने नहीं आंका जा सकता है। यहां हमें यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि मुस्लिमों द्वारा भड़काये गये सिपाही विद्रोह के समय सिखों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया था। उसके बाद मोपला के मुस्लिमों के दंगे, भारत को विभाजित करने का मुस्लिमों का हठ (जिसका सिख विरोध कर रहे थे), फिर कलकत्ता में मुसलमानों की बर्बरताओं और कलकत्ता से होते हुए आज के पाकिस्तान और पूर्वी पंजाब के अमृतसर में भी फैली हिंसा से सिख प्रभावित हुए थे। ऐसा लगता है, पूर्वी पंजाब में सिखों के मन में यह बैठ गया था कि मुसलमानों के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व संभव नहीं है। पूर्वी पंजाब में हिंसा को लेकर सिख नेताओं द्वारा दिये गये कथन से यह स्पष्ट हो जाता है। इसमें कहा गया था:[593]

> 'हमें मुसलमानों की मित्रता नहीं चाहिए और हम कभी उन्हें मित्र नहीं बना सकते हैं। हमें पुनः लड़ना होगा, किंतु हम सीधी लड़ाई लड़ेंगे। महिलाओं व बच्चों एवं शरण लेने वालों की हत्याएं तत्काल रुकनी चाहिए... शरणार्थी रेलगाड़ियों, काफिलों और कारवाओं पर धावा नहीं बोलना चाहिए। हम आप लोगों से कहना चाहते हैं कि मुसलमानों को बचाने की अपेक्षा अपने समुदाय, छवि, चरित्र और परंपराओं की रक्षा का कार्य करें।'

विचित्र शब्दों में शांति की इस अपील में यह भी आह्वान था कि यदि मुसलमान हिंसा करें, तो स्त्रियों व बच्चों एवं शरणार्थियों को क्षति पहुंचाये बिना उनसे लड़ें। स्पष्ट है कि इस अपील में मुसलमानों के विरुद्ध आक्रोश भी छिपा था। इस आक्रोश के पनपने में मुसलमान हमलावरों व शासकों द्वारा किये ऐतिहासिक अत्याचार और सिखों पर मुसलमानों की निरंतर बर्बरता ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

ब्रिटिश नियंत्रण से बाहर के रियासतों अलवर और भरतपुर में भी मुसलमानों की भारी क्षति और नृजातीय संहार हुआ था। इन जागीरों में मेव (मेवाती) नामक स्थानीय मुसलमान बड़ी संख्या में रहते थे। इयान कोपलैंड के एक अनुमान के अनुसार, हिंदू हिंसा में 30,000 मेव मुसलमान मारे गये और लगभग एक लाख मुसलमानों को घर-बार छोड़कर भागना पड़ा। यद्यपि राजस्थान में हिंसा बाद के चरण में हुई। कोपलैंड ने लिखा है, उन्होंने दावा किया कि हिंदू हिंसा 'नोआखली और पंजाब में हिंदुओं के नरसंहार' का प्रतिशोध लेने के लिये भड़कायी गयी। हिंसा किसने भड़कायी, यह ज्ञात नहीं है, जैसा कि कोपलैंड लिखते हैं: 'इस

---

[593] इबिद. पृष्ठ 288

संदर्भ में ''हमलावर'' और ''पीड़ित'' में भेद कर पाना कठिन भी है और संभवतः व्यर्थ भी है। दोनों पक्ष अपराधी थे।'[594] दिल्ली के आसपास वाह्य क्षेत्रों में मेवातियों ने हिंदू गांवों में हमला कर भयानक हिंसा की थी, इसी से संभवतः पड़ोस के अलवर में हिंसा भड़की। खोसला के अनुसार, '(दिल्ली के) कुछ गांवों में मेवातियों (मुसलमानों) ने उपद्रव शुरू किया। हिंदू गांवों पर हमले हुए और गांव जला डाले गये। अंततः उन मेवातियों को वहां से खदेड़ा गया और पड़ोस के अलवर राज्य से उनमें से अधिकांश का सफाया कर दिया गया।'[595] मेवातियों में एक पृथक आंदोलन भी चल रहा था; वे राजस्थान के हृदयस्थल में मेवोस्तान नाम का स्वतंत्र मुस्लिम देश बनाना चाहते थे।

विभाजन के क्रम में अनुमानतः छह लाख से चालीस लाख लोग मारे गये; लाखों हिंदू व सिख महिलाओं के साथ बलात्कार हुए; इतनी ही संख्या में उन्हें दास बनाया गया और उठा ले जाया गया। संभवतः कुछ मिलियन हिंदू व सिखों को मृत्युतुल्य यातना देकर बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया, जिनमें अकेले नोआखली के 400,000 लाख हिंदुओं की 95 प्रतिशत जनसंख्या का बलपूर्वक धर्मांतरण हुआ था। जहां तक क्षति का प्रश्न है तो मुसलमानों और गैर-मुसलमानों दोनों की संख्या मोटामाटी बराबर थी। मुसलमानों को सबसे भारी क्षति पूर्वी पंजाब में हुई थी। विभाजन के कारण अनुमानतः 1.9 करोड़ लोग सीमाओं पर इधर से उधर विस्थापित हुए। 1951 में हुई विस्थापितों की गणना के आधार पर कहा जाता है कि विभाजन के समय पंजाब स्थित सीमा से लगभग एक करोड़ पैतालिस लाख इस पार से उस पार या उस पार से इस पार गये। विभाजन के समय 72 लाख 26 हजार मुसलमान पाकिस्तान गये और 72 लाख 49 हजार हिंदू व सिख पाकिस्तान से भारत आये। बंगाल की ओर सीमा पर साढ़े तीन करोड़ हिंदू पूर्वी पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत आये, जबकि मात्र सात लाख मुसलमान ही भारत से बंगाल गये।[596] यह समझना चाहिए कि मुसलमानों का पलायन अधिकांशतः स्वैच्छिक था, क्योंकि वे पृथक मुस्लिम देश बनाने पर उतारू थे और मुस्लिम संगठनों द्वारा पृथकतावादी अभियान में काफिरों के प्रभुत्व वाली भूमि दारुल-हर्ब (अर्थात हिंदू भारत) से मुस्लिम देश में पलायन के लिये प्रोत्साहित किया गया था।

जहां तक संपत्ति के क्षति की बात है, तो मुसलमानों की तुलना में हिंदू और सिखों ने बहुत अधिक खोया था। पूरे भारत में हिंदू और सिख समृद्ध समुदाय थे और विशेष रूप से व्यापार और औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर उनका प्रभुत्व था। विभाजन से पूर्व पूर्वी बंगाल के हिंदुओं के पास वहां की 80 प्रतिशत राष्ट्रीय संपत्ति पर स्वामित्व था। कामरा के अनुसार, 'पूर्वी बंगाल के प्रत्येक नगरों के भवनों व संपत्तियों में से अधिकांश और नगरीय संपत्तियों में से 85 प्रतिशत से अधिक हिंदुओं की थी।'[597] एनडब्ल्यूएफपी, जहां अल्पसंख्यक (हिंदू, सिख, ईसाई) की जनसंख्या केवल 8.2 प्रतिशत थी, में भी प्रांत की आयकर का 80

---

[594] कोपलैंड (1998) द फर्दर शोर ऑफ पार्टिसनः एथनिक क्लींजिंग इन राजस्थान 1947, पास्ट एंड प्रेजेंट, आक्सफोर्ड, 160, पृष्ठ 203-39

[595] खोसला, पृष्ठ 284

[596] पार्टिशन ऑफ इंडिया, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Partition_of_India

[597] कामरा, पृष्ठ 3

प्रतिशत भाग हिंदुओं द्वारा दिया जाता था; लाहौर में गैर-मुसलमान अल्पसंख्यकों के पास वहां की 80 प्रतिशत संपत्ति थी।[598] ऐसा लगता है कि हिंदुओं और सिखों को भगाकर उनकी संपत्ति व व्यापार पर कब्जा करने की पूर्वनियोजित मंशा के साथ मुसलमानों ने हिंसा शुरू की थी। मुस्लिम लीग के इस दुष्प्रचार कि यदि पाकिस्तान उनका है, तो गैर-मुसलमानों की संपत्तियां भी उनकी हैं, पहले ही उल्लेख किया गया है। बंगाल कांग्रेस के नेता किरणशंकर राय ने 22 जुलाई 1947 को एक प्रेस विज्ञप्ति में पूर्वी बंगाल के मुसलमानों की मंशा की ओर इंगित करते हुए कहाः ''पूर्वी पाकिस्तान के क्षेत्र में सामान्य मुसलमानों की धारणा यह है कि 15 अगस्त के बाद हिंदुओं के मकान, भवन और भूमि स्वतः ही मुसलमानों के अधिकार में आ जाएंगी और उस क्षेत्र के हिंदु एक प्रकार से मुसलमानों के अधीन जाति हो जाएंगे।''[599] यह भावना पंजाब के उग्र मुसलमानों में और अधिक थी और यहां के मुसलमानों को लगता था कि उनमें से प्रत्येक नवाब (प्रांतीय गर्वनर) हो जाएगा।'[600]

दोषी कौन?

स्पष्ट है कि विभाजन के कारण उपजी इस भयानक मानवीय त्रासदी और पीड़ा का दोष मुख्यतः मुसलमानों पर है। पहले तो उन्होंने अलगाववादी (पृथकतावादी) आंदोलन प्रारंभ किया; और इसके बाद बाद जो हिंसा और पलायन हुआ, उसे उन्होंने ही भड़काया। पाकिस्तान बनाने की अपनी मांग को लेकर दबाव डालने हेतु उन्होंने विभाजन से एक वर्ष पूर्व रक्तरंजित हिंसा का अभियान शुरू किया। जब पाकिस्तान बनाने की मांग मान ली गयी और अंततः विभाजन हो गया, तो वे और अधिक क्रूर हिंसा में संलिप्त हो गये। मुस्लिम लीग और मस्जिदों में किये गये अपप्रचार के अनुसार, डायरेक्ट एक्शन जिहाद था, उसी जिहाद को पुनः दोहराने का आह्वान था, जो मुहम्मद के जिहादी बद्र के जंग में किया गया था। मुसलमानों की हिंसा का कुल उद्देश्य नवनिर्मित ''पाक स्थान'' से काफिरों को मिटा देना था। यह हिंसा पूर्णतः सऊदी अरब में मुहम्मद द्वारा यहूदियों और बहुदेववादियों का नरसंहार और सामूहिक निर्वासन करके पहले इस्लामी राज्य की स्थापना से मेल खाता था।

विभाजन के क्रम में अगस्त में पश्चिम पाकिस्तान में सभी स्थानों पर दंगे हुए। पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल) में चालबाजी करते हुए विभाजन के दिनों में हिंसा रोकी गयी थी, किंतु फरवरी 1950 में वहां मुसलमानों की भीड़ द्वारा हिंदुओं के विरुद्ध भयानक हिंसा प्रारंभ कर दी गयी। यह हिंसा पाकिस्तानी प्रेस, रेडियो और मुस्लिम नेताओं द्वारा हिंदुओं को ''देशद्रोही'', 'शत्रु के एजेंट'', ''पांचवें स्तंभकार'' और ''राजद्रोही तत्व'' कहकर तब भड़कायी गयी थी, जब कश्मीर में पाकिस्तान का हमला विफल हो गया। 6 व 7 फरवरी को रेडियो पाकिस्तान ने घोषणा कीः ''साथियो! टाप लोगों ने उस अमानवीय अत्याचार के बारे में सुना होगा, जो

---

[598] खोसला, पृष्ठ 120, 258

[599] हिंदुस्तान टाइम्स, 22 जुलाई 1947

[600] सिविल एंड मिलिटरी गजट, लाहौर, 30 दिसम्बर 1948

भारत और पश्चिम बंगाल में हो रहा है। क्या आप लोग उसके विरुद्ध साहस नहीं जुटाएंगे?'' [601] पूरे पूर्वी पाकिस्तान में हिंदुओं के विरुद्ध हिंसा करने के लिये मुसलमान भीड़ को उकसाने हेतु इस प्रकार के झूठे दुष्प्रचार किये गये। इतनी सामूहिक हत्या, बलात्कार, स्त्रियों के अपहरण, सामूहिक धर्मांतरण, आगजनी और लूटपाट हुए कि उनका पूरा विवरण देना यहां संभव नहीं है। उदाहरण के लिये, जवाहर लाल नेहरू ने ढाका में मारे गये हिंदुओं की संख्या 600 से 1000 ही बतायी, जबकि यह संख्या सच्चाई से बहुत कम थी। नेहरू द्वारा दिये गये आंकड़े के अनुसार, राजापुर थाने के अंतर्गत गांवों में 150 हिंदुओं की हत्याएं कर दी गयीं और शेष को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया; लगभग 15 लाख हिंदुओं को पूर्वी बंगाल से भागकर बंगाल आना पड़ा।[602]

हिंदुओं और सिखों ने पहले हिंसा नहीं भड़कायी; किंतु बहुत बाद में उन्होंने केवल अपने ऊपर हो रही हिंसा का उत्तर दिया। 1947 में विभाजन के समय भारत के भीतर पूर्वी पंजाब, दिल्ली, अलवर और भरतपुर के अतिरिक्त अलीगढ़, बंबई और जम्मू-कश्मीर में हिंसा हुई। इन स्थानों पर मुसलमानों की ठीक-ठाक उपस्थिति थी और ये दंगे उनके द्वारा ही शुरू किये गये थे या भड़काये गये थे। उदाहरण के लिये, कश्मीर में पठान मुसलमानों ने हिंदू स्त्रियों को पकड़कर उठा ले गये और पाकिस्तान के झेलम जिले के बाजार में ले जाकर बेच दिया।[603] अधिकांश घटनाओं में हिंदू व सिख हिंसा उन हमलों से बचाव में हुईं, जो मुसलमान कर रहे थे। यहां तक कि पूर्वी पंजाब, जहां सिखों के प्रतिकार से मुसलमानों को भारी क्षति हुई थी, वहां भी मुसलमानों द्वारा की जा रही हिंसा से बचने के लिये ही हिंदुओं व सिखों ने शस्त्र उठाये थे। कलकत्ता, नोआखली, पश्चिम पंजाब, एनडब्ल्यूएफपी और पूर्वी पंजाब के अमृतसर में भी मुसलमानों द्वारा अकारण की जा रही नृशंस हिंसा निस्संदेह सिखों और हिंदुओं के धैर्य की परीक्षा ले रही थी और इसी हिंसा ने अंततः सिखों और हिंदुओं को उन्हीं की भाषा में उत्तर देने को बाध्य कर दिया। कुलमिलाकर हिंदुओं और सिखों ने बहुत संयम दिखाया था; भारत में जहां मुसलमान अल्पसंख्यक थे, उन स्थानों पर स्थिति शांत ही रही।

निस्संदेह अलगाववादी मुसलमानों पर ही विभाजन से जुड़ी हिंसा और रक्तपात का दोष जाता है। पहले मुसलमानों ने पृथक देश की मांग की और इसके बाद अकारण हिंसा भड़काई और रक्तपात किया। इसमें ब्रिटिश सरकार और हिंदू व सिख (हिंदुत्व समूह सहित) का दोष गौण है।

भारत के सामाजिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन इस्लाम का प्रभाव

भारत में इस्लामी उपनिवेशवाद का सबसे बुरा प्रभाव मुस्लिम हमलवारों व शासकों द्वारा चारों ओर गैर-मुसलमानों पर हिंसा, उनका दमनकारी आर्थिक शोषण और बड़े स्तर पर उन्हें दास बनाने के रूप में सामने आया। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों जैसे सती, बाल विवाह, जाति प्रथा आदि ने मुस्लिम शासन में भयावह रूप धारण किया। इस्लामी शासन ने

---

[601] कामरा, पृष्ठ 3

[602] इबिद, पृष्ठ 59, 66, 105

[603] तालिब, पृष्ठ 201

भारत नयी सामाजिक कुरीतियों जैसे ठगी कल्ट और जौहर को जन्म दिया। ब्रिटिश का नियंत्रण होने के बाद इनमें से कुछ कुरीतियों यथा जौहर व ठगी कल्ट लुप्त हो गयीं; ब्रिटिश शासन ने भारत के अन्य सामाजिक कलंकों का उन्मूलन या दमन करने का गंभीर प्रयास किया। इस्लामी शासन का भारत की शिक्षा व ज्ञान की प्रणाली पर भी घातक प्रभाव डाला।

शिक्षा व ज्ञान पर

भारत में इस्लामी उपनिवेशवाद का सर्वाधिक बुरा प्रभाव इसके शिक्षा व ज्ञान पर पड़ा। मुस्लिम शासकों और हमलावरों ने भारत की मूल (देशज) शिक्षा प्रणाली को नष्ट किया। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने केवल मुस्लिमों के लिये मस्जिदें और मदरसे बनाये। यह पहले ही उल्लेख किया गया है कि इस्लाम-पूर्व भारत में शिक्षा, साहित्य, विज्ञान और चिकित्सा के उच्च मानक थे और नालंदा (427-1197), तक्षशिला, कांची, विक्रमशिला, जगद्दल, उदंतपुर में ज्ञान के प्रसिद्ध केंद्र स्थापित थे। आज के बिहार के तत्कालीन बौद्ध केंद्र में स्थित नालंदा विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था वाला विश्व का प्रथम आवासीय विश्वविद्यालय था। जब यह केंद्र अपने वैभव की अवस्था में था, तो इसमें 10,000 शिक्षार्थी और 2000 शिक्षक हुआ करते थे। इसमें नौ तल का ऐसा पुस्तकालय हुआ करता था, जहां शोध व अन्वेषण के बाद ग्रंथ रचे जाते थे और संरक्षित किये जाते थे। नालंदा भी अपने समय का सबसे बड़ा वैश्विक विश्वविद्यालय था और यहां कोरिया, जापान, तिब्बत, इंडोनेषिया, फारस और तुर्की से शिक्षार्थी ज्ञान लेने आते थे।[604] 1197 में बख्तियार खिलजी ने इस विश्वविद्यालय को नष्ट कर दिया और इसके समस्त बौद्ध शिक्षकों की हत्या कर दी, इसके अति समृद्ध पुस्तकालय को जला डाला। मुस्लिमों की भारत विजय से पूर्व बगदाद से अनेक मुस्लिम विद्यार्थी तक्षशिला विश्वविद्यालय विशेष रूप से चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने आते थे। मुस्लिम हमलावरों व शासकों ने ज्ञान के इन सभी महान केंद्रों का विध्वंस कर दिया; भारत पर मुसलमानों का नियंत्रण होने के बाद इन केंद्रों का अस्तित्व समाप्त हो गया। भारत के विज्ञान व ज्ञान पर इस्लामी हमलों के प्रभाव पर अलबरूनी ने कहा है कि मुस्लिमों के कब्जे वाले क्षेत्रों से विज्ञान व ज्ञान समाप्त सा हो गया था।[605] अपेक्षाकृत उदारवादी कहे जाने वाले अकबर के शासन में हिंदुओं ने हजारों मंदिरों का पुनरुद्धार किया, जो हिंदू विद्यालयों के रूप में भी कार्य करते थे। बाद में औरंगजेब ने देखा कि मुस्लिम विद्यार्थी भी उन मंदिर-विद्यालयों में जाते हैं और कुफ्फार (अ-इस्लामी) ज्ञान को अपने मन में बिठाते हैं, तो उसने उन मंदिरों को नष्ट करने का आदेश दिया, जिससे यह पुनर्जीवित हिंदू शिक्षा प्रणाली नष्ट हो गयी। अन्य मुस्लिम शासक जैसे दक्षिण के सुल्तान अहमद शाह बहमनी ने ''मूर्तिपूजा वाले मंदिरों'' को तोड़ा और ''ब्राह्मणों के गुरुकुलों'' को नष्ट किया।''[606]

धर्मनिरपेक्ष शिक्षा व ज्ञान के लिये विद्यालय बनाने के स्थान पर मुस्लिम हमलावरों ने जहां भी गैर-इस्लामी शैक्षणिक केंद्र देखा, उसका विध्वंस कर दिया। जब खलीफा उमर ने इजिप्ट (641) जीता, तो उसने अलेक्जेंड्रिया के महान पुस्तकालय को नष्ट

---

[604] नेहरू (1989), पृष्ठ 122; आल्सो नालंदा इन विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Nalanda

[605] सचाऊ (2002), पृष्ठ 6

[606] फरिश्ता, अंक दो, पृष्ठ 248

कर दिया। मुसलमानों ने फारस जीतने के बाद सीटीसिफॉन में जरतुश्त (पारसी) राज पुस्तकालय को जला डाला। ऐसा ही दमाकस (सीरिया) और स्पेन में भी हुआ। 1171 में सुल्तान सलादीन ने फातिमी शासकों को हटाने के बाद काहिरा के महान पुस्तकालय को नष्ट कर दिया। भारत में पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों के विध्वंस का उल्लेख ऊपर किया गया है।[607]

भारत में मुस्लिम शासकों ने केवल मक़तब व मदरसा इस्लामी शिक्षा केंद्र बनाये और ये प्रायः मस्जिद से संबद्ध होते थे, जिससे कि मुसलमानों को उनके दीन के प्रशिक्षण के साथ मुस्लिम राज्य के उपयोगी प्रशासनिक व सैन्य कर्तव्य संबंधित अन्य दक्षता सिखायी जा सके। अध्ययन के प्रमुख विषय अरबी व फारसी भाषा सीखना, कुरआन, सुन्नत व शरीयत को रटना हुआ करते थे। राज चलाने के लिये आवश्यक कृषि, इतिहास, भूगोल व गणित की भी सीमित शिक्षा दी जाती थी।[608] मदरसा से पढ़े-लिखे, अभिलिखित इतिहासकार और कवि अल्लामा शिब्ली (मृत्यु 1914) को उनके मदरसे में कक्ष, कालीन, भोजन, तेल, कागज-कलम, मिठाइयां और फल उपलब्ध कराया जाता था। अपने भारत भ्रमण के समय इब्न बतूता कभी-कभी इन मदरसों में ठहरता था। 300 कक्षों वाले एक मदरसा में उसने पाया कि छात्रों को कुरआन पढ़ाया जा रहा था और उन्हें दैनिक भोजन व वस्त्रों के लिये वार्षिक भत्ता दिया जाता था। एक और मदरसे में वह सोलह दिन ठहरा था, जहां उसने पाया कि छात्रों को अच्छा भोजनः मुर्गे का मांस, पुलाव व कोरमा (मांस के व्यंजन) और मिठाइयां दी जाती थीं।[609]

ये मदरसे केवल मुस्लिम छात्रों के लिये होते थे; गैर-मुस्लिम छात्रों का प्रवेश उनमें वर्जित था। मुस्लिम शासक केवल मुसलमानों को अपने राजकाज में सम्मिलित करते थे। इसलिये हिंदुओं को शिक्षित करना अनावश्यक था। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि गैर-मुसलमानों को मदरसा और मस्जिद जैसे मजहबी स्थानों की परिधि में जाने की मनाही थी और यह प्रथा आज भी चली आ रही है। बाद में अकबर ने सभी पंथों के लोगों को अपने प्रशासन में नियुक्त करने का द्वार खोला, उसने गैर-मुस्लिम छात्रों के लिये भी मदरसों के द्वार खोले और उपनिषद आदि हिंदू ग्रंथ व संस्कृत के अध्ययन को उनमें जोड़ा।[610] अकबर ने जब अपने नये धर्म

---

[607] फिलिप के. हित्ती जैसे कुछ आधुनिक विद्वान इस आधार पर इसे अस्वीकार करते हैं कि अलेक्जेंड्रिया के पुस्कालय का उस समय अस्तित्व ही नहीं था, क्योंकि यह ईसा पूर्व 48 में जूलियस सीजर के आक्रमण के समय ही नष्ट हो गया था। किंतु थियोडोर व्रेटॉस (अलेक्जेंड्रिया, सिटी ऑफ वेस्टर्न माइंड, द फ्री प्रेस, न्यूयार्क, 2001, पृष्ठ 93-94) के अनुसारः 'सीजर के सैनिकों ने इजिप्ट (मिस्र) के जलपोतों में आग लगा दी थी और हवा के साथ इसकी लपटें तेजी से फैल गयीं, जिसमें डॉकयार्ड का अधिकांश भाग, महल के निकट के अनेक भवन और उन भवनों में रखी कई हजार पुस्तकें जलकर भस्म हो गयीं। इस घटना के कारण इतिहासकार भ्रमवश मान लेते हैं कि अलेक्जेंड्रिया का महान पुस्कालय नष्ट हो गया था, पर सत्य यह है कि डॉक्स के निकट वह पुस्तकालय था ही नहीं...। उस आग में लगभग 40,000 पुस्तकें नष्ट हुई थीं, किंतु इन पुस्तकों का उस महान पुस्कालय से कोई संबंध नहीं था; वे रोम और विश्व भर के अन्य नगरों को निर्यात किये जाने वाले अलेक्जेंड्रिया के वस्तुओं का लेखाजोखा रखने वाली पुस्तकें और बही थे।'

[608] घोष, पृष्ठ 22

[609] इबिद, पृष्ठ 23

[610] इबिद, पृष्ठ 22

दीन-ए-इलाही का प्रारंभ किया, तो आश्चर्यजनक रूप से उस अरबी भाषा से भी छुटकारा पाने का प्रयास किया, जो रसूल और कुरआन की भाषा थी।[611]

630-650 में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन सांग नालंदा विश्वविद्यालय आया और उसने भारतीय शिक्षा प्रणाली सु-संगठित पायाः उसने देखा बालक और बालिकाएं दोनों सात वर्ष की अवस्था से व्याकरण, कला व शिल्प विज्ञान, चिकित्सा, तर्क और दर्शन का अध्ययन प्रारंभ करते थे। ह्वेन सांग के विवरण का उल्लेख करते हुए नेहरू लिखता है, 'ऐसा प्रतीत होता है कि तुलनात्मक रूप से प्राथमिक शिक्षा का प्रसार अधिक था, क्योंकि सभी भिक्षुक व पुरोहित शिक्षक होते थे और उनकी कोई कमी न थी। ह्वेन सांग भारतीय लोगों का शिक्षा के प्रति प्रेम देखकर अत्यंत अचंभित हुआ...।'[612] इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अपने बौद्धिक उद्यम में भारतीय सभ्यता ऐसी महान ऊंचाई पर पहुंच चुकी थी और अलबरूनी और अल-अंदलूसी सहित अनेक मुस्लिम इतिहासकारों ने भी इसकी पुष्टि की है। सिंधु घाटी में अलेक्जेंडर के आगमन के बाद ग्रीक (यूनानी) सभ्यता से भारतीयों का संपर्क हुआ; भारत ने यूनान की उपलब्धियों, विशेष रूप से कला के क्षेत्र में ग्रहण किया। इस्लाम के जन्म के समय प्राचीन यूनान का क्षरण हुआ, किंतु भारत ने ज्ञान, विज्ञान व अन्य मानवीय विद्याओं में संसार को समृद्ध व उत्कृष्ट बनाया। यह उल्लिखित है कि अब्बासी साम्राज्य के समय अनेक अरब छात्र तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने आये। खलीफा हारुन अल-राशिद (मृत्यु 813) द्वारा बड़ी संख्या में भारतीय गणितज्ञों व चिकित्सकों को नियुक्त किया गया था; भारतीय चिकित्सकों ने बगदाद में चिकित्सालय व चिकित्सा विद्यालय स्थापित किये।[613]

यहां तक कि जो नेहरू सदा इस्लाम का गुणगान करते नहीं थकता था, उसने भी यह शिकायत की है कि मुस्लिम शासकों ने आठ सदियों में एक भी अच्छा विद्यालय नहीं बनाया। उन्होंने धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, विशेष रूप से विज्ञान की शिक्षा में न के बराबर रुचि ली। यहां तक कि प्रबुद्ध कहे जाने वाले अकबर महान, जो कि स्वयं अनपढ़ था, ने विज्ञान को प्रोत्साहन देने में कोई विशेष रुचि नहीं दिखायी; दर्शन के अध्ययन-अध्यापन में उसने जो रुचि दिखायी, वह केवल उसके उस धर्म की स्थापना पर केंद्रित था, जिसका कोई धर्मनिरपेक्ष या व्यवहारिक मूल्य नहीं था। केवल मदरसा पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषाओं और हिंदू ग्रंथों को सम्मिलित करने के अतिरिक्त उसने विज्ञान, दर्शन या अन्य रचनात्मक ज्ञान को प्रोत्साहित करने वाला कोई बड़ा विद्यालय, विश्वविद्यालय या शोध केंद्र नहीं बनाया, जबकि उसी के समय यूरोप में बहुत से महान कार्य हो रहे थे। नेहरू लिखता है, यद्यपि अकबर ने करों का बोझ कम किया और जनता के सभी वर्गों के प्रति सहिष्णुता दिखायी, किंतु 'शिक्षण व प्रशिक्षण के सामान्य स्तर को ऊपर उठाने की उसकी प्रवृत्ति नहीं थी।'[614] विश्व की सबसे महान और समृद्ध सत्ताओं में से एक पर बैठे अकबर ने पुर्तगालियों और ब्रिटिश

---

[611] इबिद, पृष्ठ 29

[612] इबिद, पृष्ठ 124

[613] नेहरू (1989), पृष्ठ 154, 151

[614] इबिद, पृष्ठ 313

व्यापारिक दूतों द्वारा घड़ी प्राप्त की गयी; उसे अपने दरबार में ईसामसीह के रॉयल कैथोलिक समाज के पुर्तगाली सदस्य से मुद्रित पुस्तकें मिलीं, किंतु उसके मस्तिष्क में यह जिज्ञासा कभी नहीं आयी कि ये तकनीक कैसे कार्य करती हैं। अकबर सहित मुस्लिम शासकों ने अपनी व्यर्थ की महानता का प्रदर्शन करने के लिये केवल ठाठ-बाट वाले स्मारक, किले और महल बनवाये, उसी के समकालीन यूरोप के राजा पुनर्जागरण युग में प्रायः अत्यंत श्रेष्ठ कार्य कर रहे थे। इसलिये इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारत में इस्लामी आक्रमण से पूर्व रचनात्मक और विद्वान सभ्यता होने के बाद भी, मुस्लिम शासन के समय भारत ने विज्ञान, दर्शन और साहित्य में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं दिया।

जातिप्रथा भयावह हुई

हिंदू समुदाय की निम्न जाति के लोगों के धर्मांतरण के विषय पर पहले ही विमर्श किया जा चुका है। यद्यपि धर्मांतरण ने मुस्लिम समुदाय में इन निम्न जाति के लोगों की सामाजिक स्तर में सुधार नहीं हुआ। यूरोपीय दृष्टांतों का अनुसरण करते हुए फज़्ल-ए रब्बी पहला मुसलमान था, जिसने निम्न जाति के हिंदुओं का इस्लाम में धर्मांतरण को स्वैच्छिक सिद्ध करने का प्रयास किया। यद्यपि उसने भी पाया कि मुसलमान बनने से भी उनकी सामाजिक स्तर व पारिवारिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया था; वे अभी भी उन्हीं मुसलमानों के साथ मेलजोल रख सकते थे, जो उनके समान सामाजिक स्थिति वाले थे।[615] इसी प्रकार अशरफ-जो इस्लाम को ''समता व बंधुत्व'' के मजहब के रूप में देखते हैं और कहते हैं कि इस्लाम ने निम्न-वर्ग के हिंदुओं को समाज में ऊपर उठने के द्वार खोले थे- ने भी अधिकांश इस्लामी स्रोतों के आधार पर पाया कि इस्लाम में धर्मांतरण से औसत मुसलमान अपने उस पुराने वातावरण को नहीं छोड़ा, जो जातिभेद और प्रचलित सामाजिक लक्षण से गहरे प्रभावित था।[616] वाइज ने बंगाल में देखा कि हिंदू समाज से बहिष्कृत बेड़िया समुदाय यही कोई 30 वर्ष पूर्व (1850) में धर्मांतरित हो गया था और इस्लाम का पालन कर रहा था, 'किंतु वे लोग न तो सार्वजनिक मस्जिद में प्रवेश कर सकते हैं और न ही सार्वजनिक कब्रिस्तान में स्थान पा सकते हैं। सामाजिक दृष्टि से वे अब भी उसी श्रेणी में हैं, जिनके साथ कोई सभ्य व्यक्ति न तो बैठता है और भोजन करता है। शूद्रों द्वारा चांडालों के साथ जो व्यवहार किया जाता है, वह भी उतना बुरा नहीं कहा जा सकता है, जितना बुरा व्यवहार मुसलमानों की उच्च जाति द्वारा बेड़िया समुदाय के मुसलमानों के साथ किया जाता है।'[617]

कुलमिलाकर, धर्मांतरित निम्न-जाति हिंदुओं की स्थिति सामाजिक रूप से मुसलमान समुदाय में भी वही रही। आज भी वे सामाजिक रूप से नीच माने जाने वाले बहिष्कृत ही हैं। वे अपने हिंदू समकक्षों से किसी भी प्रकार से अच्छी स्थिति में नहीं हैं, अपितु उनसे भी बुरी स्थिति में हैं। इस्लाम में धर्मांतरण से उनकी जातिगत-कष्ट दूर नहीं हुआ; अपितु संभवतः उनकी स्थिति और

---

[615] रब्बी, पृष्ठ 60-61

[616] अशरफ केएम (1935), लाइफ एंड कंडीशन ऑफ द पीपुल ऑफ हिंदुस्तान (1220-1550 ईसवी), जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, पृष्ठ 191

[617] वाइज जे. (1894), द मुहम्मडंस ऑफ ईस्टर्न बंगाल, जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, अंक 63, 3:1, पृष्ठ 61

निम्नतर हो गयी, क्योंकि भारत में उच्च जाति के धर्मांतरितों सहित अन्य मुसलमान आर्थिक व बौद्धिक रूप से पिछड़ते गये। उन्होंने अपने समुदाय में स्त्रियों के अधिकारों का दमन और सम्मान के नाम पर हत्या सहित मानव अधिकारों का उल्लंघन भी किया।

वास्तव में इस्लाम ने भारत में जाति की स्थिति को और भयानक बनाया। जाति व्यवस्था इस्लाम-पूर्व भारत की वास्तविकता थी। यद्यपि प्राचीन ग्रंथों यथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र और नीतिसार में उल्लेख है कि जाति व्यवस्था अपरिवर्तनीय नहीं थी। नेहरू लिखता है, मध्ययुग में सामाजिक ढांचा योग्यता अथवा क्षमता पर आधारित था, जैसा कि नीतिशास्त्र में लिखा है... कई अवसरों पर निम्न जाति के लोगों ने श्रेष्ठ किया। शूद्र राजा भी बनते थे.... सामाजिक मापदंड पर ऊपर उठने की अधिक प्रचलित पद्धति यह थी कि कोई उपजाति एक चरण ऊपर चली जाती थी।' नेहरू लिखता है, कभी-कभी उच्च व निम्न जाति के मध्य सत्ता-संघर्ष भी होता था और 'प्रायः वे संयुक्त रूप से राज करते थे और एक-दूसरे को समायोजित करते थे।'[618] यद्यपि प्रमुख वास्तविकता यही थी कि शीर्ष की दो जातियां ब्राह्मण और क्षत्रिय शासन करते थे और शेष परिश्रम करते थे। नेहरू तर्क देता है, किंतु भारत में इस्लाम के आने से यहां जाति प्रथा और कड़ी व स्थायी हो गयी, जबकि उससे पहले उसमें लचीलेपन का तत्व हुआ करता था।'[619]

इस्लाम ने बड़ी संख्या में उच्च जाति के हिंदुओं को नीचे धकेलकर भारत की जाति प्रथा को और बुरा बनाया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि अभागे हिंदुओं को या तो मुसलमानों के अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने के लिये अथवा दमनकारी करों में विफल रहने पर करसंग्राहकों के उत्पीड़न से बचने के लिये भारत भर के जंगलों में भागकर जाना पड़ा। गयासुद्दीन बलबन (उलुग खान बलबन शासन 1265-85) के राज में लाखों की संख्या में ऐसे हिंदू, जिनकी धन-संपत्ति और निवास लूट लिया गया था, छिन्न-भिन्न कर दिया गया था और परिवार नष्ट कर दिया गया था, जंगलों में जाकर आश्रय लिये हुए थे और रात में लूट करके अपने भोजन की व्यवस्था करते थे। बर्नी लिखता है, सुल्तान ने पहले जंगलों से और इसके बाद दिल्ली के आसपास की पहाड़ियों से इन डकैतों व विद्रोहियों (मेवातियों) के उन्मूलन का संकल्प लिया। उसने अपने मुखियाओं को निर्देश दिया कि 'इन लोगों की हत्या कर दें, इनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बना लायें, जंगलों को साफ करें और सभी प्रकार की अराजक स्थितियों का दमन करें।'[620] इन विद्रोहियों का दमन करने के अभियान में लगी शाही फौज के एक लाख लड़ाकों को मेवातियों ने मार गिराया, यद्यपि बड़ी संख्या में मेवाती भी मारे गये।'[621] इसके बाद सुल्तान दिल्ली से बाहर निकलकर पड़ोस के कंपिल और पटियाली की ओर बढ़ा, जहां वह पांच से छह मास रहा और मेवातियों की हत्या करता रहा। बर्नी ने आगे लिखा है, तदोपरांत वह बदायूं और अमरोहा जनपद के आसपास समस्या

[618] नेहरू (1989), पृष्ठ 132

[619] इबिद, पृष्ठ 157

[620] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 105

[621] इबिद, पृष्ठ 104-105

उत्पन्न कर रहे विद्रोहियों के उन्मूलन के लिये कटेहर की ओर आगे बढ़ा, जहां विद्रोहियों के रक्त की धारा बह रही थी, प्रत्येक गांव और जंगल में शवों के ढेर दिख रहे थे और उन शवों का दुर्गंध गंगा तक पहुंच रहा था।[622]

सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (1320-25) ने ऐसी कर नीति लागू की, जिससे हिंदू जनता फांका करने को बाध्य हो गयी। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद तुगलक (1325-51) ने इस कर को 5-10 प्रतिशत और बढ़ा दिया। बर्नी ने लिखा है, इससे किसान दरिद्रता में डूब गये और उन्होंने शासन के प्रति निष्ठा छोड़कर जंगलों में जाकर आश्रय ले लिया, जिससे खेती-बाड़ी का कार्य थम गया और अनाज उत्पादक रुक गया; चारों ओर अकाल की स्थिति बन गयी और 'हजारों-लाख लोग भोजन के अभाव में कालकवलित हुए।'[623] जब उसने कराजल की पहाड़ियों में विद्रोहियों के उन्मूलन के लिये फौज भेजी, तो उन विद्रोहियों ने उनके पीछे भागने के मार्ग को काट दिया तथा एक ही झटके में पूरी फौज को काट डाला गया। केवल दस घुड़सवार ही बचकर दिल्ली वापस पहुंच सके थे।'[624] दिल्ली के निकट दोआब के क्षेत्र में ''भारी करों'' और बर्बर अभियानों से मिट से गये हताश-निराश हिंदुओं ने दलों का गठन किया और अपनी मातृभूमि को दुर्भिक्ष में छोड़कर जंगलों में जाकर आश्रय लिया। बर्नी लिखता है, सुल्तान ने जंगलों में छिपे उन हिंदुओं को मार गिरायाः 'वह पूरा क्षेत्र लूट लिया गया और खंडहर बना दिया गया। हिंदुओं के सिर लाकर बारन के किले की प्राचीरों पर लटका दिये गये।'[625]

सन् 1611 में भारत आये ब्रिटिश इंडिगो व्यापारी विलियम फिंच के अनुसार, बादशाह जहांगीर (मृत्यु 1628) अपने प्रिय फौजियों के साथ शिकार पर जाता था और कई मास तक शिकार करता रहता था। उसने वह जंगल या रेगिस्तान के एक भाग को घेरने का आदेश देता और उस परिधि में चाहे मनुष्य आये या पशु-पक्षी, वह बादशाह का शिकार होता था और यदि बादशाह उसे जीवन दान न दे, तो उसका प्राण जाना निश्चित था। इस प्रकार शिकार किये गये मांस को एकत्र किया जाता थे, भले ही मानव मांस ही क्यों न हो, और बेचकर उससे मिले धन को निर्धनों को दे दिया जाता था।'[626] निश्चित रूप से बड़ी संख्या में इन जंगलों के रहवासी जहांगीर के शिकार में मारे गये। 1619-20 में इनमें से 200,000 लोग पकड़े गये और उसने उन्हें बेचने के लिये ईरान भेज दिया।[627]

---

[622] इबिद, पृष्ठ 105-06

[623] इबिद, पृष्ठ 238

[624] इबिद, पृष्ठ 241-42

[625] इबिद, पृष्ठ 242

[626] इबिद, अंक 6, पृष्ठ 516

[627] लेवी, पृष्ठ 283-84

सहिष्णु और उदार-हृदय अकबर के शासन में भी बड़ी संख्या में हिंदू जंगलों में रह रहे थे। अकबरनामा के अनुसार, अपने शासन के 27वें वर्ष उसने अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि 'पहाड़ियों पर स्थित दुर्गों में निवास करने वाले लोग, जिन्हें अपने दुर्गों की सुरक्षा पर बड़ा विश्वास है, वे भी यदि डकैती में संलिप्त हों, तो उन्हें भी चेतावनी दी जाए, दंडित किया जाए और आवश्यकता पड़े तो उनके क्षेत्र को मिटा दिया जाए।'[628]

यह स्पष्ट दर्शाता है कि बड़ी संख्या में गैर-मुसलमानों- लाखों, संभवतः करोड़ों की संख्या में- सामान्य सामाजिक जीवन से दूर जंगलों में शरण लिये हुए थे। जंगलों में रहने वाले ये सभी वर्गों के लोग एकसाथ रहते थे और मिलकर बर्बर मुस्लिम शासकों से विद्रोह करते थे तथा जो कुछ भी उन्हें मिलता यथा जंगली फल, पत्ते, अनाज और पषु, वही खाकर जीवित रहते थे। एकसाथ वे सभी अब नये अछूत बन चुके थेः समाज में वापस लौटने का मार्ग बंद हो चुका था; उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता। उनको अस्वीकार करने का एक बड़ा कारण यह रहा होगा कि भयंकर भूख की स्थिति में उन्हें जंगली पशुओं का मांस खाना पड़ता था। एक बार मांस खा लेने के बाद समाज में उनके लिये कोई स्थान नहीं बचता था, विशेष रूप से उच्च जाति के हिंदुओं में यही स्थिति थी। इसलिये मुस्लिम शासन में निम्न जाति के लोग स्वाभाविक रूप से संख्या में बढ़े। कुल मिलाकर, मुसलमानों ने संभवतः हिंदू समुदाय की भारतीय निम्न जातियों के एक भाग को छीन लिया था और सामाजिक रूप से उनको वहीं रखा था, जहां वे पहले थे। बस उनका धर्म परिवर्तित हो गया था। इसी समय मुस्लिम शासन ने जाति संस्था को और कठोर बनाकर तथा बड़ी संख्या में हिंदुओं को सामाजिक क्रम में नीचे धकेलकर इसे और भयावह बनाया।

जौहर प्रथा का कारण इस्लाम था

जौहर एक परंपरा थी, जिसमें हिंदू स्त्रियां मुस्लिम हमलावरों और लुटेरों की यौन हिंसा व दासता से बचने के लिये आग में कूदकर प्राण दे देती थीं। इस्लाम-पूर्व भारत में यह प्रथा नहीं थी। 634 में जबसे मुस्लिम जिहादियों की फौजों ने भारत की सीमाओं पर हमला कर ना प्रारंभ किया; यदि हमले में सफल होते, तो धन की लूटपाट करते और स्त्रियों व बच्चों को दास के रूप में बंदी बनाकर उठा ले जाते थे। कासिम से पहले इस्लामी लुटेरों ने भारत की सीमाओं पर आठ बार लूटपाट और दास बनाने के लिये धावा बोला था। 712 में कासिम की सिंध विजय के साथ ही पराजित लोगों की स्त्रियों का अपहरण और उनको सेक्स-स्लेव बनाने की मुहम्मद की परंपरा को भारत में लाया गया। सिंध में तीन वर्ष के कार्यकाल में कासिम ने लाखों स्त्रियों व बच्चों को पकड़कर दास बनाया। सुल्तान महमूद 1001-02 में भारत से पांच लाख बंदियों को ले गया था और अन्य अवसरों पर भी बड़ी संख्या में लोगों को बंदी बनाकर ले गया था। जब कासिम ने सिंध जीत लिया, तो वहां के राजा के महल की स्त्रियों ने अपहरण और यौन हिंसा से बचने के लिये आत्मदाह कर दिया। यह प्रथा प्रबुद्ध अकबर के काल में भी चलती रही। चित्तौड़ की विजय (1568) में जब अकबर ने मारे गये 8000 राजपूतों की स्त्रियों को दास बनाने का आदेश दिया, तो 8000 रानियों ने शीलहरण और यौन दासता से बचने

[628] इलियट एंड डाउंसन, अंक, 7, पृष्ठ 64

के लिये जौहर कर लिया।[629] जब अलाउद्दीन खिलजी (1303), गुजरात के बहादुर शाह (1535) और अकबर (1568) द्वारा किये गये हमले के समय तीन बार चितौड़ तीन बड़ी जौहर घटनाओं का साक्षी रहा। वास्तव में यह प्रथा 1947 में विभाजन के समय तक चलती रही। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि विभाजन के समय बहुत सी हिंदू व सिख स्त्रियों ने अपने सम्मान को सुरक्षित रखने के लिये आत्मदाह कर लिया था, कुएं में कूद गयी थीं और विष पी लिया था।

मुस्लिम शासन में सतीप्रथा बढ़ी

भारत में अपने मृत पतियों के साथ जीवित चिता में पत्नियों को जलाने की प्रथा थी। मुस्लिम शासकों ने इस प्रथा के उन्मूलन अथवा दमन के लिये कोई गंभीर प्रयास नहीं किया। अकबर सती प्रथा के विरुद्ध था, किंतु उसने भी इसके उन्मूलन का कोई प्रयास नहीं किया। अकबरनामा के अनुसार उसने केवल 'किसी महिला को उसकी इच्छा के विरुद्ध पति के शव के साथ जीवित जलाने पर रोक लगाने का प्रयास किया।[630]

मुस्लिम शासन में सतीप्रथा निस्संदेह और बुरी हुई। इब्न बबूता के अनुसार, सती प्रथा भारत में बाध्यकारी नहीं थी। वह लिखता है, 'पति की मृत्यु के पश्चात पत्नी का उसके साथ चिता में जल जाना सम्माननीय माना जाता था, किंतु ऐसा करना पत्नियों के लिये अनिवार्य नहीं था... पत्नी स्वयं को जलाने के लिये बाध्य नहीं की जाती है।'[631] किंतु मुस्लिम हमलों और शासन के समय भारत में यह प्रथा बहुत बढ़ गयी। ऐसा इसलिये हुआ कि भारत में मुसलमानों ने जो अनवरत हमले शुरू किये थे, उसमें वे बड़ी संख्या में हिंदू पुरुषों की हत्या करते थे और मारे गये हिंदुओं की पत्नियों में जो बंदी बनाये जाने से बच जाती थीं, वो सती हो जाती थीं। इब्न बतूता ने इसका एक आंखों देखा साक्ष्य दिया हैः 'एक बार अमजारी (धार के निकट अमझेरा) में मैंने तीन ऐसी स्त्रियों को देखा, जिनके पति संघर्ष में मारे गये थे और जिन्होंने स्वयं के दाह की सहमति दी थी...। मैं अपने साथी के साथ यह देखने के लिये रुका रहा कि किस प्रकार उनका दाह किया जाएगा।'[632]

मुस्लिम शासन में सती प्रथा बढ़ने का एक और कारण रहा होगा। चूंकि हिंदू परंपरा में विधवा विवाह निषेध था, तो इन विधवाओं, जो युवा थीं, पर मुसलमानों द्वारा बलात्कार, अपहरण और दास बनाये जाने का खतरा बना रहता था। यह समझना होगा कि मुसलमानों द्वारा प्रायः बेचने के लिये हिंदुओं का अपहरण किया जाना सामान्य था। मालाबार, जो कभी मुसलमानों के कब्जे में नहीं आया और जहां मोपला मुसलमानों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम थी, में भी 18वीं सदी में मुसलमान हिंदुओं और विशेष

---

[629] इलियट एंड डाउंसन, अंक 3, पृष्ठ 68-69

[630] निजामी केए (1989) अकबर एंड रिलीजन, इजरा-ए-अदाबियत-ए-दिल्ली, न्यूदिल्ली, पृष्ठ 107, 383-84

[631] गिब, पृष्ठ 191-2

[632] इबिद, पृष्ठ 192

रूप से हिंदू बच्चों का अपहरण कर उन्हें यूरोपीय व्यापारियों को बेच देते थे, विशेष रूप से कोचीन के डच बंदरगाह पर।[633] इन कारणों से निस्संदेह विधवाओं ने बड़ी संख्या में सती होना स्वीकार किया और ऐसा करने के लिये बड़ा सामाजिक दबाव भी बना।

इस्लाम ने बाल-विवाह को बढ़ाया

मुस्लिमों द्वारा हिंदू स्त्रियों का अपहरण करके और दास बनाकर उनके साथ बलात्कार करने एवं सेक्स-स्लेव बनाने के कारण हिंदू माता-पिता बेटियों का विवाह कम आयु में ही कर देने को बाध्य होते थे। इससे निश्चित ही बाल-विवाह की परंपरा और भयावह हुई होगी। जाति व बहिष्कृत पुस्तक के लेखक धनगोपाल मुखर्जी का कहना है कि भारत में अत्याचारी मुस्लिम शासन के कारण हिंदू अपनी सुविकसित सुंदर परंपराओं में से कुछ को छोड़ने पर विवश हुए। उनके अनुसार, परिपक्व होने की आयु तक पहुंचने से पहले ही कन्याओं का विवाह युवा हिंदू बालकों से कर दिया जाता था, जिससे कि मुस्लिम दरिंदों से उनकी रक्षा की जा सके। इस प्रकार मुस्लिम शासन में बाल-विवाह की प्रथा बढ़ी।

आज भी पाकिस्तान व बांग्लादेश के हिंदू अल्पसंख्यकों (एवं अन्य गैर-मुसलमानों) के साथ यही हो रहा है और वहां हिंदू स्त्रियों के अपहरण व बलात्कार की दर ऊंची है। पाकिस्तान और बांग्लादेश में हिंदू स्त्रियों का अपहरण और बलात्कार पर पहले ही विमर्श किया गया है। बांग्लादेश के धर्मनिरपेक्ष-विचारों वाले मेरे मुस्लिम व हिंदू संपर्क सूत्र बताते हैं कि वहां मुसलमानों के अपहरण या बलात्कार से बचाने के लिये हिंदू कन्याएं, विशेष रूप से जो सुंदर होती हैं, कम आयु में ही विवाह कर दी जाती हैं अथवा भारत भेज दी जाती हैं। पाकिस्तान अल्पसंख्यक कंसर्न नेटवर्क के अनुसार 2005 में लगभग 50 हिंदू लड़कियों और 20 ईसाई लड़कियों का अपहरण हुआ; इनमें से अधिकांश लड़कियों को जबरन मुसलमान बना दिया गया। गैर-मुस्लिम लड़कियों के अपहरण व बलात् मुसलमान बनाने की ऐसी ही घटनाएं फिलिस्तीन और इजिप्ट में नियमित होती रहती हैं। यदि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों (जैसे यूरोपियन यूनियन और संयुक्त राष्ट्र), विदेशी सरकारों (विशेष रूप से अमरीका) और मानव अधिकार संगठनों की ओर मुस्लिम सरकारों पर अपने नागरिकों के मानवाधिकार की रक्षा का दबाव न डाला जाता, तो इस्लामी देशों में गैर-मुस्लिम महिलाओं की नियति उससे भी बुरी होती, जो आज है। अफ्रीका व मध्यएशिया के कुछ मुस्लिम देशों में गैर-मुस्लिम स्त्रियों को दास बनाने और यौन शोषण करने की घटनाएं आज भी बहुत हो रही हैं।

गला घोंटने वाला घातक ठग संप्रदाय इस्लाम के कारण पनपा

ब्रिटिशों ने 1830 में गला घोंटकर मार देने वाले ठग संप्रदाय का दमन कर दिया था। इस संप्रदाय के लोग रात में लूट करते थे और शिकार का गला घोंटकर हत्या कर देते थे। उनके शिकार प्रायः पथिक व यात्री होते थे। वे रात होते ही भारत की सड़कों पर लूटपाट और आतंक का नंगा नाच करते थे। उन्होंने संभवतः हजारों-लाखों की हत्याएं की थीं। ब्रिटिशों ने गुप्त अभियानों, भेदिया तैयार करने, ठोस पुलिस कार्रवाई और सहयोग व आत्मसमर्पण करने वाले ठगों को क्षमादान देने की प्रक्रिया प्रारंभ कर इस

[633] क्लैरंस-स्मिथ, पृष्ठ 30

संप्रदाय का उन्मूलन कर दिया था।[634] ठग नाम पहली बार जियाउद्दीन बर्नी के तारीख-ए फिरोज शाही में आता है। बर्नी ने लिखा है, सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज शाह खिलजी (1290-96) के शासन में सुल्तान ने ठग समुदाय के एक सदस्य को लालच देकर अपने पाले में किया और इसके बाद एक हजार ठगों को पकड़ा। उसने उन्हें क्षमादान दे दिया और निर्वासित करके लखनौती भेज दिया।[635] इस ठग संप्रदाय का जन्म तब हुआ था, जब भारत के लोगों पर इस्लामी लुटेरों के विध्वंसक हमले होने प्रारंभ हुए। हमने ऊपर पढ़ा कि मुस्लिम शासन में लाखों की संख्या में हिंदुओं ने जंगल में शरण ले रखी थी। इन हिंदुओं में से उपद्रवी और साहसी प्रकृति के लोगों ने रात में राजमार्गों पर कारवां और यात्रियों को लूटना अपना व्यवसाय बना लिया था। लगभग सभी मध्यकालीन इस्लामी इतिहासकारों ने ऐसे विद्रोहियों का उल्लेख किया है, जो जंगलों या सुरक्षित पहाड़ियों में छिपकर रहते थे और राजमार्गों पर लूट करते थे। ये वो लोग थे जिनकी घर व संपत्ति लूट ली गयी थी, जला दी गयी थी, इनकी स्त्रियों व बच्चों को उठा ले जाया गया था, और इन्हें जंगलों में भागकर शरण लेने को विवश होना पड़ा था। दूसरे वो लोग थे, जो अत्यधिक करों की मांग को पूरा करने में विफल होने पर जंगलों में इनके साथ जाकर मिल गये थे।

भले ही मुस्लिम इतिहासकार उन जंगलवासियों को राजमार्ग के लुटेरे कहते हों, किंतु सत्य यह है कि जीवित रहने के लिये उन्हें लूट का आश्रय लेना पड़ता था। समय के साथ वे अपने इस व्यवसाय में उत्साह भरने के लिये इसमें धार्मिक प्रेरणा का तड़का लगाया। वे प्रायः किसी हिंदू पुजारी नेतृत्व में एकत्र होते थे।

इब्न बतूता लिखता है कि 'कुछ अरब, कुछ फारसी और कुछ तुर्कों वाले 22 घुड़सवारों के हमारे कारवां पर दो घुड़सवारों वाले हिंदू विद्रोहियों के दल ने हमला किया। मुल्तान की दुर्गम पहाड़ियों से निकल कर यकायक यह दल टूट पड़ा। उसने लिखा, 'हमारे साथी साहसी थे और उनसे दृढ़ता से लड़ते हुए उनके एक घुड़सवार एवं लगभग 12 पैदल-सैनिकों को मार गिराया। मुझे एक तीर आकर लगा...। हम मारे गये विद्रोहियों के सिर को लेकर अबू बक्र के ठिकाने पर आये और दीवारों पर लटका दिया।'[636] निस्संदेह ये वही ठग थे, यद्यपि बतूता संभवतः उनके स्थानीय नाम को नहीं जानता था। ऊपर उल्लिखित है कि बादशाह जहांगीर ने जंगल में रहने वाले 200,000 विद्रोहियों को मार गिराया था। उन विद्रोहियों में अनेक निश्चित ही ठगी के व्यावसाय में लिप्त थे। 1612-14 में भारत की यात्रा करने वाले निकोलस विथिंगटन जहां एक ओर जहांगीर का धन देखकर अचंभित रह गये, वहीं उन्होंने जनता में घोर निर्धनता देखी और पाया कि इसी निर्धनता के कारण कई लोग आजीविका के लिये डकैती डालने पर विवश हो गये थे। उनका समूह ऐसे ही एक लुटेरे, जो प्रत्यक्षतः ठग ही था, के हाथों पड़ गया। उस लुटेरे ने उनकी सारी वस्तुएं व शस्त्र छीन

---

[634] ठगी, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Thugee

[635] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 141

[636] गिब, पृष्ठ 190-91

लिये। आरसी प्रसाद कहते हैं, 'विथिंगटन ने उस समय के भारतीय ठगों का पहला सही विवरण दिया है, जबकि मुगल साम्राज्य अपनी सत्ता के शिखर पर था।'[637]

यह ठगी संप्रदाय निश्चित रूप से मुसलमानों के कारण आया, जो कि ब्रिटिशों के प्रयासों से तेजी से लुप्त हो गया। 629 में जब अरब में इस्लाम का जन्म हुआ, तो लगभग उसी समय ह्वेनसांग अपने देश चीन से हजारों मील दूर नालंदा पहुंचे थे। उन्होंने भारत के सामान्य लोगों के विषय में लिखाः 'धन को लेकर उनमें कोई कपट नहीं रहता है और न्याय प्रदान करने में वे विचारशील रहते हैं... अपने व्यवहारों में वे न तो धूर्त होते हैं और न ही विश्वासघाती तथा वे अपनी प्रतिज्ञा व वचन के प्रति निष्ठावान होते हैं... जहां तक अपराधियों का प्रश्न हैं, तो उनकी संख्या न के बराबर है और यदा-कदा ही वे समस्या उत्पन्न करते हैं।''[638] मुस्लिम हमलावरों ने इन अत्यंत शांतिपूर्ण व उच्च नैतिकता वाले लोगों की बड़ी संख्या को जंगलों में भाग जाने पर विवश कर दिया था; उनके पास जीने के लिये रात में सड़कों पर लूट करने के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं बचा था और इस कारण उन्हें कारवां और यात्रियों में भय उत्पन्न करना पड़ता था।

भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन पर इस्लाम के बुरे प्रभाव के ये कुछ उदाहरण हैं। जबकि इस्लाम-पूर्व भारत की सभ्यता व संस्कृति इतनी उन्नत व समृद्ध थी कि ह्वेन सांग ने अपनी आंखों से भारत में बालकों के साथ ही बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करते हुए देखा था। गणित के जिस दशमलव प्रणाली का आज विश्व उपयोग करता है, वह प्राचीन भारत की ही देन है। भारत के महानतम गणितीय उपलब्धियां तीन महान गणितज्ञों भास्कराचार्य, लीलावती और ब्रह्मगुप्त के योगदान से मिली हैं। लीलावती एक नारी थीं और भास्कराचार्य की पुत्री थीं।[639] दो बार (1288 व 1293) में दक्षिण भारत की यात्रा पर आये वेनिस के मार्को पोलो ने स्तुतियोग्य एक नारी रुक्मिणी देवी को देखा था। रुक्मिणी देवी तेलगू क्षेत्र की शासिका थीं। उन्होंने चालीस वर्ष तक राज किया।[640] मुस्लिम हमलावरों, जो कि व्यापक दासता, अपहरण और बलात्कार में लिप्त थे, ने भारत की नारी जाति को सामाजिक जीवन से धकेलकर गृहों में सीमित कर दिया। नेहरू लिखता है, भारत में इस्लाम के आगमन से यहां की नारी जाति की स्वतंत्रता समाप्त हो गयी।' उसने लिखा है कि हिंदुओं ने मुस्लिम प्रभाव के कारण अपनी स्त्रियों को पर्दे में रखा।[641]

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के समय भारतीय सभ्यता की रचनात्मक आभा अवरुद्ध हो गयी। उस समय के दूसरी सभ्यताओं के साथ भी यही हुआ; प्राचीन ग्रीस (यूनान) की चकाचौंध नहीं टिक सकी। नेहरू कहता है, 'भारत घिसा-पिटा हो

---

[637] प्रसाद आरसी (1980) अर्ली ट्रैवेल्स इन इंडिया, मोतीलाल बनारसी दास, न्यू देल्ही, पृष्ठ 261-66

[638] नेहरू (1989), पृष्ठ 123-24

[639] इबिद, पृष्ठ 132

[640] इबिद, पृष्ठ 210-11

[641] इबिद, पृष्ठ 157, 149

चुका था। यह अपरिवर्तशील व अप्रगतिशील हो रहा था।'[642] इस्लाम, जो कि सुल्तान महमूद के बर्बर हमलों से भारत में आया, के सकारात्मक प्रभावों पर नेहरू लिखता है: 'इस्लाम ने भारत को झंकझोड़ा। इसने एक ऐसे समाज में प्रगति के लिये प्राण-शक्ति और उमंग भरा, जो पूर्णतः अप्रगतिशील होता जा रहा था। उत्तर में हिंदू कला, जो क्षरण की ओर और रुग्ण हो गयी थी, तथा दोहराव व तुच्छता से भर गयी थी, परिवर्तन की ओर चल पड़ी। ऊर्जा व उत्साह से भरा हुई एक नयी कला पनपी, जिसे इंडो-मुस्लिम कहा जा सकता है। प्राचीन भारतीय विशारद-निर्माताओं ने मुस्लिमों द्वारा लाये गये नये विचारों से प्रेरणा ली।'[643]

नेहरू का यह कहना कि इस्लाम भारत में सभ्यता-परिवर्तनशील चेतना लेकर आया, नितांत अतिश्योक्तिपूर्ण है। हम ऐसा कुछ भी उल्लेखनीय नहीं पाते हैं, जो इस्लाम लेकर आया हो। सुल्तान महमूद के हमलों के साक्षी अलबरूनी ने इस विषय पर नेहरू से पूर्णतः भिन्न विचार व्यक्त किया है। नेहरू स्वयं कहता है कि ये वो भारतीय विशारद-निर्माता थे, जिन्होंने वो सब बनाने के लिये अपने ज्ञान और परिश्रम का उपयोग किया था, जिन्हें मुस्लिम हमलावर अपने मजहबी प्रतीक में परिवर्तित कर देना चाहते थे; और इनमें से बहुत सा पक्ष मुस्लिम हमलावरों द्वारा इस्लाम-पूर्व की फारसी, इजिप्ट व बैजेंटाइन सभ्यताओं से चुराया गया था। नेहरू स्वयं कहता है कि महमूद अपने साथ बड़ी संख्या में भारतीय वास्तुविदों व निर्माताओं को गजनी में भव्य मस्जिद बनाने के लिये ले गया था।[644] स्पष्ट है कि मुस्लिम हमलावर जो बनाना चाहते थे, उसके निर्माण का ज्ञान उनके पास नहीं था। निस्संदेह भारतीय मेधा, भारतीय श्रम (अभागे दासों के रूप में) और भारतीय धन (अंधाधुंध लूट और अत्यधिक करों के माध्यम से प्राप्त) को उन्हीं मूल्यहीन, अज्ञानी व अनुपयोगी इस्लाम के क्षेत्रों में झोंका गया। वास्तव में जो सदियों से साधारण जनता पर भयानक अत्याचार व शोषण कर रहे थे, उन्हीं की सुदृढ़ गढ़ बन गयीं भारतीय मेधा, श्रम व धन की ये संस्थाएं।

नेहरू संभवतः अपनी इस बात में सही था कि भारतीय सभ्यता ठहर गयी थी। इससे कोई यह भाव निकाल सकता है कि भारतीय सभ्यता पर एकसा ग्रहण लग चुका था कि यह बड़ी सरलता से अंधकार में परिवर्तित हो गयी और मुसलमान हमलावरों के आने के साथ ही अनेक सामाजिक बुराइयों को मार्ग दिया। भारतीय सभ्यता नहीं जानती थी कि कैसे पुनर्जीवित हुआ जाए या प्रगति की जाए। यद्यपि नेहरू की ऐसी धारणा के पीछे कोई आधार नहीं दिखता। मुस्लिम हमलावर जो चाहते थे, उसके आधार पर भारतीय निर्माताओं, शिल्पकारों और कलाकारों ने उस तथाकथित इंडो-मुस्लिम स्थापत्य के भव्य भवन व स्मारक निर्मित किये। किंतु जैसे ही स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, विधि का शासन, लोकतंत्र और मानवाधिकार आदि प्रगतिशील विचारों के साथ ब्रिटिश आये, तो गैर-मुस्लिम भारतीयों ने तत्परता से उन्हें मुक्त हृदय से गले लगाया, क्योंकि ये सब गुण प्राचीन काल से भारतीय सभ्यता की विशिष्टताएं रही थीं। नायपाल लिखते हैं, 'हिंदुओं, विशेष रूप से बंगाल में, ने यूरोप की नयी शिक्षा व उन संस्थाओं का हृदय से

---

[642] इबिद, पृष्ठ 208

[643] इबिद, पृष्ठ 209

[644] इबिद, पृष्ठ 155

स्वागत किया, जो ब्रिटिश लाये थे। मुसलमान अपनी पुरानी मजहबी हिचक के कारण अलग-थलग खड़े रहे।'[645] ऐतिहासिक रूप से कहें, तो मुसलमानों ने धर्मनिरपेक्ष शिक्षा में अत्यंत कम रुचि ली। ब्रिटिश शासन के समय मुसलमानों ने आधुनिकता का जमकर विरोध किया और ब्रिटिशों द्वारा स्थापित आधुनिक शिक्षा व ज्ञान का लाभ नहीं उठाया। उन्होंने धर्मनिरपेक्ष शिक्षा को गैर-इस्लामी माना और कट्टरता से इसका बहिष्कार किया। परिणाम यह हुआ कि वे पिछड़ गये, जबकि इन नये शिक्षा अवसरों का लाभ उठाते हुए हिंदू प्रगति की ओर बढ़ गये और समृद्ध हुए। उदाहरण के लिये विभाजन से पहले पूर्वी बंगाल में हिंदू अल्पसंख्यक थे, किंतु पूर्वी बंगाल के लगभग समस्त शैक्षणिक संस्थान हिंदुओं द्वारा ही बनाये गये थे... 90 प्रतिशत शिक्षक हिंदू थे।'[646]

सन् 1850 के आसपास भारत के अधिकांश स्थानों पर ब्रिटिश राज का नियंत्रण होने लगा था। यद्यपि 1857-58 के सिपाही विद्रोह की अशांति के बाद भी ब्रिटिश राज ने 1857 में भारत की शिक्षा प्रणाली को पुनर्संगठित करते हुए कलकत्ता, बंबई और मद्रास में तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना की। शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक बौद्धिकता के इस नये वातावरण में भारत की साहित्यिक व वैज्ञानिक मेधा, अधिकांशतः हिंदू, अति अल्प समय में पल्लवित हो गयी। इसके लगभग आधी सदी में ही भारतीय कवि व वैज्ञानिक नोबल पुरस्कार की प्रतिस्पर्धा में आ गये। उदाहरण के लिये, भारत की महानतम प्रतिभाएं यथा नोबल पुरस्कार विजेता रविंद्रनाथ टैगोर, चंद्रशेखर, हरगोविंद खुराना, जगदीश चंद्र बसु, सत्यन बोस, प्रफुल्लचंद्र रॉय आदि इस नये बौद्धिक वातावरण में चमके। इनमें से कई प्रतिभाएं तो अत्यंत कम समय में आगे बढ़ गयीं। भारतीय समाज के धर्म, परंपरा और संस्कृति के महान सुधारक यथा राजा राममोहन राय (मृत्यु 1833), स्वामी विवेकानंद (मृत्यु 1902) और ईश्वरचंद विद्यासागर (मृत्यु 1891) भी ब्रिटिशों द्वारा पोषित सामाजिक-राजनीतिक वातावरण, रचनात्मक बौद्धिकतावाद और स्वतंत्रता की संस्कृति में बहुत तेजी से आगे बढ़े। ये तथ्य स्पष्ट रूप से बताते हैं कि भारत की वह दीप्त व रचनात्मक सभ्यता, जिसे मुसलमान हमलावरों द्वारा बर्बरता से कुचला गया था और भारतीयों को अवसरों से वंचित किया गया था, उत्साहपूर्वक ऐसा कोई अवसर पाकर पल्लवित होने की प्रतीक्षा कर रही थी।

निस्संदेह भारत के हिंदुओं द्वारा भी ब्रिटिशों द्वारा प्रारंभ किये सामाजिक व सांस्कृतिक सुधार को लेकर कुछ प्रतिरोध किया गया, किंतु यह प्रतिरोध नगण्य था। कुलमिलाकर, हिंदुओं ने शीघ्रता से यह समझ लिया कि हजार वर्षों से चली आ रही सतीप्रथा, कन्याभ्रूण हत्या, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध और जाति प्रथा उनके समाज की नितांत अनुचित बुराई है। मुस्लिम शासकों द्वारा बड़ी संख्या में ठगों व अराजक तत्वों की हत्या करने और बंदी बनाने के बाद भी पूरे मुस्लिम शासन में भारत के मार्गों पर ये लोग एक समान घूमते रहे। किंतु ब्रिटिश शासन में उन्हें तेजी से यह समझ में आ गया कि सदियों पुरानी बर्बरता जा चुकी है, इसलिये जब नये शासक ने सभ्य ढंग से उन्हें नियंत्रण में करने का प्रयास किया, तो वे तेजी से नागरिक जीवन की ओर लौट आये। विभिन्न क्षेत्रों में 100 से 190 वर्ष के अपेक्षाकृत कम समय तक रहने वाले ब्रिटिश शासन ने निम्न-जाति के हिंदुओं में उनके अवमूल्यित सामाजिक स्तर और निम्नीकृत गरिमा को लेकर पर्याप्त चेतना जगायी और इसके लिये जागरूकता बढ़ायी कि वे सम्मानीय

---

[645] नायपाल (1988), पृष्ठ 247

[646] कामरा, पृष्ठ 3

मानव होने के पात्र हैं। यह जागरूकता इतनी व्यापक हो गयी कि अम्बेडकर के नेतृत्व में उन्होंने 1940 में एक ऐसे पृथक देश की मांग करते हुए अभियान चलाया, जो उच्च जाति के हिंदुओं से मुक्त हो।[647] भारतीय समाज में कन्या-भ्रूण हत्या, बाल-विवाह, जातिगत भेदभाव जैसी सामाजिक बुराइयां भी आज भी कुछ सीमा तक विद्यमान हैं। यद्यपि इन बुराइयों को विधिक रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया है और सभी भारतीयों में यह भाव आ चुका है कि ये बुराइयां अनुचित हैं। समय के साथ ये बुराइयां लुप्त हो जाएंगी।

धार्मिक जननांकिकी पर इस्लाम का प्रभावः अतीत व वर्तमान

मुस्लिम शासन के समय आतंक उत्पन्न करके और उत्पीड़कारी आर्थिक बोझ डालकर हिंदुओं और अन्य गैर-मुसलमानों के धर्मांतरण के विषय में पहले ही विमर्श किया गया है। निश्चित ही यदि ब्रिटिश हस्तक्षेप न हुआ होता, तो बांग्लादेश, पाकिस्तान और भारत में जनसंख्या की धार्मिक जननांकिकी जैसी आज दिखती है, उससे भिन्न दिखती। अफगानिस्तान, इजिप्ट, ईराक, ईरान, सऊदी अरब, यमन और सीरिया जैसे देशों, जहां यूरोपीय उपनिवेशवादियों की राजनीतिक सत्ता नहीं रही अथवा अति अल्प समय के लिये रहे, को देखकर यह स्थिति समझी जा सकती है। आपको यह बात भी ध्यान रखना चाहिए कि 1947 में विभाजन के समय भी दसियों लाख हिंदुओं और सिखों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया था।

अपनी बर्बर और आर्थिक रूप से दमन करने वाले उपायों के बाद भी मुस्लिम शासन द्वारा भारत के पूर्ण इस्लामीकरण में विफल रहने पर फर्नार्ड ब्राडेल कहते हैं, 'भारत केवल अपने धैर्य, अपनी परालौकिक शक्ति और अपने विशाल आकार के कारण बच गया।'[648] वास्तविकता यह है कि मुस्लिम हमलावर कभी भी विशाल भारत पर पूर्ण व प्रभावकारी नियंत्रण नहीं पा सके, जिससे व्यापक इस्लामीकरण नहीं हो सका। ऐसा हिंदुओं के इस्लाम-विरोधी प्रतिरोध के कारण नहीं हुआ, अपितु अपनी भारतीय संस्कृति व धर्म के प्रति प्रेम के कारण हिंदू सभ्यता बची। भारत में इस्लामी सल्तनत उस समय स्थापित हुआ, जब बगदाद स्थित इस्लामी सत्ता-केंद्र क्षरण की ओर था और उनकी राजनीतिक सत्ता बगदाद, इजिप्ट और स्पेन आधारित शासनों में विभक्त हो गयी थी।

इसके बाद मंगोल आये और उन्होंने मध्य एशिया और बगदाद की इस्लामी सत्ताओं को कुचल डाला। भारत के मुस्लिम शासकों ने भी केंद्रीय इस्लामी सत्ता से अपेक्षाकृत स्वतंत्रता बनाये रखी और वे केवल बगदाद, इजिप्ट और समरकंद के खलीफाओं के प्रति नाममात्र की निष्ठा दिखाते रहे। जब इस्लामी हमलावर भारत आये, तो मजबूत इस्लामी सत्ता की अनुपस्थिति ने विशाल भारत में प्रभावशाली मुस्लिम प्रभुत्व बनाने में अपंग सिद्ध हुआ।

---

[647] बंदोपाध्याय एस (1998) चेंजिंग बॉडर्स, शिफ्टिंग लॉयलिटीज; रिलीजन, कास्ट एंड द पार्टिशन ऑफ बंगाल इन 1947, एशियन स्टडीज इंस्टीट्यूट, विक्टोरिया यूनीवर्सिटी ऑफ वेलिंगटन, न्यूजीलैंड, पृष्ठ 4-5

[648] ब्राडेल, पृष्ठ 232

अफगानिस्तान ऐतिहासिक रूप से भारत का एक अभिन्न प्रांत था, जिसे सुल्तान महमूद ने सन् 1000 में स्थायी मुस्लिम प्रभुत्व के अधीन ले आया। तबसे इस्लामी सत्ता ने वहां अपना नियंत्रण बनाये रखा और कोई भी वहां मुसलमान और गैर-मुसलमान के बीच जननांनिकी को परिवर्तित नहीं कर सका। ऐसा ही कुछ पाकिस्तान में हुआ, जहां मुस्लिम हमलावरों ने पहले इस्लामी उपनिवेश बनाया और इसके बाद उस पर तगड़ी पकड़ बनाये रखी। 1998 की जनगणना के अनुसार, पाकिस्तान में मुसलमानों की जनसंख्या 96.28 प्रतिशत है।

भारत के अधिकांश भाग में दृश्य मुस्लिम प्रभुत्व बादशाह अकबर के शासन में ही स्थापित हो सका, यद्यपि दक्षिण के कुछ भाग (मालाबार, गोवा आदि) अब भी इस्लामी सत्ता के नियंत्रण से बाहर ही रहे। किंतु अकबर ने धर्मनिरपेक्षीकरण की नीति अपनायी; उसने अपने नये धर्म को इस्लाम पर थोपने का प्रयास भी किया, परंतु असफल रहा। निस्संदेह अकबर के समय इस्लाम का क्षय हुआ। अकबर की नीति धीरे-धीरे उसके बेटे जहांगीर (1605-25) और पोते शाहजहां (1627-58) के समय में समाप्त हुई और इस्लामीकरण पुनः प्रारंभ हुआ। एक सदी तक थमा हुआ इस्लामीकरण औरंगजेब के शासन (1658-1707) में पूरे प्रभाव में आ गया। यह पहले ही उल्लेख किया गया है कि उत्तरभारत में थोक में मुस्लिम धर्मांतरण के कार्य में औरंगजेब का शासन बहुत सहायक रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद शीघ्र ही ब्रिटिश व्यापारी दलों ने भारत में सत्ता पर पकड़ बनानी प्रारंभ कर दी और इससे अंततः बलात् धर्मांतरण व इस्लामीकरण का अंत हुआ। यहां तक कि औरंगजेब के शासन में पूरे भारत में इस्लामी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह होने लगे थे। जब उसकी मृत्यु हुई, तो उस समय तक मुस्लिम सत्ता पतन की ओर अग्रसर हो गयी थी। भारत के विभिन्न भागों में औरंगजेब के नेतृत्व में जो कुछ प्रभावशाली इस्लामीकरण हुआ, विशेष रूप से उत्तर भारत में, उसी ने मुस्लिम जनसंख्या के वर्तमान जननांकिकी को आकार देने में बड़ी भूमिका निभायी। इसलिये यह समझना सरल है कि ब्रिटिश हस्तक्षेप न हुआ होता, तो अनवरत इस्लामी सत्ता ने उपमहाद्वीप में मुसलमानों व गैर-मुसलमानों के बीच जननांकिकी पर कितना प्रभाव डाला होता।

1947 से मुस्लिम-बहुल बांग्लादेश और पाकिस्तान की धार्मिक जननांकिकी में हुए परिवर्तन को देखकर स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि मुस्लिम शासन का अंत नहीं होता, तो किस प्रकार उपमहाद्वीप में धार्मिक जननांकिकी परिवर्तित हो गयी होती। पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) में विभाजन के समय हिंदुओं की जनसंख्या 25-30 प्रतिशत थी, जो आज घटकर 10 प्रतिशत से भी कम रह गयी है। विभाजन के समय पाकिस्तान में लगभग 10 प्रतिशत हिंदू थे, जो 1998 तक घटकर 1.6 प्रतिशत रह गये। उन हिंदुओं में से अधिकांश को या तो बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया अथवा कश्मीर में पाकिस्तान के विफल होने पर 1950 में हुई हिंसा के समय पाकिस्तान से भगा दिया गया। आज, प्रायः यह रिपोर्ट आती है कि पाकिस्तान में हिंदू लड़कियों का नियमित रूप से अपहरण करके उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता है और इसके बाद मुसलमानों से जबरन शादी करा दी जाती है। पाकिस्तान के अल्पसंख्यक अधिकार समूह के अनुसार, प्रतिवर्ष 600 हिंदू, सिख और ईसाई लड़कियों को जबरन मुसलमान

बनाया जाता है।[649] इसके अतिरिक्त हिंदुओं पर अन्य सामाजिक व मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर या तो मुसलमान बनाया जाता है या भारत भागने पर विवश कर दिया जाता है। इससे पिछले छह दशकों में पाकिस्तान की धार्मिक जननांकिकी परिवर्तित हुई।

इन्हीं परिस्थितियों में बांग्लादेश में भी हिंदू जनसंख्या घटी। बांग्लादेश के 2001 के चुनाव में विजयी हुई इस्लाम-समर्थक बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी, जिसका इस्लामी जमात-ए-इस्लामी पार्टी से गठबंधन है, ने धर्मनिरपेक्ष अवामी लीग पार्टी का समर्थन करने पर हिंदुओं का अपमान, उत्पीड़न, बलात्कार और हत्या सहित अनेक अत्याचार करने प्रारंभ कर दिये, क्योंकि अवामी लीग थोड़ा धर्मनिरपेक्ष दल माना जाता है। ढाका के अग्रणी समाचार पत्र डेली स्टार की एक खोजी रिपोर्ट में कहा गया कि अकेले भाओला जिले में ही लगभग 1000 हिंदू स्त्रियों के साथ बलात्कार हुए। इन पीड़ितों में 'आठ वर्ष की हिंदू बच्ची रीता रानी और सत्तर वर्षीय वृद्धा पारू बाला भी थीं।'[650] 2001 चुनाव के बाद हुए इस नरसहार के कारण अनुमानतः 50,000 हिंदू बांग्लादेश से भागकर भारत में शरण लेने को बाध्य हुए।[651]

मुस्लिम शासन और निर्धनता

ऐतिहासिक आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में इस्लाम का सबसे प्रमुख योगदान व्यापक स्तर पर नरसंहार, बड़ी संख्या में स्त्रियों व बच्चों को पकड़कर दास बनाना, धार्मिक स्थलों को नष्ट करना, गैर-मुस्लिम शैक्षणिक संस्थानों को मिटाकर ज्ञान व विज्ञान को गंभीर क्षति पहुंचाना और अत्यंत दमनकारी आर्थिक शोषण के माध्यम से गैर-मुसलमानों को घोर दरिद्रता के दलदल में धकेलना था। दिल्ली में इस्लामी सत्ता की स्थापना के मात्र नौ दशक बाद अलाउद्दीन खिलजी का शासन (1296-1316) आने तक समृद्ध भारत के हिंदू की स्थिति ऐसी हो गयी थी कि वे मुसलमानों के द्वार पर भीख मांगने लगे।

बाद में जब ब्रिटिशों का सत्ता पर नियंत्रण हुआ, तो मुस्लिम हमलावरों व शासकों द्वारा भारत की गैर-मुस्लिम जनता पर किये जा रहे अत्याचार, विनाश और लूटपाट से तनिक मुक्ति मिली। यद्यपि ब्रिटिश शासन ने भी भारतीयों की आर्थिक विपन्नता दूर होने में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं दिया। ब्रिटिश शासन आर्थिक शोषण की नीति पर आधारित था और इसका लक्ष्य ब्रिटिश कोषागार के लिये राजस्व उत्पन्न करना था। जेवियर क्यूएनका एस्टीबैन का अनुमान है कि 'भारत से ब्रिटेन भेजे जाने वाले कुल वित्तीय धन का परिमाण 1784-1792 में शीर्ष पर 1,014,000 पाउंड प्रतिवर्ष पहुंच गया था, जो 1808-1815 में घटकर

---

[649] पाकिस्तानी क्रिश्चियन आस्क्ड टू चूज बिटवीन 'कन्वर्जन' आर 'डेथ', क्रिश्चियन टुडे, आस्ट्रेलिया, 11 सितम्बर 2008; http://au.christiantoday.com/article/pakistani/4282.htm

[650] हारोइंग टेल्स ऑफ डीप्रैविटी, डेली स्टार (ढाका), 10 नवंबर 2001

[651] लुंडस्ट्रॉम जे (2006), रेप ऐज जीनोसाइट अंडर इंटरनेशनल क्रिमिनल ला, द केस ऑफ बांग्लादेश, ग्लोबल ह्यूमन राइह्ल डिफेंस, लुंड यूनीवर्सिटी, पृष्ठ 29-30

477,000 पाउंड रह गया।'[652] यद्यपि जिस प्रकार मुस्लिम शासक घरों व मंदिरों आदि को लूट रहे थे, ब्रिटिशों ने ऐसा कुछ नही किया, पर उन्होंने भारत के किसानों पर उच्च कर लगाये। ब्रिटिश शासन के समय कर उपज का एक तिहाई था। आंकड़ों में तो कर का यह दर उतना ही था, जितना सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय था। यद्यपि खिलजी वास्तव में किसानों की उपज का आधा भाग अर्थात 50 प्रतिशत कर के रूप में लेता था, जिससे कि हिंदुओं को घोर निर्धनता में डालकर असंतोष व विद्रोह को रोका जा सके। मुहम्मद तुगलक (1325-51) के समय सबसे भयानक कर लगाये गये और इसका परिणाम यह हुआ कि किसान घोर निर्धनता में आ गये और भीख मांगने की स्थिति में पहुंच गये। मुगल शासन में कुछ क्षेत्रों में उपज का 75 प्रतिशत भाग कर के रूप में ले लिया जाता था।

ब्रिटिश राज में यह स्थिति देशी शासन के लिये कर उगाहने वाले जमींदारों, कर संग्राहकों ने बुरी प्रकार भयावह की थी। ब्रिटिश राजस्व का बड़ा भाग शिक्षा, स्वास्थ्य, ढांचागत विकास और राज्य-शासन चलाने में निवेश करते थे, लेकिन जो कर जमींदार संग्रहीत करते थे, उसे वे पूरा का पूरा अपने पास रख लेते थे। फिर भी ब्रिटिशों पर इसका उतना ही दोष माना जाएगा, क्योंकि वे जमींदारों की उन नीतियों का नियमन करने में विफल रहे थे। ब्रिटिश शासन ने किसानों को अन्न उत्पादन के स्थान पर नगदी-उपज यथा इंडिगो, जूट, कपास और चाय आदि का उत्पादन करने के लिये भी बाध्य किया। परिणामस्वरूप स्थानीय उपभोग के लिये अनाज का उत्पादन घट गया। ब्रिटिश व्यापारियों ने भारतीय हाटों को ब्रिटेन के सस्ते औद्योगिक उत्पादों से पाट दिया, जिससे भारत की प्राचीन देशज उद्योगों का क्षरण हुआ और बड़ी संख्या में लोगों के समक्ष आर्थिक कठिनाई आ पड़ी। ब्रिटिश शासन में इन सब कारकों से भारतीयों के समक्ष कठिनाई आयी। यद्यपि हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भारत का प्राचीन उद्योग वैसे ही समाप्त हो जाना था, क्योंकि संसार पूंजीवादी औद्योगीकरण की ओर बढ़ रहा था।

निस्संदेह भारत पर ब्रिटिश सत्ता का नियंत्रण होने से बर्बरता और रक्तपात में बहुत कमी आयी। उन्होंने मुख्यतः सिपाही विद्रोह (1857-58) के समय ही बर्बरता दिखायी। सिपाही विद्रोह के समय ब्रिटिश अत्याचार रक्तरंजित था; किंतु अत्याचार दोनों पक्षों ने किये थे। ब्रिटिश तब अधिक बर्बर हो गये, जब कानपुर के नाना साहेब ने क्रूर विश्वासघात किया। 5 जुलाई, 1857 को नाना के संरक्षण में रखे गये लगभग 210 ब्रिटिश महिलाओं व बच्चों की हत्या कर दी गयी, उन्हें टुकड़ों में काट डाला गया और कुएं में फेंक दिया गया।[653] विद्रोहियों ने लखनऊ में निर्दोष बच्चों की हत्याएं कीं और गोरी मेमों का बलात्कार किया। निर्दोष महिलाओं व बच्चों की हत्या व बलात्कार से ब्रिटेन की जनता सहित भारत के ब्रिटिश क्रोध में आ गये। प्रतिशोध की आग में जलते हुए ब्रिटिश सैनिकों ने विद्रोहियों पर अंधाधुंध अत्याचार किये। यद्यपि निःशस्त्र नागरिकों, विशेष रूप से स्त्रियों और बच्चों, जो मुस्लिम हमलावरों व शासकों के प्रमुख लक्ष्य होते थे और पकड़कर दास बनाये जाते थे, को ना के बराबर ब्रिटिश क्रूरता का सामना करना पड़ा।

---

[652] क्लिंगिंगस्मिथ डी एंड विलियमसन जेजी (2005) इंडियाज डीइंडस्ट्रलाइजेशन इन द एटींथ एंड नाइनटींथ सेंचुरीज, हावर्ड यूनीवर्सिटी, पृष्ठ 9

[653] नेहरू (1989), पृष्ठ 414; आल्सो इंडियन रेबेलियन ऑफ 1857, विकीपीडिया; http://en.wikipedia.org/wiki/Indian_Rebellion_of_1857

स्वतंत्रता आंदोलन के समय ब्रिटिश अत्याचार बहुत कम था; जलियांवाला बाल हत्याकांड ही ऐसी बड़ी घटना थी, जिसमें कुछ सौ लोग मारे गये थे।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि ब्रिटिश शासन की तुलना में भारत में मुस्लिम शासन बहुत अधिक विनाशकारी और दुर्बलकारी था। किंतु तर्क व तथ्यों को परे रखकर उपमहाद्वीप के मुसलमानों सहित गैर-मुस्लिम धर्मनिरपेक्ष-मार्क्सवादी भी भारत में इस्लाम के आगमन को बड़ा वरदान मानते हैं, जबकि ब्रिटिश शासन को बड़ा अभिशाप मानते हैं। वे कहते हैं, इस्लाम कथित रूप से समानता, न्याय, उद्धार, कला, संस्कृति, स्थापत्य कला और समृद्धि लाया और इसमें भारत को गर्व का अनुभव करना चाहिए। जो अरब साम्राज्यवाद भारत आया, उसका गुणगान करते हुए प्रतिष्ठित मार्क्सवादी इतिहासकार कहते हैं कि अरब साम्राज्य मुहम्मद की स्मृति वाला भव्य व शोभायमान स्मारक है।

इस मार्क्सवादी आंकलन के विपरीत, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस्लाम के संस्थापक अरबों के पास बाहर के अति विकसित संसार को देने के लिये कुछ भी नहीं था। अरब में केवल कविता ही थी और उसे भी इस्लाम ने हराम बता दिया। नेहरू, जो स्वयं में ही विरोधाभासी था, भी यह कहते हुए इस मार्क्सवादी मत का खंडन करता है कि 'अफगानी प्रगति का कोई नया तत्व नहीं लाये; वे पिछड़ी सामंती व आदिम व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते थे।'[654] इस मार्क्सवादी आंकलन की निंदा करते हुए नायपाल कहते हैं कि इस्लामी हमलों से हिंदू सभ्यता ''आतंकित'', ''घायल'' और ''तहस-नहस'' कर दी गयी थी। वो कहते हैं, 'भारत में इस्लामी शासन उतना ही विनाशकारी था, जितना कि बाद का ईसाई (ब्रिटिश) शासन। जो देश सर्वाधिक समृद्ध था, वहां ईसाइयों ने घोर निर्धनता दी, तो जहां संसार की सर्वाधिक रचनात्मक संस्कृति का वास था, वहां मुसलमानों ने आतंकित सभ्यता निर्मित की।'[655]

नेहरू सहित मार्क्सवादी -समाजवादी इतिहासकारों ने अपने लेखन में ब्रिटिशों द्वारा उत्पन्न निर्धनता पर ही अपना ध्यान केंद्रित रखा। यह उचित ही था! क्योंकि वास्तव में यह एक निर्विवाद तथ्य है। किंतु उनके लेखन में षडयंत्रकारी ढंग से भारत में निर्धनता लाने में इस्लाम का प्रभाव गायब मिलता है। निर्धनता पर इस्लामी शासन का क्या प्रभाव था?

ऊपर यह उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार मुस्लिम हमलावर व इतिहासकार भारत की समृद्धि देखकर अचंभित थे। इस्लाम-पूर्व भारत की सम्पन्नता के विषय में अब्दुल्लाह वसाफ ने अपने ताज़ियतुल अमसार (1300 ईसवी) में लिखा है, 'इस देश का आकर्षण और वातावरण की मृदुता, इसकी समृद्धि की विविधता, बहुमूल्य धातु, पत्थर और अन्य प्रचुर उत्पादन, वर्णन से परे हैं।' वो एक काव्यमय टिप्पणी में कहते हैं, 'यदि कहा जाए कि स्वर्ग भारत में है, तो अचंभित न हों, क्योंकि स्वयं स्वर्ग भारत के वैभव के आगे धुंधला होगा।'[656] एक बार जब हज्जाज को कासिम की ओर से लूट के माल का पांचवां भाग मिला, तो उसका परिमाण देखकर वह इतना चकित हुआ कि उसने अल्लाह की विशेष इबादत करते हुए धन्यवाद दिया, उसका गुणगान किया और

---

[654] नेहरू (1946), पृष्ठ 261

[655] आउटलुक इंडिया, वीएस नायपाल इंटरव्यू, 15 नवंबर 1999

[656] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 29

बोला, 'उसे वास्तव में संसार का समस्त धन, खजाना और प्रभुत्व मिल गया है।'[657] नेहरू के अनुसार, 1311 में मलिक काफूर जब दक्षिण भारत से लूटमार करके वापस आया, तो उसके लूट के माल में '50,000 माउंड (एक माउंड=37.3 किलोग्राम) सोना, विशाल मात्रा में आभूषण व मोती, 20,000 घोड़े व 312 हाथियां थे।'[658] बर्नी के अनुसार, [659] मलिक काफूर के लूट का माल इतना विशाल था कि 'दिल्ली के निवासी बोल उठे कि इससे पहले कभी इतना सोना और हाथी दिल्ली नहीं लाया गया। किसी को स्मरण नहीं था कि इससे पहले कभी ऐसा हुआ हो और न ही इतिहास में इतनी बड़ी मात्रा में लूट का माल लाये जाने की कोई घटना अंकित थी।'[660]

ऐसी अपार समृद्धता वाले देश में इस्लामी हमलावर लूटमार, हत्या, लूटपाट, शोषण करने आये और जनता को भयानक दुख व कष्ट दिया। अलाउद्दीन खिलजी (मृत्यु 1316) खेती को इस सीमा तक भकोस गया था कि किसानों की आजीविका लगभग समाप्त हो गयी थी; उसने अन्य वर्गों की जनता पर नाना प्रकार के दमनकारी कर लगाकर लूटा। अलाउद्दीन ने भारतीय किसानों को इतने दारिद्रय में डाल दिया था कि इजिप्ट के सूफी फकीर मौलाना शम्सुद्दीन तुर्क ने इस पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा, 'हिंदू स्त्रियां और बच्चे मुसलमानों के द्वार पर भीख मांगने लगे।' ऐसी दारुण स्थिति ने अनेक किसानों को कर चुकाने के लिये अपनी पत्नियों एवं बच्चों को बेचने पर बाध्य कर दिया।[661] बर्नी ने लिखा है, बाद में सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (शासन 1320-25) ने शोषण को बनाये रखा तथा हिंदुओं की वह स्थिति कर दी कि एक ओर उनके पास अभिमान करने योग्य धन भी न रहा और दूसरी ओर वे निराशा में अपनी भूमि भी नहीं छोड़ सकते थे।' अगले सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक (शासन 1325-51) ने करों को और बढ़ाकर किसानों को अपनी भूमि छोड़ जंगलों में आश्रय लेने को विवश किया। वहां इन किसानों को जंगली पशुओं की भांति मार दिया जाता था।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि मुगल शासन के वैभवपूर्ण दिनों में दयालु-हृदय जहांगीर ने 1619-20 में जंगल के 200,000 निवासियों को मार गिराया था। उदारमना अकबर के 27 वर्षों के शासन में असंख्य हिंदू पहाड़ियों के सुरक्षित स्थानों में छिपकर रहते थे। इसका अर्थ यह है कि मुगल शासन के वैभव के दिनों में भी भारत में घोर निर्धनता व्याप्त थी।

गैर-मुस्लिम जनता के शोषण की पराकाष्ठा की नीति जहांगीर और उसके बाद के सुल्तानों के समय भी चलती रही। अकबर के शासन में संभवतः कुछ छूट मिली, पर गैर-मुस्लिमों का शोषण तो चलता ही रहा। किसानों को दमनकारी निर्धनता के

---

[657] शर्मा, पृष्ठ 95

[658] नेहरू (1989), पृष्ठ 213, आल्सो फरिश्ता, अंक 1, पृष्ठ 204

[659] बर्नी ने हाथियों की संख्या 612 और सोने का परिमाण 96000 माउंड बताया है।

[660] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 204

[661] लाल (1964), पृष्ठ 128-131

कुचक्र में डालने की मुस्लिम शासकों की सोची-समझी नीति पर फर्नांड ब्रॉडेल ने लखा है, 'हिंदुओं को जिन करों का भुगतना करना होता था, वो इतने दमनकारी थे कि एक बार भी यदि उपज किसी आपदा की भेंट चढ़ जाए, तो वह ऐसा अकाल व महामारी लाने के लिये पर्याप्त होता था, जिसमें एक ही समय लाखों लोगों की मृत्यु हो सकती थी। दिल्ली में विजेताओं की समृद्धि, उनके महलों और भोजों की भव्यता जनता के भयावह निर्धनता के मूल्य पर आती थी।'[662] शाहजहां (मृत्यु 1658) और औरंगजेब (मृत्यु 1707) के काल में यह स्थिति और भयावह हो गयी। ब्राडेल ने आगे लिखा, मुस्लिम शासकों ने 'भारत के जनसाधारण की निर्धनता पर अपने वैभव की स्थापना की' और मुस्लिम शासन में भारत ने 'अकालों की श्रृंखला, बहुत अधिक मृत्यु-दर देखा...।'[663]

विरासत

इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है कि इस्लाम-पूर्व के युग की विरासतों को मिटाना आधारभूत इस्लामी सिद्धांत का भाग है। ''सच्चे मोमिनों'' का अनिवार्य कर्तव्य है कि वे जिस भूमि पर रहते हों, वहां से इस्लाम-पूर्व के प्रचलित धार्मिक, सांस्कृतिक व सभ्यता संबंधी लक्षणों, अवशेषों व उपलब्धियों को मिटा डालें। लेविस लिखते हैं, 'इसलिये जब इस्लाम ने सातवीं सदी में मध्यपूर्व पर नियंत्रण किया, तो मिस्री, अस्सीरियाई, बेबीलोनियाई, हित्ती, प्राचीन फारसी व अन्य सर्वाधिक प्राचीन भाषाएं तब तक परित्यक्त व अज्ञात पड़ी रहीं, जब तक कि वो पुरातनवादी इतिहास के विद्वानों द्वारा प्रकाश में नहीं लायी गयीं, उनकी गूढ़लिपियां समझी न गयीं, उनकी व्याख्या न की गयी और पुनर्जीवित न की गयीं...। लंबे समय तक यह कार्य मध्य-पूर्व के बाहर के लोगों द्वारा ही किया गया और आज भी लगभग स्थिति वही है।'[664] इससे सहमति प्रकट करते हुए इब्न वराक लिखते हैं, 'मिस्रीभाषा शास्त्र, सीरियाई भाषा शास्त्र और ईरानी भाषा शास्त्रों पर यूरोपीय और अमरीकी विद्वानों द्वारा ही काम किया गया। समर्पित पुरातत्वविदों को इन भाषाओं व लिपियों को ढूंढ़ने और इनके वैभवशाली अतीत के भाग को मानव जाति को लौटाने का कार्य उन समर्पित पुरातत्वविदों को सौंप दिया गया था।'[665]

यद्यपि विगत कुछ वर्षों से धर्मांध मुसलमान, उदाहरण के लिये इजिप्ट (मिस्र) में, इस्लाम-पूर्व युग के पिरामिड व अन्य पुरातात्विक धरोहरों को मिटा कर उन पुनर्जीवित किये गये अतीत के उन गौरवों को नष्ट करने के लिये प्रयासरत हैं। अफगानिस्तान में तालिबान कट्टरपंथी इस्लाम-पूर्व युग की बामियान बुद्ध मूर्तियों को सुनियोजित ढंग से मिटा रहे हैं। पिछले तीन दशक से ईरान का इस्लामी शासन कोई न कोई बहाना बनाकर सुनियोजित ढंग से इस्लाम-पूर्व के महान फारसी विरासत को मिटा रहा है। यह

---

[662] ब्राडेल, पृष्ठ 232

[663] इबिद, पृष्ठ 233-34

[664] लेविस (2000), पृष्ठ 245

[665] इब्न वराक, पृष्ठ 202

धर्मांधता बढ़ती ही जा रही है और ऐसी प्रबल संभावना है कि आने वाले दशकों में इस्लामी देशों में यह अभियान और तीव्र व विस्तृत होगा।

यह निर्विवाद है कि यूरोपीय उपनिवेशवादियों में पुर्तगालियों और स्पेनियों ने शासित लोगों का विध्वंस किया। दक्षिण अमरीका और भारत में पुर्तगालियों द्वारा नियंत्रित गोवा इसके उदाहरण हैं। किंतु यदि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों और शासकों के अभिलेखों पर विचार किया जाए, तो यह सिद्ध होता है कि मुस्लिम हमलावरों ने शासित लोगों पर उनसे कम अत्याचार नहीं किया। मुस्लिम हमलावरों ने भारत के लगभग आठ करोड़ मूल लोगों की हत्या की और इतनी ही संख्या में पूर्व एशिया व मध्य-एशिया में लोगों की हत्याएं कीं। उन्होंने अफ्रीका में तो और बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों को मार डाला तथा यूरोप में भी बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों की हत्याएं कीं। स्पेनी और पुर्तगाली साम्राज्यवाद निश्चित रूप से क्रूर था, किंतु जहां तक शासित लोगों पर अत्याचार का संबंध है, तो इस्लामी उपनिवेशवाद किसी भी अर्थ में उनसे कम नहीं था। अन्य यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों ने उस समय तर्कसंगत ढंग से उचित व्यवहार किया, यद्यपि इस संबंध में ऑस्ट्रेलिया जैसे कुछ उपनिवेश अपवाद भी हैं।

उदाहरण के लिये, भारतीय उपमहाद्वीप में यूरोपीय और इस्लामी उपनिवेशवाद की सतत् विरासत क्या है? आज के भारत में ब्रिटिशों द्वारा स्थापित शिक्षा, विधि व स्वास्थ्य प्रणाली, राजमार्ग, रेलवे व सिंचाई व्यवस्था, धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र, विधि का शासन व संचार के सकारात्मक प्रभाव के साथ अनेक सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन के प्रयासों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। किंतु भारत में इस्लाम ने ऐसी क्या विरासत छोड़ी, जिस पर गर्व किया जा सके? भारतीय मुस्लिम मित्र मुझे बताते हैं कि मुस्लिम हमलों से पूर्व भारत के पास कुछ नहीं था। वो कहते हैं, 'इस्लाम ने भारत को ताजमहल और लालकिला दिया।' इरफान युसुफ का तर्क है, इस्लाम ने 'तत्कालीन समय में विश्व के सबसे समृद्ध सुल्तान को अपनी बीवी के सम्मान में भव्य मकबरा बनाने की प्रेरणा दी।'[666] भारत के इस्लाम-पूर्व कला, विज्ञान और स्थापत्य की उपलब्धि का वर्णन पहले ही किया गया जा चुका है। यह भी उल्लेख किया जा चुका है कि किस प्रकार तथाकथित महान इस्लामी योगदान कहे जाने वाले इन सनकी मूढ़ता के प्रतीकों का निर्माण शासित लोगों के रक्त, मेधा व श्रम को चूसकर किया गया था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि इस्लामियों के इन मूर्ख प्रतीकों को निकाल दिया जाए, तो भी आज भी भारत उतना ही महान राष्ट्र होगा, किंतु यदि ब्रिटिश राज की विरासत को हटा दिया जाए तो ऐसी स्थिति नहीं रहेगी। नायपाल पाकिस्तान में ब्रिटिश व इस्लामी विरासत के अंतर पर लिखते हैं कि,

> मुगलों ने किले, महल, मस्जिदें और मकबरे बनवाये। ब्रिटिशों ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संस्थाओं को प्रश्रय देने के लिये भवन बनवाये। लाहौर दोनों कालों के स्मारकों में समृद्ध था। विडम्बना यह है कि एक ऐसा देश, जो अपनी इस्लामी पहचान के बारे में इतनी बात करता है और यहां तक कि मुगल सत्ता का उत्तराधिकारी होने का दावा करता है, वहां मुगल स्मारक चिह्नोंः किला,

[666] युसुफ आई, वायलेंस अगेंस्ट विमन वोंट स्टॉप अनटिल मेन स्पीक आउट, न्यूजीलैंड हेराल्ड, 12 सितम्बर 2008

> शाहजहां का मस्जिद, शालीमार गार्डन, जहांगीर और उसकी प्रिय बेगम नूरजहां के मकबरों का ही क्षरण हो रहा है...। ब्रिटिशों के प्रशासनिक भवन आज भी वैसे ही खड़े हैं। जिन संस्थाओं को अंग्रेजों ने बनवाया था, उन्हीं पर न्यूनाधिक आज यह देश निर्भर है।[667]

पाकिस्तान का विचार देने वाले मुहम्मद इकबाल के पोते वलीद इकबाल ने नायपाल से कहा कि 'यदि मुगलों के काल में जाएं, तो वहां कानून के नाम पर केवल निरंकुशता मिलेगी। देश में कानून व न्यायालय के नाम पर आज भी ब्रिटिशों द्वारा दिये गये वही न्यायालय और 1898 व 1908 के ब्रिटिश प्रक्रियात्मक विधियां हैं। ब्रिटिशों की संस्थाओं व विधियों से आवश्यकता की पूर्ति होती है, इसलिये आज भी वे टिके हैं।'[668]

इसका यह अर्थ तनिक भी नहीं है कि इन विचारों और संस्थाओं के भारत आने के लिये ब्रिटिश दासता आवश्यक थी। प्राचीन काल से ही भारतीय सभ्यता स्वयं में ही रचनात्मक रही है और विदेशी विचारों को आत्मसात् करने वाली रही है। पुनर्जागरण और प्रबुद्ध यूरोप का विकास सुगमता के अनुरूप भारत में धीरे-धीरे आयी ही होतीं। यद्यपि यदि भारत पर इस्लाम का नियंत्रण बना रहा होता, तो इनके यहां पहुंचने में बाधा आती। भारत में मुस्लिम शासन का अवसान हो रहा था और अब बहुतों को लगता होगा कि मुसलमानों के स्थान पर हिंदू और सिख सत्ता शीर्ष पर बैठेंगे। इसकी संभावना भी अधिक थी। यद्यपि यह ध्यान रखना होगा कि संसार में कहीं भी बिना विदेशी हस्तक्षेप के मुस्लिम उपनिवेशवादियों को नहीं हटाया जा सका था। भारत में पहले भी कई बार मुस्लिम सत्ता का क्षरण हुआ था। दिल्ली की पतन की ओर अग्रसर इस्लामी सत्ता को अमीर तैमूर ने पहले भी पूर्णतः उखाड़ फेंका था, किंतु मुस्लिम पुनः वापस आये और अपना राजनीतिक नियंत्रण बनाया। यदि आंतरिक ताकत न भी होती, तो भी विदेशी पोषण से मुसलमान सत्ता पर अपनी पकड़ बनाये रख सकते थे। क्या महान सूफी दरवेश शाह वलीउल्लाह जैसे भारत के मजहबी मुसलमानों की अपील पर अहमद शाह अब्दाली ने तीन बार भारत आकर विनाश नहीं फैलाया था और 1761 के अपने अंतिम अभियान में मराठा विद्रोह को नहीं कुचला था? इससे पहले भी भारत में अराजक राजनीतिक स्थिति के बीच मुसलमानों ने बाहर के देशों से सहायता मांगी थी, जिसके उत्तर में मध्य एशिया से बाबर आया और ताकतवर मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

भारत पर इस्लामी साम्राज्यवाद का समग्र प्रभाव निस्संदेह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की तुलना में भयावह था। इस्लामी बांग्लादेश और पाकिस्तान की वर्तमान अव्यवस्था को देखने पर उपमहाद्वीप में इस्लामी साम्राज्यवाद की सतत् विरासत स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यूरोपीय विचारों को ग्रहण करते हुए हिंदू भारत दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ गया। इस्लामी साम्राज्यवाद की विरासत के उत्तराधिकारी पाकिस्तान और बांग्लादेश इस्लाम में ही खोये रहे और विकास की दौड़ में पिछड़ गये। यदि यूरोपीय साम्राज्यवाद को बुरा कहा जाएगा, तो इस्लामी साम्राज्यवाद उससे कहीं अधिक निंदा का पात्र है। अफ्रीका, अमरीका, एशिया या जहां कहीं भी यूरोपीय साम्राज्यवाद रहा, वहां से इसके हटने के बाद इसका नकारात्मक प्रभाव अब समाप्त हो गया है। किंतु मुस्लिम ने जिन देशों को जीता था, वहां इस्लामी साम्राज्यवाद ने जो चिह्न छोड़े हैं, वो आज भी दुख और विनाश का कारण

---

[667] नायपाल (1998), पृष्ठ 255-56

[668] इबिद, पृष्ठ 256

बन रहे हैं। मुस्लिम धर्मांतरितों द्वारा अन्य नागरिकों के साथ सामंजस्य बिठाने में विफल रहने के बारे में पहले ही उल्लेख किया गया है। अभी तो चलते आ रहे इस्लाम के दुखदायी व घातक प्रभाव का अंत नहीं दिख रहा है। इसके विपरीत, जहां भी यूरोपीय उपनिवेशवादियों ने अपने पदचिह्न छोड़े हैं, जैसे कि कनाडा, अमरीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका आदि देश, वहां यूरोपीय थाती उन राष्ट्रों के लिये एक फलदायी संपत्ति बन गयी है।

भारत में इस्लामी शासन और ब्रिटिश शासन के प्रभाव का मूल्यांकन करने वाले आलोचकों व इतिहासकारों को वर्तमान प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा भारत पर ब्रिटिश व इस्लामी प्रभाव पर कही गयी बातों पर ध्यान देना चाहिए। 2005 में ऑक्सफोर्ड में भाषण देते हुए सिंह ने भारत पर ब्रिटिश प्रभाव का आंकलन करते हुए कहा था, 'आज, समय के साथ आये संतुलन व परिप्रेक्ष्य एवं दूरदर्शिता के कारण किसी भारतीय प्रधानमंत्री के लिये कह पाना संभव हुआ है कि ब्रिटेन के साथ भारत के अनुभवों के लाभकारी परिणाम भी रहे हैं।' उन्होंने कहाः 'विधि के शासन, संवैधानिक सरकार, स्वतंत्र प्रेस, व्यवसायिक सिविल सेवा, आधुनिक विश्वविद्यालयों और अनुसंधान प्रयोगशालाओं के बारे में हमारे विचार उस भट्टी में गढ़े गये हैं, जिसमें एक युगों-प्राचीन सभ्यता का मिलन आज के प्रभावशाली साम्राज्य से हुआ।'[669]

वहीं दूसरी ओर, नेहरू ने मन मारकर ही सही, किंतु भारत पर इस्लाम के प्रभाव पर अपरिहार्य निष्कर्ष को प्रकट करते हुए कहा कि 'इस्लाम अपनी धारा के साथ ऐसी कोई बड़ी क्रांति नहीं लाया, जो जनसमूहों के अतिशय शोषण का अंत कर पाता। किंतु जहां तक मुस्लिम लोगों का संबंध है, तो इसने उन्हें शोषण से अवश्य मुक्त किया...।'[670] नेहरू ने मुस्लिम शासकों की इस नस्लभेदी नीति की प्रशंसा की कि उन्होंने छोटी सी जनसंख्या वाले मुसलमानों को शोषण से मुक्ति दिलायी, किंतु उसने इस सच से आंख चुरा लिया कि बहुत बड़ी जनसंख्या वाले गैर-मुसलमानों के रक्त, हृदय व आत्मा की हत्या करके ही यह साकार हुआ था।

---

[669] रेडिफ डॉट कॉम, ब्रिटिश राज वाज बेनीफिशियलः पीएम, 9 जुलाई 2005; http://us.rediff.com/news/2005/jul/09pm1.htm

[670] नेहरू (1989), पृष्ठ 145

अध्याय 7

इस्लामी दासप्रथा

'अल्लाह ने दो व्यक्तियों का (एक और) उदाहरण दिया हैः दोनों में से एक गूंगा है, उसके पास किसी प्रकार की ताकत नहीं है; वह अपने स्वामी पर बोझ है। वह उसे जहां भेजता है, वहां कुछ अच्छा नहीं करता हैः तो ऐसा व्यक्ति उस व्यक्ति के बराबर हो जाएगा, जो न्याय का आदेश देता हो और सीधी राह पर हो?'

--अल्लाह, कुरआन 16:76 में

'(अल्लाह) उन अहले किताब वालों (यहूदियों व ईसाइयों) को ले आया... और उनके हृदय में भय भर दिया। कुछ '(वयस्क पुरुषों) को तुमने मारा, और कुछ '(औरतों व बच्चों) को तुमने बंदी बना लिया।'

--अल्लाह, कुरआन 33:26-27

कुरआन में लिखा है कि जिन भी जनसमूहों ने उनके (अर्थात मुसलमानों के) प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया, वे पापी थे; कि यह (मुसलमानों) का अधिकार और कर्तव्य है कि उनमें से जिसे भी पा जाएं, उससे जंग करें और उनमें से जितने को भी बंदी बना सकें, उन्हें दास (गुलाम) बनाकर रखें; और कि जो भी मुसलमान संघर्ष में मारा जाएगा, उसे निश्चित ही जन्नत मिलेगी।

--त्रिपोली के लंदन राजदूत अब्दुल रहमान ने थॉमस जैफरसन एवं जॉन एडम्स (1786) से इस बात पर कहा कि किस अधिकार से बर्बर राज्यों ने अमरीकी मछुआरों को दास बनाया।

दासप्रथा एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक संस्था होती है, जिसमें दास (गुलाम) कहे जाने वाले कुछ मनुष्य स्वामी (मालिक) कहे जाने वाले दूसरे मनुष्यों की संपत्ति हो जाते हैं। स्वतंत्रता व अधिकार से वंचित इन दासों से अपेक्षा की जाती कि अपने स्वामियों की सुख-सुविधा और आर्थिक लाभ के लिये निष्ठापूर्वक एवं परिश्रम से सेवा करें। किसी भी प्रकार के मानव अधिकार से वंचित ये दास अपने स्वामियों के बिना शर्त अधिकार में रहते हैंः वे एक ऐसी चल संपत्ति के रूप में रहते हैं, जिसे स्वामी को छोड़कर जाने, काम से मना करने अथवा अपने श्रम के लिये भुगतान प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता। समाज में दासों की स्थिति कई अर्थों में वैसी ही होती है, जैसी कि एक पालतू पशु की होती है। जैसे किसी गाय, घोड़े या बोझा ढोने वाले अन्य पशुओं को प्रशिक्षित किया जाता है और गाड़ी खींचने या खेत जोतने जैसे कार्य के माध्यम से आर्थिक लाभ के लिये उपयोग किया जाता है, उसी भांति स्वामी के सुख और आर्थिक लाभ के लिये दासों का भी शोषण किया जाता है। दासप्रथा का अभिन्न अंग है दास-

व्यापार, जिसमें मानव का क्रय-विक्रय उसी प्रकार होता है, जैसा कि किसी अन्य वाणिज्यिक व्यापार में वस्तुओं का होता है। सार यह है कि दासप्रथा में सबल द्वारा दुर्बल का शोषण किया जाता है और इसका बहुत लंबा इतिहास है।

पश्चिम के सभी और विशेष रूप से मुसलमानों द्वारा यूरोपीय शक्तियों अटलांकिटक-पार दास-व्यापार और अमरीका और वेस्टइंडीज में उनके अंधाधुंध शोषण एवं दासों के साथ निम्न कोटि के व्यवहार की सर्वाधिक आलोचना की जाती है। मुसलमान यूरोपियन दास-व्यापार पर उंगली उठाने में तनिक भी नहीं चूकते हैं; वे प्रायः दावा करते हैं कि दासों के शोषण से ही अमरीका जैसे देश वो अकूत धन जुटा सके, जो आज उनके पास है। अमरीका में जन्मे एक मुसलमान ने (व्यक्तिगत संवाद में) लिखाः 'क्या आपको पता है कि कैसे अमरीकी दास-शिकारी अफ्रीका गये, अश्वेत लोगों को बंधक बनाया और उन्हें दास के रूप में अमरीका ले आये? अमरीका की आर्थिक शक्ति के पीछे उन दासों के परिश्रम की बड़ी भूमिका है।' इस्लामी देश के मंत्री लुईस फराखान ने 350 वर्ष के अटलांटिक-पार दास प्रथा को इतिहास का सबसे भयानक और क्रूर दासता बताते हुए दावा किया है कि अनेक गोरे अमरीकियों को नहीं पता होगा कि 'वे आज जिस विशिष्ट अधिकार वाली स्थिति में हैं, वह अतीत में हमारे (अश्वेतों) के साथ जो हुआ उसी पर आधारित है।'[671] मुसलमानों के अधिकांश भाग को लगता है कि इस्लामी इतिहास में घृणित दास प्रथा नहीं है। एक आस्ट्रेलियन आदिम जनजाति का रॉकी डेविस (उर्फ शाहिद मलिक), जो मुसलमान बन गया था, ने एबीसी रेडियो से कहा कि 'ईसाई धर्म दासप्रथा का जनक है। न कि इस्लाम।'[672] भारत के मुसलमान जब उपमहाद्वीप में दास प्रथा के प्रचलन की बात करते हैं, तो वे चटखारे लेकर सुनाते हैं कि कैसे पुर्तगाली तटीय गोवा, केरल और बंगाल से लोगों को भयानक स्थितियों में दास बनाकर ले गये थे। यह उल्लेख पहले ही किया गया है कि पाकिस्तान में इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में पढ़ाया जाता है कि इस्लाम से पहले चारों ओर शोषण व दासप्रथा थी, जो इस्लाम के आने के साथ समाप्त हुई। किंतु इन पाठ्य पुस्तकों में यह कभी नहीं बताया जाता है कि भारत में मुस्लिम हमलावरों और शासकों ने कितना भयानक व व्यापक स्तर पर लोगों को पकड़कर दास बनाया था।

इस्लामी शासन में व्यापक स्तर पर दासप्रथा की कुप्रथा के प्रचलन पर मुसलमानों की चुप्पी यह दर्शाती है कि वे ऐतिहासिक तथ्यों से दूर हैं। भारत में आधुनिक इतिहास लेखन में भी उन अत्याचारों पर पर्दा डालने का काम किया जाता है, जो मुस्लिम हमलों और उसके बाद के मुस्लिम शासन के समय हुए थे। इस्लामी इतिहास की सच्चाई छिपाकर उसे प्रस्तुत करने के कारण मुसलमान मध्यकालीन भारत में हुए इस्लामी अत्याचारों से अनजान बने रहते हैं और मन में मुस्लिम शासकों द्वारा व्यापक स्तर पर लोगों को दास बनाने के कुकृत्य पर गलत धारणा बना लेते हैं। जैसा कि इस पुस्तक में साक्ष्यों सहित ऐतिहासिक विवरण दिया गया है कि जहां कहीं भी इस्लामी प्रभुत्व रहा, वहां दासप्रथा चरम पर रही। इस्लामी दास प्रथा का एक और विशेष घृणित पक्ष व्यापक स्तर पर सेक्स-स्लेव अथवा रखैल बनाना, हिजड़ा और गिलमा बनाना है।

---

[671] फरखान एल, व्हाट डज अमेरिका एंड यूरोप ओ?, फाइनल काल, 2 जून 2008

[672] एबीसी रेडियो, एबॉर्जिनल दआ-वा- ''काल टू इस्लाम'', 22 मार्च 2006

कुरआन द्वारा दासप्रथा की स्वीकृति

इस्लाम में दासप्रथा की कुरीति को मान्यता कुरआन की निम्न आयतों से मिलती हैं, जिसमें अल्लाह स्वतंत्र मनुष्य या स्वामियों को दासों में पृथक करता हैः

> 'अल्लाह ने दो व्यक्तियों का (एक और) उदाहरण दिया हैः दोनों में से एक गूंगा है, उसके पास किसी प्रकार की ताकत नहीं है; वह अपने स्वामी पर बोझ है। वह उसे जहां भेजता है, वहां कुछ अच्छा नहीं करता हैः तो ऐसा व्यक्ति उस व्यक्ति के बराबर हो जाएगा, जो न्याय का आदेश देता हो और सीधी राह पर हो?' [कुरआन 16:76]

अल्लाह मोमिनों को चेतावनी देता है कि दासों को अपने बराबर की स्थिति न दो और न ही उन्हें अपने धन में साझेदार बनाओ, कहीं ऐसा न हो कि वे तुमसे आतंकित रहना छोड़कर किसी और की शरण में चले जाएंः

> '...क्या जो माल हमने तुम्हें दिया है, उसमें तुम्हारे अधीनस्थों (अर्थात गुलाम, बंदी) में से कुछ तुम्हारे साझीदार हैं कि तुम सब उसमें बराबर हो? क्या तुम उनसे वैसे ही डरते हो, जैसे तुम एक-दूसरे अर्थात अपनों से डरते हो?' [कुरआन 30:28] [673]

अल्लाह कहता है कि यह उसकी ईश्वरीय योजना का भाग है कि गुलामों की तुलना में उसे कुछ मनुष्य अर्थात मालिक अधिक प्रिय हैं। वह मुसलमानों को चेतावनी देता है कि उसके द्वारा दिये गये माल को उन गुलामों में समान रूप से न बांटें। अल्लाह कहता है कि जो गुलामों को बराबर का भाग देंगे, वो अल्लाह को नकारने वाले होंगेः

> अल्लाह ने अपने माल का उपहार तुममें से कुछ को दूसरों की तुलना में अधिक मुक्त हस्त से दिया हैः किंतु जिन पर अधिक मेहरबानी की गयी है, वे अपने उपहारों को उनको नहीं देने जा रहे हैं, जो उनके कब्जे में हैं अर्थात उनके गुलाम हैं कि वे सब गुलाम इसमें उनके बराबर हो जाएं। तो क्या (ऐसा करके अर्थात अल्लाह द्वारा दिये गये माल को अपने गुलामों को देकर) वे अल्लाह की उन मेहरबानियों को नकारेंगे? [कुरआन 16:71]

अल्लाह दासप्रथा की कुरीति को न केवल स्वीकृत देता है, अपितु उसने मालिकों (मुस्लिम पुरुषों को ही गुलाम रखने का अधिकार है) को सेक्स-स्लेव बनायी गयी औरतों के साथ यौन संबंध बनाने की अनुमति भी दीः

---

[673] प्रसिद्ध विद्वान अबू अला मदूदी ने इस आयत की व्याख्या करते हुए लिखा हैः ''जब तुम अपने धन में अपने गुलामों को हिस्सा नहीं देते हो, तो तुम कैसे सोच लेते हो और मान लेते हो कि अल्लाह अपने ईश्वरत्व में अपनी रचनाओं में किसी को साझेदार बनायेगा?'' [मदूदी एए, टुवर्ड्स अंडरस्टैंडिंग द कुरआन, मरकज़ी मक़तबा इस्लामी पब्लिशर्स, न्यू देल्ही, अंक 8।] दूसरे शब्दों में कहें, तो इसका तात्पर्य है कि किसी व्यक्ति द्वारा किसी और को अल्लाह का साझेदार बनाना अर्थात उसके बराबर मानना, जो इस्लाम में सबसे घृणित कार्य माना जाता है, वैसा ही है, जैसे कि अपने गुलाम को अपना समान साझीदार बनाना।

> और जो अपनी बीबियों या जो औरतें उनके कब्जे में हों (अर्थात जिनके वे मालिक हों), उनके अतिरिक्त दूसरों से अपने गुप्तांगों की रक्षा करते हैं- क्योंकि उनके साथ संबंध बनाने पर उन्हें निश्चित ही कोई दोष नहीं लगता। [कुरआन 70:29-30]

> और जो अपने गुप्तांगों की रक्षा करते हैं, सिवाय इस सूरत के कि अपनी बीबियों या लौंडियों (अर्थात जो उनके कब्जे में हों अर्थात सेक्स-स्लेव) के पास जाएं, क्योंकि वे निश्चित ही दोषारोपण योग्य नहीं हैं। [कुरआन 23:5-6]

इसलिये, यदि पकड़े गये या दास बनाये गये लोगों में औरतें हैं, तो मुसलमानों को अल्लाह द्वारा अनुमति दी गयी है कि वे उनके साथ वैसे ही यौन-संबंध बनायें, जैसे कि अपनी बीवियों के साथ बनाते हैं। अल्लाह के इस आदेश ने इस्लाम में सेक्स-स्लेव प्रथा या पकड़कर दास बनायी गयी स्त्रियों को लौंडी (रखैल) बनाकर रखने की कुप्रथा को जन्म दिया। जहां तक विधिक शादी की बात है, तो इस्लाम में कोई पुरुष एक साथ चार शादी करने की सीमा निश्चित करता है [कुरआन 4:3],किंतु यौन-दासी अर्थात सेक्स-स्लेव रखने की संख्या पर ऐसा कोई बंधन नहीं लगाता है।

अल्लाह मुसलमानों को यह भी आदेश देता है कि वे काफिरों के विरुद्ध जंग छेड़कर यौन-आनंद के लिये स्त्री-दास प्राप्त करें:

> ऐ नबी! निश्चित ही हमने तेरे लिये तेरी उन बीवियों को वैध (हलाल) कर दिया है, जिनको तू मेहर दे चुका है और जिन्हें अल्लाह ने तुझे जंग के बंदियों के रूप में दिया है, उनमें से जो औरतें तेरे कब्जे में हैं उन्हें भी तेरे लिये हलाल कर दिया है...। [कुरआन 33:50]

मुसलमान यदि शादीशुदा हैं, तो वे भी पकड़ी गयी दास स्त्रियों के साथ यौन संबंध में लिप्त हो सकते हैं, किंतु वे शादीशुदा मुस्लिम औरत के साथ संबंध नहीं बना सकते हैं:

> और शादीशुदा औरतें भी वर्जित हैं, सिवाय उनके जो तुम्हारी लौंडी हों...। [कुरआन 4:24]

कुरआन में और भी आयतें हैं, जो जंग में लोगों को पकड़ने और उन्हें जबरन दास बनाने की बात करती हैं। इस प्रकार पवित्र कुरआन में दिये गये इस्लामी ईश्वर अल्लाह के आदेश के अनुसार, मुसलमानों को दास अर्थात गुलाम रखने की अनुमति है। वे जंग छेड़कर लोगों को गुलाम बना सकते हैं, पकड़ी गयी स्त्रियों को दास बनाकर जबरन उनके साथ यौन संबंध बना सकते हैं और जैसे चाहें वैसे उन स्त्रियों का उपयोग कर सकते हैं। मुसलमानों के लिये पकड़कर दासी बनायी गयी औरत के साथ यौन संबंध बनाना उतना ही हलाल है, जितना कि अपनी बीवियों से यौन संबंध बनाना हलाल है। इस्लाम में दासप्रथा अल्लाह द्वारा दिये गये सर्वाधिक प्रिय विशेषाधिकारों में से एक है, क्योंकि अल्लाह बारंबार कई आयतों में मुसलमानों को इस विशेष अधिकार के विषय में स्मरण कराता है।

अल्लाह केवल इस अधिकार का स्मरण कराने भर पर नहीं रुकता है, अपितु वह रसूल मुहम्मद यह सिखाने की पहल भी करता है कि काफिरों को गुलाम कैसे बनाया जाए। निम्नलिखित आयत देखिए:

> और वह (अल्लाह) ग्रंथ के लोगों (बनू कुरैजा के यहूदी) में से जिन लोगों ने उनका (अर्थात कुरैशों) समर्थन किया था, उन्हें उनकी गढ़ियों से नीचे खींच लाया और उनमें मन में भय भर दिया। तुमने कुछ (पुरुषों) को काट डाला और तुमने कुछ (स्त्रियों और बच्चों) को बंदी बना लिया...। [कुरआन 33:26-27]

इस आयत में अल्लाह ने बनू कुरैज़ा के यहूदियों पर आरोप लगाया कि उन्होंने खंदक की जंग (627) में अपने गढ़ों से मक्का के कुरैशों का समर्थन किया था। इस अप्रमाणित आरोप के आधार पर अल्लाह ने आदेश दिया कि कुछ यहूदियों अर्थात वयस्क पुरुषों की हत्या कर दी जाए और शेष बचे यहूदी पुरुषों, उनकी स्त्रियों और बच्चों को पकड़कर दास बना लिया जाए। मुहम्मद ने अल्लाह के इस आदेश का अक्षरशः पालन किया। उसने बंदी बनायी गई उन यहूदियों स्त्रियों व बच्चों में पांचवां भाग अपने पास रख लिया और बचे लोगों को अपने अनुयायियों में बांट दिया। उन स्त्रियों में जो युवा व सुंदर थीं, उन्हें बलपूर्वक लौंडी (सेक्स-स्लेव) बना लिया गया; मुहम्मद ने स्वयं रिहाना नामक उस सुंदर युवती को अपने पास रख लिया, जिसके पति और परिवार के सदस्यों की सामूहिक हत्या कर दी गयी थी। उसी रात वह उसे जबरन अपने बिस्तर पर ले गया।[674]

अगले वर्ष खैबर की जीत के बाद मुहम्मद वहां की स्त्रियों और बच्चों को उठाकर ले गया। अन्य हमलों में भी मुहम्मद और उसके अनुयायी पराजित लोगों की स्त्रियों और बच्चों को पकड़कर बंदी बनाये और उठा ले गये। इस प्रकार काफिरों पर भयानक हमला करने और उनको पराजित करने के बाद उनकी स्त्रियों व बच्चों को उठा ले जाने का कुकृत्य मुहम्मद की जंग का मॉडल था। धन कमाने के लिये दास बनाये गये लोगों में कुछ को बेच दिया जाता था या फिरौती लेकर छोड़ा जाता था। बंदी बनाये गये लोगों में युवा और सुंदर स्त्रियों को बलपूर्वक लौंडी (यौन-दासी) बना लिया जाता था।

चूंकि इस्लामी विचार में अच्छा मुस्लिम जीवन जीने के लिये मुहम्मद के कार्य व व्यवहार, दोनों को अपने व्यवहार में लाना आवश्यक है, इसलिये मुसलमानों ने उसके दासप्रथा के मॉडल (दास बनाना, दासों को बेचना और दासों को लौंडी बनाकर रखना) को पूर्णतः अपनाया और इस्लामी प्रभुत्व के अंतिम वर्षों तक इस मॉडल को बनाये रखा। मुहम्मद द्वारा बनू क़ुरैजा और खैबर के यहूदियों के साथ किये गये व्यवहार को ही लोगों को पकड़कर दास बनाने का मानक बना लिया गया। इससे मध्यकालीन इस्लामी व्यवहार में दास बनाने, जबरन लौंडी बनाने (अर्थात सेक्स-स्लेव बनाने) और दास-व्यापार की कुप्रथाओं में अत्यंत वृद्धि हुई। मुहम्मद की मृत्यु के बाद, कुरआन और सुन्नत की स्वीकृति से लैस मुसलमानों ने इस्लाम का प्रचार करने और इस्लामी शासन के विस्तार के उद्देश्य से विश्व को जीतने के लिये उच्छृंखल जिहाद छेड़ने के मिशन पर लग गये। जैसे ही इस्लाम अरब से बाहर कूदा, मुसलमान हमलावर बड़ी संख्या में पराजित काफिरों और विशेष रूप से स्त्रियों व बच्चों को पकड़कर दास बनाने में दक्ष हो गये।

इस्लामी विचार में इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाहर की सभी सभ्यताएं जाहिलियत अर्थात मिथ्या प्रकृति की हैं और इस्लाम के आने के साथ ही इन सब सभ्यताओं को हराम घोषित कर दिया गया। केवल मुसलमानों के पास ही इस्लाम के सत्य मजहब के रूप में सत्य था। बर्नार्ड लेविस ने लिखा है, 'उनकी विचारधारा में इस्लाम मजहब और उसकी सीमाओं से बाहर के संसार में काफिर और बर्बर लोग रहते थे। इनमें से कुछ को माना गया कि उनमें धर्म का एक रूप और सभ्यता का कोई रंग था। अन्य लोगों अर्थात बहुदेववादियों और मूर्तिपूजकों को यह माना गया कि वे मुख्यतः दास बनाये जाने योग्य हैं।'[675] मुसलमानों ने

---

[674] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 461-70

[675] लेविस (1966), पृष्ठ 42

इतनी बड़ी संख्या में लोगों को पकड़कर दास बनाया कि दास-व्यापार तेजी से बढ़ने वाला उद्यम हो गया; मुस्लिम दुनिया दासों से भर गयी। लाल लिखते हैं, तद्नुसार, 'व्यापक स्तर पर दास-व्यापार प्रारंभ करने और किसी अन्य व्यवसाय के जैसे ही इसे भी लाभ के लिये चलाने का श्रेय इस्लाम को जाता है।'[676]

दासप्रथा कोई इस्लामी अविष्कार नहीं था, और न ही इस्लाम का इस पर एकाधिकार था। संभवतः असभ्यता के युग में दासप्रथा पनपी और अंकित इतिहास में सभी बड़ी सभ्यताओं में यह रही है। ईसाई धर्म के जन्म के पहले से ही दासप्रथा बेबीलोनिया और मेसोपोटामिया में थी और प्राचीन इजिप्ट, यूनान और रोम में प्रचलित थी। ईसाई धर्मग्रंथों में दासप्रथा को अनुमोदित किया गया है और मध्यकालीन ईसाई व्यवहार में इसका प्रचलन था।

प्राचीन इजिप्ट (मिस्र)। प्राचीन इजिप्ट में पिरामिड निर्माण में दासों को श्रमिक के रूप में लगाया गया था। प्रसिद्ध यूनानी (ग्रीक) यात्री हेरोडोटस (ईसा पूर्व 484-425) के अनुसार, मिस्र के प्राचीन साम्राज्य (ईसा पूर्व 2589-2566) के एक फिरऔन किओपस द्वारा बनवाये गये प्राचीन विश्व के सात आश्चर्यों में से एक गीजा के महान पिरामिडों के निर्माण में 100,000 दासों ने निरंतर बीस वर्षों तक काम किया था।[677] यद्यपि अनुश्रुतियों के आधार पर बताये गये विवरण को देखकर यह संख्या अतिरंजना प्रतीत होती है, क्योंकि अनुश्रुतिक विवरणों में कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि उस समय ऐसे कार्यों के लिये इतनी बड़ी संख्या में दासों का प्रयोग किया जाता था। मिस्र के फिरऔन युद्ध में लोगों को पकड़कर दास बनाया करते थे अथवा दूसरे देशों से दास क्रय किया करते थे। वे दास राज्य की संपत्ति होते थे, न कि उनकी स्थिति निजी नागरिक की होती थी। उन दासों को प्रायः जनरलों व पुरोहितों को उपहार स्वरूप दिया जाता था।

प्राचीन यूनान (ग्रीस)। यूनान के प्राचीन नगरों यथाः एथेंस और स्पार्टा में दासप्रथा को सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक प्रणाली में सम्मिलित किया गया था। वहां स्वतंत्र नागरिकों व विदेशी व्यक्तियों के साथ-साथ ऐसा हेलट अर्थात दास वर्ग भी था, जो कृषि व अन्य निम्न मानी जाने वाली गतिविधियों में श्रमिक का काम करते थे। इन कार्यों से मुक्त होने के कारण वहां के संभ्रांत वर्ग को अन्य गतिविधियों के साथ ही बौद्धिक गतिविधियों में आगे बढ़ने का अवसर मिला और उन्होंने प्राचीन यूनान की अचंभित करने वाली बौद्धिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक व साहित्यिक उपलब्धियों में योगदान दिया। प्राचीन यूनान में बड़ी संख्या में किसानों के पास अपनी भूमि नहीं थी, तो उन्हें अपनी उपज का बड़ा भाग भू-स्वामी को देना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि वे किसान ऋणग्रस्त हो गये और अंततः उन्हें स्वयं को दास वाली श्रेणी में लाना पड़ा, जिससे हेलट वर्ग बना। कहा जाता है कि एक समय एथेंस में केवल 2100 स्वतंत्र नागरिक रह गये और दासों की संख्या 460,000 हो गयी थी। स्पार्टा की तुलना में एथेंस नगर में दासों के साथ नरम व्यवहार होता था। बाद में ड्रैको के संविधान (ईसा पूर्व 621) और सोलन की विधियों (ईसा पूर्व 638-558)

---

[676] लाल (1994), पृष्ठ 6

[677] इबिद, पृष्ठ 2

में दासों को राज्य की संपत्ति बना दिया गया। सोलन विधियों के आदेश ने ऋणग्रस्तता के आधार पर दास बनाने को भी प्रतिबंधित कर दिया। अब उन दासों के पास कुछ मूलभूत अधिकार थे और राज्य के अतिरिक्त कोई और उन्हें नहीं मार सकता था।

रोमन साम्राज्य। प्राचीन रोमन गणराज्य और आरंभिक रोमन साम्राज्य में लगभग 15-20 प्रतिशत जनसंख्या दासों की थी।[678] ऐसा कहा जाता है कि सम्राट अगस्तस सीजर के समय (शासन ईसा पूर्व 63 से ईसवी 14) में एक-एक स्वामी के पास 4000-4000 दास होते थे।[679] ईसापूर्व दूसरी शताब्दी तक स्वामियों को अपने दासों की हत्या का विधिक अधिकार था, यद्यपि ऐसा न के बराबर हुआ। कोरनेलियन विधि (ईसा पूर्व 82) ने स्वामियों द्वारा किसी दास की हत्या करने पर प्रतिबंध लगा दिया। पेट्रोनियन विधि (ईसापूर्व 32) ने दासों को युद्ध में बलपूर्वक भेजने पर प्रतिबंध लगा दिया। सम्राट क्लाडियस (शासन ईसापूर्व 41-54), यदि किसी स्वामी की उपेक्षा से किसी दास की मृत्यु हो जाए, तो वह हत्या का अपराधी माना जाता था। प्रसिद्ध वक्ता, लेखक, दार्शनिक व इतिहासकार डियो क्रायसोस्टम ने एक मंच पर भाषण में सम्राट ट्रैजन (98-117 ईसवी) के समय दासप्रथा की निंदा करते हुए अपने दो उपदेश (14 और 15) इसी पर समर्पित किये थे। सेनेका द एल्डर (ईसा पूर्व 54 से ईसवी 39) द्वारा लिखित डी क्लेमेंशिया (1:18) में लिखा है कि जो स्वामी दासों के प्रति क्रूर होते थे, उन्हें सार्वजनिक रूप से अपमानित किया जाता था। बाद में सम्राट हैड्रियन (शासन 117-138 ईसवी) न कोरनेलियन एवं पेट्रोनियन विधियों को पुनः लागू कर दिया। सम्राट कैराकैला (शासन 211-217 ईसवी) के दरबार के एक वैरागी अधिवक्ता युल्पियन ने अपने बच्चों को दास के रूप में बेचने को अवैध बना दिया। रोम के अंतिम विख्यात मूर्तिपूजक सम्राट डायोक्लेटियन (शासन 284-305 ईसवी) ने किसी सेठ द्वारा ऋण लिये हुए व्यक्ति को दास बनाने तथा ऋण चुकाने के लिये स्वयं को दास के रूप में बेचने पर प्रतिबंध लगा दिया। कांस्टैंटाइन महान (शासन 306-337 ईसवी) ने दासों के वितरण के समय परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे से पृथक करने पर प्रतिबंध लगा दिया। निश्चित रूप से ईसाई-पूर्व रोमन साम्राज्य में दासों की स्थिति धीरे-धीरे सुधर रही थी।

प्राचीन चीन। प्राचीन चीन में धनी व्यक्ति अपने खेतों और घरों में छोटा काम करने के लिये दास रखते थे। सम्राट के पास सामान्यतः सैकड़ों-हजारों की संख्या में दास होते थे। अधिकांश दास दास-माताओं के कोख से जन्मे होते थे। कुछ ऋण चुका पाने में विफल रहने पर दास बन जाते थे; अन्य दास वो होते थे, जिन्हें आक्रमणों व युद्धों में बंदी बनाया जाता था।

प्राचीन भारत। एक और महान सभ्यता प्राचीन भारत में इसके पुरातन काल से ही दासप्रथा का उल्लेख न के बराबर मिलता है। प्रसिद्ध यूनानी यात्री मेगस्थनीज (ईसा पूर्व 350-290), जो कि यूनान और जिन देशों में वो गये थे वहां प्रचलित दासप्रथा से परिचित थे, को भारत में कहीं दासप्रथा नहीं दिखी थी। उन्होंने लिखा, ''सभी भारतीय स्वतंत्र हैं। उनमें से कोई भी दास नहीं है... यहां तक कि वे विदेशियों को भी दास की स्थिति में नहीं लाते हैं। ऐसे में अपने देश के लोगों को दास बनाने का

---

[678] स्लेवरी, विकीपीडिया; http://en.wikipedia.org/wiki/Slavery

[679] लाल (1994), पृष्ठ 3

प्रश्न ही नहीं उठता है।''[680] इसी प्रकार मुस्लिम इतिहासकारों, जिन्होंने भारत में व्यापक स्तर पर इस्लामी दास-प्रथा का प्रचुर साक्ष्य लिखा है, ने भी इस्लाम-पूर्व के हिंदू समाज में दासप्रथा के किसी घटना का कभी कोई उल्लेख नहीं किया।

बुद्ध (ईसा पूर्व 563-483) ने अपने अनुयायियों से कहा था कि वे दासों को किस परिमाण में कार्य सौंपे कि वे सरलता से कर सकें। उन्होंने अपने अनुयायियों को यह भी परामर्श दिया था कि जब दास अस्वस्थ हो जाएं, तो उनके स्वामी उनकी देखभाल करें। तक्षशिला विश्वविद्यालय में आचार्य कौटिल्य (उपाख्य चाणक्य), जिनके रक्षित चंद्रगुप्त मौर्य ने महान मौर्य वंश (ईसा पूर्व 320-100) की स्थापना की थी, ने अकारण स्वामियों द्वारा किसी दास को दंड देने को प्रतिबंधित किया था; अपराध करने वाले दासों को दंड देने का अधिकार राज्य के पास था। मौर्य वंश के सम्राट अशोक (ईसा पूर्व 273-232) ने अपने शिलालेख 9 में स्वामियों को परामर्श दिया है कि वे दासों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व आदरपूर्वक व्यवहार करें। भारत में दास शासकों के महलों और मंत्रियों व पुरोहितों के भवनों में घरेलू सहायक के रूप में कार्य करते थे। ऐसी संभावना है कि जो ऋण नहीं चुका पाते थे, वो दासता में आ जाते थे।[681]

यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में दासप्रथा का प्रचलन नगण्य था और समकालीन मिस्र, यूनान, चीन और रोम की तुलना में यहां दासों के साथ अधिक मानवीय व्यवहार होता था। भारत में दासों को कभी भी व्यापार की वस्तु नहीं समझा गया; भारत में कोई दास-व्यापार बाजार नहीं था। भारत में मुसलमानों द्वारा दासों के व्यापार की कुप्रथा लाये जाने से पूर्व कभी भी भारत की आर्थिक प्रणाली में दास-व्यापार नहीं रहा।

ईसाई धर्म में दासप्रथा। न्यू टेस्टामेंट में स्पष्ट रूप से दासप्रथा को मान्यता और स्वीकृति दोनों मिली है [मैट 18:25, मार्क 14:66]। उदाहरण के लिये ईसा मसीह ने लोगों को परामर्श दिया कि ऋण न चुका पाने की स्थिति में वे अपने परिजनों सहित स्वयं को बेच दें, जिससे कि ऋण चुका सकें [मैट 18:25]। इसी प्रकार सेंट पॉल की उक्तियां, जैसे कि ईपीएच 6:5-9, सीओर 12:13, जीएएल 3:28 और सीओएल 3:11 आदि में भी दास प्रथा अथवा दास (बंधुआ) और मुक्त व्यक्ति को मान्यता दी गयी है।

न्यू टेस्टामेंट की ये स्वीकृतियां संभवतः ईसाइयों को इस बात के लिये प्रोत्साहित करने के लिये थीं कि वे काफिरों (गैर-ईसाइयों) को दास बनायें। यह स्पष्ट है कि ईसाई-पूर्व रोमन साम्राज्य में धीरे-धीरे दासप्रथा समाप्त हो रही थी; दासों की स्थिति सुधर रही थी। चौथी सदी में सम्राट कांस्टैंटाइन द्वारा ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद जब ईसाइयों को साम्राज्यवादी सत्ता मिली, तो दासप्रथा पुनः लौट आयी। उदाहरण के लिये, ईसाई-समर्थक सम्राट फ्लैवियस ग्रैटिनस (शासन 375-383 ईसवी) ने एक विधान बनाया कि जो दास अपने स्वामी पर किसी अपराध का आरोप लगाता है, उसे जीवित जला दिया जाए। 694 ईसवी में स्पेनिश राजतंत्र ने चर्च के दबाव में लोगों को आदेश दिया कि या तो वे ईसाई धर्म स्वीकार करें या मृत्यु को स्वीकार करें। मध्यकालीन ईसाई समय में चर्च (गिरिजाघर) के फादरों और पोपों ने धार्मिक आधार देते हुए दासप्रथा को न्यायोचित ठहराया। यूरोप में

---

[680] इबिद, पृष्ठ 5

[681] इबिद, पृष्ठ 4

संस्थाओं के विरोध उठ रहे स्वर के बाद भी वे दास-व्यापार का समर्थन करते रहे। बरट्रैंड रसेल ने लिखा है, 'जैसा कि सबको विदित है, जब तक चर्च की धमकी चली, उन्होंने दासप्रथा के उन्मूलन का विरोध किया।'[682]

भारत में मुसलमानों द्वारा दास बनाना

मुस्लिम हमलावर और शासक जहां भी गये, वहां व्यापक स्तर पर काफिरों को दास बनाने के काम में संलिप्त रहेः चाहे यूरोप या अफ्रीका हो अथवा एशिया। यहां समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा मध्यकालीन भारत में मुसलमानों द्वारा दास बनाने की घटनाओं का कुछ विवरण दिया जाएगा। अफ्रीका, यूरोप और एशिया के अन्य स्थानों पर इस्लामी दासप्रथा के बारे में भी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

मुहम्मद बिन कासिम द्वाराः भारत की सीमाओं पर इस्लाम का हमला मुहम्मद की मृत्यु के मात्र चार वर्ष पश्चात 636 ईसवी में खलीफा उमर के समय थाना में हमला और लूटपाट के साथ आरंभ हुआ। उसके बाद के खलीफाओं उस्मान, अली और मुआविया के नेतृत्व में लूटपाट के ऐसे आठ और अभियान चले। मुस्लिम हमलावरों के इन आरंभिक हमलों में हत्या और लूटमार के अतिरिक्त कभी-कभी उन्हें लूट का माल और दास मिल जाते थे, किंतु वे भारत में इस्लाम को जमाने में विफल रहे। खलीफा अल-वलीद के संरक्षण में हज्जाज बिन युसुफ ने उबैदुल्लाह और बुज़ैल की अगुवाई में सिंध पर हमला करने के लिये दो हमलावर दल भेजे। जिहादियों के ये दोनों अभियान न केवल विफल हुए, अपितु उन्हें भारी क्षति उठानी पड़ी। उबैदुल्लाह और बुज़ैल दोनों मारे गये। इससे हज्जाज अत्यंत दुखी हुआ और उसने अपने भतीजे और दामाद कासिम को 6,000 जिहादियों के साथ भेजा।

712 ईसवी में कासिम ने देबल को रौंद डाला और हिंदुस्थान में इस्लाम का पांव जमाने का मजबूत आधार तैयार कर दिया। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अल-बिलाज़ुरी ने लिखा है, 'हमले में देबल ध्वस्त हो गया और तीन दिनों तक नरसंहार चलता रहा... मंदिरों के पुजारियों की सामूहिक हत्याएं की गयीं।'[683] उसने 17 वर्ष से ऊपर के सभी पुरुषों की हत्या कर दी और स्त्रियों व बच्चों को बंदी बना लिया। देबल में बंदी बनाये गये लोगों की संख्या अंकित नहीं है; किंतु चचनामा में लिखा है कि बंदी बनायी गयी स्त्रियों में वो 700 सुंदर महिलाएं भी थीं, जो मंदिरों में छिपी थीं। लूट के माल और दास बनाये लोगों का पांचवां हिस्सा खलीफा के भाग के रूप में हज्जाज भेजा था और इसमें बंदी बनायी गयी 75 नवयौवना स्त्रियां भी थीं। शेष भाग को जिहादियों में बांट दिया गया था।[684]

चचनामा में लिखा है, रावड़ के हमले में 'जब बंदियों की संख्या गिनी गयी, तो पाया गया कि यह संख्या तीस हजार है। उनमें मुखियाओं की बेटियां भी थीं और उनमें राजा दाहिर की बहन की एक बेटी भी थी।' बंदियों और लूट के माल का पांचवां

---

[682] रसेल बी (1957), व्हाई आई एम नॉट ए क्रिश्चियन, सिमोन एंड साउस्टर, न्यूयार्क, पृष्ठ 26

[683] इलियट एंड डाउसन, अंक 1, पृष्ठ 119-20; शर्मा पृष्ठ 95

[684] लाल (1994), पृष्ठ 17

भाग हज्जाज के पास भेजा गया।[685] चचनामा में लिखा है, जब ब्राह्मणाबाद पर मुसलमानों ने कब्जा किया, तो वहां के 8000 से 26000 पुरुषों की हत्याएं की गयीं, 'बंदी बनाये गये लोगों में पांचवां भाग पृथक करके किनारे रख दिया गया; इस पांचवें भाग में लगभग बीस हजार बंदी थे। शेष बंदियों को जिहादियों में बांट दिया गया।'[686] इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस हमले में लगभग 100,000 स्त्रियों व बच्चों को दास बनाया गया था।

खलीफा के भाग के रूप में जाने वाले एक खेप में 30,000 स्त्रियां और बच्चों के साथ ही राजा दाहिर का सिर था। बंदी बनाये गये लोगों में सिंध के राजपरिवार की कुछ कन्याएं भी थीं। हज्जाज ने लूट के माल और दासों के कारवां को दमाकस में खलीफा अल-वलीद के पास भेज दिया। चचनामा में लिखा है, 'जब तत्कालीन खलीफा ने वह पत्र पढ़ा, तो उसने अल्लाह का गुणगान किया। उसने उन मुखियाओं की बेटियों में से कुछ को बेच दिया और कुछ को अपने पास पुरस्कार स्वरूप रख लिया। जब उसने राजा दाहिर की बहन की बेटियों को देखा, तो उनकी सुंदरता व आकर्षण देखकर इतना मोहित हो गया कि अचंभे में अपनी उंगलियां दांतों से काटने लगा।'[687]

अल-बिलाज़ुरी ने लिखा है, मुल्तान के हमले में जो लोग बंदी बनाये गये थे, उनमें छह हजार की संख्या में मंदिर के कर्मी भी थे।'[688] इस संख्या से अनुमान लग सकता है कि मुल्तान में बंदी बनायी गयी स्त्रियों और बच्चों की संख्या क्या रही होगी। कासिम ने ऐसे ही हमले सेहवान और धालीला में भी किये। सिंध में तीन वर्ष के अल्प समय (712-15 ईसवी) में उसके अपेक्षाकृत छोटे कारनामे में ही कुल मिलाकर तीन लाख स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर ले जाया गया।

715 से 1000 ईसवी की अवधि में: 715 में कासिम के वापस जाने के बाद नरसंहार और दास बनाने का मुसलमानों का अभियान कुछ-कुछ मंद पड़ गया, परंतु रह-रह कर कुछ हमले अभी भी होते रहे। उमैय्यद खलीफा उमर (717-20) के शासन के समय उसके दाहिने हाथ अम्रू बिन मुस्लिम ने हिंदू भूभागों पर कई जिहादी हमले किये और उन्हें पराजित किया; इससे उसे निस्संदेह दास मिले। खलीफा हशाम बिन अब्दुल मलिक (शासन 724-43 ईसवी) में सिंध के फौजी मुखिया जुनैद बिन अब्दुर्रहमान अनेक सफल अभियानों में लगा रहा। किराज पर हमले में वह महल में घुस गया, लोगों की हत्याएं करता रहा, लूटपाट करता रहा और बंदी बनाता रहा।' उज्जैन और ब्राह्मणबाद के हमले में उसने नगरों को जला डाला और बड़े परिमाण में माल लूटा।[689] लूट के माल में बंदी भी थे।

---

[685] इलियट एंड डाउसन, अंक 1, पृष्ठ 173

[686] इबिद, पृष्ठ 181

[687] शर्मा, पृष्ठ 95-96

[688] इलियट एंड डाउसन, अंक 1, पृष्ठ 122-23, 203

[689] इबिद, पृष्ठ 125-26

750 में जब रुढ़िवादी अब्बासी राजवंश की स्थापना हुई, तो इसके बाद खलीफा अल-मंसूर (शासन 755-74 ईसवी) ने हशाम बिन अम्र को हिंदू क्षेत्रों में जिहाद करने के लिये भेजा। उसने 'कश्मीर को पराजित किया और बहुत लोगों बंदी बनाया, दास बनाया... ।[690] उसने कंधार और कश्मीर के मध्य अनेक स्थानों पर हमला किया और उसकी प्रत्येक जीत में उसे बंदी मिले, जिसे अंकित नहीं किया गया है।

महान मुस्लिम इतिहासकार इब्न असीर ने कामिल-उत तवारीख में लिखा है कि खलीफा अल-महदी के शासन के समय अब्दुल मलिक ने 775 में भारत के विरुद्ध समुद्री जिहाद की अगुवाई की थी। वे बरादा के तट पर उतरे और आसपास के लोगों से निरंतर जंग करते रहे, जिसमें मुस्लिम फौज भारी पड़ी। असीर ने लिखा है, 'कुछ लोगों को जला दिया गया, शेष लोगों की हत्या कर दी गयी और अपने मजहब के लिये 20 मुसलमान कुर्बान हुए।[691] बंदी बनाये गये लोगों की संख्या नहीं अंकित है।

खलीफा अल-मैमुन के शासन (शासन 813-33) के समय कमांडर अफीफ बिन ईसा ने विद्रोही हिंदुओं के विरुद्ध अभियान की अगुवाई की। उनको पराजित करके नरसंहार करने के बाद उसने बचे हुए 27,000 पुरुषों, स्त्रियों व बच्चों को दास बना लिया।[692] अगले खलीफा अल-मुतासिम के सिंध के अमीर अमरान बिन मूसा ने हमला किया और मुल्तान और कंदाबिल को पराजित किया। वह वहां के निवासियों को बंदी बनाकर ले गया।[693] लगभग 870 ईसवी में याक़ूब लैस अर्रुखज (अराक्रोसिया) पर हमला किया और वहां के नागरिकों को बंधक बनाकर इस्लाम स्वीकार करने को बाध्य किया।[694]

ग़ज़नवी हमलावरों द्वारा: कासिम की लूटपाट व नरसंहार के लगभग तीन सदी पश्चात सुल्तान महमूद ने उत्तर भारत पर सत्रह बार (1000-27 ईसवी) विनाशकारी हमला किया और सामूहिक हत्या, लूटपाट, मंदिरों का विध्वंस करते हुए स्थानीय लोगों को बंदी बनाकर बलपूर्वक मुसलमान बनाया।[695] अल-उत्बी ने लिखा है, 'वर्ष 1001-02 में जब उसने राजा जयपाल पर हमला किया, तो अल्लाह ने अपने इस प्रिय को पांच लाख दासों, पुरुषों व स्त्रियों सहित इतना लूट का माल दिया कि जिसे न तो तौला जा सकता था और न गिना जा सकता था।' बंदी बनाये गये लोगों में राजा जयपाल, उनके बच्चे, पोते-पोतियां, भतीजे और उनकी जाति के मुखिया लोग व उनके संबंधी भी थे। वह उन सबको बेचने के लिये गजनी ले गया।

---

[690] इबिद, पृष्ठ 127

[691] इबिद, अंक 2, पृष्ठ 246

[692] इबिद, पृष्ठ 247-48

[693] इबिद, अंक 1, पृष्ठ 128

[694] इबिद, अंक 2, पृष्ठ 419

[695] इबिद, पृष्ठ 25-26

अल-उत्बी ने लिखा है, 1014 ईसवी में निंदुना (पंजाब) पर हमले में इतने लोग पकड़कर दास बनाये गये कि दासों का मूल्य घट गया; वहां के प्रतिष्ठित लोगों को गजनी ले जाकर सामान्य दुकानों में दास बनाकर रखा गया।' फरिश्ता में कहा गया है कि अगले वर्ष थानेसर (हरियाणा) पर हमले में मुस्लिम फौज 200,000 स्थानीय लोगों को बंदी बनाकर गजनी ले गयी और स्थिति ऐसी हो गयी थी कि इतनी बड़ी संख्या में भारत से पकड़कर लाये गये लोगों की उपस्थिति के कारण वह कोई भारतीय नगर लगने लगा था; फौज के प्रत्येक जिहादी के पास कई दास और लौंडिया (सेक्स-स्लेव) हो गयीं। 1019 ईसवी में भारत पर हमले से उसे 53,000 बंदी मिले। भारत पर उसके सत्रह बार के हमले में कश्मीर ऐसा था, जहां वह पूर्णतः विफल रहा था। प्रत्येक सफल अभियान उसने जमकर लूटपाट की, लूट के माल में सामान्यतः दास भी होते थे, यद्यपि इनके परिमाण व संख्या के विषय में व्यवस्थित ढंग से लिखा नहीं गया है। लूट के माल में से खलीफा का पांचवां भाग पृथक रख दिया गया। तारीख-ए-अल्फी में लिखा है कि खलीफा को भेजे जाने वाले इस लूट के माल में 150,000 दास भी थे।[696] इसका तात्पर्य यह हुआ कि सुल्तान महमूद ने न्यूनतम 750,000 लोगों को बंदी बनाया था।

महमूद (मृत्यु 1030) ने उस पंजाब में इस्लामी सल्तनत की स्थापना के लिये नींव खोदने का काम किया था, जहां गजनी वंश ने 1186 तक शासन किया। 1033 ईसवी में उसके अल्प-ज्ञात बेटे सुल्तान मसूद प्रथम ने कश्मीर से सुरसुती के दुर्ग पर हमला किया। वहां की स्त्रियों और बच्चों को छोड़कर सभी सैनिकों की हत्या कर दी गयी और उनकी स्त्रियों व बच्चों को उठा ले जाया गया।'[697] सन् (ईसवी)1037 में सुल्तान मसूद जब अस्वस्थ हो गया, तो उसने कसम खायी कि यदि वह ठीक हो गया, तो हांसी (हरियाणा) के विरुद्ध जिहाद छेड़ेगा। ठीक होने के बाद उसने हमला करके हांसी नगर पर नियंत्रण कर लिया। अब्दुल फजल बैहाकी के अनुसार, 'ब्राह्मणों ओर अन्य प्रतिष्ठित जाति के पुरुषों की हत्या कर दी गयी और उनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर उठा ले जाया गया।'[698]

अपेक्षाकृत दुर्बल गजनी सुल्तान इब्राहीम ने 1079 में पंजाब के जनपदों पर हमला किया। तारीख-ए-अल्फी और तबाकत-ए-अकबरी में लिखा है कि कई सप्ताह तक भयानक संघर्ष चला और दोनों पक्षों के बहुत लोग मारे गये। अंततः उसकी फौज जीती और बहुत सारा धन व 100,000 बंदी अपने साथ गजनी ले गया।[699]

गोरी हमलावरों द्वाराः अफगानी सुल्तान मुहम्मद गोरी ने भारत पर इस्लामी हमलों की तीसरी लहर बारहवीं सदी के अंत में प्रारंभ की और अंततः दिल्ली में मुस्लिम शासन स्थापित (1206) किया। इब्न असीर ने लिखा है, '1194 ईसवी में बनारस पर हमले में हिंदुओं का भयानक नरसंहार किया गया; स्त्रियों और बच्चों को छोड़कर किसी पुरुष को नहीं छोड़ा गया। हिंदुओं की हत्या करने का

---

[696] लाल (1994), पृष्ठ 19-20

[697] हिस्ट्री ऑफ पंजाबः गजनवाइड डायनेस्टी, http://www.punjabonline.com/servlet/library.history?Action=Page&Param=13

[698] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 135, 139-40

[699] 699. इबिद, अंक पांच, पृष्ठ 559-60; लाल (1994), पृष्ठ 23

काम तब तक चलता रहा, जब कि धरती शवों से पट नहीं गयी।'[700] उनकी स्त्रियां व बच्चे किसी प्रकार दास बनने से बचे। हसन निजामी ने लिखा है, उसके विख्यात जनरल कुतुबदीन ऐबक ने 1195 ईसवी में गुजरात के राजा भीम पर हमला करके 20,000 लोगों को बंदी बनाया;[701] 1202 ईसवी में कलिंजर पर उसके हमले में पांच हजार लोग बंदी बनाये गये और धरती हिंदुओं के शवों से पट गयी।'[702] 1206 ईसवी में मुहम्मद गोरी अवज्ञाकारी खोखर विद्रोहियों के उन्मूलन के लिये आगे बढ़ा। खोखर विद्रोहियों ने मुल्तान के क्षेत्र को अपने प्रभाव में ले लिया था। उन विद्रोहियों का ऐसा नरसंहार किया गया कि उनमें से कोई दीया जलाने वाला नहीं बचा। निजामी ने आगे लिखा है, 'असंख्य हथियार व दास विजेताओं के नियंत्रण में आ गये।[703] फख्र-ए-मुदब्बिर में सुल्तान गोरी और ऐबक द्वारा पकड़कर दास बनाये गये लोगों के बारे में कहा गया है कि 'यहां तक कि दरिद्र मुसलमान भी अनेक दासों के स्वामी हो गये थे।'[704] फरिश्ता के अनुसार, 'तीन से चार हजार खोखरों को तलवार की नोंक पर मुसलमान बनाया गया।'[705] ये धर्मांतरण अधिकांशतः दास बनाकर हुए।

1206 ईसवी में भारत का प्रथम सुल्तान होने के बाद ऐबक ने हांसी, मेरठ, दिल्ली, रणथंभौर और कोल को जीत लिया। अपने शासन (1206-10) में ऐबक ने दिल्ली से गुजरात, लखनौती और लाहौर तक के क्षेत्रों पर अधिकार करते हुए अनेक हमले किये। उसकी प्रत्येक जीत में स्थानीय लोग दास बनाये गये, किंतु उनकी संख्या अंकित नहीं है। ऐबक द्वारा जंगों में पकड़े गये लोगों की औसत संख्या का अनुमान इब्न असीर के इस कथन लगाया जा सकता है कि 'उसने हिंद के प्रांतों के विरुद्ध जंग की.... उसने बहुतों को मारा और बंदियों व लूट के माल के साथ लौटा।'[706]

इसी प्रकार बख्तियार खिलजी ने पूर्वी भारत के बंगाल और बिहार में नरसंहार करते हुए, स्थानीय लोगों को बंदी बनाते हुए बहुत सी जीत प्राप्त की। यद्यपि बख्तियार द्वारा बंदी बनाये गये लोगों की संख्या कहीं अंकित नहीं है। बख्तियार के बारे में इब्न असीर ने कहा, 'साहसी और कर्मठ बख्तियार ने मुंगेर और बिहार पर हमले किये, वहां से लूट का बहुत माल लाया और प्रचुर संख्या

---

[700] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 251

[701] फरिश्ता, अंक 1, पृष्ठ 111

[702] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 232, एवं लाल (1994) पृष्ठ 42

[703] इलियट एंड डाउसन, अंक 2 पृष्ठ 234-35

[704] लाल (1994), पृष्ठ 44

[705] इबिद, पृष्ठ 44

[706] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 251

में घोड़े, हथियार और लोग (अर्थात दास) पाया।[707] इब्न असीर ने लिखा है, '1205 ईसवी में बंगाल के लक्ष्मणसेन पर बख्तियार के हमले में उनकी सभी पत्नियां, पुरुष सेवक, सहायक और स्त्रियां हमलावरों के हाथ लग गयीं।'[708]

जब ऐबक दिल्ली में रहने लगा, तो दासों को दूसरे देशों में नहीं ले जाया गया। जैसा कि गजनी से आकर हमला करने वाले सुल्तान महमूद और मुहम्मद गोरी के पहले के हमलों में होता था कि दासों को गजनी उठा ले जाया जाता था। इसके बाद बंदियों को शाही दरबार की विभिन्न गतिविधियों और जनरलों, दरबारियों व फौजियों की सेवा में लगा दिया गया। जो दास अधिक हो गये थे, उन्हें भारत के इतिहास में पहली बार किसी बाजार में बेचा गया।

सुल्तान इल्तुमिश से लेकर बलबन के समय (1210-1285 ईसवी): आगे सुल्तान इल्तुमिश (शासन 1210-36) अपने शासन के आरंभिक वर्षों में तुर्क विरोधियों के दमन में ही जूझता रहा। वह चंगेज खान के हमले की आशंका से भी भयभीत था। 1226 ईसवी में उसने रणथंभौर पर हमला किया। मिन्हाज सिराज ने लिखा है कि ' बड़ी मात्रा में लूट का माल उसके अनुयायियों के हाथ लगा';[709] लूट के इस माल में निश्चित रूप से दास भी थे। सिराज और फरिश्ता के अनुसार, 1234-35 में उज्जैन पर हमले के समय उसने अवज्ञाकारियों की स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाया।[710]

इल्तुमिश की मृत्यु के बाद कुछ समय तक दास बनाने की प्रथा थम सी गयी, क्योंकि उन सुल्तानों की ताकत घट गयी थी। फरिश्ता में लिखा है, 1244 ईसवी में उलुग़ खान बलबन के आदेश पर सुल्तान नसीरुद्दीन ने मुल्तान में जुड़ पहाड़ी के गुक्कर विद्रोहियों पर हमला किया और सभी आयु और सभी लिंगों के लोगों को बंदी बनाकर ले गया।'[711] सिराज में लिखा है, उलुग़ खान बलबन ने 1248 में कर्रा पर हमला किया; वहां के महान राणाओं (हिंदू राजकुमारों) के आश्रितों और अन्य नागरिक इतनी बड़ी संख्या में बंदी बनाये गये थे कि उनकी गणना करना कठिन है।' राणा दलाकी वा मलाकी पर हमले में वह उनकी पत्नियों, बेटों और आश्रितों को बंदी बनाकर ले गया और बहुत अधिक परिमाण में लूट का माल ले गया।'[712] सिराज में लिखा है, '1252 ईसवी में

---

[707] इबिद, पृष्ठ 306

[708] इबिद, पृष्ठ 308-09

[709] इबिद, पृष्ठ 325

[710] लाल (1994), पृष्ठ 44-45

[711] फरिश्ता, अंक प्रथम, पृष्ठ 130

[712] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 348; फरिश्ता, अंक प्रथम, पृष्ठ 131

बलबन ने मालवा के महान राणा जहिर देव पर हमला करके उनको पराजित किया और उसके हाथ बहुत से लोग पड़ गये, जिन्हें उसने बंदी बनाया।'[713]

1253 ईसवी में रणथंभौर पर हमले में बलबन ने बहुत से लोगों को दास बनाया, जबकि 1259 ईसवी में हरियाणा पर हमले में उसने बहुत सी स्त्रियों और बच्चों को पकड़कर दास बाया। बलबन ने कम्पिल, पटियाली और भोजनपुर पर हमला करके इन स्थानों से बड़ी संख्या में स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाया। फरिश्ता में लिखा है, कटेहर में उसने आठ वर्ष से ऊपर के सभी पुरुषों की सामूहिक हत्या करके स्त्रियों और बच्चों को पकड़ लिया। 1260 ईसवी में बलबन ने रणथंभौर, मेवात और शिवालिक पर हमला किया और यह घोषणा कर दी की कि काफिर को जीवित बंदी बनाकर लाने वाले को दो चांदी की तन्खा दी जाएंगी और काफिर को मारकर उसका सिर लाने वाले को एक तन्खा पुरस्कार दिया जाएगा। फरिश्ता के अनुसार, शीघ्र ही उसके सामने तीन से चार सौ जीवित व्यक्ति और कटे हुए सिर प्रस्तुत किये गये। सुल्तान नसीरुद्दीन (मृत्यु 1266) के अधीन कार्यरत बलबन ने काफिरों पर अनेक हमले किये, किंतु उसके द्वारा बंदी बनाये गये लोगों की संख्या का कहीं उल्लेख नहीं है। यद्यपि इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि पकड़कर दास बनाये गये लोगों की संख्या इतनी अधिक थी कि सुल्तान नसीरुद्दीन ने खुरासान में रह रही अपनी बहन को देने के लिये लेखक मिन्हाज सिराज को उनमें से चालीस बंदी उपहार स्वरूप दिये थे।[714]

बलबन 1265 में सुल्तान बना और गयासुद्दीन बलबन की उपाधि धारण की। पिछले सुल्तानों के कमांडर के रूप में बलबन ने बड़ी फौजी ताकत दिखायी थी और काफिरों के विरुद्ध अनेक अभियानों का नेतृत्व किया था। सुल्तान बनने के बाद उसका पहला लक्ष्य निरंकुश हिंदू विद्रोही मेवातियों आदि का उन्मूलन करना था। उसने हिंदू विद्रोहियों के गांवों को नष्ट करने, पुरुषों की हत्या करने और **स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर लाने** का आदेश दिया।'[715]

खिलजी वंश के समयः खिलजी वंश (1290-1320) और तुगलक वंश (1320-1413) के समय भारत में मुस्लिम शासन की पकड़ विस्तृत फौज और क्षेत्र के साथ सुदृढ़ हो गयी। अफीफ ने लिखा है, सुल्तान की ताकत इतनी बढ़ गयी कि कोई चूं तक करने का साहस नहीं कर पाता था। अनेक हिंदू विद्रोहियों का दमन करने के अतिरिक्त काफिरों के अधिकार वाले क्षेत्रों में बहुत से हमले किये गये, जिससे कि उन्हें मुस्लिम नियंत्रण में लाया जा सके। दासों सहित बड़ी मात्रा में माल लूटे गये, किंतु इनका धूमिल आंकड़ा दिया गया है और संभवतः ऐसा इसलिये हुआ कि ऐसे हमले, हत्याएं व लूटपाट अब सामान्य हो गये थे। यद्यपि समकालीन इतिहासकारों द्वारा दिये गये साक्ष्यों को देखकर दास बनाये गये लोगों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। खिलजी वंश के संस्थापक जलालुद्दीन खिलजी (शासन 1290-96) ने हिंदू विद्रोहों को कुचलने के लिये कई निर्मम अभियान चलाये और अपने सल्तनत की सीमाओं का विस्तार किया। उसने कटेहर, रणथंभौर, झैन, मालवा और ग्वालियर में हमले किये। अमीर खुसरो ने

---

[713] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 351

[714] लाल (1994), पृष्ठ 46-48

[715] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 105

लिखा है, रणथंभौर और झैन के अभियान में उसने मंदिरों को तोड़ा, लूटा और ''जन्नत को नर्क'' बनाते हुए लोगो को बंदी बनाये। खुसरो ने आगे लिखा है, मालवा के अभियान में उसे बड़ी संख्या में दास सहित बड़ी मात्रा में लूट का माल मिला, जो वह दिल्ली ले आया।[716]

अगले सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (शासन 1296-1316) ने दास बनाने में सभी पूर्ववर्ती सुल्तानों को पीछे छोड़ दिया। उसने 1299 में गुजरात पर हमला करने के लिये बड़ा अभियान छेड़ा और वहां के लगभग सभी बड़े नगरों नाहरवाला, असावल, वनमंथली, सूरत, कैम्बे और सोमनाथ को तहस-नहस कर दिया। मुस्लिम इतिहासकार ईसामी और बर्नी के विवरण के अनुसार, उसे वहां से बड़ी मात्रा में लूट का माल मिला और बड़ी संख्या में स्त्री व पुरुष दोनों ही बंदी बनाये गये। वसाफ ने लिखा है, 'सोमनाथ के ही विध्वंस व लूटपाट से मुस्लिम फौज ने बड़ी संख्या में सुंदर लड़कों और सुंदरी कुंवारी लड़कियों को बंदी बनाया था; बंदी बनाये गये लोगों की संख्या 20,000 के आसपास थी और इसमें लड़के और लड़कियां भी थे।' 1301 ईसवी में रणथंभौर पर हमला हुआ और 1303 में चित्तौड़ पर हमला हुआ। चित्तौड़ के हमले में 30,000 लोगों की हत्याएं कर दी गयीं और इस्लामी आदर्श चलन के रूप में उनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बना लिया गया। यद्यपि अनेक राजपूत नारियों ने जौहर कर लिया था।

1305 से 1311 के बीच मालवा, सेवाणा, जालौर के अभियान में बड़ी संख्या में लोगों को पकड़कर दास बनाया गया। सुल्तान अलाउद्दीन ने राजस्थान के अभियान में स्वयं लोगों को बंदी बनाकर दास बनाया। उसके शासन में लोगों को पकड़कर दास बनाना बच्चों का खेल हो गया था। जैसा कि अमीर खुसरो लिखता है, 'तुर्क जब चाहें, किसी हिंदू को पकड़ सकते हैं, खरीद सकते हैं या बेच सकते हैं।' अफीफ और बर्नी ने क्रमश: लिखा है, उसमें दास बनाने की सनक इतनी थी कि उसकी व्यक्तिगत सेवा में 50,000 दास लड़के थे और 70,000 दास उसके भवनों में काम करते थे।' बर्नी ने लिखा है, 'अलाउद्दीन के शासन के समय दिल्ली के दास-बाजार में नये दासों की खेप निरंतर पहुंच रही थी।'[717]

तुगलक वंश के समय: 1320 ईसवी में तुगलक ने सत्ता पर कब्जा किया। मुहम्मद शाह तुगलक (शासन 1325-51), जिसे भारत के मुस्लिम शासकों में सर्वाधिक विद्वान माना जाता है, सल्तनत काल (1206-1526) का सबसे ताकतवर शासक था। जनता को पकड़कर दास बनाने का उसकी कुख्यात सनक इतनी बढ़ गयी थी कि उसने इस क्षेत्र में अलाउद्दीन खिलजी को भी पीछे छोड़ दिया। उसके द्वारा पकड़कर दास बनाये जाने के विषय में शिहाबुद्दीन अहमद अब्बास ने लिखा कि 'सुल्तान कभी भी काफिरों के विरुद्ध जंग छेड़ने के अपने उत्साह को मंद नहीं पड़ने देता है... उसके द्वारा बंदी बनाये जाने वाले लोगों की संख्या इतनी अधिक होती है कि प्रतिदिन अत्यंत कम मूल्य पर हजारों की संख्या में दास बेचे जाते हैं।' अपने कुख्यात शासन में उसने विद्रोहों को दबाने और दक्षिण भारत एवं बंगाल के दूरवर्ती क्षेत्रों को अपने अधिकार में लाने के लिये अनेकों अभियान छेड़े। इन अभियानों से अधिकांशतः लूट का बड़ा माल मिलता था और इस माल में बड़ी संख्या में बंदी बनाये गये लोग भी होते थे। दास बना लिये गये

---

[716] लाल (1994), पृष्ठ 48

[717] इबिद, पृष्ठ 49-51

बंदियों की संख्या इतनी अधिक होती थी कि जब यात्री इब्न बतूता दिल्ली पहुंचा, तो सुल्तान ने दस महिला-बंदियों को उसके पास उपहार स्वरूप भेज दिया।[718] सुल्तान ने चीन के सम्राट के पास बतूता की अगुवाई में उपहारों से लदे कारवां के साथ कूटनयिक मिशन पर भेजा। चीन सम्राट को भेजे गये उस उपहार में सौ गोरी यौन-दासियां, सौ हिंदू नर्तकियां व गायिकाएं भी थीं... ।'[719] सुल्तान इल्तुमिश व फिरोज शाह तुगलक (मृत्यु 1388) के समय खलीफाओं और दूसरे देश के शासकों को उपहार के रूप में दासों को देना सामान्य चलन बन गया था। इब्नबतूता ने बताया है कि सुल्तान वर्षभर दास एकत्र करता रहता था और दो बड़े इस्लामी त्यौहारों ईद पर मुसलमानों से उनकी शादी करा देता था।[720] ऐसा करने का स्पष्ट उद्देश्य यह था कि भारत में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ायी जाए।

अगला सुल्तान फिरोज शाह (शासन 1351-88) काफिरों के प्रति उदार हृदय था। वह ऐसा पहला मुस्लिम शासक था, जिसने मुसलमानों का विरोध झेलकर भी अपनी फौज में गैर-मुसलमानों को आने की अनुमति दी। उसके शासन में भी काफिरों को दास बनाने की कुप्रथा पूरे प्रभाव में चलती रही। अफीफ लिखता है, उसने अपने शाही दरबार में कम आयु के 180,000 लड़कों को रखा था।[721] वह अपने पूर्ववर्तियों के जैसे ही पूरे वर्ष हजारों की संख्या में पुरुषों व स्त्रियों को पकड़कर दास बनाता रहता था और ईद के अवसर पर उनकी शादी करा देता था। अफीफ के अनुसार, फिरोज तुगलक के शासन में दासों की संख्या बहुत अधिक हो गयी और दासप्रथा ने देश के प्रत्येक केंद्र में गहरी जड़ें जमा लीं।' अफीफी ने लिखा है, इसके पश्चात शीघ्र ही यह सल्तनत टूटकर कई स्वतंत्र राज्यों में परिवर्तित हो गया, किंतु देश के प्रत्येक केंद्र में काफिरों को दास बनाने की प्रथा पूर्ववत् चलती रही।[722]

अमीर तैमूर का हमलाः मध्य एशिया के अमीर तैमूर ने गाजी बनने या शहीद बनने की इच्छा लिये भारत के विरुद्ध (1398-99) जिहाद छेड़ा और जब वह दिल्ली पहुंचा, तो वह 100,000 लोगों को बंदी बना चुका था। दिल्ली पर जब उसने हमला किया, तो जो मिला उसे मार डाला। हमला करने के बाद जब वह अपनी राजधानी वापस लौटने लगा, तो दिल्ली में चारों ओर बर्बर नरसंहार, विध्वंस, लूटमार और बंदी बनाये गये लोगों की चीख-पुकार की त्रासदी पसरी थी। उसने अपने संस्मरण मलफुज़ात-ए-तैमूरी में स्वयं ही यह लिखा है।[723]

---

[718] इबिद, पृष्ठ 51

[719] गिब, पृष्ठ 214

[720] लाल (1994), पृष्ठ 517-52

[721] इलियट एंड डाउसन, 3, पृष्ठ 297

[722] इबिद, पृष्ठ 53

[723] इलियट एंड डाउसन, अंक 3, पृष्ठ 436-71; बोस्टन, पृष्ठ 648-50

16 दिसम्बर 1938 को दिल्ली पर किये हमले के विषय में तैमूर ने लिखा है, '15,000 तुर्क लोगों को काट रहे थे, लूट रहे थे, सबकुछ विध्वंस कर रहे थे... इतना लूट का माल मिला कि प्रत्येक व्यक्ति को पचास से सौ बंदी-पुरुष, स्त्रियां और बच्चे मिले। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसके अंश में बीस से कम बंदी आये हों।' यदि प्रत्येक जिहादी ने औसत रूप से 60 बंदी लिये थे, तो कुल दासों की संख्या लगभग 1000,000 (10 लाख) होती है।[724]

तैमूर ने आगे लिखा है, 'जब मैं मध्य एशिया स्थित अपनी राजधानी वापस लौट रहा था, तो अपने कमांडरों को आदेश दिया कि मार्ग में जो भी दुर्ग, नगर और गांव मिलें, उन्हें मिटा दो और सभी काफिरों को तलवार से काट डालो... मेरे बहादुर साथियों ने ऐसा ही किया और उनमें से बहुत काफिरों की हत्याएं कीं, उनकी पत्नियों व बच्चों को बंदी बना लिया।' कुटीला पहुंचने के बाद उसने काफिरों पर हमला किया; 'अल्प प्रतिरोध के बाद शत्रु भाग खड़ा हुआ, किंतु उनमें से कई हमारे फौजियों की तलवारों से बच न सके। उन काफिरों की पत्नियों और बच्चों को बंदी बना लिया गया।'

आगे बढ़ते हुए जब वह गंगा के तट पर पहुंचा, उस समय गंगा-स्नान का पर्व चल रहा था। उसके फौजियों ने वहां काफिरों को काट डाला और जो पहाड़ियों की ओर भागे थे, उनका पीछा किया।' तैमूर ने लिखा है, 'मेरे विजेता फौजियों के हाथ लूट का इतना माल लगा कि जिसकी गणना से परे है...।' स्पष्ट है कि लूट के इस माल में दास भी थे।

तैमूर लिखता है, जब वह शिवालिक पहुंचा, तो वहां के काफिर उसे देखते ही हतोत्साहित हो गये और भाग खड़े हुए। पवित्र जिहादियों ने उनका पीछा किया और उन्हें मारकर शवों का ढेर लगा दिया... गणना से परे लूट का माल मिला; 'उस घाटी की सभी हिंदू स्त्रियों और बच्चों को बंदी बना लिया गया।'

तैमूर के हमले का समाचार सुनकर नदी के उस पार राजा रतन सेन ने त्रिसरिता (कांगड़ा) के दुर्ग पर अपनी सेना को नियुक्त कर दिया। तैमूर लिखता है, 'जब दुर्ग पर हमला हुआ, तो हिंदू बिखर गये और भागने लगे। मेरे विजेता फौजियों ने उनका पीछा किया' और उनमें गिने-चुने ही बचकर निकल पाये; '...उन्हें लूट का बहुत बड़ा माल मिला, जो इतना था कि गिनती से परे था और प्रत्येक जिहादी को दस से बारह बंदी भी मिले।' इसका अर्थ यह हुआ इस हमले में 200,000 से 300,000 लोगों को बंदी बनाया गया था।

शिवालिक घाटी के दूसरे छोर पर हिंदुस्थान का नागरकोट नाम एक बड़ा व महत्वपूर्ण नगर था। तैमूर ने लिखा, 'इस नगर पर हमले में पवित्र जिहादियों ने शवों का ढेर लगा दिया, लूट के माल का अंबार लग गया और जिहादियों के कब्जे में जो आये उन्हें बंदी बना लिया गया। लड़ाके विजेता बनकर लूट के माल के साथ लौटे।'

दिल्ली से वापस लौटते समय तैमूर ने हिंदू दुर्ग, नगरों और गांवों पर पांच बड़े हमले किये। इसके अतिरिक्त उसने कई छोटे-छोटे हमले भी किये। सभी हमलों में उसने लोगों को पकड़कर बंदी बनाया। कांगड़ा पर किये गये हमले में ही मोटामोटी

[724] बाई मिस्टेक, द नंबर ऑफ प्रिजनर्स कैप्चर्ड बाई तैमूर वाज साइटेड टू बी 10 टाइम्स लेस इन प्रीवियस एडिशंस

200,000 से 300,000 लोग बंदी बनाये गये। यदि अन्य हमलों में इतनी ही संख्या में दास बनाये गये थे, तो वापस जाने तक उसने निश्चित ही 10 से 15 लाख लोगों को दास बनाया होगा। दिल्ली में बंदी बनाये गये लोगों की संख्या जोड़ ली जाए, तो वह भारत से लगभग 20-25 लाख लोगों को दास बनाकर अपने साथ ले गया होगा। दिल्ली में उसने हजारों की संख्या में मिस्त्रियों और शिल्पियों को पकड़ा था और उन्हें अपनी राजधानी ले गया।[725]

सैयद और लोदी वंश के समय (1400-1525): तैमूर के हमले के बाद की अवधि के जंगों में कितने लोगों को दास बनाया गया, इसका ठीक-ठीक आंकड़ा नहीं रखा गया है; बस विभिन्न अभिलेखों में मोटा-मोटी संदर्भ मिलता है।[726] दिल्ली के शासन को तहस-नहस करने के बाद तैमूर वापस चला गया। इसके बाद तुगलकों और उनके बाद आये सैयदों ने अपनी सत्ता को संगठित करते हुए कई अभियान छेड़े। इनमें से बहुत से अभियानों में बड़ी संख्या में दास मिले। जैसा कि फरिश्ता में लिखा है कि सुल्तान सैयद मुबारक (शासन 1431-35) के शासन में मुस्लिम फौज ने कटेहर को लूटा और अनेक राठौड़ राजपूतों को बंदी बनाया (1422), 1423 ईसवी में मालवा के बहुत लोगों को दास बनाया, 1425 में अलवर में आत्मसमर्पण किये हुए मेवातियों को बंदी बनाकर ले गये तथा हुलकंट के राजा की प्रजा को (ग्वालियर में, 1430 में) बंदी व दास बनाकर ले जाया गया।[727]

1430 ईसवी काबुल के अमीर शेख अली ने पंजाब में सरहिंद व लाहौर पर हमला किया। फरिश्ता में लिखा है, 'लाहौर में मारे गये हिंदुओं की संख्या गिनती हुई, तो यह संख्या 40,000 निकली। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में लोग बंदी बनाकर ले जाए गये थे'; तुलुंबा (मुल्तान) में उसकी फौज ने लूटपाट की और शस्त्र रखने योग्य सभी पुरुषों की हत्या कर दी... तथा वहां के नागरिकों की पत्नियों व बच्चों को बंधक बनाकर ले जाया गया।'[728]

सैयदों के पदचिह्नों पर चलते हुए लोदी वंश (1451-1526) के शासकों ने सल्तनत का प्रभुत्व पुनः स्थापित किया और पहले के जैसे ही दास बनाने की कुरीति चलाते रहे। इस वंश का संस्थापक सुल्तान बहलोल 'लुटेरा बन चुका था और लूटपाट से प्राप्त अकूत धन से उसने एक मजबूत फौज गठित कर ली थी।' नीमसार (उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद में) पर हमले में, 'उसने इतने लोगों की हत्या की और बंदी बनाकर ले गया कि पूरा क्षेत्र निर्जन हो गया था।' उसके उत्तराधिकारी सिकंदर लोदी ने रीवा और ग्वालियर के क्षेत्र में ऐसा ही भयानक दृश्य उत्पन्न किया।[729]

---

[725] लाल (1994), पृष्ठ 86

[726] इबिद, पृष्ठ 70-71

[727] फरिश्ता, अंक 1, पृष्ठ 299-303

[728] इबिद, पृष्ठ 303, 306

[729] लाल (1994), पृष्ठ 86

मुगल शासन के समय (1526...) : 1526 ईसवी में सिकंदर लोदी को पराजित करने के बाद जहीरुद्दीन शाह बाबर, जो कि तैमूर का वंशज था, ने भारत में मुगलिया सल्तनत की स्थापना की। अपने आत्मकथात्मक संस्मरण बाबरनामा में उसने हिंदुओं के विरुद्ध अभियान को जिहाद के रूप में वर्णन करते हुए उसके पक्ष में कुरआन की आयतें और संदर्भ दिये हैं। बाबर के शासन में दास बनाने का आंकड़ा व्यवस्थित ढंग से नहीं दिया गया है। यद्यपि, आज के पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम प्रांत के तत्कालीन क्षेत्र बाजौर के छोटे से हिंदू राज्य पर अपने हमले पर बाबर ने लिखा है: 'उन सबका सामूहिक नरसंहार किया गया और उनकी पत्नियों व बच्चों को बंधक बना लिया। एक अनुमान के अनुसार 3000 से अधिक पुरुषों का नरसंहार किया गया... [मैंने] आदेश दिया कि उठान वाली भूमि पर सिरों के ढेर से मीनार बनायी जाए।'[730] इसी प्रकार उसने आगरा में हत् हिंदुओं के सिरों के ढेर से स्तंभ खड़ा किया। 1528 में उसने कन्नौज पर हमला किया और शत्रु को पराजित किया तथा 'उनके परिवारों और अनुयायियों को बंदी बना लिया।'[731] इन दृष्टांतों से पता चलता है कि बाबर के जिहाद अभियानों में स्त्रियों और बच्चों को पकड़कर दास बनाना प्रमुख नीति थी। बाबरनामा में यह भी लिखा है कि उस समय हिंदुस्तान और खुरासान के बीच काबुल और कंधहार में दो बड़े व्यापारिक-बाजार थे, जहां भारत से दास व अन्य वस्तुएं लाकर बड़े लाभ पर बेचा जाता था।

बाबर की मृत्यु (1530) के बाद का काल उसके बेटे हुमायूं और एक अफगान शेरशाह सूरी के बीच शत्रुता के कारण उठापटक का रहा। 1562 ईसवी में बाबर के प्रपौत्र और इस्लाम से विचलित बादशाह अकबर ने जंगों में स्त्रियों व बच्चों को बड़े स्तर पर दास बनाने को प्रतिबंधित कर दिया।[732] मोरलैंड ने लिखा है, 'अकबर के शासन में यह फैशन बन गया था कि कभी भी किसी गांव या गांवों के समूह पर अकारण हमला कर दिया जाए और वहां के निवासियों को दास (बारदा) बनाकर ले आया जाए'; इस कारण अकबर दास बनाने पर प्रतिबंध लगाने की ओर बढ़ा।[733] यद्यपि गहरे जमी यह कुप्रथा कदाचित ही कभी बंद हुई। प्रतिबंध के बाद भी अकबर के जनरल और प्रांतीय शासक स्वयं ही लूटपाट करने निकल जाते थे और गैर-मुसलमानों को पकड़कर दास बनाते थे। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि अल्प समय के लिये अकबर के जनरल रहा अब्दुल्ला खान उज्बेक 50,000 पुरुषों और स्त्रियों को दास बनाने और बेच डालने का दंभ भरा करता था। यहां तक कि स्वयं अकबर ने भी अपने पूर्व के आदेश को धता बताकर चित्तौड़ (1568) में मारे गये राजपूतों की स्त्रियों को पकड़कर दास बनाने का आदेश दिया था, यद्यपि उन राजपूत स्त्रियों ने जौहर करके अपने प्राण दे दिये थे। मोरलैंड लिखते हैं, 'अकबर के शासन के सामान्य समय में बच्चे चुराये जाते थे, उनका अपहरण होता था और उन्हें बेचा भी जाता था; बंगाल में यह कुप्रथा सबसे घृणित रूप (दास बनाये गये बच्चों का लिंग

---

[730] बाबर जेएस (1975) बाबरनामा, अनुवाद एएस बेवरिज, सैंगी-मील पब्लिकेशन, लाहौर, पृष्ठ 370-71

[731] फरिश्ता, अंक 2, पृष्ठ 38-39

[732] निजामी, पृष्ठ 106

[733] मोरलैंड, पृष्ठ 92

काट दिया जाना) में चलन में थी।[734] इससे अकबर 1576 में दोबारा दासप्रथा पर प्रतिबंध लगाने की घोषणा करने को बाध्य हुआ। डेल्ला वेले ने आंखों देखी स्थिति बतायी है, 'सेवक और दास इतने अधिक और सस्ते हो गये थे कि प्रत्येक व्यक्ति, यहां कि वो भी जो औसत भाग्य वाले थे, बड़ा परिवार रखता था और उनकी बहुत अच्छे ढंग से सेवा होती थी।''[735] इन दृष्टांतों से स्पष्ट अनुमान लगता कि तथाकथित प्रबुद्ध अकबर के शासन में दास बनाने की कुप्रथा कितने व्यापक स्तर पर चल रही थी।

दासप्रथा निस्संदेह अकबर के उत्तराधिकारियों जहांगीर (1605-27) और शाहजहां (1605-27) के समय दास बनाने का कुकृत्य और भी भयानक ढंग से होने लगा और इन दोनों के शासन में कट्टरता व इस्लामीकरण धीरे-धीरे पुनः पनप गयी। बादशाह जहांगीर ने अपने संस्मरण में बंगाल के निरीह अभिभावकों द्वारा अपने दमनकारी करों के बोझ की विवशता में अपने बच्चों को हिजड़ा बनाकर (लिंग कटवाकर) दास के रूप में गर्वनरों (अमीरों) को देने की पुष्टि की है। उसने आगे कहा है, यह कुकृत्य सामान्य चलन में था।' अनेक साक्ष्यों के अनुसार, जहांगीर के एक वजीर सैद खान चगताई के पास ही 1200 हिजड़े गुलाम (दास) थे।[736] जहांगीर ने 1619-20 के दो वर्षों में ही लगभग 200,000 भारतीय बंदियों को बेचने के लिये ईरान भेजा था।[737]

अगले बादशाह शाहजहां के समय हिंदू काश्तकारों (किसानों) की स्थिति असहनीय कष्ट से भर गयी। यूरोपीय यात्री मैनरिक ने मुगल शासन की आंखों देखी स्थिति लिखी है कि कर-संग्राहक कर उगाहने के लिये दरिद्र हो चुके किसानों को उनकी पत्नियों व बच्चों के साथ बंदी बनाकर उन्हें बेचने के लिये विभिन्न बाजारों व मेलों में ले जा रहे थे। फ्रांसीसी चिकित्सक व यात्री फ्रैंकोइस बर्नियर, जिन्होंने भारत में 12 वर्ष बिताये और बादशाह औरंगजेब के निजी चिकित्सक थे, ने भी ऐसी ही स्थिति की पुष्टि की है। उन्होंने उन अभागे काश्तकारों के बारे में लिखा, जो कर चुका पाने में असमर्थ थे, 'उनके बच्चों को दास बनाकर ले जाया गया।[738]' औरंगजेब के शासन (1658-1707), जिसे हिंदुओं के लिये सर्वाधिक विनाशकारी माना जाता है, के शासन में गोलकुंडा (हैदराबाद) में केवल एक वर्ष 1659 में 20,000 बच्चों-किशोरों को बलपूर्वक हिजड़ा बनाया गया था।[739] इन बच्चों-किशोरों को मुस्लिम शासकों और गर्वनरों (अमीरों) को दिया गया या दास-बाजार में बेचा गया।

ईरान के नादिर शाह ने 1738-39 में भारत पर हमला किया। भयानक नरसंहार और विनाश करने के बाद उसने बड़ी संख्या में लोगों को पकड़कर दास बनाया और लूट के बड़े माल के साथ-साथ उन्हें भी अपने साथ ले गया। अफगानिस्तान के

---

[734] इबिद, पृष्ठ 92-93

[735] इबिद, पृष्ठ 88-89

[736] लाल (1994), पृष्ठ 116-117

[737] लेवी (2002), पृष्ठ 283-84

[738] लाल (1994), पृष्ठ 58-59

[739] लाल (1994), पृष्ठ 117

अहमदशाह अब्दाली ने आठवीं सदी के मध्यम में भारत पर तीन बार हमला किया। पानीपत के तृतीय युद्ध (1761) में उसकी जीत के समय वीरगति प्राप्त हुए मराठा सैनिकों की 22,000 स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास बनाकर उठा ले गया था।[740] जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, अंतिम स्वतंत्र मुस्लिम शासक टीपू सुल्तान ने त्रावणकोर में 7,000 लोगों को बलपूर्वक दास बनाया था। वे सब के सब ले जाए गये और बलपूर्वक मुसलमान बना दिये गये।[741] भारत में काफिरों को पकड़कर दास बनाने की कुप्रथा तब तक चलती रही, जब तक मुसलमान प्रभुत्व के साथ शासन करते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में जब ब्रिटिश व्यापारी दल ने सत्ता पर पकड़ सुदृढ़ की, तो धीरे-धीरे अंततः भारत से दासप्रथा समाप्त हुई। यहां तक कि विभाजन (1947) के समय मुसलमानों ने हजारों हिंदू व सिख स्त्रियों का अपहरण कर मुसलमानों से उनकी बलपूर्वक शादी कराईः यह दास बनाने की सदियों पूरानी वही कुप्रथा थी। नवंबर 1947 में मुस्लिम पठान हमलावर कश्मीर से हिंदू व सिख लड़कियों को उठाकर ले गये और झेलम (पाकिस्तान) के बाजारों में बेचा।[742]

इन मुस्लिम हमलावरों और शासकों द्वारा मुख्यतः उत्तर भारत में दास बनाने के अपराधों का विवरण है। दास बनाने का अपराध गुजरात, मालवा, जौनपुर, खानदेश, बंगाल और दक्षिण के दूरवर्ती क्षेत्रों में भी हो रहा था, जो या तो दिल्ली के नियंत्रण से बाहर थे अथवा स्वतंत्र मुस्लिम सल्तनत थे। उन क्षेत्रों में दास बनाये गये लोगों की संख्या को प्रायः ठीक से अंकित नहीं किया जाता था।

अन्य स्थानों पर मुसलमानों का दास बनाने का अपराध

मुस्लिम हमलावर और शासक प्रत्येक स्थान पर अपने हमलों और जंगों में बड़ी संख्या में लोगों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाते थे। मुहम्मद ने गैर-मुस्लिमों को थोक के भाव बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाकर बेचने, घरों में नौकर बनाने और लौंडी (रखैल) बनाकर रखने का जो कुप्रथा शुरू की थी, वह उसकी मृत्यु के बाद बढ़ती गयी। जैसे-जैसे मुस्लिम सत्ता का विस्तार होता गया, मुहम्मद के पक्के मोमिन खलीफाओं (632-60), उमय्यद सुल्तानों (661-750) और अब्बासी सुल्तानों (751-1250) के माध्यम से यह उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

जब खलीफा उमर के निर्देश पर मुस्लिम जनरल अम्र ने 643 में त्रिपोली जीता, तो वह यहूदियों व ईसाइयों, दोनों की स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर उठा ले गया। नौवीं सदी के इतिहासकार खलिफ अल-बहुतुरी ने लिखा है, खलीफा उस्मान ने 652 में नूबिया (सूडान) से एक समझौता किया। इस समझौते में यह प्रावधान किया गया कि नूबिया का शासक खलीफा के लिये

---

[740] इबिद, पृष्ठ 155

[741] हसन एम (1971) द हिस्ट्री ऑफ टीपू सुल्तान, आकार बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ 362-63

[742] तालिब, एसजीएस (1991), मुस्लिम लीग अटैक ऑन सिख्स एंड हिंदूज इन द पंजाब 1947, वॉयस ऑफ इंडिया, न्यूडेल्ही, पृष्ठ 201

प्रतिवर्ष 360 दास और इजिप्ट के अमीर के लिये प्रतिवर्ष 40 दास भेजेगा। यह 1276 तक चलता रहा।[743] इसी प्रकार का समझौता उमय्यद व अब्बासी सुल्तानों के समय भी ट्रांसोक्सेनिया, सिजिस्तान, आर्मेनिया और फेज़ान (आधुनिक उत्तरपश्चिम अफ्रीका)। इन नगरों के लिये प्रतिवर्ष निर्धारित संख्या में स्त्री व पुरुष दोनों लिंगों के दासों को भेजना अनिवार्य था।[744] उमय्यद शासन के समय स्थानीय जनजाति के विद्रोहियों के दमन और इस्लाम के प्रसार के लिये प्रसिद्ध यमनी जनरल मूसा बिन नुसैर को उत्तरी अफ्रीका (इफ्रिकिया, 698-712) का अमीर (गवर्नर) बनाया गया। मूसा ने विद्रोह को दबाया और 300,000 काफिरों को बंदी बनाया। इनमें से खलीफा का पांचवां भाग अर्थात 60,000 बंदियों को दास के रूप में बेच दिया गया और इससे जो धन मिला, उसे खलीफा के खजाने में जमा करा दिया गया। मूसा ने बंदी बनाये गये लोगों में 30,000 लोगों को फौजी सेवा में लगा लिया।[745]

स्पेन में अपने चार वर्ष (711-15) के अभियान में सूसा ने अकेले गोथिक कुलीन परिवारों से ही 30,000 कुंवारी लड़कियों को बंदी बनाया।[746] इसमें बंदी बनायी गयी उन स्त्रियों की संख्या सम्मिलित नहीं है, जो अन्य पृष्ठभूमि वाले परिवारों से आती थीं और इसमें बंदी बनाये बच्चों की संख्या भी सम्मिलित नहीं है। 781 ईसवी में इफेसस को तहस-नहस करने के समय 7,000 यूनानियों को बंदी बनाकर उठा ले जाया गया। 838 ईसवी में एम्रोरियम पर कब्जे में इतनी बड़ी संख्या में लोग दास बनाये गये कि खलीफा अल-मुतासिम ने उन्हें पांच-पांच और दस-दस की खेप में नीलाम करने का आदेश दिया था। 903 ईसवी में थेस्सालोनिया पर हमले में बंदी बनाये 22,000 ईसाइयों को या तो अरब के मुखिया लोगों में बांट दिया गया या दास बाजार में बेच दिया गया। 1064 ईसवी में जब सुल्तान एल्प अर्सलान ने जार्जिया और आर्मेनिया में विध्वंस किया, तो बड़ा नरसंहार किया गया और जो बच गये, उन्हें दास बना लिया गया। स्पेन के अलमोहाद खलीफा याकूब अल-मंसूर ने 1189 में लिस्बन पर हमला किया और लगभग 3000 स्त्रियों व बच्चों को दास बनाकर लाया। कोरडोबा में उसके अमीर ने 1191 में सिल्वेस पर हमला किया और 3,000 ईसाइयों को बंदी बनाया।[747]

1187 ईसवी में ईसाइयों से येरूलम छीनने के बाद सुल्तान सलादीन ने पूरी ईसाई जनता को दास बनाया और उन्हें बेचा। 1268 ईसवी में एंटिओक पर कब्जे में मामलूक सुल्तान अल-जहीर बेबार्स (शासन 1260-77) ने वहां के 16,000 रक्षकों की

---

[743] वैंटिनी जी (1981) क्रिश्चियनिटी इन द सूडान, ईएमआई, बोलंगा, पृष्ठ 65-67

[744] इब्न वराक, पृष्ठ 231

[745] उमय्यद कांक्वेस्ट ऑफ नॉर्थ अफ्रीका, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Umayyad_conquest_of_North_Africa

[746] लाल (1999), पृष्ठ 103; हित्ती (1961), पृष्ठ 229-30

[747] बॉडमैन जेडब्ल्यू (1986) रैंसमिंग कैप्टिव्स इन क्रूसैडर स्पेनः द आर्डर ऑफ मर्सीड ऑन द क्रिश्चियन-इस्लामिक फ्रंटियर, यूनीवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया प्रेस, फिलाडेल्फिया, पृष्ठ 2-3

हत्या करने के बाद 100,000 लोगों को दास बनाया गया। हित्ती ने लिखा है, 'दास बाजार दासों से ऐसा पट गया था कि एक लड़के का मोल मात्र 12 दिरहम और एक लड़की का मोल मात्र पांच दिरहम लगता था।[748]

यह उल्लेख पहले ही किया गया है कि दक्षिणपूर्व एशिया में मुसलमानों द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के बाद उन्होंने दासप्रथा को इतना अधिक बढ़ावा दिया था कि जब इसके लगभग एक शताब्दी पश्चात पुर्तगाली वहां पहुंचे, तो पाया कि वहां की लगभग पूरी जनसंख्या ही किसी न किसी की दास है और उन दासों के स्वामियों में प्रमुख रूप से अरब थे। यह ध्यान देने योग्य है कि दक्षिणपूर्व एशिया में मुसलमान शासक जब किसी क्षेत्र पर कब्जा करते थे, तो पूरी की पूरी जनसंख्या को दास बनाकर ले जाते थे। जावा (इंडोनेशिया) में पहाड़ियों पर निवास करने वाले लोग जनसंख्या का बड़ा भाग थे, किंतु मुस्लिम शासकों ने हमला करके अथवा खरीद कर उस पहाड़ी जनता के एक-एक व्यक्ति को दास बना दिया था। ऐके का सुल्तान इस्कंदर मुदा (शासन 1607-36) ने जब मलय को जीता, तो वहां से अपने साथ हजारों की संख्या दास लेकर आया। 1500 ईसवी के आसपास जावा दासों का निर्यात करने वाला सबसे बड़ा निर्यातक था; ये वो दास थे, जिन्हें 'इस्लामीकरण के निर्णायक जंगों' में बंदी बनाया गया था।'[749] वैसे तो सुलू सल्तनत पर निरंतर स्पेनियों द्वारा नियंत्रण करने का खतरा बना था, किंतु उसने भी 1665 व 1870 के बीच मोरो जिहाद के माध्यम से स्पेनियों के नियंत्रण वाले फिलीपींस से 23 लाख फिलिपीनियों को दास बनाकर लाया था। 1860 के दशक से 1880 के दशक के अंतिम वर्षों में मलय प्रायद्वीप व इंडोनेशियाई द्वीप-समूह के मुस्लिम शासित क्षेत्रों के दासों में 6 प्रतिशत से लेकर जनसंख्या की 75 प्रतिशत तक की थी।

ऐसा बताया जाता है कि अठाहरवीं सदी के अंतिम उत्तरार्ध में मोरक्को के सुल्तान मौले इस्माइल (शासन 1672-1727) के पास 250,000 अश्वेत दासों की फौज।'[750] 1721 ईसवी में मौले इस्माइल ने आल्टस पहाड़ियों के क्षेत्र में विद्रोहरत स्थानीय लोगों के विरुद्ध अभियान का आदेश दिया। इस पहाड़ी क्षेत्र के लोगों ने सुल्तान को जजिया कर भेजने के विरोध में संकल्प लिया था। विद्रोहियों को पराजित करने के बाद 'सभी पुरुषों की हत्या कर दी गयी और उनकी स्त्रियों व बच्चें को उठाकर राजधानी ले आया गया।' इसके कुछ ही समय पश्चात उसने अपने बेटे मौले आस-शरीफ की अगुवाई में 40,000 जिहादियों की फौज को गुज़लान नगर के विद्रोहियों से निपटने के लिये भेजा। इन विद्रोहियों ने सुल्तान को जजिया भेजना बंद कर दिया था। युद्ध में जीतने की आशा न देखकर उन विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया और दया की भीख मांगी। परंतु मौले आस-शरीफ ने 'सभी पुरुषों की हत्या कर उनके अंग-अंग काट डालने का आदेश दिया।'[751] उनकी स्त्रियों और बच्चों को दास बनाकर ले जाया गया।

---

[748] हित्ती (1961), पृष्ठ 316

[749] रीड (1988), पृष्ठ 133

[750] लेविस बी (1994) रेस एंड स्लेवरी इन द मिडिल ईस्ट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, चैप्टर 8, http://www.fordham.edu/halsall/med/lewis1.html

[751] मिल्टन, पृष्ठ 143, 169-71

आठवीं सदी में गीनिया (अफ्रीका, वर्तमान में 85 प्रतिशत मुसलमान) मुस्लिम शासन के अधीन आ गया। सदी के उत्तरार्द्ध में इस देश के 'उच्च गीनिया तट पर 1,000 से अधिक दासों वाला ''दास नगर'' अस्तित्व में आ चुका था। इस नगर में ये दास एक मुखिया के अधीन थे। 1823 ईसवी में इस्लामी सियरा लिओन की यात्रा करते हुए मेजर लाइंग ने सलीमा सुसु की राजधानी फलाबा में ''दास नगर'' अपनी आंखों से देखा।[752] ये दास उस मुखिया की कृषि परियोजनाओं में काम करते थे। विख्यात सुल्तान सैयद सईद पूर्वी अफ्रीकी साम्राज्य की राजधानी जंजीबार (1806-56) की 'आधारशिला ही दासप्रथा पर रखी गयी थी... यहां से दासों को दक्षिणी अरब और फारस के बाजारों में घरेलू नौकर और लौंडी के रूप में भेजा जाता था।'[753]

रोनाल्ड सैगल, जो इस्लाम से सहानुभूति रखते थे,[754] बताते हैं कि मुस्लिम फौज में सेवा के लिये सैन्य प्रशिक्षण के लिये बड़ी संख्या में दस से 11 वर्ष की आयु-समूह के अफ्रीकी बच्चों को बंदी बनाया गया था। फारस से लेकर इजिप्ट और मोरक्को तक, 50,000 से 2,50,000 तक की संख्या वाली दास-फौजों का होना सामान्य बात थी।[755] उस्मानिया जनीसरी फौजों में भर्ती के लिये सुल्तान मौले इस्माइल अश्वेत-दासों की उत्पत्ति वाले फार्मों व नर्सरियों से 10 वर्ष के बालकों को उठाकर उनका लिंग काटकर हिजड़ा बना देता था और इसके बाद उन्हें बुखारी नामक विश्वस्त व भयानक लड़ाके बनाने के लिये प्रशिक्षित करता था, क्योंकि वे लोग सही बुखारी की सौगंध खाकर सुल्तान के प्रति निष्ठा की शपथ लेते थे। इस बुखारी के सर्वश्रेष्ठ लड़ाकों को सुल्तान के व्यक्तिगत व महल के रक्षकों के रूप में नियुक्त किया जाता था; शेष को प्रांतों में व्यवस्था के रखरखाव में लगाया जाता था। उसके पास मेकंस स्थित राजधानी की सुरक्षा में 25,000 बुखारी थे, जबकि 75,000 बुखारी महल्ला नगर की छावनी में रखे गये थे।[756]

---

[752] रोडने डब्ल्यू (1972) इन एमए क्लीन एंड जीडब्ल्यू जॉनसन ईडीस., पर्सपेक्टिव ऑन द अफ्रीकन पास्ट, लिटिल ब्राउन कंपनी, बोस्टन, पृष्ठ 158

[753] गैन एल (1972) इन इबिद, पृष्ठ 182

[754] सैगल इस बात पर बल देते हैं कि एंटी-सेमीटिज्म पूर्णतः उस सौहार्दपूर्ण संबंध के विरुद्ध है, जो रसूल मुहम्मद ने यहूदियों और ईसाइयों के साथ स्थापित किया था। वह कहते हैं कि यहूदियों और मुसलमानों के बीच संघर्ष का कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, यद्यपि इन दोनों के बीच संघर्ष तब प्रारंभ हुआ जब धर्मयुद्ध (क्रूसेड) हुआ। किंतु सेगल इस बात की पूर्णतः उपेक्षा कर देते हैं कि मुहम्मद ने स्वयं ही मदीना और खैबर के यहूदियों को मिटाया था, उनको घर-बार से निवार्सित कर दिया था। मुहम्मद जब अपनी मृत्युशैया पर था, तो उसका अंतिम निर्देश यही था कि अरब से यहूदियों और ईसाइयों का सफाया कर दिया जाए। उसने अपने अनुयायियों का आह्वान किया था कि जब तक एक भी यहूदी जीवित रहे, उनकी हत्या करते रहो। [सही मुस्लिम, 41:6985]

[755] सैगल आर (2002) इस्लाम्स ब्लैक स्लेव्स, फर्रार, स्ट्रैअस एंड गिरौक्स, न्यूयार्क, पृष्ठ 55

[756] सैगल, पृष्ठ 56-57

पॉल लवजॉय (ट्रांसफॉर्मेशन इन स्लेवरी, 1983) के अनुमान के अनुसार, उन्नीसवीं सदी में ही लगभग 20 लाख दासों को अफ्रीका और लाल सागर तट से इस्लामी दुनिया में पहुंचाया गया था और इस प्रक्रिया में कम से कम 80 लाख लोग मर गये थे (अर्थात लगभग 80-90 प्रतिशत दास मार्ग में मर गये थे)। अठारहवीं सदी में अनुमानतः 1,300,000 अश्वेत अफ्रीकियों को दास बनाया गया था। लवजॉय का अनुमान है कि उन्नीसवीं सदी तक 1 करोड़ 15 लाख 12 हजार दास अफ्रीका से इस्लामी दुनिया में भेजे गये थे, जबकि रेमंड माउवी के अनुमान (द अफ्रीकन स्लेव ट्रेड फ्रॉम द फिफ्टींथ टू द नाइनटींथ सेंचुरी, यूनेस्को, 1979) के अनुसार यह संख्या 1 करोड़ 40 लाख थी, जिसमें बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दास बनाये गये 300,000 लोग सम्मिलित हैं।[757] मुर्रे गॉर्डोन की पुस्तक स्लेवरी इन द अरब वर्ल्ड में मुस्लिम दास-हमलावरों द्वारा दास बनाये गये अश्वेत लोगों की संख्या 1 करोड़ 10 लाख बतायी गयी है, जो कि यूरोपीय उपनिवेशवादियों द्वारा नये संसार के अपने उपनिवेशों में ले जाए गये लोगों के लगभग बराबर है। अठाहरवीं सदी के अंत में दारफूर से काहिरा के लिये जाने वाले प्रत्येक कारवां में 18,000-20,000 दासों की खेप भेजी जाती थी। 1815 में यूरोप द्वारा दासप्रथा पर प्रतिबंध लगाने और मुस्लिम सरकारों पर इस कुप्रथा को बंद करने का दबाव डालने के बाद भी '1830 ईसवी में जंजीबार के सुल्तान ने प्रति वर्ष 37,000 दासों की देयता का दावा किया; 1872 ईसवी में एक वर्ष में 10,000 से 20,000 दास सुकैन (अफ्रीका) से अरब भेजे गये।'[758]

उस्मानिया (तुर्क) ड्यूशिर्मे

उस्मानिया (तुर्क) सुल्तान ओरखान द्वारा 1930 में शुरू की गयी ड्यूशिर्मे संस्था इस्लामी दासप्राथा की सबसे घृणित प्रथा है। इस योजना में ईसाई व गैर-मुस्लिम परिवारों के सात से आठ वर्ष की आयु के बच्चों को एकत्र किया जाता था। इस नीति के बारे में बर्नार्ड लेविस ने सोलहवीं सदी के तुर्क इतिहासकार सादेद्दीन (उर्फ होका इफेंदी) का उद्धरण देते हुए इस प्रकार बताया हैः

> 'विख्यात सुल्तान.... राज्य के मंत्रियों के साथ परामर्श करने बैठा, परिणाम यह आया, कि आने वाले समय में, विकल्प होना चाहिए, साहसी व उद्यमी युवाओं का, गैर-मुसलमानों के बच्चों में से, सेवा के लिये उपयुक्त, जिन्हें वे उसी प्रकार ढाल सकें, इस्लाम मजहब के माध्यम से; जो उनको धनी और मजहबी बनाने के साधन हों, गैर-मुसलमानों के सुदृढ़ गढ़ को अधीन बनाने का उपाय भी बन सकें।'[759]

इस योजना के अंतर्गत गैर-मुस्लिम बच्चों, मुख्यतः ईसाई बच्चों को उस्मानिया अर्थात तुर्की शासन के अधीन आने वाले यूनान, सर्बिया, बुल्गारिया, जार्जिया, मैक्डोनिया, बोस्निया व हर्जेगोविना, आर्मेनिया और अल्बानिया से उठाया जाए। एक निश्चित तिथि को गैर-मुस्लिम अभिभावकों (अधिकांशतः ईसाई) को अपने बच्चों को एक निर्धारित सार्वजनिक चौराहे पर लाना होता था।

---

[757] मिल्टन, पृष्ठ 157-150

[758] ब्राउडेल, पृष्ठ 131

[759] लेविस (2000), पृष्ठ 109

मुस्लिम भर्ती एजेंट उनमें से स्वस्थ, सबल और सुंदर बच्चों को चुनते थे। जैसा कि स्टीफन ओ'शीआ लिखते हैं कि सुल्तान मेहमेत द्वितीय द्वारा 1453 में कुस्तुंनिया जीत लेने के बाद ड्यूशिर्मे प्रथा और तीव्र हुईः 'जीत के बाद फतीह (विजेता) ने निर्मम ड्यूशिर्मे अथवा 'एकत्रीकरण' प्रथा को और बढ़ाया और इसके अंतर्गत युवा ईसाई बच्चों का अपहरण किया गया और उन्हें राजधानी पहुंचा दिया गया... कुछ-कुछ वर्ष के अंतराल पर फौजियों को साथ लेकर घूम रहे तुर्की भर्ती एजेंट गांवों पर धावा बोल देते थे... और सबसे होनहार बच्चों को उनके साथियों व भाईयों-बहनों से पृथक कर उठा ले जाते थे।'[760] ड्यूशिर्मे प्रथा द्वारा उठाये गये बच्चों की संख्या भिन्न-भिन्न हैः कुछ विद्वान बताते हैं कि यह संख्या प्रति वर्ष 12000 तक थी, जबकि कुछ यह संख्या प्रतिवर्ष 8000 बताते हैं।'[761]

ईसाइयों, यहूदियों और घुमंतू जाति के सर्वश्रेष्ठ बच्चों का खतना किया जाता था और उन्हें मुसलमान बना दिया जाता था। इसके बाद इस अल्प आयु से ही इन बच्चों में जिहाद का विष भरा जाता था। इन बच्चों को जिहादी जंग के लिये ही तैयार किया जाता था और तुर्की फौज की एक विशेष इकाई जैनीसरी रेजीमेंट में रखा जाता था। जैनीसरी रेजीमेंट के लिये तैयार किये गये इन बच्चों को शादी नहीं करने दिया जाता था और बैरक में बंद करके रखा जाता था। इस रेजीमेंट के फौजी का ध्यान केवल काफिरों और उन लोगों के विरुद्ध जिहाद करने पर होता था, जो कभी उनके ही सहधर्मी हुआ करते थे।

यह नीति तुर्की साम्राज्य के लिये वरदान सिद्ध हुई। खलीफा मुआविया (मृत्युः680) के समय से ही मुस्लिम शासक ईसाई धर्म के महानतम केंद्र कुस्तुंतुनिया पर अधिकार करने में बारंबार विफल रहने पर कुंठित रहते थे। कुस्तुंतुनिया पर अधिकार करने के पूर्व के कई प्रयासों में उन्हें प्रायः बड़ी क्षति होती थी। अंततः जैनीसरी फौजियों ने 1453 में कुस्तुंतुनिया पर विनाशकारी हमला किया और इसे रौंदते हुए इस पर विजय प्राप्त कर इस्लाम को सबसे बड़ा उपहार दिया। उस्मानिया साम्राज्य (तुर्क साम्राज्य) के सुल्तान मेहमेत द्वितीय के आदेश पर जैनीसरी फौज तीन दिन तक नगर को लूटती रही और अपने पूर्व के सहधर्मियों (मुख्यतः ईसाई) को काटती रही। जो बच गये, उन्हें पकड़ कर दास बना लिया गया। बाद में जैनीसरी रेजीमेंट में ड्यूशिर्मे के अंतर्गत संग्रहीत बच्चों के साथ-साथ मुसलमानों और अनेक सूफियों की की अंधाधुंध भर्ती फौजियों के रूप में की गयी। इस रेजीमेंट धीरे-धीरे अनुशासन और संकल्प समाप्त हो गया और इसका परिणाम उस्मानिया शासन के क्षरण के रूप में सामने आया।

ड्यूशिर्मे संस्था से इस तथ्य का पता चलता है कि किस प्रकार काफिरों के भूभाग को जीतने के लिये काफिरों के ही बाहुबल का उपयोग कर कर इस्लामी संसार का विस्तार हुआ। ड्यूशिर्मे की उस्मानिया संस्था का अनुसरण करते हुए भारत में फिरोज शाह तुगलक (शासन 1351-88) ने इसी शैली में हिंदू बच्चों को उठाकर उन्हें जिहादी के रूप में तैयार करते हुए भर्ती

---

[760] ओ'शीया, पृष्ठ 279

[761] इब्न वराक, पृष्ठ 231

किया। उसने अपने प्रांतीय अधिकारियों व जनरलों को आदेश दिया कि उसके दरबार में सेवाओं के लिये लोगों को पकड़ कर दास बनायें और युवा व सबसे अच्छे बच्चों को उठायें। इस प्रकार उसने 180,000 कम आयु के बच्चों को दास बनाकर रखा था।[762]

ड्यूशिर्मे की आलोचनाः उस्मानिया साम्राज्य की ड्यूशिर्मे योजना का 1656 में अंत हो गया। इस योजना के लिये जिस प्रकार दास बनाये जाते थे, उसकी कड़ी निंदा की जाती है। यद्यपि सुन्नी शरिया कानून के अनुसार अपने कानून बनाने वाले रुढ़िवादी तुर्क (उस्मानिया) ड्यूशिर्मे को कुरआन व इस्लामी विधियों के आधार पर अच्छा बताते हैं। कुरआन कहती हैः, 'और जान लो कि जो कुछ भी (जंग में लूट का माल) तुम्हें मिलेगा, उसका पांचवां अंश अल्लाह और उसके रसूल का है...।'

काफिरों से जंग में लूटे गये माल का पांचवां भाग अल्लाह और उसके रसूल को आवंटित था और यह पांचवां भाग आरंभ में नवनिर्मित इस्लामी स्टेट के मुखिया व खजांची रसूल मुहम्मद के पास जाता था। उसकी मृत्यु के बाद यह भाग खलीफा के खजाने में जाने लगा। खलीफा उमर द्वारा प्रारंभ कर नीति के अंतर्गत ज़िम्मी जनता से सभी उपज का न्यूनतम पांचवां भाग खरज़ कर के रूप में लिया जाता था, यद्यपि उन्मादी मुस्लिम शासकों द्वारा, अथवा विशेष परिस्थितियों में, इससे कई गुना अधिक लिया जाता था। चूंकि काफिरों के नवजात शिशु भी राज्य की उपज का एक भाग ही माने ते थे, तो इस्लामी मजहबी कानूनों में ड्यूशिर्मे की प्रथा को न्यायोचित ठहराया गया। मुहम्मद ने स्वयं ईसाई बच्चों पर कब्जा करने का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया था, जब उसने तग़लिब ईसाई जनजाति पर अपने बच्चों का बप्तिस्मा करने पर प्रतिबंध लगा दिया था। बाद में खलीफा उमर ने एक और तग़लिब जनजाति को आदेश दिया कि वे अपने बच्चों की बांह या कलाई पर क्रॉस न पहनायें और न ही उन पर धर्म थोपें (अर्थात उनका बप्तिस्मा अर्थात ईसाई दीक्षा संस्कार न करायें)।'[763] परिणामस्वरूप वे बच्चे इस्लाम में प्रविष्ट हो गये। बस इतना अंतर था कि मुहम्मद और खलीफा उमर ने तग़लिब ईसाई समुदाय के सभी बच्चों को उठवा लिया था, जबकि उस्मानिया साम्राज्य ने ड्यूशिर्मे प्रथा के माध्यम से उन बच्चों के एक भाग को उठाया था।

कुरआन की ऐसी स्वीकृति और सुन्नत के आधार पर दीन की राह पर चलने वाले खलीफा उस्मान ने ड्यूशिर्मे की भांति ही एक योजना (652-1276) शुरू की थी, जिसके अंतर्गत न्यूबियन ईसाइयों को प्रतिवर्ष दास काहिरा भेजने पर बाध्य किया गया। उमय्यद और अब्बासी खलीफाओं द्वारा भी ऐसे ही समझौते थोपे गये। इस प्रकार ड्यूशिर्मे कुप्रथा उस्मानिया साम्राज्य अर्थात तुर्कों का अविष्कार नहीं थी। इसके अतिरिक्त एक और बात समझने योग्य है कि मुहम्मद ने लोगों को बलपूर्वक पकड़कर दास बनाने के प्रोटोकॉल के अंतर्गत बनू कुरैज़ा और खैबर आदि के साथ जो किया था, ड्यूशिर्मे की यह कुप्रथा निश्चित ही उससे तो कई गुना मानवीय थी। मुहम्मद ने तो सभी वयस्क पुरुषों की हत्या कर दी थी और उनकी स्त्रियों व बच्चों को बंदी बनाकर दास बना लिया था। मुहम्मद के इस प्रोटोकॉल की स्वीकृति अल्लाह द्वारा दी गयी है [कुरआन, 33:26-27]। सदियों तक चलती रही इस्लामी

---

[762] लाल (1994), पृष्ठ 57-58

[763] अल-बिलाजुरी ए.वाई. (1865) किताब फतह अल-बुल्दान, ईडी. एमजे डी जिओजे, लीडेन, पृष्ठ 181

जीत व शासन में प्रायः मुहम्मद द्वारा दास बनाने के उस प्रोटोकॉल को लागू किया गया, जो कि ड्यूशिर्मे की तुलना में कई गुना क्रूर व बर्बर था।

दासों की स्थिति

इब्न वराक के अनुसारः

> इस्लाम में, जैसा भी हो दासों के पास कोई कानूनी अधिकार नहीं होते हैं, उन्हें केवल ''वस्तु''- अपने स्वामी की संपत्ति माना जाता है और उसका स्वामी जैसे चाहे उसका उपभोग करे- किसी को बेच दे या उपहार के रूप में दे दे। दास अभिभावक होने या अपनी इच्छा से कार्य-निष्पादन करने का अधिकार नहीं रखते और वो जो कुछ भी कमाते हैं, वो उनके स्वामी का है। कोई दास किसी न्यायालय में साक्ष्य नहीं दे सकता है। यहां तक कि यदि कोई गैर-मुस्लिम दास इस्लाम स्वीकार कर ले, तो भी ऐसा नहीं है कि वह स्वतः ही मुक्त हो जाता है। उसके स्वामी पर ऐसी कोई बाध्यता नहीं होती कि वह उसे मुक्त ही करे।[764]

नीचे यह उल्लेख मिलेगा कि शरिया कानून में दासों को साधारण संपत्ति व वस्तु के रूप में रखा गया है और इसमें दासों के लिये वही नियम व नीति है, जो किसी व्यापारिक वस्तु पर लागू होती है। किसी दास को क्रय करने के बाद यदि स्वामी को उसमें कोई कमी मिलती है, तो वह उसे पीट सकता है या इस प्रकार प्रताड़ित कर सकता है कि उस पर कोई घाव या चोट बाहर से न दिखे। फतवा-ए-आलमगीरी के अनुसार, जब तक पिटाई और प्रताड़ना से दास को स्थायी क्षति न हो जाए, स्वामी उसे उसके विक्रेता को लौटाकर पूरा पैसा वापस ले सकता है। 12वीं सदी के हनफी कानूनों के सार-संग्रह हेदायाह से पता चलता है कि 'चोरी के लिये दास का हाथ या अंग काट लेने की सामान्य प्रथा इस्लामी कानूनों द्वारा मान्य है।' यद्यपि इस्लाम दासों के साथ अच्छे व्यवहार की अनुशंसा करता है, किंतु यदि कोई स्वामी अपने दास की हत्या कर दे, तो इसे प्राकृतिक मृत्यु माना जाता है।[765]

काफिरों पर हमले में जीत पर मुस्लिम जिहादी प्रायः शस्त्र धारण करने की आयु के सभी पुरुष बंदियों की हत्या कर देते थे और उनकी स्त्रियों व बच्चों को पकड़कर अपने साथ ले जाते थे। इन स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराया जाता था। बंदियों की हत्या के संबंध में हेदायाह में लिखा है, 'बंदी बनाये गये लोगों के संबंध में ईमाम (शासक) के पास अधिकार है कि वह जिसकी चाहे हत्या कर दे, क्योंकि रसूल मुहम्मद बंदियों की हत्या करते थे और इसलिये भी ऐसा करना उचित है कि क्योंकि हत्या कर दिये जाने से उनकी दुष्टता भी समाप्त हो जाती है।' हेदायाह कहती है, जो स्त्रियां और बच्चे खतरा नहीं हैं, उन्हें सामान्यतः दास बना लिया जाता था, क्योंकि (इस्लाम में धर्मांतरण कराने के लिये) उनको दास बनाकर दुष्टता दूर करने का उपाय किया जाता है; साथ ही साथ मुसलमानों को (उनके श्रम के शोषण और जनसंख्या बढ़ाने के द्वारा) लाभ भी मिलता है... ।[766]

---

[764] वराक, पृष्ठ 203

[765] लाल (1994), पृष्ठ 148

[766] हफ्स टीपी (1998), डिक्शनरी ऑफ इस्लाम, एडम पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, न्यू देल्ही, पृष्ठ 597

बहुत से पश्चिम विद्वानों द्वारा प्रशंसित[767] प्रसिद्ध इस्लामी चिंतक इब्न खलदुन (मृत्यु 1406) ने मजहबी दंभ दिखाते हुए दास प्रथा के व्यवसाय का वर्णन किया हैः 'दारुल-हर्ब (जंग का स्थान) से (बंदी) दारुल-इस्लाम (इस्लाम के घर) में दासप्रथा के उन नियमों के अंतर्गत लाये जाते थे, जो स्वयं को अल्लाह के कानून में आते हैं; दास प्रथा से उपचारित हुए, उन्होंने सच्चे मोमिन की दृढ़ संकल्प के साथ मुस्लिम मजहब में प्रवेश किया...।'[768] जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि 1194 ईसवी में जब बख्तियार खिलजी ने कोल को तहस-नहस किया, तो घिरे हुए स्थानीय लोगों में ''बुद्धिमान और सुंदर'' लोगों को इस्लाम में धर्मांतरित किया गया। हेदायाह में नियम है कि यदि कोई बंदी मुसलमान बन भी जाए, 'तो वह (ईमाम) उसे कानूनी रूप से गुलाम अर्थात दास बना सकता है, क्योंकि दास बनाने का कारण (अर्थात काफिर होना) उसके इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व अस्तित्व में निहित था। यदि कोई काफिर पकड़े जाने अर्थात दास बनाये जाने से पूर्व ही मुसलमान बन गया है, तो उसके साथ दूसरा व्यवहार किया जाएगा...।'[769]

दासों के कष्ट

निस्संदेह, मनुष्य को गूंगे-बहरे घरेलू पशु में रूपांतरित करने से उस मनुष्य की गरिमा, सम्मान व आत्म-सम्मान की क्षति के साथ बड़ी मनोवैज्ञानिक व मानसिक पीड़ा उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त मुसलमान सामान्यतः बंदी बनाये हुए लोगों का उपहास उड़ाने और नीचा दिखाने के लिये उन्हें सार्वजनिक चौराहों पर घुमाते थे। जो लोग प्रतिष्ठित या कुलीन परिवारों के होते थे, उन्हें और अधिक अपमानित करने एवं और अधिक उपहास उड़ाने के लिये औरों से पृथक कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये, जब सुल्तान महमूद बंदी बनाये गये काबुल के हिंदू राजा जयपाल को गजनी लाया और उन्हें घोर यातना व अपमान दिया। दास-बाजार में जहां उन्हें एक साधारण दास के जैसे नीलाम किया गया, 'वहां उन्हें हाथों-पावों में बेड़ियां डालकर, अपमानजनक व तिरस्कृत ढंग से इस प्रकार घुमाया गया कि उनके बेटे और मंत्री आदि अपनी आंखों से उनकी यह स्थिति देखें... राजा को पराधीन बनाये गये लोगों के बीच इस प्रकार लाकर उनका सार्वजनिक अनादर किया गया।''[770] ऐसे घोर अपमान का जीवन जीने की अपेक्षा राजा जयपाल ने मृत्यु का वरण किया और आग में कूदकर आत्मदाह कर लिया।

---

[767] ब्रिटिश इतिहासकार टॉयनबी ने उस (इब्न खलादुन) की कृति मुकद्दिमाह को ''निस्संदेह अपने प्रकार की ऐसी महानतम कृति बतायी है, जिसके जैसी कोई कृति धरती पर कभी कोई रच नहीं सका है। बर्नार्ड लेविस ने अपनी पुस्तक द अरब्स इन हिस्ट्री में उसको ''अरबों में महानतम इतिहासकार और संभवतः मध्यकालीन युग का महानतम ऐतिहासिक चिंतक कहा है।''

[768] लाल (1994), पृष्ठ 41

[769] हफ्स, पृष्ठ 597

[770] लाल (1994), पृष्ठ 22

बाद की अवधि में भी दासों की नियति सभी स्थानों पर ऐसी ही या इससे भी बुरी थी। सुल्तान मौले के शासन के उत्तरार्द्ध में मोरक्को के इस्माइल मौले (मृत्यु 1727) में समुद्र में जो गोरे लोग पकड़े जाते थे, उन्हें बंदी बनाने के बाद बेड़ियों में जकड़ा गया और तट या राजधानी पहुंचने पर पूरे नगर में डुगडुगी बजाकर घुमाया जाता था। बड़ी संख्या स्थानीय लोग उन बंदियों को बुरा-भला कहने, उनका उपहास उड़ाने, सब प्रकार से नीचा दिखाने और शत्रुवत् व्यवहार करने के लिये एकत्र होते थे। एक पोत (जहाज) पर पकड़कर बंदी बनाये गये अंग्रेज व्यक्ति जार्ज इलियट के अनुसार, 'जब उसे तट पर लाया गया, तो उन्हें व उनके चालक दल के सदस्यों को चारों ओर कई सौ निकम्मे व दुष्ट लोग और उद्दंड लड़कों ने घेर लिया। उन उद्दंड लोगों ने उन पर अशोभनीय टिप्पणियां कीं और वो लोग (अंग्रेज व चालक दल के सदस्य) भेंड़ों के झुंड के जैसे कई मार्गों पर बलपूर्वक घुमाये गये।''[771]

दासों को जो सबसे बड़ा शारीरिक कष्ट और दुख सहना पड़ता था, उनमें भूख, प्यास और रोग था। पकड़े जाने के बाद से ही उनका शारीरिक कष्ट व दुख प्रारंभ हो जाता था और गंतव्य तक पहुंचने तक चलता रहता था। प्रायः गंतव्य हजारों मील दूर स्थित कोई ऐसा विदेशी भूमि होता था, जहां उन्हें विषम क्षेत्रों में पशुओं के जैसे एक स्थान पर रखा जाता था। जब तक बंदी बिककर अंतिम स्वामी तक न पहुंच जाएं, उन्हें बेड़ियों में जकड़कर रखा जाता था। कभी-कभी तो एक दास को बीस-बीस बार तक बेचा जाता था।

सुल्तान महमूद द्वारा राजा जयपाल को बंदी बनाये जाने के विवरण में देखा जा सकता है कि किस प्रकार दास को आगे क्या-क्या झेलना पड़ता था। अल-उत्बी के अनुसार, 'उनके (जयपाल के) बच्चे और नाती-पोते, भतीजे-भानजे और उनके कुल के प्रमुख व्यक्तियों, उनके संबंधियों को बंदी बना लिया गया और रस्सी से कसकर बांध दिया गया, उन्हें एक साधारण अपराधी की भांति सुल्तान के समक्ष प्रस्तुत किया गया... कुछ के हाथ पीछे बंधे हुए थे, कुछ के गले पर रस्सी बंधी हुई थी, कुछ को उनके गलों पर वार करते हुए हांका जा रहा था।'[772]

यह समझा जाना चाहिए कि सुल्तान महमूद कभी-कभी कई मास तक भारत में जिहादी अभियान चलाने के लिये रुका रहता था और मार्ग में दसियों हजार लोगों को पकड़कर दास बनाता था। इन बंदियों को एक कष्टप्रद व दुखदायी स्थिति एक साथ बांधकर हजारों मील दूर स्थित उसकी राजधानी गजनी लाया जाता था। इन बंदियों में अधिकांश अबला स्त्रियां व बच्चे होते थे, जिन्हें इस कष्टकारी स्थिति में उबड़-खाबड़ क्षेत्रों व जंगलों में नंगे पांव चलना पड़ता था और कभी-कभी तो इसी स्थिति में इन्हें कई मास तक चलते रहना होता था। जब तैमूर ने भारत पर हमला आरंभ किया, तो यह पांच मास चला (सितंबर 1398 से जनवरी 1399)। दिल्ली पहुंचने से पूर्व मार्ग में उसने लगभग 100,000 लोगों को बंदी बना लिया था; इन बंदियों को मध्य एशिया स्थित उसकी राजधानी समरकंद ले जाया जाना था। दिल्ली से लौटते समय मार्ग में उसने 200,000 या इससे अधिक और लोगों को बंदी बनाया। इन सब बंदियों को वह हजारों मील दूर समरकंद हांककर ले गया।

---

[771] मिल्टन, पृष्ठ 65-66

[772] लाल (1994), पृष्ठ 22

इन उदाहरणों से स्पष्ट पता चलता है कि बंदी बनाये गये लोगों कितनी भयानक शारीरिक क्षति, पीड़ा व कष्ट सहना पड़ता था। शारीरिक दुर्बलता और क्लांति (थकान) के कारण जो लोग चल नहीं पाते थे, उन्हें बुरी प्रकार से पीटा जाता था कि वे चलते रहें। इतनी बड़ी संख्या में बंदियों को मार्ग में पर्याप्त भोजन व जल मिलेगा या नहीं, यह भी सुनिश्चित नहीं होता था। जो अस्वस्थ हो जाते थे, उन्हें कोई चिकित्सीय उपचार नहीं मिलता था। यदि वे चलने में असमर्थ हो जाते थे, तो उन्हें भयानक जंगल में छोड़ दिया जाता था, जहां वे पीड़ा में कराहते रहते थे अथवा किसी जंगली पशु द्वारा मारकर खा लिये जाते थे।

उलूग़ खान बलबन द्वारा जालोर (राजस्थान) के राजा कान्हार देव पर किये गये हमले की आंखों देखी स्थिति में दिये गये चित्रण से बंदियों के दुख को समझा जा सकता है। इसे पंद्रहवीं सदी के भारतीय लेखक प्रबंध द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। लेखक ने बड़ी संख्या में एकसाथ बांधकर एकत्र की गयी स्त्रियों व बच्चों के विषय में बताते हुए लिखा हैः

> ''दिन के समय वे (बालुई राजस्थान के मरुस्थल में) बिना किसी छाया या आश्रय के तपते सूरज की गर्मी को सहते थे और रात के समय खुले आसमान के नीचे ठंड से ठिठुर रहे थे। माताओं की छातियों से छीन लिये गये बच्चे क्रंदन रहे थे। प्रत्येक बंदी दूसरे बंदी के समान ही दुखी प्रतीत हो रहा है। प्यास से पहले ही छटपटा रहे ये लोग भूख से भी व्याकुल हैं। बंदियों में कुछ लोग अस्वस्थ थे, कुछ बैठ पाने तक में असमर्थ थे। कुछ के पास पहनने के लिये जूते या वस्त्र तक नहीं थे...।''

उन्होंने आगे लिखाः

> ''कुछ के पैरों में लोहे के सीकड़ थे। एक-दूसरे से पृथक कर दिये गये ये लोग एक साथ झुंड में चमड़े के पट्टे से बांधे गये थे। इस क्रूर हमले ने बच्चों को उनके माता-पिता से पृथक कर दिया था, पत्नियों को उनके पतियों से दूर कर दिया था। बाल-वृद्ध सब वेदना से कराह रहे थे, जहां उनको पकड़कर रखा गया था, वहां से भयानक विलाप व क्रंदन के स्वर उठ रहे थे। वे लोग आशा कर रहे थे कि कोई चमत्कार उन्हें अब भी बचा लेगा।''[773]

यह तो कष्ट के आरंभिक कुछ दिनों का चित्र है। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि सुल्तान महमूद, मुहम्मद गोरी और अमीर तैमूर की हजारों मील दूर स्थित विदेशी धरती पर स्थित राजधानियों तक पहुंचने के लिये यात्रा करते समय बंदियों को कितनी यातना सहनी पड़ती थी। ऐसी ही स्थिति अफ्रीका के उन अश्वेत दासों की भी थी, जिन्हें मध्यपूर्व के बाजारों तक पहुंचने के लिये ऐसी कष्टप्रद स्थिति में उतनी लंबी दूरी की यात्रा करनी पड़ती थी। बर्बर जल-दस्युओं अर्थात समुद्री डाकुओं द्वारा समुद्र में पकड़ी गये यूरोपीय बंदियों ने जो भयानक कष्ट सहे, उसे देखने से उनके साथ होने वाले भयानक व्यवहार व उनके कष्टों का अनुमान लगाया जा सकता है। जब सुल्तान मौले इस्माइल ने 1687 में एक फ्रांसीसी चैकी टारोडैंट के सुरक्षित नगर पर अधिकार किया और वहां के निवासियों को तलवार की नोंक के नीचे ले लिया, तो सुल्तान के लिये संग्रहीत उपहार के रूप में 120 फ्रांसीसी नागरिकों को पकड़कर दास बनाया गया। जब उन्हें बंदी बना लिया गया, तो उन्हें तलवारों की नोंक से कोंचा गया, डंडों के नोंक से उन पर प्रहार किया गया और उन्हें भुक्खड़ बताकर सप्ताह भर तक भोजन नहीं दिया गया। जब वे भूख से व्याकुल होकर विलाप

[773] इबिद, पृष्ठ 54-55

करने लगे, तो सुल्तान ने आदेश दिया कि मेक्नीज स्थित उसकी राजधानी तक पैदल चलें। दासों में से एक जीन लैडायर ने बाद में फ्रांसीसी पादरी डोमिनीक बुसनट से उस 300 मील की भयानक यात्रा का वर्णन किया था। झुंड में बेड़ियों से जकड़े वो लोग शक्तिहीन करने वाली रुग्णता व क्लांति से जूझ रहे थे; उनमें से कई खड़े-खड़े मर गये। मरे हुए बंदियों के सिर काट लिये गये और जो बचे थे, उन्हें उन कटे हुए सिरों को ढोना पड़ा, क्योंकि पहरेदार सशंकित थे कि भयानक सुल्तान उन पर आरोप लगा देगा कि जो बंदी नहीं मिल रहे, उन्हें उन्होंने बेच दिया अथवा भगा दिया।[774]

पकड़े जाने पर बंदी बनाये गये लोगों को एक कुख्यात भूमिगत कालकोठरी (तहखाने) में बुरी स्थिति में रखा गया था। अफ्रीका में इन कालकोठरियों को मतामोरेस कहते हैं। प्रत्येक मतामोरेस में पंद्रह से 20 बंदियों को रखा गया; इनमें प्रकाश व वायु आने का एकमात्र स्रोत छत पर लगे लोहे की झंझरी (जाली) थी। शीत ऋतु (जाड़े) में झंझरी से बारिश का पानी धरातल (फर्श) पर गिरता था। साप्ताहिक बाजार में इन दासों (बंदियों) की बोली लगायी जाती थी। इन बंदियों को एक लटकती हुई रस्सी के आश्रय से झंझरी से बाहर निकलना पड़ता था। इन्हें इन कालकोठरियों में प्रायः कई सप्ताह बिताने पड़ते थे। बंदी जर्मैन माउटे ने मतामोरेस में रहने की भयानक स्थितियों के विषय में लिखा है कि 'बारिशयुक्त शीत ऋतु में मिट्टी के धरातल से प्रायः जल व गंदा पानी निकलता था।' उन्हें वर्ष के छह माह धरातल (फर्श) पर घुटनों तक जल में रहना पड़ता था और उनका सोना कठिन हो जाता था। सोने के लिये, वे एक के ऊपर खूंटियों में रस्सी लटकाकर एक प्रकार का खटोला बना लेते थे और इनमें जो खटोला सबसे नीचे होता था, वह जल को लगभग स्पर्श करता हुआ होता था। कई बार तो सबसे ऊपर का खटोला टूटकर नीचे गिर जाता था और इससे दूसरे खटोले भी टूटकर जल में पहुंच जाते थे; उन्हें पूरी रात उस ठंडे जल में खड़े होकर काटनी पड़ती थी।

ये कालकोठरियां छोटी और संकरी हुआ करती थीं, जिससे वे एक गोले में पड़े रहने को बाध्य होते थे और उनके पैर गोले के मध्य में होते थे। माउटे ने लिखा है, ''इतना भी स्थान नहीं बचता था कि मिट्टी के पात्र (बर्तन) को अपने से दूर रखकर विश्राम कर सकें। इतने लोगों से भरे हुए वो मतामोरेस आर्द्र गर्मी के दिनों में मैले, दुर्गंधयुक्त और कीड़े-मकोड़ों से भरे हुए होते थे। जब भीतर सभी बंदी होते थे और गर्मी बढ़ती थी, तो वहां रहना असहनीय हो जाता था।'' उन मतामोरेस में रहने वाले लोगों के लिये मृत्यु अधिक सुखकारी होती थी।[775] उत्तरी अफ्रीका में दासों की जीवन की यह स्थिति सदियों तक रही। लगभग एक सदी पूर्व ब्रिटिश बंदी रॉबर्ट एडम्स, जिन्हें 1620 में बंदी बनाया गया था, किसी प्रकार इंग्लैंड में अपने माता-पिता तक एक पत्र पहुंचाने में सफल रहे थे और इस पत्र में उन्होंने सुल्तान मौले ज़ीदान (1603-27) के दास-बाड़े में रहने वालों की स्थिति का वर्णन किया था; यह एक ''भूमिगत कालकोठरी है, जहां हममें से लगभग 150-200 लोग एकसाथ पड़े रहते हैं। हम प्रकाश का आनंद नहीं ले सकते हैं, बस एक छोटे से छिद्र से आ रही किरणों को देख सकते हैं।'' एडमस ने आगे लिखा है कि उसके केशों और विषम वस्त्रों

[774] मिल्टन, पृष्ठ 34

[775] इबिद, पृष्ठ 66-67

में कीड़े-मकोड़े भर गये हैं और स्वयं को उनसे बचाने का समय नहीं दिया जाता... मुझे उन कीड़े-मकोड़ों ने लगभग खा लिया है।''[776]

क्षमता से अधिक संख्या में भरे हुए मतामोरेस में बंद लोगों को बहुत कम भोजन मिलता था, प्रायः उन्हें ''रोटी और जल दे दिया जाता था।'' नीलामी के दिन बाजार ले जाते समय उन्हें जंगली पशुओं की भांति हांका जाता था, कोड़े मारे जाते थे और उन्हें चलने पर विवश किया जाता था। नीलामी हाट (बाजार) में उन्हें एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी तक ले जाने के लिये भीड़ में धकियाया जाता था। उन्हें अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये कुदाया जाता था और छलांग लगवायी जाती थी तथा जो अभागे बंदी कुछ दिनों पहले तक एक सम्माननीय स्वतंत्र मनुष्य हुआ करते थे,[777] उनके लिये अपमानजनक दृश्य उत्पन्न करते हुए उनके कानों और मुंह में उंगलियां डाली जाती थीं।

क्रय करने वाले स्वामी के ठिकाने पर पहुंचने के बाद भी दासों का कष्ट कम नहीं होता था। एक पोत पर पकड़ा गया बीस वर्षीय ब्रिटिश बंदी थॉमस पेलो सुल्तान मौले इस्माइल द्वारा क्रय किया गया था और उसे शाही महल में लाया गया था। मरुस्थल में 120 मील चलकर जब पेलो व उसके साथी राजधानी पहुंचे, तो ताना मारने वाले और वैरी मुसलमानों की भीड़ महल के बाहर उनका उपहास उड़ाने और अपमान करने के लिये एकत्रित थी, क्योंकि मुसलमानों की दृष्टि में ईसाई घृणित होता है। जब वे महल की ओर ले जाए जा रहे थे, तो वह असभ्य भीड़ उन पर चीखी, उपहास की और हमला करने का प्रयास किया। सुल्तान के फौजियों द्वारा सुरक्षा किये जाने के बाद भी भीड़ में से कई उन्हें मुक्का मारने, कोड़े मारने और उनके केश खींचने में सफल रहे।[778]

शाही महल में पेलो ने सैकड़ों यूरोपीय दासों के साथ आरंभ में सुल्तान के विशाल शस्त्रागार में काम किया। वह वहां हथियारों की मरम्मत और हथियारों को चलती स्थिति में रखने के लिये प्रतिदिन 15-15 घंटे तक काम करता था। शीघ्र ही उसे सुल्तान के बेटे राजकुमार मौले इस-सफा को दे दिया गया। पेलो ने लिखा, ''राजकुमार के मन में ईसाई दासों के प्रति अत्यंत अपमान का भाव था। उसने पेलो की पिटाई की और भयानक यातना दी। उससे प्रातः से रात्रि तक उसके घोड़े के पीछे दौड़ते रहने का व्यर्थ कार्य करवाया।'' बाद में जैसी की प्रथा थी, राजकुमार ने यह कहते हुए पेलो पर इस्लाम स्वीकार करने का दबाव बनायाः ''यदि मैं चाहूं, तो मेरे पास सवारी के लिये बहुत अच्छा घोड़ा होगा और मैं उसके प्रतिष्ठित मित्रों के जैसे जीवन जिऊंगा।'' जब पेलो ने दृढ़ता से इस्लाम स्वीकार करने से मना कर दिया और राजकुमार से धर्मांतरण न कराने का अनुरोध किया, तो इससे क्रुद्ध इस-सफा ने कहा, ''तो अपने को उस यातना के लिये तैयार कर लो, जो तुमको दी जाएगी और तुम्हारी हठी प्रकृति इसी की पात्र

[776] इबिद, पृष्ठ 20

[777] इबिद, पृष्ठ 68-69

[778] इबिद, पृष्ठ 71-72

है।'' इसके बाद इस-सफा ने पेलो को कई मास तक एक कक्ष में बंद करके रखा और उसे भयानक यातना दी, ''प्रतिदिन उसके तलवों पर भयानक ढंग से बेंत मारी जाती थी।''[779]

यूरोपीय दासों को दिया जाने वाला इस प्रकार का दंड सामान्य था। बंदियों को रस्सियों से उल्टा लटका दिया जाता था और उनके तलवों पर बेंत मारी जाती थी। फादर बुसनोट के अनुसार, एक बार सुल्तान मौले इस्माइल ने दो दासों के तलवों में 500 बेंत मारने के आदेश दिये, जिससे एक दास के कूल्हे की अस्थि (हड्डी) सरक गयी। दूसरे दिन जब पुनः उस दास के तलवों में बेंत से पिटायी गयी, तो कूल्हे की अस्थि अपने स्थान पर आयी।[780]

पेलो ने लिखा है, ''इस-सफा ''शेहेद, शेहेद! कनमूरा, कनमूरा! अर्थात मुसलमान बन! मुसलमान बन! कहते हुए स्वयं पेलो को पीटता था।'' दिनोंदिन पिटाई बढ़ते जाने से उसके लिये असहनीय हो गया था। उसे कई दिनों तक भोजन नहीं दिया जाता था और जब भोजन दिया भी जाता था, तो केवल सूखी रोटी और जल। पेलो ने लिखाः कई मास तक यातना व भूख सहते-सहते जब इस-सफा पिटाई का दूसरा चक्र शुरू करने आया, तो ''मैं अंततः मन में यह कहते हुए झुक गया कि ईश्वर मुझे क्षमा करना, किसे पता कि कि मेरी अंतरात्मा में जो है, उसे कभी नहीं छोड़ा।[781] दशकों पूर्व जॉन हैरिसन, जिसने मोरक्को तक आठ बार कूटनयिक यात्रा (1610-32) की थी, ने लिखा थाः ''उसने (सुल्तान) ने कुछ अंग्रेज लड़कों को बलपूर्वक मोरेस (मुसलमान) बनाया था।''[782]

इस्लाम में धर्मांतरण के लिये विवश करने हेतु यूरोपीय दासों को यातना देने का प्रकरण केवल पुरुष बंदियों तक ही सीमित नहीं था; यह महिला बंदियों के साथ भी होता था। बार्बरी जल-दस्युओं ने एक बार बार्बाडोस की ओर बढ़ रहे ब्रिटिश जलपोत को लूटा था और चालक दल को बंदी बनाकर मौले इस्माइल के महल में ले आये। उन बंदियों में चार स्त्रियां थीं और उनमें से एक कुंवारी थी। ब्रिटिश बंदी फ्रांसिस ब्रूक्स ने लिखा है, 'इससे सुल्तान प्रसन्न हो गया और उस कुंवारी स्त्री को ईसाई धर्म छोड़कर मूर बन जाने और उसके साथ रहने के लिये लोभ दिया। सुल्तान ने उससे कहा कि यदि वह मूर बन जाएगी और उसके साथ रहेगी, तो उसे बड़ा पुरस्कार मिलेगा। जब उसने ईसाई धर्म छोड़ने से मना कर दिया, तो सुल्तान क्रुद्ध हो गया और उसे अपने हिजड़ों से नंगा कराकर तब कोड़ा मरवाया, जब तक कि वह मरणासन्न होकर गिर नहीं गयी।' ब्रूक्स ने आगे लिखा है, ''इसके बाद उसने आदेश दिया कि उसे वहां से ले जाया जाए और सड़ी हुई रोटी के अतिरिक्त कुछ भी खाने को न दिया जाए। अंततः उस लाचार लड़की के पास अपना शरीर उसे सौंपने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा, यद्यपि उसका हृदय भीतर से ईसाई ही रहा।

---

[779] इबिद, पृष्ठ 79-80

[780] इबिद, पृष्ठ 81

[781] इबिद, पृष्ठ 82

[782] इबिद, पृष्ठ 21

सुल्तान ने उसे स्नान करवाया और वस्त्र पहनवाया... और उसके साथ सोया। वासना पूरी होते ही उसने अमानवीय ढंग से आनन-फानन में अपनी दृष्टि से दूर फिंकवा दिया।''[783]

मोरक्को में ब्रिटिश कांसुल एंथनी हैटफील्ड ने सन्1717 में पकड़कर बंदी बना ली गयी एक आयरिश महिला की व्यथा का वर्णन किया है। उसने धर्मांतरण करने से मना किया, तो उसे असहनीय यातना दी गयी। वह उस कठोर यातना को सह नहीं सकी और अंततः आत्मसमर्पण करते हुए मुसलमान बन गयी और सुल्तान के हरम में चली गयी।[784] 1723 में फादर जॉन डी ला फाये और उनके भाई मौले इस्माइल के महल के फ्रेंच बंदियों को मुक्त कराने की आशा में मोरक्को गये। उन्हों वहां की एक महिला बंदी की व्यथा बतायी है कि उस महिला ने इस्लाम में धर्मांतरण से मना कर दिया, तो उसे इतनी बर्बर यातना दी गयी कि उसकी मृत्यु हो गयी। फादर जीन ने लिखा है, ''अश्वेद (पहरेदारों) ने उसके स्तनों को मोमबत्ती से जला डाला और उन्होंने उसकी देह के उन-उन भागों पर खौलता हुआ सीसा डाल दिया था कि जिन अंगों का नाम लेना भी लज्जाजनक है।''[785]

आइए, पेलो के इस्लाम में धर्मांतरण की घटना को पुनः देखें। उसके मुसलमान बनाने की औपचारिक घोषणा के बाद उसका खतना कराने को लोगों को दिखाने के लिये आसपास के लोगों को एकत्र किया गया। खतना होने के कारण हुए घाव की पीड़ा से वह अभी उबर भी नहीं पाया था कि इस-सफा ने उसे पुनः पीटना प्रारंभ कर दिया, क्योंकि उसने मुस्लिम कपड़े पहनने से मना किया था। अंततः पेलो हार मान गया और मुस्लिम कपड़े पहन लिये। इस-सफा अब भी उसे यातना देता रहा, क्योंकि वह ईसाई रहने की हठ पर अड़ा था। पेलो के धर्मांतरण की सूचना सुल्तान तक पहुंची, तो वह अत्यंत प्रसन्न हुआ और इस-सफा को उसे अपनी निगरानी से मुक्त करके अरबी सीखने के लिये मदरसा भेजने का आदेश दिया। शहजादा इस-सफा सुल्तान के निर्देश को अनदेखा करते हुए उसे यातना देता रहा। इस अवज्ञा से आगबबूला होकर सुल्तान ने इस-सफा को अपने सामने लाने का आदेश दिया और सुल्तान की दया ऐसी रही कि उसके अंगरक्षकों ने क्षणभर में इस-सफा का सिर धड़ से पृथक कर दिया। सुल्तान ने अपनी संतान के साथ यह जो व्यवहार किया था, वह न पहली बार था और अंतिम।[786]

यद्यपि ऐसा भी नहीं है कि सुल्तान अपने बंदियों का अच्छा अभिभावक था। शाही महल में रहने वाले दास भयानक दुर्दशा में जीते थे। वे ऊंची- ऊंची प्राचीरों (बुर्जों) से घिरे परिसर में सैन्य-बंदी के जैसे रखे जाते थे। वैसे वह परिसर बहुत बड़ा था, किंतु तब भी बड़ी संख्या में इसके रहवासियों का जीवन अत्यंत असुविधापूर्ण था। ब्रिटिश बंदी जॉन विल्डन ने शाही महल में रहने वाले दासों के जीवन की स्थिति और उनके साथ होने वाले व्यवहार को विश्व में सबसे बर्बर बताया। उसने लिखा, ''वह और उसके साथ रहने वाले अन्य दासों का प्रयोग घोड़े के रूप में किया जाता था और गाड़ी में रस्सी से जोतकर उनसे गाड़ी खिंचवायी जाती

---

[783] इबिद, पृष्ठ 121

[784] इबिद, पृष्ठ 173

[785] इबिद, पृष्ठ 219

[786] इबिद, पृष्ठ 83-84

थी।'' विल्डन ने आगे लिखा है, 'जब तक उनकी चमड़ी उधड़ नहीं जाती थी, उन्हें कोड़ा मारा जाता था, पीटा जाता था और जब तक हममें खड़े होने की शक्ति रहती थी, कंधे पर लोहे का बड़ा-बड़ा कुंदा डालकर घुटनों तक कांटों के झाल में चलाया जाता था और वहां भूमि इतनी फिसलन भरी होती थी कि उन बोझ के बिना चलना कठिन लगता था।[787]

समुद्र में पकड़े गये ब्रिटिश जलपोत के कैप्टन जॉन स्टॉकर को सुल्तान के महल में लाया गया था। जॉन स्टॉकर ने उस महल में दासों के साथ होने वाले भयानक अत्याचार का विवरण दिया है। उन्होंने इंग्लैंड में रहने वाले अपने एक मित्र को लिखे पत्र में कहा था, 'हमसे 24 घंटे काम कराने के बाद भोजन के नाम पर ब्रेड का एक छोटा सा टुकड़ा और जल दिया जाता है। काल-कोठरियों में दासों के रहने की स्थिति के बारे में उन्होंने लिखा था, ''[मैं], भूमि पर सोता हूं, बिछाने और ओढ़ने के लिये कुछ नहीं होता है, भयानक जूं पड़ गये हैं।'' थॉमस पेलो के चालक दल के सदस्यों को काल-कोठरी में घास की बनी एक पुरानी चटाई दी गयी थी और वे बिना बिछौने के ठंडी भूमि पर सोते थे। पूरा परिसर पिस्सुओं और तिलचट्टों से भरा था। गर्मियों के मध्य में उस काल-कोठरी में भयानक गर्मी पड़ती थी, औंसता था और दूर-दूर तक वायु नहीं होती थी। सिमन ओक्ले ने लिखा है, ''खुले दास-बैरक में ''वे गर्मियों में सूरज की तपते किरणों में झुलसते रहते थे और सदियों में शीत, बर्फ, भयानक बारिश और हांड़ कंपा देने वाली वायु की मार सहते थे।''[788]

काम के बोझ के मारे उन सभी दासों के लिये प्रतिदिन कुलमिलाकर चौदह औंस काला ब्रेड और एक औंस तेल आता था, जो उतने सारे दासों के लिये बहुत कम होता था। बंदी जॉन व्हाइटफील्ड ने लिखा, ''वह ब्रेड दुर्गंध मार रहे जौ की लोई से बनाया जाता था और कभी-कभी तो उससे इतनी भयानक दुर्गंध आने लगती थी कि सहन करना कठिन हो जाता था। इसके अतिरिक्त जब जौ का भंडार समाप्त हो जाता था, तो उन्हें कुछ भी खाने को नहीं मिलता था। विल्डन ने लिखा, ''पिछले आठ दिनों से हमें ब्रेड का एक टुकड़ा तक नहीं मिला है...।''[789]

सबसे भयानक तो वह बोझ व यातना होती थी, जो निगरानी रखने के लिये नियुक्त अश्वेत पहरेदारों द्वारा दासों को दी जाती थी। दासों को हांकने वाले ये पहरेदार उन्हें संबंधित कामों के लिये भोर में ले जाते थे और अंधेरा होने तक काम कराते रहते थे। बंदियों के प्रभारी होने पर वे स्वामी होने का स्वांग करते थे और उन निरीह दासों को यातना देने, पीटने एवं उनका जीवन नर्क बनाने में परपीड़क आनंद का अनुभव करते थे। वे प्रायः अपने मनोरंजन के लिये थके-हारे गोरे दासों को रात में दौड़ाकर या गंदा काम कराकर यातना देते थे, प्रताड़ित करते थे। वे उन्हें बिना गलती या उपेक्षणीय चूकों के लिये भी दंडित करते, पहरेदारी करते समय हाथों में रखी मोटी लाठी से उन्हें पीटते थे या उन्हें भोजन नहीं देते थे। पेलो ने लिखा, पीटते समय वे उन अंगों पर प्रहार करते थे, जहां सबसे अधिक पीड़ा होती हो। माउटे ने लिखा है, ''यदि किसी दास को इतना पीट दिया जाता था कि वह काम करने

---

[787] इबिद, पृष्ठ 91-92

[788] इबिद, पृष्ठ 92, 94

[789] इबिद, पृष्ठ 93

में असमर्थ हो जाता था, तो दासों को हांकने वाले उनसे काम कराने के लिये उससे दुगना कोड़ा मारते थे, जिससे कि वह पिछली मार भूल जाए।''[790]

माउटे ने लिखा, ''दासों के अस्वस्थ होने पर भी वे काम से भाग नहीं सकते थे। उन्हें विश्राम करने की अनुमति नहीं होती थी। जब तक पहरेदार उन्हें देख रहे होते थे, वे हाथ-पांव नहीं हिला सकते थे...।'' उन्होंने लिखा, ''जहां तक अस्वस्थ दासों का संबंध है, तो यदि दासों ने शरीर में किसी पीड़ा की बात कही..., तो नोंक पर अखरोट के आकार की घुण्डी वाले लोहे के छड़ को आग में लाल कर उनके अंगों को दागा जाता था।'' ब्रूक्स ने लिखा है, जो अस्वस्थ हो जाते थे, उनके प्रति सुल्तान को कोई दया नहीं थी। अपितु वह उन अस्वस्थ दासों को इसलिये पीटता था, क्योंकि वे कम काम कर पाते थे। एक बार जब बड़ी संख्या में दासों के अस्वस्थ हो जाने के कारण भवन के कार्य में विलंब हो गया, तो सुल्तान के आदेश पर दास-पहरेदार उन्हें रुग्णालय से घसीटते हुए सुल्तान के समक्ष लाये। सुल्तान ने देखा कि रुग्ण दास अपने पैरों पर खड़े भी नहीं हो पा रहे हैं, तो क्रोध में आकर उसने वहीं उनमें सात को मार डाला और एक वध-शाला में उन्हें डाल दिया।''[791]

सुल्तान मौले निर्माण स्थलों पर कार्य का निरीक्षण करने प्रतिदिन जाता था और वहां जिनके काम में ढिलाई या जिनके काम की गुणवत्ता असंतोषजनक पाता था, उनके प्रति निर्दयी व्यवहार करता था। एक बार निरीक्षण करते हुए उसने पाया कि ईंटें पतली हैं। इससे क्रुद्ध सुल्तान ने अपने अश्वेत पहरेदारों को आदेश दिया कि मुख्य मिस्त्री के सिर पर पचास ईंटें तोड़ी जाएं। इस दंड के बाद उस रक्तरंजित दास को कारागार में डाल दिया गया। एक बार सुल्तान ने कई दासों पर आरोप लगाया कि घटिया गुणवत्ता का मसाला बना रहे हैं। क्रुद्ध सुल्तान ने अपने हाथों से उन दासों का सिर आपस में ऐसे लड़ाया कि उनके सिर फूट गये और वहां रक्त की ऐसी धारा निकल पड़ी, जैसे कि मांस काटने वाले की दुकान से निकलती है।''[792]

सुल्तान के महल में दासों को और भी अंतहीन दंड सहने पड़ते थे। एक बार एक स्पेनी दास टोपी उतारना भूल गया और सुल्तान के सामने से निकल गया। इससे क्रोधित सुल्तान ने अपना बरछा उस पर दे मारा, जो उसके शरीर में गहरे धंस गया। उस निरीह दास ने शरीर में से वह बरछा निकालकर वापस दिया, तो सुल्तान ने पुनः बरछा उसके पेट में मार दिया। पेलो ने लिखा, दासों को एक और दंड प्रायः दिया जाता था, जिसे उछालना कहते थे; सुल्तान के आदेश पर तीन-चार पहरेदार दास की टांग पकड़कर नचाते थे और पूरी ताकत से उसे इस प्रकार उछाल देते थे कि जब पर गिरे तो उसका सिर भूमि से टकराये। ऐसे भयानक

[790] इबिद, पृष्ठ 105

[791] इबिद, पृष्ठ 96-97

[792] इबिद, पृष्ठ 106

दंड से प्रायः दास की ग्रीवा (गरदन) टूट जाती थी या कंधे की अस्थि सरक जाती थी। जब तक सुल्तान रुकने का आदेश नहीं देता था, पहरेदार दास को इसी प्रकार उछालते रहते थे।[793]

आधा पेट भोजन पाने वाले, कुपोषित, काम के बोझ के मारे और दास-कालकोठरी में अस्वास्थ्यकर स्थितियों में रहने वाले इन दासों के साथ रोग व व्याधि बने रहते थे। प्रायः प्लेग उन्हें अपना शिकार बनाता था। चिकित्सा की व्यवस्था न के बराबर होने के कारण प्रायः बड़ी संख्या में दास काल का ग्रास बन जाते थे। विशेष रूप से जो पहले से ही दुर्बल होते थे अथवा अतिसार (दस्त) या आंव (पेचिश) से पीड़ित होते थे, वे प्लेग या अन्य कोई महामारी आने पर काल-कवलित हो जाते थे। माउटे ने लिखा है, एक बार तो इस महामारी से एक चौथाई फ्रांसीसी दास काल के गाल में समा गये।[794]

पेलो ने लिखा है, ''शाही महल में मौले इस्माइल के दास यदि कोई छोटी भूल भी कर दें, तो उन्हें मार डाला जाता था। सुल्तान के बेटे मौले जीदान ने एक बार अपने प्रिय अश्वेत दास को मात्र इस बात पर मार डाला कि शहजादा कबूतरों को दाना खिला रहा था, और अनजाने में उस उस दास से कबूतर तितर-बितर हो गये। सुल्तान इतना अस्थिर, क्रूर व शंकालु प्रकृति का था कि कोई घंटा भर ही सुरक्षित जीवन नहीं जी सकता था।''[795]

नौ दशक पूर्व जॉन हैरिसन ने ब्रिटिश बंदियों को छुड़ाने के लिये सुल्तान मौले अब्दुल्लाह मलिक (शासन 1627-31) के दरबार में कई बार कूटनयिक भेंट करने गये थे। यद्यपि उनके कूटनयिक प्रयास विफल रहे, किंतु वहां जाने पर हैरिसन ने दासों के उत्पीड़न व कष्ट का अनुभव किया था। उन्होंने लिखा हैः ''वह (सुल्तान) अपने सामने दासों को बेंत से पिटवाता था और इतना पिटवाता था कि वे मरणासन्न हो जाते थे... वह कुछ दासों के तलवों में बेंत मरवाता था और इसके बाद उन्हें पत्थरों और कांटों पर दौड़ाता था।'' हैरिसन ने आगे लिखा है कि सुल्तान ने अपने कुछ दासों को घोड़ों से बांधकर तब तक घसीटने का आदेश दिया, जब तक कि उनके टुकड़े-टुकड़े न हो जाएं और यद्यपि इस पर भी एक-दो दासों में कटी-फटी, टूटी और लटकती उंगलियों, जोड़ों, हाथों-पैरों और रक्तरंजित सिर के साथ धीमी-धीमी श्वांस चलती मिलती थी। इसके कुछ वर्ष पूर्व बार्बाडोस जलदस्युओं के बिक्री नगर में बंदी बनाकर रखे गये राबर्ट एडम्स ने अपने माता-पिता को पत्र लिखकर अपनी व्यथा सुनाते हुए बताया था कि ''वह (स्वामी) मुझसे एक चक्की पर घोड़े के जैसे प्रातः होने से रात तक काम करवाता है और काम करते समय भी मेरे पैर में 36-36 पाउंड के छल्लों से बनी बेड़ी मेरे पैरों में बंधी रहती थी।''[796]

---

[793] इबिद, पृष्ठ 107

[794] इबिद, पृष्ठ 99

[795] इबिद, पृष्ठ 124-25

[796] इबिद, पृष्ठ 16, 20-21

इन घटनाओं से अनुमान लगाया जा सकता है कि बंदी रहने के विभिन्न चरणों में मुसलमानों के हाथों दासों को कितना कष्ट व यातना सहनी पड़ती थी। यह व्यापक रूप से स्वीकृत तथ्य है कि अफ्रीका में मुस्लिम दास-शिकारियों व व्यापारियों द्वारा पकड़े गये लोगों में से 80-90 प्रतिशत बंदी दास-बाजार पहुंचने से पूर्व ही काल कवलित हो जाते थे। इनमें से अधिकांश बधिया करने अर्थात शिश्न या अंडकोश काटकर नपुंसक बनाये जाने की प्रक्रिया में मारे जाते थे। यह वो प्रक्रिया है जो मुस्लिम दुनिया में पुरुष अश्वेत दासों को भेजने के लिये सर्वत्र अपनायी जाती थी। कितना भयानक कष्ट और मानव जीवन की कितनी क्षति थी वह! वो जो शारीरिक व मानसिक पीड़ा, कष्ट व वेदना सहते थे, अवर्णनीय है और संभवतः आज उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

दासों की नियति

632 ईसवी में जब मुहम्मद मरा, तो वह अपने पीछे कुछ हजार समर्पित मुस्लिम धर्मांतरितों को छोड़ गया था। ये मुसलमान आजीविका और मुस्लिम भूभाग के विस्तार के लिये मुख्यतः हमलों और लूटपाट में ही संलग्न रहे। मुस्लिम लड़ाकों का यह अपेक्षाकृत छोटा गिरोह विजय के अचंभित करने वाले मिशन पर निकल पड़े और अल्प समय में ही विश्व के विशाल क्षेत्र को अपने प्रभाव में ले लिया। इस प्रक्रिया में इन्होंने बहुत बड़ी संख्या में काफिरों को बंदी बनाया और इन बंदियों की बड़ी संख्या को न चाहते हुए भी मुसलमान बनना पड़ा।

मात्र 6000 अरबी जिहादियों को लेकर कासिम ने सिंध में हमला किया, तो उसने वहां तीन वर्षों में लगभग 300,000 भारतीय काफिरों को बंदी बनाया। इसी प्रकार मूसा (698-712) ने उत्तरी अफ्रीका में 300,000 अश्वेतों व बार्बाडोस निवासियों को दास बनाया। सिंध में मुसलमानों के आरंभिक समुदाय में दास बनाकर बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये लोगों की संख्या अधिक थी, जबकि उनके अरब स्वामियों की संख्या बहुत कम थी। दोनों को मिलाकर उन्होंने नये इस्लामी राज्य की प्रशासनिक मशीनरी का गठन किया। उस अ-तकनीकी युग में ऐसे काम के लिये बड़े परिमाण में मानव संसाधन की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप बंदी बनाने के माध्यम से मुसलमान बनाये गये इन काफिरों की बड़ी संख्या को विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में लगाना पड़ा- जैसे कि फौज के विस्तार के लिये उन्हें यौन-दासी (सेक्स-स्लेव) बनाकर बच्चे उत्पन्न किये गये। विख्यात मध्यकालीन इतिहासकार मसालिक ने लिखा है, ''भारत में कोई ऐसा व्यवसाय नहीं था, जिसमें फिरोज शाह द्वारा गुलाम बनाये गये लोगों को न लगाया गया हो।'[797] यह स्थिति केवल भारत की ही नहीं थी, अपितु जहां भी मुस्लिम शासन था, वहां ऐसी ही स्थिति थी। मुस्लिम शासन के अधीन दक्षिणपूर्व एशिया में दासों को लगभग ऐसे सभी कामों में लगाया जाता था, जिसकी कल्पना की जा सकती हो।'[798] जैसा कि पहले ही उल्लिखित है कि वास्तव में इस्लामी दक्षिणपूर्व एशिया की समूचा कार्य-बल ही दासों से तैयार होता था।

---

[797] लाल (1994), पृष्ठ 97

[798] रीड (1993), द डेक्लाइन ऑफ स्लेवरी इन नाइंटींथ-सेंचुरी इंडोनेशिया, इन क्लेन एमए ईडी., ब्रेकिंग द चेन्सः स्लेवरी, बांडेज एंड एमैंसीपेशन इन मॉडर्न अफ्रीका एंड एशिया, यूनीवर्सिटी ऑफ विस्कोसिन प्रेस, मैडिसन, पृष्ठ 68

भवन और निर्माण में लगानाः मुस्लिम हमलावरों और शासकों ने जीती गयी भूमि पर जो बड़ा बीड़ा उठाया था, वह असाधारण मस्जिदों, मीनारों, स्मारकों और हवेलियों का निर्माण कराना था। इसका उद्देश्य इस्लाम की ताकत व वैभव की घोषणा और स्थानीय काफिरों की उपलब्धियों को निष्प्रभावी करना था। चचनामा के अनुसार, कासिम ने सिंध में भवन निर्माण के अपने कार्यों को बताते हुए हज्जाज को लिखा, '...काफिर या तो मुसलमान बन गये या मिट गये। मूर्ति-मंदिरों के स्थान पर मस्जिद और इबादत के अन्य स्थान बनवाये गये हैं, मजहबी उपदेश के लिये मंच खड़े किये गये हैं...।'[799] भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना (1206) के पहले ही 1192 ईसवी में कुतुबदीन ऐबक ने दिल्ली में कुव्वत-ए-इस्लाम (इस्लाम का सामर्थ्य) मस्जिद का निर्माण प्रारंभ किया था। इब्न बतूता के अनुसार, 'कुव्वत-ए-इस्लाम मस्जिद की भूमि पर पहले एक मूर्ति-मंदिर होता था, नगर जीतने के बाद उस मंदिर को मस्जिद में रूपांतरित कर दिया गया।'[800] ऐबक ने 1199 में अजान देने के लिये दिल्ली में भव्य कुतुब मीनार के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया था। साक्षी रहे बतूता ने लिखा, 'इस्लाम की धरती पर कुतुबमीनार अतुलनीय है।'[801]

इस्लाम के लिये सुदृढ़ आधार स्थापित करने से पहले ही भारत में इन उपक्रमों का बीड़ा उठाने से इसकी पुष्टि होती है कि मुसलमानों की जीत का मुख्य उद्देश्य इस्लाम की ताकत व वैभव की घोषणा करना था। काफिरों की उपलब्धियों को निष्प्रभावी करने और नीचा दिखाने के लिये इस्लामी ढांचों के निर्माण में नष्ट किये गये मंदिरों, गिरिजाघरों, सिन्गागों (यहूदी पूजाघर) की सामग्री का प्रयोग किया जाता था। कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद पर एक फारसी उत्कीर्णन इसकी पुष्टि करता है कि सत्ताइस हिंदू व जैन मंदिरों को नष्ट करके उनकी सामग्री से यह मस्जिद बनायी गयी थी।[802] कुतुब मीनार में भी इन्हीं तोड़े गये मंदिरों की सामग्री का उपयोग किया गया था। इस पर प्रोफेसर हबीबुल्लाह ने लिखा है, 'उन मंदिरों के पत्थरों पर उत्कीर्ण (हिंदू देवी, देवताओं आदि की) छवियों को या तो विकृत कर दिया गया उलट-पलट दिया गया।'[803]

भारत में मुस्लिम हमलावरों ने मजहबी महत्व की मस्जिदें, मीनारें, किले और मकबरे बनवाने शुरू किये; बाद में उन्होंने पूरे भारत में इनमें असाधारण हवेलियों और भवनों को भी जोड़ लिया। उनके निर्माण प्रायः दोहरी गति से पूर्ण किये जाते थे। अति उत्साह में बर्नी बताता है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय में कभी-कभी तो दो-तीन दिन में हवेलियां और दो सप्ताह में किले बना लिये जाते थे। यद्यपि यह बर्नी का अतिरंजनापूर्ण वक्तव्य है, किंतु इससे यह तो पता चलता ही है कि उन कामों में बहुत बड़ी संख्या में लोग, निरपवाद रूप से दास लगाये जाते थे और उस अ-तकनीकी युग में उन पर उन कामों को शीघ्रतम समय में पूरा करने का भयानक दबाव होता था। तब यह तनिक आश्चर्यजनक है कि सुल्तान अलाउद्दीन ने 70,000 ऐसे दास रखे थे, जो

---

[799] शर्मा, पृष्ठ 95

[800] गिब, पृष्ठ 195

[801] इबिद

[802] वाटसन एंड हीरो, पृष्ठ 96

[803] लाल (1994), पृष्ठ 84

भवनों में निरंतर काम करते रहते थे। कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद और कुतुब मीनार बड़े कामों वाली परियोजनाएं थीं, क्योंकि नष्ट किये गये मंदिरों से निकली सामग्री का पुनः उपयोग करने के लिये बड़ी सावधानी से उतारना पड़ता था। निजामी ने लिखा है कि हाथियों का प्रयोग करके मंदिरों को ढहाया गया था, प्रत्येक मंदिर में बड़े परिमाण में पत्थर निकले थे, जिसके लिये 500 लोगों की आवश्यकता पड़ती। चूंकि अधिकांश महीन काम मानव हाथों से किये गये थे, इसलिये इसमें बड़ी संख्या में दासों को लगाया गया होगा।[804]

इसके अतिरिक्त नये शहरों, हवेलियों और मजहबी ढांचे को बनाने में शिथिलता कम ही आयी। प्रायः ऐसा होता था कि जब नया सुल्तान गद्दी पर बैठता था-और ऐसा होता ही रहता था, क्योंकि भारत के इस्लामी शासन की यह पहचान रही है कि अंतहीन विद्रोह व षडयंत्र होते रहे- तो वह अपनी चिरस्थायी विरासत तैयार करने के लिये नये शहर व हवेली का निर्माण करवाता था। सुल्तान गयासुद्दीन बलबन (शासन 1265-85) ने इल्तुमिश के पुराने शहर को छोड़कर दिल्ली में प्रसिद्ध कस्र-ए-लाल (किला) बनवाया। इसी प्रकार कैकुबाब ने किलुग़री शहर बनाया। बतूता ने प्रमाणित किया है कि 'उनकी प्रथा है कि सुल्तान की मृत्यु पर उसकी हवेली को छोड़ दिया जाता है… उसके उत्तराधिकारी अपने लिये नई हवेली बनवाते हैं।'[805] उसने दिल्ली के बारे में लिखा है कि यह विभिन्न सुल्तानों द्वारा चार सटे हुए नगरों को मिलाकर बनाया गया ऐसा शहर था, जो समूचे मुस्लिम देशों में सबसे बड़ा नगर था।[806]

इसके अतिरिक्त घने शहरों में कोई आधुनिक जल-निकासी और कचरा प्रबंधन प्रणाली नहीं होती थी, तो वे शीघ्र ही गंदे और न रहने योग्य बन जाते थे, और इस कारण उनके स्थान पर नया शहर बनाया जाता था। बतूता और बाबर ने नमी के कारण पुराने शहरों को नष्ट करने के विषय में लिखा है कि ऐसा नया शहर बनाने की आवश्यकता पड़ती थी, जहां सबकुछ स्वच्छ और व्यवस्थित हो। बड़ी संख्या में दास बनाये गये हिंदुओं को गंदी साफ करने और मुसलमानों के रहने के लिये नये शहरों के निर्माण में लगाया जाता था। जैसा कि पहले ही उल्लिखित है कि फिरोज शाह तुगलक ने अपनी सेवा के लिये 180,000 दास जमा कर रखे थे। लाल का अनुमान है, इनमें से 12000 दासों को हवेली व भवन बनाने के लिये पत्थर काटने में लगाया गया था। बादशाह बाबर ने लिखा है कि 'आगरा में मेरे भवनों में [केवल] 680 लोग प्रतिदिन काम करते थे…; जबकि आगरा, सकीरी, बियाना, दुलपुर, ग्वालियर, कुली (अलीगढ़) में मेरे भवनों में 1491 पत्थर काटने वाले काम करते थे। इसी प्रकार हिंदुस्तान में प्रत्येक प्रकार के शिल्पकार व कामगार असख्य थे।'[807]

---

[804] इबिद, पृष्ठ 84-85

[805] इबिद, पृष्ठ 86, 88

[806] गिब, पृष्ठ 194-95

[807] लाल (1994), पृष्ठ 88

इस्लामी शासन के समय भारत में मुस्लिम शासकों ने मस्जिदें, स्मारक, मकबरे, किले, हवेलियां और शहर बनाये और उनकी मरम्मत भी की। यह निर्विवाद है कि भारत में मुसलमानों का बड़ी उपलब्धियां बड़ी स्थापत्य स्मारकें हैं; उनकी चमक आज भी विश्व भर से पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती है और ये उपलब्धियां दास बनाये गये भारतीयों के उस परिश्रम, कौशल और शिल्पकला की देन हैं, जो उन्हें निर्माण के प्रत्येक स्तर पर बिना शर्त श्रम के रूप में देना पड़ता था, जबकि मुसलमान केवल हाथों में कोड़े लिये उनकी निगरानी भर करते थे।

इस्लामी दुनिया के अन्य भागों में स्थित उत्कृष्ट हवेलियां, स्मारक और शहरों के निर्माण में भी यही नीति अपनायी जाती थी। मोरक्को में पूर्व के शासकों ने अचंभित करने वाले भवनों व स्मारकों वाले फेज़, रबात और मर्राकेश शहर का निर्माण किया था। 1672 में जब सुल्तान मौले इस्लाम ने सत्ता पर अधिकार किया, तो उसने मेक्नीज में नया साम्राज्यवादी शहर बनाने का निर्णय किया और यह शहर विश्व के सभी महान नगरों की तुलना में स्तर व वैभव में श्रेष्ठ बनाया जाना था। उसने असाधारण महल बनाने के लिये सभी मकानों और भवनों को गिराकर विशाल स्थान तैयार करवाया। यह महल ऐसा बनना था, जिसकी दीवारें कई मीलों तक फैली हों। मेक्नीज के चारों ओर पहाड़ियों व घाटियों के इस पार से उस पार तक असीमित अनुक्रम में इस महल के परिसर में अनेक जुड़ी हुई हवेलियां और कोठरियां बननी थीं। उसमें विशाल प्रांगण एवं स्तंभयुक्त दीर्घा (बरामदा), हरियाली-युक्त मस्जिद और आमोद-प्रमोद के लिये बागों को बनाया जाना था। उसने (सुल्तान ने) एक विशाल मूरिश (इस्लामी) हरम, घुड़सालों व शस्त्रागारों, फव्वारों और हौज़ों बनाने का आदेश दिया।'[808]

सुल्तान मौले इस्माइल ने वर्सेल्स स्थित यूरोप के महानतम महल राजा लुईस चौदहवें के महल से भी बड़ा व सुंदर भव्य महल-नगर बनाने की इच्छा प्रकट की थी। वास्तव में वह वर्सेल्स महल से कहीं आगे निकल गया था। अंग्रेजी बंदियों को छुड़ाने के लिये कमोडोर चार्ल्स की अगुवाई में एक ब्रिटिश दल सुल्तान मौले इस्माइल से शांति संधि करने हेतु कूटनयिक मिशन पर उस महल में गया था; कमोडोर चार्ल्स ने पाया कि वह महल यूरोप के किसी भवन की तुलना में कहीं अधिक बड़ा था। यहां तक कि राज लुईस चौदहवें का अत्यंत वैभवपूर्ण महल भी उसकी तुलना में छोटा था। सबसे अद्भुत हवेली अल-मंसूर महल थी, जो 150 फुट ऊंचा और चमकदार हरे टाइलों से अलंकृत बीस गुम्बजदार इमारतों में फैली हुई थी।'[809]

सुल्तान का महल पूर्णतः यूरोपीय दासों द्वारा बनाया गया था। इन यूरोपीय दासों के सहायक के रूप में स्थानीय अपराधियों के गिरोह लगाये गये थे। वह महल परिधि में चार मील था और इसकी दीवारें पच्चीस फुट मोटी थीं। विंदूज के अनुसार, ''उस महल के निर्माण में प्रतिदिन 30,000 पुरुष और 10,000 खच्चर काम करते थे।'' प्रतिदिन प्रातःकाल सुल्तान निर्माण कार्य देखने के लिये धमक पड़ता और बताता कि कितने दिन का काम बचा है। दासों को समय सीमा में निर्धारित काम पूरा करने के लिये सतर्कतापूर्वक कार्य करना पड़ता था। जैसे ही वह एक निर्माण कार्य पूरा करवा लेता, दूसरा कार्य शुरू करवा देता। मोरक्को के

---

[808] मिल्टन, पृष्ठ 100-01

[809] इबिद, पृष्ठ 102

इतिहासकार इज-ज़यानी ने लिखा है, भवन निर्माण परियोजना इतनी बड़ी थीं कि ''किसी शासन, अरब या विदेशी, मूर्तिपूजक या मुस्लिम के अधीन इस प्रकार का कोई महल दृष्टिगोचर नहीं होता था। परकोटे की रक्षा के लिये ही लगभग 12,000 पहरेदारों की आवश्यकता पड़ती थी।''[810]

सुल्तान मौले इस्माइल के महल में भवन निर्माण की गतिविधियों में विराम कभी लगा ही नहीं। पूरा किये गये भवनों से वह कदाचित ही कभी संतुष्ट होता और उसे ध्वस्त पर पुनः बनाने का आदेश दे देता। अपने दासों को व्यस्त रखने के लिये वह अपने महल की दीवार के बारह मील भाग को ध्वस्त कर उसी स्थान पर नया निर्माण करने का आदेश देता। जब इसके बारे में कोई पूछता, तो सुल्तान कहता, ''मेरे पास चूहों (दासों) से भरा बोरा है; जब तक मैं उन चूहों को क्रियाशील नहीं रखूंगा, वे अपना ही पूरा मांस खा जाएंगे।''[811]

सुल्तान मौले इस्माइल का उत्तराधिकारी मौले अब्दल्लाह अपने पिता के जितना ही क्रूर था। अपने दासों से हांड़-तोड़ परिश्रम कराने और उन्हें व्यस्त रखने के लिये उसने अपने पिता द्वारा बनवाये गये अद्भुत महल-''मेक्नीज का गर्व व आनंद''- को ध्वस्त करने करने और अपने यूरोपीय दासों द्वारा पुनः बनवाने का आदेश दिया। और दासों के कष्ट और यहां तक काम करते समय उनकी मृत्यु हो जाने पर परपीड़क आनंद का अनुभव करता था। फ्रेंचमैन एड्रिअन डी मनाल्ट ने लिखा, 'जब दास काम कर रहे होते थे, तो मौले अब्दल्लाह को सर्वाधिक आनंद तब आता था, जब वह बड़ी संख्या में दासों को उस दीवार के नीचे खड़ा करता था, जो गिरने वाला होता था और वह उन्हें उस दीवार के मलबे में जीवित दब जाने को देखकर आनंदित होता था।'' पेलो ने लिखा है, 'वह अपने दासों से अति दुखदायी और क्रूर व्यवहार करता था।''[812]

फौज में लगानाः दासों को और एक बड़े काम में लगाया जाता था और वह मुस्लिम फौज में उन्हें बड़ी संख्या में लगाने का काम था। उत्तरी अफ्रीका में मूसा ने अपनी फौजी सेवा में 30,000 दासों को लगाया था। अठाहरवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मोरक्को, इजिप्ट और फारस में 50,000 से 250,000 की संख्या वाली मुस्लिम गुलाम फौज हुआ करती थी। भयानक तुर्क (उस्मानिया साम्राज्य) जैनीसरी रेजीमेंट, जिसने 1453 में कुस्तुंतुनिया में तख्ता पलट दिया था, में केवल दास (गुलाम) फौजी ही हुआ करते थे। दिल्ली का प्रथम सुल्तान कुतुबदीन ऐबक सुल्तान मुहम्मद गोरी का दास था। 1290 से पूर्व तक दिल्ली के सभी सुल्तान दास ही थे। उनकी फौज में अधिकांशतः विदेशों से लाये गये दास ही भरे होते थे।

अनेक मुस्लिम और गैर-मुस्लिम इतिहासकार व टिप्पणीकार दासों को फौज में लगाने की नीति को मुस्लिम शासकों के उदात्त व मुक्तिदाता व्यवहार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। वे तर्क देते हैं कि इस श्रेष्ठ नीति से दासों को फौज में उच्चतम स्तर पर पहुंचने में सहायता मिली; यहां तक कि वे शासक भी बने। यह सत्य है कि अनेक दास फौज में शीर्ष पद तक

---

[810] इबिद, पृष्ठ 104-05

[811] इबिद

[812] इबिद, पृष्ठ 240-41

पहुंचे; और कुछ, गिरोहबंदी व षडयंत्र के माध्यम से शासक के पद पर भी पहुंचे। किंतु मुस्लिम शासकों के लिये यह कभी भी उदारता की चेष्टा नहीं रही। अपितु, अपने लाभ: अपने साम्राज्य के विस्तार और पराजितों से अधिकाधिक लूट का माल, दास व राजस्व प्राप्त करने के लिये विजयों को निरंतर रखने हेतु यह उनकी आवश्यकता थी। यह काफिरों के सामूहिक-नरसंहार, उनको दास बनाने और उन पर बर्बरता करने का एक साधन बन गया था। जो भी दास सत्ता के शीर्ष पर पहुंचा, वह लाखों निर्दोष लोगों से नृशंस व्यवहार करने और उनका विनाष करने के मार्ग पर और आगे बढ़ा। प्रत्येक दास, जो सामान्य फौजी बना, ने अनेकों निर्दोष प्राणियों को नष्ट किया।

सन् 712 में देबल पर कब्जा करने के बाद अपने 6000 अरबी लड़ाकों के साथ कासिम तब तक अपनी जीत को आगे नहीं बढ़ा सकता था, जब तक कि वह अपनी फौज का विस्तार न करता। इसलिये जब वह किसी नगर पर कब्जा करता, तो वहां ताकत संगठित करने और फौज के विस्तार करने में समय लेता और इस उद्देश्य से बंदी बनाकर दास बनाये गये लोगों को बिना शर्त सम्मिलित करता।[813] जब फौजी ताकत ठीक हो जाती, तो वह पहले से जीते गये क्षेत्रों को सुरक्षित रखते हुए नये अभियान पर उन्हें भेजा सकता था। उसने सिंध पहुंचने के बाद लगभग आधा दर्जन बड़े अभियान छेड़े और धीरे-धीरे उसकी फौज 50,000 लड़ाकों की क्षमता वाली हो गयी। नई भर्ती में एक भाग दास बनाये गये भारतीयों का था। बर्नी ने लुटेरे मुस्लिम शासन व जीत में ताकतवर फौज के महत्व पर लिखा है, राज्य फौज होती है और फौज राज्य होती है। इसलिये फौज में दासों को लगाने के पीछे मुस्लिम शासकों की दासों के प्रति कृपा का भाव नहीं था, अपितु स्थिति इसके नितांत विपरीत थी।

यह मुस्लिम शासकों द्वारा मुक्ति और उद्धार का कोई उदार व्यवहार नहीं था; यह उनके अपने लाभ के लिये विवशता थी। मुस्लिम फौज में सम्मिलित होने वालों में से अधिकांश दास अपनी इच्छा से नहीं, अपितु बाध्यता में फौज में सम्मिलित होते थे। और जो भी दास फौज में सम्मिलित हुआ, उसने बड़ी संख्या में निर्दोष गैर-मुस्लिमों के विनाश और नृशंसता का मार्ग प्रशस्त किया, और सामान्यतः उन्हीं गैर-मुसलमानों को नष्ट करता था, जो बीते वर्षों में कभी उसके सहधर्मी हुआ करते थे।

सन् 732 में टूअर्स (फ्रांस) के युद्ध में आघात लगने के बाद इस्लामी विजय लगभग थम गयी। मुस्लिम फौज की जिहादी उत्तेजना संभवतः मंद पड़ रही थी। विशाल क्षेत्र और अपार धन एकत्र करने के साथ ही अरब और फारसी फौजियों में संभवतः और रक्तपात करने वाली जंगों में संलिप्त होने की उत्कंठा संभवतः समाप्त हो चुकी थी, क्योंकि उसमें उनके प्राणों का जोखिम था। इस समय मुस्लिम फौज में उत्तरी अफ्रीका अश्वेत दास और बार्बाडोस के दास भर गये थे और वे यूरोप में निरंतर जिहादी अभियान चला रहे थे। इस्लामी दुनिया की पूर्वी सीमाओं पर मुस्लिम शासकों को जंग और रक्तपात के लिये अदम्य उत्साह रखने वाले तुर्क जैसे लोग मिल गये थे। अब्बासी खलीफा और विशेष रूप से खलीफा अल-मुतासिम (833-842) ने अपनी फौज में चिंतातुर अरबों व फारसियों के स्थान पर बड़ी संख्या में तुर्कों को भरना शुरू किया। इनमें से अधिकांश तुर्क जंगों में बंदी बनाकर दास बनाये गये थे। वे ड्यूशिर्मे प्रथा के अंतर्गत बहुत छोटी आयु में ही लाये गये थे और फौज में सेवा के लिये प्रशिक्षित किये गये थे। बाद के

[813] काफिरों के विरुद्ध जिहाद में सम्मिलित होने के नये अवसर देखकर इस्लामी दुनिया से बड़ी संख्या में स्वैच्छिक जिहादी भी कासिम की फौज में सम्मिलित होने के लिये सिंध में उमड़ पड़े थे।

खलीफाओं के अधीन भी ऐसा ही चलता रहा कि फौज में तुर्कों पर बड़ा बल दिया गया; फौज में अरबों व फारसियों की श्रेष्ठता छिन्न-भिन्न हो गयी।

इन ताकतवर तुर्क कमांडरों में से कुछ ने बाद में खलीफाओं से विद्रोह कर दिया और स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। प्रथम स्वतंत्र तुर्क राजवंश इजिप्ट में 868 में स्थापित किया गया। इस्लामी दुनिया के पूर्वी छोर पर अल्पटिगिन नामक एक तुर्क दास शासक उठ खड़ा हुआ। वह ट्रांसॉक्सिआना, खुरासान और बुखारा के फारसी (समानिद राजवंश) सुल्तान अहमद बिन इस्माइल (मृत्यु 907) द्वारा क्रय किया हुआ दास था। अल्पटिगिन के फौजी कौशल को देखकर समानिद के अमीर अब्दुल मलिक (954-61) ने उसे 500 गांवों और 2000 दासों का प्रभारी बना दिया था। बाद में अल्पटिगिन गजनी का स्वतंत्र मुखिया बन गया। उसने सुबुक्तिगिन नामक एक और तुर्क दास को क्रय किया। अल्पटिगिन की मृत्यु के बाद सुबुक्तिगिन ने सत्ता अपने अधीन कर ली। अत-उत्बी ने लिखा है, 'सुबुक्तिगिन ने जिहाद के लिये हिंद में कई हमले किये।' यद्यपि जिसने भारत के काफिरों के विरुद्ध विनाशकारी जिहाद छेड़ा, वह सुबुक्तिगिन का बेटा सुल्तान महमूद गज़नी था। इसके लगभग डेढ़ दशक बाद दास सुल्तानों के एक और गिरोह अफगान गोरियों ने भारत की संप्रभुता पर निर्णायक प्रहार किया और दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना की। सुल्तान गोरी का तुर्क दास, जो कि फौजी कमांडर बन गया था, दिल्ली का पहला सुल्तान बना। दिल्ली सुल्तान आरंभिक वर्षों में विदेशी मूल के दासों से बनायी गयी फौज को रखते थे। विभिन्न विदेशी मूल के दास जैसे तुर्क, फारसी, सेल्जुक, ओग़ूस (ईराकी तुर्क), अफगानी और खिलजी आदि बड़ी संख्या में क्रय किये जाते थे और गजनवियों व गोरियों की फौज में भर्ती किये जाते थे। सुल्तान इल्तुमिश की बेटी सुल्ताना रजिया की फौज में अबीसीनिया से क्रय किये गये अश्वेत दासों का बोलबाला था।

जब भारत में पहला अ-दास शासक खिलजी वंश (1290-1320) सत्ता में आया, तो पकड़कर बंदी बनाये गये भारतीयों को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराया गया और उन्हें फौज में भर्ती किया जाने लगा। इससे रुढ़िवादी मुसलमान चिढ़ने लगे थे, क्योंकि वे भारतीयों को अधम मानते थे और उनको हथियारबंद फौज में लिये जाने के विचार से घृणा करते थे। किंतु, चूंकि उस समय मंगोल भारत के उत्तरपश्चिम सीमा पर आक्रमण कर रहे थे, तो सुल्तान को एक मजबूत फौज की आवश्यकता थी। इस कारण वह भारतीय मूल के दास मुसलमानों को फौज में सम्मिलित करने पर विवश था। इसके अतिरिक्त चूंकि खिलजियों ने अनवरत विद्रोह कर रहे तुर्कों को अपदस्थ करके सत्ता पर कब्जा किया था, तो वे निष्ठा के विषय को देखते हुए अपनी फौज में भारी संख्या में तुर्कों को भी नहीं लगा सकते थे। बाद में सुल्तान फिरोज शाह तुगलक (शासन 1351-88) ने इस्लामीकृत मंगोलों के आसन्न हमले को भांपते हुए बड़ी फौज एकत्र करने की आवश्यकता का अनुभव किया। यद्यपि इस्लामीकृत मंगोलों का हमला वास्तव में तैमूर के बर्बर हमलों के साथ 1398 में शुरू हुआ। परंतु फिरोज शाह तुगलक की आशंका के कारण भारत में पहली बार उसी के शासन में हिंदुओं को मुस्लिम फौज में अनिवार्यतः भर्ती किया गया। विश्व के अन्य स्थानों पर भी पराजित काफिरों को मुस्लिम फौज में भर्ती करने का ऐसा ही विरोध हुआ। इजिप्ट में स्थानीय कोप्टिक ईसाइयों, जो इस्लाम में धर्मांतरित हो गये थे, को लंबे समय तक फौज में नहीं सम्मिलित किया गया।

भारतीय सैनिकों की भूमिकाः फौज में भारतीय सैनिकों (अधिकांशतः धर्मांतरित दास), जिन्हें बंदगां के नाम से जाना जाता था, को सामान्यतः छोटा पद दिया जाता था। वे पैदल सेना में लगाये जाते थे। ये वो लोग थे, जो हमलों के समय बंदी बनाकर दास बना

लिये गये होते थे या उपहार स्वरूप दिये गये दास होते थे; बाद के कालखंडों में कुछ हिंदू आजीविका के लिये भी मुस्लिम फौज में सम्मिलित हो गये थे। बंदगां सभी प्रकार के छोटे-मोटे काम करते थे, जैसे कि घोड़े और हाथियों की देखभाल करना आदि; वे उच्च पदस्थ घुड़सवारों की व्यक्तिगत सेवा में लगाये जाते थे। मोरलैंड ने लिखा है, 'भारत में मुस्लिम सुल्तान और बादशाहों ने विशाल फौज रखी थी; अकबर के शासन काल में मुगल फौज जब जंग के मैदान में होती थी, तो प्रत्येक लड़ाके की सेवा में औसत रूप से दो-तीन सेवक होते थे।'[814] स्वाभाविक रूप से बाद की अवधि में फौज के विभिन्न पदों पर बड़ी संख्या में दासों को लगाया गया। अमीर खुसरो ने लिखा है, 'जब फौजी अभियान चलता था, तो उन बंदगां को जंगलों को साफ करने और मार्च कर रही फौज के लिये मार्ग तैयार करने में लगाया जाता था। जब गंतव्य पर पहुच जाते थे या रुकते थे, तो वे शिविर लगाते थे और तम्बू गाड़ते थे और कभी-कभी तो भूमि पर 12,546 यार्ड की परिधि वाले तम्बू खड़े करते थे।'[815]

युद्ध भूमि में उन बंदंगों को सबसे आगे खड़ा किया जाता था, जिससे कि आरंभिक हमलों को वे अपने ऊपर ले लें। अल्कलकासहिंदी ने सुब्ह-उल-आशा में लिखा है, 'वे सामने से आक्रमण होने पर भागकर बच नहीं सकते थे, क्योंकि उनके दायें और बायें घोड़े रहते थे... और उनके पीछे हाथियां होती थीं, जिससे उनमें से कोई भी भाग न सके।' पुर्तगाली अधिकारी ड्यूरेट बार्बोसा (1518) ने अपनी आंखों देखी स्थिति में लिखा है, ''(बंदगां) तलवार, कटार, धनुष और बाण लेकर चलते हैं। वे बाण अच्छा चलाने वाले होते हैं और उनके बाण लंबी दूरी तक जाते हैं, जैसे कि इंग्लैंड के बाण दूर तक मार करते हैं... वे अधिकांशतः हिंदू होते हैं।'' मलिक काफूर, मलिक नाइक, सारंग खान, बहादुर नाहर, शेख खोखर और मल्लू खान जैसे कुछ भारतीय मूल के दास फौजी (धर्मांतरित मुसलमान) अपने सैन्य साहस और सुल्तान के प्रति निष्ठा के माध्यम से प्रभावशाली पदों पर भी पहुंचे।[816]

कुलमिलाकर, मुस्लिम शासकों की फौज में भारतीय दास फौजियों की सेवा, घोड़े व हाथियों के तबेलों की देखभाल करने, जंगलों को साफ करने और तम्बू व कनात लगाने सहित सभी प्रकार के छोटे काम करते थे। युद्ध भूमि में वे कटार, तलवार, धनुष-बाण लेकर सबसे आगे पैदल खड़े रहते थे और शत्रु के प्रहार को झेलते थे।

विश्व में अन्य स्थानों पर भी मुस्लिम फौज में स्थानीय सैनिकों की भर्ती में यही नीति थी। आरंभिक विरोध के बाद जब इस्लाम में धर्मांतरित इजिप्ट के कोप्टिक ईसाइयों को फौज में सम्मिलित किया गया, तो 'उन्हें पैदल फौज की ब्रिगेड में रखा गया, जिसका तात्पर्य यह था कि यदि विजय मिलने पर लूट के माल में उनका भाग घुड़सवार फौजी के भाग का आधा ही होगा।'[817] मोरक्को में बलपूर्वक मुसलमान बना दिये गये यूरोपीय बंदी, जिनसे सर्वाधिक घृणा की जाती थी, भी भयानक विद्रोहियों के विरुद्ध कठिन जंगों को लड़ने के लिये फौज में लगाये जाते थे। उन्हें शत्रु के पहले प्रहार का सामना करने के लिये आगे रखा जाता था;

---

[814] मोरलैंड, पृष्ठ 88

[815] लाल (1994), पृष्ठ 89-93

[816] इबिद

[817] तागेर, पृष्ठ 18

और उनके बचकर निकलने का कोई मार्ग नहीं होता था, वे शत्रु के प्रहार को अपने शरीर पर झेलने के लिये विवश कर दिये जाते थे। जंग में यदि वे बचकर निकलने का प्रयास करते, तो उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते थे।[818]

शाही कारखानों में नियोजनः बड़ी संख्या में दासों को लगाने का एक और उपक्रम शाही कारखाना या कार्यस्थल होता था और भारत के सल्तनत काल व मुगल काल में ये कारखाने स्थान-स्थान पर होते थे। इन कारखानों का उपयोग शाही दरबार के प्रयोग के लिये प्रत्येक वस्तुओंः यथा सोने, चांदी, कांसे व अन्य धातुओं की वस्तुएं, वस्त्र, ईत्र, अस्त्र, शस्त्र, चमड़े की वस्तुएं व वस्त्र, घोड़ों की काठी व लगाम, हाथियों के हौदे आदि के उत्पादन व निर्माण के लिये होता था।[819] राजमिस्त्री और शिल्पकारी में दक्ष हजारों की संख्या में दासों को उन कारखानों को चलाने में लगाया जाता था और काम कर रहे उन दासों की निगरानी वरिष्ठ अमीर या खान द्वारा की जाती थी। फिरोज शाह तुगलक के पास अपने कारखानों में काम कराने के लिये 12,000 दास थे। वे दास जंग के लिये हथियार और विदेशी राजाओं व अधिपतियों को भेजे जाने वाले उपहारों सहित सुल्तानों व बादशाहों एवं उनके जनरलों व दरबारियों की प्रत्येक आवश्यकता के लिये उच्च गुणवत्ता के वस्तुओं का निर्माण करते थे। जब कमोडोर स्टीवार्ड और उनका दल मोरक्को में सुल्तान मौले इस्माइल के कारखानों को देखने गया, तो उन्होंने पाया कि ''वे कारखाने काम करने वाले पुरुषों व बच्चों से भरे हुए थे... वे काठी, बंदूकों के कुंदे, तलवारों व बरछों [जैसे हथियारों] के म्यान व अन्य वस्तुएं बना रहे थे।''[820]

शाही हवेलियों और शाही दरबारों में नियोजनः नीचे लाल द्वारा शाही हवेलियों और दरबारों में दासों को लगाने के विवरण का सारांश दिया गया है।[821] शाही दरबारों के विभिन्न विभागों में बड़ी संख्या में दासों को लगाया जाता था। उनमें से अधिकांश दास भेदियों के रूप में काम करते थे; हजारों दासों की आवश्यकता राजस्व एकत्र करने और आधिकारिक पत्रों व संदेशों को लाने और ले जाने के लिये क्रमशः राजस्व व डाक विभाग में आवश्यकता पड़ती थी। शाही हवेलियों में बहुत बड़ी संख्या में दासों की आवश्यकता पड़ती थी। बादशाह अकबर, जहांगीर और शाहजहां के हरमों में 5-6 हजार स्त्रियां (बीवियां व रखैलें) होती थीं; और उनमें से प्रत्येक के पास सेवा के लिये कई-कई बंदियां (दासी स्त्रियां) होती थीं। वे पृथक कक्षों में रहती थीं और क्रमिक घेरा बनाकर उनकी सुरक्षा में महिला पहरेदार, हिजड़े और बोझ ढोने वाले तैनात होते थे।

नगाड़े, ताशे और तुरही आदि बजाने के लिये भी बड़ी संख्या में दास होते थे। दासों को शाही व्यक्तियों को पंखा झलने और मच्छरों को भगाने के लिये लगाया जाता था। शहाबुद्दीन अल-उमरी ने सुल्तान महमूद शाह तुगलक (मृत्यु 1351) की सेवाओं में लगे दासों के विषय में लिखा हैः

[818] मिल्टन, पृष्ठ 135-36

[819] लाल (1994), पृष्ठ 96-99

[820] मिल्टन, पृष्ठ 186

[821] लाल (1994), पृष्ठ 99-102

'... 1200 चिकित्सक हैं; घोड़ों पर बैठकर चिड़िया लड़ाने के लिये प्रशिक्षित बाजों को पालने के लिये 10,000 दास थे; थाप देने वाले 300 दास आगे जाकर खेल प्रारंभ करते थे; जब वह शिकार पर जाता था, तो उसके साथ चिड़िया लड़ाने के लिये आवश्यक वस्तुओं के 3000 व्यापारी भी होते थे; उसके साथ मेज पर 500 लोग भोजन करते थे। वह 1200 संगीतकारों को प्रश्रय देता था और इसमें वो 1,000 दास संगीतकारों की गिनती नहीं है, जो संगीत सिखाने की व्यवस्था देखते थे। वह अरबी, फारसी और भारतीय भाषाओं के 1,000 कवियों को प्रश्रय देता था। शाही रसोई के लिये प्रतिदिन लगभग 2,500 मुर्गे, 2,000 भेंड़ें व अन्य पशु काटे जाते थे।'

इन कार्यों और शाही हवेलियों के अन्य कार्यों के लिये प्रतिदिन कितने दासों की आवश्यकता पड़ती थी, इसकी ठीक-ठीक संख्या का आंकड़ा उपलब्ध नहीं है, किंतु इसके बारे में अनुमान लगाना कठिन नहीं है। शिकार, शूटिंग, कबूतरबाजी आदि के आमोद-प्रमोद और क्रीड़ा के लिये अनगिनत संख्या में कर्मचारी लगाये गये थे। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपने संग्रह में 50,000 कबूतर-लड़कों को रखा था। मोरलैंड ने लिखा है, दासों को विभिन्न पशुओं में लड़ाका उत्तेजना उत्पन्न करने के लिये प्रशिक्षण में भी दासों का प्रयोग किया जाता था। बादशाह हुमायूं के प्रतिद्वंद्वी शेरशाह, जो कि उतना ताकतवर और स्थापित शासक नहीं था, के पास डाक संचार के लिये 3,400 घोड़े थे और उसके तबेले में लगभग 5,000 हाथी थे। बादशाह जहांगीर ने अपने संस्मरण में लिखा है कि इंग्लैंड से उपहार के रूप में चार कुत्तों की देखभाल के लिये चार दास थे। मोरक्को के इतिहासकार अहमद बिन नासिरी के अनुसार, सुल्तान मौले इस्माइल के पास उसके तबेले में लगभग 12,000 घोड़े थे और देखभाल के लिये प्रत्येक दस घोड़ों पर चार दास लगाये गये थे।[822] थोड़े समय के लिये हरम के पहरेदार के रूप में काम करने वाले पेलो के अनुसार, सुल्तान मौले इस्माइल के हरम में 4,000 रखैलें व बीवियां थीं।[823] स्पष्ट है कि बड़ी संख्या में दासों को हरमों की पहरेदारी के लिये लगाया गया था।

घरेलू और कृषि कार्यों में नियोजनः शाही हवेलियों में दसियों हजार दासों को लगाया गया था। शाही परिवार के सदस्यों, प्रांतीय अमीरों (नवाबों) और उच्च पदस्थ जनरलों के दरबार और घरेलू कार्यों के लिये सैकड़ों से लेकर हजारों दास होते थे। बादशाह जहांगीर के एक अधिकारी के पास तो 1,200 हिजड़े दास थे। अभियानों से मुस्लिम फौजी अनेक दासों को अपने लूट के माल के अंश के रूप में प्राप्त करते थे। उनमें से कुछ दासों को बेच दिया जाता था, जबकि अपनी सुख-सुविधा के लिये षेश बचे दासों को घरेलू व बाहर के कामों व गतिविधियों में लगाया जाता था।

उमर की संधि में सन्निहित इस्लामी कानून के अनुसार, गैर-मुस्लिम मुसलमानों के दासों को नहीं क्रय कर सकते हैं। इसलिये, इस्लामी दुनिया के दास बजार में केवल मुस्लिम ही दासों को क्रय कर सकता है। इस्लाम के आरंभिक वर्षों में इस प्रतिबंध को कड़ाई से लागू किया गया। इस्लाम के आरंभिक दशकों व सदियों में मुसलमानों की जनसंख्या कम थी, जबकि निरंतर जीत मिलने के कारण बिक्री के लिये दासों की खेप बहुत बड़ी होती थी। दासों की इस अधिकता के कारण एक साधारण मुस्लिम घर में

---

[822] मिल्टन, पृष्ठ 132

[823] इबिद, पृष्ठ 120

कई-कई दास होते थे। कुछ अभियानों में बंदी बनाये गये लोगों की संख्या इतनी बड़ी होती थी कि उन्हें उसी प्रकार समूहों में बेचा जाता था, जैसे कि 838 ईसवी में खलीफा अल-मुतासिम करता था।

साधारण और यहां तक कि निर्धन मुसलमानों के घरों में ये कई-कई दास करते क्या थे? स्पष्ट है कि वे सभी प्रकार के श्रम और कार्यों में लगाये जाते थेः सभी प्रकार के घरेलू काम और ऐसे काम जिनमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता हो, जैसे कि पशुओं को चराना, खेतों-खलिहानों के काम आदि में लगाये जाते थे। इस प्रकार वे दास अपने स्वामियों का जीवन सुख-सुविधा से पूर्ण और बिना श्रम किये लाभ व आनंद की प्राप्ति वाला बनाते थे। लेविस के अनुसार, 'बड़ी संख्या में दास, जिनमें अधिकांशतः अश्वेत अफ्रीकी होते थे, आर्थिक परियोजनाओं में दिखते थे। आरंभिक इस्लामी काल से ही बड़ी संख्या में अश्वेत अफ्रीकी दासों को उत्तरी ईराक के लवण (नमक) युक्त खंडों को साफ कर हटाने में लगाये जाते थे। बुरी स्थितियों के कारण अनेक विद्रोह भी हुए। अन्य अश्वेत दासों को उत्तर इजिप्ट व सूडान के सोने की खानों और सहारा के नमक की खानों में लगे होते थे।'[824] सैगल ने लिखा हैः '(वे) खाई खोदते थे, दलदली भूमि को साफ करते थे, उन पर जमी नमक की पपड़ी को हटाते थे; वे गन्ना और कपास के खेतों में काम करते थे और उन्हें एक ऐसे बाड़े में रखा जाता था, जिसमें पांच सौ से पांच हजार दास ठुंसे होते थे।'[825] चूंकि भयानक विद्रोह पनपने लगे थे, तो बाद में मुस्लिम शासक विशेष परियोजनाओं में दासों की अधिक संख्या लगाने में सतर्क रहने लगे।

उन्नीसवीं सदी में इस्लामी गीनिया व सियरा लिओन के ''दास नगर'' के स्वामियों ने दासों को खेतों में नियोजित करते थे।[826] सैगल ने नेहेमिया लेवत्जिऑन का उद्धरण देते हुए लिखा है कि 'पंद्रहवीं सदी में पूर्वी अफ्रीका के जंजीबार और पेम्बा द्वीपों पर जवा की खेती के लिये सुल्तान सैय्यद सईद (मृत्यु 1856) के दासों को श्रमिक के रूप में लगाया गया था, दक्षिणी मोरक्को में खेती व पौधरोपण के विस्तार के लिये दासों की बड़ी मांग थी।'[827] सैगल ने आगे लिखा है, 'उन्नीसवीं सदी में जब कपास की उच्च मांग थी और सूडान में दासों की आपूर्ति पर्याप्त थी, तो उन्हें इजिप्ट में कपास की उपज बढ़ाने के लिये लगाया गया, जबकि बड़ी संख्या में दासों को पूर्वी अफ्रीकी तट पर अनाज उत्पादन और जंजीबार व पेम्बा द्वीपों पर जवा के बाग लगाने के लिये लगाया गया था।''[828] उन्नीसवीं शताब्दी में जंजीबार और पेम्बा के अरब पौधरोपणों में लगभग 769,000 अश्वेत दासों को लगाया गया था, जबकि मैसकैरीमी द्वीप पर अरब बागीचे बनाने के लिये पूर्वी अफ्रीका से ही 95,000 दासों को लाया गया था।[829]

---

[824] लेविस (2000), पृष्ठ 209

[825] सैगल, पृष्ठ 42

[826] रोड्नी डब्ल्यू (1972) इन एमए क्लेन एंड जीडब्ल्यू जॉनसन ईडीएस., पृष्ठ 158

[827] गैन एल (1972), इन इबिद, पृष्ठ 182

[828] इबिद, पृष्ठ 44-45

[829] इबिद, पृष्ठ 60-61

सेक्स-स्लेव (लौंडी) और रखैल रखने की प्रथा

महिला दासियों को घरेलू नौकरानी के रूप में और घर के पीछे के आंगन में काम कराया जाता था, जबकि जो दासियां युवा और सुंदर होती थीं, उन्हें अपने स्वामियों की वासना की पूर्ति भी करनी पड़ती थी। इस प्रकार, वो दासियां न केवल घृणित कार्य करने को विवश होती थीं, अपितु अपने स्वामी की काम-वासना की पूर्ति के साथ उनके अवैध संतानों को जन्म देकर मुस्लिमों की जनसंख्या बढ़ाने में सहायता करती थीं। इस्लाम में यौन-दास प्रथा कोई छोटी-मोटी संस्था नहीं है; अल्लाह ने ही कुरआन में मुसलमानों को इस प्रथा का बारंबार स्मरण कराते हुए इसकी गंभीरता प्रकट की है। रसूल मुहम्मद ने स्वयं बनू मुस्तलिक़ की जुवैरिया [बुखारी 3:46:717], बनू क़ुरैज़ा की रेहाना और मारिया नामक तीन दासी-बालिकाओं को जबरन अपनी रखैल बना लिया था। मारिया वह सुंदर कन्या थी, जिसे इजिप्ट के अमीर (गर्वनर) ने मुहम्मद को संतुष्ट करने के लिये तब भेंट किया था, जब मुहम्मद ने उसे धमकी भरा पत्र भेजा था। मुहम्मद बड़ी संख्या में स्त्रियों को बंदी बनाता था और उन्हें अपने साथियों में रखैल बनाने के लिये बांट देता था। एक घटना में मुहम्मद ने अली (उसका दामाद और चौथा खलीफा), उस्मान बिन अफ्फान (उसका दामाद और तीसरा खलीफा) और उमर इब्न खत्ताब (उसका ससुर और दूसरा खलीफा) को एक-एक सेक्स-स्लेव दिया।[830] कुरआन की आयत 23:5-6 के आधार पर दासप्रथा की संस्था की व्याख्या करते हुए प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान सईद अब्दुल अल मदूदी (मृत्यु 1979) ने लिखाः

> अपने गुप्तांगों की रक्षा के व्यापक आदेश से दो श्रेणियों की स्त्रियों को बाहर रखा गया हैः (ए) बीवियां, (बी) वो स्त्रियां जो किसी के हलाल कब्जे में हैं अर्थात सेक्स-स्लेव (लौंडी)। इस प्रकार आयत [कुरआन 23:5-6] में स्पष्ट रूप से यह नियम वर्णित है कि अपनी सेक्स-स्लेव बनायी गयी स्त्री से यौन संबंध बनाने की उसी प्रकार की अनुमति है, जैसी कि अपनी बीवी के साथ संबंध बनाने की अनुमति है। पकड़ी कर बंदी बनायी गयी स्त्री के साथ यौन संबंध बनाने का आधार उस पर कब्जा होना है, न कि शादी। यदि शादी की षर्त रही होती, तो लौंडी बनायी गयी स्त्रियां भी बीवियों में गिनी जातीं और बीवी व लौंडी का पृथक-पृथक उल्लेख करने की आवश्यकता न होती।[831]

इस्लाम की यौन-दास प्रथा और उपरोक्त-उल्लिखित उद्देश्य के अनुरूप हेदाया कहती है कि स्त्री-दासों को रखने का उद्देश्य 'सहवास और बच्चों की उत्पत्ति करना होता है।'[832] तद्नुसार स्त्री-दास क्रय करने में शारीरिक स्वास्थ्य, नियमित माहवारी और दुर्बलता अथवा विकलांगता मुक्त होने का गुण अधिक देखा जाने लगा। हेदाया के अनुसार, स्त्री-दास के मुख और कांखों से दुर्गंध आना शारीरिक कमी का लक्षण होता है-स्पष्ट ही है कि स्त्री-दास चुंबन, हाथ फेरने और संभोग करने के लिये होती हैं; किंतु पुरुष-दासों के प्रकरण में यह नियम नहीं लगाया गया। हेदाया में यह भी लिखा है कि जब कोई स्त्री-दास अर्थात लौंडी दो लोगों में साझा

---

[830] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 592-93; अल-तबरी, अंक 9, पृष्ठ 29

[831] मदूदी एसएए, द मीनिंग ऑफ द कुरआन, इस्लामी पब्लिकेशन, लाहौर, अंक 3, पृष्ठ 241, नोट 7

[832] लाल (1994), पृष्ठ 142

होती है, तो वह उसी व्यक्ति की संपत्ति होती है, जिसने दूसरे की सहमति से उसके साथ यौन संबंध बनाया हो।[833] फतवा-ए-आलमगीरी में लिखा है कि यदि कोई क्रय की गयी स्त्री-दास के स्तन बहुत बड़े हैं, अथवा उसके गुप्तांग ढीले या चौड़े हों, तो क्रेता को यह अधिकार है कि उसे वापस कर दे- इसका कारण स्पष्ट है कि क्रेता अर्थात स्वामी को वैसी स्त्री के साथ संभोग करने में अधिक आनंद नहीं आएगा, जबकि वह यौन आनंद देने के लिये ही बनी है। इसी प्रकार कोई क्रेता इस आधार पर भी किसी दास को वापस कर सकता है कि उसका कुंवारापन पहले से भंग है।[834]

स्त्री-दासों को चुनने या उनका गुण-दोष निर्धारण करने का यह मापदंड मुहम्मद के ही समय से आया था। वह बंदी बनायी गयी स्त्रियों में सबसे सुंदर स्त्रियों को अपने लिये चुन लिया करता था। खैबर में जब उसने सुना कि किनाना की पत्नी साफिया अप्रतिम सुंदर है, तो उसने उसे अपने लिये ले लिया था। जबकि साफिया पहले एक और जिहादी को दे दी गयी थी, किंतु उसने उस जिहादी से साफिया को अपने लिये ले लिया।[835] एक और घटना में जब मुहम्मद ने हवाजिन की बंदी बनायी गयी स्त्रियों को अपने जिहादी साथियों में बांटा, तो उस जनजाति का एक दल अपनी स्त्रियों को छुड़ाने आया। वह प्रति स्त्री पर छह-छह ऊंटों की फिरौती लेकर उन्हें मुक्त करने पर सहमत हुआ। उसके अनुयायी उयैय्ना बिन हिस्न को लूट के माल के बंटवारे में उस जनजाति के एक कुलीन परिवार की जो स्त्री मिली थी, उसे मुक्त करने से मना कर दिया तथा और अधिक फिरौती की राशि मांगने लगा। इस पर मुहम्मद के एक साथी जुबैर अबू सुराद ने उयैय्ना को समझाया कि उस स्त्री के स्तन अत्यंत छोटे हैं; वह गर्भधारण नहीं कर सकेगी... और उसका दूध भी अच्छा नहीं होगा; यह कहकर उसने उयैय्ना से उसे जाने देने को कहा।' जब उयैय्ना ने मुहम्मद के एक और साथी अल-अक़रा से इसकी शिकायत की, तो उसने यह कहते हुए उसे मनायाः 'अल्लाह भला करें, वो तो अच्छा हुआ कि तुमने उसे तब भी नहीं लिया, जब वह अपनी युवा कुंवारी या अपनी मध्य आयु में भरपूर जवानी में रही होगी!' [836]

महिला बंदियों को यौन-आनंद के लिये उपयोग करना इस्लाम के समूचे इतिहास में प्रचलित प्रथा है और कुरआन, सुन्नत और षरिया में इसको स्वीकृति मिली है। इसलिये आधुनिक युग में भी इस्लामी न्यायविदों, इमामों और विद्वानों द्वारा इसकी निर्लज्ज व प्रत्यक्ष स्वीकृति दी जाती है। मुहम्मद के समय से ही जिहाद में भाग लेने के लिये मुस्लिम जिहादियों को जो बात लुभाती है, वह लूट का माल माल पाने के अतिरिक्त सेक्स-स्लेव (लौंडी) के रूप में उपयोग करने के लिये स्त्रियों को बंदी बनाना है। इस्लामी कानूनों के अनुसार, हत्या करने वाला जिहादी उस मृतक की पत्नी, बच्चों और संपत्तियों का स्वामी हो जाता है, जिसकी वह हत्या करता है। सर विलियम मुईर मानते थे कि इस्लाम में सेक्स-स्लेव प्रथा की स्वीकृति ने जिहाद लड़ने के लिये 'एक ऐसे प्रलोभन के

---

[833] इबिद, पृष्ठ 145, 147

[834] इबिद, पृष्ठ 145

[835] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 511; मुईर, पृष्ठ 377

[836] इब्न इस्हाक, पृष्ठ 593

रूप में कार्य किया कि जिहाद में उन्हें स्त्रियों को पकड़ने का अवसर मिलेगा और वो स्त्रियां उनके कब्जे वाली हलाल रखैल बनेंगी।''[837]

मुहम्मद द्वारा अपने लिये दासी-रखैल बनाने की प्रथा के शुरू किये जाने से ही बाद के वर्षों में जब बंदियों की संख्या बहुत अधिक हो गयी, तो यह कुप्रथा व्यापक रूप से बढ़ी। इस्लाम में कोई अधिकतम सीमा नहीं निश्चित की गयी है कि मुस्लिम आदमी कितनी सेक्स-स्लेव (लौंडी) रख सकते हैं; थॉमस हफ्स ने लिखा है, 'मुसलमान कितने सेक्स-स्लेव के साथ सहवास कर सकते हैं, इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं है और असीमित भोग-विलास का यह प्रलोभन ही है, जिसने असभ्य देशों में मोहम्मदवाद अर्थात इस्लाम मजहब को इतना लोकप्रिय बनाया और मुस्लिम क्षेत्रों में दासप्रथा को लोकप्रिय बनाया।[838] लेविस ने लिखा है, तद्नुसार 'बड़ी संख्या में प्रत्येक प्रजाति की स्त्रियों को बंदी बनाकर ले आया गया और दास बनाकर उन्हें इस्लामी दुनिया के हरमों में रख दिया गया- जैसा कि रखैल या नौकर, इन दोनों कामों में कोई स्पष्ट भेद नहीं बताया गया... कुछ को गायक, नर्तकी और संगीतकारों जैसे कलाकार के रूप में प्रशिक्षित किया गया।'[839] रोनाल्ड सैगल ने यह कहते हुए इसकी पुष्टि की हैः 'संगीतकार, गायक और नर्तकी आदि बनाने के लिये अधिक संख्या में महिला बंदियों (दासियों) की आवश्यकता पड़ती थी- बहुत सी दासियों को घरेलू नौकर बनाकर लाया गया और बहुत सी दासियों की मांग रखैलों के रूप में थी। शासकों के हरम विशाल होते थे। कोरडोबा में अब्दुल रहमान तृतीय (मृत्यु 961) के हरम में 6,000 से अधिक रखैलें थीं; और काहिरा में फातिमी हवेली में रखैलों की संख्या इससे दोगुनी थी।'[840] भारत में मुस्लिम शासक भी इसमें पीछे नहीं थे; यहां तक कि प्रबुद्ध कहे जाने वाले अकबर के हरम में 5,000 रखैलें थीं, जबकि जहांगीर और शाहजहां के हरम में भी 5,000-6,000 रखैलें थीं। अठाहरवीं सदी में सुल्तान मौले इस्माइल के पास उसके हरम में 4,000 रखैलें थीं।

स्पष्ट है कि अफ्रीका से यूरोप तक, मध्य पूर्व से भारत तक मुस्लिम शासकों ने हजारों की संख्या में सेक्स-स्लेव (लौंडियां) रखी थी। जैसा मुस्लिम इतिहासकारों ने बताया है, उसके अनुसार, इस्लाम के उत्कर्ष के दिनों में दरबार के अधिकारियों, शाही व कुलीन परिवारों के सदस्यों, उच्च पदस्थ जनरलों और प्रांतीय अमीरों (गर्वनरों) से सैकड़ों और किसी-किसी के पास तो हजारों लौंडी होती थीं। यहां तक कि निर्धन मुस्लिम परिवारों या दुकानदारों के पास भी कई-कई लौंडी होती थीं। सामान्य रूप से सभी घरों में दासियों को अपने स्वामी की यौन इच्छा की पूर्ति करनी पड़ती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों को पकड़कर दास बनाने की इस्लामी प्रथा का मुख्य उद्देश्य उन्हें रखैल बनाना था; क्योंकि मुस्लिम दुनिया में भेजने के लिये अफ्रीका में प्रत्येक पुरुष बंदी के साथ

---

[837] मुईर, पृष्ठ 74, नोट्स; कुरआन 4:3 भी

[838] हफ्स, पृष्ठ 209

[839] लेविस (2000), पृष्ठ 209

[840] सैगल, पृष्ठ 39

दो स्त्रियों को पकड़ा जाता था। यूरोपीयों द्वारा मुस्लिम देशों को भेजे गये दासों में एक स्त्री के साथ दो पुरुष पकड़े जाने की व्यवस्था थी।

बादशाह औरंगजेब के शासन काल में भारत में रहे निकोलाओ मैनुकी ने मुसलमानों में औरत व काम के प्रति इतनी आसक्ति देखी कि 'सभी मुसलमान औरतों के शौकीन थे और वो औरतें उनकी तनावमुक्ति का मुख्य साधन और आमोद-प्रमोद का लगभग एकमात्र साधन थीं।'[841] बादशाह जहांगीर के शासन काल (1605-27) में भारत की यात्रा करने वाले डचमैन फ्रैंसिस्को पेल्सार्ट ने हरम में मुस्लिम शासकों व कुलीन वर्ग के यौन भोग-विलास के बारे में लिखा हैः

> '...प्रत्येक रात अमीर विशेष बीवी के पास या महल में जाता, वहां विशेष रूप से सजी-धजी उसकी बीवी और लौडियां उसका स्वागत करतीं... यदि गर्मी का दिन होता, तो वे .... उसके शरीर पर गुलाब जल और चंदन से लेप करतीं। निरंतर पंखे झले जाते थे। कुछ लौडियां उसके हाथ-पांव को दबाती, कुछ बैठकर गातीं, वाद्ययंत्र बजाती और नृत्य करतीं या अन्य प्रकार का मनोरंजन करतीं, पूरे समय बीवी उसके पास बैठी रहती। तब यदि सुंदर लौंडियों में से किसी एक पर उसकी दृष्टि ठहर जाती, तो वह उसे बुलाता और उसको भोगता, उसकी बीवी किसी प्रकार का क्षोभ दिखाने का साहस तक न कर पाती और वहां से हट जाती, यद्यपि बाद में वह उस लौंडी पर अपना क्रोध निकालती।' [842]

किंतु बीवी हरम से उन सुंदर लौंडियों से कभी छुटकारा नहीं पा सकती थी, क्योंकि केवल शौहर को ही यह अधिकार है कि वह लौंडी अर्थात दास बनायी गयी स्त्री को मुक्त करे (मुस्लिम औरतों के पास दास रखने का अधिकार नहीं होता)।

इसी प्रकार मोरक्को में मौले इस्माइल के महल में एक डच दासी (स्लेव-गर्ल) मारिया तेर मीतेलेन थी, जिसने हरम में सुल्तान का बीवियों और रखैलों के साथ यौन भोग-विलास की आंखों देखी स्थिति बतायी है।

मारिया तेर मीतेलेन ने लिखा हैः

> ''मैंने स्वयं को सुल्तान के कक्ष में उसके सामने पाया, जहां वह कम से कम पचास स्त्रियों के साथ लेटा था,'' वो स्त्रियां परियों के जैसे ऋृंगार की हुई और वस्त्र धारण की हुई थीं, वे असाधारण रूप से सुंदर थीं और प्रत्येक के हाथ में वाद्ययंत्र थे।'' मारिया ने आगे लिखाः ...उन्होंने वाद्ययंत्र बजाए और गीत गाये, ऐसा कर्णप्रिय गीत-संगीत मैंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं सुना था।''[843]

कुल मिलाकर सर्वाधिक अपमानजनक और वेश्यावृति का अमानवीय रूप दासी-रखैल आधुनिक युग में भी इस्लामी परंपरा की प्रमुख विशिष्टता बनी रही। 1921 ईसवी में उस्मानिया साम्राज्य का अंत होने से पूर्व तक इस वंश के सुल्तान स्त्रियों से भरे हरम को रखते थे। मुस्लिम हमलावरों ने सिंध में जिस बहावलपुर रियासत को सबसे पहले जीता था, उसके अंतिम नवाब- जिसने

---

[841] मैनुकी एन (1906) स्टोरिया डू मोगोर, अनुवाद इर्विन डब्ल्यू, हॉन मूर्रे, लंदन, अंक 2, पृष्ठ 240

[842] लाल (1994), पृष्ठ 169-70

[843] मिल्टन, पृष्ठ 120

पाकिस्तान में विलय से पूर्व 1954 तक शासन किया, के हरम में तीन सौ नब्बे से अधिक स्त्रियां थीं। नवाब नपुंसक हो गया था, किंतु रखैलों और बीवियों को संतुष्ट करने के लिये सभी हथकंडे अपनाता था। जब पाकिस्तानी फौज ने उसके महल पर नियंत्रण किया, तो उन्हें डिल्डो (कृत्रिम शिश्न अर्थात लिंग) का संग्रह मिले। लगभग 600 ऐसे कृत्रिम पुरुष लिंग मिले, जिनमें से कुछ मिट्टी के बने हुए थे और इंग्लैंड से लाये गये कुछ कृत्रिम लिंग ऐसे थे, जो बैटरी से चलते थे। फौज ने एक गड्ढा खोदा और उन कृत्रिम लिंगों को उसमें गाड़ दिया।'[844] अरब के सुल्तान आज भी एक प्रकार के बड़े हरम रखते हैं।

हिजड़े और गिलमा

इस्लाम की दास प्रथा का एक और भयानक क्रूर, अमानवीय और घृणित पक्ष पुरुष बंदियों का लिंग कटवाना था। इतिहासकारों और आलोचकों ने इस्लाम के इस घृणित पक्ष पर कम ही ध्यान दिया है। ऐतिहासिक रूप से आधुनिक युग में भी मुस्लिम दुनिया बधिया करने अर्थात लिंग काटने का कम ही विरोध करती है। किंतु मुसलमान सामान्यतः यह कहकर उन यहूदी व गैर-मुस्लिम चिकित्सकों द्वारा की जाने वाली सर्जरी का विरोध करते हैं कि इस्लाम में अंग विच्छेदन करना हराम है। (यह मुसलमानों का पाखंड है, क्योंकि मुहम्मद के समय से ही बड़ी संख्या में निर्दोष लोगों का सिर काटना एक सामान्य प्रचलन रहा है और कुछ अपराधों के लिये हाथ और पांव को काट देना अल्लाह द्वारा स्वीकृत दंड है।) पर हिजड़ों का नियोजन स्पष्ट रूप से अल्लाह द्वारा स्वीकृत है, जैसा कि कुरआन मुस्लिम औरतों को आदेश देता है कि वे अपने शौहरों, अपने पिताओं, अथवा अपने शौहरों के पिताओं, अथवा अपने बेटों, अथवा अपने शौहर के बेटों, अथवा अपने भाइयों, अथवा अपने भाई के बेटों, अथवा अपनी बहनों के बेटों, अथवा शौहर की औरतों और लौंडियों अथवा **जिन पुरुष नौकरों को (स्त्रियों की) आवश्यकता न हो**, उनके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से अपना शरीर ढंग और आभूषणों को लबादे से ढंग कर रखने का आदेश देता है...[कुरआन 24:31]।' एक हदीस बताती है कि मुहम्मद स्वयं एक हिजड़े को उपहार के रूप में लिया था, बाद में मजहबी संग्रह से इस हदीस को निकाल दिया गया।[845]

मुस्लिम शासकों और अभिजात्य वर्ग में बधिया किये गये पुरुषों, सामान्यतः सुंदर लड़कों, की बड़ी मांग मुख्यतः तीन कारणों से थी। पहला, मुस्लिम हरमों व घरों में अनेकों से लेकर हजारों की संख्या में बीवियां और रखैलें होती थीं। स्वाभाविक रूप से इनमें से अधिकांश औरतें यौनिक रूप से असंतुष्ट भी रहती थीं और अपने शौहरों और मालिकों को अनेक औरतों के साथ बांटने के कारण ईर्ष्यालु व रुष्ट रहती थीं। शौहरों व मालिकों के लिये ऐसी हवेलियों और घरों में पुरुष नौकरों को रखना चिंता का विषय था, क्योंकि यौन आवश्यकताओं को लेकर असंतुष्ट व प्रायः रुष्ट रहने वाली औरतें उन पुरुष-नौकरों के साथ यौन-संबंध रखने की ओर आकर्षित हो सकती थीं। हरम की औरतों का अन्य पुरुषों के प्रति आकर्षित होना अपेक्षाकृत सामान्य था। उदाहरण के लिये,

---

[844] नायपाल (1998), पृष्ठ 332

[845] पेलट सीएच, लैम्बटन एकेएस एंड ऑरहोनलू सी (1978) खासी, इन द एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, ई जे ब्रिल ईडी., लीडेन, अंक 4, पृष्ठ 1089

जब मौले इस्माइल ने अपनी एक प्रिय बीवी के अनुरोध पर जब पेलो, जो कि हिजड़ा नहीं था, को अकस्मात् हरम में पहरेदार के रूप में लगाया, तो मौले की बीवियों ने पेलो में प्रेमातुर रुचि दिखायी। इस प्रकार की गतिविधियों में उसकी संलिप्तता सुल्तान को पता चल जाती, तो क्या होता, इससे सचेत पेलो ने लिखा, ''मैंने यही उचित लगा कि मैं अपने व्यवहार में पूरा संयम रखूं।''[846]

इसलिये मालिकों और विशेष रूप से बड़ा हरम रखने वाले शासकों व उच्च पदस्थ अधिकारियों के लिये अपने घरों व हवेलियों में वीर्यवान पुरुषों की अपेक्षा हिजड़ों को रखना अधिक सुरक्षित होता था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि हरम शब्द की उत्पत्ति उस हराम शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है निषिद्ध- और सटीक ढंग से कहें, तो इसका अर्थ होता है ''सीमाओं या अधिकारों से बाहर'' (असंबद्ध पुरुषों के लिये)।

जॉन लैफिन के अनुसार अश्वेत दासों का सामान्यतः इस धारणा के आधार पर बधिया कर दिया जाता था कि अश्वेतों में काम की भूख अनियंत्रित होती है।'[847] भारत से अफ्रीका तक हिजड़े ही शाही हरमों की पहरेदारी में लगाये जाते थे। वे हरम में आने-जाने वाले पुरुषों व स्त्रियों पर दृष्टि रखते थे और हरम की औरतों के व्यवहार पर गुप्तचरी करते थे, विशेष रूप से वे इस बात की गुप्तचरी करते थे कि हरम की औरतें गैर-इस्लामी व्यवहार या कुफ्र तो नहीं कर रही हैं। मध्यकालीन इस्लामी साम्राज्यों में संभवतः हरम सबसे बड़ा शाही विभाग होता था और इसकी देखभाल के लिये हजारों हिजड़ों की आवश्यकता होती थी।

दूसरा, बधिया किये गये वे पुरुष को ऐसी कोई आशा नहीं होती थी कि बुढ़ापे में देखभाल के लिये उनके पास परिवार या बच्चे हों, तो वे अपने बुढ़ापे में मालिक का अनुग्रह व सहयोग प्राप्त करने के लिये उनके प्रति बड़ी निष्ठा और समर्पण प्रकट करते थे। यौनिक विनोद से वंचित वे बधिया दास उस सामान्यतः काम-वासना से भरी इस्लामी संस्कृति में अपेक्षाकृत सहजता से अपने को कार्यों के प्रति पूर्णतः समर्पित कर सकते थे।

हिजड़ों की भारी मांग का तीसरा कारण मुस्लिम शासकों, जनरलों और अभिजात्य व्यक्तियों का समलिंगी आकर्षण था। कामुक सुख के लिये रखे गये हिजड़े, जिन्हें गिलमा भी कहा जाता था, सुंदर युवा लड़के हुआ करते थे। 'वे महिलाओं के जैसे आकर्षित वस्त्र पहनते थे, साज-शृंगार किये हुए होते थे और अपने शरीर पर ईत्र लगाये रहते थे।' गिलमा की अवधारणा कुरआन की निम्न आयतों से आती है, जिसमें जन्नत के पुरुष अनुचरों (गिलमा) का वर्णन किया हैः

- 'उनके चारों ओर फिरते रहेंगे, उनको (समर्पित), युवा (सुंदर) लड़के जैसे छिपाये हुए मोती हों। [कुरआन 52:24]
- 'वहां सदा किशोर बने रहने वाले युवा, कटोरा, सुराही और शुद्ध मादक पेय लिये हुए उनकी सेवा में तत्पर रहेंगे।' [कुरआन 56:17-18]

---

[846] मिल्टन, पृष्ठ 126

[847] सैगल, पृष्ठ 52

इस्लामी नैतिकता नामक अपने निबंध में अनवर शेख गिलमों का वर्णन यूं करते हैं: 'जन्नत में उस भोग-विलास के वातावरण का वर्णन है, जहां हूरें और गिलमा रहते हैं। हूरें सदा युवा रहने वाली वो कुंवारी औरतें होती हैं, जो बड़ी व लचीली आंखों और उन्नत उरोज (छाती) वाली होती हैं। गिलमा वो युवा लड़के होते हैं, जो सदा किशोर ही रहते हैं और मोती के जैसे सुंदर, हरे रेशमी वस्त्र पहने हुए, चांदी के कंगन से अलंकृत होते हैं।'[848] इस्लाम में गिलमा की अवधारणा को इसलिये प्रोत्साहन मिला, क्योंकि मुहम्मद के समय में अरब में पुरुष के संबंध अर्थात गुदा-मैथुन (लौंडेबाजी) प्रचलित थी, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है (पृष्ठ 131-32 देखें)। फारस में भी गुदा-मैथुन प्रचलित था। हित्ती के अनुसार, 'हमने अल-राशिद के शासन में गिलमाओं के बारे में पढ़ा; किंतु अरब संसार में यौन संबंधों के चलन के लिये गिलमा संस्था को प्रत्यक्ष रूप से उस खलीफा अल-अमीन ने जमाया, जो फारसी वंश से आता था। उसके एक काजी ने ऐसे चार सौ लड़कों के साथ संबंध बनाये। कवि अपनी विकृत लालसाओं की सार्वजनिक अभिव्यक्ति करने और बिना दाढ़ी के किशोरों को केंद्र में रखकर रची गयी कामुक कविताओं को प्रकट करने में हिचकते नहीं थे।'[849]

केवल अश्वेत दासों का ही बधिया नहीं किया जाता था, अपितु सभी प्रकार और समुदायों के बंदियों का बधिया किया जाता थाः चाहे वो अफ्रीका के अश्वेत हों, या भारत के भूरे लोग अथवा मध्य एशिया के पीले लोग हों या यूरोप के गोरे लोग हों, सब का बधिया किया जाता था। सैगल ने लिखा है, मध्यकालीन युग में गोरे लोगों का लिंग काटकर उन्हें हिजड़ा बनाने का केंद्र प्रेग और वर्दून बना, जबकि कैस्पियन सागर के निकट खराज़ोन मध्य एशिया के लोगों के बधिया का केंद्र था। इस्लामी स्पेन भी गोरों को हिजड़ा बनाने का एक और केंद्र था। दसवीं सदी के आरंभ में खलीफा अल-मुक्तजिर (शासन 908-937) ने बगदाद की अपने महल में लगभग 11,000 हिजड़ों को रखा था, जिसमें 7,000 अश्वेत और 4,000 गोरे (यूनानी) थे।[850]

यह पहले ही उल्लेख किया गया है कि मुगल बादशाह जहांगीर के समय बंगाल में दासों का बधिया किये जाने का व्यापक चलन था और यह पूरे भारत में फैली हुई कुप्रथा बन गयी थी। ऐसा लगता है कि चूंकि बख्तियार खिलजी ने 1205 में जब बंगाल जीत लिया, तो यह स्थान हिजड़ों की आपूर्ति के लिये लोगों को पकड़कर दास बनाने और बधिया करने का अग्रणी केंद्र बन गया था। तेरहवीं सदी में कुबलाई खान के दरबार से होकर वेनिस वापस लौटते समय मॉर्को पोलो भारत आये थे; उन्होंने बंगाल को हिजड़ों के बड़े स्रोत के रूप में पाया। सल्तनत काल (1206-1526) के उत्तरार्द्ध में ड्यूरेट बरबोसा और मुगल काल (1526-1799) में फ्रांकोसिस पैरार्ड ने भी बंगाल को बधिया किये हुए दासों के बड़े आपूर्तिकर्ता के रूप में पाया था। आईने-अकबरी (1590 के दशक में संकलित) भी इसकी पुष्टि करता है।[851] औरंगजेब के समय में सन 1659 में लगभग 22,000 लोगों को

---

[848] शेख ए, इस्लामिक मोरैलिटी, http://iranpoliticsclub.net/islam/islamic-morality/index.htm

[849] हित्ती पीके (1948) द अरब्सः ए षॉर्ट हिस्ट्री, मैक्मिलन, लंदन, पृष्ठ 99

[850] सैगल, पृष्ठ 40-41; हित्ती (1961), पृष्ठ 276

[851] मोरलैंड, पृष्ठ 93, नोट 1

गोलकुंडा में हिजड़ा बनाया गया था। जहांगीर के शासन के सईद खान चगताई के पास 12,000 हिजड़े थे। आईने-अकबरी के अनुसार, 'अकबर के हरम में 5000 औरतें थीं और उनमें से सबके अपने-अपने निवास स्थान थे... उन पर क्रमिक घेरा बनाकर द्वारों पर महिला पहरेदारों, हिजड़ों, राजपूतों और बोझा ढोने वालों द्वारा निगरानी रखी जाती थी... ।'[852]

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी व्यक्तिगत सेवाओं के लिये कम आयु के 50,000 लड़कों को लगा रखा था, जबकि मुहम्मद तुगलक के पास ऐसे 20,000 दास और फिरोज तुगलक के पास ऐसे 40,000 दास थे। यदि सबके नहीं, तो भी इनमें से अधिकांश लड़कों का लिंग काट दिया गया था। अलाउद्दीन का प्रसिद्ध कमांडर मलिक काफूर भी एक हिजड़ा था। सुल्तान कुत्बुद्दीन मुबारक खिलजी का प्रिय कमांडर, जिसने 1320 में सुल्तान की हत्या कर गद्दी हथिया ली थी, भी एक हिजड़ा था। मुहम्मद फरिश्ता, खोंदामिर, मिनहाज सिराज और जियाउद्दीन बर्नी आदि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने महमूद गजनवी, कुत्बुद्दीन ऐबक और सिकंदर लोदी जैसे अन्य विख्यात सुल्तानों की सुंदर युवा किशोरों के प्रति कामुक आकर्षण की कहानियां लिखी हैं। एक बार सिकंदर लोदी ने कहा था, 'यदि मैं अपने किसी दास को पालकी में बैठने का आदेश दूं,[853] तो मेरे आदेश पर समस्त दरबारी उसे अपने कंधों पर बिठाकर ले आएंगे।'[854] सुल्तान महमूद को अपने प्रिय कमांडर पर आकर्षित था।[855]

मुस्लिम दुनिया में हिजड़ों की अत्यधिक मांग को पूरा करने के लिये पुरुष बंदियों का लिंग विच्छेदन व्यापक स्तर पर किया जाता था। मुसलमान ही थे, जिन्होंने व्यापक स्तर पर पुरुष बंदियों का लिंग काट देने की प्रथा को शुरू किया था। मुस्लिम दुनिया के अधिकांश पुरुष दासों, विशेष रूप से अफ्रीका में पकड़े गये लोगों का लिंग काट दिया जाता था। 350 वर्ष के ट्रांस-अटलांटिक दास-व्यापार के समय एक करोड़ दस लाख अफ्रीकी दासों का नये विश्व (वेस्टइंडीज और अमेरिका) भेजा जाता था, इस्लामी प्रभुत्व की तेरह सदियों तक उनमें से बड़ी संख्या में दास मध्यपूर्व, उत्तरी अफ्रीका, मध्य एशिया, भारत, इस्लामी स्पेन और उस्मानिया साम्राज्य के अधीन यूरोप पहुंचा दिये जाते थे। यद्यपि यदि नये विश्व में अश्वेत दासों से बने प्रवासी समुदाय की तुलना इस्लामी दुनिया में भेजे गये दासों से किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इस्लामी दुनिया के अश्वेत दासों में से अधिकांश दासों का लिंग काट दिया गया था; इसलिये वे दास इस्लामी देशों में विशेष प्रवासी समुदाय का गठन कर पाने में विफल रहे।

इस्लामी दास प्रथा की बेड़ियों में जकड़ दिये गये करोड़ों की संख्या में यूरोपीय, भारतीय, मध्यएषियन और मध्यपूर्वी काफिरों की नियति एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं रही होगी। मार्को पोलो (1280 के दशक) और ड्यूरेट बारबोसा (1500 के दशक) ने भारत में व्यापक स्तर पर बधियाकरण देखा था; अकबर (मृत्यु 1605), जहांगीर (मृत्यु 1628) और औरंगजेब (मृत्यु 1707) के

---

[852] इबिद, पृष्ठ 87-88

[853] पैलेंक्विंस वर यूज्ड फॉर कैरीइंग द विमन, स्पेषली द न्यूली मैरीज ब्राइड्स, इन मेडिवल इंडिया

[854] लाल (1994), पृष्ठ 106-09

[855] इलियट एंड डाउसन, अंक 2, पृष्ठ 127-29

शासन कालों में भी यही हो रहा था। इस प्रकार पूरे मुस्लिम शासन में भारत में बधियाकरण एक सामान्य प्रथा थी। संभवतः यही कारण रहा होगा कि 1000 ईसवी में भारत की जनसंख्या 20 करोड़ थी और 1500 ईसवी में यह घटकर 17 करोड़ रह गयी।

इस्लामी दास-व्यापार

इस्लाम के जन्म से दासप्रथा की संस्था अभूतपूर्व ढंग से बढ़ीः इस्लामी दुनिया में सभी स्थानों पर दास एक सामान्य वस्तु के जैसे हो गये और दास-व्यापार एक सामान्य व्यापारिक उपक्रम बन गया। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि शरिया कानून में दासों को सामान्य संपत्ति या वस्तु की श्रेणी में रखा गया है और इसमें शारीरिक स्वास्थ्य, यौन आकर्षण आदि के आधार पर दासों के मूल्य निर्धारित किये गये हैं। फतवा-ए-आलमगीरी बड़े स्तन, चौड़े गुप्तांग अथवा कुंवारी होने या न होने आदि के आधार पर स्त्री दास के क्रय का नियम दिया गया है। रसूल और उसके साथियों की सुन्नत में इन नियमों का आधार है।

इस्लामी दास-व्यापार का मूलः इस्लाम में दास-व्यापार रसूल मुहम्मद के समय तब प्रारंभ हुआ, जब उसने हथियार और घोड़े प्राप्त करने के लिये बनू कुरैज़ा की बंदी बनायी गयी कुछ स्त्रियों को नज्द में बेचा। मदीना में मुहम्मद और उसका नवनिर्मित समुदाय व्यापार-कारवां और गैर-मुसलमान समुदाय पर हमला करने और उनको लूटने में संलिप्त था और यही उनकी आजीविका का साधन भी बना। इन हमलों में वे प्रायः लोगों को पकड़कर बंदी बना लिया करते थे। बंदी बनाये गये लोगों में अधिकांशतः स्त्रियां और बच्चे होते थे। यद्यपि उस समय अरब में दास-व्यापार फलने-फूलने वाला व्यवसाय नहीं था। उस नये मुस्लिम समुदाय के लिये बंदी बनाये गये लोगों को खुले बाजार में बेचना सुरक्षित भी नहीं था। इस स्थिति में मुहम्मद उन बंदियों को बेचने के विकल्प के रूप में उनके परिवारों से फिरौती उगाहता था। नख्ला के हमले, बद्र की जंग और अन्य अभियानों में बंदी बनाये गये लोगों को छोड़ने के बदले फिरौती उगाहने के माध्यम से उसने धन एकत्र किया। मुहम्मद ने हवाजिन की बंदी बनायी गयी स्त्रियों के बदले प्रति स्त्री छह ऊंट की जो फिरौती ली थी, उस बारे में पहले ही बताया गया है। बाद में खलीफा उमर ने घोषणा की कि गैर-मुसलमान मुसलमानों से संबंधित दासों को नहीं क्रय कर सकते हैं। इसका तात्पर्य यह था कि अब से बंदी बनाये गये लोगों को फिरौती लेकर नहीं छोड़ा जा सकता है और न ही उन्हें गैर-मुस्लिम हाथों में लौटाया जा सकता है। वे केवल मुस्लिमों द्वारा खरीदे जा सकते थे। इससे यह सुनिश्चित हुआ कि वे इस्लाम की परिधि से बाहर न जाने पायें और इससे मुस्लिम जनसंख्या तेजी से बढ़ी।

बिक्री के लिये लोगों को बंदी बनानाः उत्तरी अफ्रीका में पकड़कर दास बनाये गये 300,000 लोगों में से जो खलीफा के भाग में 60,000 दास आये थे, उन्हें मूसा ने बेचा। 30,000 लोगों को फौजी सेवा में लगाने के बाद उसने शेष बचे दासों को अपने फौजियों में बांट दिया और तब उन फौजियों ने अपने अंश के दासों के एक भाग को बेच दिया होगा। इब्न खलदुन (मृत्यु 1406) ने इजिप्ट में दास-व्यापार की आंखों देखी स्थिति में लिखा है कि 'दास व्यापारी उन्हें समूहों में इजिप्ट ले आते थे... और शाही (शासकीय) क्रेता निरीक्षण और बोली लगाने के लिये उनकी प्रदर्शनी लगाते थे और उनके मूल्य के आधार बोली ऊंची होती जाती थी।'[856] सिंध के अपने तीन वर्ष के अभियान में बंदी बनाये हुए 300,000 भारतीयों के पांचवें भाग को कासिम ने दमाकस स्थित

---

[856] लाल (1994), पृष्ठ 124

खलीफा के पास भेज दिया था। खलीफा ने राजपरिवार व कुलीन परिवारों की बंदी बनायी गयी युवा व सुंदर स्त्रियों को अपने हरम में भेज दिया, उनमें कुछ को अपने दरबारियों में उपहार स्वरूप बांट दिया, अनेक बंदी स्त्रियों को शाही दरबार की विभिन्न सेवाओं में लगा दिया और शेष बची बंदियों को धन प्राप्त करने के लिये बेच दिया।

इस्लामी ''स्वर्ण युग'' का प्रबुद्ध जनक कहे जाने वाले खलीफा अल-मुतासिम (मृत्यु 842) ने एमोरियम के अभियान के बाद पांच और दस के समूह में दासों को बेचा। सुल्तान महमूद भारत में हजारों-लाखों लोगों को बंदी बना लिया करता था और उन्हें गजनी के बाजार में हांककर ले जाता था। जैसा कि पहले ही उल्लिखित है, वह वैहिंद (1002) से 500,000 दास, थानेसर (1015) से 200,000 लोग और 1019 के हमले में 53,000 लोगों को बंदी बनाकर ले गया था। जैसा कि लाल का अनुमान है कि भारत में उसके अभियानों के कारण जो बीस लाख लोग घट गये थे, उनका बड़ा भाग वह बंदी बनाकर अपने साथ ले गया और शेष की हत्या कर दी थी। यह भी ध्यातव्य है कि मुहम्मद गोरी ने 300,000 से 400,000 खोखरों को बलपूर्वक दास बनाकर इस्लाम में धर्मांतरित कर दिया था। सुल्तान महमूद और मुहम्मद गोरी दोनों बंदियों को गजनी हांककर ले जाते थे और वहां वे उन्हें बाजारों में बेचते थे। अल-उत्बी ने लिखा है, 'सुल्तान महमूद के समय, गजनी एक प्रमुख दास-व्यापार केंद्र बन गया था और वहां विभिन्न नगरों से इतने व्यापारी दास क्रय करने आते थे कि मवाराउन-नहर, ईराक और खुरासान जैसे देश दासों से भर गये थे।'[857] दास व्यापारियों ने इस्लामी दुनिया के बाजारों में दास-व्यापार निरंतर रखा।

दिल्ली में मुसलमानों के प्रत्यक्ष शासन (1206) प्रारंभ होने के बाद भारत के विशाल भूभाग पर गैर-मुसलमान समुदायों के विरुद्ध अभियान चलाने की ताकत और अवसर तेजी से बढ़ गये। इसके बाद की सदियों में गैर-मुसलमानों को बंदी बनाकर दास बनाने और दासों की खेप स्वाभाविक रूप से बढ़ गयी। अकबर का शासन आने पर उसने अल्लाह द्वारा स्वीकृत इस कुप्रथा पर रोक तो लगायी, किंतु इस प्रतिबंध का प्रभाव सीमित ही रहा। 1605 ईसवी में अकबर की मृत्यु के बाद दास बनाने का अभियान धीरे-धीरे पुनः बढ़ने लगा। रुढ़िवादी औरंगजेब (मृत्यु 1707) के शासन में गैर-मुसलमानों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाने का अभियान चरम पर पहुंच गया। 1757 ईसवी में जब ब्रिटिशों ने भारत में शक्ति संगठित करनी प्रारंभ की, तब जाकर यह कुप्रथा तीव्रता से घटने लगी।

दिल्ली में सल्तनत स्थापना के बाद बलपूर्वक दास बनाये गये बंदियों को विदेशी दास-बाजारों में बेचने की अपेक्षा मुख्यतः घरेलू बाजारों में बेचा जाता था। स्वाभाविक था कि इससे इतिहास में पहली बार पूरे भारत में दास-बाजारों पनपे। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (शासन 1296-1316) के समय के बारे में अमीर खुसरो ने लिखा है कि 'तुर्कों की जब इच्छा होती थी, किसी हिंदू को पकड़ लेते, क्रय कर लेते या बेच देते थे।' दास-बाजारों में दासों का क्रय-विक्रय सार्वजनिक रूप से होता था। यह उल्लेख पहले ही किया गया है कि 'सुल्तान अलाउद्दीन के समय में दिल्ली के दास-बाजारों में 'बंदियों की नयी खेप अनवरत पहुंच रही थी।' सुल्तान मुहम्मद तुगलक (मृत्यु 1351) के समय में इब्न बतूता को दिल्ली के बाजारों में दासों की आपूर्ति इतनी अधिक मिली थी कि दासों का मूल्य अत्यंत सस्ता हो गया था। शिहाबुद्दीन अहमद अब्बास ने भी लिखा है, 'उसके शासन में हजारों दास अत्यंत

---

[857] इबिद, पृष्ठ 121

कम मूल्य पर बेचे जाते थे।[858] मैनरीक और बर्नियर ने अपनी आंखों से बादशाह शाहजहां और औरंगजेब (1628-1707) के समय देखा कि अभागे किसानों, उनकी स्त्रियों और बच्चों को कर-संग्राहकों द्वारा बेचने के लिये ले जाया जा रहा था।

दासों का मूल्य: अधिकांश घटनाओं में यह नहीं बताया गया है कि किस मूल्य पर दासों की बिक्री की जाती थी। केएस लाल ने भारतीय दासों के मूल्यों पर उपलब्ध सूचना के आधार पर संक्षिप्त रूप से जो बताया है, वह नीचे दिया गया है।[859] सुल्तान महमूद ने राजा जयपाल को छोड़ने के लिये '200,000 स्वर्ण दीनार और 250 हाथियों' की फिरौती ली थी और इसके अतिरिक्त राजा जयपाल के गले से जो माला उसने ली थी, उसका मूल्य 200,000 स्वर्ण दीनार के आसपास था।' अल-उत्बी हमें बताता है कि 1019 ईसवी में सुल्तान महमूद अपने साथ जो 53,000 बंदी लाया था, उन्हें दो से दस दिरहम प्रति बंदी के मूल्य पर बेचा गया था। हसन निजामी ने लिखा है, 'नमक-कोह के हिंदुओं पर मुहम्मद गोरी और कुत्बुद्दीन ऐबक द्वारा किये गये हमलों को जोड़ दिया जाए, तो वे दोनों वहां से इतने लोगों को बंदी बनाकर ले गये थे कि 'एक-एक दीनार पर पांच-पांच हिंदू बंदियों को क्रय किया जा सकता था।'

भारत में दास-व्यापार इतना प्रमुख व्यापारिक कार्य बन गया था कि कुछ शासकों ने मूल्य निर्धारण कर दास-बाजारों को नियमित करने का बीड़ा उठाया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय भारतीय बाजार दासों से भरे रहते थे। उसने लौंडी (रखैल) बनाने के लिये क्रय की जाने वाली सुंदर लड़की का मूल्य बीस-तीस तन्खा और कभी-कभी चालीस तन्खा (दस तन्खा एक स्वर्ण सिक्के के बराबर होता था) निर्धारित किया था, जबकि पुरुष दासों का मूल्य 100-200 तन्खा रखा गया था।[860] थोक में दासों की बिक्री के लिये विशेष व्यवस्थाएं की जाती थीं। यद्यपि, दासों की विशाल खेप आने के समयों में आपूर्ति व मांग का नियम लागू होता था और निर्धारित उच्च दरों पर मूल्य नहीं रह पाते थे। इसके विपरीत, जब आपूर्ति कम होती थी, तो मूल्य अधिक हो जाते थे। विशेष महत्व के बंदियों जैसे कि राजपरिवार या कुलीन परिवारों के लोग, कम आयु, असाधारण सुंदरता अथवा असाधारण सैन्य क्षमता वाले बंदियों की बिक्री के समय उनका मूल्य 1,000 से 2,000 तन्खा तक चढ़ जाता था। शायर बद्र शाह ने कथित रूप से गुल-चेहरा नामक एक दासी को 900 तन्खा में क्रय किया था, जबकि प्रसिद्ध कमांडर मलिक काफूर को हजारदीनारी कहा जाता था, जिसका तात्पर्य यह है कि उसे एक हजार दीनार में क्रय किया गया था।

सुलतान अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद के सुल्तान दासों के मूल्य-नियंत्रण से दूर रहे। महमूद शाह तुगलक के शासन (शासन 1325-51) काल में बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाये गये लोगों की संख्या विशाल थी और उनका मूल्य इतना घट गया

---

[858] इबिद, पृष्ठ 51

[859] इबिद, पृष्ठ 120-27

[860] दास बनाये गये बच्चों को ऊंचे मूल्य पर क्रय किया जाता था, क्योंकि वे जीवन भर अपने मालिक की सेवा कर सकते थे और मालिक जो चाहता, उस काम को कराने में उन्हें सरलता से संभाला जा सकता था, विशेष रूप से उन्हें काफिरों के विरुद्ध जिहाद करने के लिये निर्दयी फौजी (जैनीसरी फौजियों के जैसे) बनाया जा सकता था।

कि ''दिल्ली में घरेलू कार्यों के लिये एक युवा दास लड़की का मूल्य आठ तन्खा से अधिक नहीं पहुंचता था। जो लड़कियां घरेलू कार्यों को करने और लौंडी बनने की दोहरी उपयुक्तता रखती थीं, उनकी बिक्री लगभग पंद्रह तन्खा में होती थी।'' बतूता ने बंगाल से एक सुंदर लड़की (बलपूर्वक दास बनायी गयी) को एक स्वर्ण-सिक्का (दस तन्खा) में क्रय किया था, जबकि उसका एक दोस्त एक युवा लड़की (दास) को दो स्वर्ण-सिक्का देकर क्रय किया था।

बर्नी ने लिखा है, चूंकि मुस्लिम सुल्तान व्यसन और व्यभिचारपूर्ण जीवन में लिप्त होने लगे और हजारों की संख्या में लौंडी एवं बड़ी संख्या में गिलमा लाकर विशाल हरम बनवाये, ''तो अधिक मांग के कारण सुंदर लड़कियां और दाढ़ीरहित लड़के दुर्लभ वस्तु बन गये और उनके मूल्य 500 तन्खा तक चढ़ गये तथा कभी-कभी तो उनके मूल्य एक हजार से दो हजार तन्खा तक चढ़ जाते थे।'' अल-उमरी ने भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा है कि ''दासों के निम्न मूल्य के बाद भी, युवा भारतीय लड़कियों के लिये 2000 तन्खा या इससे भी अधिक दिया जाता था।'' जब उमरी ने इसका कारण पूछा, तो उसे बताया गया कि 'ये युवा लड़कियां अपनी सुंदरता और सभ्यता में अद्वितीय हैं।'

प्रतिभावान और विलास की वस्तु माने जाने वाले विदेशों के दासों की भारी मांग थी और भारतीय बाजारों में उन्हें लाया जा रहा था। फौज में महत्वपूर्ण पदों पर रखने, लौंडी के रूप में रखने अथवा हरम की औरतों की निगरानी करने जैसे विशेष कार्यों में लगाने के लिये विदेशी मूल के पुरुष और स्त्री दोनों को बड़े मूल्य पर लाया जाता था। औरंगजेब अपने हरम की पहरेदारी के लिये तार्तार और उज्बेक स्त्रियों को लाया था, क्योंकि वे लड़ाका प्रवृत्ति व उच्च कोटि की दक्षता वाली मानी जाती थी, जबकि पूर्वी यूरोप की एक औरत उसकी सेक्स-स्लेव (लौंडी) थी। सुल्तान कुत्बुद्दीन ऐबक ने 100,000 जीतल (2000 तन्खा) देकर दो निपुण तुर्की दासों को क्रय किया था, जबकि सुल्तान इल्तुमिश ने 50,000 जीतल देकर कमरुद्दीन तैमूर खान को क्रय किया था।[861]

मोरक्को में सुल्तान मौले इस्माइल ने 1715 में जल-दस्युओं द्वारा बंदी बनाये गये थॉमस पेलो और उसके चालक दल को 15-15 पौंड में क्रय किया था। यद्यपि सार्वजनिक हाटों में गोरे दासों का मूल्य 30 से 35 पौंड के बीच होता था, किंतु इनमें युवा लड़कों को 40 पौंड पर भी बेचा जाता था। वृद्ध और दुर्बल पुरुषों को कम मूल्य में बेचा जाता था। एक बार तो यहूदी व्यापारियों ने एक बंदी का मूल्य 15 पौंड से चढ़ाकर 75 पौंड कर दिया था।[862] लगभग सात दशक पूर्व (1646), जब ब्रिटिश सरकार ने व्यापारी एडमंड कैसन को अल्जीयर्स भेजकर सुल्तान के महल में रखे गये ब्रिटिश बंदियों को क्रय करके वापस लाने भेजा था और उन्होंने प्रति बंदी 38 पौंड चुकाकर उन्हें मुक्त कराया,[863] किंतु महिला बंदियों को मुक्त कराना अत्यंत महंगा पड़ा। एडमंड ने सारा रीप्ले के लिये 800 पौंड, एलिस हैस के लिये 1,100 पौंड और मैरी ब्रूस्टर के लिये 1,392 पौंड चुकाया।[864] आपूर्ति में प्रचुरता से

---

[861] लाल (1994), पृष्ठ 130-35

[862] मिल्टन, पृष्ठ 69-70, 77

[863] एट दिस टाइम, ऐन ऑर्डिनरी लंडन शॉपकीपर अर्न्ड 10 पौंड ए ईयर, व्हाइल वेल्दी मर्चेंट्स मेड 40 पौंड एट बेस्ट

[864] मिल्टन, पृष्ठ 27

उपलब्ध रहने वाले अश्वेत दासों का मूल्य बहुत कम हुआ करता था। 1680 ईसवी के आसपास, यूरोपीय दास-व्यापारियों ने गैम्बियाई तट से युवा अश्वेत दासों को प्रति दास 3.4 पौंड के मूल्य पर क्रय किया था, जबकि देशी दास-व्यापारियों ने उन्हें एक से तीन पौंड के बीच मूल्य पर क्रय किया, उनका मूल्य इस पर निर्भर करता था कि तट से वे कितनी दूरी पर स्थित हैं।[865]

सीमा-पार दास-व्यापारः समूची इस्लामी दुनिया में दास-व्यापार प्रमुख व्यापारिक उपक्रम था। भारत के अतिरिक्त उत्तरी अफ्रीका, मध्यपूर्व (बगदाद व दमाकस) एवं खुरासान, मध्य एशिया के गजनी व समरकंद दास-व्यापार के प्रमुख केंद्र थे। बादशाह बाबर (मृत्यु 1530) ने दो ऐसे बड़े व्यापार-हाटों काबुल और कांधार के बारे में लिखा है, जहां भारत से आने वाले कारवां में दास लाये जाते थे। काबुल में ऐसे ही कारवां खुरासान, रूम (इस्तांबुल), ईराक व चीन से आते थे।

व्यापारी इस्लामी तुर्की, सीरिया, फारस और ट्रांसॉक्सियाना से भारत में मुस्लिम शासकों के लिये दासों की खेप लाया करते थे। भारत में भी मुस्लिम शासक विदेशी दासों को क्रय करने के लिये विदेशों में व्यापारियों को भेजते थे। विदेशी दासों को मूल्यवान वस्तु माना जाता था। सुल्तान इल्तुमिश ने विदेशी दासों को क्रय करने के लिये एक बार व्यापारियों को समरकंद, बुखारा और तिरमिज़ भेजा था। वो व्यापारी सुल्तान के लिये 100 दास लेकर आये थे, जिसमें प्रसिद्ध बलबन भी था। बलबन ने ही 1265 में गद्दी पर कब्जा किया था। उज्बेकिस्तान और तार्तारिस्तान से भी दास भारत आ रहे थे। भारत में मुस्लिम शासकों ने बड़ी संख्या में विदेशी दासों को क्रय करके उन्हें फौज सहित अन्य महत्वपूर्ण पदों पर बिठाया था। इसका संभवतः यह उद्देश्य रहा होगा कि घरेलू विद्रोहों को थामा जा सके। यहां तक कि अकबर के दरबार, जिसमें पहली बार हिंदुओं के नियुक्ति का अवसर मिला था, में भी विदेशियों का प्रभुत्व था। उसके वजीर अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर द्वारा की गयी शाही नियुक्तियों में 70 प्रतिशत लोग विदेशी मूल के थे। शेष 30 प्रतिशत में आधे मुसलमान थे और आधे हिंदू।[866]

मुस्लिम दुनिया में दास-व्यापार के विस्तार व विविधता के विषय में लेविस ने लिखा है:[867]

> इस्लामी दुनिया की दास जनसंख्या को अनेक देशों से लाया जाता था। आरंभिक दिनों में दास प्रमुख रूप से नये जीते हुए देशों यथा फर्टाइल क्रिसेंट व इजिप्ट, ईरान व उत्तरी अफ्रीका, मध्य एशिया, भारत और स्पेन से लाये जाते थे। जब जीत और लोगों को बंदी बनाकर दासों की आपूर्ति करने की गति मंद पड़ गयी, तो दास बाजार के मांग की पूर्ति सीमा पार क्षेत्रों से दासों को आयात करके की जाने लगी। भारत, चीन, दक्षिणपूर्व एशिया और बैजेंटाइन साम्राज्य से तो दास कम आयात किये गये और जो दास लाये भी गये, उनमें से अधिकांश किसी न किसी प्रकार के विशेषज्ञ या तकनीक प्रवीण थे। अकुशल दासों की बड़ी संख्या इस्लामी दुनिया के आसपास स्थित उत्तर व दक्षिण क्षेत्रों से आयी- गोरे दास यूरोप और यूरेशिया मैदान क्षेत्र से आये और अश्वेत दास सहारा रेगिस्तान के अफ्रीका दक्षिण से आये।

---

[865] कर्टिन पीडी (1993) द ट्रॉपिकल अटलांटिक ऑफ द स्लेव ट्रेड इन इस्लामिक एंड यूरोपियन एक्पैंसन, इन ऐडस एम ईडी., पृष्ठ 174

[866] मोरलैंड (1995), पृष्ठ 69-70

[867] लेविस (1994), ओप सिट

इस्लामी दुनिया में अश्वेत दास कई मार्गों से लाये गये-सहारा रेगिस्तान होते हुए पश्चिम अफ्रीका से मोरक्को और ट्यूनिशिया तक लाये गये, थार होते हुए चाड से लीबिया तक लाये गये, नील नदी होते हुए पूर्वी अफ्रीका से इजिप्ट तक लाये गये, लाल सागर व हिंद महासागर होते हुए अरब और फारस की खाड़ी तक लाये गये। मैदानी भागों के तुर्की दासों को समरकंद व अन्य मुस्लिम मध्य एशियाई शहरों में बेचा गया, जहां उसे उन्हें ईरान, फर्टाइल क्रिसेंट और इससे भी आगे पहुंचाया गया। काकैसिया से लोग दास बनाकर काला सागर और कैस्पियन सागर को जोड़ने वाले भूभाग से लाये गये और मुख्यतः अलेप्पो व मोसुल के बाजारों में बेचे गये।

सैगल के अनुसार, मुस्लिम व्यापारियों ने सहारा मरुस्थल (रेगिस्तान) से होते हुए छह बड़े मार्गों से लाल सागर तट से लेकर मध्य पूर्व तक से दासों को क्रय किया। पूर्वी अफ्रीका से दासों को हिंद महासागर से होते हुए लाया गया। जैसा कि पहले ही उल्लिखित है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही लगभग 1,200,000 दासों को सहारा मरुस्थल होते हुए मध्य पूर्व के बाजारों तक लाया गया था, जबकि लाल सागर से होकर 450,000 और पूर्वी अफ्रीकी तट बंदरगाहों से 442,000 दास लाये गये थे। सैगल ने अफ्रीकी बाजारों में दास-व्यापार की आंखों देखी स्थिति निम्न प्रकार से लिखी हैः

1570 ईसवी के दशक में इजिप्ट की यात्रा करने वाले एक फ्रांसीसी व्यक्ति ने काहिरा में बाजार के दिनों में कई हजार अश्वेतों को बिकने के लिये देखा था। 1665-66 ईसवी में स्पेनी/बेल्जियन यात्री फादर एंटोनियास गोंजालीज ने काहिरा के बाजार में एक दिन में 8,00-1,000 दासों के बिकने का उल्लेख किया है। 1796 ईसवी में एक ब्रिटिश यात्री ने दारफुर से 5,000 दासों का कारवां जाने का उल्लेख किया है। 1849 ईसवी में ब्रिटिश वाइस कांसुल ने फेज़्ज़ान (उत्तरपश्चिम अफ्रीका) के मुर्ज़ूक में 2,384 दासों के पहुंचने के विषय में लिखा है।[868]

यूरोपीय दास

मुस्लिम दुनिया में यूरोप से आने वाले दासों के विषय में लेविस ने आगे लिखा हैः

यूरोप में दासों का महत्वपूर्ण व्यापार था। मुस्लिम, यहूदी, मूर्तिपूजक और यहां तक कि रुढ़िवादी ईसाई... मध्य व पूर्व यूरोपीय दास, जिन्हें सामान्यतः सक़ालिबा (अर्थात दास) के रूप में जाना जाता था, तीन मुख्य मार्गों से लाये जाते थेः फ्रांस और स्पेन होते हुए भूमि मार्ग से, क्रीमिया होते हुए पूर्वी यूरोप से और भूमध्यसागर होते हुए समुद्र मार्ग से। उनमें से अधिकांशतः दास होते थे, परंतु सब नहीं। कुछ यूरोपीय तटों पर मुस्लिमों के समुद्री हमलों में पकड़े गये होते थे, विशेष रूप से डैलमेशन। अधिकांश दासों की आपूर्ति यूरोपीय दास व्यापारियों, विशेष रूप से वेनिस के दास व्यापारियों द्वारा की जाती थी। वे यूरोपीय दास-व्यापारी उन दासों की खेप को स्पेन और उत्तरी अफ्रीका के मुस्लिम बाजारों तक पहुंचाते थे।

मोरक्को, ट्यूनिशिया, अल्जीरिया और लीबिया में शाही फौज व हवेलियों और धनी लोगों के प्रतिष्ठानों में लौंडी (रखैल) के रूप में सेवा देने के लिये यूरोपीय दासों की विशेष मांग होती थी। गाइल्स मिल्टन की पुस्तक व्हाइट गोल्ड ओर रॉबर्ट डेविस की पुस्तक क्रिश्चियन स्लेव्स, मुस्लिम मास्टर्स के अनुसार 1530 के दशक से ही निरंतर तीन दशकों तक अफ्रीका के मुस्लिम जल-दस्यु

---

[868] सैगल, पृष्ठ 59

सिसिली से लेकर कॉर्नवाल तक यूरोपीय तटों व गांवों एवं यूरोपीय पोतों पर हमले किये और (अनेक अमरीकी समुद्री नाविकों सहित) दस लाख यूरोपियों को बंदी बनाकर दास बनाया। ब्रिटिश मानववादी लेखक क्रिस्टोफर हिचेंस ने दास बनाने की इन घटनाओं की पड़ताल की: 'कितने लोग जानते हैं कि 1530 और 1780 के मध्य इस्लामी उत्तरी अफ्रीका में संभवतः पंद्रह लाख यूरोपीय व अमरीकी लोग दास बनाकर लाये गये? ...और आयरलैंड के बाल्टीमोर नगर के उन लोगों का क्या, जिन्हें 'समुद्री डाकू' हमलावर एक ही रात बंदी बनाकर ले गये थे?' [869]

बर्बरीक मुस्लिम जल-दस्युओं ने उत्तरी अफ्रीका के तटीय जलक्षेत्र (बर्बरीक तट) से यूरोपीय पोतों के लोगों का अपहरण किया था। उन्होंने अटलांटिक तटीय मछुआरे गांवों व यूरोप के नगरों पर भी हमला किया, लूटा और स्थानीय निवासियों को बंदी बनाया। इटली, स्पेन, पुर्तगाल और फ्रांस इन हमलों से सर्वाधिक प्रभावित हुए। मुस्लिम हमलावरों ने दूर स्थित ब्रिटेन, आयरलैंड और आइसलैंड में लोगों को पकड़ा।

1544 ईसवी में इटली के नैपल्स तट स्थित इस्चिया द्वीप को तहस-नहस करते हुए 4,000 स्थानीय लोगों को बंदी बनाया, जबकि सिसिली के उत्तरी तट स्थित लिपारी द्वीप से लगभग 9,000 लोगों को बंदी बनाकर दास बनाया गया।[870] तुर्की जल-दस्यु मुखिया तुर्गुत रेईस ने 1663 में ग्रेनाडा (स्पेन) की तटीय बस्तियों को उजाड़ दिया था और वह 4,000 लोगों को बंदी बनाकर ले गया था। 1625 ईसवी में बर्बरीक समुद्री लुटेरों ने ब्रिस्टल चैनल में लुंड द्वीप पर कब्जा कर लिया और वहां इस्लाम मानक लागू कर दिये। इस द्वीप को आधार बनाकर वे आसपास के गांवों व नगरों को छानते रहे और लूटते रहे, जिसमें भयानक मारकाट, नरसंहार और लूटपाट हुआ। मिल्टन के अनुसार, 'दिन-प्रतिदिन वे निहत्थे मछुआरे समुदाय पर हमला करते, स्थानीय लोगों को बंदी बनाते और उनके घरों में आग लगा देते। प्लाईमाउथ के मेयर ने गिना कि 1625 ईसवी के भयानक ग्रीष्मकाल के अंत तक 1,000 छोटी नावों को नष्ट कर दिया गया है और इतनी ही संख्या में ग्रामीणों को बंदी बनाकर ले जाया गया है।'[871] 1609 और 1616 के मध्य बर्बरीक समुद्री लुटेरों ने 466 अंग्रेजी व्यापारिक पोतों को लूटा।

इस्लाम में धर्मांतरित एक यूरोपीय मुराद रेईस मोरक्को के तट पर जल-दस्युओं के नगर सेल में बर्बरीक समुद्री लुटेरों का मुखिया बना। 1627 ईसवी में वह आइसलैंड को लूटने और स्थानीय लोगों को बंदी बनाने के अभियान पर निकला। रेयक्जाविक में अपना डेरा डालने के बाद उसके जिहादियों ने पूरे नगर में लूटमार की और 400, पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाकर लाए , जिन्हें उसने अल्जीयर्स में बेचा। 1631 ईसवी में वह 200 समुद्री लुटेरों को साथ लेकर दक्षिणी आयरलैंड के तट की ओर लूटपाट

---

[869] हिचेंस सी (2007) जेफरसन वर्सेज द मुस्लिम पाइरेट्स, सिटी जर्नल, स्प्रिंग इशू

[870] पोवोलेडो ई (2003), द मिस्टेरीज एंड मैजेस्टीज ऑफ द एओलियन आइसलैंड्स, इंटरनेशनल हेराल्ड ट्रिब्यून, 26 सितम्बर

[871] मिल्टन पृष्ठ 11

के लिये बढ़ा और बाल्टीमोर के गांव में लूटमार और लूटपाट करने के बाद वह 237 पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाकर अल्जीयर्स ले आया।[872]

मुस्लिम समुद्री-लुटेरों की दास बनाने और हमला करने की बर्बर गतिविधियों का यूरोप पर प्रभाव पड़ा। फ्रांस, इंग्लैंड और स्पेन को अपने हजारों पोत खोने पड़े और उनका समुद्री-मार्ग का व्यापार नष्टप्राय हो गया। उन्नीसवीं सदी के पहले तक स्पेन और इटली में तटों की लंबी पट्टियों को स्थानीय निवासियों ने लगभग छोड़ दिया। उनका परिष्करण उद्योग एक प्रकार से नष्ट हो गया।

पाल बैप्लर ने अपनी पुस्तक व्हाइट स्लेव्स, अफ्रीकन मास्टर्सः एन एंथोलॉजी ऑफ अमेरिकन बार्बरी कैप्टिविटी नैरेटिव्स में उत्तरी अफ्रीका में बंदी बनाकर रखे गये नौ अमरीकियों की व्यथा का वर्णन करते हुए निबंध लिखे हैं। उनकी पुस्तक के अनुसार, 1620 ईसवी तक केवल अल्जीयर्स में ही 20,000 से अधिक गोरे ईसाई दास थे; 1630 ईसवी आते-आते वहां ईसाई दासों की संख्या बढ़कर 30,000 पुरुष और 2,000 स्त्रियां हो गयी। अहमद एज़्ज़यानी ने लिखा है, सुल्तान मौले इस्माइल के महल में किसी भी समय कम से कम 25,000 गोरे दास होते थे; अल्जीयर्स में 1550 व 1730 के बीच 25,000 गोरे दासों की जनसंख्या बनी हुई थी और कभी-कभी तो उनकी संख्या इसकी दोगुनी भी रही। इसी अवधि में ट्यूनिश और त्रिपोली में लगभग 7,500 गोरे दास थे। बर्बरीक समुद्री लुटेरों ने लगभग तीन सदियों में प्रतिवर्ष 5,000 यूरोपीय लोगों को बंदी बनाकर दास बनाया।[873]

बर्बरीक मुस्लिम अफ्रीका में दास के रूप में सेवा देने वाला अति प्रसिद्ध यूरोपीय ईसाई मिगुएल डी सरवैंटीज था, जो डॉन क्विक्सोट महाकाव्य का प्रसिद्ध स्पेनी लेखक था। उसे बर्बरीक समुद्री लुटेरों द्वारा 1575 में बंदी बनाया गया था और बाद में फिरौती लेकर उसे छोड़ा गया था।

1350 ईसवी में यूरोप में उस्मानिया सल्तनत के प्रवेश और इसके बाद 1453 ईसवी में कुस्तुंतुनिया पर उनके नियंत्रण से यूरोपीय सीमा पर दास-व्यापार गतिविधियों की बाढ़ आ गयी। 1683 ईसवी में यूरोप को रौंदने के अपने अंतिम प्रयास में उस्मानिया अर्थात तुर्क 80,000 लोगों को बंदी बनाकर वियना के द्वारा से लौट आये थे, यद्यपि तुर्क इस प्रयास में पराजित हुए थे।[874] क्रीमिया, बल्कान और पश्चिम एशिया के मैदानों से बहुत बड़ी संख्या में दास इस्लामी बाजारों में लाये जाने लगे। बीडी डेविस ने लिखा है कि ''तार्रतरी व अन्य काला सागर निवासियों ने लाखों की संख्या में यूक्रेनियाई, जार्जियाई, किरकैसियाई, आर्मेनियाई, बुल्गारियाई, स्ल्वज और तुकों को बेचा था,'' किंतु इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।[875] क्रीमियाई तार्तारों ने 1468 से 1694

---

[872] मिल्टन, पृष्ठ 13-14; लेविस बी (1993) इस्लाम एंड द वेस्ट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ 74

[873] मिल्टन, पृष्ठ 99, 271-72

[874] एर्डेम वाईएच (1996) स्लेवरी इन द ओटोमन एम्पायर एंड इद्ध डिमाइज, 1800-1909, मैक्मिलन, लंदन, पृष्ठ 30

[875] लाल (1994), पृश्इ 132

ईसवी के मध्य 1,75,000 यूक्रेनियाई, पोलिश और रूसी लोगों को दास बनाया और बेचा।[876] एक और अनुमान के अनुसार 1450 से 1700 ईसवी के मध्य क्रीमियाई तार्तारों ने उस्मानिया सल्तनत को प्रतिवर्ष कुछ किरकैसियाइयों सहित लगभग 10,000 दासों का निर्यात किया, कुल मिलाकर उस्मानिया सल्तनत के पास 2,500,000 लोगों को दास बनाकर भेजा।[877] लोगों को पकड़कर दास बनाने वाले तार्तार खान पोलैंड (1463) से 18,000, लवोव (1498) से 100,000, दक्षिणी रूस (1515) से 60,000, गैलीसिया (1516) से 50,000-100,000, मास्को (1521) से 800,000, दक्षिणी रूस (1555) से 200,000, मास्को (1571) से 100,000, पोलैंड (1612) से 50,000, दक्षिणी रूस (1646) 60,000, पोलैंड (1648) से 100,000, यूक्रेन (1654) से 300,000, वलैनिया (1676) से 400,000 और पोलैंड (1694) से हजारों लोगों को बंदी बनाकर अपने साथ ले आये थे। दूसरे देशों के लोगों को बंदी बनाकर दास बनाने की इन बड़ी घटनाओं के अतिरिक्त इसी काल में जिहाद के अनगिनत हमले हुए, जिसमें लाखों की संख्या में लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाया गया।[878] दास बनाने के इन आंकड़ों को देखते समय हमें यह अवष्य ध्यान रखना चाहिए कि उस समय तार्तार खानों की जनसंख्या मात्र 400,000 के आसपास थी।[879]

वाइकिंग दास-व्यापार और मुस्लिम संबंध

इस्लाम के जन्म के बाद सातवीं व आठवीं सदी में मुस्लिम हमलावरों और शासकों ने विशाल संख्या में काफिरों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाया और मुस्लिम दुनिया में दास-व्यापार को फलता-फूलता व्यवसाय बना दिया। आठवीं सदी के अंत में यूरोप में वाइकिंग नामक दास बनाने वाले गैर-मुस्लिम गिरोह का उदय हुआ। वाइकिंग उत्तरी यूरोप के निवासी थे और उनका मूल स्कैंडिनविया (स्वीडन, डेनमार्क) में था। ये आठवीं से ग्याहरवीं सदी के मध्यम बर्बर आक्रांता दल बनकर उभरा। तथाकथित बर्बर जर्मन जाति से संबंध रखने वाला यह दल ब्रिटिश आइसल्स और यूरोपीय महाद्वीप से लेकर दूर स्थित पूरब के रूस की वोल्गा नदी तक आक्रमण और समुद्री लूटपाट में संलिप्त था। 'अपने लंबे जल-पोतों के लिये प्रसिद्ध वाइकिंगों ने तीन शताब्दी तक यूरोपीय महाद्वीप, आयरलैंड, नॉरमैंडी, द शेटलैंड, ऑर्कने और फैरो आइसलैंड, आइसलैंड, ग्रीनलैंड और न्यूफाउंडलैंड के समुद्री तटों व नदियों के किनारे अपने अधिवास (बस्तियां) बना लिये थे। ये लुटेरे, व्यापारी अथवा भाड़े का सैनिक बनकर उत्तरी अफ्रीका के दक्षिणी छोर, रूस के पूर्वी छोर और कुस्तुंतुनिया तक गये। दसवीं शताब्दी में एरिक द रेड के उत्तराधिकारी लीफ इरिक्सन के नेतृत्व में वे उस स्थान, जिसे आज कनाडा कहा जाता है, पर प्रसिद्ध आक्रमण अभियान चलाते हुए उत्तरी अमरीका पहुंच गये। दसवीं शताब्दी के अंत और ग्याहरवीं शताब्दी में स्कैंडिनविया में ईसाई धर्म आने के साथ ही वाइकिंगों का समुद्री आक्रमण कम होता

---

[876] फिशर एडब्ल्यू (1972) मस्कोवी एंड द ब्लैक सी स्लेव ट्रेड, इन कनाडियन-अमेरिकन स्लेविक स्टडीज, 6(4), पृष्ठ 577-83, 592-93

[877] इनैलिक एच (1997) एन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ ओटोमन एम्पायर, 1300-1600, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, अंक 1, पृष्ठ 285; फिशर, पृष्ठ 583-84

[878] बोस्टन, पृष्ठ 679-81

[879] विलियम्स बीजी (2001) द क्रीमियन तार्तार्सः द डायस्पोरा एक्सपीरियंस एंड द फोर्जिंग ऑफ ए नेशन, ईजे ब्रिल, लीडेन, पृष्ठ 68-72

गया।'[880] वाइकिंगों के उदय व प्रभुत्व का काल 793 ईसवी से 1066 ईसवी तक रहा और इसे वाइकिंग युग के नाम से जाना जाता है।

यूरोप के तटों पर निर्दोष व शांतिप्रिय परिवारों व समुदायों पर बर्बरतापूर्ण आक्रमण करने के उनके व्यवसाय में वयस्कों की हत्या और बच्चों व युवा महिलाओं को दास बनाकर बेचने के लिये बंदी बनाने की कठोर निंदा की जाती है। इतिहासकारों को लगता है कि वाइकिंगों के उदय व प्रसार के मुख्य कारण जनसंख्या आधिक्य, तकनीकी अविष्कार और जलवायु परिवर्तन थे और इसके अतिरिक्त 785 ईसवी में रोमन सम्राट चार्लमैग्ने द्वारा फ्रीजियों के समुद्री-बेड़े को नष्ट कर दिये जाने के बाद मध्य यूरोप से स्कैंडिनविया के बीच व्यापार व वस्तुओं की आपूर्ति में बाधा पहुंचना भी कारण था।

यद्यपि इस तथ्य पर न के बराबर ध्यान दिया जाता है कि दास-व्यापार में उनकी संलिप्तता में इस्लाम का क्या प्रभाव और भूमिका थी। 732 ईसवी में तुअर्स के युद्ध में मुस्लिम फौज की पराजय से यूरोपीय सीमाओं पर इस्लामी जीत नाटकीय ढंग से लुप्त हो गयी। यहां तक कि मुस्लिमों को उन क्षेत्रों से भी पीछे हटना पड़ा, जिस पर उन्होंने पहले ही नियंत्रण कर लिया था। इसके बाद इस्लामी दुनिया के मुस्लिम हरमों में लौंडी (रखैल) के रूप में रखने के लिये यूरोप की बहुमूल्य गोरी स्त्रियों को पकड़कर दासी बनाने की गतिविधियां तीव्रता से घट गयीं।

चूंकि जंगों व हमलों के माध्यम से गोरों की स्त्रियों को पकड़कर सेक्स-स्लेव्स (लौंडी) बनाना घट गया, तो मुस्लिम दुनिया में असंयत व सनकी मांग को पूरा करने के लिये दासों को क्रय करना एक विकल्प बन गया। उन्मत वाइकिंग आक्रमणकारियों का उदय होने पर स्कैंडिनवियाई फर-व्यापारी यूरोप-अरब व्यापारिक केंद्र बुल्गार वोल्गा (रूस में) पहुंचे और वहां मुस्लिम दुनिया के उन व्यापारियों से उनकी भेंट हुई, जिन्हें इस्लामी हरमों के लिये गोरी स्त्रियों की बड़ी आवश्यकता थी। बर्बर वाइकिंगों ने इसके बाद मुस्लिम दुनिया के व्यापारियों को बेचने के लिये युवा गोरी स्त्रियों को पकड़ने के काम में लग गये। इससे पहली बार मुस्लिम दुनिया का दास-व्यापार के पूर्वी यूरोपीय मार्ग का द्वार खुला। स्पेन के मार्ग से गोरे दासों की आपूर्ति का मार्ग शीघ्र ही अस्तित्व में आ गया। उत्तरी यूरोप में ईसाई धर्म के प्रसार के साथ ही वाइकिंग दास-व्यापार कम होता गया और अंततः समाप्त हो गया।

वाइकिंग युग की समाप्ति पर भी इस्लामी दुनिया में गोरे दासों की आपूर्ति रुकी नहीं। वाइकिंग दास-व्यापार समाप्त होने के बाद मुस्लिम दुनिया में गोरे दासों की आपूर्ति के लिये मुस्लिम हमलावरों ने ही धीरे-धीरे यूरोप में गोरे लोगों को पकड़कर दास बनाने के अभियानों का विस्तार कर लिया और वाइकिंग आपूर्तिकर्ताओं का स्थान ले लिया। 1353 ईसवी में उस्मानिया तुर्क कुस्तुंतुनिया को छोड़ते हुए यूरोप तक पहुंच गये और यूरोप के विरुद्ध जिहाद के नये अभियान प्रारंभ करते हुए बुल्गारिया और सर्बिया को रौंद डाला। इससे मुस्लिमों द्वारा गोरे लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने की घटनाएं कई गुना बढ़ गयीं। उन तुर्कों ने 1430 ईसवी में थेस्सालोनिको (यूनान) पर हमला करके 7,000 गोरे लोगों को पकड़कर दास बनाया; जबकि 1499 ईसवी में मेथोन (यूनान) पर भयानक हमले में उस्मानिया सुल्तान बायजीद द्वितीय ने दस वर्ष से ऊपर के सभी पुरुषों को काट डाला और ''स्त्रियों व बच्चों''

---

[880] वाइकिंग, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Vikings

को पकड़ लिया।[881] फारसी सुल्तान शाह तहमास्प (मृत्यु 1576) ने 1553 ईसवी में जार्जिया पर हमला किया और 30,000 से अधिक स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाया। 1551 ईसवी में जार्जिया के उसके अभियान में गाजियों ने पुरुषों को मार डाला और उनकी पत्नियों व बच्चों को बंदी बना लिया।' सुल्तान ने पहले भी 1540 और 1546 ईसवी में जार्जिया के विरुद्ध दो सफल अभियान चलाये थे, किंतु इन अभियानों में बंदी बनाये गये लोगों की संख्या उपलब्ध नहीं है।[882] उस्मानिया और सफाविदों ने सत्रहवीं सदी के अंत तक यूरोपीय भूभागों पर अनगिनत हमले किये। 1683 ईसवी में वियना की घेराबंदी में पराजय और भारी क्षति मिलने के बाद उस्मानिया तुर्क 80,000 बंदियों को लेकर वापस लौट गये। इससे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उनके अभियानों में बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाया जाता था।

इस बीच तार्तार खानों ने पंद्रहवीं सदी के मध्य में पूर्वी यूरोप और रूस में अनेकों जिहादी अभियान (रज्जिया) छेड़े और सैकड़ों-हजारों की संख्या में गोरे लोगों को पकड़कर दास बनाया। उत्तरी अफ्रीकी बर्बरीक समुद्री लुटेरे भी सिसिली से लेकर कॉर्नवाल तक यूरोपीय तटीय नगरों पर निरंतर हमला कर रहे थे और गोरे लोगों को पकड़कर दास बना रहे थे। इन बर्बरीक समुद्री लुटेरों ने 1530 से 1780 के मध्य दस लाख से अधिक गोरे पुरुषों व स्त्रियों को पकड़कर दास बनाया। बर्बरीक समुद्री लुटेरों द्वारा गोरे दासों का शिकार करना 1820 के दशक तक चलता रहा।

यूरोपीय दास-व्यापार एवं इस्लामी सह-अपराध

सभी स्थानों के मुस्लिम व गैर-मुस्लिम और यहां तक कि पश्चिम के लोग भी यूरोपीय दास-व्यापारियों द्वारा चलाये जा रहे ट्रांस-अटलांटिक दास-व्यापार, जिसमें दसियों-लाख अफ्रीकी दासों को नये विश्व में भेजा गया था, की घोर निंदा करते पाये जाते हैं। किंतु इस्लामी दास-व्यापार का विषय आते ही उसे अनछुआ कर दिया जाता है, उस पर चुप्पी साध ली जाती है और एक प्रकार से उसे भुला दिया जाता है।

नये विश्व को यूरोपीय दासों की आपूर्ति तब प्रारंभ हुई जब पवित्र रोमन सम्राट चार्ल्स पंचम ने 1519 ईसवी में प्रथम बार दास-व्यापार में यूरोप की संलिप्तता को मान्यता दी। यूरोपीयों में दास बनाने के लिये कुख्यात पुर्तगाली और स्पेनी सबसे पहले इस लुभावने व्यवसाय में कूदे और इसके बाद डच और फ्रांसीसी भी इसमें उतर गये। ब्रिटेन के राजा चार्ल्स प्रथम ने 1631 में सबसे पहले दास-व्यापार को मान्यता दी और उनके बेटे चार्ल्स द्वितीय ने 1672 में रॉयल चार्टर के द्वारा इसे पुनः लागू किया। ऐसा अनुमान है कि लगभग एक करोड़ दस लाख अफ्रीकियों को दास बनाकर नये विश्व में भेजा गया था। इनमें से 40 लाख (35.4 प्रतिशत) पुर्तगाली नियंत्रण वाले ब्राजील भेजे गये, 25 लाख (22.1 प्रतिशत) दक्षिण व मध्य अमरीका के स्पेनी उपनिवेशों में भेजे

[881] बोस्टन, पृष्ठ 613, 619

[882] इबिद, पृष्ठ 620-21

गये, 20 लाख (17.7 प्रतिशत) ब्रिटिश वेस्ट इंडीज-अधिकांशतः जमैका भेजे गये, 16 लाख (14.1 प्रतिशत) फ्रेंच वेस्टइंडीज भेजे गये, 5 लाख (4.4 प्रतिशत) डच वेस्टइंडीज भेजे गये और अन्य 5 लाख उत्तरी अमरीका भेजे गये।[883]

उन्मूलनः ''मानव अधिकारों'' को प्राप्त करने के लिये फ्रांस की क्रांति हुई, यद्यपि इसमें दासों के अधिकारों को लेकर कोई गंभीर चिंतन नहीं किया गया। किंतु बाद में 1794 में इससे फ्रांसीसी साम्राज्य के दासों के विधिक उद्धार को प्रोत्साहन मिला। 1790 के दशक में डेनमार्क और नीदरलैंड ने अपने यहां दास-व्यापार के उन्मूलन की दिशा में पग बढ़ाये। इसी बीच ब्रिटेन में सांसर विलियम विल्बरफोर्स ने 1787 में दास-व्यापार के दमन के लिये अभियान प्रारंभ किया और यह अभियान शीघ्र ही ब्रिटिश साम्राज्य से दास-प्रथा के उन्मूलन का विशाल आंदोलन बन गया। बीस वर्ष पश्चात 1807 ईसवी में ब्रिटिश हाउस ऑफ कामंस ने दास-प्रथा के उन्मूलन के लिये बड़े बहुमत से विधेयक पारित किया। इस विधेयक के पक्ष में 283 और विरोध में मात्र 6 वोट पड़े। इसके बाद 1809 ईसवी में ब्रिटिश सरकार ने दास-व्यापार को रोकने के लिये और आगे बढ़ी तथा अपनी नौसेना को विदेशी जलपोतों सहित उन सभी संदिग्ध जलपोतों के जांच अभियान में लगाया, जिनमें दासों के परिवहन का संदेह हो। ब्रिटेन ने फारस, तुर्की, इजिप्ट आदि मुस्लिम देशों में दास-प्रथा के उन्मूलन के लिये कूटनयिक प्रयास भी किये।

1810 ईसवी में ब्रिटिश संसद ने दास-व्यापार को चौदह वर्ष के सश्रम कारावास के दंड वाला अपराध बना दिया। 1814 ईसवी में ब्रिटेन ने यूरोप की अंतर्राष्ट्रीय संधि में दास-व्यापार के उन्मूलन के समावेश के लिये गुटबंदी की और अंततः 9 जून 1815 को सभी यूरोपीय शक्तियों द्वारा इस संबंध में संधि पर हस्ताक्षर किये गये। 1825 ईसवी में ब्रिटेन ने दास-व्यापार के अपराध के लिये मृत्युदंड का प्रावधान कर दिया। दासप्रथा विरोधी आंदोलन में सबसे बड़ा दिन सन् 1833 में आया, जब ब्रिटिश संसद ने सभी प्रकार की दासप्रथा को प्रतिबंधित कर दिया और ब्रिटिश साम्राज्य के सभी दासों को मुक्त कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा मुक्त किये उन दासों की संख्या लगभग 700,000 थी। ब्रिटेन के पदचिह्नों पर चलते हुए फ्रांस ने 1848 में दासों का उद्धार किया और इससे डच उपनिवेश भी इस ओर बढ़ने को प्रोत्साहित हुए। संयुक्त राज्य अमरीका ने 1865 में अपने दासों का उद्धार किया।

इस्लामी सहअपराधः यूरोपीय दास-व्यापार की निश्चित ही निंदा होनी चाहिए, क्योंकि यह मानवता के विरुद्ध क्रूर प्रकृति का एक घृणित अपराध था। मुसलमान इस विषय में यूरोपीय की निंदा करने में सबसे आगे रहते हैं और ऐसा दिखाने का प्रयास करते हैं कि वे दूध के धुले हुए हैं और दास-प्रथा तो जैसे उनके यहां लेशमात्र भी नहीं है। जबकि सच यह है कि यूरोपीयों द्वारा प्रारंभ की गयी दास-प्रथा में भी मुसलमानों ने ही प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों रूपों में महत्वपूर्ण व वित्तीय प्रतिफल देने वाली भूमिका निभायी। किंतु इस्लामियों के इस अपराध पर मुसलमानों में विचित्र चुप्पी छायी रहती है। यहां तक कि पश्चिम के विद्वानों सहित गैर-मुस्लिम विद्वान भी ट्रांस-अटलांटिक दास-व्यापार में इस्लामी की योगदानकारी भूमिका पर अपना मुख सिल लेते हैं।

ट्रांस-अटलांटिक दास-व्यापार में इस्लाम की ''परोक्ष'' भूमिका इस तथ्य से सिद्ध होती है कि यूरोपीयों द्वारा दास-प्रथा प्रारंभ करने के कई सदियों पूर्व ही मुसलमानों ने समूची मुस्लिम दुनिया में सतत् व व्यवसायिक दास-व्यापार की व्यवस्था स्थापित

---

[883] हैमंड पी (2004) द स्कर्ज ऑफ स्लेवरी, इन क्रिश्चियन एक्शन मैग्ज़ीन, अंक 4

की थी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि लंबे समय तक यूरोपीय लोग बर्बर व क्रूर इस्लामी दास-प्रथा एवं दास-व्यापार के पीड़ित रहे हैं। 711 में स्पेन पर मुसलमानों के हमले के साथ प्रारंभ हुई यह बर्बरता 19वीं सदी के आरंभ तक चलती रही। वाइकिंग भी इस्लामी दुनिया में गोरे दासों, विशेष रूप से रखैलों की मांग पूरा करने के लिये हमला करने एवं गोरी स्त्रियों व बच्चों को बलपूर्वक दास बनाने के अपराध में मुसलमानों के प्रतिनिधि-साझेदार थे।

अंतिम उस्मानिया सुल्तान ने अपने हरम में एक ब्रिटिश बंदी स्त्री को रखा था। जब तुर्की से सुल्तान को उखाड़ फेंका गया, तो उस स्त्री को सुरक्षित निकालकर ब्रिटेन लाया गया। दास बनाये जाने और बेचे जाने के लिये कई सदियों तक यूरोपीयों पर हुई इस सतत् व बर्बर अत्याचार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को इसकी वास्तविकता से कम नहीं आंका जाना चाहिए। इससे उनके मन में बैठ गया होगा कि दास प्रथा, जो उनके जीवन की सतत् पीड़ा का अंग बन चुका था, में कुछ भी असामान्य नहीं है। नौ सदियों तक इस्लामी दासप्रथा और दास-व्यापार की हिंसक बर्बरता को सहते-सहते इसके अभ्यस्त हो चुके यूरोपीयों ने अंततः स्वयं ही इस व्यापार को अपना लिया।

ट्रांस-अटलांटिक दास-व्यापार में इस्लाम की ''प्रत्यक्ष'' भूमिका पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि अधिकांशतः मुस्लिम हमलावर व व्यापारी ही थे, जिन्होंने अफ्रीका में लोगों को पकड़कर दास बनाने का अमानवीय कार्य किया। यूरोपीय व्यापारी मुख्यतः उन्हीं मुस्लिम हमलावरों व व्यापारियों से दासों को क्रय करके नये विश्व में भेजते थे। जब यूरोपीय भी दास-व्यापार में लगे, तो लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने की कला के महारथी होने के कारण मुसलमान ही अफ्रीका के बड़े भाग में मालिक थे। वे यूरोपीय व्यापारियों के लिये दासों की तुरंत-आपूर्तिकर्ता बन गये। यूरोपीय व्यापारी अफ्रीकी तटों पर स्थित व्यापारिक केंद्रों पर ठहरते थे। मुस्लिम दास-शिकारी व व्यापारी उस क्षेत्र के भीतरी भागों से अश्वेत बंदियों को इन केंद्रों पर लाते थे और यूरोपीयों को बेच देते थे।

यूरोपीय व्यापारी कुछ दास तो मुस्लिम व्यापारियों को छोड़कर सीधे क्रय करते थे और इस प्रकार क्रय किये गये दासों की संख्या कुल क्रय किये गये दासों की 20-20 प्रतिशत तक होती थी। यह सीधा क्रय किसी हिंसक हमले या अपहरण के माध्यम से नहीं होता था, अपितु यह सीधे उन गैर-मुस्लिम स्वामियों से होता था, जो अपनी इच्छा से लोगों को बेचना चाहते थे और ऐसे विक्रेताओं में अधिकांशतः माता-पिता, अभिभावक और संबंधी होते थे। (हो सकता है कि उनमें से कुछ की आपूर्ति उन गैर-मुस्लिम दास-शिकारियों द्वारा भी की गयी हो, जो मुसलमानों का अनुसरण करते हुए इस काम में संलिप्त हो गये हों।) सहारा मरुस्थल के दक्षिण और अंगोला के क्षेत्रों से सटे पश्चिम अफ्रीका के सहेल क्षेत्र प्रति दो-तीन वर्ष में पड़ने वाले अल्पवृष्टि के लिये कुख्यात था। जब अल्पवृष्टि होती तो सूखा, अकाल जैसी विपदा घेर लेती और भूख व रोग से मर रहे लोग भाग जाते और अपने को एवं परिवार के सदस्यों को इस आस में बेच देते कि कम से जियेंगे तो।' सेनेगल 1746 और 1754 के बीच वर्षों तक सूखे और कम उपज की

मार झेलता रहा और वहां इससे दास-व्यापार का परिमाण बहुत बढ़ गया था। कर्टिन ने लिखा है, '1754 में सेनेगल से फ्रांसीसी निर्यात उस समय तक का सबसे बड़ा निर्यात था।'[884]

यूरोपीय व्यापारियों ने दासों का शिकार करने वाले मुस्लिमों व मुस्लिम व्यापारियों से जो दास क्रय किये थे, उनमें से 80 प्रतिशत अफ्रीका से थे। मुस्लिम लड़ाकों ने भी मुस्लिम दुनिया में दासों की मांग को पूरा करने के लिये अफ्रीका को दासों के शिकार व उत्पादन की भूमि बना दिया था और यही बाद में यूरोपीय व्यापारियों के लिये भी आपूर्ति-केंद्र बन गया। ओमान का शहजादा सैय्यद सईद मस्कट तट के समुद्री लुटेरों के साथ पूर्वी अफ्रीका की ओर गया। मस्कट तट को ब्रिटिशों द्वारा व्यवसाय से बाहर कर दिया गया था। जंजीबार (1806) में स्थापित होने के बाद पूर्वी तट के उसके अरब हमलावर युगांडा और कांगो जैसे भीतरी भागों में लोगों को पकड़कर दास बनाने के लिये प्रवेश किये।[885] इस प्रकार उसने पूर्वी अफ्रीका में अपने प्रसिद्ध दास-साम्राज्य की स्थापना की। कर्टिन ने लिखा है कि अफ्रीका में चालीस-पचास आदमियों के गिरोह या दासों को पकड़ने वाले मुखिया होते थे। वे आसपास के गांवों में समूहों में जाते और 'पशुओं को चुराते, लोगों का अपहरण करते, व्यक्तियों को बंदी बनाते या छोटे-छोटे समूहों को बंदी बनाते, गांव के कुएं पर जा रही स्त्रियों का अपहरण कर लेते या अपनी रक्षा करने में असमर्थ ऐसे अन्य लोगों का अपहरण कर लेते।' यद्यपि यदि आवश्यकता पड़ती, तो ये गिरोह जंग भी कर सकते थे, किंतु 'ये चोरी से घुसकर लोगों का अपहरण कर उन्हें दूर ले जाकर बेचने पर ही निर्भर रहते थे...।'[886] दासों का शिकार करने वाले अफ्रीका के मुस्लिम शिकारियों व व्यापारियों के लिये नये विश्व में अस्तित्व में आये नये बाजार अत्यंत लुभावने सिद्ध हुए।

इस्लामी दासप्रथा का अस्वीकार

अधिकांश मुसलमान ऐसा दिखाते हैं कि विश्व में एकमात्र दास-व्यापार जो था, वह ट्रांस-अटलांटिक दास-व्यापार ही था और वे इसकी निंदा में सबसे आगे रहते हैं। वे ऐसा दिखाने का प्रयास करते हैं कि मुस्लिम दुनिया की सर्वाधिक भयानक और बर्बर दास-प्रथा का चलन जैसे कभी अस्तित्व में ही नहीं था, जबकि मुसलमानों की यह बर्बर दास-प्रथा बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक निरंतर चलती रही है (और वास्तव में आज भी चल रही है)। ऐसा संभवतः इसलिये होगा, क्योंकि इस्लाम के सही इतिहास का ज्ञान नहीं होगा। कुछ मुसलमान, जो इस विषय में जानते हैं या जब उनके समक्ष अकाट्य साक्ष्य रखे जाते हैं, तो वे सत्य को नकारने के अपने उसी पुराने की प्रवृत्ति का आश्रय लेते हैं। वे मुस्लिम दुनिया में व्यापक रूप से फली दासप्रथा को उजागर करने वाले अकाट्य तथ्यों को झुठलाने के लिये दो सामान्य तर्क देते हैं। उनका पहला तर्क यह होता है कि इस्लाम में दासप्रथा को स्वीकृति नहीं है; मुस्लिम दुनिया में दास प्रथा का चलन इस्लाम का नाम खराब करके अथवा अनादर करने से आयी। दूसरा तर्क सामान्यतः उन ज्ञानी मुसलमानों द्वारा दिया जाता है, जो इस्लाम में दास कुप्रथा की स्वीकृति और मुस्लिम दुनिया के इसके व्यापक

---

[884] कर्टिन, पृष्ठ 172-73

[885] गेविन, आरजे (1972) इन एमए क्लेइन एंड जीडब्ल्यू जॉनसन ईडीएस., पृष्ठ 178

[886] कर्टिन, पृष्ठ 177-79

चलन को झुठला पाने में विफल रहते हैं और वो यह तर्क देते हैं कि चूंकि इस्लाम के जन्म के समय अरब में दासप्रथा का बड़ा चलन था, इसलिये इस्लाम में दासप्रथा की स्वीकृति तो है, किंतु यह या तो स्वेच्छा से है या अत्यंत सीमित स्तर पर है। इसके बाद वे यह दावा करने के लिये कि 'इस्लाम ने वास्तव में दासप्रथा के उन्मूलन का पहला आदर्श स्थापित किया था, कुरआन की कुछ आयतों व सुन्नत की कुछ बातों को बताने लगते हैं।

पहले प्रकार की प्रतिक्रिया निश्चित रूप से मुसलमानों के उन समूहों से आती है, जो बहुसंख्या में हैं, किंतु दासप्रथा की स्वीकृति के संबंध में इस्लाम के मजहबी तथ्यों एवं लोगों को बंदी बनाकर गुलाम बनाने, दास-व्यापार करने और बलपूर्वक स्त्रियों को रखैल बनाने जैसे अपराधों में रसूल मुहम्मद की संलिप्तता से पूर्णतः अनजान होते हैं। दूसरा समूह जानबूझकर भ्रामक चालों का प्रयोग करते हुए कुरआन और सुन्नत से कुछ तर्क प्रस्तुत करता है। कुरआन और सुन्नत से निकाले गये इन तर्कों की पड़ताल आवष्यक है। सामान्यतः कुरआन के जिन संदर्भों को दिखाया जाता है, वो निम्नलिखित हैंः

1. कुरआन 4:36 मुसलमानों से आह्वान करती है कि वे अनाथों, अपने माता-पिता, यात्रियों और दासों के प्रति दयालुता दिखाएं।
2. कुरआन 9:60 दासों को मुक्त करने के अनिवार्य परोपकार के लिये निर्देश देती है।
3. कुरआन 24:33 अच्छे व्यवहार वाले दासों के स्वामियों को उन दासों की मुक्ति के लिये लिखित में समय सीमा निर्धारित करने का परामर्श देती है।
4. कुरआन 5:92 और 18:3 गुनाहों से प्रायश्चित के साधन के रूप में दासों को मुक्त करने का सुझाव देती है।
5. कुरआन 4:92 कहती है कि मुसलमान द्वारा अनजाने में हत्या हो जाने पर उसके प्रायश्चित के लिये किसी मुसलमान दास को मुक्त करना चाहिए।

इन संदर्भों के आधार पर ओहियो राज्य विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर अहमद अलावद सिकाइंगा कुरआन में दासप्रथा की व्याख्या करते हुए इसे 'विशिष्ट विधिक निरूपण के स्थान पर नैतिक प्रकृति का व्यापक व सामान्य कथन' बताते हैं।'[887] इसी ढंग से प्रसिद्ध पाकिस्तानी विद्वान व कवि मुहम्मद इकबाल (मृत्यु 1938) ने इस्लाम में दासप्रथा को एक ऐसा परोपकारी व्यवस्था बताया है, जो पराधीनता का भाव से पूर्णतः मुक्त है। इकबाल के अनुसार, [888]

> [रसूल मुहम्मद] ने समानता के सिद्धांत की घोषणा की, यद्यपि एक बुद्धिमान सुधारक की भांति उन्होंने दासप्रथा के नाम को बनाये रखने में अपने आसपास की सामाजिक स्थितियों को थोड़ा स्वीकार कर लिया था, उन्होंने चुपचाप दासप्रथा की पूरी व्यवस्था को हटा दिया। सत्य यह है कि दासप्रथा की व्यवस्था इस्लाम में केवल नाम भर की है।

---

[887] इस्लाम एंड स्लेवरी, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Islam_and_Slavery

[888] इकबाल एम (2002) इस्लाम ऐज ए मोरल एंड पॉलिटिकल आइडियल, इन मॉडर्निस्ट इस्लाम, 1840-1940: एक सोर्सबुक, सी कुर्ज़मैन ईडी., ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृष्ठ 307-8

अन्य उत्साही समर्थक ऐसे हवाहवाई दावे करते हैं कि इस्लाम ने स्वतंत्र व्यक्ति को पकड़ने, दास बनाने या बेचकर दासता थोपने की आदिम प्रथाओं पर स्पष्ट व प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबंध लगा दिया था। वे अपने दावे की पुष्टि के लिये रसूल मुहम्मद का यह उद्धरण देते हैं: ''लोगों की ऐसी तीन श्रेणियां हैं, जिनके विरुद्ध मैं स्वयं कयामत के दिन अभियोग चलाऊंगा। इनमें से एक है: जो मुक्त व्यक्ति को दास बनाता है, उसे बेचता है और इससे धन कमाता है।''[889] पश्चिम में व्यापक स्तर पर पढ़े जाने वाले मुस्लिम विद्वान सईद अमीर अली (मृत्यु 1928) ने तर्क दिया था कि रसूल पर लगने वाले झूठे आक्षेपों की सच्चाई उजागर करने के लिये मुस्लिमों को विश्व से दासप्रथा के अंधेरे पृष्ठों को मिटा देना चाहिए, स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर देनी चाहिए कि उनके मजहब द्वारा दासप्रथा की निंदा की गयी है और उनकी मजहबी संहिता द्वारा हतोत्साहित किया गया है।'[890] इन मुस्लिम मजहबी समर्थकों के सुर में सुर मिलाते हुए लेविस ने तर्क दिया है: 'इस्लामी कानून व प्रथा ने, आरंभिक स्तर से ही, मुक्त व्यक्तियों को दास बनाने पर कठोरता से प्रतिबंध लगाया... और इसका प्रभाव केवल जंग में पराजित या पकड़े गये गैर-मुस्लिमों तक सीमित कर दिया।'[891]

जो विद्वान यह दावा करते हैं कि इस्लाम स्पष्टत: दासप्रथा की आदिम प्रथा को निषिद्ध करता है, उन्हें कुरआन की आयतों 16:71, 16:76 व 30:28 में अल्लाह के आदेशों पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इन आयतों में अल्लाह ने स्पष्ट व विशिष्ट शब्दों में मानव जाति को मालिक व गुलाम के रूप में बांटा है और इस विभाजन को प्राकृतिक एवं अपनी कृपा व योजना बतायी है। इकबाल व अली को यह तथ्य भी देखना चाहिए कि इस्लामी मिशन प्रारंभ करने से पूर्व रसूल मुहम्मद के पास कोई दास या लौंडी नहीं थी; और इस्लामी मिशन प्रारंभ करने के बाद उसकी मृत्यु तक उसके पास दर्जनों दास और अनेकों रखैलें (लौंडी) थीं। उन दासों व लौंडियों में से अधिकांश को उसने निर्दोष समुदायों पर बर्बर हमला व छापेमारी करके प्राप्त किया था। सिकाइंगा को यह नहीं भूलना चाहिए कि कुरआन जिसकी भी स्वीकृति देता है, वह इस्लामी समाज के लिये शाश्वत कानून हो जाता है। इस्लाम की यह आधारभूत स्थिति सिकाइंगा के उस कथन की विरोधाभासी है कि इस्लाम में दास प्रथा का ''विशिष्ट कानूनी निरूपण'' नहीं है। वास्तविकता यह है कि इस्लाम में दासप्रथा एक आधारभूत संस्था (व्यवस्था) है और इस व्यवस्था की स्वीकृति बार-बार अल्लाह द्वारा दी गयी है, रसूल मुहम्मद ने इस कुप्रथा को व्यापक रूप से अपनाया हुआ था। यही कारण है कि इस्लाम में यह कुप्रथा कयामत के दिन तक अपरिवर्तित रहेगी। इसके अतिरिक्त, सिकाइंगा जो मौलिक रूप से समान मानव जाति को मालिक व गुलाम श्रेणी में बांटने की शब्दावली को ''नैतिक प्रकृति'' का निरूपण बताता है, वह मूर्खतापूर्ण और अक्षम्य है। कुरआन में बारंबार स्त्रियों को बलपूर्वक व हिंसक ढंग से पकड़कर सेक्स-स्लेव (लौंडी) बनाने का आदेश दिया गया है।

एक और मुस्लिम विद्वान व उपमहाद्वीप के कार्यकर्ता गुलाम अहमद परवेज (मृत्यु 1983) इस्लाम की इस कुप्रथा को छिपाने के लिये भिन्न प्रकार की कपटी चाल चलता है। वह तर्क देता है कि 'कुरआन 47:4 में जो 'तुम्हारे कब्जे वाले लोग' बात कही गयी

---

[889] मुहम्मद एस (2004) सोशल जस्टिस इन इस्लाम, अनमोल पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देल्ही, पृष्ठ 40

[890] अली एसए (1891) द लाइफ एंड टीचिंग्स ऑफ मुहम्मद, डब्ल्यूएच एलेन, लंदन, पृष्ठ 380

[891] लाल (1994), पृष्ठ 206

है, उसे भूतकाल अर्थात पास्ट टेंस में पढ़ा जाना चाहिए; जिसका अर्थ यह है कि ''वो लोग जो तुम्हारे कब्जे में थे।' इस प्रकार वह तर्क देता है कि दासप्रथा का संबंध अतीत से है और कुरआन ने 'भविष्य की दासप्रथा के द्वार बंद कर दिये थे।'[892] हो सके तो मुसलमानों इसी कुटिल अर्थ को मानना चाहिए और नमाज, रोज, हज व अन्य मजहबी बातों को भूतकाल में पढ़ना चाहिए और इस्लाम को इतिहास के कचरे के डिब्बे में फेंक देना चाहिए।

रसूल मुहम्मद 622 ईसवी में जब मक्का से मदीना गया, तो उससे मात्र 200-250 लोग ही ऐसे जुड़े, जो इस्लाम को माने और इन लोगों में मक्का व मदीना दोनों स्थानों के लोग थे। उसने लूटपाट करके माल कमाने के उद्देश्य से मक्का से आने वाले कारवां पर हमला करने की मंशा से अनुयायियों के इस छोटे समूह से हमलावर गिरोह बनाया। जैसे-जैसे उसकी ताकत बढ़ती गयी, उसने अपनी पहुंच में आने वाले मूर्तिपूजक, यहूदी व ईसाई समुदायों पर हमला करने की तीव्रता बढ़ा दी और लूटपाट करने एवं लोगों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाने के उद्देश्य ताकत बढ़ाता रहा। 632 ईसवी में जब मुहम्मद मरा, तो जैसे-जैसे मुस्लिमों की ताकत बढ़ती गयी, काफिरों पर उनका हमला व जंग भी और तीव्र हो गया। उन्होंने बड़े स्तर के अभियानों का बीड़ा उठाया और परिणामस्वरूप फारस, बैजेंटाइन व भारत जैसी विश्व की बड़ी शक्तियों को ह्रास हुआ। वे प्रायः एक-एक जिहादी अभियान में सैकड़ोंझारों लोगों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाते और इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में पराजित गैर-मुसलमानों को तलवार की नोंक पर रखते।

इस्लाम के जन्म के समय रसूल मुहम्मद के हमलावर व जंगी गिरोह, जिसमें अरब के कुछ सौ नव-मुस्लिम बद्दू थे, ने मानवता के विरुद्ध आक्रामक, अकारण व उग्र जिहादी जंग छेड़ने की घोषणा कर दी, जिससे कि संसार को इस्लाम के अधीन लाया जा सके और गुलाम बनाया जा सके। लेविस जैसे लोगों, जिन्हें लगता है कि इस्लाम ने स्वतंत्र व्यक्ति को दास बनाने की प्रथा को ''स्पष्टता से निषिद्ध'' किया अथवा ''कठोरता से रोका'', को यह समझना होगा कि इस्लाम ने बद्दू अरब हमलावरों व लुटेरों को आदेश दिया था कि वे विश्व के सभी मुक्त पुरुषों व स्त्रियों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनायें और उन्हें पराधीनता की बेड़ी में जकड़ दें।

दासप्रथा का इस्लामी विधान ''कठोरता से प्रतिबंधित'' प्रकृति का नहीं है, अपितु यह मानवजाति के इतिहास में उच्चतम स्तर पर कल्पनीय, अभूतपूर्व प्रकृति का ऐसा अमानवीय अत्याचार है, जो इस्लाम सदियों से मानवजाति पर कर रहा है। इस्लाम के जिहादियों ने अल्लाह के इस आदेश को बड़े आत्मविश्वास से पूरा किया है; इस्लाम का इतिहास इसका प्रमाण देता है। किसी भी मानक से देखें, तो इस्लाम में दासप्रथा की स्वीकृति स्वतंत्र मानव जाति की आत्मा व गरिमा पर विनाशकारी प्रहार करने वाला था।

इस्लाम में दासों के साथ मानवीय व्यवहार

यह सही है कि इस्लाम दासों के साथ मानवीय व्यवहार करने का आह्वान करता है। कुरआन की उपरोक्त आयतें मुसलमानों को विभिन्न कारणों से दासों को मुक्त करने (दासत्व मुक्ति) के लिये प्रोत्साहित करता है और इसमें अनजाने में किसी

---

[892] परवेज जीए (1989) इस्लाम, ए चैलेंज टू रिलीजन, इस्लामिक बुक सर्विस, न्यू देल्ही, पृष्ठ 345-46

मुसलमान की हत्या करने पर प्रायश्चित हेतु एक दास को मुक्त करने की बात भी सम्मिलित है। (ध्यान रहे, इस्लाम किसी गैर-मुसलमान की हत्या करने पर प्रायश्चित करने के लिये नहीं कहता है।) इस्लाम में दासत्वमुक्ति को परोपकार या पापों के प्रायश्चित के रूप में देखा जाता है। इन्हीं तर्कों के आधार पर इस्लाम के समर्थक (व्यक्तिगत वार्तालाप में) यह दावा करते हैं कि 'यह कहना सही नहीं है कि इस्लाम ने दास प्रथा को शुरू किया अथवा इसके लिये उत्तरदायी है; यह कहना अधिक सही होगा कि इस्लाम ही वह प्रथम मजहब था, जिसने दासप्रथा के उन्मूलन के लिये आवष्यक कदम सबसे पहले उठाये।' मुस्लिमों के इसी पक्ष को लेते हुए पेनसिल्वेनिया राज्य विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जोनाथन ब्रॉकोप ने लिखा हैः

> अन्य संस्कृतियों ने दासों को क्षति पहुंचाने के स्वामी के अधिकार की सीमा निश्चित की है, किंतु कुछ संस्कृतियां ऐसी भी हैं, जिन्होंने अपने दासों के साथ दयालुता का व्यवहार करने को प्रेरित किया है और दासों को संरक्षण के पात्र समाज के अन्य दुर्बल वर्गों वाली श्रेणी में रखने की व्यवस्था कुरआन के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं दिखती है। इस प्रकार कुरआन का यह अद्वितीय योगदान समाज में दासों के स्थान और दासों के प्रति समाज के उत्तरदायित्व पर बल देता है और संभवतः यह दासप्रथा पर अपने समय का सबसे प्रगतिशील विधान था।[893]

जहां तक दासों के प्रति अच्छे व्यवहार और उनकी दासत्वमुक्ति के लिये इस्लामी आदेशों का संबंध है, तो इसमें नया कुछ नहीं है। हमने ऊपर पढ़ा है कि इस्लाम के जन्म से लगभग हजार वर्ष पहले ही बुद्ध ने अपने अनुयायियों का आह्वान किया था कि दासों के साथ अच्छा व्यवहार करें और उन पर काम का बोझ न लादें। एथेंस में यूनानी राजनीतिज्ञ व सुधारक सोलन (ईसा पूर्व 638-558) ने ऋण लेने वालों को दास बनाने की प्रथा के उन्मूलन के लिये विधि पारित की थी। उस समय दास बनाने का बड़ा कारण ऋण न चुका पाना होता था।

इस्लाम के जन्म से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से ही यूनान में दासत्वमुक्ति की परंपरा प्रचलन में थी। यूनान में ईसा पूर्व से चार सदी पूर्व व इसके पश्चात के शिलालेखों में दासों की मुक्ति के पत्रक लिपिबद्ध मिलते हैं। यूनान में दासों को मुक्त करने का कार्य संभवतः स्वामी (हेलेनिक काल के मुख्यतः पुरुष और महिलाएं भी) स्वेच्छा से करते थे। अपनी मुक्ति के लिये दास या तो अपनी बचत का उपयोग करते थे अथवा अपने मित्रों या स्वामियों से ऋण लेते थे।[894]

यूनानी समाज में दासों के प्रति न्याय का भाव का अनुमान एक न्यायालय के बाहर सुकरात व यूथीफ्रो के मध्य हुए वार्तालाप से लगाया जा सकता है। यूथीफ्रो के पिता ने अपने उस दास की हत्या कर दी थी (दुर्घटनावश, उसे प्रशिक्षित करते समय), जिसने एक और दास को मार डाला था। यूथीफ्रो उस दास की हत्या के अपराध के लिये अपने पिता पर अभियोग चलाने के लिये न्यायालय गया। यूथीफ्रो जब न्यायालय जा रहा था, तो सुकरात ने यह पूछने के लिये उसे रोका कि ऐसा क्या हुआ कि वह

---

[893] ब्रॉकोप जेई (2005) स्लेव्स एंड स्लेवरी, इन द एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द कुरआन, मैकालिफ जेडी एट आल. ईडी., ईजे ब्रिल लिडेन, अंक 5, पृष्ठ 56-60

[894] स्लेवरी इन एंसिएंट ग्रीस, विकीपीडिया, http://en.wikipedia.org/wiki/Slavery_in_Ancient_Greece

अपने ही पिता पर अभियोग चलाने को प्रेरित हुआ। यूथीफ्रो ने सुकरात से कहा कि 'यद्यपि उसका परिवार यह मानता है कि किसी बेटे द्वारा अपने ही पिता को अभियोगी बनाने का कृत्य अपवित्र है, किंतु उसे भान है कि वह क्या कर रहा है। उसका परिवार को ज्ञान नहीं है कि पवित्र क्या है, पर उसे इसका सटीक ज्ञान है।' इसलिये उसे अपने कृत्य की पवित्रता पर कोई संदेह नहीं है।'[895] यद्यपि यह प्रकरण निस्संदेह प्रचलित मानकों का अपवाद था, किंतु इससे हमें यह तो ज्ञात होता ही है कि यूनानी समाज में दासों के प्रति न्याय का भाव पनप चुका था और उनमें यह भाव मुहम्मद से एक हजार वर्ष पूर्व से था, जबकि किसी भी मुस्लिम समाज में आज भी दासों के प्रति न्याय का भाव लाना असंभव है।

इस प्रकार दासों के साथ अच्छा व्यवहार करने और उन्हें मुक्त करने के इस्लामी कथन में कुछ भी नया नहीं है। ऐसी परोपकारी परंपरा यूनान में इस्लाम के लगभग एक हजार वर्ष पहले से प्रचलित थी। इस्लाम के जन्म के लगभग बारह सौ वर्ष पहले ही सोलन ने एथेंस में दासप्रथा के बड़े स्वरूप पर प्रतिबंध लगाने वाला विधान पारित किया था। मुहम्मद के जीवन या उससे पहले भी अरब में दासों के उद्धार की परंपरा थी; इसका प्रमाण इस्लामी पुस्तक [बुखारी 3:46:715] में मिलता हैः

> हिशाम ने वर्णन कियाः मेरे पिता ने मुझे बताया कि हाकिम बिन हिज़ाम ने इस्लाम-पूर्व अज्ञानता के युग में सौ दासों को मुक्त किया था और सौ ऊंटों को काटा था (और मुक्त किये गये उन दासों में बांटा था)। जब उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया, तो उन्होंने पुनः सौ ऊंट काटे और सौ दासों को मुक्त किया। हाकिम ने कहा, 'मैंने अल्लाह के रसूल से पूछा, 'हे अल्लाह के रसूल! इस्लाम-पूर्व काल के अज्ञानता युग (जाहिलिया) में पुण्य समझकर जिन अच्छे कार्यों को मैं किया करता था, उनके बारे में आप क्या सोचते हैं?' अल्लाह के रसूल बोले, 'तुमने जो भी अच्छे काम किये थे, उन सबके साथ इस्लाम स्वीकार किया है।'

निश्चित ही इस्लाम के जन्म के पहले से ही सातवीं सदी के अरब समाज में दासों के साथ अच्छा व्यवहार व दासों को मुक्त करने का चलन था। मुहम्मद स्वयं जब मूर्तिपूजक था, तो उसने अपने एकमात्र दास जैद को मुक्त किया था। इसके लगभग 15 वर्ष पश्चात इस्लाम नाम की चिड़िया उसके मन में पनपी थी। उसने जैद को अपना दत्तक बेटा भी बनाया था। तब मूर्तिपूजक रहे मुहम्मद का यह उदार व मानवीय हावभाव स्पष्ट रूप से अरब समाज में इस्लाम-पूर्व की परोपकारी परंपरा व संस्कृति की झलक दिखाता है। इसलिये, यह कहना उचित है कि इस्लाम और रसूल मुहम्मद ने दासप्रथा के मानवीय पक्ष में कुछ नया नहीं जोड़ा था।

इस्लाम ने दासप्रथा को बढ़ाया

इस्लाम ने दासप्रथा शुरू तो नहीं की, किंतु हजारों वर्ष प्राचीन इस परंपरा को खुले बांहों से स्वीकार किया और इसे कयामत के दिन तक चलाने के लिये इस पर अल्लाह की मुहर लगा दी। इस प्रकार इस्लाम ने दासप्रथा को अभूतपूर्व स्तर पर प्रोत्साहित किया। यह दावा आधारहीन है कि इस्लाम ने दासप्रथा के द्वार बंद किये अथवा इसके उन्मूलन के लिये पहला कदम उठाया। कुरआन में अल्लाह ने बार-बार दासप्रथा को अपनी ऐसी योजना बताते हुए इसकी स्वीकृति दी है, जो कयामत के दिन तक

---

[895] गोट्टलीब, ए (2001) सॉकरटीजः फिलासफली'ज मार्टीर, इन द ग्रेट फिलॉसफर (मांक आर एंड राफेल एफ ईडीएस.), फोनिक्स, लंदन, पृष्ठ 28-29

चलती रहेगी। इतना ही नहीं, इस्लाम ने अपने जन्म के समय से ही दासप्रथा के चलन को इतना बढ़ाया कि सदियां बीतते-बीतते यह और भी भयानक रूप में आ गया। रसूल मुहम्मद ने यहूदी जनजातियों बनू कुरैज़ा, खैबर व बनू मुस्तलिक़ के पुरुषों का नरसंहार करके उनकी स्त्रियों और बच्चों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाया था [बुखारी 3:46:717]। मुहम्मद का यह आदर्श प्रोटोकॉल सदियों तक मुस्लिम लड़ाकों की कार्यशैली बनी रही। जब पश्चिम ने दासप्रथा में अपनी संलिप्तता का उन्मूलन कर दिया और मुस्लिम दुनिया को भी इस पर प्रतिबंध लगाने पर बाध्य किया, तब जाकर इस प्रथा पर रोक लग पायी, यद्यपि दासप्रथा पर प्रतिबंध लगने से मुसलमान क्रुद्ध और निराश हुआ तथा उन्होंने इस प्रतिबंध का हिंसक विरोध भी किया।

इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए कि रसूल द्वारा किस प्रकार बनू कुरैज़ा, बनू मुस्तलिक़ और खैबर के यहूदी पुरुषों का नरसंहार किया गया और उनकी स्त्रियों व बच्चों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाया गया। अरब प्रायद्वीप के इतिहास में इससे बर्बर, क्रूर और मानवता के विरुद्ध इतने बड़े स्तर पर अपराध कभी नहीं हुआ था, जितना कि मुहम्मद के जीवन काल में हुआ। इस्लामी इतिहास से ज्ञात होता है कि मुहम्मद के पिता के पास बरकत नामक एक अबीसीनियाई लौंडी थी। ऐसा कोई अभिलेख नहीं मिलता है, जो यह कहता हो कि मक्का के इस अग्रणी व्यक्ति (मुहम्मद के पिता) ने दर्जनों की संख्या में दास रखे हों। मुहम्मद की पहली बीवी खदीजा अपने समय की बड़ी व्यापारी थीं, किंतु उनके पास भी एक ही दास जैद था, जिसे उन्होंने शादी के बाद मुहम्मद को उपहार में दे दिया। उस समय मुहम्मद मूर्तिपूजक हुआ करता था और उसने जैद को मुक्त कर दिया और अपना दत्तक पुत्र बना लिया।

मुहम्मद ने जीवन के अगले पंद्रह वर्ष मूर्तिपूजक के रूप में बिताये और तब उसके पास कोई दास नहीं था। जैसा कि गयासुद्दीन मुहम्मद खोंदमीर ने अपनी रौज़त-उस-सफा में लिखा है, अपने जीवन जिन 23 वर्षों तक रसूल मुहम्मद मुसलमान रहा, उसमें उसने उनसठ दास, अड़तीस नौकर रखे थे। मुहम्मद का निकटस्थ साथी ज़ुबैर जब मरा, तो उसके पास 1,000 दास थे।[896]

जब तक मुहम्मद मूर्तिपूजक रहा, उसने कोई दास नहीं रखा और संभवतः ज़ुबैर के साथ भी ऐसा ही था। किंतु इस्लाम मजहब अपनाने के बाद इन दोनों ने दर्जनों से लेकर हजार तक दास रखे। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि इस्लाम के रसूल और उसके निकटस्थ साथी दासप्रथा के उन्मूलन की ओर पग बढ़ाने की अपेक्षा दासप्रथा की व्यवस्था को और व्यापक स्तर पर ले गये, जबकि इस्लाम के जन्म से पूर्व अरब में दासप्रथा उतनी नहीं फैली थी। इस्लाम ने अल्लाह की मुहर से एक और सर्वाधिक बर्बर व क्रूर कुकृत्य शुरू किया, वह कुकृत्य व्यापक स्तर पर निर्दोष लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने का था, जबकि इस्लाम से पूर्व अरब में ऐसा कुकृत्य नहीं दिखता था।

दासप्रथा मजहबी और ऐतिहासिक रूप से इस्लाम का अभिन्न भाग

इस्लाम में दासप्रथा के अस्तित्व को लेकर व्यापक नकार और इस दावे के बाद भी कि इस्लाम ने दासप्रथा के उन्मूलन का पहला कदम उठाया था, दासप्रथा निर्विवाद रूप से इस्लाम में अल्लाह द्वारा स्वीकृत व्यवस्था है और जो मानव जाति के समाप्त होने

---

[896] लाल (1994), पृष्ठ 13

तक चलती रहेगी। इस्लामी सिद्धांतों में दासप्रथा अल्लाह की शाश्वत योजना का अभिन्न अंग है; यह मानव जाति पर अल्लाह की कृपा का भाग है। इस्लामी न्यायशास्त्र की सभी धाराएं, शरिया और इस्लाम के मजहबी विद्वानों ने इस्लाम के पूरे इतिहास में निस्संकोच और गर्व के साथ स्वीकार किया है और उपदेश दिया है कि दासप्रथा इस्लाम का अभिन्न अंग है। महान इस्लामी चिंतक इब्न खलदुन ने बड़े गर्व की अनुभूति के साथ बताया है कि जब मुसलमानों ने अफ्रीका को दासों के शिकार और दासों के उत्पादन का स्थल बना दिया, तो किस प्रकार गैर-मुसलमानों को व्यापक स्तर पर बलपूर्वक दास बनाया गया। दासप्रथा के प्रचलन पर लेविस ने लिखा है, ''(मुसलमान) कुरआन, शरिया और सुन्नत द्वारा स्वीकृत दासप्रथा की संस्था को बनाये हुए थे और उनकी दृष्टि में मुस्लिम जीवन के सामाजिक ढांचे को बनाये रखने के लिये ऐसा करना आवश्यक था।''[897] हफ्स ने ठीक ही कहा है कि इस्लाम में 'दासप्रथा शादी कानून, विक्रय कानून और उत्तराधिकार कानून से गुंथा हुआ है... और दासप्रथा के उन्मूलन से मुहम्मदवाद की संहिता के आधार को ही हिल जाएगा।'[898]

इब्न खलदुन को लगता था कि मुसलमानों द्वारा अफ्रीका में अश्वेतों को व्यापक स्तर पर दास बनाना न्यायोचित था, 'क्योंकि उनके जो लक्षण हैं, वो मूक पशुओं के समान हैं।'[899] मुस्लिम इतिहासकारों के आख्यानों में कुलमिलाकर दासप्रथा और विशेष रूप से अश्वेतों को दास बनाने की प्रथा गर्व का विषय बन गयी। दासप्रथा को यह कहकर उदारता का कार्य माना गया कि उन्हें उनके पापपूर्ण धर्मों व बर्बर प्रकृति से छुटकारा दिलाते हुए सच्चे दीन और इस्लाम के सभ्य संसार में लाकर उदारता का कार्य किया गया। कट्टर इस्लामी चिंतकों की इस चिंतनधारा पर अर्नाल्ड ने लिखा है, 'समर्पित मजहबियों ने दासप्रथा को भी सच्चे दीन की ओर अल्लाह के मार्गदर्शन के रूप में माना है...।'[900]

ऊपरी नील देशों के नीग्रो लोगों को हिंसक ढंग से बड़ी संख्या में पकड़कर दास बनाया गया और बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। तुरंत उनका लिंग काटकर नपुंसक बना दिया जाता था और दूर के देशों में भेज दिया जाता था; इस प्रक्रिया में उनमें से बड़ी संख्या (80-90 प्रतिशत) मर जाते थे। जो बचे होते थे, उन्हें अटलांटिक पार नये विश्व में पहुंचा दिया जाता था। 'इनमें से 30-50 प्रतिशत लोग तटों तक पहुंचाने, तटों पर जलपोतों की प्रतीक्षा में बंदी बनाकर रखे जाने और अमेरिकी देशों को जाने के मार्ग पर बीच समुद्र में काल के गाल में समा जाते थे।' नये विश्व में पहुंचाये जाने की प्रक्रिया में जलपोतों पर सवार दासों में से 10 प्रतिशत लोगों के काल कवलित हो जाने का अनुमान है।[901]

---

[897] लाल (1994), पृष्ठ 175

[898] हफ्स, पृष्ठ 600

[899] लाल (1994), पृष्ठ 80

[900] इबिद

[901] कर्टिन, पृष्ठ 182

इस्लामियों की दृष्टि में इतने बड़े अनुपात में बंदियों की यह दारुण दशा भी उदारता और अल्लाह की कृपा के रूप में देखी जाती है। इस विषय में अर्नाल्ड लिखते हैं, 'अल्लाह उनकी इस विपत्ति में उनके पास आया है; वे कह सकते हैं 'यह अल्लाह की कृपा है', क्योंकि इस प्रकार से वे उद्धार करने वाले मजहब में प्रवेश किये।'[902] यहां तक कि कई धार्मिक-प्रवृत्ति के पश्चिमी इतिहासकार भी अफ्रीका में अश्वेतों को दास बनाने के बड़े उपक्रम के विषय में मुस्लिम चिंतकों के इसी सुर को अलापते हैं। बर्नार्ड लेविस ने इस संबंध में सामान्य भावना का सारांश इस प्रकार दिया हैः '...दासप्रथा मानव जाति को अल्लाह का वरदान है, जिसे साधन बनाकर मूर्तिपूजकों व बर्बर लोगों को इस्लाम व सभ्यता में लाया गया... पूर्व की दासप्रथा का हजारों मनुष्यों पर उन्नत प्रभाव है, किंतु इस स्थिति के आने तक हजारों-लाखों मनुष्यों को इस संसार में पशुओं से तनिक ही अच्छा जंगली असभ्य जीवन बिताना पड़ा होगा; दासप्रथा कम से कम उन मनुष्यों को उपयोगी मनुष्य तो बनाती है...।'[903]

अर्नाल्ड ने लिखा है, अफ्रीका के मुसलमानों में अश्वेतों को दास बनाने के पीछे के अल्लाह का औचित्य या यूं कहें कि अल्लाह की प्रेरणा इतनी प्रबल थी कि उन्होंने लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने के व्यवसाय के आगे और सारे व्यवसाय लगभग छोड़ दिये'; और इसका परिणाम यह हुआ कि दासों का व्यापारी होने के कारण लोग उन मुसलमानों से घृणा करने लगे और भयभीत रहने लगे।[904] जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि सुल्तान मौले इस्माइल (मृत्यु 1727) ने मोरक्को में दास-उत्पन्न करने की नर्सरी बना रखी थी। उन्नीसवीं सदी में अफ्रीका के सूडान क्षेत्र में ऐसी फर्में थीं, जो पशुओं और भेड़ों की भांति ही अश्वेत दासों के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त कर रखी थी। गोरी वंश के शासक अबू अल-हारिस मुहम्मद इब्न अहमद के लिये सन् 982 में लिखी गयी एक फारसी पांडुलिपि में सूडान के बारे में अंकित है कि 'इससे अधिक वासित (बसा हुआ) को क्षेत्र नहीं है। व्यापारी वहां से बच्चों को चुराते हैं और अपने साथ उठा लाते हैं। वे उनका बधिया कर देते हैं अर्थात लिंग काटकर हिजड़ा बना देते हैं और इजिप्ट ले जाते हैं, जहां वे उन्हें बेच देते हैं।' इस पांडुलिपि में आगे लिखा है, दासप्रथा इस स्तर पर पहुंच गयी थी कि 'उनके बीच ऐसे लोग भी हैं, जो जब दास-व्यापारी आते हैं, तो आपस में एक-दूसरे के बच्चे को चुराकर उन्हें बेच देते हैं।[905]

मुसलमानों ने अफ्रीकी समाज में दासप्रथा ऐसी जमा दी थी कि जब यूरोपियों, विशेष रूप से मिशनरियों ने उन्हें मुक्त कराने का प्रयास किया, तो उन दासों ने अपने हाथों से अपना भाग्य लिखने के स्वतंत्र जीवन की अपेक्षा अपने स्वामियों के अधीन रहने को वरीयता दी। मध्य अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य के पहले तीन वर्षों पर एक लिखी गयी एक रिपोर्ट में उल्लेख है कि ''गोरे लोगों की सुसभ्य संस्कृति के सामने दास-व्यापार ऐसी प्रतिद्वंद्वी सभ्यता के रूप में आ खड़ा हुआ कि नीग्रो लोगों को दास-प्रथा को

---

[902] अर्नाल्ड टीडब्ल्यू (1999) द प्रीचिंग ऑफ इस्लाम, किताब भवन, देल्ही, पृष्ठ 416-17

[903] लाल (1994), पृष्ठ 60

[904] एर्नाल्ड, पृष्ठ 172-73, 345-46

[905] लाल (1994), पृष्ठ 133

स्वीकार करना अधिक सहज लग रहा था।''[906] बीडी डेविस ने दुख के साथ लिखा है, 'अफ्रीका में दास बनाने का व्यवसाय इतना अधिक विस्तृत हो गया था कि अफ्रीका दासप्रथा का लगभग पर्याय बन गया, संसार उन यूक्रेनियाई, जार्जियाई, सिराकासियाई, आर्मेनियाई, बुल्गारियाई, स्लाव और तुर्कों की दारुण कथा-व्यथा भूल गया, जिन्हें तार्तारों और काले सागर के अन्य लोगों ने दसियों-लाख की संख्या में पकड़कर दास के रूप में बेचा था।'[907] मुस्लिम व्यापारी दसवीं सदी में वोल्गा के व्यापारिक केंद्र पर जो सबसे बहुमूल्य वस्तु लाये, वह था गोरे दास, जिन्हें सामान्यतः वाइकिंगों द्वारा बेचा गया था।

इस्लामी दासप्रथा की विशेष क्रूरता व आपदा

संभवतः इस्लामी दासप्रथा का सबसे भयानक पक्ष पुरुषों का लिंग काटकर हिजड़ा बनाना था। दास बनाये गये अफ्रीकियों में अधिकांश लोगों को मुस्लिम दुनिया में बेचने से पहले लिंग काटकर नपुंसक बनाया गया। भारत में हमने इस्लामी शासन के आरंभ से लेकर अंत तक व्यापक स्तर पर पुरुषों का बधिया करके उन्हें नपुंसक बनाने की घटनाओं को पढ़ा है। यहां तक कि शीर्ष के फौजी जनरल मलिक काफूर और खुसरो खान भी बधिया करके हिजड़ा बनाये गये थे, जिससे संकेत मिलता है कि भारत में भी पुरुष बंदियों का लिंग काटकर उन्हें नपुंसक बनाने का कुकृत्य व्यापक स्तर पर होता था। यूरोपीय दासों का भी व्यापक स्तर पर बधिया किया गया।

बधियाकरण का सबसे भयानक पक्ष यह था कि उससे पुरुष होने की उसकी वह मूल पहचान छीन ली जाती थी, जिसके साथ उसने जन्म लिया है। बधियाकरण का सबसे दुखद पक्ष यह भी था कि बधिया बनाने की प्रक्रिया में बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हो जाती थी। कोएनराड एल्स्ट के अनुसार, 'इस्लामी सभ्यता ने वास्तव में अभूतपूर्व स्तर पर दासों का बधियाकरण किया। अफ्रीका के कई नगर तो हिजड़ों के वास्तविक कारखाने बन गये थे; वे एक महंगी वस्तु हुआ करते थे, क्योंकि बधिया होने वाले लोगों में से केवल 25 प्रतिशत ही जीवित रहते थे।'[908] इसके अतिरिक्त हजारों मीन दूर स्थित मुस्लिम दुनिया के बाजारों तक पहुंचाये जाने की प्रक्रिया में ही बड़ी संख्या में बंदी काल के गाल में समा जाते थे। यह इस्लामी दासप्रथा का एक और दुखद पक्ष है। दास बनाने के लिये होने वाले हमलों में भी बड़ी संख्या में लोग प्राण गंवा देते थे। कमांडर वीएल कैमरून ने लिखा है, मध्य अफ्रीका में लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने वाले इस्लामी हमलावर अपने पीछे छोड़ जाते थे

> जले हुए गांव, नरसंहार एवं खेतों में खड़ी उपज का विनाश। इन हमलों में जीवन की जो क्षति होगी होगी, वह निश्चित ही बहुत बड़ी होगी, यद्यपि उस क्षति का ठीक-ठीक आंकड़ा दे पाना असंभव है। ब्रिटिश अन्वेषक बर्टन ने अनुमान लगाया था कि पचपन स्त्रियों को पकड़ने, जिस कारवां को उन्होंने देखा था उसके वस्तुओं को लूटने के लिये कम से कम दस गांवों को नष्ट किया गया था और प्रत्येक

---

[906] गैन, पृष्ठ 196

[907] लाल (1994), पृष्ठ 61

[908] एल्स्ट के (1993), इंडिजेनस इंडियंसः अगस्त्य टू अंबेडकर, वॉयस ऑफ इंडिया, न्यू देल्ही, पृष्ठ 375

गांव की जनसंख्या सौ-दो सौ के बीच थी। इन गांवों के अधिकांश लोगों की या तो हत्या कर दी गयी या जो बचे वो भूख से मर गये।[909]

दासों की मृत्यु के परिमाण पर सैगल ने लिखा है,

इस्लामी अश्वेत दास व्यापार का अंकगणित देखते समय क्रय, भंडारण व परिवहन के समय इस बात की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि कितने पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के प्राण चले गये या प्राण छीन लिये गये। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के एक लेखक का कहना था कि दास के रूप में एक भी बंदी की बिक्री होती थी, तो उससे यह पता चलता था कि हमलावरों से गांवों की रक्षा करने में मारे गये पुरुषों, हमलावरों द्वारा लूटपाट और विनाश किये जाने के कारण पड़ने वाले अकाल में मरने वाली स्त्रियों व बच्चों, काल कवलित हो गये बच्चों, वृद्धों व अस्वस्थ लोगों, बंदी बनाने वालों के साथ सामंजस्य बिठा पाने में असमर्थ अथवा संघर्ष के बीच में आ जाने के कारण मरने वाले लोग, अथवा निपट दरिद्रता आ जाने के कारण मरने वाले लोगों की संख्या को देखते हुए उस दास के क्षेत्र की जनसंख्या में दस प्रतिशत की कमी आ जाती होगी।'[910]

सैगल ने परिवहन के समय दासों के मारे जाने की घटनाओं की संख्या का मिलान किया है।[911] अन्वेषक हेनरिच बार्थ ने लिखा है कि उसके मित्र व बोर्नू के वजीर बशीर के दासों का एक कारवां हज के महीनों में मक्का जा रहा था। उनमें से चालीस दासों की मृत्यु की एक ही रात में हो गयी। वे पहाड़ियों की भयानक ठंड के कारण मारे गये। एक ब्रिटिश अन्वेषक को त्रिपोली जा रहे एक कारवां के मार्ग में 100 मानव कंकाल मिले थे। ब्रिटिश अन्वेषक रिचर्ड लैंडर को पश्चिम अफ्रीका में तीस दासों का एक समूह मिला। वे सभी दास चेचक से पीड़ित थे और बैल के चमड़े की बनी रस्सी से एक-दूसरे से सटाकर बंधे हुए थे। पूर्वी अफ्रीकी तट से चले 3,000 दासों के एक कारवां के दो-तिहाई दास भूख या रोग से मर गये या उनकी हत्या हो गयी। न्यूबियाई मरुस्थल में 2,000 दासों का एक कारवां लुप्त हो गया, क्योंकि उनमें से प्रत्येक दास काल कवलित हो गया था।

विभिन्न अनुमानों में बताया गया है कि इस्लामी दुनिया में लाकर दास बनाये गये अश्वेत अफ्रीकियों की संख्या ग्यारह मिलियन (1.1 करोड़) से लेकर बत्तीस मिलियन (3.2 करोड़) तक है। चूंकि बंदी बनाये गये लोगों में से 80-90 प्रतिशत लोग गंतव्य तक पहुंचने से पूर्व ही काल का ग्रास बन जाते थे, इसलिये यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि क्रूर व बर्बर इस्लामी दासप्रथा की भेंट चढ़कर कितनी बड़े परिमाण में मानव जीवन की क्षति हुई। इस्लाम के प्रति सहानुभूति रखने के बाद भी रोनाल्ड सैगल ने दास बनाये गये अश्वेत अफ्रीकियों की संख्या ग्यारह मिलियन बतायी है और यह स्वीकार किया है कि दासों के मुस्लिम शिकारियों व व्यापारियों के हाथों तीस मिलियन (3 करोड़) से अधिक लोग या तो मार दिये गये या मुस्लिम दुनिया में दास बनाकर

---

[909] कैमरून सीवीएल (1877), एक्रॉस अफ्रीका, डाल्टी, इस्बिस्टर एंड कंपनी, लंदन, अंक 2, पृष्ठ 137-38

[910] सैगल, पृष्ठ 62

[911] इबिद, पृष्ठ 63-64

पटक दिये गये। अब तक प्रस्तुत आंकड़े से स्पष्ट होता है कि इस्लामी दासप्रथा व्यवस्था निस्संदेह मानव जाति पर पड़ने वाली बड़ी आपदाओं में से एक था।

दासप्रथा का उन्मूलन और इस्लामी प्रतिरोध

इस्लाम में दासप्रथा अल्लाह द्वारा स्वीकृत संस्था अर्थात व्यवस्था है; इस कुप्रथा को सदा आगे बढ़ाना मजहबी रूप से मुसलमानों पर बाध्यकारी है। इसलिये जब इसके उन्मूलन का अभियान चला, तो मुस्लिम दुनिया में इसका बड़ा प्रतिरोध हुआ और आज तक मुस्लिम दुनिया से दासप्रथा पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकी है। मारीतैनिया, सूडान और सऊदी अरब आदि में किसी न किसी रूप में दासप्रथा आज भी है।

यूरोपीय देशों ने 1815 में दास-व्यापार को प्रतिबंधित कर दिया और ब्रिटेन ने 1833 में एक साथ दासप्रथा का उन्मूलन करते हुए सभी दासों को मुक्त कर दिया। जबकि इसी अवधि में इस्लामी दुनिया में दासप्रथा का व्यवसाय चलता रहा और उन्होंने अफ्रीका में दो करोड़ अश्वेतों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाया; इस प्रक्रिया में लगभग आठ करोड़ अश्वेतों के प्राण भी चले गये। सन् 1757 से भारत जब धीरे-धीरे ब्रिटिश नियंत्रण में आया, तो भारतीय गैर-मुसलमानों को दास बनाने के इस्लामी कुकृत्य अंततः समाप्त हुआ। सन् 1833 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय दासप्रथा अधिनियम पंचम पारित करते हुए दासप्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया और इसके परिणामस्वरूप दासप्रथा अंततः लुप्त हो गयी। इस विधेयक के पारित होने के समय हुए एक अध्ययन में पाया गया था कि बंगाल, मद्रास और बॉम्बे में ऐसे भी मालिक थे, जिनके पास 2,000-2,000 दास थे।[912]

अफगानिस्तान, जो यूरोपीय नियंत्रण से बाहर रहा, में गैर-मुस्लिमों को बंदी बनाकर बलपूर्वक दास बनाने का कुकृत्य चलता रहा। 1819 और 1823 के बीच मध्य एशिया की सघन यात्रा करने वाले अलेक्जेंडर गार्डनर ने अफगानिस्तान के एक प्रांत काफिरिस्तान में दासों का शिकार करने और दास-व्यापार की आंखों देखी स्थिति का वर्णन किया है। अफगानिस्तान का काफिरिस्तान वह क्षेत्र था, जहां गैर-मुसलमान रहते थे। उन्होंने पाया कि कुंदूज़ के सुल्तान ने लूटमार और दासों बनाने के लिये निरंतर हमला करते हुए काफिरिस्तान को निर्धनता व उजाड़ के निम्नतम स्तर पर ला दिया था। वह लोगों को बलपूर्वक दास बनाकर बल्ख व बुखारा के बाजारों में बेचता था। गार्डनर ने आगे लिखा है: ''कुंदूज़ मुखिया के अत्याचार के कारण वहां के लोगों की ये दुर्गति हुई थी। चूंकि वह अपनी अभागी जनता को लूटने भर से संतुष्ट नहीं था, इसलिये आक्सुस के दक्षिण में स्थित उस काफिरिस्तान में वार्षिक हमला करता था। वह छापा (रात में औचक हमला) डालता था और उसके जिहादियों के हाथ जो भी स्थानीय लोग लग जाते, उन सबको बंदी बनाकर ले आता। उनमें से से उत्कृष्ट बंदियों को मुखिया अपने पास दास बनाकर रख लेता और जो बचते, उन्हें तुर्किस्तान के बाजारों में सार्वजनिक नीलामी कराकर बेच देता।''[913] उन्नीसवीं सदी में इस्लाम की मुख्य

---

[912] मोरलैंड, पृष्ठ 90

[913] लाल (1994), पृष्ठ 8

भूमि मक्का में कदाचित ही ऐसा कोई परिवार रहा होगा, जिसके पास दास और रखैल (लौंडी) न रहे हों। यह पहले ही बताया जा चुका है कि मुस्लिम नियंत्रित इंडोनेशिया व मलेशिया के क्षेत्रों में 1870-80 के दशक में दासों की संख्या जनसंख्या की छह प्रतिशत से लेकर पचहत्तर प्रतिशत तक थी।

उत्तरी अफ्रीका में इस्लामी दासप्रथा के विरुद्ध यूरोपियों का संघर्ष

1530 के दशक से बबर्रीक उत्तरी अफ्रीका में मुस्लिम समुद्री लुटेरों द्वारा यूरोपीय जलपोतों और यूरोप के द्वीपों व तटीय गांवों से गोरे लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने का अभियान चलता रहा। सबसे बुरी प्रकार प्रभावित क्षेत्र स्पेन, इटली, फ्रांस और यूनाइटेड किंगडम रहा। सन् 1776 में ब्रिटेन से स्वतंत्रता मिलने के बाद अमरीकी जलपोत और उनके चालक दल भी बर्बरीक समुद्री लुटेरों के पीड़ित रहे और बलपूर्वक पकड़कर दास बनाये गये। इस भाग में उत्तरी अफ्रीका में नागरिकों को दास बनाने के विरुद्ध ब्रिटिश व अमरीकी संघर्ष को रेखांकित किया जाएगा।

ब्रिटिश संघर्ष

1620 के दशक में लगभग 2,000 की संख्या में दास बनाये गये ब्रिटिश समुद्री नाविकों की पत्नियां अपने पतियों को मुक्त कराने के लिये सरकार पर कार्रवाई का दबाव बनाने हेतु एक अभियान के लिये एकसाथ आयीं। उनके पति लंबे समय से उत्तरी अफ्रीका में निरंतर अति बुरे, कश्टप्रद व षोचनीय स्थिति में बंदी दशा वाली दासता में पड़े हुए थे...। उन पत्नियों का यह भी कहना था कि अपने पतियों के न होने के कारण उन्होंने इस सीमा तक कष्ट सहा है कि उनके लाचार बच्चे व नवजात शिशु साधन व भोजन के अभाव में भूख से मर जाने की स्थिति में आ गये हैं।[914]

लगभग सौ वर्षों से अपने व्यापारिक-पोतों, तटीय गांवों व समुद्रपत्तनों (बंदरगाहों) पर लूट-मार व विनाश सहने के बाद जब सन् 1625 में ब्रिटिश राजा चार्ल्स प्रथम सिंहासनारूढ़ हुए तो इस समस्या के निदान पर काम प्रारंभ किये। उन्होंने युवा साहसी योद्धा जॉन हैरिसन को उत्तरी अफ्रीका भेजकर ब्रिटिश बंदियों को मुक्त कराने और ब्रिटिश जलपोतों पर आक्रमण रोकने के लिये संधि करने के अभियान पर लगाया। राजा ने कठोर सुल्तान मौले ज़ीदान को संबोधित करते हुए पत्र लिखा। राजा ने हैरिसन को यह सुझाव भी दिया कि यदि वो सेल के जल-दस्युओं से सीधे समझौता वार्ता करें, तो सफलता की संभावना अधिक होगी, क्योंकि वो जल-दस्यु प्राय सुल्तान की अवज्ञा में काम करते थे।

जॉन हैरिसन ने सेल के जल-दस्युओं से सीधा समझौता वार्ता करने का निर्णय किया और सन् 1625 की ग्रीष्म ऋतु में नंगे पाव एवं तीर्थयात्री की वेशभूषा वाले एक मुस्लिम बंदे का रूप धरकर खतरनाक व श्रमसाध्य यात्रा प्रारंभ की। सेल पहुंचने के बाद उन्होंने दासों का शिकार करने वालों के नगर के मजहबी नेता सीदी मुहम्मद अल-अय्याची से संपर्क करने का प्रयास किया। सीदी मुहम्मद एक ऐसा कुटिल मजहबी नेता (मराबाउत या सूफी दरवेश) था, जो कहा करता था कि उसने 7,600 ईसाइयों को

---

[914] मिल्टन, पृष्ठ 17

मरवाया है। उसने ऐसा संकेत दिया कि ब्रिटिश दासों को तभी मुक्त करेगा, जब ब्रिटेन उसे स्पेन पर हमला करने में सहायता का वचन दे। उसने पीतल के बने हुए चालीस तोपों और गोला-बारूद सहित हथियारों के भारी जखीरे की आपूर्ति की भी मांग की। उसने अपने क्षतिग्रस्त तोप को मरम्मत के लिये इंग्लैंड ले जाने के लिये भी कहा। हैरिसन राजा और मंत्रिपरिषद से इन शर्तों पर विचार-विमर्श के लिये लंदन लौट आये। वह शस्त्रों के एक छोटे भंडार और सीदी मुहम्मद द्वारा स्पेन पर हमला किये जाने पर सहायता का वचन लेकर सेल लौटे। सीडी मुहम्मद ने अपनी कालकोठरी से लगभग 190 बंदियों को मुक्त कर दिया, यद्यपि हैरिसन उनमें से लगभग 2,000 बंदियों की मुक्ति की अपेक्षा कर रहे थे। बहुत समय बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि उनमें से बड़ी संख्या में बंदी प्लेग से मर गये थे, जबकि शेष बंदियों को उत्तरी अफ्रीका में सुल्तान को या कहीं और बेच दिया गया था।[915]

सन् 1627 की ग्रीष्म ऋतु में जॉन हैरिसन मुक्त कराये गये बंदियों के साथ इंग्लैंड पहुंचे। वह उत्तरी अफ्रीका में अपनी आठ कूटनयिक यात्राओं में कई बार सुल्तान मौले अब्दल्ला मलिक (शासन 1627-31) के दरबार में गये, किंतु वहां बंदी बनाकर रखे गये ब्रिटिश लोगों की मुक्ति सुनिश्चित करा पाने में विफल रहे। कुछ समय पश्चात सीदी मुहम्मद ने भी संधि तोड़ दी, क्योंकि उसके जिहादी आजीविका के लिये दासों का शिकार करने पर ही निर्भर थे, तो उन्होंने उससे यह कहकर संधि तोड़ने का दबाव डाला कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हें हथियारों का छोटा भंडार दिया है और वे स्पेन पर आक्रमण करने के लिये आगे भी नहीं बढ़ रहे हैं। इसके पश्चात सीदी के जिहादियों ने ब्रिटिश जलपोतों पर बड़ा हमला बोला और शीघ्र ही उन्होंने सत्ताइस महिलाओं सहित 1,200 ब्रिटिश नाविकों को बंदी बना लिया।

इससे ब्रिटेन के राजा का धैर्य छूट गया। सन् 1637 में उन्होंने जल-दस्यु ठिकाने वाले नगर सेल पर बम मारकर उसे खंडहर में परिवर्तित कर देने के लिये कैप्टन विलियम रैंस्बॉरो के कमांड में छह युद्धपोतों का बेड़ा भेजा। एक मास की समुद्री यात्रा के पश्चात कैप्टन विलियम जब सेल पहुंचे, तो उस समय उन जल-दस्युओं ने इंग्लैंड के तटों पर शिकार के लिये जाने हेतु अपने सारे जलपोत तैयार किये थे। अंग्रेजी बेड़ा उन जल-दस्युओं के पास इतनी बड़ी संख्या में जलपोतों को देखकर अचंभित रह गया। सेल के नये अमीर ने जल-दस्युओं को आदेश दिया था कि वे इंग्लैंड के तटों की ओर जाएं.... [और] उनके पुरुषों, स्त्रियों व बच्चों को बिस्तर पर से उठा लायें।''[916]

यह भांपकर कि भयानक और संभवतः विनाशकारी संघर्ष होगा, रैंस्बॉरो ने सेल में स्थिति का आंकलन किया और पाया कि वहां दो समूहों में सत्ता-संघर्ष चल रहा था। एक समूह का नेतृत्व सीदी मुहम्मद का कर रहा था और दूसरे समूह का नेता अब्दल्लाह बिन अली एल-कस्री नामक एक विद्रोही था। कस्री ने सेल के एक भाग पर नियंत्रण कर लिया था और 328 ब्रिटिश लोगों को बंदी बनाकर रखा था। संभावित विनाशकारी आक्रमण की अपेक्षा रैंस्बॉरो ने इन दोनों सिपाहसालारों के बीच शत्रुता को भुनाने का निर्णय किया। उन्होंने इस आशा में सीदी मुहम्मद को एल-कस्री के विरुद्ध संयुक्त अभियान प्रारंभ करने का प्रस्ताव दिया

---

[915] इबिद, पृष्ठ 17-20

[916] इबिद, पृष्ठ 22-23

कि इससे वे सभी ब्रिटिश बंदियों की मुक्ति और सीदी मुहम्मद के साथ शांति संधि सुनिश्चित करा लेंगे। एल-कस्री से छुटकारा पाने को आतुर सीदी मुहम्मद ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। रैंस्बॉरो ने कस्री के ठिकाने पर भारी बम वर्षा की, जिससे वहां भयानक विनाश हुआ और कस्री के अनेक लोग मारे गये। इसी बीच सीदी मुहम्मद ने 20,000 फौजियों के साथ विद्रोही ठिकाने पर हमला किया और भयानक विध्वंस किया। तीन सप्ताह तक भयानक बम वर्षा के बाद उन विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। उन्हें ब्रिटिश बंदियों को मुक्त करने के लिये बाध्य कर दिया गया। इस प्रकार उन विद्रोहियों का पूर्णतः दमन करने के पश्चात रैंस्बॉरो को सीदी मुहम्मद की ओर से सत्यनिष्ठा से आश्वासन मिला कि वह ब्रिटिश जल-पोतों व गांवों पर हमला करने से दूर रहेगा। तत्पश्चात् सन 1637 की शरद् ऋतु में कैप्टन रैंस्बॉरो मुक्त कराये गये 230 ब्रिटिश बंदियों को लेकर इंग्लैंड की वापसी यात्रा पर निकले।

इंग्लैंड में रैंस्बॉरो का स्वागत एक नायक के रूप में हुआ। चारों ओर लोगों में यह बोध पनपा कि सेल के जल-दस्युओं का खतरा सदा के लिये समाप्त हो गया है। यह धारणा और बलवती तब हुई, जब मोरक्को के सुल्तान मोहम्मद एश-शेख ईस-सग़ीर (शासन 1636-55) के साथ संधि पर हस्ताक्षर हुए; वह अपने सभी नागरिकों पर यह प्रतिबंध लगाने पर सहमत हो गया कि दासों या बंधुआ के रूप में उपयोग के लिये किसी भी ब्रिटिश नागरिक को न लेंगे, न क्रय करेंगे और न ही ग्रहण करेंगे। किंतु यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया, सुल्तान ने कुछ ही मास में संधि को तोड़ दिया, क्योंकि ब्रिटिश सरकार अंग्रेजी व्यापारियों द्वारा मोरक्को के विद्रोहियों से व्यापार करने पर रोक लगाने में विफल रही थी। सेल के जल-दस्युओं ने भी पुनः हमले करने प्रारंभ कर दिये। सन् 1643 तक बड़ी संख्या में ब्रिटिश पोतों को लूटा गया और उनके चालक दल को बंदी बनाया गया। 1640 के दशक तक यही कोई 3,000 ब्रिटिश नागरिक दासों के बर्बरीक शिकारियों के हाथ लग चुके थे।[917]

सन् 1646 में व्यापारी एडमंड कैसन को ब्रिटिश दासों को मुक्त कराने के लिये बड़ी मात्रा में धन देकर अल्जीयर्स भेजा गया। वह 750 अंग्रेजी बंदियों का पता लगाने में सफल रहे, जबकि बहुत से बंदियों को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया था (जिन्हें कभी मुक्त नहीं किया गया; न ही ब्रिटिश सरकार ने उन्हें मुक्त कराने की इच्छा दिखाई, क्योंकि वो ईसाई धर्म से दूर हो गये थे।) कैसन ने प्रति पुरुष बंदी 38 पौंड चुकाया, जबकि तीन महिला बंदियों को मुक्त कराने के लिये उन्हें 800, 1,100 और 1,392 पौंड का भुगतान करना पड़ा। भुगतान के लिये राशि कम पड़ गयी, तो उन्हें बहुत से बंदियों को छोड़कर केवल 244 बंदियों के साथ इंग्लैंड लौटना पड़ा।

इसके पश्चात बर्बरीक जल-दस्युओं ने समुद्र में दासों का शिकार तेज कर दिया; उन्होंने अपने शिकार करने के क्षेत्र की सीमा भी बढ़ा ली और नार्वे एवं न्यूफाउंडलैंड तक के पोतों पर हमला करने लगे। पवित्र रोमन साम्राज्य के व्यापारियों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ-साथ रूसी और यूनानी भी पकड़कर दास बनाये गये। स्पेन व इटली सर्वाधिक प्रभावित हुए, जबकि ब्रिटेन, फ्रांस व पुर्तगाल इन जल-दस्युओं के बड़े शिकार बने रहे। 1672 ईसवी में प्रसिद्ध सुल्तान मौले इस्माइल ने अपनी ताकत संघनित की

[917] इबिद, पृष्ठ 23-26

और दासों के शिकार करने के अपने उपक्रम का विस्तार करने का लक्ष्य निश्चित किया, जिससे कि यूरोपीय शासकों को बंदी बनाकर फिरौती के रूप में बड़ी राशि उगाह सके।

सन् 1661 में जब पुर्तगाल की कैथरीन संग राजा चार्ल्स द्वितीय की सगाई हुई, तो पुतर्गाल ने टैंगियर को ब्रिटेन को सौंप दिया। जिबराल्टर जलडमरूमध्य के आगे स्थित टैंगियर के रणनीतिक महत्व को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने वहां से बर्बरीक जल-दस्युओं पर आक्रमण और उनके समूल नाश की योजना बनायी थी। सन् 1677 में सुल्तान मौले इस्माइल ने दासों के अपने शिकारियों का रास्ता साफ करने के लिये टैंगियर पर कब्जा करने का आदेश दिया। सुल्तान के जनरल काइद उमर लईद पांच वर्ष तक 2,000 ब्रिटिश सैनिकों की छावनी वाले नगर की घेराबंदी किये रहा, किंतु नियंत्रण कर पाने में विफल रहा। सन् 1678 में काइद उमर ने दोबारा हमला करके 8 ब्रिटिश सैनिकों व 57 नागरिकों को बंदी बना लिया। सन् 1680 में काइद उमर की फौज छावनी को रौंद डालने के लिये निकट थी कि उसी समय ब्रिटिश सैनिकों की नयी खेप पहुंच गयी और काइद उमर की फौज को मार भगाते हुए चढ़ाई छोड़ने पर विवश कर दिया।[918]

इसके पश्चात शीघ्र ही (दिसम्बर 1680) राजा चार्ल्स द्वितीय ने टैंगियर की घेराबंदी के समय बंदी बनाये गये ब्रिटिश सैनिकों को मुक्त कराने के लिये सर जेम्स लेस्ली की अगुवाई में राजनयिक प्रतिनिधिमंडल भेजा। सुल्तान के लिये आने वाले उपहार के पहुंचने में विलंब हो गया, तो सर लेस्ली ने सुल्तान को इसकी सूचना देने के लिये कर्नल किर्के को भेजा। कूटनयिक अनुभव में शून्य एवं कायर व नशे में चूर कर्नल किर्के भयानक सुल्तान का जलवा देख उसके वश में हो गया। जिस कुटिल मौले ने इस्माइल ने यूरोप को बंधक बना रखा था, उसके असाधारण स्वागत, आतिथ्य व चाटुकारिता से प्रभावित होकर किर्के अपनी भूमिका भूल गया और स्वयं ही समझौता वार्ता प्रारंभ कर दिया। जब शांति संधि का विषय उठा, तो सुल्तान ने चार-वर्षीय संधि का प्रस्ताव दिया, किंतु इसके बदले दस महत्वपूर्ण व्यक्तियों को मांगा। नौसीखिया कर्नल न केवल उपकृत हो गया, अपितु यह भी वचन दे दिया कि सुल्तान को जिस भी वस्तु की कमी है, उसे पूरा करेगा।'' कर्नल किर्के न केवल यह भूल गया कि वह कोई राजनयिक नहीं, अपितु एक दूत है। उसने दूत के रूप में अपनी भूमिका का अतिक्रमण किया, वह उन बंदियों के बारे में भी भूल गया। उन बंदियों में से 300 के आसपास तो सुल्तान के महल में ही कारावास में रखे गये थे। अपनी कूटनयिक सफलता से उल्लासित होकर उसने इंग्लैंड को लिखा, ''मैं समस्त संसार को बताना चाहूंगा, मैं एक दयालु शहजादे और एक न्यायप्रिय जनरल से मिला हूं।''[919]

सुल्तान के लिये लाया जाने वाला उपहार बहुत विलंब से जिबराल्टर पहुंचा और तब सर लेस्ली सुल्तान के दरबार के लिये निकले। जब उन्होंने ब्रिटिश बंदियों का विषय उठाया, तो सुल्तान वार्ता में रुचि न दिखाते हुए वहां से निकलने लगा और अपने जनरल काइद उमर को एक संधि पर हस्ताक्षर करने को कहा। बंदियों को मुक्त करने पर अनिच्छुक सुल्तान बड़ी अनिच्छा से टैंगियर

---

[918] इबिद, पृष्ठ 28, 37-38

[919] इबिद, पृष्ठ 39-41

छावनी की घेराबंदी के समय बंदी बनाये गये सत्तर सैनिकों को छोड़ने पर सहमत हुआ, पर उसने इसके लिये इतना अधिक फिरौती मांगा कि सर लेस्ली को लंदन खाली हाथ लौटना पड़ा।

यद्यपि सुल्तान ने एक राजदूत काइद मुहम्मद बिन हद्दू उत्तूर को अंग्रेजी बंदियों की मुक्ति के लिये समझौते की शर्तें निश्चित करने का पूर्ण अधिकार देकर लंदन भेजा। लंदन में सुल्तान के राजदूत दल को कई मास तक भव्य आतिथ्य प्रदान किया गया। बंद कक्ष में सघन समझौता वार्ता के पश्चात अंततः एक संधि पर हस्ताक्षर हुआः ब्रिटिश बंदी प्रति व्यक्ति 200 स्पेनी डालर मूल्य पर मुक्त किये जाएंगे और सुल्तान के जल-दस्यु इंग्लैंड के तटीय गांवों पर हमला नहीं करेंगे। ब्रिटिश पोतों पर हमले के बारे में कोई उल्लेख नहीं हुआ। किंतु सनकी सुल्तान ने इस संधि को ठुकरा दिया और ब्रिटिश राजा के पत्र के उत्तर में कहा कि ''मैं जब तक टैंगियर के सम्मुख बैठ नहीं जाऊंगा और उसे मूरों (मुसलमानों) से भर नहीं दूंगा'', विश्राम नहीं करूंगा। ब्रिटिश पोतों पर हमले के बारे में समझौते के निवेदन पर उसने लिखा, ''हमें इसकी आवश्यकता नहीं है'' और हमारे जल-दस्यु हमले करते रखेंगे। समझौता वार्ता विफल होने से निराश राजा की टैंगियर छावनी नगर में रुचि नहीं रही, और परिणाम यह हुआ के जल-दस्युओं की लूटपाट व हमले को रोक पाने में वे विफल रहे और अगले वर्ष उस चौकी को खाली कर दिया।[920]

राजा चार्ल्स के पूरे कार्यकाल में जिहादी जल-दस्युओं द्वारा ब्रिटिश नागरिक बंदी बनाये जाते रहे और मौले इस्माइल की कालकोठरी में कष्ट सहते रहे। सन् 1685 में राजा चार्ल्स तृतीय सिंहासनारूढ़ हुए। चार्ल्स तृतीय बंदी ब्रिटिश सैनिकों व नागरिकों को मुक्त कराने के उत्सुक और उद्यत रहे। पांच वर्ष तक निरंतर बंदियों को छुड़ाने के लिये मोलतोल करने के बाद, सुल्तान अतिशय 15,000 पौंड और बारूद के 1,200 बैरल की फिरौती लेकर उन बंदियों को मुक्त करने को तैयार हो गया। फिरौती के रूप में वह राशि व बारूद मोरक्को लेकर जाने वाले कैप्टन जार्ज डेलैवल ने लिखा, ''पोत बारूद से इतना भरा हुआ था कि हमें प्रति पल उसके विस्फोट की आशंका लगी रही।'' परंतु डेलैवल जब मोरक्को पहुंचे, तो सुल्तान संधि के अनुबंधों पर विवाद करने लगा। डेलैवल ने यह कहते हुए फिरौती की राशि व बारूद सौंपने से मना कर दिया कि जब तक वे उन बंदियों की मुक्ति के लिये आश्वस्त नहीं हो जाएंगे, राशि व बारूद नहीं देंगे। अंततः सुल्तान ने 194 ब्रिटिश बंदियों को छोड़ दिया, जबकि 30 बंदियों को अपने कारावास में ही रखा। बाद में जब सन् 1702 में महानारी ऐनी सिंहासनारूढ़ हुईं, तो क्यूटा में स्पेनी बस्ती पर मोरक्को के हमले में साथ देने का संकेत दिया और यकायक उन 30 बंदियों को भी मुक्त कर दिया। 150 वर्ष के इतिहास में पहली बार मोरक्को का महल ब्रिटिश बंदियों से खाली रहा। इसके कुछ ही दिन बाद, जब महारानी ऐनी ने स्पेनियों के विरुद्ध सुल्तान के हमले में साथ देने में अनिच्छा प्रकट की, तो सेल के जल-दस्यु पुनः हमला करने लगे; ब्रिटिश बंदी पुनः पकड़कर लाये जाने लगे।[921]

सन् 1714 में सुल्तान मौले और महारानी ऐनी के बीच एक और संधि हुई, जिसमें सुल्तान को विशाल उपहार देने का वचन दिया गया। उसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु में महारानी की मृत्यु हो गयी और उन उपहारों को देने में विलंब हो गया, तो सुल्तान

---

[920] इबिद, पृष्ठ 39-41

[921] इबिद, पृष्ठ 49-50

पुनः दासों के अपने शिकारियों को समुद्र में लूटमार व हमले के लिये भेजने लगा। निःसंतान महारानी ऐनी की मृत्यु के पश्चात जमर्नी में जन्मे हैंगओवर के शासक राजा जार्ज प्रथम सत्तासीन हुए। उन्होंने मोरक्को में बंदी बनाकर रखे गये ब्रिटिश लोगों की दुर्दशा दूर करने में न के बराबर रुचि थी। सन् 1717 उन बंदी नाविकों की पत्नियों ने राजा को अत्यंत भावुक पत्र लिखा और उसमें अपने बंदी बनाये गये पतियों को मुक्ति सुनिश्चित कराने की गुहार लगायी। राजा पर उस पत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, यद्यपि सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने इस कठिन कार्य को अपने हाथों में लिया। कुछ मास पूर्व ही एडमिरल चार्ल्स कॉर्नवाल सुल्तान के महल से खाली हाथ लौटे थे, क्योंकि सुल्तान शांति-संधि पर हस्ताक्षर करने पर अनिच्छुक दिख रहा था।

सन् मई 1717 में आपात बैठक में लंबे विमर्श के पश्चात कैप्टन कॉन्सिबी नॉर्बरी की अगुवाई में उच्चस्तरीय प्रतिनिधिमंडल मोरक्को भेजा गया। निरंतर अवैध रूप से ब्रिटिश नाविकों को बंदी बनाने और हस्ताक्षर की गयी सभी संधियों का अतिक्रमण होते हुए देखकर नॉर्बरी इतने क्रुद्ध थे कि वे ऐसे किसी संवेदनशील समझौता-वार्ता के लिये अति दंभी हो गये थे। इसलिये उन्होंने सुल्तान के प्रति अवज्ञा व तिरस्कार का भाव दिखाया। जबकि सुल्तान मौले इस्माइल उनसे अपेक्षाकृत अधिक सौजन्यता से मिला और वह अपेक्षा कर रहा था कि उसके लिये इंग्लैंड से उपहार आया होगा। नॉर्बरी ने उससे यह कहते हुए ''बंदी ब्रिटिशों की मांग की कि जब तक उन्हें छोड़ा नहीं जाएगा, वो कोई शांति संधि नहीं करेंगे और उन्होंने अनेक धमकियां देते हुए यह भी कि वो उसके सारे समुद्र पत्तनों की नाकेबंदी करके वहां के सारे वाणिज्य को भी नष्ट कर देंगे।''[922] अब तक विदेशी उच्चाधिकारियों की अवमानना करने का अभ्यस्त सुल्तान निश्चित ही ऐसी किसी झिड़की के लिये तैयार नहीं था, और इसीलिये नॉर्बरी के मिशन में कोई सफलता हाथ नहीं लगी। परंतु सुल्तान मोरक्को में ब्रिटिश कांसुल को पदस्थ करने पर सहमत हो गया। ब्रिटिश कांसुल के उस पद के लिये व्यापारी एंथनी हैटफील्उ चुने गये और उन्होंने बंदियों की मुक्ति के लिये अनवरत् प्रयास किया, किंतु कुछ भी प्राप्त करने में असफल रहे।

हैटफील्ड ने उन जल-दस्युओं के बारे में सूचना एकत्र करना प्रारंभ किया और सन् 1717 तक यह चलता रहा। इसके बाद उन्होंने उस सूचना को लंदन भेज दिया। उस सूचना से सचेत होकर सन् 1720 में कमोडोर चार्ल्स स्टीवार्ट की अगुवाई में एक और कूटनयिक मिशन भेजा गया। स्टीवार्ट के पास मोरक्को के अपूर्वानुमेय व दंभी शासक से वार्ता करने योग्य सभी प्रकार का कूटनयिक विवरण व दक्षता थी। उन्होंने सबसे पहले उत्तरी मोरक्को के तेतौआन में सुल्तान के अमीर बाशा हमेत से संधि किया। तत्पश्चात्, वो सुल्तान के दरबार की ओर बढ़े, जहां अत्यंत आतिथ्य के साथ उनका स्वागत हुआ। लंबे समझौता-वार्ता के पश्चात अंततः सुल्तान के लिये बड़े उपहारों के बदले में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए। उन ब्रिटिश बंदियों में से 293, जो इंग्लैंड और औपनिवेशिक अमरीका दोनों स्थानों के थे, को मुक्त कर दिया गया।[923]

---

[922] इबिद, पृष्ठ 116

[923] इबिद, पृष्ठ 172-95

सुल्तान और उसके जल-दस्युओं को बहुत समय तक नियंत्रित नहीं किया जा सका। सन् 1726 तक उन जल-दस्युओं ने और अधिक ब्रिटिश पोतों को बंधक बनाया; उन ब्रिटिश पोतों पर से बंदी बनाये गये लोगों मेक्नीज स्थित सुल्तान के महल में भेज दिया गया। अगले वर्ष (1727), सुल्तान मौले इस्माइल की मृत्यु हो गयी और इसके पश्चात भयानक अराजकता व उपद्रव का काल आया। उस उपद्रव भरे काल में दासों का शिकार करने वाले दुष्टों सहित उपद्रवी तत्वों ने अपनी आपराधिक गतिविधियां बढ़ा दीं। परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में यूरोपीय लोगों को दास बनाकर उत्तरी अफ्रीका के दास-बाड़े में लाकर पटक दिया गया।

उन जल-दस्युओं ने सन् 1746 में ब्रिटिश पोत इंस्पेक्टर को उजाड़ दिया। उस पोत पर जीवित बचे 87 लोगों को पकड़ लिया गया। उस पोत के चालक दल के एक सदस्य थॉमस ट्राउफ्टन ने लिखा है, ''हमारी गरदन पर बड़ी सी जंजीर जकड़ दी गयी थी और हममें से 20-20 व्यक्ति एक ही जंजीर से बांधे गये थे।'' ब्रिटिश सरकार ने पुनः 1751 में मेक्नीज स्थित उस महल से उन बंदियों को छुड़वाया। मोरक्को के सुल्तान फ्रांसीसी, स्पेनी, पुर्तगाली, इटैलियाई व डच आदि देशों के दासों को विरले ही मुक्त करते थे।

अंततः अधिक मानवीय और सुलझे व्यक्ति सीदी मुहम्मद ने सन् 1757 में गद्दी पर कब्जा कर लिया। वह एक प्रबुद्ध व्यक्ति था और उसका मानना था कि मोरक्को की ध्वस्त अर्थव्यवस्था को समुद्री लूटमार व दास-व्यापार से नहीं सुधारा जा सकता है, अपितु अंतर्राष्ट्रीय यव्यापार को प्रोत्साहन देकर ही उसे ठीक किया जा सकता है। इसलिये उसने सेल के जल-दस्युओं के विरुद्ध जंग छेड़ दिया और उनका समूल नाश कर दिया। उसने सबसे पहले 1757 में डेनमार्क से शांति संधियां की और इसके बाद अमरीका सहित उन सभी यूरोपीय देशों के साथ शांति संधियां की, जो बर्बरीक समुद्री लुटेरों के पीड़ित थे।[924]

अनेक वर्षों तक मोरक्को तट पर खतरनाक जल-दस्युओं की गतिविधियां मृतप्राय रहीं, यद्यपि अल्जीयर्स और ट्यूनिश के जल-दस्युओं का यूरोपीय व अमरीकन पोतों पर हमला व लूटमार चलता रहा। सन् 1790 में सीदी मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी व बेटा मौले सुलेमान गद्दी पर बैठा। अपने पिता द्वारा की गयी संधियों की पुष्टि करने के बाद भी वह सेल के जल-दस्युओं को यूरोपीय पोतों पर हमले के लिये उकसाता रहा। वैसे, सेल या उत्तरी अफ्रीका में कहीं भी दासों के बर्बरीक शिकारियों की संख्या गिनती की बची थी। सदियों की अकर्मण्यता, तुष्टिकरण और फिरौती भुगतान के बाद भी जल-दस्युओं के आतंक का अंत न देखकर ब्रिटेन और अमरीका ने अंततः निर्णय कर लिया कि वे पूरी शक्ति से आक्रमण करके सदा के लिये उत्तरी अफ्रीका से समुद्री लूटपाट का अंत कर देंगे। यह ध्यान रखना चाहिए कि बर्बरीक समुद्री-लूटपाट और दासप्रथा के विरुद्ध ब्रिटेन के जिस संघर्ष का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह उत्तरी अफ्रीका में उसके संघर्ष का एक भाग भर है; ऐसा ही संघर्ष त्रिपोली व अल्जीयर्स में भी हुआ था।

अमरीकी संघर्ष व प्रति-कार्रवाई

---

[924] इबिद, पृष्ठ 269-70

अमरीकी व्यापारिक-पोत भी उत्तरी अफ्रीका में बर्बरीक समुद्री लूटपाट के पीड़ित रहे। सन् 1646 में पहली बार सेल के समुद्री लुटेरों द्वारा अमरीकी पोत व उसके चालक दल को पकड़ लिया गया। सन् 1776 में स्वतंत्रता मिलने तक उत्तरी अफ्रीका में अमरीकी पोत ब्रिटिश सुरक्षा के अधीन थे। उत्तरी अफ्रीकी कालकोठरियों से जिन ब्रिटिश बंदियों को मुक्त कराया गया, उनमें अमरीकी बंदी भी थे। सन् 1776 में जब अमरीका को स्वतंत्रता मिली, तो अमरीकी पोतों को मिलने वाली ब्रिटिश सुरक्षा हट गयी। तब अमरीकी पोत बर्बरीक समुद्री-लुटेरों के हमले के सीधे लक्ष्य पर आ गये। सन् 1784 में मोरक्को व अल्जीयर्स के मुस्लिम समुद्री-लुटेरों ने तीन अमरीकी व्यापारिक पोतों को पकड़कर उनके चालक दल को बंदी बना लिया। लंबी वार्ता के पश्चात, 60,000 पौंड की फिरौती देकर उन्हें मोरक्को से छुड़ाया गया। अल्जीयर्स के समुद्री-लुटेरों ने जिन्हें पकड़ा था, उनकी बहुत दुर्गति हुई; उन्हें दास बनाकर बेच दिया गया।

उपरोक्त विषय पर वार्ता करने के लिये उत्तेजित अमरीकी कूटनीतिज्ञ थॉमस जेफरसन और जॉन एडमस 1785 में लंदन में त्रिपोली के राजदूत अब्द अल-रहमान से मिले। जब उन्होंने अब्द अल-रहमान से पूछा कि बर्बरीक राज्य किस अधिकार से अमरीकी पोतों पर अपने हमले को न्यायोचित ठहराते हैं, तो अल-रहमान ने उन्हें बताया कि ''कुरआन में लिखा हुआ है कि जो देश उनके (इस्लामी) प्रभुत्व को नहीं मानते, वो सब के सब अपराधी हैं; और यह उनका (मुसलमानों का) अधिकार व कर्तव्य है कि उनमें (गैर-मुसलमानों में) से जिसे जहां पाएं, वहीं उससे भिड़ जाएं तथा उनमें से जिनको भी बंदी बना पायें उन सबको बलपूर्वक दास बनाएं; और उनसे संघर्ष में जो भी मुसलमान मारा जाएगा, वह निश्चित रूप से जन्नत जाएगा।''[925] राजदूत ने समुद्री लुटेरों से सुरक्षा देने के बदले राषि व उपहार मांगे और यह भी कहा कि उसके उसका कमीशन भी चाहिए। उसी क्षण थॉमस जेफरसन ने बर्बर दासप्रथा का अंत करने और समुद्री व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित बनाने के लिये बर्बरीक देशों के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ करने का संकल्प ले लिया।

पेरिस में कूटनयिक सेवा देते हुए जेफरसन ने बर्बरीक समुद्री लुटेरों द्वारा यूरोपीय व अमरीकी व्यापारिक पोतों पर हमले व लूटपाट करने की गतिविधियों का अंत करने के लिये अमरीकी-यूरोपीय नौसैनिक शक्तियों का गठबंधन बनाने का प्रयास किया, यद्यपि वह असफल रहे। उन्हें अपने देश में ही इसका विरोध झेलना पड़ा; यहां तक कि जॉन एडमस ने भी इस विचार का विरोध किया। बहुतों के जैसे एडमस ने भी इस पर वरीयता दी कि दृढ़-निश्चयी लड़ाका लोगों के विरुद्ध लंबे समय तक युद्ध करने की अपेक्षा उन्हें फिरौती देकर पिंड छुड़ाया जाए। जब जल-दस्युओं से पीड़ित सभी यूरोपीय देशों को मिलाकर एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यबल के गठन के विचार पर एडम्स का मत पूछा गया, तो उन्होंने जेफरसन को लिखा कि यद्यपि यह विचार ''साहसी और पूर्णतः सम्मान योग्य है..., किंतु हमें उनसे लड़ना नहीं चाहिए, जब तक कि हम उनसे सदा के लिये लड़ने के लिये दृढ़ निश्चय न कर लें।''[926]

---

[925] बेरूब सीजी एंड रोडगार्ड जेए (2005) एक कॉल टू द सीः कैप्टन चार्ल्स स्टीवार्ट ऑफ द यूएसएस कांस्टीट्यूशन, पोटोमैक बुक्स इंक., ड्यूल्स, पृष्ठ 22

[926] इबिद

इस बीच अमरीकी पोतों के साथ लूटपाट और उनके चालक दल को पकड़कर दास बनाये जाने की घटनाएं होती रहीं; 1785 से 1793 के मध्य 130 नाविकों को बंदी बनाया गया था। अमरीकी सरकार ने सन् 1795 में कूटनीतिज्ञ जोएल बर्लो, जोसफ डोनाल्डसन और रिचर्ड ओ ब्रायन को उत्तरी अफ्रीका भेजा, जिन्होंने सुरक्षा राशि अर्थात फिरौती देकर अमरीकी पोतों का सुरक्षित आवागमन सुनिश्चित करने के अनुबंध के साथ अल्जीयर्स, ट्यूनिश व त्रिपोली से संधियां कीं। अल्जीयर्स ने बंदी बनाये हुए 83 अमरीकी नाविकों को भी मुक्त कर दिया। जॉन एडमस के राष्ट्रपतित्व काल (1797-1801) में अमरीका उन्हें सुरक्षा राशि देता रहा और धीरे-धीरे इसका परिमाण राष्ट्रीय बजट का दस प्रतिशत तक पहुंच गया। उत्तरी अफ्रीका की कालकोठरियों में गोरे बंदियों की दुर्दशा की कथाओं और सुरक्षा राशि का भुगतान करने की अपमानजनक विवशता को देखते-देखते जनमानस धीरे-धीरे फिरौती भुगतान के विरुद्ध हो गया और सैन्य कार्रवाई की मांग होने लगी। जब 1801 में थॉमस जेफरसन राष्ट्रपति हुए, तो त्रिपोली के पाशा, युसुफ क़रामनली ने फिरौती की राशि मिलने में विलंब होने का बहाना बनाकर अमरीका के विरुद्ध जंग की घोषणा कर दी, उसने दो अमरीकी ब्रिगेडियर को पकड़कर बंदी बना लिया और अधिक फिरौती की मांग की। इसके बाद अन्य बर्बरीक राज्यों ने भी पहले से बड़ी फिरौती राशि की मांग की। जेफरसन उन बर्बरीक देशों को अपमानजनक सुरक्षा राशि देने की व्यवस्था के पूर्णतः विरोध में सदैव थे। सन् 1784 में उन्होंने कांग्रेसमैन जेम्स मोनरो (जो बाद में राष्ट्रपति हुए, 1817-25) से कहाः ''क्या यह अच्छा नहीं होगा कि उन्हें एक समान संधि का प्रस्ताव दिया जाए? यदि वे संधि के प्रस्ताव को ठुकरा दें, तो क्यों न उनसे युद्ध किया जाए...। यदि हम अपने वाणिज्य को चलाना चाहते हैं, तो हमें समुद्री शक्ति बनना होगा।''[927]

यह नये राष्ट्रपति जेफरसन सोलह वर्ष त्रिपोली राजदूत के साथ हुए संवाद को भूले नहीं थे, तो उन्होंने कांग्रेस को सूचना दिये बिना बर्बरीक उत्तरी अफ्रीका की ओर नौसैनिक बेड़ा भेज दिया। प्रत्युत्तर में त्रिपोली ने 1801 में संयुक्त राज्य अमरीका के विरुद्ध जंग की घोषणा कर दी और शीघ्र ही मोरक्को ने भी ऐसा ही किया। किंतु शीघ्र ही अमरीका को झटका लगा, क्योंकि त्रिपोली ने अमरीकी युद्धपोत फिलाडेल्फिया को पकड़ लिया, परंतु एडवर्ड प्रीबल व स्टीफन डेकाटूर ने एक नायक की भांति त्रिपोलियाई बंदरगाह पर आक्रमण किया, पकड़े गये पोत को नष्ट कर दिया और उस नगर की रक्षा व्यवस्था को भारी क्षति पहुंचायी। इस समाचार को सुनकर अमरीका व यूरोप में उत्साह भर गया और इस प्रकार विश्व पटल पर एक नयी शक्ति का उदय हुआ।

इसी बीच ट्यूनिश में अमरीकी कांसुल विलियम ईटन ने त्रिपोलियाई पाशा युसुफ क़रामनली के निर्वासित भाई हमीद से संपर्क स्थापित कर उसे त्रिपोली की सत्ता का अमरीकी नामित बनाने का प्रस्ताव दिया। ईटन के इस प्रयास को उनके ही देश में सराहना नहीं मिली, परंतु वे इस पर काम करते रहे। सन् 1805 में उन्होंने युद्धपोतों की एक छोटी टुकड़ी व असंबद्ध सैनिकों की सेना के साथ इजिप्ट से त्रिपोली तक रेगिस्तानी साहसिक यात्रा की। उन्होंने औचक धावा बोला और बड़ी सैन्य छावनी वाले डर्ना नगर ने आत्मसमर्पण कर लिया। ईटन पाशा की फौज से लड़ रहे थे कि जेफरसन व पाशा युद्ध समाप्त करने पर सहमत हो गये। संधि के जो अनुबंध निश्चित हुए, उसमें यह था कि फिलाडेल्फिया युद्धपोत के चालक दल को इस बार फिरौती के भुगतान पर मुक्त

---

[927] इबिद

कर दिया जाएगा, परंतु आगे से अमरीका कोई फिरौती नहीं देगा। इसमें ईटन के साहसिक कार्य की बड़ी भूमिका थी। साहसी व न झुकने की प्रवृत्ति वाले ईटन ने इस समझौते का विरोध करते हुए इसे अमरीकी हितों को नीलाम करने वाला बताया।

सन् 1812 में अब ब्रिटेन व अमरीका के मध्य वैर पनपने लगा था। एंग्लो-अमरीकी वैर का लाभ उठाते हुए अल्जीयर्स का नया पाशा हाजी हली ने 1795 में हुए अमरीकी समझौते में निर्धारित फिरौती को अपर्याप्त बताते हुए उसे ठुकरा दिया। अल्जीरियाई जल-दस्युओं ने पुनः अमरीकी पोतों पर हमला करके पकड़ना प्रारंभ कर दिया। गेंट की संधि से ब्रिटेन के साथ युद्ध समाप्त होने के बाद राष्ट्रपति जेम्स मैडिसन ने संसद से अनुरोध किया कि अल्जीरिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जाए। 3 मार्च 1815 को युद्ध की घोषणा हो गयी और मैडिसन ने समुद्री-लुटेरों की समस्या के समूल नाश के लिये स्टीफन डेकाटूर के नेतृत्व में युद्ध-प्रवीण नौसेना को पुनः उत्तरी अफ्रीका की ओर भेजा।

अमरीकी नौसेना ने वहां के सुल्तान देई उमर पाशा के बेड़ों को नष्ट कर दिया, उसके विशाल बंदरगाह को खतरनाक शस्त्रों से सुज्जित अमरीकी पोतों से भर दिया, सैकड़ों की संख्या में पाशा के फौजियों को बंदी बना लिया। देई उमर ने हथियार डाल दिये और न चाहते हुए भी उसे डेकाटूर द्वारा निर्देशित संधि स्वीकार करनी पड़ी। इस संधि में अमरीकी व अल्जीरियाई बंदियों का विनिमय (अदला-बदली) एवं सुरक्षा राशि व फिरौती की प्रथा के अंत की र्तें लिखी गयीं। सबसे ताकतवर बर्बरीक राज्य अल्जीयर्स को पराजित करने के बाद डेकाटूर ट्यूनिस व त्रिपोली की ओर बढ़े और उन्हें भी इसी प्रकार की संधि करने पर विवश कर दिया। डेकाटूर ने त्रिपोली में पाशा क़रामनली की कालकोठरियों से सभी यूरोपीय बंदियों को भी मुक्त करा लिया। इस अवसर पर राष्ट्रपति मैडिसन के इन शब्दों-''यह अमरीका की स्थापित नीति है, कि शांति युद्ध से श्रेष्ठ होती है, युद्ध फिरौती से श्रेष्ठ होता है; यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका किसी देश के साथ युद्ध नहीं चाहता है, किंतु मूल्य चुकाकर शांति किसी से भी नहीं क्रय करेंगे''- ने अमरीकी विदेश नीति के नये अध्याय का प्रारंभ किया।[928]

ब्रिटिश नेतृत्व में यूरोपियन प्रति-आक्रमण

संयुक्त राज्य अमरीका ने 1815 में बर्बरीक राज्यों से अपना प्रतिशोध ले लियाः इसी वर्ष सभी यूरोपीय देशों ने संयुक्त रूप से दास-व्यापार पर प्रतिबंध की घोषणा की। किंतु यूरोपीय पोतों पर हमले व लूटमार चलते रहे। बर्बरीक उत्तरी अफ्रीका में अमरीका की साहसिक कार्रवाई (1801-05, 1815) यूरोप और विशेष रूप से ब्रिटेन में भी ऐसी ही कार्रवाई की मांग उठने लगी। जब यूरोपीय देशों के मुखिया और मंत्री 1814 में वियना कांग्रेस में नेपोलियन युद्ध के अंत के बाद हो रही शांति संधि पर विमर्श करने के लिये एकत्र हुए, तो बर्बरीक समुद्री-लूट की समस्या के सैन्य समाधान के प्रबल समर्थक सर सिडनी स्मिथ ने उत्तरी अफ्रीका के शासकों के विरुद्ध सैन्य शक्ति के प्रदर्शन की मांग वाली याचिका दी। उन्होंने कांग्रेस से कहा, ''यह घृणित दासप्रथा न केवल मानवता का विरोधी है, अपितु यह वाणिज्य में विनाशकारी ढंग से बाधा भी उत्पन्न करता है।''

---

[928] हिचेंस, ओपी सीआईटी

सर स्मिथ के तर्कों ने सदियों से चल रही अमानवीय व वाणिज्य रूप से पंगु वाले कुप्रथा की ओर ध्यान आकर्षित किया। ब्रिटेन ने उस यूरोपीय संधि में दास-व्यापार पर प्रतिबंध के उपबंध का समावेश किया। वियना कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित कर सभी प्रकार की दासप्रथा की निंदा की, परंतु बर्बरीक देशों के विरुद्ध कोई उपाय नहीं किया। यद्यपि शीघ्र ही यूरोप में चारों ओर से सर स्मिथ के सैन्य कार्रवाई की हुंकार के समर्थन में स्वर उठने लगे; वे सभी इस घिनौने शत्रु के अत्याचार से भयानक रूप से पीड़ित थे। वे लोग कुछ मास पूर्व अल्जीयर्स में अमरीकी सफलता से आशान्वित व उत्साहित थे। चूंकि ब्रिटेन इससे उतना पीड़ित नहीं था, क्योंकि उसने समय-समय पर संधि करके अंग्रेज बंदियों की मुक्ति सुनिश्चित कर ली थी, तो अन्य यूरोपीय देशों ने यह कहकर ब्रिटेन की निंदा की कि 'चूंकि जब भी उसके व्यापारिक प्रतिद्वंद्वियों पर आक्रमण होता था, तो वह उसका लाभ उठाने में लग जाता था, इसलिये उसने उन जल-दस्युओं के विध्वंस की ओर आंखें मूंद ली है।'[929]

चारों ओर से आलोचनाओं से घिरे ब्रिटेन, जो अश्वेत दासप्रथा के उन्मूलन का समर्थक था, ने अब गोरों की दासप्रथा के उन्मूलन का भी संकल्प लिया। 1815 में ब्रिटिश सरकार ने यूरोप के किसी भी देश के पोत को पकड़ने और उसके चालक दल या नागरिकों को दास बनाने से दूर रहने के लिये बर्बरीक राज्यों को बाध्य करने के लिये सर एडवर्ड पेलो के नेतृत्व में एक बड़ा सैन्य बेड़ा उत्तरी अफ्रीका की ओर भेजा। ब्रिटिश सरकार ने यह भी संकल्प लिया कि अब कोई फिरौती नहीं दी जाएगीः ''यदि शक्ति का आश्रय लेना पड़े तो भी, हम इस पर आश्वस्त हैं कि हम मानवता के पवित्र उद्देश्य के लिये युद्ध करेंगे।''[930]

सन् 1815 के उत्तरार्द्ध में अल्जीयर्स के तट पर समुद्र में विशाल बेड़ा पहुंचने के बाद सर पेलो ने उमर पाशा को सीधा संदेश भेजा कि वह एक घंटे के भीतर बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दे, सभी यूरोपीय बंदियों को मुक्त कर दे और यूरोपीय पोतों को पड़ने एवं लोगों को दास बनाने की गतिविधियां सदा के लिये छोड़ दे। पूर्व के अमरीकी आक्रमण के बाद से ही पाशा ने संभावित यूरोपीय आक्रमण से निपटने के लिये अपनी सुरक्षा स्थिति सुदृढ़ की थी और लड़ाकों की भर्ती की थी। जब उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं आया, तो सर पेलो ने युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिश नौसेना के बेड़ा छह डच जलपोतों वाले स्क्वाड्रन द्वारा संभाला जा रहा था। अल्जीयर्स पर भारी बमवर्षा के साथ युद्ध प्रारंभ हुआ और उस नगर को खंडहर बना दिया गया। उमर पाशा की फौज ने थोड़ा-बहुत प्रतिरोध किया और जवाबी कार्रवाई करते हुए ब्रिटिश पक्ष की ओर क्षति व जनहानि पहुंचायी।

उस नगर को खंडहर बनाने के बाद सर पेलो ने बंदरगाह में खड़े जल-दस्युओं की नावों की ओर अपना ध्यान लक्षित किया और उन पर भयानक बमवर्षा की, जिससे वो सब आग के गोले में परिवर्तित हो गये। अगला सूर्योदय होने तक वह नगर व जल-दस्युओं का बेड़ा पूर्णतः उजाड़ हो चुका था। ब्रिटिश पक्ष के 141 सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए और 78 घायल हुए, जबकि शत्रु पक्ष के 2,000 लोग मारे गये। अगले दिन विनाश का निरीक्षण करने के बाद उमर पाशा ने अपने दंभ को निगलकर बिना शर्त

---

[929] मिल्टन, पृष्ठ 272

[930] इबिद

आत्मसमर्पण कर दिया और ब्रिटिश कमांडर की सभी मांगों को मान लेने पर सहमत हो गया। संधि के अनुबंधों में सभी यूरोपीय बंदियों को मुक्त करना और यूरोपियों को दास बनाने पर पूर्णतः रोक लगाना सम्मिलित था।

संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन द्वारा मिले इतने भयानक प्रहार के बाद, बर्बरीक राज्यों ने ब्रिटिश व अमरीकी पोतों पर हमला करना बंद कर दिया, किंतु अन्य देशों के पोतों पर उनके हमले होते रहे। उदाहरण के लिये, फ्रांसीसी पोत उनके शिकार बनते रहे। तब फ्रांस की सरकार अपनी सैन्य कार्रवाई के लिये आगे बढ़ी। उन बर्बरीक बंदरगाहों पर प्रहार करने के लिये सन् 1819 में पुनः संयुक्त एंग्लो-फ्रेंच नौसैनिक बेड़ा बर्बरीक तट की ओर भेजा गया। बर्बरीक जल-दस्युओं की लूटमार पर पूर्ण विराम लगाने और उत्तरी अफ्रीका में भयानक अत्याचार व पराधीनता सह रहे ईसाइयों को मुक्त करने के लिये फ्रांस ने 1830 में अल्जीयर्स को जीत लिया और इसके साथ सदा के लिये बर्बरीक के दास-शिकार का अंत हो गया।

उस्मानिया साम्राज्य द्वारा दासप्रथा पर प्रतिबंध लगाये जाने के विरुद्ध मुसलमानों का प्रतिरोध

पश्चिम के दबाव में उस्मानिया सरकार ने 1855 में अपने साम्राज्य में दास-व्यापार पर प्रतिबंध लगाने की घोषणा कर दी। अल्लाह द्वारा स्वीकृति इस दासप्रथा की संस्था पर प्रतिबंध लगाने से मुसलमान आगबबूला हो उठे। विशेष रूप से हेजाज और सूडान में इस प्रतिबंध का उग्र विरोध हुआ। यह तर्क देते हुए कि अल्लाह द्वारा स्वीकृत दासप्रथा की इस व्यवस्था पर प्रतिबंध पश्चिम के निर्देश पर लगाया गया है, मुख्य इस्लामी केंद्र हेजाज़ (सऊदी क्षेत्र) में मुसलमानों ने उस्मानिया साम्राज्य से विद्रोह कर दिया। हेजाज़ में उलेमा वर्ग के प्रमुख शेख जमाल ने दास-व्यापार पर प्रतिबंध एवं उस्मानिया साम्राज्य द्वारा किये गये सुधारों के विरोध में फतवा निकाला। वह उन्हें ईसाई-प्रेरित इस्लाम विरोधी मानता था। फतवे में लिखा थाः 'दासप्रथा पर प्रतिबंध लगाना पवित्र शरिया के विरुद्ध है... ऐसे प्रस्ताव लाकर तुर्क (उस्मानिया साम्राज्य) काफिर हो गया है। उनका रक्त दूषित हो गया है और उनके बच्चों को पकड़कर दास बनाना हलाल है।'[931]

हेजाज़ में उठे इस नये जिहाद को तुर्क एक वर्ष में ही ठंडा करने में सफल रहे। यद्यपि उस विद्रोह व फतवे ने अपना काम कर दिया था। इस्लाम के मुख्य क्षेत्र में अल्लाह द्वारा स्वीकृत व्यवस्था (दासप्रथा) पर प्रतिबंध के दीर्घकालीन दुष्परिणाम की आशंका को भांपते हुए उस्मानिया साम्राज्य ने एक छूट की घोषणा की, जिसमें हेजाज़ को दासप्रथा पर प्रतिबंध से मुक्त कर दिया गया। इस संबंध में उस्मानिया सुल्तान ने इस्तांबुल के मुख्य मुफ्ती आरेफ इफेंदी की ओर से पत्र लिखवाकर मक्का के काजी, मुफ्ती, उलेमा, शरीफों, इमामों व धर्मोपदेशकों तक संदेश पहुंचवाया कि दासप्रथा पर प्रतिबंध व अन्य उस्मानिया सुधार की जो बातें फैलायी जा रही हैं, वो ''मिथ्या प्रवाद (अफवाह)'' हैं। पत्र में लिखा थाः ''यह सुनने में आया है और हमने इसकी पुष्टि भी की है कि इस संसार में माल पाने के लिये लालायित कुछ निर्लज्ज लोग ऐसे झूठ गढ़ रहे हैं और इस सीमा तक घिनौना भ्रम फैला रहे हैं

---

[931] लेविस, पृष्ठ 102-3

कि उत्कृष्ट उस्मानिया साम्राज्य पुरुष व महिला दास रखने पर प्रतिबंध लगाने का पाप कर रहा है- सर्वसामर्थ्यवान अल्लाह हमारी रक्षा करे.... ये सब बातें झूठ का आश्रय लेकर कलंकित करने के हथकंडे के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं...।''[932]

सदियों से दास बनाने के लिये शिकार करने वाले मुस्लिम शिकारियों व व्यापारियों की सर्वाधिक उपजाऊ भूमि रहे सूडान में उस्मानिया-इजिप्ट द्वारा दास-प्रथा के उन्मूलन के प्रयास का प्रबल विरोध हुआ। रूडोल्फ पीटर्स के अनुसार, 'जब यूरोपीय शक्तियों ने दास-व्यापार का दमन करने के लिये इजिप्ट की सरकार को बाध्य किया, तो सूडानियों में असंतोष पनप गया।' पीटर्स ने लिखा है कि यह असंतोष केवल भौतिक कारणों से नहीं था, 'अपितु मजहबी मान्यताओं के कारण भी था।' उन्होंने आगे लिखा हैः 'चूंकि इस्लाम दासप्रथा की अनुमति देता है, इसलिये अधिकांश मुसलमान इसमें कोई बुराई नहीं देखते हैं। इसका दमन इस्लाम के अनादर के रूप में देखा गया। चूंकि इजिप्ट की सरकार द्वारा बलपूर्वक दास बनाये गये यूरोपियों (ईसाइयों) को इस घिनौनी कुप्रथा में लगाया गया था, इसलिये इस प्रथा को बंद करने का और विरोध हो रहा था।'[933] इसका परिणाम यह हुआ कि सूफी नेता मुहम्मद अहमद (मृत्यु 1885) ने उस्मानिया-इजिप्ट प्रशासन व उसके पष्चिमी सहयोगियों के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया। प्रभावित दास-व्यापारी व सूफी नेता अपनी-अपनी निजी फौज के साथ उस जिहाद आंदोलन में साथ आ गये।[934]

हेजाज़ (सऊदी क्षेत्र) में दासप्रथा का उन्मूलन करने में उस्मानिया साम्राज्य की विफलता के कारण अगले 107 वर्षों तक सऊदी अरब में दास-प्रथा वैध बनी रही। 1960 में लार्ड शैकेलेटन ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स में बताया था कि अफ्रीकी मुसलमान मक्का में हज करने जाते समय अपने साथ दासों को ले जाते थे और ''उनका उपयोग जीवित यात्री चेक के रूप में करते थे।''[935] (सऊदी अरब और यमन ने 1962 में दासप्रथा पर रोक लगायी, ब्रिटेन में इस पर प्रतिबंध के लगभग 155 वर्ष बाद; मॉरीतानिया 1980 में इस पर रोक लगा सका। निश्चित रूप से दास प्रथा पर ये रोक अंतर्राष्ट्रीय दबावों, मुख्यतः पश्चिम के बड़े दबावों के कारण लगाये गये, किंतु इन प्रतिबंधों का प्रभाव आंशिक ही रहा।

मुस्लिम देशों का दासप्रथा में योगदान और इस कुप्रथा का पुनः अस्तित्व

सऊदी अरब, सूडान और मॉरीतानिया में यह कुप्रथा आज भी विभिन्न रूपों में है। रायटर्स ने कुछ समय पूर्व स्लेवरी स्टिल एग्ज़िस्ट इन मॉरीतानिया शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमें कहा गया थाः

> वे जंजीरों में जकड़े हुए नहीं होते, न ही उनकी पहचान अपने स्वामियों के चिह्न से होती है, किंतु दास मॉरीतानिया में आज भी हैं...। सहारा मरुस्थल के तपते बालू के टीलों के बीच ऊंट या बकरी चराते हुए अथवा नौकाकचोत की समृद्ध हवेलियों में अतिथियों को गर्म

[932] इबिद, पृष्ठ 103

[933] पीटर्स, पृष्ठ 64

[934] इबिद, पृष्ठ 64-65

[935] लाल (1994), पृष्ठ 176

> पिपरमिंट चाय परोसते हुए, मॉरीतानियाई दास अपने स्वामियों की सेवा करते हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चल संपत्ति के रूप में हस्तांतरित कर दिये जाते हैं...। दासप्रथा-विरोधी कार्यकर्ता कहते हैं कि दासों की संख्या हजारों में हो सकती है। जन्म से ही दास रहे और दासप्रथा विरोधी कार्यकर्ता के रूप में कार्यरत बाउबाकर मेस्सॉउद ने रायटर्स को बताया कि 'यह वैसा ही है जैसे कि एक भेड़ या बकरी रखना। यदि कोई स्त्री दास है, तो उसकी संतान भी दास होगी।'[936]

सऊदी अरब में दासप्रथा अभी भी चल रही है; परंतु मजहबी इस्लामी राज्य की रहस्यमयी व्यवस्था के कारण, इसके बारे में सूचनाएं बहुत कम बाहर आ पाती हैं। शेखों के घरों में नौकरानी का काम करने के लिये सऊदी अरब जाने वाली बांग्लादेश, इंडोनेशिया, फिलीपींस, श्रीलंका आदि निर्धन देशों की लाखों युवा महिलाएं घरों में निरुद्ध रहकर एक प्रकार के दास का जीवन जीती हैं। उनमें से बहुलता में महिलाएं कुरआन में स्वीकृत रखैल प्रथा का अनुपालन करते हुए अपने मालिकों को यौन सेवा भी देती हैं। सऊदी अरब के कोलारोडो विश्वविद्यालय में पीएचडी के छात्र होमैदान अल-तुर्की को जब अपनी इंडोनेशियाई नौकरानी पर यौन हमला करने के लिये 2006 में बीस वर्ष का दंड दिया गया, तो उसने अपने अपराध को यौन हमला मानने से ही अस्वीकार कर दिया और उसने दावा किया कि यह 'एक पारंपरिक मुस्लिम व्यवहार है।'[937] सऊदी में विदेशी नौकरों के शोषण एवं उनके साथ दुर्व्यवहार पर मानव अधिकार निगरानी रिपोर्ट में कहा गया है कि,

> कुछ महिला कर्मचारियों, जिनका हमने साक्षात्कार लिया है, अभी भी सऊदी नियोक्ताओं द्वारा किये गये बलात्कार व यौन हिंसा से चोटिल हैं और वे अपनी दारुण-व्यथा बताते समय अपना रोष व आंसू रोक न सकीं। अपने मूल देश में कहीं भी निर्बाध आवागमन की अभ्यस्त वो महिलाएं रियाद, जेद्दा, मदीना और दम्माम में बंद किवाड़ों व द्वारों के पीछे धकेल दी गयीं और उन कार्यस्थलों, निजी घरों और शयन-गृह शैली के भवनों में एक प्रकार की बंदी जैसी बनकर रहने को विवश थीं, जो उन्हें श्रम उप-ठेका कंपनियों द्वारा उपलब्ध कराये गये थे। बलात् एकांतवास व घोर एकाकीपन में रहने के कारण इन महिलाओं के लिये सहायता की पुकार लगा पाना, शोषण व दुर्व्यवहार की स्थितियों से बचकर निकल पाना और विधिक आश्रय ढूंढ़ पाना कठिन या असंभव था।[938]

टाइम्स ऑफ इंडिया ने 10 दिसम्बर 1993 में लिखा था कि 'इसमें कोई संदेह नहीं है कि अरब के समृद्ध महलों में आज भी कई हजार दास सेवारत हैं।' मलेशिया, भारत, श्रीलंका, इजिप्ट व अन्य निर्धन देशों की बहुधा यात्रा करने वाले वृद्ध व धनी सऊदी शेख अभिभावकों को धन देकर निर्धन परिवारों की युवा लड़कियों को शादी के लिये क्रय कर लेते हैं और उन्हें सऊदी अरब ले जाते हैं और स्वाभाविक है कि वे वहां कुछ और नहीं, अपितु सेक्स-स्लेव बनकर रहती हैं।

सूडान में दासप्रथा का पुनः आरंभः सूडान (नूबिया) इस्लामी दासप्रथा का सबसे भयानक शिकार रहा है। दासप्रथा ने सूडान को बहुत पहले चपेट में ले लिया थाः 652 ईसवी से 1276 ईसवी तक सूडान बाध्य था कि वह प्रतिवर्ष 400 दास भेजे। दसवीं सदी

---

[936] फ्लेचर पी, स्लेवरी स्टिल एग्ज़िस्ट इन मॉरीतानिया, रायटर्स, 21 मार्च 2007

[937] यूएस अर्ज्ड टू रिव्यू सऊदी स्टूडेंट'स केस, अरब न्यूज, रियाद, 28 मार्च 2008

[938] ह्यूमन राइट्स वाच, एक्स्प्लॉयटेशन एंड एब्यूज ऑफ माइग्रैंट वर्कर्स इन सऊदी अरेबिया, http://hrw.org/mideast/saudi/labor/

के अभिलेख हुदूद-ए-आलम से ज्ञात होता है कि इस्लाम के आरंभिक दिनों से ही सूडान दासों का शिकार करने वाले मुसलमानों के लिये उपजाऊ क्षेत्र बन चुका था और आज भी वही स्थिति बनी हुई है। 1990 के दशक में सूडान में दासों की मुक्ति की परियोजना पर काम करने वाले जौन एइब्नर ने अरब लड़ाकों व सरकार-प्रायोजित पापुलर डिफेंस फोर्स (पीडीएफ) द्वारा अश्वेत सूडानी स्त्रियों और बच्चों, जिनमें ईसाई, जीववादी भी होते हैं, को बलपूर्वक दास बनाने के विषय में लिखा है। दास बनायी गयी स्त्रियों को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया और सामान्यतः उनका उपयोग रखैलों के रूप में किया गया, जबकि कम आयु के लड़कों को अपने ही भाई-बंधुओं से लड़ने के लिये जिहादी के रूप में तैयार किया गया। उन्होंने 1999 में 1,783 दासों को मुक्त कराया, जबकि उनके संगठन क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी इंटरनेशनल ने 1945 से 1999 के मध्य 15,447 दासों को मुक्त कराया।[939] यहां तक कि औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार (1899-1956) भी सूडान में दासप्रथा और दास-व्यापार को प्रभावशाली ढंग से रोक पाने में विफल रही। ब्रिटिश सिविक सर्वेंटों द्वारा तैयार 1947 के एक ज्ञापन में कहा गया है, 1920 के उत्तरार्द्ध में, इथोपिया में चल रहे भयानक दास-व्यापार की पोल खुली थी और आज भी समय-समय पर अपहरण होते ही हैं तथा इसके पीड़ितों को तुरत-फुरत दूर स्थित उत्तर के रेगिस्तानी घुमंतू जातियों के हाथों में पहुंचा दिया जाता है।[940]

इससे भी बुरा तथ्य यह है कि 1980 के दशक से ही सरकार-प्रायोजित इस्लामवाद के उत्थान से सूडान में हिंसक ढंग से दास बनाने की प्रथा पुनर्जीवित हो गयी है। 1983 में जाफर निमीरी के नेतृत्व एवं इस्लामी नेता डॉ. हसन अल-तुराबी के संरक्षण वाली इस्लामी सूडानी सरकार ने अश्वेत ईसाइयों व जीववादियों की बहुलता वाले दक्षिण सूडान की लंबे समय चली आ रही स्वायत्तता को समाप्त करते हुए अरबी-बाहुल्य उत्तर में मिलाने की घोषणा कर दी। सरकार का उद्देश्य था कि जिहाद की प्रक्रिया से धार्मिक विविधता व नृजातीय विविधता वाले सूडान को अरबी प्रभुत्व वाले मुस्लिम राज्य में रूपांतरित कर दिया जाए।

इसके विरोध में गैर-मुस्लिमों की बाहुल्यता वाले उत्तर में विद्रोहियों ने कर्नल जॉन गैरांग की अगुवाई में सूडान पीपुल्स लिबरेषंस आर्मी (एसपीएलए) नामक एक प्रतिरोधी आंदोलन का गठन किया। इसके उत्तर में इस्लामी सरकार ने कबीलाई अरब उग्रवादियों (बक्करा) को हथियार देना प्रारंभ कर दिया। स्वचालित हथियारों से सुसज्जित इन अरब गिरोहों ने विद्रोहियों व उसके समर्थकों के विरुद्ध सरकार की जंग में साथ देते हुए हमले तेज कर दिये। उन्होंने गांवों पर हमले करके वयस्क पुरुषों को मार डाला, उनकी स्त्रियों व बच्चों का अपहरण कर लिया, उनकी गायों, बकरियों व अनाज को लूट लिया और जो कुछ बचा, उसमें आग लगा दी। 1985 में इस्लामी सरकार के अपदस्थ होने के बाद भी तनिक शांति आयी। किंतु 1986 के चुनाव में एक इस्लामवादी और अल-तुराबी के साले सादिक अल-महदी प्रधानमंत्री बना, तो जिहाद फिर से उठ खड़ा हुआ। अरब उग्रवादियों ने 'सुनियोजित हमले

[939] एआईब्नर जे (1999), माय कैरियर रीडिमिंग स्लेव्स, मिडिल ईस्ट क्वार्टरली, दिसम्बर इशू

[940] हेंडरसन केडीडी (1965) सूडान रिपब्लिक, अर्नेस्ट बेन, लंदन, पृष्ठ 197

करके लाखों नागरिकों की हत्या और उनकी स्त्रियों व बच्चों का अपहरण करके उन्हें बलपूर्वक दासप्रथा में धकेलना प्रारंभ कर दिया।'[941]

1989 में अल-तुराबी और नेशनल इस्लामी फ्रंट (एनआईएफ) के जनरल उमर अल-बशरी की अगुवाई में विद्रोह करके सत्ता परिवर्तन किये जाने के बाद तो अरब उग्रवादी और व्यापक और संगठित हो गये। निरंकुश इस्लामी शासन के राष्ट्रपति अल-बशीर ने विद्रोहियों व उनके समर्थक समुदायों के विरुद्ध जिहाद चलाने के लिये एक अस्थायी फौज पीडीएफ का गठन किया। पीडीएफ के हमलों और लोगों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाने के अभियान से सर्वाधिक प्रभावित दक्षिण-पश्चिम के बहर अल-गज़ाल राज्यों के लोग और दक्षिणी कोरदोफान क्षेत्र की नूबा जनजातियां रहीं। दक्षिणी नूबा पहाड़ियों के अश्वेत मुसलमान होने के बाद भी इसलिये नास्तिक घोषित कर दिये गये, क्योंकि विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति रखने के कारण उनके विरुद्ध इस्लामी फतवा दिया गया था। यू.एन. के विशेष गैस्पर बिरो के अनुसार उस फतवे में कहा गया था:[942]

> वह विद्रोही जो पहले मुस्लिम था, अब नास्तिक है; और गैर-मुस्लिम वो काफिर लोग हैं, जो इस्लाम के प्रसार में बाधा बनकर खड़े होते हैं और इस्लाम ने नास्तिक और गैर-मुस्लिम दोनों की हत्या की स्वतंत्रता देता है।

1998 में स्थायी फौज द्वारा समर्थित पीडीएफ ने बहर-अल-गज़ाल में दीनकाओं के विरुद्ध भयानक जिहादी अभियान छेड़ दिया, जिससे 300,000 से अधिक लोगों को विस्थापित होना पड़ा और बड़ी संख्या में लोगों की हत्याएं हुईं और पकड़कर बलपूर्वक दास बनाया गया। प्रांतीय सरकार के परामर्शी सैंटिनो डेंग ने दावा किया था कि इन हमलों के बाद इस्लामी उग्रवादियों ने बबंसुआ (पश्चिम कोरदोफन) में 50,000 दीनका बच्चों को बंदी बनाकर रखा था। यूनीसेफ की एक रिपोर्ट में दावा किया गया कि पीडीएफ ने दिसम्बर 1998 और फरवरी 1999 के मध्यम 2,064 लोगों को बलपूर्वक पकड़कर दास बनाया और 181 लोगों की हत्याएं कीं।[943] सूडान में चल रहे दास-हमलों के आधार पर जॉन एइब्नर ने अनुमान लगाया था कि 1999 में लगभग 100,000 चैट्टल दास थे।[944] दासप्रथा विरोधी एक पत्रक में लिखा है, 1986 से 2003 के मध्यम सूडान में अनुमानतः 14,000 लोगों का अपहरण हुआ और उन्हें बलपूर्वक दासता में धकेल दिया गया।[945]

यद्यपि अभी इससे भी बुरा समय आना शेष था और इस बार यह दार्फूर में आया। सूडान सरकार द्वारा संरक्षित अरब उग्रवादियों (जंजावीद) ने विद्रोहियों व उनके समर्थकों के विरुद्ध भयानक जिहाद की झड़ी लगा दी। सूडान में सरकार समर्थित

---

[941] मेट्ज एचसी ईडी. (1992) सूडानः ए काउंटी स्टडी, लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस, वाशिंगटन डीसी, फोर्थ एडिशन, पृष्ठ 257

[942] डेविड लिटमैंन (1996), द यू.एन. फाइंड्स स्लेवरी इन द सूडान, मिडिल ईस्ट क्वार्टरली, सितंबर इशू

[943] इंटर प्रेस सर्विस (खार्तौम), जुलाई 24, 1998

[944] एइब्नर, ओपी सीआईसी

[945] एंटी स्लेवरी, मेंडे नाजेर- फ्रॉम स्लेवरी टू फ्रीडम, अक्टूबर 2003

जिहाद में 1983 से 2003 के मध्यम लगभग दास लाख लोग मारे गये। यू.एन. ने 2004 से दार्फूर में शुरू जिहाद में मोटामोटी 300,000 लोगों के मारे जाने का अनुमान लगाया है; पूर्व यू.एन. अवर महासचिव ने कहा कि मृतकों की संख्या 400,000 से कम नहीं होगी।[946] दार्फूर में अनुमानतः 25 लाख लोग विस्थापित हुए और जाने कितने लोग संभवतः बलपूर्वक दास बनाये गये। जुलाई 2008 में अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय ने राष्ट्रपति अल-बशीर को युद्ध अपराधी घोषित किया और दार्फूर में हुए नरसंहार, अपहरण, बलात् दास बनाने की घटनाओं को मानवता के विरुद्ध अपराध बताया।[947]

1949 में त्रिमिंघम ने टिप्पणी की थी कि जब औपनिवेशिक ब्रिटिश प्रशासन ने जब दासप्रथा पर प्रतिबंध लगाया, तो सदियों से दासों के शिकार को आजीविका बनाये हुए बक्कारा अरबियों के लिये आजीविका का संकट उत्पन्न हो गया।[948] बक्कारा अरबी अभी भी दासप्रथा चलाने के लिये लालायित रहते हैं। सन् 1956 में जब ब्रिटिश शासक चले गये, तो सूडान में अरबियों ने उसे पुनर्जीवित किया, जो उनसे छूट गया था और जिसके लिये वो लालायित रहते थेः अल्लाह द्वारा स्वीकृत दासप्रथा का उनका सदियों पुराना व्यवसाय।

पश्चिम में दासप्रथा मुसलमानों द्वारा लायी गयी

यह व्यथित करने वाला तथ्य है कि मुसलमान, विशेष रूप से कुछ मध्यपूर्वी देशों के मुसलमान, पश्चिमी देशों में दासप्रथा के चिह्न लाकर थोप रहे हैं। बीते कुछ वर्षों में ऐसी अनेकों रिपोर्ट आयी हैं कि अमरीका व ब्रिटेन में रहने वाले सऊदी व सूडानी परिवार, जिन्होंने अपने नौकरों को दासप्रथा में धकेल दिया, विधिक प्रक्रियाओं की ओर बढ़ रहे हैं। ऊपर उल्लिखित दासप्रथा विरोधी पत्रक के अनुसार, मेंडे नाजेर नामक एक महिला को सूडान की नूबा पहाड़ियों से पकड़कर बलपूर्वक दास बनाया गया था। कुछ समय पूर्व मेंडे ने दासः मेरी सच्ची कथा शीर्षक से अपनी आत्मकथा प्रकाशित की है। वो पहले खार्तौम में एक धनी अरब परिवार में दास बनाकर रखी गयी थी और उसके बाद लंदन में सूडान के एक राजयनिक के यहां उसे रखा गया, जहां से वो 2002 में बचकर भाग निकलीं और ब्रिटेन में राजनीतिक शरण मांगी। नेशनल रिव्यूज में प्रकाशित 2003 की एक रिपोर्ट के अनुसार,[949]

> लंदन में सऊदी सुल्तान फहद की बहन सहित शाही परिवार के तीन सदस्य पांच वर्ष पूर्व फिलीपींस की तीन महिलाओं के साथ हिंसक व्यवहार से संबंधित एक कांड में लिप्त पाये गये थे। उन महिलाओं ने सऊदी शाही परिवार के उन सदस्यों के विरुद्ध यह आरोप लगाते हुए न्यायालय में वाद प्रविष्ट किया कि उनके साथ शारीरिक दुर्व्यवहार हुआ, उन्हें भूखा रखा गया और उनकी इच्छा के विरुद्ध

---

[946] लेडरर, ईएम, यूएन सेज दार्फुर कॉन्फ्लिक्ट वर्सेनिंग, विद परहैप्स 300,000 डेड, एसोसिएटेड प्रेस, 22 अप्रैल 2008

[947] वाकर पी एंड स्टुर्के जे, दार्फुर जीनोसाइट चार्जेज फॉर सूडानीज प्रेसीडेंट उमर अल-बशीर, गार्जियन, 14 जुलाई 2008

[948] त्रिमिंघम जेएस (1949) इस्लाम इन द सूडान, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृष्ठ 29

[949] जोएल मोब्रे, मेड्स, स्लेव्स, एंड द प्रिजनर्सः टू बी इम्प्लायड इन सऊदी होम- फोर्स्ड सर्विट्यूड ऑफ विमेन इन सऊदी अरेबिया एंड इन होम्स ऑफ सऊदीज इन यूएस, नेषनल रिव्यू, 24 फरवरी 2003

लंदन के सऊदी मैंशन में रखा गया। उन फिलीपीनी महिलाओं ने कहा कि उन्हें प्रायः परछत्ती पर ताले में बंद कर दिया जाता था, खानों की खुरचन दी जाती थी और जब वे गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गयीं, तो उन्हें चिकित्सीय उपचार दिलाने से मना किया गया।

इस रिपोर्ट में संयुक्त राज्य अमरीका में सऊदी लोगों के घरों में घरेलू नौकरों के साथ व्यवहार के विषय में दिया गया:

...सऊदियों के घरों में काम कर रहे घरेलू नौकरों की स्थिति में ये सात बातें अवश्य मिलती हैं: पासपोर्ट जब्त कर लेना, मनमाने ढंग से संविदा की शर्तों को परिवर्तित कर देना, औचित्य से अधिक घंटों तक काम कराते रहना, चिकित्सीय आवश्यकताओं को न पूरा करना, मौखिक और प्राय: शारीरिक दुर्व्यवहार, बंदी जैसा वातावरण...। हमने जिन महिलाओं से बात की, उन्होंने यू.एस. में काम करती थीं. यद्यपि इनमें से कुछ पहले सऊदी अरब में काम करती थीं; जिन महिलाओं ने दोनों देशों में काम किया था, उनका कहना था कि यू.एस. आकर भी उनकी स्थिति नहीं सुधरी।

निष्कर्ष

मुस्लिम दुनिया में दासप्रथा के जो अंश आज भी बचे हुए हैं, वो इस्लाम के इतिहास में जो क्रूर, बर्बर व अमानवीय दासप्रथा रही है, उसकी तुलना में कुछ नहीं है। निस्संदेह वाह्य दबाव और कहें कि पश्चिमी देशों व यू.एन. आदि के दबाव ने मुस्लिम देशों में दासप्रथा को सीमित करने में निर्णायक भूमिका निभायी है। किंतु वैश्विक स्तर पर ऐसे रुढ़िवादी इस्लामी उग्रवादियों का सिर उठाना गंभीर चिंता का विषय है, जो मध्यकालीन इस्लामी खलीफा के जैसे इस्लामी शासन स्थापित करने के लिये विश्व को जीतने का लक्ष्य लेकर चल रहे हैं। 2006 में डेनिश समाचार पत्र में मुहम्मद के कार्टून के प्रकाशन के विरोध में लंदन में जब प्रदर्शन हो रहे थे, तो प्रदर्शनकारी नारे लगा रहे थे कि चलो डेनमार्क पर हमला करें और 'उनकी स्त्रियों को लूट का माल (माले गनीमत) के रूप में उठा लायें', जबकि एक प्रदर्शनकारी ने चिल्लाते हुए कहाः 'खैबर के यहूदियों वाला हाल करो।'[950] यद्यपि दासप्रथा की घृणित संस्था जो आज है और जो दासप्रथा इस्लाम की ऐतिहासिक घटनाओं में है, उनसे मजहबी मुस्लिम मन आज भी प्रेरित होता है और ऐसे मुसलमानों में प्रायः उच्च शिक्षित मुसलमान भी होते हैं।

1999 में संयुक्त राष्ट्र में सूडानी सरकार ने सूडान में चल रहे दासप्रथा के समर्थन को उचित भी ठहराया। 23 मार्च 1999 को सूडान के विद्रोही नेता जॉन गैरांग ने संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार उच्चायुक्त मैरी रॉबिन्सन के समक्ष सरकार प्रायोजित हिंसक जिहाद व दास बनाने की प्रथा के बारे में परिवाद दिय। उसकी प्रतिक्रिया में पूर्व पीएम सादिक अल-महदी (शासन 1986-89) ने रॉबिन्सन को पत्र लिखकर मजहबी आधार पर किये जा रहे भयानक अत्याचारों में सूडानी सरकार की मिलीभगत का बचाव किया। उन्होंने लिखा, [951]

---

[950] चिलिंग इस्लामिक डेमांस्ट्रेशन ऑफ कार्टून्स, लंदन, http://video.google.com/videoplay?docid=574545628662575243, एक्सेस्ड ऑन 20 जुलाई 2008

[951] लेटर फ्रॉम सादिक अल-महदी टू मैरी रॉबिन्सन, यू.एन. हाई कमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स (सेक्शन 3: वार क्राइम्स), मार्च 24 1999

> जिहाद की पारंपरिक अवधारणा... विश्व को दो भागों में विभाजित करने पर आधारित है: एक भाग दारुल इस्लाम (इस्लाम का क्षेत्र) और दूसरा भाग दारुल हर्ब (जंग का क्षेत्र)। मजहबी उद्देश्यों के लिये आरंभिक शत्रुता आवश्यक होती है...। यह सच है कि सूडान में (एनआईएफ) शासन ने दासप्रथा लाने के लिये कोई विधि पारित नहीं की है। किंतु जिहाद की पारंपरिक अवधारणा दासप्रथा को (जिहाद की) एक उप उत्पाद के रूप में अनुमति देती है।

इसलिये, यदि विश्व भर में चल रहे धर्मांध इस्लामी आंदोलन यदि अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो गये, तो इसकी संभावना बहुत बढ़ जाएगी कि अल्लाह द्वारा स्वीकृत इस्लामी दासप्रथा अपने पुराने रूप में विश्व पटल पर पुनः स्थापित कर दी जाएगी।

अध्याय 8

अंतिम शब्द

इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से सिद्ध किया गया है कि कुरआन में अल्लाह द्वारा उतारी गयीं आयतें बलात् धर्मपरिवर्तन, वैश्विक स्तर पर अ-मुस्लिम (गैर-मुस्लिम) जनता के आर्थिक शोषण से आच्छादित इस्लामी साम्राज्य की स्थापना, दास-व्यापार व सेक्स-स्लेवरी (यौन-दासता) सहित दासप्रथा में संलिप्तता का आह्वान करती हैं। अल्लाह के इन ईश्वरीय आदेशों पर इस्लाम के रसूल मुहम्मद द्वारा सतर्कतापूर्व कार्य किया गया था। मुहम्मद ने अरब के बहुदेववादियों को तलवार की नोंक पर बलपूर्वक इस्लाम में धर्मांतरित किया, अपने धर्म पर अडिग यहूदियों का सामूहिक नरसंहार करके और यहूदियों व बहुदेववादियों की स्त्रियों व बच्चों को व्यापक स्तर पर पकड़कर बलपूर्वक दास बनाकर अरब के पहले साम्राज्यवादी राज्य की स्थापना की। मुहम्मद और उसके साथी बलपूर्वक पकड़ी युवा व सुंदर स्त्रियों को अपनी यौन-दासी (सेक्स-स्लेव) और रखैलें (लौंडी) बनाकर रखते थे। मुहम्मद ने पकड़कर बंदी बनायी गयी कुछ स्त्रियों को बेचा भी। उसके बाद मुस्लिम खलीफाओं और सुल्तानों ने मुहम्मद के कार्यों का अपना लिया, उसका विस्तार किया और इस्लामी दुनिया का वृहद् क्षेत्र तैयार किया।

जिहाद सहित कुरआन के सभी आदेश संसार के अंत तक अपरिवर्तनीय ही रहेंगे। इसलिये, यदि अल्लाह के आदेशों का पालन किया जाएगा, तो बलपूर्वक धर्मांतरण, साम्राज्यवाद व दासप्रथा शाश्वत काल तक चलती रहेगी। जहां तक बलात् धर्मांतरण का संबंध है, तो जब तक ऐसा समय न आ जाए कि धर्मांतरण के लिये धरती पर कोई काफिर बचा ही न हो, यह चलता ही रहेगा। यद्यपि धरती के सभी लोग इस्लाम में धर्मांतरित हो भी जाएं, तो कुछ विद्रोही मुसलमान नास्तिकता (मजहबी आदेशों से विचलन) के माध्यम से काफिर हो जाएंगे। इसलिये, तकनीकी रूप से संसार के समाप्त होने तक बलपूर्वक धर्मांतरण की संस्था बंद नहीं होगी। जहां तक प्रश्न दासप्रथा की संस्था की है, तो भले ही पूरा विश्व इस्लाम में धर्मांतरित हो जाए, तब भी इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होने वाला है। जो नास्तिकता के माध्यम से इस्लाम को छोड़ेंगे, वे सदा नरसंहार व दास बनाये जाने का शिकार होने का विधिक लक्ष्य बने रहेंगे। इसके अतिरिक्त इस्लामी कानूनों में व्यवस्था है कि जंग क्षेत्र में पकड़े जाने के बाद इस्लाम स्वीकार करने वाले काफिर सदा दास (गुलाम) ही रहेंगे। दासों की संतानें दास ही रहेंगे। इसलिये, अल्लाह की ईश्वरीय व्यवस्था दासप्रथा युगों तक मानव जाति का अभिन्न अंग रहेगी। इस्लामी साम्राज्य के संबंध में यह है कि सदा के लिये वैश्विक इस्लामी शासन का स्थायीकरण अल्लाह का अंतिम लक्ष्य है।

अल्लाह के जिहाद का आदेश-जिसे मात्र एक व्यक्ति रसूल मुहम्मद ने अंगीकार किया था- ने वास्तव में पिछले चौदह सौ वर्षों में अचंभित करने वाली सफलता प्राप्त की है। मुहम्मद और उत्तराधिकारियों ने मृत्युतुल्य कष्ट व यातना देकर करोड़ों काफिरों को मुसलमान बनाया, बलपूर्वक दास बनाकर और कठोर आर्थिक शोषण करके मुसलमान बनाया। मुसलमान अब 1.4 अरब अर्थात विश्व की जनसंख्या का 20 प्रतिशत हैं। यह पूर्णतः स्पष्ट किया जा चुका है कि मुसलमानों ने दास-व्यापार व यौन-दासता (सेक्स-

स्लेवरी) सहित दासप्रथा को व्यापक स्तर पर बीसवी सदीं तक चलाया है और निश्चित ही इस्लाम के आरंभिक काल से ही मध्य पूर्व, मध्य एशिया, उत्तर अफ्रीका, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि में स्थापित इस्लामिक साम्राज्यवाद अनवरत् इस्लामी शासन के अधीन ही रहेगा।

पुनर्जागरण के समय प्रारंभ इस्लामी दुनिया पर ईसाई यूरोप के उत्तरोत्तर प्रभुत्व ने मानव जाति को अपने पूर्ण अंतिम महजब इस्लाम की कृपा प्रदान करने के लक्ष्य के साथ वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवादी इस्लामी राज्य की स्थापना के लिये अल्लाह के जिहाद के दांव-पेंच में विघ्न डालने वाले की भूमिका निभायी है। वास्तव में यूरोप ने अल्लाह के मिशन को नष्ट करने में तीन बार भूमिका निभायीः पहला टूअर्स का युद्ध (732) और उस्मानिया साम्राज्य के विरुद्ध दो बार गेट्ट ऑफ वियना (1527 और 1683)। यूरोप ने अल्लाह के ईश्वरीय मिशन पर और भी बड़ा प्रहार करते हुए उन सभी भूमि पर नियंत्रण कर लिया, जिन पर सदियों से दीप्तिमान जिहाद करके मुसलमानों ने कब्जा किया था। तुर्की और ईरान जैसे वो स्थान, जहां यूरोपीयों ने या तो सीधे सत्ता पर नियंत्रण नहीं किया या नहीं कर सके, वहां उन्होंने अपने स्थानापन्नों (प्रतिनिधियों) को शासक बना दिया।

बाद के यूरोपीय साम्राज्यवाद द्वारा इस्लामी साम्राज्यवाद को हड़प कर जाने से अल्लाह के जिहादी कार्यों पर कई प्रकार से गंभीर क्षति पहुंची। यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने न केवल इस्लामी राजनीतिक प्रभुत्व व आगे के विस्तार का अंत कर दिया, अपितु उन्होंने महत्वपूर्ण जिहादी व्यवसायोंः बलात् धर्मपरिवर्तन, दास बनाना, दास-व्यापार और यौन-दासता (सेक्स-स्लेवरी) आदि का ही पूर्णतः सफाया कर दिया। जिहाद, जो कि व्यापक स्तर पर इस्लामी पंथ का केंद्रबिंदु है, मृतप्राय हो गया। जब यूरोपीय साम्राज्यवादी अंततः वहां से हटे, तो अल्लाह के अभिषिक्त जिहादियों की बहादुरी व रक्त से पहले कब्जा की गयी भूमि का बड़ा भाग काफिरों के नियंत्रण में आ गयाः भारत इसका प्रमुख उदाहरण है। यह इस्लाम के लिये बड़ी क्षति थी।

यद्यपि, सर्वसामर्थ्यवान अल्लाह के शडयंत्रों पर कदाचित ही कभी किसी नश्वर सांसारिक सत्ता द्वारा अंकुश लगाया जा सकता, या उन्मूलन किया जा सका। अल्लाह के अभिषिक्त जिहादी जब तक उन्नीसवीं सदी में मार-कूटकर भगा नहीं दिये गये, वे यूरोपीय अधिवासियों के विरुद्ध जिहाद की ऊंची भावना पाले रहे। किंतु उन पूर्व साम्राज्यवादियों (यूरोपीय) ने भिन्न प्रकार की युक्तियां व व्यवस्थाएं बनायी हैं, जैसे कि अंतर्राष्ट्रीय विधि, मानव अधिकार, दासप्रथा का उन्मूलन व इस प्रकार की अन्य व्यवस्थाएं और ये सारी व्यवस्थाएं इस्लाम की तीव्र प्रगति के लक्ष्य जिहाद के आदर्श को आगे बढ़ाने में बाधा बन रही हैं। उन्नीसवीं सदी व बीसवीं सदी के आरंभ में यूरोपीय लोगों ने ज्ञान प्राप्ति का अवसर प्रदान करते हुए अनेक मुस्लिम विद्यार्थियों के लिये अपने विश्वविद्यालयों के द्वार खोल दिये। इन मुस्लिम विद्यार्थियों में प्रायः उच्च वर्ग के परिवारों के बच्चे होते थे। यदि वो पश्चिमी शक्तियों से लड़ने के लिये शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों को बनाना सीख लेते, तो अच्छी बात होती। किंतु प्रायः व बहुधा वे जब अपने देश लौटते, तो उनके मन-मस्तिष्क में धर्मनिरपेक्षता, मानव अधिकार, नारीवाद व इस प्रकार अन्य अ-इस्लामी (गैर-इस्लामी) बातें भरी होती थीं, जो जिहाद के मुख्य सिद्धांत की अवहेलना करने वाली होती थीं। मुस्लिम सत्ता के दो बड़े केंद्र ईरान व तुर्की उन अ-इस्लामी विदेशी विचारों के प्रभाव में आ गयीं और अल्लाह द्वारा दिये गये जिहाद के व्यवसाय को पूर्णतः छोड़कर धर्मनिरपेक्षता को गले लगा लिया।

किंतु कुरआन कहती है, अल्लाह सबसे बड़ा षडयंत्रकर्ता है; उसके पास अपने मिशन में बाधा पहुंचाने वाले सभी मानवीय युक्तियों का नाश करने की ताकत व कला है। अल्लाह कहता है, 'निश्चित ही वे (काफिर) कोई योजना बनाएंगे। और मैं (भी) योजना बनाऊंगा [कुरआन 86:15-16]।' [कुरआन 13:42] उन सबको चेतावनी देती है, जो उसके (अल्लाह के) विरुद्ध युक्ति निकालते हैं, 'सभी बातों में सबसे निपुण योजना अल्लाह की होती है।' पश्चिम-प्रभावित ईरान की सत्ता को अयातुल्लाओं ने उखाड़ फेंका। तुर्की में कीमलवादी धर्मनिरपेक्ष शीघ्र ही उखाड़ फेंक दिये जाने की ओर हैं। पिछले तीन दशकों से अधिक समय से ईरान में जिहाद पूरे परिमाण में सक्रिय है, जबकि तुर्की में जिहाद धीरे-धीरे पकड़ बना रहा है।

उपमहाद्वीप में बड़ी मुस्लिम जनसंख्या का जिहादी उत्साह, जिसका ब्रिटिशों ने लंबे समय तक प्रभावशाली ढंग से दमन कर रखा था, विभाजन के क्रम (1946-48) में शिथिल छोड़ दिया गया। कई मिलियन (करोड़ों) हिंदुओं व सिखों को मृत्युतुल्य यातना देकर मुसलमान बनाया गया और उनकी लाखों युवा स्त्रियों को बलपूर्वक दास बनाकर अपने साथ ले जाया गया। आज भी यह सब किसी न किसी रूप में हो रहा है। उदाहरण के लिये, पाकिस्तान में प्रत्येक वर्ष हिंदुओं, सिखों और ईसाइयों का बलपूर्वक धर्मांतरण होता है और उनकी बच्चियों का अपहरण करके दास बनाया जाता है। यदि वे इसका प्रतिरोध करते हैं, तो उन्हें हिंसक प्रकोप या सामाजिक रूप से बाध्य करके खदेड़ दिया जाता है, जिससे उनकी संख्या तेजी से घट गयी है। ये अत्याचारी कार्रवाई बांग्लादेश, पाकिस्तान, इजिप्ट, लेबनान, फिलीस्तीन और लगभग प्रत्येक इस्लामी देश में हो रही है।

जहां तक दासप्रथा की बात है, तो यह बताया गया है कि सऊदी अरब में दासप्रथा किसी न किसी रूप में अस्तित्व व प्रचलन में है। मॉरीतानिया में दासप्रथा का व्यापक चलन है। इस्लामियों द्वारा 1980 के दशक के मध्य में देश पर नियंत्रण कर लेने के पश्चात सूडान में भी दासप्रथा प्रचलन में आ गयी। विभिन्न रूपों में इस्लामी साम्राज्यवाद का विस्तार आज भी किया जा रहा है, जैसे कि नये मुस्लिम देश के निर्माण का उदाहरण है। इसी प्रकार के इस्लामी साम्राज्यवाद का विस्तार कश्मीर, मिंडानाओ व दक्षिणी थाईलैंड आदि स्थानों पर भी होने वाला है। जिहाद का सिद्धांत अपने अभिन्न घटकों यथाः बलपूर्वक धर्मांतरण, साम्राज्यवाद व दासप्रथा प्रकृति में अनवरत् है। आज भी इसने अपना वही रूप बनाये रखा है, जो इस्लाम के आरंभिक दिनों में था।

कुल मिलाकर अल्लाह द्वारा दी गयी जिहाद की व्यवस्था अपने अभिन्न घटकों में आज भी विद्यमान व चलन में है। दीप्त जिहाद का पूर्ण का विस्तार तो और भी चमकीला दिख रहा है। इस्लाम के आरंभिक दिनों और उसके बाद के इस्लामी प्रभुत्व के दिनों में अल्लाह ने अपने अभिषिक्त जिहादियों को कठिन और जीत की लगभग असंभव स्थितियों वाली जंगों में अपने फरिश्तों की सहायता से विजेता बनाकर काफिरों के धन व खजाने से उनकी झोलियां भर दीं। किंतु अब काफिरों द्वारा विकसित अत्याधुनिक व प्रभावशाली शस्त्रों का अविष्कार करने से अल्लाह के फरिश्ते प्रभावहीन हो गये हैं, तो अल्लाह ने उनके लिये एक नई राहत भेज दीः अर्थात कई इस्लामी देशों में भूमि के नीचे संरक्षित बड़ी मात्रा में काला सोना (तेल) और सऊदी अरब, कुवैत, ईराक और ईरान को सर्वाधिक काला सोना मिला है। विश्व के पहिये को चलाने के लिये काला सोना की आवश्यकता इतनी अधिक है कि शक्तिशाली पश्चिमी देशों सहित पूरा विश्व इस्लामी देशों की अगुवाई वाले इस महत्वपूर्ण उत्पाद के उत्पादकों की बंधक बन गयी है। 1970 के दशक से तरल सोने के आसमान छूते मूल्यों के कारण वो मुस्लिम देश और विशेष रूप से सऊदी अरब में इतनी धन की वर्षा हो रही है कि इसकी तुलना में उनके अतीत में जिहाद द्वारा किये गये लूटपाट से प्राप्त धन कहीं ठहरता ही नहीं है।

इस्लाम के जन्म स्थान के सौभाग्यशाली अभिरक्षक सऊदी अरब ने वैश्विक स्तर पर इस्लाम की शुद्धता को प्रोत्साहन देने के लिये अल्लाह की इस राहत, अरबों डालर वार्षिक, को मुक्त हस्त से व्यय किया है। इस्लाम के सच्चे सिद्धांतों से मुस्लिमों को प्रशिक्षित करने के लिये पश्चिम सहित विश्व भर में मस्जिद और मदरसे खड़े हो गये हैं। मदीना में रसूल मुहम्मद के कार्यकाल के महत्वपूर्ण भाग पर आधारित बातों को सुनाकर इस पर बल दिया जाता है कि जिहाद इस्लाम का हृदय अर्थात मुख्य सिद्धांत है। मुसलमानों ने इस्लाम के इस मूल तत्व को पूर्णतः आत्मसात् कर लिया है। ओसामा बिन लादेन ने अपने पिता द्वारा सऊदी तेल व्यापार के अप्रत्याशित लाभ से कमाये हुए धन को खुले हाथ से जिहाद चलाने में दिया था। अल-कायदा की स्थापना और रसूल मुहम्मद की छवि के अनुसार जिहादी गतिविधियों को चलाकर उसने ऊंघ रहे मुसलमानों को जगाकर उनके मन में यह भरने में सफल रहा कि सच्चा मुसलमान होने का अर्थ क्या है। विश्व भर में अल-कायदा की विचारधारा से प्रेरित अनेकों जिहादी समूह बन गये हैं। यहां तक कि काफिरों की बहुलता वाले भारत, चीन, रूस और पष्चिमी देशों में ये जिहादी समूह अस्तित्व में आ चुके हैं।

जिहाद एक प्रभावशाली मार्च पर पुनः अग्रसर हो चुका है। आने वाले दशकों में यह बहुत ताकत प्राप्त कर लेगा। जिहाद हिंसक व लचीला दो रूपों में शुरू किया गया है, किंतु दोनों ही रूपों का लक्ष्य एक ही है कि ज़िम्मीपना (धिम्मीपना), दासप्रथा, बलपूर्वक धर्मांतरण आदि से निहित अल्लाह के कानून षरिया को लागू करना। हिंसक जिहाद से निपटना को सरल है, किंतु जिहाद का लचीला रूप, विशेष रूप से काफिर-बाहुल्य देशों में असीमित संख्या में बच्चे उत्पन्न कर जनसंख्या विस्फोट के माध्यम से होने वाले जिहाद से निपटना कठिन हो जाएगा। इसकी बहुत संभावना है कि आगामी कुछ दशकों में भारत, रूस और यूरोप जिहादियों के वास्तविक जंग के मैदान बन जाएंगे, चाहे हिंसक रूप में हो अथवा लचीले रूप में।

विवेकशील लोगों को यह चाहे जितना बेतुका और अनुचित लगे, किंतु आने वाले दशकों में जिहाद किसी न किसी रूप में विश्व-मंच पर बहुत बड़ी भूमिका निभाएगा। 1947 में पाकिस्तान निर्माण के क्रम में एक हिंसक मुस्लिम भीड़ की अगुवाई कर रहे प्रांतीय विधानसभा के एक सांसर जहान खान ने हिंदुओं और सिखों से कहा था कि 'अब मुस्लिम राज है। पाकिस्तान बन चुका है। हम शासक हैं और हिंदू रैयत (जनता) हैं। सिखों को पाकिस्तान का झंडा उठाना होगा.... खरज (काफिरों के लिये भूमि कर) व अन्य कर (जजिया आदि) देना होगा।'[952] तंजीम-ए-इस्लामी पार्टी के संस्थापक पाकिस्तानी विद्वान डॉ इसरार अहमद[953] इस्लामी देशों में गैर-मुस्लिमों के विषय पर कहते हैं:[954]

---

[952] खोसला, पृष्ठ 159

[953] डॉ इसरार अहमद पाकिस्तान, भारत, मध्यपूर्व और उत्तरी अमरीका में कुरआन की शिक्षाओं व समझ पर मुसलमानों का ध्यान आकर्षित करने के अपने प्रयासों के लिये विख्यात हैं। वो इस्लाम के उपदेशकों के लिये तैयार एक प्लेटफार्म मुंबई-आधारित पीस टीवी पर दैनिक शो करते थे और उनके शो को एशिया, यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व उत्तरी अमरीका के लाखों-करोड़ों दर्शक देखते थे।

[954] डॉ इसरार अहमद; http://in.youtube.com/watch?v=ZJ7B-VG71Pc&feature=related; 14 अक्टूबर 2008 को देखा गया।

> हमने कहा (गैर-मुसलमानों से): या तो मुसलमान बन जाओ और समान अधिकार पाओ, अथवा उन्हें हमारे शासन में द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनकर रहना होगा। अथवा खुले मैदान में आओ और तलवार से इसका समाधान निकलने दो।

फिलिस्तीन में बेथलेहम नगर परिषद के सदस्य व हमास नेता ने 2006 में गैर-मुस्लिम जनता पर भेदभावकारी कर जजिया थोपने का समर्थन किया था। यह प्रस्ताव लागू नहीं किया गया, किंतु अल-मसलमेह ने वादा किया, 'हम हमास के लोग एक न एक दिन इसे थोपने की मंशा रखते हैं।'[955]

यहां तक कि आधुनिक कहे जाने वाले मुस्लिम देश मलेशिया ने भी मुसलमान नागरिकों के लिये आर्थिक, शैक्षणिक व सामाजिक विशेषाधिकार बना रखा है, जो देश के गैर-मुस्लिम नागरिकों के लिये एक प्रकार के ज़िम्मीपन व जजिया का आधुनिक रूप उपस्थित करता है। 2006 में मलेशिया की गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक जनता ने साढ़े तीन दशकों से लागू राज्य-प्रायोजित भेदभाव को दूर करने की मांग की थी। इसकी प्रतिक्रिया में सत्ताधारी दल के कार्यकर्ताओं व नेताओं ने दिसम्बर 2006 में दल की वार्षिक बैठक में हो-हल्ला करते हुए मांग की थी कि गैर-मुस्लिम जनता पर मुस्लिमों का विशेषाधिकार बनाये रखा जाए। कुछ प्रतिनिधियों ने तो उग्र भाषण देते हुए कहा कि मुसलमानों के उच्चाधिकार की रक्षा के लिये रक्त की नदियां बहा देंगे; दल के युवा मुखिया ने तो समानता का अधिकार मांग रही गैर-मुस्लिम जनता को चेतावनी देने के लिये तलवार तक निकाल लिया था।

मुस्लिम दुनिया में धर्मांध इस्लामी आंदोलन तेजी से पांव पसार रहा है, जबकि धीरे-धीरे पश्चिम में भी शरिया कानून विधिक प्रणाली में प्रवेश कर रहा है। समय बताएगा कि जिहाद के मुख्य कार्य- बलपूर्वक धर्मांतरण, साम्राज्यवाद और दासप्रथा के साथ गैर-मुस्लिमों का आर्थिक शोषण करना एवं उन्हें सामाजिक रूप से पंगु बनाना- अपने मध्यकालीन रूप में विश्व पटल पर वापस लौटेगा या नहीं।

---

[955] वीनर, ओप सिट

संदर्भ-ग्रंथ सूची

- *Abu Dawud, Sunan*; trans. A Hasan, Kitab Bhavan, New Delhi, 2007, Vols. 1–3
- Adas M ed. (1993) *Islam & European Expansion*, Temple University Press, Philadelphia
- Ahmed A (1964) *Studies in Islamic Culture in the Indian Environment*, Clarendon Press, Oxford
- Al-Attas SN (1963) *Some Aspects of Sufism as Understood and Practice Among the Malays*, S Gordon ed., Malaysian Sociological Research Institute Ltd., Singapore
- Ali SA (1891) *The Life and Teachings of Muhammed*, WH Allen, London
- Al-Tabari (1988) *The History of Al-Tabari*, State University of New York Press, New York, Vols. 6–10
- Al-Thaalibi I (1968) *Lata'if Al-Ma'arif. The Book of Curious and Entertaining Information*, ed. CE Bosworth, Edinburgh University Press
- Ambedkar BR (1979–98) *Writings and Speeches* , Government of Maharashtra, Mumbai
- Armstrong K (1991) *Muhammad: A Attempt to Understand Islam*, Gollanz, London
- Arnold T and Guillaume A eds. (1965) *The Legacies of Islam*, Oxford University Press, London
- Arnold TW (1896) *The Preaching of Islam*, A. Constable & Co., London
- Ashraf KM (1935) *Life and Conditions of the People of Hindustan*, Calcutta
- Banninga JJ (1923) *The Moplah Rebellion of 1921*, in *Moslem World* 13
- Basham AL (2000) *The Wonder That Was India*, South Asia Books, Columbia
- Batabyal R (2005) *Communalism in Bengal: From Famine to Noakhali*, 1943–47, SAGE Publications
- Bernier F (1934) *Travels in the Mogul Empire (1656-1668)*, Revised Smith VA, Oxford
- Berube CG & Rodgaard JA (2005) *A Call to the Sea: Captain Charles Stewart of the USS Constitution*, Potomac Books Inc., Dulles
- Bodley RVC (1970) *The Messenger: The Life of Muhammad*, Greenwood Press Reprint
- Bostom AG (2005) *The Legacy of Jihad*, Prometheus Books, New York
- Braudel F (1995) *A History of Civilizations*, Translated by Mayne R, Penguin Books, New York
- Brockopp JE (2005) *Slaves and Slavery, in The Encyclopedia of the Qur'ān*, McAuliffe JD et al. ed., EJ Brill, Leiden
- Brodman JW (1986) *Ransoming Captives in Crusader Spain: The Order of Merced on the Christian-Islamic Frontier*, University of Pennsylvania Press, Philadelphia
- *Bukhari, Sahih*; trans. MM Khan, Kitab Bhavan, New Delhi, 1987, Vols. 1–9
- Chadurah HM (1991) *Tarikh-Kashmir*, ed. and trans. R Bano, Bhavna Prakashan, Delhi

- Clarence-Smith WG (2006) *Islam and the Abolition of Slavery*, Oxford University Press, New York
- Collins L & Lapierre D (1975) *Freedom at Midnight*, Avon, New York
- Copland I (1998) *The Further Shore of Partition: Ethnic Cleansing in Rajasthan 1947, Past and Present*, Oxford, 160
- Crone P and Cook M (1977) *Hagarism: The Making of the Islamic World*, Cambridge University Press, Cambridge
- Durant W (1999) *The Story of Civilization: Our Oriental Heritage*, MJF Books, New York
- Eaton RM (1978) *Sufis of Bijapur 1300–1700*, Princeton University Press, Princeton
- Eaton RM (2000) *Essays on Islam and Indian History*, Oxford University Press, New Delhi
- Eliot HM & Dawson J, *The History of India As Told By Its Own Historians*, Low Price Publications, New Delhi, Vols. 1–8
- Elst K (1993) *Negationism in India*, Voice of India, New Delhi
- Endress G (1988) *An Introduction to Islam*, trs. C Hillenbrand, Columbia University Press, New York
- Erdem YH (1996) *Slavery in the Ottoman Empire and Its Demise, 1800–1909*, Macmillan, London
- Esin E (1963) *Mecca the Blessed, Medina the Radiant*, Elek, London
- Ferishta MK (1997) *History of the Rise of the Mahomedan Power in India*, translated by John Briggs, Low Price Publication, New Delhi, Vols. I–IV
- Fisher AW (1972) *Muscovy and the Black Sea Slave Trade, in Canadian-American Slavic Studies*, 6(4)
- Fregosi P (1998) *Jihad in the West*, Prometheus Books, New York
- Ghosh SC (2000) *The History of Education in Medieval India 1192-1757*, Originals, New Delhi
- Gibb HAR (2004) *Ibn Battutah: Travels in Asia and Africa*, D K Publishers, New Delhi
- Goel SR (1996) *Story of Islamic Imperialism in India*, South Asia Books, Columbia (MO)
- Goldziher I (1967) *Muslim Studies*, trs. CR Barber and SM Stern, London
- Goldziher I (1981) *Introduction to Islamic Theology and Law*, Trs. Andras & Ruth Hamori, Princeton
- Habibullah, ABM (1976) *The Foundations of Muslim Rule in India*, Central Book Depot, Allahabad
- Haig W (1958) *Cambridge History of India*, Cambridge University Press, Delhi

- Hasan M (1971) *The History of Tipu Sultan*, Aakar Books, New Delhi
- Hitti PK (1961) *The Near East in History*, D. Van Nostrand Company Inc., New York
- Hitti, PK (1948) *The Arabs : A Short History*, Macmillan, London
- Hughes TP (1998) *Dictionary of Islam*, Adam Publishers and Distributors, New Delhi
- Ibn Ishaq, *The Life of Muhammad*, (trs. A Guillaume), Oxford University Press, Karachi, 2004 imprint
- Ibn Sa'd AAM, *Kitab al-Tabaqat*, Trans. S. Moinul Haq, Kitab Bhavan, New Delhi, 1972 print
- Ibn Warraq (1995) *Why I am not a Muslim*, Prometheus Books, New York
- Inalcik H (1997) *An Economic and Social History of the Ottoman empire, 1300-1600*, Cambridge University Press
- Iqbal M (2002) *Islam as a Moral and Political Ideal, in Modernist Islam, 1840-1940: A Sourcebook*, C Kurzman ed., Oxford University Press, London
- Johnson L (2001) *Complete Idiot Guide Hinduism*, Alpha Books, New York
- Jones JP (1915) *India: Its Life and Thought*, The Macmillan Company, New York
- Kamra AJ (2000) *The Prolonged Partition and Its Pogroms*, Voice of India, New Delhi
- Khan Y (2007) *The Great Partition: The Making of India and Pakistan*, Yale University Press, Yale
- Khosla GD (1989) *Stern Reckoning: A Survey of Events Leading Up To and Following the Partition of India*, Oxford University Press, New Delhi
- Lahiri PC (1964) *India Partitioned and Minorities in Pakistan*, Writers' Forum, Calcutta
- Lal KS (1973) *Growth of Muslim Population in Medieval India*, Aditya Prakashan, New Delhi
- Lal KS (1992) *The Legacy of Muslim Rule in India*, Aditya Prakashan, New Delhi
- Lal KS (1994) *Muslim Slave System in Medieval India*, Aditya Prakashan, New Delhi
- Lal KS (1995) *Growth of Scheduled Tribes and Castes in Medieval India*, Aditya Prakashan, New Delhi
- Lal KS (1999) *Theory and Practice of Muslim State in India*, Aditya Prakashan, New Delhi
- Levi (2002) *Hindus Beyond the Hindu Kush: Indian in the Central Asian Slave Trades*, Journal of the Royal Asiatic Society, 12(3)
- Lewis (1994) *Race and Slavery in the Middle East*, Oxford University Press, New York
- Lewis B (1966) *The Arabs in History*, Oxford University Press, New York
- Lewis B (1993) *Islam and the West*, Oxford University Press, New York
- Lewis B (2000) *The Middle East*, Phoenix, London

- Lewis B (2002) *What Went Wrong:Impact and Middle Eastern Response*, Phoenix, London
- Lundstrom J (2006) *Rape as Genocide under International Criminal Law, The Case of Bangladesh*,
- Global Human Rights Defence, Lund University
- MA Klein & GW Johnson eds. (1972) *Perspectives on the African Past*, Little Brown Company, Boston
- Maimonides M (1952) *Moses Maimonides' Epistle to Yemen: The Arabic Original and the Three Hebrew*
- *Versions*, ed. AS Halkin and trans. B Cohen, American Academy for Jewish Research, New York.
- Majumdar RC ed. (1973) *The Mughal Empire*, in *The History and Culture of the Indian People*, Bombay
- Manucci N (1906) *Storia do Mogor*, trs. Irvine W, Hohn Murray, London
- Maududi AA (1993) *Towards Understanding the Quran*, trs. Ansari ZI, Markazi Maktaba Islamic Publishers, New Delhi
- Maududi SAA, *The Meaning of the Quran*, Islamic Publications, Lahore
- Menon VP (1957) *The Transfer of Power*, Orient Longman, New Delhi
- Milton G (2004) *White Gold*, Hodder & Stoughton, London
- Moreland WH (1923) *From Akbar to Aurangzeb*, Macmillan, London
- Moreland WH (1995) *India at the Death of Akbar*, Low Price Publications, New Delhi
- Muhammad S (2004) *Social Justice in Islam*, Anmol Publications Pvt Ltd, New Delhi
- Muir W (1894) *The Life of Mahomet*, Voice of India, New Delhi
- *Muslim, Sahih*; trans. AH Siddiqi, Kitab Bhavan, New Delhi, 2004 imprint, Vols. 1–4
- Naipaul VS (1977) *India: A Wounded Civilization*, Alfred A Knopf Inc., New York
- Naipaul VS (1981) *Among the Believers: An Islamic Journey*, Alfred A Knopf, New York
- Naipaul VS (1998) *Beyond Belief: The Islamic Incursions among the Converted Peoples*, Random House, New York
- Nehru J (1989) *Glimpses of World History*, Oxford University Press, New Delhi
- Nehru J (1995) *The Discovery of India*, Oxford University Press, New Delhi
- Nizami KA (1989) *Akbar and Religion*, Idarah-i-Adabiyat-i-Delhi, New Delhi
- Nizami KA (1991a) *The Life and Times of Shaikh Nizamuddin Auliya*, New Delhi
- Nizami KA (1991b) *The Life and Times of Shaikh Nasiruddin Chiragh-I Delhi*, New Delhi
- O'Leary DL (1923) *Islam at the Cross Roads*, E. P. Dutton and Co, New York

- O'Shea S (2006) *Sea of Faith: Islam and Christianity in the Medieval Mediterranean World*, Walker & Company, New York
- Owen S (1987) *From Mahmud Ghazni to the Disintegration of Mughal Empire*, Kanishka Publishing House, New Delhi
- Ozcan A (1977) *Pan Islamism, Indian Muslims, the Ottomans & Britain (1877-1924)*, Brill, Leiden
- Parwez GA (1989) *Islam, a Challenge to Religion*, Islamic Book Service, New Delhi
- Pellat Ch, Lambton AKS and Orhonlu C (1978) *'Khasi,' The Encyclopaedia of Islam*, E J Brill ed., Leiden
- Pipes D (1983) *In the Path of God*, Basic Books, New York
- Pipes D (2003) *Militant Islam Reaches America*, WW Norton, New York
- Prasad RC (1980) *Early Travels in India*, Motilal Banarsidass, India
- Pundit KN trs. (1991) *A Chronicle of Medieval Kashmir*, Firma KLM Pvt Ltd, Calcutta
- Rabbi KF (1895) *The Origins of the Musalmans of Bengal*, Calcutta
- Reid A (1983) *Introduction: Slavery and Bondage in Southeast Asian History, in Slavery Bondage and Dependency in Southeast Asia*, Anthony Reid ed., University of Queensland Press, St. Lucia
- Reid A (1988) *Southeast Asia in the Age of Commerce 1450–1680*, Yale University Press, New Haven
- Reid A (1993) *The Decline of Slavery in Nineteenth-Century Indonesia, in Breaking the Chains: Slavery, Bondage and Emancipation in Modern Africa and Asia*, Klein MA ed., University of Wisconsin Press, Madison
- Rizvi SAA (1978) *A History of Sufism in India*, Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi
- Rizvi SAA (1993) *The Wonder That Was India*, Rupa & Co., New Delhi
- Robinson F (2000) *Islam and Muslim History in South Asia*, Oxford University Press, New Delhi
- Rodinson M (1976) *Muhammad*, trs. Anne Carter, Penguin, Harmondsworth
- Roy Choudhury ML (1951) *The State and Religion in Mughal India*, Indian Publicity Society, Calcutta
- Rudolph P (1979) *Islam and Colonialism: The Doctrine of Jihad in Modern History*, Mouton Publishers, The Hague
- Runciman S (1990) *The Fall of Constantinople, 1453*, Cambridge University Press, London
- Russell B (1957) *Why I Am Not a Christian*, Simon & Schuster, New York
- Sachau EC (1993) *Alberuni's India*, Low Price Publications, New Delhi

- Said EW (1997) *Islam and the West In Covering Islam: How the Media and Experts Determine How We See the Rest of the World*, Vintage, London
- Sarkar J (1992) *Shivaji and His Times*, Orient Longham, Mumbai
- Saunders TB (1997) *The Essays of Arthur Schopenhauer: Book I : Wisdom of Life*, De Young Press
- Segal R (2002) *Islam's Black Slaves*, Farrar, Straus and Giroux, New York
- Shaikh A (1998) *Islam: The Arab Imperialism*, The Principality Publishers, Cardiff
- Sharma SS (2004) *Caliphs and Sultans: Religious Ideology and Political Praxis*, Rupa & Co, New Delhi
- Sherwani LA ed. (1977) *Speeches, Writings, and Statements of Iqbal*, Iqbal Academy, Lahore
- Smith VA (1958) *The Oxford History of India*, Oxford University Press, London
- Sobhy as-Saleh (1983) *Mabaheth Fi 'Ulum al- Qur'an*, Dar al-'Ilm Lel-Malayeen, Beirut
- Swarup R (2000) *On Hinduism Reviews and Reflections*, Voice of India, New Delhi
- Tagher J (1998) *Christians in Muslim Egypt: A Historical Study of the Relations between Copts and Muslims from 640 to 1922*, trs. Makar RN, Oros Verlag, Altenberge
- Talib SGS (1991) *Muslim League Attack on Sikhs and Hindus in the Punjab 1947* (compilation), Voice of India, New Delhi
- *The Quran*, Translations by Yusuf Ali A, Pickthal M and Shakir MH; available at http://www.usc.edu/dept/MSA/quran/
- Triton AS (1970) *The Caliphs and Their Non-Muslim Subjects*, Frank Cass & Co Ltd, London
- Umaruddin M (2003) *The Ethical Philosophy of Al-Ghazzali*, Adam Publishers & Distributors, New Delhi
- Van Nieuwenhuijze CAO (1958) *Aspects of Islam in Post-Colonial Indonesia*, W. van Hoeve Ltd, The Hague
- Waddy C (1976) *The Muslim Mind*, Longman Group Ltd., London
- Walker B (2002) *Foundations of Islam*, Rupa & Co, New Delhi
- Warren JF (1981) *The Sulu Zone 1768-1898: The Dynamics of the External Slave Trade, Slavery and Ethnicity in the Transformation of a Southeast Asian Maritime State*, Singapore University Press, Singapore
- Watt WM (1961) *Islam and the Integration of Society*, Routledge & Kegan Paul; London

- Watt WM (2004) *Muhammad in Medina*, Oxford University Press, Karachi
  Widjojoatmodjo RA (1942) *Islam in the Netherlands East Indies*, In *The Far Eastern Quarterly*, 2 (1), November
- Williams BG (2001) *The Crimean Tatars: The Diaspora Experience and the Forging of a Nation*, E J Brill, Lieden
- Zwemer SM (1907) *Islam: A Challenge to Faith*, Student Volunteer Movement, New York

सूची

Index

Index
28 2